अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

1.प्रोफ़ेसर जे० पी० पचौरी, समाजशास्त्र विभाग, एच० एन० बी० गढ़वाल वि० वि० श्रीनगर

2.प्रोफ़ेसर डी० एस० बिष्ट, समाजशास्त्र विभाग,कुमायूं वि० वि० ,नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

1.डॉ० दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

2.डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1.प्रोफ़ेसर धर्मवीर महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ

2.डॉ० कमलेश महाजन आई० एन० पी० जी० कॉलेज मेरठ

3.डॉ० संजीव महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ

4.डॉ० दीपक पालीवाल,उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

संपादन

प्रोफ़ेसर बी० एस० बिष्ट ,विभागाध्यक्ष ,समाजशास्त्र विभाग,कुमायूं विश्वविद्यालय,डी० एस० बी० कैम्पस,नैनीताल

आई० एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-88-8

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष

Published by: उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल-263139

………………………………………………………………

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MSW-01

समाज कार्य : एक परिचय
Social Work :an Introduction

खण्ड – 1

इकाई 1 - **समाज कार्य** – अर्थ, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र पृष्ठ – 1–16
Social Work- Meaning, Nature & Subject Matter

इकाई 2 **सामाजिक कार्य के उद्देश्यमूल्य -, सिद्धांत और विभिन्न योग में समाज कार्य** पृष्ठ – 17–29
Objectives of Social Work- Values, Theories & Social Work in different Era

इकाई 3 समाज कार्य में भूमिका, संबन्ध एवं आवश्यकताओं की अवधारणाँ पृष्ठ – 30–45
Concept of Role, Relation and Necessities in Social Work

खण्ड – 2

इकाई 4 **अवधारणा** का अर्थ, समाज कल्याण एवं समाज सेवा पृष्ठ – 46–57
Meaning of Concept, Social Welfare & Social Service

इकाई 5 परानुभूति, अहमशक्ति तथा आध्यात्मिकता की अवधारणाँ पृष्ठ – 58–67
Concet of Empathy, Ego & Spirituality

इकाई 6 स्वयंसेवी संगठन पृष्ठ – 68–79
Self Help Group

खण्ड – 3

इकाई 7 गैर सरकारी संगठन पृष्ठ – 80–93
Non Government Organization (NGO)

इकाई 8 मानवाधिकार पृष्ठ – 94–103
Human Right

इकाई 9 भारत में मानवाधिकार पृष्ठ – 104–121
Human Right in India

खण्ड – 4

इकाई 10 **कल्याणकारी राज्य, सामाजिक विधान और समाज कार्य** पृष्ठ – 122–141
Welfare State, Social Legislation & Social Work

इकाई 11 सामाजिक सुधार, विकास और सुरक्षा पृष्ठ – 142–157
Social Reform, Development and Safety

इकाई 12 सामाजिक आन्दोलन – समाजसुधार एवं समाजवाद पृष्ठ – 158–185
Social Movement- Social Reform and Socialism

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान
विद्याशाखा

1.प्रोफ़ेसर जे० पी० पचौरी, समाजशास्त्र विभाग, एच० एन० बी० गढ़वाल वि० वि० श्रीनगर

2.प्रोफ़ेसर डी० एस० बिष्ट, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूं वि० वि०, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

1. डॉ० दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल
2. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1.प्रोफ़ेसर धर्मवीर महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ

2.प्रोफ़ेसर अरविन्द जोशी, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

3.डॉ० कमलेश महाजन आई० एन० पी० जी० कॉलेज मेरठ

4.डॉ० संजीव महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ

5.डॉ० दीपक पालीवाल, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

संपादन

प्रोफ़ेसर बी० एस० बिष्ट ,विभागाध्यक्ष ,समाजशास्त्र विभाग,कुमायूं विश्वविद्यालय,डी० एस० बी० कैम्पस,नैनीताल

आई० एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-89-5

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष

Published by: उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल-263139

……………………………………………………………

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MSW-02

सामाजिक शोध

खण्ड – 1

इकाई- 1 सामाजिक शोध — पृष्ठ – 1–17
SOCIAL RESEARCH

इकाई 2 सामाजिक अनुसंधान के प्रकार — पृष्ठ – 18–25
TYPES OF SOCIAL RESEARCH

इकाई 3 शोध प्रारूप — पृष्ठ – 26–42
RESEARCH DESIGN

खण्ड – 2

इकाई 4 उपकल्पना : अर्थ, विषेषताएँ, प्रकार एवं निर्माण — पृष्ठ – 43–51
HYPOTHESIS

इकाई 5 अवलोकन — पृष्ठ – 52–67
OBSERVATION

इकाई 6 अनुसूची — पृष्ठ – 68–79
SCHEDULE

खण्ड – 3

इकाई 7 प्रश्नावली — पृष्ठ – 80–90
QUESTIONNARIE

इकाई 8 वैयक्तिक अध्ययन — पृष्ठ – 91–106
CASE STUDY

इकाई 9- प्रतिदर्श -अर्थ एवं प्रकृति — पृष्ठ – 107–123
SAMPLING- MEANING & NATURE

खण्ड – 4

इकाई 10 प्रतिदर्श की तकनीक — पृष्ठ – 124–137
TECHNIQUES OF SAMPLING

इकाई 11 साक्षात्कार — पृष्ठ – 138–159
INTERVIEW

इकाई 12 सूचनाओं के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत — पृष्ठ – 160–178
PRIMARY AND SECONDARY SOURCE OF DATA

इकाई 13 आंकड़ों का वर्गीकरण एवं प्रस्तुतीकरण — पृष्ठ – 179–203
CLASSIFICATION & PRESENTATION OF DATA

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

1.प्रोफ़ेसर जे० पी० पचौरी, समाजशास्त्र विभाग, एच० एन० बी० गढ़वाल वि० वि० श्रीनगर

2.प्रोफ़ेसर डी० एस० बिष्ट, समाजशास्त्र विभाग,कुमायूं वि० वि० ,नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

1. डॉ० दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल
2. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1. प्रोफ़ेसर धर्मवीर महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ
2. डॉ० कमलेश महाजन आई० एन० पी० जी० कॉलेज मेरठ
3. डॉ० संजीव महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ
4. डॉ० दीपक पालीवाल, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

संपादन

प्रोफ़ेसर बी० एस० बिष्ट एविभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग कुमायूं विश्वविद्यालय डी० एस० बी० कैम्पस नैनीताल

आई० एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-90-1

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष

Published by: उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल-263139

………………………………………………………………

सर्वाधिकार सुरक्षित |इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MSW-03

भारतीय सामाजिक समस्याएँ
Indian Social Problems

खण्ड – 1

इकाई 1	सामाजिक समस्याएं Social Problems	पृष्ठ–1–13
इकाई 2	नगरीय समाज एवं अपराध Urban Society & Crime	पृष्ठ–14–26
इकाई 3	समूह संघर्ष व बाल अपराध Group Conflict & Juvenile Delinquency	पृष्ठ–27–41

खण्ड – 2

इकाई 4	भ्रष्टाचार Corruption	पृष्ठ–42–58
इकाई 5	गरीबी Poverty	पृष्ठ – 59–73
इकाई 6	बेरोजगारी Unemployment	पृष्ठ – 74–87

खण्ड – 3

इकाई 7	मद्यपान Alcoholism	पृष्ठ – 88–102
इकाई 8	एड्स AIDS	पृष्ठ – 103–124
इकाई 9	भिक्षावृत्ति एवं वेश्यावृति Beggary & Prostitution	पृष्ठ – 125–136

खण्ड – 4

इकाई 10	प्रदूषण Pollution	**पृष्ठ – 137–146**
इकाई 11	साम्प्रदायिकता Communalism	**पृष्ठ – 147–155**
इकाई 12	क्षेत्रवाद Regionalism	**पृष्ठ – 156–163**

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

1.प्रोफ़ेसर जे० पी० पचौरी, समाजशास्त्र विभाग, एच० एन० बी० गढ़वाल वि० वि० श्रीनगर
2.प्रोफ़ेसर डी० एस० बिष्ट, समाजशास्त्र विभाग,कुमायूं वि० वि० ,नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक

1. डॉ० दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल
2. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1. प्रोफ़ेसर धर्मवीर महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ
2. डॉ० कमलेश महाजन आई० एन० पी० जी० कॉलेज मेरठ
3. डॉ० संजीव महाजन, एन० ए०एस० कॉलेज मेरठ
4. डॉ० दीपक पालीवाल, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

संपादन

प्रोफ़ेसर बी० एस० बिष्ट ,विभागाध्यक्ष ,समाजशास्त्र विभाग,कुमायूं विश्वविद्यालय, डी० एस० बी० कैम्पस,नैनीताल

आई० एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-91-8

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष

Published by: उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल-263139

………………………………………………………………

सर्वाधिकार सुरक्षित |इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MSW-04

समाजशास्त्र एवं समाज कार्य
(Sociology & Social Work)

खण्ड – 1

इकाई 1 समाजशास्त्र – अर्थ,परिभाषा, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र **पृष्ठ – 1–14**

Sociology – Meaning, Nature & Subject Matter

इकाई 2 समाजशास्त्र व समाजकार्य **पृष्ठ – 15–25**

Sociology & Social Work

इकाई 3 समाज एवं पशु समाज **पृष्ठ – 26–42**

Society& Animal Society

खण्ड – 2

इकाई 4 **सामाजिक समूह** **पृष्ठ – 43–59**

Social Group

इकाई 5 समुदाय **पृष्ठ – 60–68**

Community

इकाई 6 **संस्था** **पृष्ठ – 69–82**

Association

	खण्ड – 3	
इकाई 7	संस्कृति व सभ्यता Culture & Civilization	**पृष्ठ – 83–92**
इकाई 8	सामाजिक परिवर्तन Social Change	**पृष्ठ – 93–110**
इकाई 9	लौकिकीकरण Secularization	**पृष्ठ – 111–119**
	खण्ड – 4	
इकाई 10	**महिला एवं समाज** Women & Society	**पृष्ठ – 120–143**
इकाई 11	पिछड़ी जाति, जनजाति और वर्ग Backward Caste, Tribes & Class	**पृष्ठ – 144–171**
इकाई 12	**मलिन बस्तियाँ व अस्पृश्यता** Slum Areas & Untouchability	**पृष्ठ – 172–184**

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष **संयोजक**
कुलपति **निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

1.**प्रोफ़ेसर आर॰ पी॰ द्विवेदी,महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी**
2.**प्रोफ़ेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1. **प्रो0 अरविन्द जोशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस**
2. **प्रो0 ए0 के0 भारती लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**
3. **डा0 संदीप कुमार , बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय ,वाराणसी**
4. **डा0 सुषमा मिश्रा डी0 ए0 वी0 कालेज वाराणसी**
5. **डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल**

संपादन

डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

आई॰ एस॰ बी॰ एन॰ नं॰: 978-93-84433-92-5
कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by: **उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल**-263139

....

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MSW-05

सामाजिक मनोविज्ञान,संचार एवं समाजकार्य

(Social Psychology, Communication and Social Work)

खण्ड – 1

इकाई 1	सामाजिक मनोविज्ञान एक परिचय **Social Psychology : an Introduction**	पृष्ठ – 1–11
इकाई 2	आधारभूत सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ **Basic Socio-psychological Processes**	पृष्ठ – 12–35
इकाई 3	व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार **Personality and Human Behaviour**	पृष्ठ – 36–49

खण्ड – 2

इकाई 4	मन का प्रत्यय एवं मनोविज्ञान **Concept of Mann and Psychology**	पृष्ठ –50–60
इकाई 5	समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान का महत्व एवं मनोरचनायें **Importance of Psychology in Social WorkPractice and Defence Mechanism**	पृष्ठ – 61–73
इकाई 6	अभिवृत्ति **Attitude**	पृष्ठ – 74–89

खण्ड – 3

इकाई 7	प्रेरणा **Motivation**	पृष्ठ – 90–104
इकाई 8	वंशानुक्रम तथा पर्यावरण **Heredity & Environment**	पृष्ठ – 105–120

इकाई 9	नेतृत्व **Leadership**	पृष्ठ – 121–139

खण्ड – 4

इकाई 10	संचार : एक परिचय **Communication : an Introduction**	पृष्ठ – 140–155
इकाई 11	संचार की अभिरचना एवं प्रकार **Design and Types of Communication**	पृष्ठ – 156–165
इकाई 12	संचार निर्देशन **Directions of Communication**	पृष्ठ – 166–178
इकाई 13	संचार के अवरोधक या बाधाएं **Barriers of Communication and Crises Management**	पृष्ठ –179–195

इकाई– 1
सामाजिक मनोविज्ञान : एक परिचय
Social Psychology: an Introduction

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 परिचय
1.2 सामाजिक मनोविज्ञान
1.3 सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति
1.4 सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र
1.5 सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व
1.6 सार संक्षेप
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा कि–

- सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ एवं प्रकृति को बताना।
- सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र का वर्णन करना।
- सामाजिक मनोविज्ञान के उद्देश्यों एवं महत्व का वर्णन करना।

1.1 परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपनी विविध आवश्यकताओं के लिए मनुष्य दूसरे व्यक्तियों से, समूहों से, समुदायों से अन्तःक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। व्यक्ति के व्यवहार एवं समाज में गहरा सम्बन्ध होता है। सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्ध उनके परस्पर व्यवहार पर निर्भर करते हैं। मनुष्य के विचारों, व्यवहारों एवं क्रियाओं का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है। व्यक्ति का व्यवहार सर्वदा एक समान नही होता है। एक ही व्यक्ति कई रूपों में व्यवहार करता हुआ पाया जाता है। उसके विचार, भाव तथा व्यवहार विविध परिस्थितियों में प्रभावित भी होते रहते हैं। स्पष्ट है कि मानव व्यवहार के विविध पक्ष होते हैं। मनुष्य दूसरों के बारे में अलग–अलग तरह से सोचता तथा प्रभावित होता है। सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है। ऐतिहासिक रूप से इसके विकास में समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों का ही योगदान है।

प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ, परिभाषाओं, प्रकृति, विषय क्षेत्र, उद्देश्यों एवं महत्व को विश्लेषित करेंगे।

1.2 सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सामाजिक मनोविज्ञान में हम जीवन के सामाजिक पक्षों से सम्बन्धित अनेकानेक प्रश्नों के उत्तरों को खोजने का प्रयास करते हैं। इसीलिए सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करना सामान्य कार्य नही है। **राबर्ट ए. बैरन** तथा **जॉन बायर्न** (2004:5) ने ठीक ही लिखा है कि, 'सामाजिक

मनोविज्ञान में यह कठिनाई दो कारणों से बढ़ जाती है : विषय क्षेत्र की व्यापकता एवं इसमें तेजी से बदलाव।' सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार और विचार के स्वरूप व कारणों का अध्ययन करता है।'' ऐसा ही कुछ **किम्बॉल यंग** (1962:1) का भी मानना है। उन्होनें सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक अन्तक्रियाओं का अध्ययन करता है, और इस सन्दर्भ में कि इन अन्तःक्रियाओं का व्यक्ति विशेष के विचारों, भावनाओं संवेगो और आदतों पर क्या प्रभाव पड़ता है।''

शेरिफ और शेरिफ (1969 : 8) के अनुसार, ''सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक उत्तेजना–परिस्थिति के सन्दर्भ में व्यक्ति के अनुभव तथा व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।'' मैकडूगल ने सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जो समूहों के मानसिक जीवन का और व्यक्ति के विकास तथा क्रियाओं पर समूह के प्रभावों का वर्णन करता और उसका विवरण प्रस्तुत करता है।'' **विलियम मैकडूगल**, (1919 :2) **ओटो क्लाइनबर्ग** (1957 :3) का कहना है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान को दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित व्यक्ति की क्रियाओं को वैज्ञानिक अध्ययन कहकर परिभाषित किया जा सकता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं को देखते हुए हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि सामाजिक मनोवैज्ञानिक यह जानने का प्रयास करते हैं कि व्यक्ति एक दूसरे के बारे में कैसे सोचते हैं तथा कैसे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

1.3 सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। जब हम किसी भी विषय को वैज्ञानिक कहते हैं, तो उसकी कुछ विशेषताएँ (मूल्य) होती हैं, और उन विशेषताओं के साथ ही साथ उस विषय के अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न विधियाँ होती हैं, जिनका प्रयोग सम्बन्धित विषयों के अध्ययन में किया जाता है रौबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न (2004 : 6) ने इन विशेषताओं या विजकोष मूल्यों को इस प्रकार बताया है, किसी भी विषय के वैज्ञानिक होने के लिए वे आवश्यक हैं–

(1) यथार्थता
(2) विषयपरकता
(3) संशयवादिता और
(4) तटस्थता।

इन चारों को स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि –

यथार्थता से अभिप्राय दुनिया (जिसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवहार व विचार आता है) के बारे में यथासम्भव सावधानीपूर्वक, स्पष्ट व त्रुटिरहित तरीके से जानकारी हासिल करने एवं मूल्याँकन करने के प्रति वचनबद्धता से है।

विषयपरकता से तात्पर्य यथासम्भव पूर्वाग्रहरहित जानकारी प्राप्त करने एवं मूल्यांकन करने के प्रति वचनबद्धता से है।

संशयवादिता से तात्पर्य तथ्यों का सही रूप में स्वीकार करने के प्रति वचनबद्धता ताकि उसे बार–बार सत्यापित किया जा सके, से है ।

तटस्थता का अभिप्राय अपने दृष्टिकोण, चाहे वो कितना भी दृढ़ हो, को बदलने के प्रति वचनबद्धता से है, यदि मौजूदा साक्ष्य यह बताता है कि ये दृष्टिकोण गलत है।

सामाजिक मनोविज्ञान एक विषय के रूप में उपरोक्त मूल्यों से गहन रूप से सम्बद्ध है। विविध विषयों से सम्बन्धित अध्ययनों के लिए इसमें वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाता है।

हमने शुरू में सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषाएँ दी हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि यह विज्ञान समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों ही की विशेषताओं से युक्त है। वास्तव में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करने वाला यह एक महत्वपूर्ण विज्ञान है। इस सन्दर्भ में क्रच और क्रचफील्ड (1948 : 7) के अनुसार, ''समाज का अध्ययन करने वाले विज्ञानों में केवल सामाजिक मनोविज्ञान ही मुख्यतया सम्पूर्ण व्यक्ति का अध्ययन करता है। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों की अध्ययन वस्तु सामाजिक संगठन की संरचना एवं प्रकार्य तथा सीमित एवं विशिष्ट प्रकार की संस्थाओं के अन्तर्गत लोगों द्वारा प्रदर्शित संस्थागत व्यवहार ही है। दूसरी ओर सामाजिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध समाज में व्यक्ति के व्यवहार के प्रत्येक पक्ष से है। अतः मोटे तौर पर सामाजिक मनोविज्ञान को समाज में व्यक्ति के व्यवहार का विज्ञान कहकर परिभाषित किया जा सकता है।'' इसकी वास्तविक प्रकृति और वैज्ञानिकता की पुष्टि शेरिफ और शेरिफ (1956 : 5) के इस कथन से होती है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान केवल विभिन्न प्रकार की अवधारणाओं को अपना लेने के कारण ही 'सामाजिक' नही हो गया है, अपितु वास्तविकता तो यह है कि सामान्य मनोविज्ञान की प्रामाणिक अवधारणाओं को सामाजिक क्षेत्र में विस्तृत करके या उपयोग में लाकर ही सामाजिक मनोविज्ञान 'सामाजिक' विज्ञान बन पाया है।''

वास्तव में देखा जाये तो सामाजिक मनोविज्ञान में विज्ञान की सभी अवधारणाएँ, शर्ते या विशेषताएँ पायी जाती है, जैसे इसमें विषय वस्तु का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तरीके से वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाता है। आवश्यकतानुसार प्रयोशाला अध्ययन, क्षेत्रीय अध्ययन या क्षेत्रीय प्रयोग किया जाता है। इसमें कार्य–कारण सम्बन्धों की खोज की जाती है। वस्तुगतता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता पर जोर दिया जाता है। सम्बन्धित उपकल्पनाओं को निर्मित किया जाता है तथा उसकी सत्यता की जाँच प्राप्त तथ्यों के आधार पर की जाती है तथा उसी के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है तथा उसका प्रमाणीकरण भी होता है।

इस तरह से स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक प्रकृति है, क्योंकि यह विज्ञान के अन्य विषयों की तरह ही मूल्यों एवं विधियों को अपनाता हैं। यह एक आनुभविक विज्ञान है। सामाजिक मनोविज्ञान शोध के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं (टेलर तथा अन्य 2006 : 15) (1) कारक (2) कार्य–कारण विश्लेषण (3) सिद्धान्त निर्माण, और (4) उपयोग (एप्लीकेशन)।

1.4 सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र

सामाजिक मनोविज्ञान का विषय–क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें हम न केवल वैज्ञानिक व्यवहार, अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार अपितु समूह व्यवहार का भी अध्ययन करते हैं। एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक व्यवहार के सभी पक्षों के साथ–साथ उससे सम्बन्धित समस्याओं का भी अध्ययन करता है।

लैपियर और फार्न्सवर्थ (1949 : 7) का कहना है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञानों के सामान्य क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेषीकृत विज्ञान है, और उसके विषय–क्षेत्र को सुनिश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है; क्योंकि ज्ञान में वृद्धि होने के साथ–साथ उसमें भी परिवर्तन होगा ही। एक समय विशेष में जिन समस्याओं का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान करता है,

उन्हीं के आधार पर इसके अध्ययन के सामान्य क्षेत्र को सम्भवतः सबसे अच्छी तरह उजागर किया जा सकता है।''

वर्ष 1908 में **मैकडूगल** ने '**सोशल साइकोलॉजी**' नामक पुस्तक लिखी थी, तभी से यह माना जाता है कि इसका इतिहास प्रारम्भ हुआ है। स्पष्ट है कि इसका एक विज्ञान के रूप में इतिहास ज्यादा पुराना नही हैं, फिर भी यह देखा गया है कि इसके क्षेत्र में न केवल तीव्र वृद्धि हुई है अपितु विविध बदलाव भी आए हैं। इसके क्षेत्र के अन्तर्गत मनोविज्ञान की दूसरी विशिष्ट शाखाओं जैसे विकासात्मक मनोविज्ञान, असमान्य मनोविज्ञान, तुलनात्मक मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इत्यादि की भी बहुत सी सामगियाँ समाहित हैं। साथ ही, अन्य सामाजिक विज्ञानों विशेषकर समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र और अर्थशास्त्र इत्यादि की भी कुछ सामग्रियाँ इसमें सम्बन्धित हैं। ओटो क्लाइनबर्ग (1957 : 15–16) ने सामाजिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों के अध्ययन को सम्मिलित किया है।

(1) सामान्य मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान की व्याख्या

इसके अन्तर्गत अभिप्रेरणा, उद्वेगात्मक व्यवहार, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण शक्ति इत्यादि पर सामाजिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने के साथ ही साथ अनुकरण, सुझाव, पक्षपात इत्यादि परम्परागत सामाजिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के प्रभाव की भी अध्ययन करने की काशिश की जाती है।

(2) बच्चे का सामाजीकरण, संस्कृति एवं व्यक्तित्व

एक जैवकीय प्राणी किस प्रकार सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक प्राणी बनता है, यह इसके अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। संस्कृति और व्यक्तित्व के सम्बन्धों को भी ज्ञात किया जाता है। व्यक्तित्व के विकास में सामाजीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सामाजीकरण के विविध पक्षों एवं स्वरूपों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

(3) वैयक्तिक एवं समूह भेद

दो मनुष्य एक समान नहीं होते वैसे ही समूह में भी भेद पाया जाता है। वैयक्तिक भिन्नता तथा समूह भिन्नता के सामाजिक–मनोवैज्ञानिक कारणों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान का एक विषय क्षेत्र है।

(4) मनोवृत्ति तथा मत, सम्प्रेषण शोध, अन्तर्वस्तु विश्लेषण एवं प्रचार

मनोवृत्ति या अभिवृत्ति का निर्माण, मनोवृत्ति बनाम क्रिया, कैसे मनोवृत्ति व्यवहार को प्रभावित करती है? कब मनोवृत्तियाँ व्यवहार को प्रभावित करती है? इत्यादि के साथ साथ जनमत निर्माण, विचारों के आदान–प्रदान के माध्यमों, सम्प्रेषण अनुसंधानों, अन्तर्वस्तु विश्लेषण तथा प्रचार के विविध स्वरूपों एवं प्रभावों इत्यादि को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। समाज मनोविज्ञान सम्प्रेषण के विविध साधनों तरीकों, एवं प्रभावों का अध्ययन करता है।

(5) सामाजिक अन्तर्क्रिया, समूह गत्यात्मकता और नेतृत्व

सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र सामाजिक अन्तर्क्रिया, समूह गत्यात्मकता तथा नेतृत्व के विविध पक्षों एवं प्रकारों को भी अपने में सम्मिलित करता है।

(6) सामाजिक व्याधिकी– समाज है तो समााजिक समस्याओं का होना भी स्वाभाविक है। सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत सामाजिक व्याधिकी के विविध पक्षों एवं स्वरूपों का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया जाता है, जैसे बाल अपराधी, मानसिक असामान्यता, सामान्य अपराधी, औद्योगिक संघर्ष, आत्महत्या इत्यादि इत्यादि।

(6) घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

सामाजिक मनोविज्ञान में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक व्यवहारों का भी विशद अध्ययन किया जाने लगा है।

समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत अनेकानेक क्षेत्र आते हैं। समय के साथ–साथ नये–नये क्षेत्र इसमें समाहित होते जा रहे हैं। नेता अनुयायी सम्बन्धों की गत्यात्मकता, सामाजिक प्रत्यक्षीकरण, समूह निर्माण तथा विकास का अध्ययन, पारिवारिक समायोजन की गत्यात्मकता का अध्ययन, अध्यापन सीख प्रक्रिया की गत्यात्मकता इत्यादि, विविध क्षेत्र इसके अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत वह सब कुछ आता है, जिसका कि कोई न कोई सामाजिक–मनोवैज्ञानिक आधार हैं। रॉस (1925 : 7) का कहना है कि, ''सामाजिक मनोविज्ञान उन मानसिक अवस्थाओं एवं प्रवाहों का अध्ययन करता है जो मनुष्यों में उनके पारस्परिक सम्पर्क के कारण उत्पन्न होते हैं। यह विज्ञान मनुष्यों की उन भावनाओं, विश्वासों और कार्यों में पाये जाने वाले उन समानताओं को समझने और वर्णन करने का प्रयत्न करता है जिनके मूल में मनुष्यों के अन्दर होने वाली अन्तःक्रियाएं अर्थात् सामाजिक कारण रहते हैं।''

1.5 सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व

सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व वैश्वीकरण के इस दौर में निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण ने जो सामाजिक आर्थिक प्रभाव उत्पन्न किए हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो हम यह पाते हैं कि सामाजिक मनोविज्ञान उस समस्त परिस्थितियों, घटनाओं एवं समस्याओं का अध्ययन करता है, जो इनके कारण उत्पन्न हुई है।

सामाजिक मनोविज्ञान के महत्व को उसकी अध्ययन वस्तु के आधार पर अलग–अलग रूप से प्रस्तुत करके स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) व्यक्ति को समझने में सहायक

सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के सम्बन्ध में वास्तविक और वैज्ञानिक ज्ञान करवाता है। सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा ही संस्कृति और व्यक्तित्व में सम्बन्ध, सामाजीकरण, सीखने की प्रक्रिया, सामाजिक व्यवहार, वैयक्तिक विभिन्नताएँ, उद्वेगात्मक व्यवहार, स्मरण शक्ति, प्रत्यक्षीकरण, नेतृत्व क्षमता इत्यादि से सम्बन्धित वास्तविक जानकारी प्राप्त होती है। व्यक्ति से सम्बन्धित अनेकों भ्रान्त धारणाएँ इसके द्वारा समाप्त हो गई। समाज और व्यक्ति के अन्तर्सम्बन्धों तथा अन्तर्निर्भरता को उजागर करके सामाजिक मनोविज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया कि दोनों की पारस्परिक अन्तर्क्रियाओं के आधार पर ही व्यक्ति के व्यवहारों का निर्धारण होता है। समाज विरोधी व्यवहार के सामाजिक तथा मानसिक कारणों को उजागर करके उन व्यक्तियों के उपचार को सामाजिक मनोविज्ञान ने सम्भव बनाया है। वैयक्तिक विघटन से सम्बन्धित विविध पक्षों की जानकारी भी इसके द्वारा प्राप्त होती है। इतना ही नहीं उपयुक्त सामाजीकरण तथा व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के महत्व को भी सामाजिक मनोविज्ञान ने अभिव्यक्त करके योगदान किया है। सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तित्व के अलग–अलग प्रकारों तथा व्यक्ति विशेष के व्यवहार को समझने में योगदान करता है। अच्छे व्यक्तित्व का विकास कैसे हो, सकारात्मक सोच कैसे आये, जीवन में आयी निराशा तथा कुण्ठा कैसे दूर हो और इन सभी परिस्थितियों के क्या कारण हैं, को सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है और परिवर्तित किया जा सकता है। तनाव से बचाने में भी इसका योगदान है।

(2) माता–पिता की दृष्टि से महत्व

माता–पिता का संसार ही बच्चे होते हैं। प्रत्येक माता–पिता अपने बच्चों को संस्कारवान तथा स्वस्थ व्यक्तित्व वाला बनाना चाहता है। बच्चों के पालन–पोषण में, समाजीकरण में तथा व्यक्तित्व के विकास में किस प्रकार की परिस्थितियाँ ज्यादा उपयुक्त होंगी और इनके तरीके क्या हैं, कि वैज्ञानिक जानकारी सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा होती हैं। इसका यथेष्ट ज्ञान बच्चों को बाल अपराधी, कुसंग, मादक द्रव्य व्यसन, अवसाद इत्यादि से बचा सकता है।

(3) शिक्षकों के लिए महत्व

सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों को समझने तथा उनको पढ़ाने के उचित तरीकों को जानने में मदद मिलती है। सामाजिक–मनोवैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग द्वारा शिक्षक छात्रों में शिक्षा के प्रति रूचि पैदा कर सकता है। वही सामाजिक–मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति ही सक्षम शिक्षक की भूमिका में खरा उतर सकता है। परिवार सामाजिकरण की प्रथम पाठशाला है, वही विद्यालय द्वैतीयक सामाजीकरण की भूमिका अदा करता है। आज मानव विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राथमिक शिक्षा के लिए सरकार विविध प्रावधानों के द्वारा व्यापक प्रयास कर रही है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम द्वारा अधिक से अधिक बच्चों को विद्यालयी शिक्षा प्रदान करने की कोशिश की जा रही है। शिक्षकों से अधिकांश छात्रों के पंजीकरण, उनसे समुचित व्यवहार, उचित अध्यापन इत्यादि अपेक्षाएँ हैं। सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं तथा उनके निदान के उपायों की व्यापक जानकारी प्राप्त होती है।

(4) समाज सुधारकों एवं प्रशासकों के लिए

सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा समाज सुधारकों को तो लाभ प्राप्त होता ही है, यह प्रशासकों को भी विविध तरह से लाभ पहुँचाता है। समाज में व्याप्त विविध कुरीतियों, बुराईयों, विचलित व्यवहारों एवं आपराधिक गतिविधियों, समस्याओं, सामाजिक तनावों, साम्प्रदायिक दंगों, जातिगत दंगो, वर्ग संघर्षों इत्यादि के कारणों तथा उनको रोकने के उपायों की जानकारी सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन के द्वारा समाज सुधारकों तथा प्रशासकों को होती है, जिसके द्वारा उन्हें इन समस्याओं को दूर करने में सहायता मिलती है।

अक्सर अफवाहों के चलते न केवल सामाजिक तनाव फैल जाता है अपितु कानून और व्यवस्था की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है। सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन अफवाहों को समझने तथा उसके कारगर उपायों को अपनाने का ज्ञान प्रदान करता है।

(5) विज्ञापन एवं प्रचार की दृष्टि से महत्व

आज धन का महत्व बढ़ता ही चला जा रहा है। उद्योगपति अपने उत्पादों को जनसंचार के माध्यमों से विज्ञापनों द्वारा अधिक से अधिक प्रचारित प्रसारित कर रहे हैं। लोगों के मनोविज्ञान को समझकर न केवल उपभोक्तावाद को बढ़ावा दे रहे हैं अपितु उपभोक्ताओं पर मनोवैज्ञानिक दबाव भी डाल रहे हैं ताकि उनका उत्पाद अधिकाधिक बिके।

जनमत के महत्व को समझकर सरकार एवं राजनीतिज्ञ सक्रिय हैं। हाल ही में जनमत के चलते कई शासकों को सत्ता से बेदखल होना पड़ा है।

सामाजिक मनोविज्ञान का ज्ञान विविध सरकारी योजनाओं की जानकारी जन–जन तक पहुंचाने में सम्भव हो रहा है। प्रचार के महत्व को आज हम सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक जीवन के सभी पक्षों में महसूस कर रहे हैं।

(6) सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से महत्व

सामाजिक मनोविज्ञान का सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से भी खासा महत्व है। वैयक्तिक विघटन से लेकर युद्ध एवं क्रान्ति जैसी स्थितियाँ किसी भी राष्ट्र के लिए चिन्ताजनक हो सकती हैं। सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन न केवल व्यक्ति को अपितु समूह एवं समाज को तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को खतरा करने वाली विविध स्थितियों एवं कारकों का ज्ञान कराता है और उनके परिणामों के सन्दर्भ में सचेत करता है। सामाजिक मनोविज्ञान के अनुसन्धानों द्वारा व्यापक नीति–निर्माण में मदद मिलती है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच विभेदों, कटुता एवं कलुषता को दूर करने में सहायता मिलती है, वहीं युद्ध, क्रान्ति, पक्षपात, अफवाह एवं विविध प्रकार के तनाव को रोकने में भी मदद मिलती है। सम्पूर्ण राष्ट्र की भलाई की दृष्टि से सामाजिक मनोविज्ञान के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

आज उद्योगों में भी सामाजिक मनोविज्ञान के विविध पक्षों के जानकारों को रखा जा रहा है ताकि औद्योगिक सम्बन्ध शान्त तथा सौहार्द्रपूर्ण बना रहें श्रमिकों तथा कर्मचारियों की समस्याओं का भी सामाजिक–मनोवैज्ञानिक तरीकों से समाधान किया जा रहा है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक तकनीकों एवं प्रविधियों के प्रयोग द्वारा औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने में सफलता प्राप्त की जा रही है। नौकरशाहों में, प्रबन्धकों में तथा नेताओं में नेतृत्व की क्षमता वृद्धि के लिए भी इसका विशेष महत्व स्वीकार किया जा रहा है। यह कहना कदापि अनुचित न होगा कि मानवीय क्रियाकलापों की पहेली को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुलझाना आज की अनिवार्यता है।

1.6 सार संक्षेप

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है। इसके विकास में समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों का ही पर्याप्त योगदान है।

सामाजिक मनोविज्ञान का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति–व्यवहार है। संक्षेप में, यदि रौबर्ट ए. बैरन और डॉन बायर्न (2004 : 12) के शब्दों में कहा जाये तो हम कह सकते हैं कि; सामाजिक मनोविज्ञान मुख्य रूप से सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक विचार के कारणों, सामाजिक परिस्थितियों में हमारी भावनाओं, व्यवहार एवं विचार को निर्धारित करने वाले तत्वों की पहचान करने पर जोर देता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता है और इस बात का ध्यान रखता है कि सामाजिक व्यवहार एवं विचार पर विभिन्न सामाजिक, संज्ञानात्मक, वातावरणात्मक, सांस्कृतिक और जैविक तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है, जो कि यथार्थता, विषयपरकता, संशयवादिता तथा तटस्थता से युक्त है। सामाजिक मनोविज्ञान में विविध विधियों के द्वारा प्रामाणिक अध्ययन किया जाता है। सामाजिक–मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं– व्याख्या, कार्य–कारण विश्लेषण, सिद्धान्त निर्माण और उसका उपयोग विविध नीति निर्माण या समस्या समाधान हेतु।

सामाजिक मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मनोविज्ञान की अन्य विशिष्ट शाखाओं की भी बहुत सी सामग्रियाँ इसमें समाहित हैं। व्यक्ति व्यवहार–संगठित अथवा असंगठित, सामाजीकरण की प्रक्रिया, समूह तथा समूह व्यवहार, नेतृत्व तथा उसके पक्ष, मनोवृत्ति, रूढ़ियाँ, एवं पूर्वाग्रह, भीड़ व्यवहार, अभिप्रेरणा, संज्ञान, प्रत्यक्षीकरण, प्रचार, जनमत, अफवाह, भाषा तथा सम्प्रेषण, सामाजिक व्याधियाँ, आक्रमणशीलता, उग्र व्यवहार, साम्प्रदायिक एवं जातीय दंगे, भूमिका संघर्ष, फैशन इत्यादि–इत्यादि अनेकों विषयों का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है।

वैश्वीकरण के इस दौर में सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व जीवन के विविध क्षेत्रों में अत्यधिक बढ़ गया है। वैयक्तिक जीवन हो या सम्पूर्ण राष्ट्र का हित हो, सभी को यह प्रभावित करता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ को समझाइये ?
2. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति का वर्णन कीजिए ?
3. सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का वर्णन कीजिए ?
4. सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से सामाजिक मनोविज्ञान के महत्व का वर्णन कीजिए ?
5. सामाजिक मनोविज्ञान के उद्देश्यों एवं महत्व का वर्णन कीजिये?

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

Social Work Practice	स्माज कार्य अभ्यास	Projection	प्रक्षेपण
Mental Mechanism	मनोरचनायें	Introjection	अन्तःक्षेपण
Repression	छमन	Transference	स्थानान्तरण
Suppression	शमन	Displacement	विस्थापन
Inhibition	अन्तर्बाधा	Compensation	क्षतिपूर्ति
Regression	प्रतिगमन	Over compensation	अतिपूर्ति
Conversion	रूपान्तरण	Withdrawal	प्रत्याहार
Sublimation	डदातीकरण	Phantancy	कल्पना–तरंग
Rationalization	युक्तिकरण	Evation	प्लायन
Reaction formation	प्रतिक्रिया निर्माण	Negative	नकारात्मकता
Identification	आत्मीकरण	Experiment	प्रयोग

सन्दर्भ ग्रन्थ

- रॉबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न, सामाजिक मनोविज्ञान, 2004, नवम् संस्करण, प्रथम हिन्दी अनुवाद, पीयरसन एजुकेशन, पृ. 5।
- Kimball Young, A Handbook of Social Psychology, Routledge and Kegan Paul Ltd., London, 1962, p. 1.
- La Piere and Farnsworth, Social Psychology, Mc Graw-Hill Book Co., New York, 1949, p.7.
- Otto Klineberg, Social Psychology, revised edition, Henery Halt and Co. New York, 1957, p. 3.
- Ross, E.A. Social Psychology, Macmillan and Co., New York, 1925, p.7.
- Sharif M & C.W. Sharif, Social Psychology, a Harper International Edition, Jointly Published by Harper & Row, New York, Euanston & London and John Weatherhill, Inc. Tokyo, 1969, p. 8.
- William Mc Dougall, The Group Mind, Methuen, 1919, p. 2.Jackon, J.M. (1993) Social Psychology : Past and Present, Hills dale, NJ : Erlbaum.
- Semin, G. & Fiedler K. (1996) Applied Social Psychology, Thousand Oaks, CA : Sage.
- Taylor, Shelley E at el, Social Psychology, 2006, Pearson Education, Printed in India, Sheel Print N Pack, Delhi.

इकाई– 2

आधारभूत सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ
Basic Socio-Psychological Processes

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 परिचय
2.2 प्रत्यक्षीकरण
2.3 गुणारोपण
2.4 सीखना
2.5 सामाजीकरण
2.6 अभिप्रेरणा
2.7. अभिवृत्ति
2.8 पूर्वाग्रह
2.9 रूढ़ियुक्तियाँ
2.10 सार संक्षेप
2.11 अभ्यास प्रश्न
2.12 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए सम्भव होगा –

- प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को समझना एवं उसके प्रकारों के बारे में बताना।
- गुणारोपण की प्रक्रिया को समझना।
- संज्ञानात्मक प्रतिक्रियात्मक व्यवस्था– सीखना एवं विविध पक्षों से अवगत होना तथा इसके कारकों को बताना।
- सामाजीकरण की प्रक्रिया को समझना तथा इसके विविध अभिकरणों एवं

सिद्धान्तों को बताना।

- अभिप्रेरणा की अवधारणा, उसके पहलुओं एवं प्रकारों को समझना तथा जैविक एवं सामाजिक प्रेरकों में अन्तर को स्पष्ट करना।
- अभिवृत्ति के अर्थ एवं उसके निर्माण तथा परिवर्तन को समझना।
- पूर्वाग्रह के अर्थ को समझना एवं उसकी विशेषताओं एवं कारकों को स्पष्ट करना।
- रूढ़ियुक्तियों के अर्थ को समझना एवं उसकी विशेषताओं को बताना।

2.1 परिचय

प्रस्तुत अध्याय में प्रत्यक्षीकरण, गुणारोपण, सीखना, सामाजीकरण, अभिप्रेरणा, अभिवृत्ति, पूर्वाग्रह और रूढियुक्तियों को विश्लेषित किया गया है।

प्रत्यक्षीकरण के अर्थ को लेकर विद्वानों ने विविध विचार व्यक्त किए हैं। प्रत्यक्षीकरण संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है, वहीं अनेकों समाज मनोवैज्ञानिक इसे हस्तक्षेपीय या मध्यस्थ चर अथवा परिवर्त्य के रूप में देखते हैं। चैपलिन (1975) की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि, ''प्रत्यक्षीकरण एक मध्यवर्ती चर है, जिसका अनुमान उत्तेजनाओं के बीच प्राणी द्वारा विभेदीकरण की क्षमता से होता है।'' प्रत्यक्षीकरण में कई विशेषताएँ होती हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण और व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण को समान अर्थों में ही प्रयोग किया गया है। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व, शील–गुणों इत्यादि के आधार पर उसके प्रति बनायी जाने वाली धारणा या निर्णय को व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। इस धारणा या निर्णय निर्माण के कई कारक होते हैं।

गुणारोपण एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा किये गए व्यवहार के कारकों को खोजने का प्रयास करता है। यह एक द्विआयामी प्रक्रिया है, इसमें अन्य प्रत्यक्षीकरण के साथ ही साथ स्व–मूल्यांकन या प्रत्यक्षीकरण भी होता है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में हम अन्य व्यक्तियों को समझने का प्रयास करते हैं।

जन्म के समय शिशु एक जैवकीय प्राणी मात्र होता है। धीरे–धीरे समय के साथ–साथ वह विविध पारिवारिक लोगों एवं अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है। सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के द्वारा वह अपने व्यवहार को परिवर्तित करता है। व्यवहार में दूसरे के व्यवहार द्वारा परिवर्तन ही 'सीखना' है। इस दृष्टि से यह एक संज्ञानात्मक–प्रतिक्रिया व्यवस्था है। उल्लेखनीय है कि मनुष्य की प्रतिक्रियाओं में होने वाले सभी परिवर्तनों को सीखना नहीं कहते हैं, इनमें से कई परिवर्तन मूलतः एवं प्रमुखतः जैवकीय होते हैं। सीखने के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं भौतिक कारक होते हैं। मनुष्य कैसे सीखता है, सीखने के पीछे कौन–कौन से तत्त्व या कारक प्रभावी हैं, इसको विविध विद्वानों यथा थार्नडाईक, इवान पावलव और हॉल इत्यादि ने अपने–अपने सिद्धान्तों द्वारा स्पष्ट किया है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक अनुकूलन और व्यक्तित्व का विकास सामाजीकरण का प्रमुख प्रकार्य है। एक जैवकीय प्राणी जिस प्रक्रिया द्वारा सामाजिक प्राणी में परिवर्तित होता है, उसे सामाजीकरण कहा जाता है। परिवार, विद्यालय, पड़ोस, मित्र–समूह, समुदाय, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाएँ इत्यादि

सामाजीकरण के अभिकरण हैं। विविध विद्वानों ने जैसे कूले, मीड एवं फ्रायड ने सामाजीकरण को अपने –अपने सिद्धान्तों के द्वारा समझाने का प्रयास किया है।

अभिप्रेरणा किसी क्रिया को करने की उत्तेजनात्मक अवस्था है जो प्राणी को क्रिया की ओर उन्मुख करती हैं। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया हैं जिसमें एक व्यक्ति विशेष दिशा में अपनी क्रिया हेतु पहल करता है तथा तब तक क्रियाशील रहता है जब तक कि उद्देश्य प्राप्ति न हो जाये। यह जैविक (बायोजैनिक) या सामाजिक (सोशियोजैनिक) दोनों ही प्रकार की हो सकती है। फ्रायड, लेविन, आलपोर्ट, टालमैन, स्पेन्स इत्यादि विविध विद्वानों ने अभिप्रेरणा की सैद्धान्तिक व्याख्या की है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणाओं को मापने की कुछ प्रविधियों को भी विकसित किया है।

सामाजिक विश्व के किसी भी पक्ष का मूल्यांकन अभिवृत्ति होती है। ये जन्मजात नही होती अपितु सामाजिक सीख के द्वारा ग्रहण की जाती है। अभिवृत्ति के निर्माण में सामाजिक तुलना की प्रमुख भूमिका होती है। अभिवृत्तियों पर कुछ हद तक अनुवांशिक तत्त्वों के प्रभाव का वैज्ञानिक प्रमाण मिला है। अभिवृत्तियाँ बहुधा स्थायी प्रकृति की होती हैं, किन्तु विविध कारकों से परिवर्तित भी होती हैं। अभिवृत्ति और व्यवहार में भी अन्तर होता है। लॉ पियरे (1934) का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि लोगों की अभिवृत्तियाँ हमेशा उनके बाहरी व्यवहार में परिलक्षित नहीं होती हैं। अभिवृत्ति के अनुरूप व्यवहार न हो पाना स्पष्ट करता है कि दोनों में अन्तर होता है।

पूर्वाग्रह किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति विशेष प्रकार की मनोवृत्ति (बहुधा नकारात्मक) को कहते हैं। पूर्वाग्रह के अनेकों दुष्परिणाम होते हैं। इसके बने रहने के कई कारण होते हैं। पूर्वाग्रह और विभेदीकरण में अन्तर होता है। विभेदीकरण के अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति पूर्वाग्रह पर आधारित नकारात्मक क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि पूर्वाग्रह अपरिहार्य नहीं है, इसे अनेक तरीकों से कम किया जा सकता है। पूर्वाग्रह सामाजिक–आर्थिक विकास में बाधक का काम करता है। पूर्वाग्रह को मापने की कई विधियाँ हैं।

रूढ़ियुक्तियाँ एक धारणा है। अक्सर रूढ़ियुक्तियों एवं मनोवृत्ति में भ्रम की स्थिति होती है कि क्या वे दोनों एक ही हैं। रूढ़ियुक्तियों के आधार पर व्यक्तियों को एक निश्चित वर्ग या श्रेणी में विभाजित कर दिया जाता है। उस समूह से कुछ विश्वासों को सम्बद्ध कर दिया जाता है, और उन विश्वासों को आरोपित करने के प्रति सहमति होती है। यह समूह–स्वीकृत छवि या विचार है। एक समूह की दूसरे समूह के प्रति सम्मत धारणा रूढ़ियुक्तियाँ होती हैं। बहुधा रूढ़ियुक्तियाँ पूर्णत गलत या झूठी होती हैं। विविध कारकों के प्रभाव से रूढ़ियुक्तियाँ अर्जित की जाती हैं। सामाजिक जीवन में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि इनका सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव व्यक्ति और समाज पर पड़ता है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण के उपरान्त हम प्रत्येक प्रक्रिया को यहाँ अलग–अलग विश्लेषित करके स्पष्ट करेंगे।

2.2 प्रत्यक्षीकरण

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण एक प्रक्रिया है जिससे हम अन्य लोगों को समझने का प्रयास करते हैं। हमारे दैनिक जीवन में इसका विशेष स्थान है। समाज मनोविज्ञान में प्रत्यक्षीकरण पर गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं।

प्रत्यक्षीकरण एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है। समकालीन मनोवैज्ञानिक इसे मध्यस्थ (इण्टरविनिंग) चर या परिवर्त्य मानते हैं, क्योंकि यह संवेदी उत्तेजना तथा अनुभव (परिणामी संवेदना)

के मध्य घटित होता है। चैपलिन (1975) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''प्रत्यक्षीकरण एक मध्यस्थ चर है जिसका अनुमान उत्तेजनाओं के बीच मनुष्य द्वारा विभेदीकरण की क्षमता से होता है।''

अन्य लोग हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसलिए हम उन्हें समझने का बहुधा प्रयास करते हैं। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम अन्य व्यक्तियों को जानने एवं समझने का प्रयास करते हैं सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के नाम से जानी जाती है।

प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को हम एक छोटे बच्चे के उदाहरण से आसानी से समझ सकते हैं। नवजात शिशु धीरे–धीरे अपने आसपास के लोगों, वस्तुओं और घटनाओं को देखने और समझने लगता है। माता–पिता, भाई–बहन को देखना (प्रेक्षण) और उन्हें पहचानना (तादात्मीकरण) शुरू कर देता है। प्रारम्भिक प्रत्यक्षबोध इन्द्रियानुभूतियुक्त होता है, धीरे–धीरे सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में दूसरे व्यक्तियों को जानने के प्रयास की प्रक्रिया आती है। प्रत्यक्षीकरण से चूँकि हम दूसरे व्यक्तियों को जानने एवं समझने का प्रयास करते हैं इसलिए यह सामाजिक व्यवहार में मुख्य भूमिका निभाता है।

हम या तो वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं या मनुष्य का। जो प्रत्यक्षीकरण वस्तु से सम्बन्धित होता है उसे हम गैर–सामाजिक प्रत्यक्षीकरण कहते हैं और जो मनुष्यों से सम्बन्धित होता हैं उसे सामाजिक प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और सामाजिक प्रत्यक्षीकरण अलग–अलग हैं या दोनों एक ही हैं? वास्तविकता यह है कि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत दो प्रकार के प्रत्यक्षीकरण आते हैं– (i) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और (ii) स्व प्रत्यक्षीकरण।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य दूसरे व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण से है। हीडर (1958) का कहना है कि, 'व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य दूसरे व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण से है।' स्पष्ट है कि व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई छाप बनाता है या निर्णय करता है। इस प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति की विशेषताओं का आँकलन किया जाता है। चूँकि व्यक्ति की विशेषताएँ जैसे शीलगुण, प्रेरणा, अभिवृत्ति, बुद्धि इत्यादि अमूर्त विशेषताएँ होती हैं, इसलिए व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का सम्बन्ध भी अमूर्त विशेषताओं से होता है। अमूर्त विशेषताओं को व्यक्ति के व्यवहारों से अनुमानित किया जाता है, इसलिए व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में अशुद्धियों एवं पक्षपातों के घटित होने की संभावना रहती है। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में हम व्यक्ति के व्यवहार, शील गुण, बुद्धि इत्यादि के साथ–साथ उसमें अन्तर्निहित इरादे तथा प्रेरकों को भी समझने का प्रयास करते हैं, इसलिए यह एक जटिल प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया में निर्णय, गुणारोपण तथा सामाजिक संज्ञान जैसे प्रक्रियाएँ एक दूसरे को आच्छादित करती हैं।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के कई कारक या निर्धारक होते हैं। इन कारकों के या निर्धारकों के कारण ही लोग एक दूसरे के प्रति कोई धारणा बनाते या निर्णय करते हैं हम प्रत्यक्षीकरण के समस्त कारकों या निर्धारकों को निम्नांकित भागों में रख सकते हैं–

(i) उत्तेजना–कारक

(ii) प्रत्यक्षीकरणकर्त्ता निर्धारक

(iii) संज्ञानात्मक संरचना

(iv) सामाजिक संदर्भ।

उत्तेजना कारकों के अन्तर्गत शारीरिक संरचना एवं बनावट, शरीर के हाव–भाव एवं मुद्रा, आवाज एवं बोलने की गति, उच्चता, उतार–चढ़ाव, उच्चारण, वाणी दोष, मौखिक संकेत, मुखाकृति, पहनावा तथा प्रस्तुत होना आते हैं। किसी भी व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण करते समय हम उसकी

शारीरिक रचना एवं बनावट के आधार पर एक राय या धारणा बनाते हैं। इसी तरह शारीरिक सम्पर्क, निकटता, उठने–बैठने के तरीके, सुन्दरता इत्यादि का भी प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है। काली मोटी चमड़ी वालों को आक्रामक, गँवार एवं असंवेदनशील समझा जाता है। पहनावा तथा प्रस्तुत होने के तरीके के आधार पर भी विविध तरह का प्रत्यक्षीकरण होता है जैसे विशिष्ट तरह के पहनावे से व्यक्ति की धार्मिक सदस्यता का बोध होता है, वर्दी से ज्ञात होता है कि व्यक्ति फौज का है, पुलिस है, डॉक्टर है, स्कूली छात्र है या अन्य कुछ है।

प्रत्यक्षीकरणकर्ता निर्धारकों के अन्तर्गत संज्ञानात्मक क्षमता, स्टाईल एवं जटिलता, पूर्वाग्रह, दकियानूसी एवं उदारवाद, सत्तावादी शीलगुण, यौन विभिन्नता, उम्र इत्यादि कारक या निर्धारक आते हैं, जिनका प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है। संज्ञानात्मक क्षमता प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। बौद्धिक योग्यता व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का एक निर्धारक होती है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि संज्ञानात्मक जटिलता अधिक होने पर व्यक्ति दूसरों का प्रत्यक्षीकरण विशिष्ट ढंग से करता है और यदि यह कम होती है तो व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण भी सामान्य ही होता है। इस अर्थ में संज्ञानात्मक जटिलता और प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप में सहसम्बन्ध होता है। आधुनिक लोगों के प्रत्यक्षीकरण और परम्परावादी और दकियानूसी लोगों के प्रत्यक्षीकरण में पर्याप्त असमानता देखी जा सकती है। जिस किसी व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण करना हो और उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह हो (जैसे रूढ़िवादी ब्राह्मण द्वारा किसी दलित का प्रत्यक्षीकरण, घोर परम्परावादी हिन्दू द्वारा मुसलमान का प्रत्यक्षीकरण, नीग्रो के प्रति संकुचित विचार वाले गोरों का प्रत्यक्षीकरण इत्यादि) तो निश्चित रूप से प्रत्यक्षीकरण एक विशेष प्रकार (नकारात्मक धारणा या निर्णय) का होगा। इसी तरह से व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यक्षीकरण करने वाले की उम्र, लिंग इत्यादि का भी प्रभाव होता है और जिसका प्रत्यक्षीकरण किया जा रहा है उसकी उम्र, लिंग के आधार पर भी प्रत्यक्षीकरण प्रभावित हो सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण के अनेकानेक निर्धारक होते हैं।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण, छाप या धारणा निर्माण अथवा प्रत्यक्षीकरणकर्ता पर प्रभाव रूढ़ियुक्तियों, परिवेशगत प्रभाव की प्रवृत्तियों, विपरीत और समानता अशुद्धियों इत्यादि का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार के सभी निर्धारक संज्ञानात्मक संरचना का अंग होते हैं। जैसी व्यक्ति की संज्ञानात्मक संरचना होगी वैसा ही वह प्रत्यक्षीकरण करेगा। व्यक्ति के निर्णयों और प्रत्यक्षीकरण पर रूढ़ियुक्तियों का व्यापक प्रभाव पाया गया है। चैपलिन (1975) ने डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी में परिवेशगत प्रभाव (Halo effect) का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव को स्पष्ट किया है। उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, परिवेशगत प्रभाव वह प्रवृत्ति होती है जो व्यक्ति को किसी विशिष्ट शीलगुण के आधार पर अति उच्च या अति निम्न निर्धारित/मूल्यांकित करती है। इसी तरह से कुछ लोग जिस प्रकार से अपना मूल्यांकन करते हैं वैसे ही दूसरों का भी मूल्यांकन करते हैं और इसके विपरीत कुछ लोग जिस प्रकार अपना मूल्यांकन करते हैं, उसके विपरीत वे दूसरों का मूल्यांकन करते हैं। प्रत्यक्षीकरण के इन दोनों प्रकारों को समानता एवं विपरीत अशुद्धियों वाला प्रत्यक्षीकरण कहते हैं।

सामाजिक सन्दर्भ (सोशल कानटेक्स्ट) जैसे जाति, धर्म, सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति, धर्म, भूमिका श्रेणी इत्यादि का भी व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पाया गया है।

इसके अतिरिक्त भी कई अन्य कारक हैं जिनका प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है। लेवाइन और अन्य (1942) तथा मैकलेलैण्ड और एटकिन्सन (1948) ने जर्नल ऑफ सायकोलॉजी में अपने अनुसंधान के आधार पर यह प्रदर्शित किया है कि भोजन से वंचित होने का भी प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव पड़ता है।

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 31) के अनुसार, ''वैयक्तिक प्रत्यक्षबोध तीन प्रकार के कारकों पर आधारित होता है, यथा (i) उद्दीपन सूचना : उस व्यक्ति का शारीरिक रूप–रंग, उसकी अभिव्यंजना

और चाल–ढाल तथा वाणी, (ii) हमारे पिछले अनुभव और विचार तथा (iii) उस व्यक्ति के बारे में हमें दूसरों से प्राप्त सूचना का अनुस्मरण (re-call)।'' ऐसा प्रतीत होता है कि, 'दूसरे व्यक्तियों का शुद्ध मूल्यांकन करने के तीन पहलू हैं, यथा (i) जिस व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण किया जा रहा है (ii) वह स्थिति जिसमें उसका परीक्षण किया जा रहा है, और (iii) परीक्षणकर्ता का अपना कौशल। सम्भवतः एक कुशल निर्णायक वह है जो लोगों के व्यवहार के प्रेक्षण के आधार पर उनके बारे में निष्कर्ष निकाल सके और इन प्रेक्षणों को सामान्य सिद्धान्तों और धारणाओं के आधार पर औचित्य देख सकें।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के उपरोक्त समस्त विश्लेषण और विशेषकर उस पर पड़ने वाले प्रभावों के अनेकों कारकों को देखते हुए यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की यथार्थता नहीं होती तथा ये अकसर गलत होते होंगे। विविध विद्वानों यथा जेब्रोविट्ज व कॉलिन्स (1997), बेरी (1991), गिफ्फार्ड (1994), केनी व अन्य (1994), मैडॉन व अन्य (1998) इत्यादि ने अपने–अपने अध्ययनों से यह प्रमाणित किया है कि, सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की यथार्थता हमारे अनुमान से ज्यादा होती है यानि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण अक्सर सही होते हैं।

स्व प्रत्यक्षीकरण से तात्पर्य व्यक्ति का अपने प्रत्यक्षीकरण से है। व्यक्ति न केवल दूसरों का ही प्रत्यक्षीकरण करता है अपितु अपना भी करता है। वह अपने बारे में भी कुछ धारणाएँ बनाता है। स्व मूल्यांकन न केवल महत्वपूर्ण है अपितु अत्यन्त जटिल भी है। स्व मूल्यांकन की सकारात्मकता समायोजन को आसान बनाती है जबकि विपरीत स्थिति परेशानी पैदा कर सकती है। स्व–प्रत्यक्षीकरण को समझने में फेस्टिंगर (1954) का सामाजिक तुलना सिद्धान्त तथा बेम (1972) का अवलोकनात्मक सिद्धान्त सहायक है। सामाजिक तुलना सिद्धान्त का कहना है कि, भौतिक वास्तविकता और सामाजिक वास्तविकता के आधार पर व्यक्ति, तुलना करते हुए अपना मूल्यांकन करता है और स्व–प्रत्यक्षीकरण करता है। व्यक्ति अपने स्व (सेल्फ) का मूल्यांकन दूसरों से तुलना करके करता है। वहीं अवलोकनात्मक सिद्धान्त मानता है कि दूसरों के केस की तरह ही व्यक्ति अपने व्यवहारों का भी मूल्यांकन करते हुए एक धारणा (परोपकारी, उदार, चरित्रवान, कठोर, क्रोधी इत्यादि) बनाता है और स्व–प्रत्यक्षीकरण करता है।

2.3 गुणारोपण

गुणारोपण से तात्पर्य दूसरों के व्यवहार के कारणों को जानना है। बैरन एवं बायर्न (2004 : 45) ने लिखा है कि, ''दूसरों की मौजूद मनःस्थिति या भावनाओं का सही ज्ञान अनेक प्रकार से उपयोगी हो सकता है। जहाँ तक सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का सवाल है, यह ज्ञान केवल पहला चरण है। इसके साथ, हम साधारणतया दूसरों के टिकाऊ लक्षणों एवं उनके व्यवहार के पीछे के कारणों को, और जानना चाहते हैं।'' विगत कई दशकों से सामाजिक मनोवैज्ञानिक गुणारोपण पर शोधकार्य कर रहे हैं। उनके शोधों से विषय की गहनतम जानकारी उपलब्ध हो पायी है।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का एक मूलभूत प्रश्न यह है कि व्यक्ति ने एक खास तरह का व्यवहार 'क्यों' किया? उसके विशिष्ट या सामान्य व्यवहार का कारण क्या है? उसका स्थायी लक्षण और स्वभाव कैसा है? इन प्रश्नों की जानकारी प्रदान करने वाली प्रक्रिया गुणारोपण कहलाती है। बैरन एवं बायर्न (2004 : 45) इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''हम सिर्फ इतना ही नहीं जानना चाहते हैं कि दूसरा कैसे व्यवहार करता है, बल्कि हम यह भी जानना चाहते हैं कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। वैसी प्रक्रिया जिसके द्वारा हमें यह जानकारी मिलती है गुणारोपण कहलाती है। औपचारिक रूप से, गुणारोपण का अर्थ दूसरों के व्यवहार, एवं कभी–कभी अपने व्यवहार के पीछे निहित कारणों के बारे में जानने के हमारे प्रयास से है।'' इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि गुणारोपण के दो पक्ष हैं

(i) दूसरों के व्यवहार के कारणों को समझने का प्रयास, और

(ii) अपने व्यवहार के कारणों को जानने का प्रयास।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि गुणारोपण द्वि आयामी प्रक्रिया है–

(i) अन्य प्रत्यक्षीकरण

(ii) स्व–प्रत्यक्षीकरण।

मानवीय व्यवहार के 'क्यों' पक्ष से सम्बन्धित इस संज्ञानात्मक प्रक्रिया में व्यवहार के कारणों की खोज आन्तरिक या बाह्य कारकों के आधार पर की जाती है।

बैरॉन एवं बिर्ने ने अपनी पुस्तक 'सोशल सायकोलॉजी : अण्डरस्टैडिंग ह्युमन इण्ट्रैक्शन' (1991) में गुणारोपण प्रक्रिया में अनेकों त्रुटियों एवं पक्षपातों का उल्लेख किया है, जिससे उसकी वस्तुनिष्ठता प्रभावित होती है।

गुणारोपण के अनेकों सिद्धान्त हैं। यहाँ हम गुणारोपण के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

(1) जॉन्स व डैविस (1965) का सादृश्य अनुमान सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के अनुसार, हम दूसरों के व्यवहार के कुछ पहलुओं का अवलोकन करके उनके लक्षणों का अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं। इसमें दो निश्चित प्रकार की क्रियाओं पर ध्यान देते हैं– (i) हम केवल उस व्यवहार पर विचार करते हैं, जो स्वतन्त्र रूप से चुना गया हो। (ii) हम उन क्रियाओं पर सावधानीपूर्वक ध्यान देते हैं जो खास कारणों से (असमापवर्तक प्रभाव) उत्पन्न होती हैं। जॉन्स व डैविस का मानना है कि हमें दूसरों के बारे में अधिक जानकारी उनकी क्रियाओं, जिनमें असमापवर्तक प्रभाव दिखते हैं, से मिलती है। असमापवर्तक प्रभाव से तात्पर्य वैसे प्रभाव से है, जो एक खास कारण से न कि अन्य कारणों से उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त दो सूचनाप्रदाता क्रियाओं के अतिरिक्त एक और प्रकार की क्रिया पर ध्यान देने की बात जॉन्स व डैविस करते हैं। उनका कहना है कि हम दूसरों की उन क्रियाओं पर भी अधिक ध्यान देते हैं जो सामाजिक वांछनीयता में कम होती है। निम्न सामाजिक वांछनीयता वाला व्यवहार उस व्यक्ति के लक्षणों के बारे में एक महत्वपूर्ण गाईड होता है। अपेक्षित व्यवहार से विचलित व्यवहार की तरफ ध्यान जाना स्वाभाविक है, इसलिए यदि कोई जैसा कि उससे अपेक्षित है से अलग तरह का व्यवहार करता है तो हम उसके शीलगुणों के आधार पर गुणारोपण पर अधिक ध्यान देते हैं।

(2) केली (1972) का कारणात्मक गुणारोपण सिद्धान्त : केली के सिद्धान्त के अनुसार, 'हम दूसरे के व्यवहार के लिए अधिकांशतः आन्तरिक कारणों को उत्तरदायी ठहराते हैं जिसमें सामंजस्य एवं विभेदीकरण कम होता है लेकिन संगतता अधिक होती है। इसके विपरीत हम दूसरे के व्यवहार के लिए अधिकतर बाह्य कारणों, जिनमें तीनों– सामंजस्य, संगतता, विभेदीकरण– उच्च होते हैं, को जिम्मेदार ठहराते हैं। अन्त में, हम अक्सर दूसरे के व्यवहार के लिए आंतरिक एवं बाह्य कारणों के सम्मिश्रण जिसमें सामंजस्य कम लेकिन संगतता एवं विभेदीकरण अधिक होता है, को भी उत्तरदायी ठहराते हैं।

केली का सिद्धान्त गुणारोपण की प्रकृति के बारे में गहन अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है क्योंकि इसमें मूलभूत अवधारणाओं की पुष्टि विविध सामाजिक परिस्थितियों में की गयी है। उसने किसी के व्यवहार को समझने के लिए सूचना के तीनों स्रोतों सहमति , संगति तथा विशिष्टता से सम्बन्धित जानकारी पर जोर दिया है।

केली ने व्यवहार के 'क्यों' पक्ष की व्याख्या तीन कारकों–

- आंतरिक,

- बाह्य एवं
- दोनों कारकों का संयोग,

के आधार पर करते हुए उस परिस्थिति को भी स्पष्ट किया है जिसमें हम आंतरिक या बाह्य या दोनों ही कारकों का प्रयोग करते हैं। उसके अनुसार जब निम्न सहमति, उच्च संगति एवं निम्न विशिष्टता होती है, तो हम व्यवहार के आंतरिक कारकों (व्यक्तिगत शीलगुण, प्रेरणा, इरादा इत्यादि) का सहारा लेते हैं। जब उच्च सहमति, उच्च संगति तथा उच्च विशिष्टता युक्त व्यवहार होता है तो हम बाह्य कारणों (सामाजिक या भौतिक पर्यावरण के विविध पक्ष) पर बल देते हैं और जब निम्न सहमति, उच्च संगति तथा उच्च विशिष्टतायुक्त व्यवहार होता है तो व्यवहार की व्याख्या आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही (व्यक्तिगत शीलगुण तथा सामाजिक–भौतिक पर्यावरण के पक्ष) आधारों पर की जाती है।

बैरन और बिर्न (1991) ने केली के सिद्धान्त की व्यापक प्रशंसा की है। उनका मानना है कि उक्त सिद्धान्त में पर्याप्त तार्किकता है तथा यह सभी परिस्थितियों में व्यवहार के 'क्यों' पक्ष की समुचित व्याख्या करने में सक्षम है। तथापि उनका यह भी मानना है कि यह सिद्धान्त विविध जटिल प्रक्रियाओं युक्त है, अतः उसको संशोधित करने की जरूरत है।

उपरोक्त दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों के अतिरिक्त भी गुणारोपण के कई सिद्धान्त हैं जैसे शेवर (1975) का गुणारोपण सिद्धान्त, हिडर (1958) का सहज आरोपण सिद्धान्त, वेइनर (1993, 1995) का सिद्धान्त इत्यादि–इत्यादि।

गुणारोपण सिद्धान्त का अनेकानेक व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में प्रयोग किया जाता है। इससे यह तात्पर्य नहीं लगाया जाना चाहिए कि इसमें त्रुटियों की संभावना नहीं है। इसमें त्रुटियों के तीन स्रोत हैं– 1. सादृश्य अभिनति, 2. कर्त्ता– निरीक्षक प्रभाव और 3. स्वयं–सेवी अभिनति।

परिस्थितिजन्य कारणों से उत्पन्न क्रियाओं को आंतरिक स्वभाव से उत्पन्न मानना सादृश्य अभिनति कहलाती है। ऐसा करने की भूल अक्सर व्यक्ति से होती है।

अपने व्यवहार के लिए परिस्थितिजन्य (बाह्य) कारणों को जिम्मेदार ठहराना तथा दूसरे के व्यवहार के लिए आन्तरिक कारणों को जिम्मेदार ठहराने की प्रवृत्ति कर्त्ता–निरीक्षक प्रभाव सम्बन्धित त्रुटि का स्रोत है।

इसी तरह से अपने सकारात्मक परिणामों के लिए अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं, क्षमता एवं प्रयास (आंतरिक कारणों) और नकारात्मक परिणाम के लिए बाह्य परिस्थितिजन्य कारकों को जिम्मेदार ठहराना स्वयं–सेवी अभिनति के अन्तर्गत आता है।

उपरोक्त तीनों ही त्रुटियों के स्रोत को हम आसानी से अक्सर अपने व्यवहार की स्वयं करने वाली व्याख्या से समझ सकते हैं।

2.4 सीखना

सीखने की प्रक्रिया जन्म से ही शुरू हो जाती है। एक नवजात शिशु अपनी सहज प्रेरणा के आधार पर व्यवहार करता है, शनैः शनैः विविध, सामाजिक व्यवहारों को अपनाने लगता है। सामाजिक व्यवहार के गुण उसमें सीखने की प्रक्रिया के द्वारा ही आते हैं। विविध व्यवहारों का अर्जन (प्राप्त करना, अपनाना) सीखने की प्रक्रिया द्वारा ही होता है।

विविध विद्वानों ने सीखने को परिभाषित करते हुए उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। किम्बाल यंग (1957 : 34) ने लिखा है कि ''सामाजिक सीखना कुशलताओं, तथ्यों और मूल्यों को अर्जित करने की और संकेत करता है, और यह कार्य दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में रहकर अभ्यास के द्वारा किया जाता है।'' अन्यत्र वे लिखते हैं (किम्बाल यंग 1957 : 70) कि, सीखने को प्रत्युत्तर

व्यवस्था (रिसपॉन्स सिस्टम') में होने वाले परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो जानबूझकर या अचेतन जुड़ाव अथवा सम्बन्ध के कारण नई उत्तेजनाओं के फलस्वरूप होता है। सीखने का सम्बन्ध व्यक्ति की उत्तेजन–प्रत्युत्तर व्यवस्थाओं में होने वाले कतिपय परिवर्तनों से है। इसमें जैसा हम पहले करते थे से अलग करना आता है। सीखना व्यक्ति की समायोजन व्यवस्था में होने वाला वह परिवर्तन है, जो पर्यावरण में उत्पन्न होने वाली उत्तेजनाओं पर निर्भर है।''

किम्बॉल यंग की परिभाषा तथा व्याख्या से स्पष्ट है कि मनुष्य के प्रत्युत्तरों या प्रतिक्रियाओं में होने वाले सभी परिवर्तनों को सीखना नही कहते हैं। शारीरिक परिपक्वता या शारीरिक क्षीणता के कारण शरीर की एक खास प्रकार की क्रियात्मक प्रक्रिया सीखने के अन्तर्गत नहीं आती है। इसी तरह से बीमारी के कारण व्यवहार में परिवर्तन या नशे के कारण व्यवहार में परिवर्तन या दुर्घटना के कारण व्यवहार में परिवर्तन 'सीखना' के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

गिलफोर्ड (1965 : 343) ने सीखने की अत्यन्त संक्षिप्त एवं सटीक परिभाषा दी है। उनके अनुसार, 'सीखना व्यवहार के कारण व्यवहार में होने वाला कोई भी परिवर्तन है।'

सीखने की प्रक्रिया में नई क्रियाएँ आती हैं, और उन्हें पुनर्बलित किया जाता है। वुडवर्थ (1949 : 522) कहते हैं कि, 'सीखने के अन्तर्गत कुछ नया करना आता है, जैसे मनो–शारीरिक, भौतिक एवं सामाजिक।'

मनो–शारीरिक कारकों का तात्पर्य मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक कारकों से है। इसके अन्तर्गत हम सहज प्रेरणा, संकेत, प्रत्युत्तर, पुनर्बलन, प्रत्याशा, सामान्यीकरण, विभेदीकरण अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ, केन्द्रीय स्नायुमण्डल, रोग एवं स्वास्थ्य, लिंग भेद इत्यादि को विश्लेषित करते हैं।

सीखने की प्रक्रिया भौतिक कारणों से भी प्रभावित होती है। जलवायु, तापक्रम, प्रकाश की मात्रा इत्यादि के प्रभावों को सीखने की प्रक्रिया से जोड़कर देखा जाता है। जिस प्रकार मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक कुशलता विपरीत मौसम, तापक्रम एवं अन्य भौगोलिक एवं भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं, वैसे ही यह माना जाता है कि इनका प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर भी पड़ता हैं।

जहाँ तक सीखने के सामाजिक कारकों का प्रश्न हैं, इसके अन्तर्गत प्रशंसा, निन्दा, सामाजिक प्रोत्साहन माता–पिता एवं अन्यों के व्यवहार का अनुकरण, सहयोग, प्रतिस्पर्धा एवं सुझाव इत्यादि आते हैं। सामाजिक कारकों का महत्व होता है। सीखने की प्रक्रिया में हम यह पाते हैं कि एक जैवकीय शिशु सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होता चला जाता है। सीखने की एक अन्य प्रक्रिया जिसे हम सामाजीकरण के नाम से जानते हैं कि चर्चा हम आगे करेंगे।

2.5 सामाजीकरण

सामाजीकरण जैवकीय प्राणी को सामाजिक प्राणी में बदलने की एक प्रक्रिया है। यह सामाजिक जीवन के ढंग को या व्यवहार करने के तरीकों को सिखाता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया बच्चे के जन्म के साथ ही शुरू हो जाती है और आजीवन चलती रहती है। इस तरह एक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है।

जॉनसन (1961) कहते हैं कि, ''सामाजीकरण एक प्रकार का सीखना है, जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य करने के योग्य बनाता है।'' मेटा स्पेन्सर (1979) का कहना है कि, ''किसी दिए हुए सामाजिक समूह में व्यवहार के नियमों को सीखना एवं समुचित तरीके से पालन करने की प्रेरणा को अधिग्रहित करना सामाजीकरण की प्रक्रिया है। लेकिन सामाजीकरण के द्वारा लोग न केवल सांस्कृतिक निर्धारित आवश्यकताओं और प्रेरणाओं को अधिग्रहण करते हैं अपितु साथ ही व्यक्तित्व के अन्य बहुत से पक्षों को। वे भाषा, ज्ञान और कौशल, विशिष्ट आदर्शों एवं मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता और विविध भूमिका सम्बन्धों में कार्य करने की सक्षमता को अधिग्रहित करते हैं।'' इससे मिलते जुलते

विचार किम्बॉल यंग (1957) के भी है। उन्होंने लिखा है कि, ''सामाजीकरण . . . . व्यक्ति का सामाजिक और सांस्कृतिक विश्व से परिचय कराने, उसे समाज तथा उसके विभिन्न समूहों में एक सहभागी सदस्य बनाने तथा उस समाज के आदर्श नियमों तथा मूल्यों को स्वीकार करने को प्रेरित करने वाली प्रक्रिया है। . . . . निश्चित रूप से यह एक प्रकार का सीखना है और न कि जैवकीय विरासत। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जनरीतियों, रूढ़ियों, कानूनों तथा अपनी संस्कृति की अन्य विशेषताओं को, साथ ही साथ कौशल व अन्य आवश्यक आदतों को सीखता है, जो उसे समाज का एक क्रियाशील सदस्य बनने में सहायता करती है। इसी तरह वह विविध बाह्य समूहों के प्रति अपने समूह की प्रतिस्पर्धा एवं संचालनात्मक प्रत्युत्तरों को विकसित करता है। संक्षेप में सामाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया अन्तर्क्रिया या सामाजिक क्रिया के क्षेत्र के अन्तर्गत आती है।'' उपरोक्त विस्तृत एवं गहन परिभाषा से सामाजीकरण के सभी पक्षों पर प्रकाश पड़ता है।

गेराल्ड आर. लेस्ली और अन्य (1994) ने सामाजीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''सामाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग सीखते हैं कि सामाजिक व्यवस्था (सोशल आर्डर) से कैसे सामना किया जाये। इसके लिए उन्हें पर्यावरण से सम्बन्ध या व्यवहार करने के लिए उपयुक्त आदर्शों, मूल्यों, विश्वासों और ज्ञान को सीखना एवं स्वीकार करना पड़ता है। उन्हें समस्या समाधान के आधारभूत साधनों को सीखने की जरूरत पड़ती है जैसे अनुरूपता, संघर्ष, और समायोजन ।

सामाजीकरण को कभी–कभी व्यक्तित्व विकास से जोड़ा जाता है, लेकिन वास्तव में दोनों अलग–अलग अवधारणाएँ हैं। आलपोर्ट (1937 : 29-47) का कहना है कि व्यक्तित्व शब्द समाजशास्त्रीय के बजाय ज्यादा मनोवैज्ञानिक है, जिसमें प्रत्यक्षीकरण, सीखना, स्मरण–शक्ति और चिन्हीकरण जैसी चीजें सम्मिलित हैं। समाजशास्त्री व्यक्तित्व के उस भाग के विकास पर ज्यादा दृष्टिपात करते हैं जिसे ''सामाजिक स्व'' (social self) कहा जाता है। (गेराल्ड आर. लेस्ली व अन्य 1994 : 144)।

मानव समाजों में सामाजीकरण निर्णायक होता है। शिशु को सामाजिक प्राणी बनाना इसका उद्देश्य होता है। इसकी प्रक्रिया शिशु के जन्म के बाद से ही शुरू हो जाती है। बच्चा पारिवारिक सदस्यों के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए अपने 'स्व' का विकास करता है। 'स्व' या 'आत्म' को विकसित करते हुए एक बच्चा अपने अस्तित्व को समझता हुआ दूसरों से अन्तर्क्रिया करने लगता है। यह प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है और दीर्घकालीन प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के कई अभिकरण या साधन होते हैं यानि विविध संस्थाओं एवं समूहों के द्वारा व्यक्ति का सामाजीकरण होता है। इन समस्त अभिकरणों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं–

(i) प्राथमिक समूह, और

(ii) द्वैतीयक समूह।

परिवार, उम्र–समूह, पड़ोस, नातेदारी समूह, विद्यालय, मित्र मण्डली, इत्यादि **प्राथमिक समूह** हैं, जिनका व्यक्ति के सामाजीकरण में महत्वपूर्ण स्थान है।

सामाजीकरण **द्वैतीयक समूहों** द्वारा भी होता है। इसके अन्तर्गत जाति, वर्ग, राजनैतिक दल, धार्मिक समूह, भाषा समूह, सांस्कृतिक समूह एवं व्यावसायिक समूह इत्यादि आते हैं।

सामान्यतः **प्रारम्भिक सामाजीकरण परिवार में** होता है। शोधकर्ताओं ने यह पाया है कि परिवार की संरचना का बच्चे के सामाजीकरण में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए बड़े परिवारों में उत्पन्न बच्चे और बाद में पैदा हुए बच्चे उन बच्चों की अपेक्षा जो छोटे परिवारों में और पहले पैदा हुए होते हैं, वे अपने माँ बाप द्वारा कम ध्यान पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उपलब्धि, भाषा विकास

और सामान्यतः समायोजन उन बच्चों में कम सन्तोषजनक होता है जो बाद वाले होते हैं। बच्चे माता–पिता से निकट सम्पर्क स्थापित करते हैं और उनकी भावनात्मक सुरक्षा इस निकटता पर निर्भर करती है।

माता–पिता के स्नेह पूर्ण व्यवहार से उन्हें बहुत सी सीख मिलती है। इसी प्रकार के असामान्य व्यवहार करने वाले माता–पिता का बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। सामाजिक जीवन की बहुत सी बातों को बच्चे परस्पर खेल कर और अनुकरण कर सीख लेते हैं। परिवार में ही बच्चा प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, उदारता, साहस और धैर्य का पाठ सीखता है। ऐसे गुणों को सीखने के लिए परिवार का सकारात्मक माहौल मुख्यतः प्रभावी होता है। दूसरी तरफ घृणा, आत्म–ग्लानि, आत्महीनता, विद्रोह एवं झगड़ालू प्रवृत्ति इत्यादि तब उत्पन्न हो जाती है जब परिवार का माहौल नकारात्मक हो जैसा माता–पिता के सम्बन्ध कटु हों, पारिवारिक सदस्य असंयमी एवं झगड़ालू हों इत्यादि।

सामाजीकरण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है परिवार इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है, जिसका प्रभाव बच्चे पर जीवन पर्यन्त पड़ता रहता है। व्यक्ति के विचारों, दृष्टिकोणों, स्वभाव, आदर्शों–मूल्यों एवं आदतों पर परिवार के प्रभाव को देखा जा सकता है। बच्चा परिवार में ही खाना–खाने के तरीकों को सीखता है, परस्पर व्यवहार के तरीकों को सीखता है, कपड़ा पहनने से लेकर पारिवारिक प्रथा, परम्पराओं, रीति–रिवाजों इत्यादि सभी को सीखता और अनुकरण करता है।

थोड़ा बड़ा होने पर बच्चा अपने समकक्ष अन्य बच्चों के सम्पर्क में खेलने–कूदने के दौरान आता है। अलग–अलग पारिवारिक एवं सामाजिक– सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले बच्चों के साथ खेलते हुए वह समायोजन और अनुकूलन के गुणों को विभाजित करता है।

कुछ वर्षों के उपरान्त बच्चा विद्यालय जाना शुरू करता है फिर महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है। इस समय तक उसकी मानसिक क्षमताओं का विकास हो चुका होता है। उसका सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्ध विस्तृत होता है। व्यक्तित्व विकास में शिक्षकों और सहयोगी छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अनेकानेक अनुभवों से उसे गुजरना पड़ता है। विविध आवश्यक गुणों को वो अर्जित करता है।

कालान्तर में वह विविध व्यावसायिक समूहों, आर्थिक समूहों, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संस्थाओं के भी सम्पर्क में आता है। इन सभी संस्थाओं द्वारा भी उसका सामाजीकरण होता चलता है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती अवश्य है किन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में होता है और वह प्रमुखतः परिवार द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजीकरण में परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। सुझाव, अनुकरण, सहानुभूति, पुरस्कार और दण्ड, सहमति–असहमति तथा मजाक उड़ाना, इन सबका सामाजीकरण में योगदान होता है।

सामाजीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने विविध सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। हम यहाँ सामाजीकरण से सम्बन्धित तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

चार्ल्स कूले का **'आत्मदर्पण का सिद्धान्त'** ('लुकिंग–ग्लास सेल्फ') सामाजीकरण से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। कूले की रूचि इस बात को जानने में थी कि कैसे एक जैवकीय प्राणी सामाजिक मनुष्य बनता है। उसने यह महसूस किया कि इसमें सामाजीकरण की प्रक्रिया सम्मिलित है। जैवकीय प्राणी को संशोधित किया जाता है। यहाँ तक कि उसकी भूख और सेक्स की इच्छा को भी समाज द्वारा निर्धारित तरीके से परिवर्तित किया जाता है। जैवकीय प्राणी को माता–पिता या अन्य सामाजीकरण के अभिकरणों के द्वारा इन पाठों को पढ़ाया जाता है। कूले ने व्यक्ति के 'मूल व्यवहार'

को सामाजिक व्यक्ति में रूपान्तरित करने का विश्लेषण किया है जिसका अपने सदस्यता समूह के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं होता।

बच्चों में इस प्रकार की अवधारणा नहीं होती कि संसार उनसे अलग है; यह समझ भाषा सीखने से जुड़ी हुई है। बच्चे का पहली बार 'मेरा' कहना यह प्रदर्शित करता है कि उसमें अपने बारे में यह जागरूकता हो गयी है कि वह दूसरों से अलग हैं। 'मैं' और 'मुझे' उससे कुछ ऊपर की स्थिति होती है, जो यह प्रदर्शित करती है कि अब वह पूरी तरह से व्यक्ति के रूप में स्व–जागरूक हो गया है।

सामाजिक दर्पण समूह या समाज है जिसमें व्यक्ति यह कल्पना करता है कि कैसे उसे दूसरे देखते हैं। यह ऐसे है जैसे लोग किसी दर्पण (शीशे) के आगे खड़े हैं– सामाजिक दर्पण और उस दर्पण में दूसरे लोगों के उनके बारे में अनुमान को देख रहे हैं। दर्पण में देखने का परिणाम आत्म–दर्पण की अवधारणा है। कूले (1902 : 184) ने अपने आत्मदर्पण के सिद्धान्त में आत्म–विचार के तीन सैद्धान्तिक तत्वों का उल्लेख किया है– (i) अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रस्तुति की कल्पना; (ii) उस प्रस्तुति पर उसके निर्णय की कल्पना; और (iii) किसी प्रकार की स्व–अनुभूति, जैसे घमण्ड या अवमानना।

इस दृष्टि को बच्चों के उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। बच्चे अपने माता–पिता को देखते हुए यह सीखते हैं कि वे आकर्षक या घरेलू, पुरुषत्व गुणों वाले या स्त्री सरीखे, बुद्धिमान या बेवकूफ ताकतवर या कमजोर, स्वस्थ या बीमार इत्यादि–इत्यादि हैं। इस प्रत्यक्षीकरण के द्वारा बच्चे अपने बारे में छवि विकसित करते हैं। यदि माँ–बाप यह संकेत देते हैं कि वे आकर्षक, स्मार्ट और अच्छे हैं तो बच्चा संतुलित, आत्मविश्वासी और दृढ़ बनता है और यदि इसके विपरीत होता है, तो बच्चा व्याकुल या अकेला स्वीकृति के तरीकों को विकसित करता है।

जार्ज मीड ने **'सामान्यीकृत अन्य'** की अवधारणा विकसित करके सामाजीकरण का महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत किया। मीड ने सामाजिक–स्व के विकास के दो भागों को बताया है। पहले भाग का 'स्व' दूसरों की अभिवृत्तियों को स्वीकार कर विकसित होता है। दूसरा भाग मूल होता है और अप्रत्याशित भी होता है। पहले को उसने 'मुझे' (me) और बाद वाले को 'मैं' (I) कहा।

'मुझे' और 'मैं', ये दो जो सामाजिक स्व के अंग हैं, निरन्तर अन्तक्रिया करते रहते हैं। 'मुझे' स्व का अभिसामयिक हिस्सा है, यानि दूसरों की प्रत्याशाओं का व्यक्ति की भविष्यवाची प्रतिक्रिया'। दूसरे शब्दों में स्व का 'मुझे' हिस्सा, एक विषय है, जिसे दूसरे लोग प्रतिक्रिया करते और निर्णय करते हैं। अगर 'मुझे' स्व का समरूप, निष्क्रिय हिस्सा है तो 'मैं' क्रियाशील, सृजनात्मक हिस्सा। 'मैं' की शक्ति विशेष गुणों को प्रदर्शित करती है, 'मैं' व्यक्तित्व का विशिष्ट अंग होता है।

सिगमण्ड फ्रायड ने भी **'इद', 'अहम्'** और **'पराहम'** (इड, ईगो और सुपर ईगो) के आधार पर अपना सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कूले की अपेक्षा मीड के विचारों से फ्रायड की निकटता देखी जा सकती है। मीड की तरह ही, उसने 'स्व' को विविध अंगों में विभाजित किया। उसने यह देखा कि 'स्व' के सक्रिय हिस्से समाज के आदर्शों को स्वीकार करने वाले समनुरूप हिस्से से संघर्ष में रहते हैं।

'स्व' को तीन हिस्सों– **इद, ईगो** और **सुपर ईगो** (इद, अहम और पराहम) में बाँटते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इद पूर्णतः अचेतन होता है और स्व का अति प्रारम्भिक पहलू है। यह हमारी ऐन्द्रिक इच्छाओं, विशेषकर आक्रामकता और सेक्स के क्षेत्र में, को प्रतिनिधित्व करता है। इद से अलग अहम (ईगो) विकसित होता है जिसका मुख्य प्रकार्य इद को नियंत्रित करना होता है। प्रतीकात्मक–अन्तर्क्रियात्मक शब्दावली में 'अहम' वस्तुगत स्व है। 'पराहम' (सुपर ईगो) ज्यादातर

अचेतन रूप से विकसित होता है जब व्यक्ति समाज के मूल्यों और आदर्शों को व्यक्तित्व में उतारता है। स्व का यह पक्ष जब चेतनात्मक स्तर पर संचालित होता है तो अन्तःकरण कहलाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रिया अहम् तथा पराहम का विकास करती है। आत्मीकरण के आधार पर इड तथा अहम और पराहम का विभेदीकरण सम्भव होता है। मानव का मौलिक स्वभाव 'इड' है, जो ऐन्द्रिक इच्छाओं और तात्कालिक इच्छाओं का द्योतक है। वह पशुवत है। नैतिकता–अनैतिकता, सामाजिकता–असामाजिकता की चेतना को सामाजीकरण की प्रक्रिया जाग्रत करती है, अहम् और पराहम के विकास साथ भौतिक जगत की चेतना, वास्तविकता और व्यावहारिकता का ज्ञान तथा समाजानुरूप अन्य चेतनाओं का विकास सम्भव होता है।

उपरोक्त सभी सिद्धान्त सामाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में अपना–अपना योगदान करते हैं।

2.6 अभिप्रेरणा

किसी कार्य को करने के लिए बाह्य या आन्तरिक उत्तेजकों को अभिप्रेरणा कहा जाता है। पारसन्स ने भी सामाजिक क्रिया की अपनी अवधारणा में अभिप्रेरणा का उल्लेख किया है। उनके अनुसार किसी भी सामाजिक क्रिया के तीन पक्ष होते हैं– (i) कर्त्ता (ii) परिस्थिति और (iii) अभिप्रेरणा।

क्या अभिप्रेरणा मनः शारीरिक दशा है? क्या यह एक उत्तेजक है? क्या यह कोई आन्तरिक स्थिति है? इत्यादि। ऐसे विविध प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। हम इन प्रश्नों का उत्तर विविध विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर खोजने का प्रयास करेंगे।

गिलफोर्ड (1956) का कहना है कि 'अभिप्रेरणा कोई विशिष्ट आन्तरिक कारक या दशा है जो क्रिया की पहल करती है तथा उसे बनाए रखती है।' रेबर (1987) अभिप्रेरणा को उत्तेजन की एक अवस्था मानते हैं। डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी (1968) में ड्रीवर लिखते हैं कि, 'अभिप्रेरणा एक भावात्मक–क्रियात्मक कारक है, जो चेतन अथवा अचेतन रूप से व्यक्ति के व्यवहार को किसी उद्देश्य या लक्ष्य की ओर निर्धारित करने का कार्य करती है।'

हिलगार्ड (1979) ने अभिप्रेरणा के तीन प्रमुख पक्षों– आवश्यकता, प्रणोदन तथा प्रोत्साहन के आधार पर इसे विश्लेषित करते हुए, इनके बीच के गहरे सम्बन्ध को उजागर किया है। उन्होंने अभिप्रेरणात्मक चक्र को एक अन्तर्सम्बन्धित सूत्र–आवश्यकता– प्रणोदन–प्रोत्साहन सूत्र ('नीड–ड्राईव–इनसेन्टिव फार्मूला') द्वारा स्पष्ट किया है।

व्यक्ति की अभिप्रेरणाएं या तो जैविक प्रेरकों से अथवा सामाजिक–अर्जित प्रेरकों से सक्रिय होती हैं। शेरीफ एवं शेरीफ (1956 : 367) ने भी ऐसे विभाजन द्वारा अभिप्रेरणा को स्पष्ट किया है। मनुष्य में सफलता प्राप्त करने या असफलता से बचने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसे उपलब्धि प्रेरकों के अन्तर्गत विश्लेषित किया जाता है, इसका प्रभाव मानव व्यवहार एवं क्रिया पर पड़ता है। सभी मनुष्यों में उपलब्धि प्रेरक एक समान नहीं होते, इनके विकास पर विविध कारकों का यथा पालन–पोषण, मानसिक क्षमता इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। किसी समाज के विकास में उस समाज के लोगों में उपलब्धि प्रेरकों की प्रबलता सकारात्मक प्रभाव डालती है।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति की अभिप्रेरणाओं को मापने के लिए कई प्रविधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त की है। अभिप्रेरणाओं की माप या तो व्यक्ति की क्रियाओं के आधार पर की जा सकती है या परिस्थितिजन्य परीक्षणों के आधार पर की जा सकती है। प्रश्नावली प्रविधि और प्रक्षेपी तकनीकों का भी अभिप्रेरणा मापन में प्रयोग किया जाता है। यह अलग बात है कि इनकी शत–प्रतिशत वैधता पर प्रश्नचिन्ह लगता रहा है।

अभिप्रेरणा से सम्बन्धित कई सिद्धान्त है। इनमें से– मनोविश्लेषण सिद्धान्त (फ्रायड), क्षेत्र सिद्धान्त या गेस्टाल्ट सिद्धान्त (कर्ट लेविन), प्रकार्यात्मक–स्वायतता सिद्धान्त (जॉन डीवी, ऑलपोर्ट), तथा आत्म–कार्यान्वयन सिद्धान्त (मैस्लो) विशेष महत्वपूर्ण हैं।

2.7 अभिवृत्ति

सामाजिक विश्व के किसी भी पक्ष का मूल्यांकन अभिवृत्ति होती है। सामाजिक सीख के द्वारा मनुष्य अभिवृत्तियों को ग्रहण करता है। स्पष्ट है कि ये जन्मजात नहीं होती हैं। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि विद्वानों ने अपने अध्ययनों द्वारा यह प्रमाणित किया है कि अभिवृत्ति पर आनुवंशिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। अभिवृत्ति निर्माण सामाजिक सीख एवं सामाजिक तुलना के द्वारा होता है और बहुधा इनकी प्रकृति स्थायी होती है। किन्हीं कारकों के परिणामस्वरूप इनमें परिवर्तन भी परिलक्षित होते हैं जैसे सोच और अनुभव में असंगति।

हमारी अधिकांश अभिवृत्तियाँ उस समूह से विकसित होती हैं, जिनसे हम सम्बद्ध होते हैं। बाल्यावस्था से ही हम विविध लोगों के सम्पर्क में आने लगते हैं और व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर अभिवृत्ति निर्मित करते चले जाते हैं। इसे और भी स्पष्ट करते हुए बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 110) ने लिखा है कि, ''हमारी अभिवृत्तियाँ प्राथमिक रूप से सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न होती है। जन्म से ही मानव प्राणी ऐसी सामाजिक संस्थाओं के जाल में उलझ जाता है, जो भौतिक जगत के रूप में उसके परिवेश का निर्माण करती हैं। प्रथम सामाजिक इकाई के रूप में घर का किसी व्यक्ति के अभिवृत्ति निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि बाद में प्राप्त होने वाले अनुभव आसानी से हम अभिवृत्तियों में बदल नहीं सकते क्योंकि अभिवृत्तियाँ व्यक्तियों, समूहों और अन्य सामाजिक वस्तुओं के प्रति हमारी अनुक्रियाओं को एक संगति प्रदान करती है, इसका भी यही कारण है।

रिचर्ड टी ला पियरे ने अपने अध्ययन से प्रमाणित किया कि अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर होता है। अभिवृत्ति अनेक तन्त्रों से मानव व्यवहार को प्रभावित करती है। अभिवृत्ति की तीव्रता सभी व्यक्तियों में एक समान नहीं होती है।

अभिवृत्ति से सम्बन्धित विस्तृत विवरण ब्लॉक 2 की इकाई पाँच में दिया गया है।

2.8 पूर्वाग्रह

पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति है, जिसमें किसी समूह या उसके सदस्य के प्रति नकारात्मक भाव होता है। एक खास धर्म के लोगों के प्रति हमारी विशिष्ट सोच, महिलाओं के प्रति हमारा नजरिया, एक जाति विशेष के प्रति हमारा नकारात्मक दृष्टिकोण पूर्वाग्रह का ही उदाहरण। पूर्वाग्रह में साधारणतया नकारात्मक मनोवृत्ति ही देखी जाती है किन्तु कुछ विद्वानों ने इसकी सकारात्मक मनोवृत्ति को भी महत्व दिया है। दैनिक बोलचाल की भाषा में हम 'पूर्वाग्रह' और विभेदीकरण को समानार्थक शब्दों के रूप में प्रयोग करते हैं। वास्तविकता यह है कि इन दोनों में अन्तर है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'पूर्वाग्रह का अर्थ किसी खास समूह के सदस्यों के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति– साधारणतया नकारात्मक होती है। इसके विपरीत विभेदीकरण का अर्थ उन व्यक्तियों के प्रति नकारात्मक क्रियाएँ– मनोवृत्ति का व्यवहार में रूपान्तर होना है।' (बैरन एवं बायर्न 2004 : 185)। स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह एक नकारात्मक अभिवृत्ति/मनोवृत्ति है, जबकि विभेदीकरण नकारात्मक व्यवहार।

कुप्पुस्वामी (1975 : 150) के अनुसार, 'पूर्वाग्रह को एक सामाजिक रूप से सुनिश्चित समूह के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।' आगबर्न (1922 : 17) ने इसे

जल्दबाजी में किया गया निर्णय माना है, जो उपयुक्त परीक्षण के बगैर अस्तित्व में आ जाता है। शेरीफ और शेरीफ (1956 : 648) ने भी इसकी नकारात्मक मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला है।

किसी समूह के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति व्यक्ति के स्थापित आदर्शों का प्रतिफल होती है। उन्हीं स्थापित आदर्शों के आधार पर वह किसी के प्रति पूर्व निर्णय कर देता है। स्वाभाविक है कि पूर्वाग्रह में न केवल जल्दबाजी होती है अपितु वे अतार्किक भी होते हैं। पूर्वाग्रह निर्माण पर प्रकाश डालते हुए किम्बॉल यंग (1948 : 258) ने लिखा है कि, 'पूर्वाग्रह रूढ़ियुक्तियों, लोक गाथाओं एवं पौराणिक कथाओं के संगठन से बनता है, जिसमें एक व्यक्ति या समग्र रूप में एक समूह का वर्गीकरण करने, उसकी विशेषता स्थापित करने तथा परिभाषित करने के लिए समूह–संज्ञा या प्रतीक का प्रयोग किया जाता है।'

पूर्वाग्रह का आधार बुरी उन्मुखता होता है, इसीलिए सामान्यतः ये नकारात्मक, कठोर, अ–लचीले, अतार्किक होते हैं। यह बगैर तथ्यों पर आधारित विशिष्ट मत या विश्वास होता है। पूर्वाग्रह को स्वाभाविक बैर भाव माना जाता रहा है, अब इसकी अर्जित प्रवृत्ति को मनोवैज्ञानिकों ने उजागर किया है। पूर्वाग्रह की उत्पत्ति के विरोधास्पद परिप्रेक्ष्य को अत्यन्त स्पष्ट रूप से बैरन और बायर्न (2004 : 215–216) ने प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि, पूर्वाग्रह विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होता है। इनमें एक है प्रत्यक्ष अन्तर्समूह संघर्ष– वैसी स्थितियाँ जिनमें सामाजिक समूह एक ही अल्प संसाधनों को पाने के लिए प्रतियोगिता करते हैं। पूर्वाग्रह का दूसरा आधार है पूर्व अनुभव, जो प्रायः बच्चों को विभिन्न समूहों से घृणा करने के लिए प्रशिक्षित करता है। पूर्वाग्रह विश्व को ''हमारे'' व ''उनके'' में बाँटने एवं अपने समूह को विभिन्न बाह्य समूहों की तुलना में अधिक सकारात्मक रूप से देखने की हमारी प्रवृत्ति से भी पैदा होता है। पूर्वाग्रह कभी–कभी सामाजिक संज्ञान के मूलभूत पहलू से पैदा होता है।

पूर्वाग्रह में स्थिरता और दृढ़ता पायी जाती है किन्तु इनमें परिवर्तन सम्भावित है। लोगों को विशिष्ट रूप के लिए अभिप्रेरित करके, संज्ञानात्मक प्रविधियों का प्रयोग करके, पुनवर्गीकरण करके या अन्य विविध तरीकों के प्रयोग द्वारा पूर्वाग्रह में बदलाव लाया जा सकता है। बेटलहाइम (1964) का कहना है कि, आर्थिक और सामाजिक प्रणालियों के कष्टप्रद पहलुओं में सुधार होने से भी पूर्वाग्रह के सक्रिय कारण को दूर किया जा सकता है। लक्षण सम्बन्धी सिद्धान्तकारों की यह मान्यता है कि मनश्चिकित्सा, अन्तर्दृष्टि का प्रशिक्षण, शिशु पालन सम्बन्धी तरीकों में परिवर्तन और व्यक्तित्व के आन्तरिक द्वन्दों को कम करने वाली प्रविधियों के प्रयोग द्वारा 'पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है। पूर्वाग्रह के सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रचार एवं शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है, जिससे पूर्वाग्रह को कम करने में मदद मिलती है।

29. रूढ़ियुक्तियाँ

सामाजिक मनोविज्ञान में **'रूढ़ियुक्ति'** का **सर्वप्रथम प्रयोग वाल्टर लिपमैन ने** वर्ष 1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक '**पब्लिक ओपीनियन**' में किया था। उन्होंने इसको 'हमारे मस्तिष्क के चित्रों' के रूप में अभिव्यक्त किया था।

रूढ़ियुक्ति और पूर्वाग्रह में अन्तर है। पूर्वाग्रह कभी–कभी सामाजिक संज्ञान के मूलभूत पहलू से पैदा होता है। रूढ़ियुक्तियाँ संज्ञानात्मक ढाँचे होती हैं। आधुनिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि रूढ़ियुक्तियाँ पूर्वाग्रह से अत्यधिक जुड़ी होती है। बच्चे पूर्वाग्रह और रूढ़ियुक्तियों के साथ पैदा नहीं होते वे उसे परिवार, दोस्तों, जनसंचार और आसपास के समाज से सीखते हैं।

किम्बॉल यंग (1957 : 189) के अनुसार 'रूढ़ियुक्ति एक मिथ्या वर्गीकरण करने वाली अवधारणा है, जिसके प्रति रूचि या अरूचि, स्वीकृति या अस्वीकृति की तीव्र संवेगात्मक अनुभूति जुड़ी रहती है।' समूह के द्वारा स्वीकृत इसकी अभिव्यक्ति प्रायः मौखिक रूप से होती है। जूड़, रयान व पार्क (1991) ने रूढ़ियुक्तियों को वैसे संज्ञानात्मक ढाँचे के रूप में माना है जिनमें विशेष सामाजिक समूहों के बारे में जानकारी व विश्वास एवं इन समूहों से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों के विशिष्ट लक्षण शामिल हैं। दूसरे शब्दों में इसे स्पष्ट करते हुए बैरन एवं बायर्न (2004 : 197) ने लिखा है कि, 'रूढ़ियुक्तियों (स्थिराकृति) से पता चलता है कि सामाजिक समूह से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोगों में निश्चित लक्षण कुछ न कुछ अवश्य होता है। एक बार स्थिरकृति (रूढ़ियुक्ति) क्रियाशील हो जाने पर ये लक्षण दिमाग में अपने आप आ जाते हैं।' हम विविध समूहों जैसे चीनी, जापानी, हिप्पी, बेघर, समलैंगिक इत्यादि के लक्षणों को रूढ़ियुक्तियों के आधार पर ही बता पाते हैं, भले ही हमारा इनके साथ सीमित सम्बन्ध हो या कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध न हो। पूर्वाग्रह में रूढ़ियुक्तियों की भूमिका होती है। हम किस प्रकार सामाजिक सूचना की प्रक्रिया करते हैं, पर रूढ़ियुक्तियाँ गहरा प्रभाव डालती हैं। कावाकामी, डियोन व डोविडियो (1998) ने अपने अध्ययन से यह सिद्ध किया कि रूढ़ियुक्तियाँ पूर्वाग्रह से सम्बन्धित होती हैं।

एक बार रूढ़ियुक्ति निर्मित हो जाने पर हमारी उनसे सम्बन्धित जानकारी की प्रक्रिया का तरीका प्रभावित होता है। जब हम वैसी सूचना पाते हैं जो रूढ़ियुक्ति से असंगत हो, तो हम ऐसा अनुमान लगाते हैं जिससे सूचना रूढ़ियुक्ति से मेल खाये।

बैरन एवं बायर्न (2004 : 198) ने अपने इस कथन को निम्नांकित
चित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है–

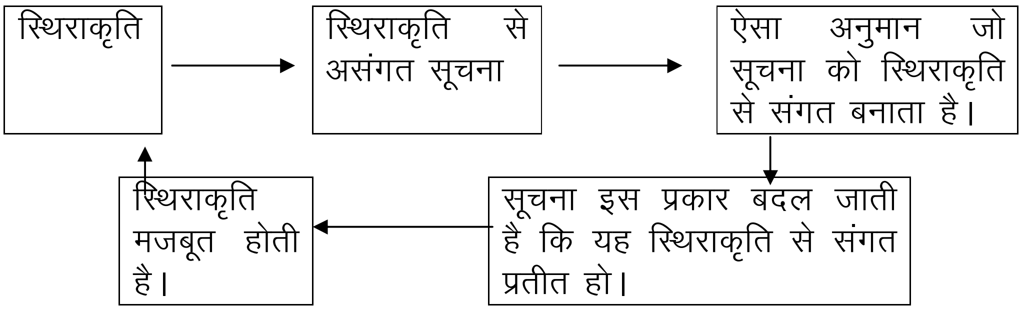

रूढ़ियुक्तियाँ मानस पर बनी धारणा या चित्र हैं जो किसी समूह के प्रति विशिष्ट शीलगुणों या विशेषताओं का निर्धारण कर लेती हैं। इस अतिरंजित धारणा में परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध पाया जाता है और ये सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही हो सकती हैं। विद्वानों का ऐसा मानना है कि इनसे पूर्ण सत्यता का बोध नहीं होता, ये घोर अतिरंजित होती हैं। नवीनतम शोधों से ज्ञात होता है कि इनका पूर्वाग्रह से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। अत्यधिक पूर्वाग्रही व्यक्ति निम्न पूर्वाग्रहियों की तुलना में रूढ़ियुक्ति सम्बन्धित शब्दों के प्रति तीव्र अनुक्रिया करते हैं।

भारतीय समाज में महिलाओं के साथ पूर्वाग्रह देखा जा सकता है। जेण्डर' रूढ़ियुक्तियाँ पुरुषों एवं महिलाओं के अन्तर को बढ़ाती हैं। महिलाओं के कम वांछनीय गुणों की चर्चा 'जेण्डर' रूढ़ियुक्तियों का परिणाम हैं, जिसका महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

विविध तरीकों (जैसे नजर अन्दाज करके) से रूढ़ियुक्तियों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। विद्वानों का कहना है कि सकारात्मक प्रत्यक्षीकरण के लिए ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जाने

चाहिए ताकि पूर्व धारित विश्वासों को कम किया जा सके और व्यक्तियों के सन्दर्भ में हमारे निर्णय पक्षपात रहित हों।

2.10 सार संक्षेप

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से हमें आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की गहन जानकारी प्राप्त होती है। उपरोक्त पृष्ठों में आपने सामाजिक प्रत्यक्षीकरण जैसी संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया को समझा होगा जिससे हम अन्य व्यक्तियों को जानने एवं समझने का प्रयास करते हैं। आपको स्पष्ट हुआ होगा कि हम सामाजिक प्रत्यक्षीकरण (मनुष्यों का) के साथ–साथ गैर सामाजिक (वस्तुओं का) प्रत्यक्षीकरण भी करते हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण में हम व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और प्रत्यक्षीकरण को विश्लेषित करते हैं।

हमने सीखने की प्रक्रिया को भी समझने का प्रयास किया है, जिससे ज्ञात होता है कि इस संज्ञानात्मक–प्रतिक्रिया में दूसरे के व्यवहार से अपने व्यवहार में परिवर्तन होता है। शिशु में सीखने की प्रक्रिया दूसरों के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए होती है। सीखना किसी भी प्रकार का हो सकता है लेकिन जब यह सीखना पारिवारिक एवं सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप हो और व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और सामाजिक अनुकूलन के गुण से युक्त हो तो सामाजीकरण कहलाता है। जीवन पर्यन्त चलने वाली यह प्रक्रिया एक जैवकीय प्राणी (शिशु) को सामाजिक प्राणी बनाती है।

हमने अभिप्रेरणा और अभिवृत्ति को भी समझने का प्रयास किया है। अभिप्रेरणा बहुआयामी प्रक्रिया होती है जो व्यक्ति को क्रियान्मुख करती है। सामाजिक सीख से ग्रहण की जाने वाली अभिवृत्ति का जन्म सामाजिक तुलना से होता है। इनमें और व्यवहार में अन्तर होता है। मूल्यांकन से सम्बन्धित होने के बावजूद ये हमेशा ही बाह्य व्यवहार में परिलक्षित नहीं होती है।

हमने पूर्वाग्रह और रूढ़ियुक्तियों के विश्लेषण द्वारा यह जाना कि किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति एक विशेष प्रकार की (बहुधा नकारात्मक) मनोवृत्ति पूर्वाग्रह होती है। इसकी तीव्रता व्यक्तियों में कम या अधिक मात्रा में पायी जाती है। इसके अनेकों दुष्परिणाम होते हैं, यद्यपि विविध तरीकों से इसमें परिवर्तन लाया जा सकता है। पूर्वाग्रह और विभेदीकरण में अन्तर होता है। पूर्वाग्रह में रूढ़ियुक्तियों की भूमिका होती है। बच्चे पूर्वाग्रह और रूढ़ियुक्तियों को परिवार, मित्रों और समाज से सीखते हैं। इस दृष्टि से स्पष्ट है कि ये दोनों जन्मजात नहीं होती। रूढ़ियुक्ति और पूर्वाग्रह में अन्तर से यह अर्थ नही निकालना चाहिए कि वे आपस में जुड़ी नहीं होती हैं। जेन्डर रूढ़ियुक्तियों के प्रभाव को महिलाओं के साथ पूर्वाग्रह के रूप में देखा जा सकता है।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को समझाइये ?
2. प्रत्यक्षीकरण के प्रकारों के बारे में बताइये ?
3. प्रत्यक्षीकरण में गुणारोपण की प्रक्रिया को समझाइये ?
4. प्रत्यक्षीकरण में संज्ञानात्मक प्रतिक्रियात्मक व्यवस्था का वर्णन कीजिये ?
5. सीखना के विविध पक्षों एवं इसके कारकों की व्याख्या कीजिये ?
6. सामाजीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिये ?
7. सामाजीकरण के विविध अभिकरणों एवं सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये ?
8. अभिप्रेरणा की अवधारणा की व्याख्या कीजिये ?

9. अभिप्रेरणा के पहलुओं एवं प्रकारों को समझाइये ?
10. जैविक एवं सामाजिक प्रेरकों में अन्तर को स्पष्ट कीजिये ?
11. अभिवृत्ति के अर्थ को स्पष्ट कीजिये ?
12. अभिवृत्ति में निर्माण तथा परिवर्तन की व्याख्या कीजिये ?
13. पूर्वाग्रह के अर्थ को समझाइये ?
14. पूर्वाग्रह की विशेषताओं एवं कारकों को स्पष्ट कीजिये ?
15. रूढ़ियुक्तियों के अर्थ का वर्णन कीजिये ?

2.12 पारिभाषिक शब्दावली

Social Work Practice	समाज कार्य अभ्यास	Projection	प्रक्षेपण
Mental Mechanism	मनोरचनायें	Introjection	अन्तःक्षेपण
Repression	छमन	Transference	स्थानान्तरण
Suppression	शमन	Displacement	विस्थापन
Inhibition	अन्तर्बाधा	Compensation	क्षतिपूर्ति
Regression	प्रतिगमन	Over compensation	अतिपूर्ति
Conversion	रूपान्तरण	Withdrawl	प्रत्याहार
Sublimation	उदातीकरण	Phantancy	कल्पना–तरंग
Rationalization	युक्तिकरण	Evation	पलायन
Reaction formation	प्रतिक्रिया निर्माण	Negative	नकारात्मकता
Identification	आत्मीकरण	Experiment	प्रयोग

सन्दर्भ ग्रन्थ

- Allport, F.H. (1924) Social Psychology, Boston : Riverside Editions,
- Allport, G.W. (1937) Personality : A Psychological Interpretation, New York : Holt, pp. 29-47.
- Allport, G.W. (1954) Nature of Prejudice, Garden City, N.Y. : Double day.
- Berry, D.S. (1991) Accuracy in Social Perception : Contributions of Facial and Social Information, Journal of Personality and Social Psychology, 68, 291-307.
- Bettelheim, B. Social Change and Prejudice, Free Press, N.Y., 1964
- Cooley, C.H. Human Nature and the Social Order, New York : Schocken
- Festinger, L. (1954) A Theory of Social Comparison Process, Human Relations, 7, 117-140.
- Gerald, R. Leslie, R.F. Larson, B.L. Gorman, 'Introductory Sociology : Order and Change in Society', Third Edition, Oxford University Press, Bombay 1994, p. 144
- Gifford, R. (1994) A Lens-mapping Framework for Understanding the Encoding and Decoding of Interpersonal Dispositions in Non-verbal Behaviour. Journal of Personality and Social Psychology, 66, 398-412.
- Heider, F. (1958) The Psychology of Interpersonal Relations. New York : Wiley.
- Johnson, H.M. (1961) Sociology : A Systematic Introduction, p. 110

- Judd, C.M., Ryan, C.S., Parke, B. (1991) Accuracy in the judgement of in-group and out group variability, Journal of Personality and Social Psychology, 61, 366-379
- Kenney, D.A., Albright, L., Malloy, T.E. and Kashy, D.A. (1994) Consensus in Interpersonal Perception : Acquaintance and the Big Five, Journal of Personality and Social Psychology, 116, 245-58.
- Kimball Young, (1957) Handbook of Social Psychology Routledge and Kegan Paul Ltd., London, p. 89.
- La Piere, RT, "Attitude vs. Actions", Reproduced in Bickman and Henely, Beyond the Laboratory, McGraw-Hill, 1972.
- कुप्पुस्वामी, बी. (1975) समाज मनोवैज्ञानिक के मूल तत्त्व, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, हिन्दी अनुवादक श्रीकान्त व्यास।
- रौबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न, 'सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद), 2004, पीयरसन एजुकेशन प्रा.लि., भारतीय शाखा, दिल्ली, 2004.
- रॉबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न, सामाजिक मनोविज्ञान, प्रथम हिन्दी अनुवाद, 2004, पीयरसन एजुकेशन, नई दिल्ली।

इकाई–3

व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार

Personality and Human Behaviour

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 परिचय
3.2 अवधारणा
3.3 व्यक्तित्व अध्ययन के उपागम
3.4 व्यक्तित्व के निर्धारक
3.5 व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सोपानों की व्यवहारगत समस्यायें
3.6 व्यक्तित्व का मापन
3.7 सार संक्षेप
3.8 अभ्यास प्रश्न
3.9 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- व्यक्तित्व की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे,
- व्यक्तित्व के अध्ययन के विभिन्न उपागमों में विभेद कर सकेंगे,
- व्यक्तित्व विकास की विभिन्न व्यवहारगत समस्याओं के संदर्भ में अंतर्दृष्टि विकसित कर सकेंगे, तथा
- व्यक्तित्व–मूल्यांकन की कुछ तकनीकों का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 परिचय

व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार विषयक इस इकाई को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है संसार का हर एक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। व्यक्तित्व में आपकी षारीरिक एवं संवेगात्मक; अभिवृत्तियां तथा प्रतिक्रियायें निहित होती हैं। व्यक्तित्व हर एक व्यक्ति का एक बिल्कुल ही अलग चिन्तन करने, व्यवहार करने एव अनुभव करने का तरीका होता है।

लगभग प्रतिदिन ही हम अलग–अलग लोगों से हम मिलते है, उनका वर्णन और मूल्यांकन करते है। यह करते समय हमें आभास ही नहीं होता है कि हम लगभग वही कर रहे होते हैं जो व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक क्रिया करते है। इस अनौपचारिक आकलन में हमारा केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होता है, जबकि व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक इस आकलन को सभी लोगों पर लागू करने का प्रयास करते हैं। व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक यह देखते हैं कि विभिन्न व्यक्तित्व गुण किस प्रकार और क्यों विकसित होते है, तथा ये व्यक्तित्व गुण किस प्रकार व्यक्ति और उसके वातावरण को प्रभावित करते है एवं उससे प्रभावित होते हैं।

3.2 व्यक्तित्व की अवधारणा

व्यक्तित्व का शाब्दिक अर्थ लैटिन शब्द परसोना (personal) से लिया गया है। परसोना उस मुखौटे को कहते हैं जिसे अपनी मुख–रूपसज्जा को बदलने के लिए रोमन नाटकों में अभिनेता

उपयोग में लाते थे। अभिनेता जिस मुखौटे को अपनाता है, दर्शक उससे उसी अनुरूप भूमिका की प्रत्याशा रखते हैं।

व्यक्तित्व (personality) से तात्पर्य उन विशिष्ट तरीकों से है जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों और स्थतियों के प्रति अनुक्रिया करता है। हर एक व्यक्ति बड़ी सरलता से इस बात का वर्णन कर सकते हैं कि वे किस तरीके से विभिन्न परिस्थितियों के प्रति अनुक्रिया करते हैं; जैसे – खुशमिजाज, शांत, गंभीर इत्यादि शब्दों के द्वारा प्रायः व्यक्तित्व का वर्णन किया जाता है।

3.3 व्यक्तित्व अध्ययन के उपागम

व्यक्तित्व की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए वैज्ञानिकों ने विभिन्न उपागमो का प्रतिपादन किया है। इन्हें सैद्धान्तिक उपागम भी कहते हैं। इन उपागमों मे से कुछ उपागमों का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है–

3.3.1 प्रारूप उपागम (Type Approach)

इस उपागम में व्यक्तित्व के प्रारूप (Type) समानताओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया जाता है। ग्रीक चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) ने लोगों को उनके शरीर मे उपस्थित फ्लूइड (fluid) के आधार पर चार प्ररूपों में वर्गीकृत किया है– उत्साही (पीला पित्त), श्लैष्मिक (कफ), विवादी (रक्त) तथा कोपशील (काला पित्त)। इन द्रवों की प्रधानता के आधार पर प्रत्येक प्ररूप विशिष्ट व्यवहारपरक विशेषताओं वाला होता है।

क्रेश्मर एवं शेल्डन (Kretshmer and Sheldon) ने शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया है– स्थूलकाय प्रकार (Pyknik Type), कृशकाय प्रकार (Asthenic Type), पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type) और विषालकाय प्रकार (Dysplastic Type) । स्थूलकाय प्रकार (छोटा कद,भारी एवं गोलाकार, गर्दन छोटी एवं मोटी) के व्यक्ति सामाजिक एवं खुशमिजाज होते हैं। कृष्काय प्रकार (लम्बा कद एवं दुबला पतला शरीर) के व्यक्ति चिड़चिड़े, सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रहने वाले और दिवास्वप्न देखने वाले होते हैं। पुष्टकाय प्रकार (सामान्य कद, शरीर सुडौल एवं संतुलित) के व्यक्ति न ही अधिक चंचल और न ही अधिक अवसादग्रस्त रहते हैं। ये हर परिस्थिति में आसानी से समायोजन कर लेते हैं। और विशालकाय प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं जिनको इन तीन श्रेणियों में शामिल नहीं किया जा सकता है।

शेल्डन ने 1940 में शारीरिक बनावट और स्वभाव कें आधार पर, गोलाकृतिक (endomorphic), आयताकृतिक (mesomorphic) और लंबाकृतिक (ectomorphic) तीन व्यक्तित्व प्ररूप प्रस्तावित किया। गोलाकृतिक प्ररूप वाले व्यक्ति मोटे, मृदुल और गोल होते हैं। स्वभाव से वे लोग शिथिल और सामाजिक होते हैं। आयताकृतिक प्ररूप वाले लोग स्वस्थ एवं सुगठित शरीर वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति ऊर्जस्वी एवं साहसी होते हैं। लंबाकृतिक प्ररूप वाले दुबले–पतले, लंबे कद वाले और सुकुमार होते हैं। ऐसे व्यक्ति तीव्र बुद्धि वाले और अंतर्मुखी होते हैं।

युंग (Jung) ने 1923 मे अपनी पुस्तक 'साइकोलाजिकल टाइप्स' में व्यक्तित्व के दो प्रकार बताये हैं– बहिर्मुखी (Extravert) एवं अन्तर्मुखी (Introvert)। बहिर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो सामाजिक तथा बहिर्गामी होते हैं। लोगों के साथ में रहते हुए तथा सामाजिक कार्यों को करते हुए वे दबावों का सामना करते हैं। दूसरी तरफ अंतर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो एकांतप्रिय होते हैं, दूसरों से दूर रहते हैं, और संकोची होते हैं।

फ्रीडमैन (Friedman) एवं रोजेनमैन (Rosenman) ने टाइप 'ए' तथा टाइप 'बी', लोगों को दो प्रकार के व्यक्तित्वों में वर्गीकृत किया है। टाइप 'ए' (Type-A) व्यक्तित्व वाले व्यक्ति उच्च अभिप्रेरणा वाले, कम धैर्यवान, हमेशा समय की कमी का अनुभव करने वाले और हमेशा कार्य का बोझ अनुभव करने वाले होते हैं। टाइप 'ए' व्यक्तित्व वाले लोगों में कॉरोनरी हृदय रोग (coronary heart disease) के होने की संभावना अधिक होती है। दूसरी तरफ; टाइप 'बी' (Type-B) व्यक्तित्व के लोगों में टाइप 'ए' व्यक्तित्व की जो विशेषतायें होती हैं उनकी कमी रहती है। मॉरिस (Morris) ने टाइप 'सी' (Type-C) व्यक्तित्व को बताया है। इस प्रकार के व्यक्तित्व के लोग धैर्यवान, सहयोग करने वाले और विनयशील होते हैं। इस प्रकार के लोग अपने निषेधात्मक संवेगों ;जैसे–क्रोध का दमन करने वाले और आज्ञापालन करने वाले होते हैं। इन लोगों में कैंसर रोग के होने संभावना अधिक होती है। इस श्रेणी का नवीनतम प्रकार टाइप 'डी' (Type-D) व्यक्तित्व सुझाया गया है। इस प्रकार व्यक्तित्व के लोगों में अवसादग्रस्त होने की अधिक संभावना होती है।

3.3.2 शीलगुण उपागम (Trait Approach)

शीलगुण उपागम में व्यक्तित्व की व्याख्या व्यक्ति के शीलगुणों के आधार पर की जाती है। शीलगुण उपागम व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले मूल तत्वों की खोज करते हैं। लोगों में मनोवैज्ञानिक गुणों में भिन्नता पायी जाती है। इन्हीं भिन्नताओं को आधार मानकर ऑलपोर्ट (Allport) और कैटेल(Cattel) ने अपने–अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किये। ऑलपोर्ट ने शीलगुणों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया– प्रमुख शीलगुण, केंद्रीय शीलगुण तथा गौण शीलगुण । प्रमुख शीलगुण (cardinal traits) सामान्य प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये प्रवृत्तियाँ उस लक्ष्य को दर्शाती हैं, जिसके इर्दगिर्द ही व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। जैसे– मदर टेरेसा का सेवाभाव और हिटलर का नाजीवाद इत्यादि। कम व्यापक किंतु फिर भी सामान्य प्रवृत्तियाँ केंद्रीय गुण (central traits) मानी जाती हैं। जैसे– इमानदार, मेहनती आदि। व्यक्ति के सबसे कम सामान्य गुणों के रूप में गौण शीलगुण (Secondary traits) जाने जाते हैं। जैसे–'मैं सेब पसंद करता हूँ' अथवा 'मैं अकेले घूमना पसंद करता हूँ' आदि।

कैटेल ने कारक विश्लेषण (Factor analysis) के आधार पर 16 मूल शीलगुण बताये हैं। मूल शीलगुण (source traits) स्थिर होते हैं और व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इसके अलावा अनेक सतही शीलगुण (surface traits) भी होते हैं जो मूल शीलगुणों की अंतःक्रिया के फल–स्वरूप उत्पन्न होते हैं। उन्होंने शीलगुण व्यक्तित्व मूल्यांकन के लिए एक परीक्षण विकसित किया जिसे सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (Sixteen Personality Factor Questionnaire, 16PF) कहते हैं।

3.3.3 मनोविश्लेषणात्मक उपागम (Psycho-analytic Approach)

इस उपागम का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया था। फ्रायड एक चिकित्सक थे और उन्होंने अपना सिद्धांत अपने पेशे के दौरान ही विकसित किया। उन्होंने मानव मन को चेतना के तीन स्तरों (चेतन, पूर्वचेतन और अचेतन) के रूप में विभक्त किया है। प्रथम स्तर **चेतन** (conscious) होता है जिसमें वे चिंतन, भावनाएँ और क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकरी लोगों को रहती है। द्वितीय स्तर **पूर्वचेतना** (preconscious) होता है जिसमें वे मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को तभी होती है जब वे उन पर ध्यान केंद्रित करते हैं। चेतना का तृतीय स्तर **अचेतन** (unconscious) होता है जिसमें ऐसी मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को नहीं होती है।

फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना के तीन तत्व बताये हैं– इदम् या इड (id) अहं (ego) और पराहम (superego) । इदम असमन्वित सहज प्रकृति है, जो सुख के सिद्धान्त पर आधारित होता है। अहं सुनियोजित होता है, जो वास्तविकता के सिद्धान्त पर आधारित होता है और पराहम पूर्णता को प्रदर्शित करता है, नैतिकता पर आधारित होता है।

फ्रायड ने रक्षा युक्तियों (defence mechanisms) के बारे में विस्तार से बताया है। रक्षा युक्तियाँ वास्तविकता को विकृत कर दुश्चिंता को कम करने का माध्यम हैं। रक्षा युक्तियों में सबसे महत्वपूर्ण दमन (repression) है जिसमें दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले व्यवहारों और विचारों को पूरी तरह चेतना के स्तर से विलुप्त कर देते हैं। दमन करते समय उन्हें इसका ज्ञान भी नहीं रहता है। कुछ और युक्तियाँ रक्षा प्रक्षेपण, प्रतिक्रिया निर्माण और युक्तिकरण, इत्यादि हैं।

3.3.4 नव–फ्रायडवादी उपागम (Neo-psycho-analytic Approach)

नव–फ्रायडवादीयों में युंग, हॉर्नी, एडलर, एरिक्सन आदि का नाम महत्वपूर्ण है। सबसे पहला नाम युंग का आता है। पहले युंग (Jung) ने फ्रायड के साथ ही काम किया किंतु बाद में वे फ्रायड से अलग हो गए। युंग के अनुसार मनुष्य काम–भावना और आक्रामकता स्थान पर उद्देश्यों और आकांक्षाओं से अधिक निर्देशित होते हैं। उन्होंने व्यक्तित्व का अपना एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसे विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (analytical psychology) कहते हैं।

फ्रायड के अनुयायियों में युंग के बाद दूसरा नाम हॉर्नी का आता है। हॉर्नी आशावादी दृष्टिकोण को मानने वाले थे। उनके अनुसार माता–पिता बच्चे के प्रति यदि उदासीनता, हतोत्साहित करने और अनियमिता का व्यवहार करते हैं तो बच्चे के मन में एक असुरक्षा की भावना विकसित होती है जिसे मूल दुश्ंचिता (basic anxiety) कहते हैं। एकाकीपन और असुरक्षा की भावना के कारण बच्चों के स्वास्थ्य के विकास में बाधा होती है।

एडलर (Adler) ने वैयक्तिक मनोविज्ञान (individual psychology) का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके अनुसार व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्योन्मुख व्यवहार करता है। एडलर के अनुसार हर एक व्यक्ति हीनता से ग्रसित होता है। एक अच्छे व्यक्तित्व के विकास के लिए इस हीनता की भावना का समाप्त होना अति आवश्यक है। एरिक्सन (Erikson) ने व्यक्तित्व–विकास में तर्कयुक्त चिन्तन एवं सचेतन अहं पर बल दिया है। उनके अनुसार विकास एक जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है और अहं अनन्यता का इस प्रक्रिया में केन्द्रीय स्थान है।

3.3.5 व्यवहारवादी उपागम

यह उपागम उद्दीपक–अनुक्रिया के आपसी तालमेल के आधार पर अधिगम और प्रबलन को महत्व देता है। व्यवहारवादियों के अनुसार पर्यावरण के प्रति व्यक्ति की अनुक्रिया के आधार पर उसके व्यक्तित्व को अचछी तरह से समझा जा सकता है। व्यवहारवार के प्रमुख सिद्धांतो में पावलव द्वारा दिया गया प्राचीन अनुबंधन, स्किनर द्वारा दिया गया नैमित्तिक अनुबंधन और बंडुरा द्वारा दिया गया सामाजिक अधिगम सिद्धांत मुख्य हैं। व्यवहारवार के इन प्रमुख सिद्धांतों का व्यक्तित्व विकास के विश्लेषण में बहुतायत से प्रयोग हुआ है। प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धांतों में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का कोई स्थान नहीं है, जबकि सामाजिक अधिगम सिद्धांत में संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है।

3.3.6 मानवतावादी उपागम

मानवतावादी उपागम में रोजर्स (Rogers) और मैस्लो (Maslow) के सिद्धांत प्रमुख हैं। रोजर्स ने आत्म (Self) पर अधिक बल दिया है। जिसमें उन्होंने वास्तविक आत्म (real self) और आदर्श

आत्म (ideal self) की चर्चा की है। प्रत्येक व्यक्ति का एक आदर्श आत्म होता है जिसको प्राप्त करने के लिए वह हमेशा तत्पर रहता है। आदर्श आत्म वह आत्म होता है जो कि एक व्यक्ति बनाना चाहता है। जब वास्तविक आत्म और आदर्श आत्म समान होते हैं तो व्यक्ति प्रसन्न रहता है और दोनों प्रकार के आत्म के बीच विसंगति के कारण प्रायः अप्रसन्नता और असंतोष की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में अपनी अन्तःशक्तियों को पहचानने और उसी के अनूरूप व्यवहार करने की विशेष क्षमता होती है। व्यक्तित्व विकास के लिए संतुष्टि एक अभिप्रेरक शक्ति का कार्य करती है। लोग अपनी क्षमताओं और प्रतिभाओं को उत्कृष्ट तरीके से अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

रोजर्स ने शर्तरहित स्वीकारात्मक सम्मान (unconditional positive regard) को अधिक महत्व दिया है। दूसरी तरफ मैस्लो ने व्यक्तिगत वर्धन (personal growth) और आत्म निर्देश (self direction) की क्षमता पर अधिक बल दिया है, और व्यक्तिगत अनुभूतियों को नगण्य माना है। उन्होंने अपने सिद्धांत में आशावदी दृष्टिकोण को महत्व दिया है। जिससे मानव की आन्तरिक अंतःशक्तियों को समझने में काफी सुविधा हुई है। मैस्लो ने आत्मसिद्धि (self-actualisation) की प्राप्ति कों मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ लोगों की विशेषता माना है। आत्मसिद्धि वह अवस्था होती है जिसमें लोग अपनी संपूर्ण क्षमताओं को विकसित कर लेते हैं। मैस्लो के आशावादी और सकारात्मक दृष्टिकोण के अनुसार मानव में प्रेम, हर्ष और सृजनात्मक कार्यों की क्षमता होती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मदर टेरेसा के महान व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण शीलगुण सेवाभाव था उनके इस शीलगुण को किस श्रेणी में रखा जायेगा?
(क) केन्द्रीय शीलगुण
(ख) गौण शीलगुण
(ग) सतही शीलगुण
(घ) स्रोत शीलगुण

2. प्राप्य या सुलभ स्मृति का दूसरा नाम क्या है–
(क) चेतन
(ख) अर्द्धचेतन
(ग) व्यक्तिगत अचेतन
(घ) सामुहिक अचेतन

3. एक भ्रष्ट अधिकारी के विरोध में भाषण देना रक्षा प्रक्रम का उदाहरण है?
(क) यौक्तिकीकरण
(ख) प्रतिक्रिया निर्माण
(ग) प्रतिगमन
(घ) प्रक्षेपण

4. रोजर्स के अनुसार आत्म–संप्रत्यय किसका भाग होता है?
(क) जैविक आत्म
(ख) आत्म सिद्धि
(ग) आदर्श आत्म
(घ) आत्म–पुनर्बलन

5. ....वाले व्यक्ति में प्रतिस्पर्द्धात्मकता तथा उपलब्धि अभिप्रेरक प्रबल होता है।

3.4 व्यतित्व के निर्धारक –

'निर्धारक' शब्द को 'कारक' शब्द से भी निरूपित किया जाता है। व्यक्तित्व के कारकों को दो भागों में विभक्त किया जाता है

1. जैविक कारक (biological factors) और
2. वातावरणीय कारक (environmental factors)

3.4.1 जैविक कारक (Biological factors)

जैविक कारक वस्तुतः वे कारक होते हैं जो व्यक्ति में आनुवंशिक (hereditary) या जन्मजात होते हैं। ऐसे प्रमुख कारकों में प्रथम कारक व्यक्ति की शारीरिक संरचना एवं स्वास्थ्य है। प्रायः देखा गया है कि शारीरिक संरचना से संबंधित सभी शीलगुण वंशानुगत होते हैं। जिन बच्चों के माता–पिता लंबे कद के होते हैं उनका कद भी लंबा होता है, और जिन बच्चों के माता–पिता नाटे कद के होते हैं उनका कद भी नाटा होता है। माता पिता के सांवले और गोरे होने पर, उनके बच्चे भी सांवले और गोरे होते हैं। व्यक्ति के इन शारीरिक शीलगुणों तथा स्वास्थ्य का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर भी पड़ता है। जो लोग शारीरिक रूप से स्वस्थ और सुंदर होते है उनमें आत्मविश्वास, सामाजिकता और उत्तरदायित्व का विकास होता है। इसके विपरीत जिन लोगों में इन शीलगुणों की कमी होती है; उनके हीन–भावना से ग्रस्त होने की संभावना बढ जाती है।

बहुत अधिक सक्रिय, निष्क्रिय और अवसाद ग्रस्त होने का कारण हमारी अंतःस्रावी ग्रथियों द्वारा स्रावित हार्मोन होते हैं। अतः सबसे पहले पीयूष गंथि की चर्चा करेंगे। पीयूष ग्रंथि से स्रावित सोमैटोट्रापिन हार्मोन मुख्य है, जिसे विकास हार्मोन भी कहते हैं। बचपन में इस हार्मोन की कमी के कारण व्यक्ति नाटे कद का हो जाता है और अधिक स्राव होने पर व्यक्ति लंबे कद का हो जाता है। पीयूष ग्रंथि से स्रावित कुछ हार्मोन दूसरी अंतःस्रावी ग्रंथियों से स्रावित होने वाले हार्मोनो के स्राव पर नियन्त्रण रखते हैं जिसके कारण पीयूष ग्रंथि को 'मास्टर ग्रंथि' भी कहा जाता है। एड्रीनल ग्रंथि से स्रावित कुछ हार्मोनो द्वारा कार्बोहाइड्रेट, लवणों तथा चयापचयी क्रियाओं का नियन्त्रण होता है। इसके सही प्रकार से कार्य न करने की स्थिति में व्यक्ति मे निष्क्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल ग्रंथि से ही स्रावित एड्रीनलीन हार्मोन द्वारा सांवेगिक स्थिति पर नियन्त्रण होता है और नारएड्रीनलीन हार्मोन आपात स्थिति से समान्य अवस्था में लाने का कार्य करता है।

थायराइड ग्रंथि से निकलने वाला थायराक्सीन नामक हार्मोन शरीर की चयापचयी क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। यह शरीर के विकास को प्रभावित करता है। इसका स्राव अधिक होने पर व्यक्ति चिड़चिड़ा एवं चिन्तित हो जाता है, और शरीर का वजन भी धीरे–धीरे कम हो जाता है। पैराथायराइड ग्रंथि से पैराथार्मोन नामक हार्मोन स्रावित होता है, जो खून मे कैल्सियम और फास्फेट की मात्रा का नियन्त्रण करता है। कैल्सियम और फास्फेट की उचित मात्रा होने पर उत्तेजनशीलता बनी रहती है और कम होने पर व्यक्ति शिथिल पड़ जाता है।

पैंक्रियाज ग्रंथि से इंसुलिन नामक हार्मोन स्रावित होता है। इसके द्वारा रक्त मे शर्करा की मात्रा नियंत्रित होती है। उचित मात्रा मे इंसुलिन के स्रावित होने पर रक्त मे उपस्थित शर्करा आक्सीकृत होती रहती है और शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती रहती है। कम होने पर मधुमेह रोग हो जाता है। यौन ग्रंथियों को महिलाओं को डिम्ब ग्रंथि और पुरूषों में अंडग्रंथि कहते हैं। डिम्ब ग्रंथि से प्रोजेस्ट्रान नामक हार्मोन तथ अंडग्रंथि से टेस्टोस्टीरोन नामक हार्मोन स्रावित होता है। खून में प्रोजेस्ट्रान की मात्रा अधिक होने पर महिलाओं में गौण यौन गुण (आवाज का पतला होना, इत्यादि) विकसित होते हैं, साथ ही साथ गर्भाशय ठीक ढंग से काम करने से भ्रूण का विकास अच्छी प्रकार से होता है और पुरूषों में इसके कारण प्राथमिक और द्वितीयक यौन गुण विकसित होते हैं।

3.4.2 वातावरणीय कारक (Environmental factors)

व्यक्तित्व विकास सिर्फ जैविक कारकों से ही नहीं प्रभावित होता है, बल्कि वातावरण से संबंधित कारक भी व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं। वातावरणीय कारको को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक।

व्यक्ति एक सामाजिक वातावरण मे निवास करता है। सामाजिक कारकों में माता–पिता, संगी–साथी इत्याइि प्रमुख हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है जरूरत से अधिक लाड़–प्यार देने पर बच्चे मे असुरक्षा की भावना का विकास हो जाता है वहीं समय की कमी के कारण उचित प्यार भी अपने बच्चों को नहीं दे पाते हैं। अधिक सख्ती से पेश आने पर बच्चे में अधीनस्थता का गुण विकसित हो जाता है, उचित प्यार न मिल पाने के कारण बच्चे सांवेगिक रूप से अस्थिर हो जाते हैं। परिवार के सदस्यों का आपसी संबंध अच्छा होने पर बच्चे भी अपने बड़ों की भांति स्वयं को ढाल लेते हैं। जिसके फलस्वरूप उनमें आत्मविश्सास, विश्वसनीयता और श्रेष्ठता की भावना विकसित हो जाती है। दूसरी तरफ वे परिवार जो झगड़ालू होते हैं उनमें पलने वाले बच्चों मे हीन भावना, सांवेगिक अस्थिरता और अन्तर्मुखता के गुण पाये जाते हैं। जन्मक्रम का भी व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है।

एडलर ने जन्मक्रम को चार भागों (प्रथम जन्मक्रम, द्वितीय जन्मक्रम, अन्तिम जन्मक्रम और इकलौता बच्चा) मे विभक्त किया है। एडलर ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि प्रथम जन्मक्रम वाले बच्चे एकान्तप्रिय होते हैं, अन्तिम जन्मक्रम वाले बच्चों में हीनता का भाव देखा गया है और इकलौते बच्चे में दूसरे पर निर्भता तथा आत्मकेन्द्रीता के शीलगुण विकसित हो जाते हैं। मध्यक्रम वाले बच्चों में आत्म.–विश्वास तथा अहं–शक्ति अधिक होती है। स्कूल के वातावरण का भी प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। स्कूल के प्रभाव में शीलगुण का विकास और आत्म–निर्भरता इसके दो पहलू हैं। जिसमें सांवेगिक वातावरण, शिक्षकों का अनुशासन, शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। यदि शिक्षक खुद ही कुसमायोजित व्यक्तित्व के होते हैं तो उनके छात्रों में असुरक्षा की भावना विकसित हो जाती है। विकास के क्रम व्यक्तित्व पर पास पड़ोस का भी प्रभाव पड़ता है। यदि पास पड़ोस के लोग पढ़े लिखे होते हैं तो इससे बच्चों में अच्छे शीलगुणों (अनुशासन, समझदारी, आत्म सम्मान इत्यादि) का विकास होता है।

व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। हर समाज की एक संस्कृति होती है, जिसमें उसके विभिन्न रीति–रिवाज, परम्परायें, रहन सहन इत्यादि आते हैं। इस संस्कृति का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर अवश्य पड़ता है। इसके साथ–साथ आर्थिक कारकों (जैसे, निर्धनता इत्यादि) का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है। आर्थिक स्थिति ठीक न होने की स्थिति में व्यक्तित्व के विकास तथा शीलगुणों के निर्माण पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। गरीब परिवार के बच्चों में हीनता की भावना, सांवेगिक अस्थिरता, शर्मीलापन इत्यादि कमियां पायी जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैविक कारकों तथा वातावरणीय कारकों का वर्णन तो हमने अलग–अलग किया है परन्तु वास्तविकता यह है कि व्यक्तित्व के विकास में जैविक कारकों तथा वातावरणीय कारकों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है, जो दोनो की अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

3.5 व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सोपानों की व्यवहारगत समस्यायें

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व विकास के अलग–अलग सोपान बताये हैं। इन मनोवैज्ञानिकों में फ्रायड, नवफ्रायडवादी मुख्य हैं। नवफ्रायडवादियों मे युंग तथा एडलर का नाम प्रमुख है। फ्रायड द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व विकास के विभिन्न सोपान तथा उनकी व्यवहारगत समस्याओं का

वर्णन आगे दिया जा रहा है। फ्रायड ने मनोलैंगिक विकास की पाँच (मुखावस्था, गुदावस्था, लंग प्रधानावस्था, अव्यक्तावस्था और जननेद्रियावस्था) अवस्थायें बतायी हैं।

मुखावस्था में अच्छा स्नेह मिलने और न मिलने के आधार पर फ्रायड ने व्यक्तित्व का दो भागों (मुखवर्ती–निष्क्रिय व्यक्तित्व और अनुवर्ती–निष्क्रिय व्यक्तित्व) में विभक्त किया है। मुखवर्ती–निष्क्रिय व्यक्तित्व वाले व्यक्ति आशावादी तथा दूसरों पर विश्वास करने वाले होते हैं और दूसरी तरफ इसके विपरीत अनुवर्ती–आक्रामक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति दूसरों पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित करते हैं और उनका शोषण करते हैं। गुदावस्था अच्छा स्नेह मिलने और न मिलने के आधार पर ने व्यक्तित्व का दो भागों (गुदा–आक्रामक व्यक्तित्व और गुदा–धारणात्मक व्यक्तित्व) में विभक्त किया है। गुदा–आक्रामक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में क्रूरता, विद्वेष, विनाशिता आदि गुण पाये जाते हैं और गुदा–धारणात्मक व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में हठ, कंजूसी, समयनिष्ठता पायी जाती है।

लिंग प्रधानावस्था में आबद्धता होने पर लड़कों में उच्चकांक्षा, उतावलापन इत्यादि तथा लड़कियों में सम्मोहकता, स्वच्छन्द संभोगिता का गुण पाया जाता है। अन्त में जननेन्द्रियावस्था में फ्रायड ने बताया है कि प्रारम्भ में तो बच्चों में समलिंगी लोगों के प्रति आकषर्ण होता है, परन्तु बाद में वयस्क के रूप में विकसित होने पर विषमलिंगी लोगों के प्रति आकर्षण विकसित हो जाता है।

युंग ने व्यक्तित्व विकास की चार (बाल्यावस्था, यौवनास्था, मध्यावस्था और वृद्धावस्था) अवस्थायें बतायी हैं। जिसका प्रयोग हम आजकल की बोलचाल की भाषा में करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि बच्चे की उचित देखभाल न की जाय तो उसमें विभिन्न प्रकार की समस्याओं के विकसित होने की संभावना बनी रहती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बच्चों को उनके माता–पिता द्वारा उचित स्नेह, सहयोग दिया जाय, जिससे कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके और वे अपने आप का समाज में भली–भांति स्थापित कर सकें।

3.6 व्यक्तित्व का मापन

हम अक्सर ही नित नए लोगों से मिलते रहते हैं और उनको समझने का प्रयास भी करते हैं। इसके साथ–साथ ही उनसे अंतःक्रिया करने के पहले ही हम ये भविष्य कथन भी करते हैं कि वे क्या कर सकते हैं। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने पूर्वानुभवों, प्रेक्षणों, वार्तालापों और दूसरे लोगों से प्राप्त सूचनाओं पर विश्वास करते हैं। मनोविज्ञान में भी इसके लिए कुछ विधियां बतायी गयी हैं।

सामान्यतः सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली तकनीकों में मनोमितिक परीक्षण (psychometric tests), आत्म–प्रतिवेदन माप (self-report measures), प्रक्षेपी तकनीकें (projective techniques) और व्यवहारपरक विश्लेषण (behavioural analysis) आते हैं।

आत्म प्रतिवेदन के द्वारा विभिन्न पूर्वनिर्मित मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे जानकरी प्राप्त की जाती है। जिससे किसी के भी व्यक्तित्व का आकलन किया जा सकता है। जैसे– मिनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी इन्वेट्री (एम0एम0पी0आई0)

प्रयोगात्मक स्थितियों में भी लोग प्रायः आत्मचेतन का अनुभव करते हैं और अपनी निजी या अंतरंग भावनाओं, विचारों और अभिप्रेरणाओं को व्यक्त करने में हिचकिचाते हैं। ऐसा जब भी करते हैं वे प्रायः सामाजिक दृष्टि से वांछनीय तरीके के अनुरूप व्यवहार करने का प्रयास करते हैं। इसके लिए सबसे उपयुक्त वातारण प्रक्षेपी तकनीकों के माध्यम से तैयार हुआ, जिसका प्रयोग करके, यदि कोई व्यक्ति सामाजिक हिचकिचाहट के कारण कोई बात व्यक्त नहीं कर पाता है तो इस प्रक्षेपी वातावरण में व्यक्त कर सकता है। इसमें दो प्रमुख परीक्षण रोसौ द्वारा विकसित रोर्सा स्याही धब्बा परीक्षण और मैस्लो द्वारा विकसित थीमैटिक एपरसेप्सन टेस्ट (टी0ए0टी0) मुख्य हैं। कुछ प्रक्षेपी परीक्षणों में वाक्यपूर्ति द्वारा भी अनुक्रिया प्राप्त की जाती है।

3.7 सार संक्षेप

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तित्व एक गत्यात्मक संरचना है जिसकी व्याख्या अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने अपने मत के अनुसार अलग–अलग तरीके से की है। इन्होंने व्यक्तित्व की अलग–अलग संरचनायें और व्यक्तित्व विकास अवस्थायें भी बतायी हैं। अच्छी प्रकार से पालन–पोषण नहीं होने पर कई विकृतियां भी उत्पन्न हो सकती हैं। व्यक्तित्व का मापन करने की कई विधियां भी बतायी गयी हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तित्व को परिभाषित करें तथा इसके स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
3. व्यक्तित्व के पर्यावरणीय निर्धारकों का वर्णन कीजिए।
4. व्यक्तित्व के मापक के रूप में प्रक्षेपण विधियों का वर्णन कीजिए।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए–
   (क) आत्म प्रतिवेदन आविष्कारिका
   (ख) प्रक्षेपण विधि
6. फ्रॅायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषणात्म सिद्धान्त की आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
7. व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

व्यक्तित्व– व्यक्तित्व हर एक व्यक्ति का एक बिल्कुल ही अलग चिन्तन करने, व्यवहार करने एव अनुभव करने का तरीका होता है।

स्थूलकाय प्रकार– स्थूलकाय प्रकार (छोटा कद,भारी एवं गोलाकार, गर्दन छोटी एवं मोटी) के व्यक्ति सामाजिक एवं खुषमिजाज होते हैं।

कृष्काय प्रकार– कृष्काय प्रकार (लम्बा कद एवं दुबला पतला शरीर) के व्यक्ति चिड़चिड़े, सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रहने वाले और दिवास्वप्न देखने वाले होते हैं।

पुष्टकाय प्रकार– पुष्टकाय प्रकार(सामान्य कद, शरीर सुडौल एवं संतुलित) के व्यक्ति न ही अधिक चंचल और न ही अधिक अवसादग्रस्त रहते हैं।

गोलाकृतिक प्ररूप– गोलाकृतिक प्ररूप वाले व्यक्ति मोटे, मृदुल और गोल होते हैं। स्वभाव से वे लोग शिथिल और सामाजिक होते हैं।

आयताकृतिक प्ररूप– आयताकृतिक प्ररूप वाले लोग स्वस्थ एवं सुगठित शरीर वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति ऊर्जस्वी एवं साहसी होते हैं।

लंबाकृतिक प्ररूप– लंबाकृतिक प्ररूप वाले दुबले–पतले, लंबे कद वाले और सुकुमार होते हैं।

बहिर्मुखी– बहिर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो सामाजिक तथा बहिर्गामी होते हैं। लोगों के साथ में रहते हुए तथा सामाजिक कार्यों को करते हुए वे दबावों का सामना करते हैं।

अंतर्मुखी– अंतर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो एकांतप्रिय होते हैं, दूसरों से दूर रहते हैं, और संकोची होते हैं।

प्रमुख शीलगुण– प्रमुख शीलगुण सामान्य प्रवृत्तियाँ होती हैं।

चेतन– चेतन में वे चिंतन, भावनाएँ और क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकरी लोगों को रहती है।

पूर्वचेतना– पूर्वचेतना में वे मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को तभी होती है जब वे उन पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

अचेतन– अचेतन में ऐसी मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिनकी जानकारी लोगों को नहीं होती है।
दमन– दमन में दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले व्यवहारों और विचारों को पूरी तरह चेतना के स्तर से विलुप्त कर देते हैं।
आदर्श आत्म– आदर्श आत्म वह आत्म होता है जो कि एक व्यक्ति बनना चाहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Baron, R. A. (2006). *Psychology* (5th Ed.). New Delhi: Pearson Education.
2. Ciccarelli, S. K., & Meyer, G. E. (2009). *Psychology*. Delhi: Pearson Education.
3. Coon, D., & Mitterer, J. O. (2007). *Introduction to Psychology: Gateway to mind and behaviour*. New Delhi: Cengage.
4. Friedman, H.S. & Schustack, M.W. (2003). *Personality: Classic theory and modern research* (2nd ed.) Singapore: Pearson Education.
5. Gerrig, R. J., & Zimbardo, P. G. (2006). *Psychology and Life* (17th Ed.). New Delhi: Pearson Education.
6. Hall, G.C., Lindzey, G., & Campbell, J.C. (1998). *Theories of personality*, (4th ed.). New York: Wiley.
7. Hjelle, L.A. & Zeigler, D.J. (1991). *Personality the ories: Basic assumptions, research and applications*. (2nd ed.) New York: McGraw Hill.
8. Morgan, C. T., King, R. A., Weisz, J. R., & Schopler, J. (1986). Introduction to psychology (7th Ed.) Bombay: Tata-McGraw Hill.
9. Zimbardo, P.G., & Weber, A. L. (1997). Psychology. New York: Harper Collins College Publisher.
10. Singh, A. K. (2009). *Uchachtar Samanya Manovigyan*. Varanasi: Motilal Banarasi Das.
11. Srivastava, R. (2008). Vyaktitava Manovigyan. Varanasi: Motilal Banarasi Das.

इकाई–4

मन का प्रत्यय एवं मनोविज्ञान
Concept of Mann and Psychology

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 परिचय
4.3 मन का तात्पर्य
4.4 मन की अवस्थाएँ
4.5 मन के आकारात्मक पक्ष
4.5.1 चेतन मन
4.5.2 अर्द्धचेतन मन
4.5.3 अचेतन मन
4.5.4 चेतन, अचेतन और अर्द्धचेतन का तुलनात्मक अध्ययन
4.6 मन के गत्यात्मक पक्ष
4.6.1 उपाहं
4.6.2 इदंम्
4.6.3 नैतिक मन
4.6.4 उपाहं, अहम, नैतिक मन में सम्बन्ध
4.7 सार संक्षेप
4.8 अभ्यास प्रश्न
4.9 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मन शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मन की अवस्थाओं के बारे में जान सकेंगे।
- मन के आकारात्मक पक्ष–चेतन, अर्द्धचेतन व अचेतन के बारे में जान सकेंगे।
- मन के गत्यात्मक पक्ष– उपाहं, इद्, नैतिक मन के बारे में जान सकेंगे।
- उपाहं, इदमं व नैतिक के कार्य के विषय में जान सकेंगे।
- उपाहं, इदमं व नैतिक मन के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे।

4.1 परिचय

मन शब्द से हम सभी परिचित हैं। प्रायः इस शब्द का प्रयोग हम करते देखे जाते हैं। इस इकाई में हम इस शब्द के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। मन शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। जैसे– मानस, चित्त, मनोभाव तथा मत इत्यादि। लेकिन मनोविज्ञान में मन का तात्पर्य आत्मन्, स्व या व्यक्तित्व से है। यह एक अमूर्त सम्प्रत्यय है। जिसे केवल महसूस किया जा सकता है। इसे न तो हम देख सकते हैं और न ही हम इसका स्पर्श कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में मस्तिष्क

के विभिन्न अंगों की प्रक्रिया का नाम मन है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड के अनुसार मन का सिद्धान्त एक प्रकार का परिकल्पनात्मक सिद्धान्त है।

फ्रायड के अनुसार– ''मन से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन कारकों से होता है जिसे हम अन्तरात्मा कहते हैं तथा जो हमारे व्यक्तित्व में संगठन पैदा करके हमारे व्यवहारों को वातावरण के साथ समायोजन करने में मदद करता है।''

4.3 मन का तात्पर्य

रेबर के अनुसार– ''मन का तात्पर्य परिकल्पिक मानसिक प्रक्रियाओं एवं क्रियाओं की सम्पूर्णता से है, जो मनोवैज्ञानिक प्रदत्त व्याख्यात्मक साधनों के रूप में काम कर सकती है। अतः मन की हम मात्र कल्पना कर सकते हैं। इसको न तो किसी ने देखा है और न ही हम इसकी कल्पना कर सकते हैं।''

4.4 मन की अवस्थाएँ

मन की अवस्थाओं से तात्पर्य इसके विभिन्न पहलुओं से है। मन आत्मा या व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं– जिन्हें आकारात्मक पक्ष और गत्यात्मक पक्ष कहते हैं–मन के आकारात्मक पक्ष से तात्पर्य जहाँ संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है मन का यह पहलू वास्तव में व्यक्तित्व के गत्यात्मक शक्तियों के बीच होने वाले संघर्षों का एक कार्यस्थल होता है।

मन के गत्यात्मक पक्ष से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा मूल–प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। यहाँ हम सबसे पहले मन के आकारात्मक पक्ष के बारे में समझेंगे।

4.5 मन के आकारात्मक पक्ष

आकारात्मक पक्ष का अध्ययन हम तीन भागों में बाँट कर करेंगे।

4.5.1 चेतन मन

मन का वह भाग जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से होता है, या जिसका सम्बन्ध वर्तमान से होता है। जैसे– कोई व्यक्ति लिख रहा है तो लिखने की चेतना है, पढ़ रहा है तो पढ़ने की चेतना है। व्यक्ति जिन शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के प्रति जागरूक रहता है वह चेतन स्तर पर घटित होती है। इस स्तर पर घटित होने वाली सभी क्रियाओं की जानकारी व्यक्ति को रहती है। यद्यपि चेतना में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु इसमें निरन्तरता होती है अर्थात् यह कभी खत्म नहीं होती है।

4.5.1.1 चेतन मन की विशेषताएँ

- यह मन का सबसे छोटा भाग है।
- चेतन मन का वाह्य जगत की वास्तविकता के साथ सीधा सम्बन्ध होता है।
- चेतन मन व्यक्तिगत, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों से भरा होता है।
- यह अचेतन और अर्द्धचेतन पर प्रतिबन्ध का कार्य करता है।
- चेतन मन में वर्तमान विचारों एवं घटनाओं के जीवित स्मृति चिह्न होते हैं।

4.5.2 अर्द्ध चेतन मन

अर्द्धचेतन का तात्पर्य वैसे मानसिक स्तर से होता है। जो वास्तव में में न तो पूरी तरह से चेतन हैं और ही पूरी तरह से अचेतन। इसमें वैसी इच्छाएँ, विचार, भाव आदि होते हैं। जो हमारे

वर्तमान चेतन या अनुभव में नहीं होते हैं परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाती है। अर्थात् यह मन का वह भाग है, जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय सामग्री से है जिसे व्यक्ति इच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है। इसमें कभी–कभी व्यक्ति को किसी चीज को याद करने के लिए थोड़ा प्रयास भी करना पड़ता है। जैसे– अलमारी में रखी किताबों में से जब किसी किताब को ढूँढते हैं और कुछ समय के बाद किताब न मिलने पर परेशान हो जाते हैं। फिर कुछ सोचने पर याद आता है कि वह किताब हमने अपने मित्र को दी थी। अर्थात् अर्द्धचेतन मन चेतन व अचेतन के बीच पुल का काम करता है।

4.5.2.1 अर्द्ध चेतन मन की विशेषताएँ

- मन का वह भाग जो चेतन से बड़ा व अचेतन से छोटा होता है।
- अचेतन से चेतन में जाने वाले विचार या भाव अर्द्धचेतन से होकर गुजरते हैं।
- अर्द्धचेतन में किसी चीज को याद करने के लिए कभी–कभी थोड़ा प्रयास करना पड़ता है।

4.5.3 अचेतन मन

हमारे कुछ अनुभव इस तरह के होते हैं जो न तो हमारी चेतना में होते हैं और न ही अर्द्धचेतना में। ऐसे अनुभव अचेतन होते हैं। अर्थात् यह मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय वस्तु से होता है जिसे व्यक्ति इच्छानुसार याद करके चेतना में लाना चाहे, तो भी नहीं ला सकता है।

अचेतन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वरूप कामुक, असामाजिक, अनैतिक तथा घृणित होता है। ऐसी इच्छाओं को दिन–प्रतिदिन के जीवन में पूरा कर पाना सम्भव नहीं है। अतः इन इच्छाओं को चेतना से हटाकर अचेतन में दबा दिया जाता है और वहाँ पर ऐसी इच्छाएँ समाप्त नहीं होती हैं बल्कि समय–समय पर ये इच्छाएँ चेतन स्तर पर आने का प्रयास करती रहती हैं।

फ्रायड ने इस सिद्धान्त की तुलना आइसबर्ग से की है। जिसका 9/10 भाग पानी के अन्दर और 1/10 भाग पानी के बाहर रहता है। पानी के अन्दर वाला भाग अचेतन तथा पानी के बाहर वाला भाग चेतन होता है तथा जो भाग पानी के ऊपरी सतह से स्पर्श करता हुआ होता है वह अर्द्धचेतन कहलाता है।

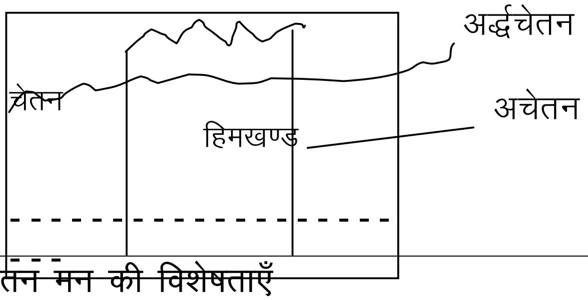

4.5.3.1 अचेतन मन की विशेषताएँ

- अचेतन मन अर्द्धचेतन व चेतन से बड़ा होता है।
- अचेतन में कामुक, अनैतिक, असामाजिक इच्छाओं की प्रधानता होती है।
- अचेतन का स्वरूप गत्यात्मक होता है। अर्थात् अचेतन मन में जाने पर इच्छाएँ समाप्त नहीं होती है। बल्कि सक्रिय होकर ये चेतन में लौट आना चाहती हैं। परन्तु चेतन मन के रोक के कारण ये चेतन में नहीं आ पाती है और रूप बदलकर स्वप्न व दैनिक जीवन की

छोटी–मोटी गलतियों के रूप में व्यक्त होती है और जो अचेतन के रूप को गत्यात्मक बना देती है।

- अचेतन के बारे में व्यक्ति पूरी तरह से अनभिज्ञ रहता है क्योंकि अचेतन का सम्बन्ध वास्तविकता से नहीं होता है।
- अचेतन मन का छिपा हुआ भाग होता है। यह एक बिजली के प्रवाह की भाँति होता है। जिसे सीधे देखा नहीं जा सकता है परन्तु इसके प्रभावों के आधार पर इसको समझा जा सकता है।

स्पष्ट है कि अचेतन अनुभूतियों एवं विचारों का प्रभाव हमारे व्यवहार पर चेतन, अर्द्धचेतन अनुभूतियों एवं विचारों से अधिक होता है। इसी कारण चेतन व अर्द्धचेतन का आकार चेतन की अपेक्षा बड़ा होता है।

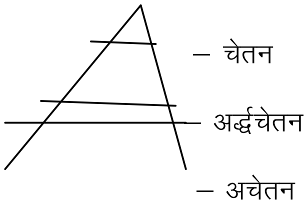

चेतन, अर्द्धचेतन व अचेतन का आकारीय चित्र

4.5.4 चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन का तुलनात्मक अध्ययन

- चेतन मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से होता है। अर्द्धचेतन मन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध ऐसी विषय–सामग्री से होता है, जिसे व्यक्ति इच्छानुसार कभी भी याद कर सकता है।
- चेतन मन का आकार छोटा अर्द्धचेतन मन का आकार उससे बड़ा और अचेतन मन का आकार सबसे बड़ा होता है।
- चेतन मन में केवल वर्तमान अनुभव की स्मृतियाँ रहती हैं परन्तु अचेतन का सम्बन्ध पिछले अनुभव से होता है और अर्द्धचेतन में ऐसे अनुभव से होता है जो पिछली अनुभूतियाँ (अनुभव) तो होती हैं परन्तु आवश्यकता पड़ने पर हम उनका प्रत्यावहन कर सकते हैं।
- चेतन मन का विषय व्यक्त एवं स्पष्ट होता है। अचेतन मन में विषय पूरी तरह से दमित होते हैं और अर्द्धचेतन मन में विषय आंशिक रूप से दमित होते हैं।

4.6 मन के गत्यात्मक पहलू

मन के गत्यात्मक पक्ष से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। मूल प्रवृत्तियों से तात्पर्य वैसे जन्मजात और शारीरिक उत्तेजन से होता है जिसके द्वारा व्यक्ति के सभी तरह के व्यवहार निर्धारित किये जाते हैं। मूल प्रवृत्तियाँ दो तरह की होती हैं–

- जीवन मूल प्रवृत्ति
- मृत्यु मूल प्रवृत्ति

जीवन मूल प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के रचनात्मक कार्य करता है और मृत्यु मूल्य प्रवृत्ति में व्यक्ति सभी तरह के विध्वंसात्मक कार्य करता है। सामान्य व्यक्तित्व में इन दोनों तरह की मूल

प्रवृत्तियों में सन्तुलन पाया जाता है और जब इन परस्पर विरोधी मूल प्रवृत्तियों में संघर्ष होता है तो व्यक्ति उनका समाधान करने की कोशिश करता है। इस तरह के समाधान के लिए मुख्य रूप से तीन प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है– उपाहं, अहम्, नैतिक मन।

4.6.1 उपाहं से तात्पर्य

जन्म के समय शरीर की संरचना में जो कुछ भी निहित होता है वह पूर्णतः उपाहं होता है। अर्थात् जन्मजात और वंशानुगत है। तात्कालिक सन्तुष्टि की इच्छाएँ और विचार ही उपाहं की प्रमुख विषय सामग्री है। वातावरण की वास्तविकता से उपाहं का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। इसका नैतिक, तार्किकता, समय, स्थान और मूल्यों आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

4.6.1.1 उपाहं के कार्य

इसका मुख्य कार्य शारीरिक इच्छाओं की सन्तुष्टि से है। यह किसी भी प्रकार के तनाव से तुरन्त छुटकारा पाना चाहता है। तुरन्त तनाव को दूर करना ही सुखवाद नियम कहा गया है। दूसरे शब्दों में उपाहं अपने उद्देश्यों की पूर्ति सुखवाद नियम के आधार पर करता है। सुख की प्राप्ति और दुःख को दूर करने के लिए उपाहं के दो मुख्य कार्य हैं–

- **सहज क्रियाएँ**– ये जन्मजात और स्वयं चलने वाली होती है। जैसे पलक झपकना, छींकना आदि। सभी व्यक्ति इन क्रियाओं को करने के बाद संतोष का अनुभव करते हैं।
- **प्राथमिक क्रियाएँ**– तनाव को दूर करने के लिए प्राथमिक क्रियाएँ व्यक्ति के सामने उस वस्तु की प्रतिभा बनाती है। जैसे– एक प्यासे व्यक्ति के सामने पानी की प्रतिमा प्रस्तुत कर उसकी प्यास की सन्तुष्टि करना। यहाँ पानी की प्रतिमा उपस्थित करना एक प्राथमिक प्रक्रिया का कार्य है।

4.6.2 अहम् से तात्पर्य

यह मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा भाग है। यह जन्म के समय बच्चे में मौजूद नहीं होता है बल्कि बाद में विकसित होता है। बालक की आयु बढ़ने के साथ–साथ वह वातावरण की वास्तविकता की ओर बढ़ने लगता है। आयु बढ़ने के साथ–साथ वह 'मेरा' और 'मुझे' जैसे शब्दों का अर्थ समझने लगता है। धीरे–धीरे वह समझने लगता है कि कौन सी वस्तु उसकी है और कौन सी वस्तु दूसरों की। यह उपाहं का एक मुख्य भाग है। जो वाह्य वातावरण के प्रभाव के कारण विकसित होता है।

4.6.2.1 अहम् के कार्य

अहमं का मुख्य कार्य वाह्य वातावरण के खतरों से जीवन की रक्षा करना है। यह अपने लक्ष्य को वास्तविकता के नियम के आधार पर पूरा करता है। यह सुखवादी नियम का विरोधी नहीं है बल्कि उपयुक्त परिस्थिति के आते ही तात्कालिक सन्तुष्टि में सहायता करता है क्योंकि यह व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष है। अतः तुरन्त सन्तुष्टि के लिए उपयुक्त परिस्थिति को खोजने या उत्पन्न करने का कार्य भी करता है। अहमं को व्यक्तित्व का निर्णय लेने वाला माना गया है। यह थोड़ा चेतन, थोड़ा अर्द्धचेतन और थोड़ा अचेतन होता है। इसके द्वारा इन तीनों स्तरों पर निर्णय लिया जाता है।

4.6.3 नैतिक मन से तात्पर्य

यह मन के गत्यात्मक पक्ष का सबसे अन्तिम भाग है और यह व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, वह अपना तादात्म्य माता–पिता के साथ स्थापित करने लगता है और बच्चा यह सीख लेता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, क्या नैतिक है और क्या अनैतिक। इस तरह सीखने से नैतिक मन की शुरूआत होती है। यह आदर्शवादी सिद्धान्त द्वारा

निर्देशित और नियंत्रित होता है। बचपन में सामाजीकरण के दौरान बच्चा, माता–पिता द्वारा दिये गये उपदेशों को अपने अहम् में संजोए रखता है और यही बाद में नैतिक मन का रूप ले लेता है। यहाँ विकसित होकर एक ओर उपाहं की कामुक, आक्रामक एवं अनैतिक प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है तो दूसरी ओर अहं को वास्तविक एवं यथार्थ लक्ष्यों से हटाकर नैतिक लक्ष्यों की ओर ले जाता है। नैतिक मन व्यक्ति के कामुक एवं आक्रामक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण दमन के माध्यम से करता है। जबकि नैतिक मन दमन का प्रयोग स्वयं नहीं करता है बल्कि वह अहम् को दमन के प्रयोग का आदेश देकर ऐसी इच्छाओं पर नियंत्रण करता है और यदि अहम् इस आदेश का पालन नहीं करता है तो व्यक्ति में अनेक दोष–भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

4.6.3.1 नैतिक मन के कार्य

यह सामाजिकता तथा नैतिकता का कार्य करता है। यह अहम् के उन सभी कार्यों पर रोक लगाता है जो सामाजिक और नैतिक नहीं है। नैतिक मन का अहम् के प्रति कार्य और व्यवहार वैसा ही होता है जैसा एक बच्चे के प्रति माता–पिता का व्यवहार होता है। अतः नैतिक मन के मुख्य कार्य हैं–

- उपाहं के अनैतिक, असामाजिक और कामुक संवेगों पर रोक लगाना।
- अहमं के आवेगों को नैतिक और सामाजिक लक्ष्यों की ओर ले जाने की कोशिश करना।
- पूर्ण सामाजिक और आदर्श प्राणी बनाने के लिए प्राणी बनाने के लिए प्रयास करना।

4.6.4 उपाहं, अहम् और नैतिक मन में सम्बन्ध

उपाहं, अहम् और नैतिक मन तीनों का ही सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व से है और ये तीनों इकाइयाँ गतिशील हैं। उपाहं आनन्द (सुख) सिद्धान्त, अहम् वास्तविकता सिद्धान्त और नैतिक मन आदर्शवादी सिद्धान्त से नियंत्रित होता है। सामान्य व्यक्तित्व में इन तीनों ही अंगों में पर्याप्त मात्रा में मेल पाया जाता है। इन तीनों इकाइयों में जितनी ही खींचातानी होती है, व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना ही अधिक असामाजिक हो जाता है और उसके व्यक्तित्व का विघटन उतना ही अधिक होता है। जबकि सामान्य व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है कि इन तीनों में आपस में समायोजन बना रहे। जब इन तीनों में कोई एक या दो इकाई अधिक प्रभावशील हो जाती है तो इनमें आपस में समायोजन बिगड़ जाता है। अहम् व्यक्तित्व का केन्द्र होता है। यह उपाहं, नैतिक मन और वातावरण की वास्तविकताओं के बीच समायोजन बनाकर व्यवहार करता है। इसे हम निम्न तरह से समझ सकते हैं–

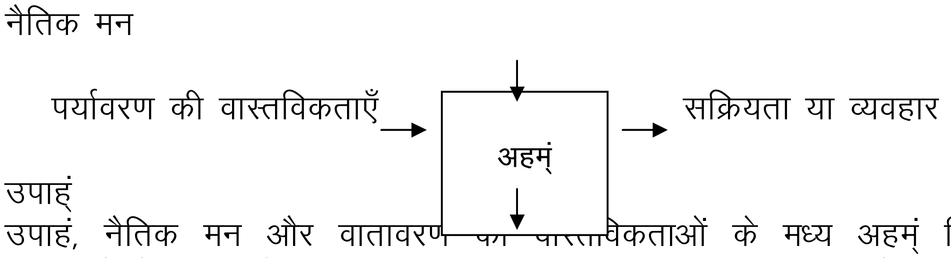

उपाहं, नैतिक मन और वातावरण की वास्तविकताओं के मध्य अहम् जितना ही अधिक समायोजन करने में सक्षम होगा, व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना अधिक स्थायी होगा। उपाहं और नैतिक मन को हम इस उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं– एक सुनसान सड़क पर एक युवती को देखकर युवक के मन में विचार आता है कि मैं इसे छेडू। इस प्रकार का विचार उपाहं है। फिर उसके मन में विचार आता है कि यहाँ छेड़ना ठीक नहीं है। यहाँ किसी ने देख लिया तो पिटाई हो जायेगी, थोड़ी दूर आगे जहाँ इसे कोई नहीं देखेगा वहाँ छेड़ना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार का विचार अहम् है। फिर उस युवक के मन में विचार आता है कि नहीं? इसे छेड़ना अच्छी बात नहीं है। यह युवती

किसी की बेटी होगी या किसी की बहन होगी। समाज में इस तरह का व्यवहार अच्छा नहीं माना जाता है। इस प्रकार का विचार नैतिक मन है।

जब व्यक्ति में उपाहं की इच्छा तीव्र होती है तो व्यक्ति सुखवादी, स्वार्थी और अनियंत्रित होता है और जब व्यक्ति में अहम् की इच्छा प्रबल होती है तो उसमें मैं की अधिकता होती है। जिस व्यक्ति में नैतिक मन तीव्र होता है वह व्यक्ति आदर्शवादी होता है। उसमें भले–बुरे का विचार अधिक होता है।

4.6.4.1 उपाहं, अहम् और नैतिक मन के बीच समानताएँ एवं विभिन्नताएॅ

फ्रायड के अनुसार एक स्वस्थ–सामान्य व्यक्ति में तीनों ही काफी समन्वित ढंग से कार्य करते हैं तथा इसमें किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होता है। इन तीनों में कुछ समानताएँ और भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं जो इस प्रकार हैं–

समानताएँ

- उपाहं, अहम्, नैतिक मन तीनों ही मन के गत्यात्मक पहलू के काल्पनिक भाग हैं जिन्हें अन्य वस्तुओं की भाँति दिखाया नहीं जा सकता है।
- किसी भी मानसिक संघर्ष में तीनों शामिल रहते हैं। अन्तर सिर्फ मात्रा का होता है।

विभिन्नताएँ

- उपाहं बच्चों में जन्म से ही मौजूद रहता है। एक वर्ष के बाद बच्चों में अहं का विकास होता है और जब बच्चा तीन–चार वर्ष का हो जाता है तब वह अपने माता–पिता के साथ सम्बन्ध (तादात्म्य) स्थापित कर लेता है तथा उनके द्वारा कही गयी बातों को ग्रहण करने लगता है। फलतः बच्चे में नैतिक मन का विकास होने लगता है।
- उपाहं आनन्द सिद्धान्त (सुखवादी), अहम् वास्तविकता सिद्धान्त तथा नैतिक मन आदर्शवादी सिद्धान्त से नियंत्रित होता है।
- उपाहं तथा पराहं को वाह्य वातावरण की वास्तविकता से कोई मतलब नहीं होता है जबकि अहम् का वाह्य वातावरण की वास्तविकता से सीधा सम्बन्ध होता है।
- उपाहं पूरी तरह से अचेतन होता है जबकि अहम् और नैतिक मन दोनों ही थोड़ा चेतन, थोड़ा अर्द्धचेतन और थोड़ा अचेतन होते हैं।
- अहम् एक समायोजक के रूप में कार्य करता है जबकि उपाहं और नैतिक मन की प्रवृत्ति परस्पर विरोधी होती है।
- उपाहं पूरी तरह से अनैतिक होता है जबकि नैतिक मन पूरी तरह से नैतिक होता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मन शब्द का क्या अर्थ है?
2. मन की कितनी अवस्थाएँ होती हैं?
3. मन के आकारात्मक पक्ष को कितने भागों में बाँटा गया है?
4. चेतन, अर्द्धचेतन व अचेतन में सबसे बड़ा भाग किसका है?
5. मन के गत्यात्मक पक्ष को कितने भागों में बाँटा गया है?
6. मूल प्रवृत्तियाँ किसे कहते हैं?
7. मूल प्रवृत्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं?.

8. मन के गत्यात्मक पहलू का कौन सा भाग जन्मजात होता है?
9. मन के गत्यात्मक पहलू का अन्तिम भाग कौन सा है ?
10. अहम् किस सिद्धांत से नियन्त्रित होता है ?
11. उपाहं के अनैतिक, असामाजिक और कामुक संवेगों पर रोक कौन लगाता है ?
12. जब उपाहं, अहम् और नैतिक मन में से एक इकाई अधिक प्रभावशाली हो जाती है तो क्या होता है ।

4.7 सार संक्षेप

इस इकाई में आपने मन के सभी पक्षों के बारे में जानकारी प्राप्त की। मन के आकारात्मक पक्षों के अन्तर्गत चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन में से कौन–सा भाग अधिक सक्रिय रहता है। मन के गत्यात्मक पक्ष के अन्तर्गत उपाहं, अहम् और नैतिक मन तीनों का ही सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व से है और सामान्य व्यक्ति में इन तीनों का ही आपस में मेल पाया जाता है। व्यक्ति इन तीनों के बीच जितना ही अधिक समायोजन का प्रयास करेगा, व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना ही अधिक स्थायी होगा।

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. मन से आप क्या समझते हैं ?
2. चेतन, अचेतन और अद्धचेतन से आप क्या समझते हैं ?
3. उपाहं के मुख्य कारक क्या हैं?
4. उपाहं, अहम् और नैतिक मन में क्या सम्बन्ध है ?
5. इन तीनों में (उपाहं, अहम्, नैतिक मन) क्या विभिन्नताएँ हैं ?
6. उपाहं, अहम् और नैतिक मन को एक उदाहरण द्वारा समझाइये ?

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

अमूर्त – निराकार
परिकल्पनात्क – कल्पना पर आधारित
आइस वर्ग – हिमखण्ड
मूल प्रवृत्तियाँ – व्यक्ति कोई व्यवहार क्यों करता है। उसका कारण क्या है। यही मूल प्रवृत्ति है।
प्रतिबन्ध – रोक
गत्यात्मक – गति सम्बन्धी
अनभिज्ञ – न जानना
स्मृति – पूर्व काल की घटनाओं को वर्तमान में लाना
दमित – दबी हुई
प्रतिमा – किसी वस्तु का आकार
तादात्म्य – सम्बन्ध

संदर्भ ग्रन्थ–

1. डॉ. अरुण कुमार सिंह, उच्चत्तर सामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास पब्लिकेशन, दिल्ली।
2. डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन,

आगरा।

3. डॉ. मुहम्मद सुलेमान, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, प्रकाशन, दिल्ली।

4. डॉ. आर.एन. सिंह, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

इकाई –5

समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान का महत्व एवं मनोरचनायें

Importance of Psychology in Social Work Practice and Defence Mechanism

इकाई की रूपरेखा

5.0 इकाई का उद्देश्य
5.1 परिचय
5.2 समाज कार्य अभ्यास के लिए मनोविज्ञान का महत्व
5.3 मनोरचनायें
5.4 मनोरचनाओं के प्रकार
5.4.1 प्रमुख मनोरचनायें
5.4.2 गौण मनोरचनायें
5.5 सार संक्षेप
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्न
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य – इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. समाज कार्य अभ्यास के लिए मनोविज्ञान के महत्व के लिए जान सकेगें।
2. मनोरचनाओं की परिभाषा को जान सकेगें।
3. मनोरचनाओं की प्रमुख विशेषताओं को जान सकेगें।
4. मनोरचनाओं की मनोरचनाओं के प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
5. मनोरचनाओं की गौण मनोरचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

5.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य के अभ्यास में मनोविज्ञान का क्या महत्व है के बारे में विस्तृत रुप से तथ्य प्रदान किये गये है। वास्तव में समाज कार्य एक सहयोगात्मक सेवा है जिसमें सेवार्थी की समस्याओं को विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया जाता है। समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान की सहायता महत्वपूर्ण है क्योंकि समाज कार्य व्यक्तियों, समूहों, समुदाय इत्यादि के बारे में अध्ययन करता है तथा सहायता प्रदान करता है। चूंकि मनोविज्ञान समाज के व्यक्तियों, समूहों तथा समाज के बारे में अध्ययन करता है। अतः समाज मनोविज्ञान की सहायता से सामाजिक कार्य कर्ता विभिन्न प्रकार की समस्याओं को हल करने में निपुण हो सकते हैं।

5.2 समाज कार्य अभ्यास के लिए मनोविज्ञान का महत्व

मनोविज्ञान का समाज कार्य अभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान है जो अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. **मनोविज्ञान द्वारा सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने में समाज कार्य कर्ता को सहायता प्राप्त होती है–** सामाजिक कार्य कर्ता समाज के व्यक्तियों का अध्ययन कर्ता है क्योकि व्यक्तियों के समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद ही व्यक्तियों को सहायता प्रदान की जा सकती है। सामाजिक कार्य कर्ता के अभ्यास में मनोविज्ञान सामाजिक क्रिया कलापों के बारे में जानकारी प्रदान करता है। जैसे भीड़ समूह, श्रोता समूह, आदि का अध्ययन मनोविज्ञान की सहायता से स्पष्ट रूप से हो सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान की सहायता से समाज कार्य कर्ता सामाजिक व्यवहार का अध्ययन आसानी से कर सकता है।

2. **समाज कार्य कर्ता को जटिल विश्लेषण में सहायता प्राप्त होती है –** सामाजिक कार्य कर्ता को विभिन्न प्रकार की जटिल प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना पड़ता है जिसमें निरीक्षण, अन्तर्दर्शन तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोग आते है। वास्तव में समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान को अपना कर समाज कार्य कर्ता विभिन्न प्रकार के जटिल विश्लेषणों को आसानी से विश्लेषित कर सकता है।

3. **वैयक्तिक अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है –** मनोविज्ञान की वैयक्तिक शाखा के अन्तर्गत व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। इस विषय में विशेष रूप से व्यक्ति–व्यक्ति के बीच पाई जाने वाली अनिवार्य भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति पूर्णरूप से समान नहीं होते हैं। चूंकि समाज कार्य अभ्यास के वैयक्तिक सेवा अभ्यास में व्यक्तियों की समस्याओं को दूर किया जाता है जिसमें मनोविज्ञान पूर्णरूप से सहायता प्रदान करता है।

4. **सामान्य व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है –** मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यावहारिक व सैद्धान्तिक दोनों पक्षों का अध्ययन करता है। व्यवहारिक पक्ष का मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं में अध्ययन किया जाता है तथा व्यक्ति के सैद्धान्तिक व्यवहार का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान में किया जाता है। चूंकि समाज कार्य मानव व्यवहार का अध्ययन करता है जिसमें मनोविज्ञान की सहायता प्राप्त करता है।

5. असमान्य व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – प्रत्येक व्यक्ति में कुछ समान्यतायें होती है अर्थात् ऐसे लक्षण होते है जो सब व्यक्तियों में समान रूप से पाये जाते है किन्तु सामान्यता के साथ–साथ प्रत्येक व्यक्ति में अपनी विशेषता भी होती है। जिसको उस व्यक्ति की विशिष्टता या असमान्यता कहा जा सकता है। इसके अध्ययन में समाज कार्य कर्ता के अभ्यास में मनोविज्ञान पूर्ण रूप से सहायता करता है जिससे व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों को ठीक करने में समाज कार्य कर्ता अपने आपको पूर्ण पाता है।

6. बालकों के मनोविज्ञान के अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है – समाज कार्य अभ्यास में यदि कोई बालक सेवार्थी के रुप में आता है तो उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने में मनोविज्ञान सहायता प्रदान करता है। जैसे गर्भ से शिशु की अवस्था 12 वर्ष तक के आयु बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास, उसकी शिक्षा दीक्षा, सुधार, भाषा विकास, मानसिक शक्तियों, व्यक्तित्व, बुद्धि, आदि के अध्ययन में मनोविज्ञान पूर्ण रूप से अपना योगदान देता है। जिससे समाज कार्यकर्ता बालकों की समस्याओं को समझ पाते है तथा समस्याओं को दूर कर सकते है।

7. किशोर मनोविज्ञान के अध्ययन में सहायता प्राप्त होती है – मनुष्य के जीवन में किशोर अवस्था सबसे महत्वपूर्ण होती है जो सामान्यतः 12 वर्ष से 21 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में शारीरिक तथा मानसिक अस्तर पर क्रांन्तिकारी परिवर्तन होते है। व्यक्ति की इस अवस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदि विभिन्न प्रकार के विकास का विशद्रूप से अध्ययन मनोविज्ञान के किशोर मनोविज्ञान नामक शाखा के अन्तर्गत किया जाता है। चूंकि किशोर अवस्था में व्यक्ति अपने आपको कभी–कभी असमायोजित महसूस करता है और वह समाज कार्यकर्ता के पास समस्या को लेकर आता है। जिस हेतु सामाजिक कार्यकर्ता किशोर मनोविज्ञान की सहायता प्राप्त कर समस्याओं को दूर करने का प्रयास करता है।

8. व्यवहारिक पक्ष का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा व्यवहार मनोविज्ञान है इस शाखा के अन्तर्गत जीवन के व्यवहारिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की इस शाखा की अनेक शाखायें बन चुकी है जिनमें मनोविज्ञान के व्यवहारिक पक्ष का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। व्यवहारिक मनोविज्ञान समाज कार्य अभ्यास में विशेष सहायता प्रदान करता है जिससे सामाजिक कार्य कर्ता निर्देशन, निदान, चयन, विज्ञापन, कानून आदि के क्षेत्रों में अपनी विशेष भूमिका निभाता है।

9. शरीर रचना एवं शरीर क्रिया प्रणाली का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है। मनुष्य का व्यवहार उसकी शारीरिक स्थिति से प्रभावित होता है अतः मनुष्य के व्यवहार के समुचित अध्ययन के लिए उसकी शारीरिक रचना एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन भी आवश्यक है। चूंकि समाज कार्य व्यक्तियों की समस्याओं से सम्बन्धित है जिसमें व्यक्तियों की शरीर रचना एवं शरीर क्रिया प्रणाली के बारे में जानकारी होना समाज कार्यकर्ता को आवश्यक है। इस हेतु मनोविज्ञान समाज कार्य अभ्यास में सहायता प्रदान करता है।

10. लोक व्यवहार का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है – मनोविज्ञान किसी देश के आदिवासियों के अन्धविश्वासों, पौराणिक व्यवस्थाओं, संगीत, कला, धर्म आदि में निहित मनोविज्ञानिक सिद्धान्तों की व्याख्या करता है तथा उसकी तुलना आज के सामाजिक लोक व्यवहार से करता है। समाज कार्य समाज के लोक व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी रखने की कोशिश करता है जिसमें मनोविज्ञान अपनी सहायता देता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि मनोविज्ञान का महत्व समाज कार्य अभ्यास में अति महत्वपूर्ण है जिससे समाज कार्य अभ्यास व्यक्तियों, समूहों, समुदायों की समस्याओं को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

5.3 मनोरचनायें

मनोरचनायें मुख्य रूप से अन्तर्द्वन्द उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से व्यक्ति को समायोजित करने में सहायता प्रदान करती हैं इससे व्यक्ति में अहम् की उपयुक्तता बनी रहती है। व्यक्ति उपयुक्तता एवं योग्यता की भावना को बनाये रखता है किन्तु वास्तव में वह प्रतिबल का सामना वास्तविकता के स्तर पर नही करता है। अर्थात् मनोरचनाओं में व्यक्ति वास्तविकता को नकारता है। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति यह मानने को तैयार नही होना चाहता है कि उसकी असफलता का कारण उसकी स्वयं की अयोग्यता है बल्कि वह अपनी कथित असफलताओं का कारण किसी व्यक्ति, परिस्थिति या घटना को मानकर स्वयं को अपराध भाव से मुक्त कर लेता है लेकिन वास्तविकता यह नही होती है। अंगूर खट्टे हैं कथानक इसी पर आधारित है।

मनोरचना की परिभाषा अग्रलिखित है –

मेक्डॉनल्ड लैडिल के अनुसार, मनोरचनायें वे बाधायें है जो अचेतन समान विरोधी प्रकृतियों को चेतना में जाने से रोकती है।

पेज के अनुसार, मनोरचनायें व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द, निराशाओं तथा हीनता की भावनाओं से बचने का एक अच्छा साधन है। इसमें सुरक्षात्मक पहलू भी है तथा पलायन भी। लगभग हर सामान्य कहे जाने वाले व्यक्ति के द्वारा मानसिक रूप से मनोरचना का प्रयोग किया जाता है।

मनोरचनायें असफलता से राहत पहुंचाती है, आन्तरिक सन्तुलन बनाये रखती है तथा किसी प्रकार की असमान्य स्थिति में व्यक्ति का सन्तुलन बनाये रखने में मदद् करती है। किन्तु जब इन सुरक्षात्मक उपायों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जाता है एवं ये व्यक्ति के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाते है तो असमान्यता के चिन्ह बनकर प्रकट होने लगते है। व्यक्ति हर असफलता को नकारने लगता है, पलायनवादी हो जाता है। अपने उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयास करने लगता है।

इस प्रकार सुरक्षात्मक उपाय जब स्वयं में उद्देश्य बन जाते है तब व्यक्ति वास्तविकता के साथ भ्रमित हो जाता है, तब यह असमान्य लक्षण बन जाते है। व्यक्ति के व्यवहार में सन्तुलन के लिए यह आवश्यक है कि इदम्, अहम् व पराहम् में सन्तुलन बना रहे। अहम् की भूमिका इतनी मजबूत होनी चाहिए कि इदम् की नैसर्गिक, असमाजिक एवं पाशविक इच्छाओं एवं पराहम् की नैतिक मान्यताओं के मध्य सन्तुलन बनाये रखे तभी व्यक्ति सन्तुलित एवं समायोजित होगा। जब इदम्, अहम् व पराहम् के बीच संघर्ष की स्थिति आ जाती है, व्यक्ति पर दबाव बढ़ जाते है, आन्तरिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते है तभी वह इन सुरक्षात्मक उपायों का अपने जीवन में चेतन अथवा अचेतन स्तर पर प्रयोग करके अपने व्यक्तित्व को विघटित होने से बचा लेता है और उसे किसी भी सामाजिक स्थिति में यह अनुभव नहीं होने पाता कि वह सामाजिक रूप से अयोग्य या असमर्थ है।

5.3.1 मनोरचना की विशेषतायें

मनोरचना की अग्रलिखित विशेषतायें है –

1. मनोरचनायें व्यक्ति को चिन्ता से मुक्त करती हैं।
2. यह व्यक्ति के अहम् की रक्षा करती हैं।
3. यह व्यक्ति की उपयुक्तता तथा योग्यता की भावना को उसके अन्दर बनाये रखती हैं।
4. यह व्यक्ति के समग्रता की रक्षा करने में सहायक होती हैं।
5. मनोरचनायें एक प्रकार की मानसिक क्रिया विधि है तथा इसका प्रयोग अचेतन अथवा अर्द्धचेतन स्तर पर होता है।

6. सुरक्षात्मक उपायों द्वारा व्यक्ति को अपने अन्तरनिहित तनावों, अन्तर्द्वन्दों तथा संघर्षों को कम करने में सहायता मिलती है।
7. व्यक्ति के समायोजन को तत्कालिक रूप से सरल बना देती हैं।
8. मनोरचनायें बचत पूर्ण होती है, इससे अन्तर्द्वन्द पर व्यय होने वाली शक्ति में बचत होती है।
9. व्यक्ति मनोरचनाओं के प्रयोग के प्रति जागरूक नहीं होता है।
10. मनोरचनाओं के अतिरिक्त प्रयोग से व्यक्ति का वास्तविकता से संपर्क टूट सा जाता है तथा व्यक्ति सुसमायोजित भी हो जाता है।

5.4 मनोरचनाओं के प्रकार

भिन्न–भिन्न व्यक्तियों को भिन्न–भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उसी प्रकार से वह अचेतन स्तर पर भिन्न–भिन्न सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग करके समायोजन का प्रयास करते है। इसकी विशेषता यह है कि एक ही व्यक्ति मनोरचनाओं का प्रयोग कर सकता है। ब्राउन ने मानसिक रचनाओं को दो प्रमुख भागों में बांटा है – 1. प्रमुख मनोरचनायें 2. गौण मनोरचनायें।

5.4.1 प्रमुख मनोरचनाओं की व्याख्या

1. दमन – जब व्यक्ति अन्तर्द्वन्द की स्थिति में होता है तो वह अंश जो ईगो व सुपरईगो को सहनीय नहीं होता है, उसे वह अचेतन में धकेल देता है, यही प्रक्रिया दमन है। उदाहरण के लिए व्यक्ति में अनेक प्रकार के ऐसे आवेग व इच्छाएं होती है जिन्हें वह चेतन स्तर पर सामाजिक रूप से व्यक्त नही कर पाता है क्योंकि उसे यह डर होता है कि अभिव्यक्ति उसकी सामाजिक छवि एवं प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाएगी जो उसे असहनीय होगा अतः वह इन्हें जानबूझ कर अचेतन में परे धकेल देता है। इसीलिए इसे चयनात्मक विस्मरण भी कहा जाता है। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक इसे विस्मरण नही स्मरण की घटना मानते है। यद्यपि दमन के माध्यमों से चेतन संघर्ष का समाधान होता है किन्तु यह समाधानात्मक क्रिया अचेतन होती है।

2. शमन – 'शमन' के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छा से जानबूझ कर किसी अप्रिय घटना या विचार को चेतन से हटा देता है जबकि दमन की प्रक्रिया में दुःखद एवं असामाजिक इच्छाओं का दमन कर दिया जाता है।

पेज द्वारा 'शमन' एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। जैसे–किसी विद्यार्थी की अपनी लापरवाही से कोई दुर्धटना हो जाती है और वह उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है, वह बार–बार उस दुर्घटना की स्मृति से विचलित हो जाता है अतः वह जान–बूझकर इस दुर्घटना की कष्टकारी स्मृति से स्वयं को हटाने के लिए दूसरी बातों पर ध्यान देने का प्रयत्न करता है ताकि घटना को वह भूल जाए तो वह 'शमन' की प्रक्रिया में रत है। इसके विपरीत इस दुर्घटना की स्मृति स्वयं ही विलीन हो जाती है जिससे यह विद्यार्थी चेतन स्तर पर इस घटना को याद करने में असमर्थ रहता है यही दमन प्रक्रिया है। किन्तु दमित स्मृतियाँ हमेशा के लिए समाप्त नही हो जाती है। केवल अचेतन से चेतन में आने का अवरोध हो जाता है।

3. प्रतिगमन – प्रतिगमन का तात्पर्य पीछे की ओर लौटने से है इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक अवस्था (बाल्यावस्था) की ओर व्यक्तित्व का प्रतिगमन पाया जाता है। पलायन करता है। प्रायः इनये बच्चे के आगमन पर माता–पिता का ध्यान उस ओर छोटे बच्चे की तरह रोना, मचलना, चलना एवं जिद करना इत्यादि अर्थात् प्रतिगमन के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि अपनी अयोग्यताओं एवं वातावरणीय प्रतिबन्धों के कारण करने में असमर्थ होता है। अतः इन वातावरण की विसंगतियों के कारण उसमें उत्पन्न हताशा, कुण्ठा एवं तनाव उसे अपने अहं की सुरक्षा हेतु

बाल्यावस्था की प्रवृत्तियाँ को अपनाने के लिए प्रेरित करते है और जीवन के प्रारम्भिक वर्षो की ओर व्यक्तित्व का प्रतिगमन पाया जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति का अपनी तात्कालिक समस्याओं से सम्पर्क टूट जाता है जिससे वह उनकी ओर अधिक काल्पनिक रूप से प्रतिक्रियाएँ करने लगता है।

4. **रूपान्तरण** – इस मनोरचना के अन्तर्गत अवदमित अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति विभिन्न शारीरिक लक्षणों के रूप में होती है। विभिन्न शारीरिक रोगी के लक्षण गत्यात्मक शारीरिक या ज्ञानेन्द्रिय जन्य आदि किसी प्रकार के हो सकते है। इसके अन्तर्गत दमित ऊर्जा शारीरिक रोगों के क्रियात्मक लक्षणों में परिवर्तित होती है।

इस मनोरचना का मुख्य आधार यह है कि इसमें व्यक्ति के अन्दर के संघर्ष एवं द्वन्द्वों का व्यक्ति के द्वारा दमन करने का प्रयास किया जाता है किन्तु यह दमन असफल होता है, यही दमित इच्छा परिवर्तित होकर शारीरिक रोगों के लक्षणों के रूप में सामने आ जाती है। इसीलिए इन मनोरचना को भी कहा जाता है। इस दमन के परिणामस्वरूप जो शारीरिक रोग के लक्षण उत्पन्न होते है उसका आधार मात्र मनोवैज्ञानिक होता है।

5. **उदातीकरण**

मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार, व्यक्ति की कामजनित विफलता प्रायः क्रियात्मक, कलात्मक, साहित्यिक एवं वैज्ञानिक कार्यों में परिणित हो जाती है।

बहुत–सी इच्छाएँ एवं आवश्यकताएँ ऐसी होती है जिनकी अभिव्यक्ति हम सामाजिक बन्धन तथा मार्यादाओं के कारण नहीं कर पाते है। उदासीकरण अथवा उन्नयन द्वारा इन अमान्य इच्छाओं की पूर्ति समाज से मान्यता प्राप्त रचनात्मक क्रियाओं द्वारा की जाती है। ऐसी इच्छाएं तथा आवश्यकताएं जिनकी स्वाभाविक पूर्ति समाज द्वारा मान्य नहीं होती है उनका स्थानापन्न ऐसी क्रियाओं द्वारा किया जाता है जो समाज द्वारा मान्य होती है, पुरुस्कृत होती है तथा समाज में व्यक्ति का मान बढ़ाती है।

6. **युक्तिकरण** – इस मनोरचना के अन्तर्गत व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्यों को उचित ठहराने के लिए अवास्तविक तर्क तथा कारण प्रस्तुत करने लगता है। अपने हर अच्छे–बुरे कार्यो के लिए उसके समक्ष एक तर्क उपस्थित रहता है।

इस प्रकार युक्तिकरण में जब व्यक्ति कोई क्रिया कर चुकता है और उसे अपने व्यवहार की अनुपयुक्तता स्वयं ही समझ में आ जाती है तो वह अपनी क्रियाओं के लिए युक्तियां तक प्रस्तुत करता है। वह अपनी गल्तियों के लिए अवास्तविक तर्क प्रस्तुत करता है। वास्तविकता यह है कि वह अपनी अयोग्यता के लिए स्वयं को उत्तरदायी स्वीकार नही करना चाहता है। जैसे विद्यार्थी परीक्षा में फेल होने पर परीक्षक को दोष देता है, प्रश्न को कठिन बताता है, कोर्स से बाहर प्रश्नों को बताता है किन्तु यह स्वीकार नहीं करना चाहता है, स्वयं की अयोग्यता या लापरवाही, न पढ़ना उसकी असफलता का कारण है।

7. **प्रतिक्रिया निर्माण** – कुछ व्यक्ति अपनी इच्छाओं और भावनाओं के अनुरूप ही व्यवहार करते है जब कि कुछ व्यक्तियों के मन में कुछ होता है और व्यवहार में कुछ और, व्यक्ति अपनी अन्तर्निहित इच्छा के विपरीत व्यवहार करता है। ब्राउन ने इसे क्षतिपूर्ति कहा है। जिन व्यक्तियों में स्वयं ही अपनी अपराध भावना पर नियन्त्रण पाना सम्भव नही होता है वह नियम धर्म में कुछ ज्यादा ही कठोर दिखायी पड़ते है।

8. **अवरोधन** – अवरोधन में अमान्य सामाजिक कार्यो को नही किया जाता है किन्तु यह क्रिया चेतन स्तर पर होती है। अवरोधन वह सुरक्षात्मक उपाय है जिसमें एक भावना या इच्छा दूसरी भावना या इच्छा के उपस्थित होने के कारण विस्मृत हो जाती है। इस प्रकार अवरोधन के द्वारा दुःखद, अप्रिय व

अनैतिक इच्छाओं को भुलाया जा सकता है। इस रक्षात्मक उपाय द्वारा अन्तर्द्वन्द को काफी हद तक हटाया जा सकता है।

5.4.2 गौण मनोरचनाओं की व्याख्या

1. **आत्मीकरण** – सरल शब्दों में, आत्मीकरण का अर्थ है कि इसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति जैसा बनना चाहता है। हमारे दैनिक जीवन में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है; जैसे– एक लड़का अपने बाप की तरह तथा एक लड़की अपनी माँ की तरह बनना चाहती है। एक कॉलेज छात्रा हेमामालिनी बनना चाहती है; उसी तरह के बाल रखने की कोशिश करती है। दूसरे शब्दों में, वह उसी का अनुसरण करना प्रारम्भ कर देती है, जिनका सम्बन्ध इस मनोरचना से होता है। आत्मीकरण में व्यक्ति दूसरों के गुणों को स्वयं में रख लेता है।

2. **प्रक्षेपण** – पेज के शब्दों में, ‘‘अपनी प्रवृत्तियों एवं गुणों को दूसरों पर आरोपित करना एवं देखना प्रक्षेपक कहलाता है।‘‘ वारेन के अनुसार, ‘‘यह वह प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति बाह्म जगत् में अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का आरोपण करता है।‘‘ हीली, वार्नर व बॉवर्स ने इसे एक प्रकार की सुरक्षात्मक, प्रक्रिया माना है जिसके अनुसार अहम् बाह्म जगत् में अपनी अचेतन इच्छाओं को लाता है। फ्रायड के अनुसार, प्रक्षेपण के माध्यम से व्यक्ति अपराध भावना से छुटकारा प्राप्त करता है।

उदाहरण – बेग्बी ने इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसने एक ऐसी माँ का उल्लेख किया है जो अपनी लड़की को सर्वगुण सम्पन्न देखने की कामना रखती थी लेकिन जब ऐसा सम्भव न हो सका तो उसने अपनी पुत्री को परेशान एवं डॉटना फटकारना सीख लिया। इसी प्रकार एक स्त्री की यह शिकायत थी कि वह व्यक्ति मुझे बुरी दृष्टि से देखता है तथा मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है। लेकिन जब उस व्यक्ति से अनेक तरीकों से पूछा गया तो वह वास्तव में उसको जानता भी नहीं था। स्त्री से अधिक जानकारी जब मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई तो यह ज्ञात हुआ कि यह स्त्री अचेतन रूप से उस व्यक्ति विशेष से प्यार करती है तथा सम्भोग की इच्छा रखती है। इस प्रकार प्रक्षेपण के माध्यम से एक व्यक्ति अपनी असामाजिक एवं अवांछित इच्छाओं को विचारों, आवेगों आदि को अन्य व्यक्तियों या पदार्थो पर आरोपित करती है।

जब प्रक्षेपण–प्रक्रिया कल्पना की सीमा तक पहुँच जाती है तब वह व्यक्ति अनेक प्रकार के विभ्रमों का शिकार हो जाता है। इसका दण्डात्मक व्यामोह में काफी हाथ रहता है।

3. **अन्तःक्षेपण** – अन्तःक्षेपण प्रक्षेपण की प्रतिकूल मनोरचना है। इसमें आरोपण करने के स्थान पर व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व–गुणों को अपने व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण समझने लगता है। प्रक्षेपण में एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के अनुरूप होना चाहता है। लेकिन अन्तःक्षेपण में दूसरे व्यक्ति को अपना ही एक अंग मानता है। मिलर के शब्दों में, ‘‘अन्तःक्षेपण यह प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अपने वातावरण के गुणों को अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित करता है।‘‘ इसमें व्यक्ति अपनी अनेक दुःखद अनुभूतियों से बचाव करता है। अन्तःक्षेपण के अनेक उदाहरण दैनिक जीवन में हमें मिलते हैं, जैस– एक छात्र का यह समझना कि मैं ही राजेश खन्ना हूँ। इसी प्रकार कभी–कभी यह समझता है कि मैं ही पिता हूँ।

4. **स्थानान्तरण** – अपने मानसिक संघर्ष से बचने के लिए प्रायः हम स्थानान्तरण का उपयोग करते है। ब्राउन के अनुसार, ‘स्थानान्तरण वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रेम की भावना का एक व्यक्ति विशेष या वस्तु–विशेष से हटकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर चला जाता है।’ एक व्यक्ति अपना गुस्सा अपनी स्त्री पर प्रकट करने के स्थान पर अपने सहायक पर करता है तो यह एक प्रकार का स्थानान्तरण हुआ। क्योंकि यहाँ एक भावना का एक व्यक्ति–विशेष से हटकर अन्य व्यक्ति पर चला

गया है। फ्रायड ने स्थानान्तरण को मनोविश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंग माना है, उदाहरणस्वरूप – एक व्यक्ति एक लड़की के प्रेम में असफल हो जाने के बाद कुत्ते से ही प्रेम करने लगा अर्थात् उसका प्रेमभाव प्रेमिका से हटकर कुत्ते पर चला गया।

5. विस्थापन – विस्थापन में व्यक्ति की किसी प्रेरणा या संवेग को मौलिक रूप में हटाकर किसी ऐसे लक्ष्य की ओर प्रेरित कर दिया जाता है जिससे उसका कोई सम्बन्ध नही है। पेज के शब्दों में, ''विस्थापन वह मनोरचना है जिसके द्वारा एक संवेग, जो कि मौलिक रूप से किसी वस्तु या विचार से सम्बन्धित होता है तथा अन्य विचार या वस्तु पर स्थानान्तरित हो जाता है।'' सामान्यतया विस्थापन सभी लोगों के जीवन में किसी न किसी रूप में अवश्य दिखाई पड़ता है। इससे सामान्यतया कोई विशेष हानि नही होती। अगर बहुत अधिक सीमा तक विस्थापन हो जाएं तो मानसिक रोग की सम्भावना हो जाती है। अचेतन मन प्रायः विस्थापन मनोरचना के प्रयोग के माध्यम से दमित एवं कुठित इच्छाओं को प्रकट करता है। विस्थापन में हमारी मनःशक्ति धारा एक विषयवस्तु से हटकर दूसरी विषयवस्तु पर चली जाती है, जिसके परिणामस्वरूप अनावश्यक विषयवस्तु आवश्यक तथा अनावश्यक विषयवस्तु आवश्यक प्रतीत होने लगती है। विस्थापन के द्वारा दमित इच्छाओं एवं दमन करने की शक्ति में समझौता होता है। प्रायः विस्थापन–क्रिया स्वप्न व विक्षिप्तावस्था में चलती है। इस प्रकार की क्रिया के माध्यम से व्यक्ति अपनी इच्छाओं के वास्तविक व मूल स्वभाव को नही पाते।

6. क्षतिपूर्ति – क्षतिपूर्ति के माध्यम से व्यक्ति अपनी हीनता व अनुपयुक्तता की भावना से रक्षा करता है। यह एक प्रकार की समायोजनात्मक प्रवृत्ति है जिसके माध्यम से व्यक्ति उन इच्छाओं व भावनाओं को, जिनसे कि उनमें विफलता, आकुशलता या हीनता उत्पन्न होती है, उन्हें अन्य सन्तोषजनक स्थिति के साथ चेतन या अचेतन रूप से पूर्ति करता है, उदाहरणस्वरूप, जब कोई व्यक्ति एक क्षेत्र में असफलता प्राप्त करता है तो यह हीनता के निराकरण के लिए वह किसी अन्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है।

7. अतिपूर्ति – अतिपूर्ति क्षतिपूर्ति का ही एक रूप है। इसमें व्यक्ति हीन–भावों से मुक्त होने के लिए किसी गुण या वस्तु को अत्यधिक मात्रा में प्राप्त करके क्षतिपूर्ति करता है। काना, बहरा, लंगड़ा, कुरूप, कोढ़ी, रोगी आदि में हीन ग्रन्थि का होना स्वाभाविक होता है। इस प्रकार के व्यक्ति संगीत, नृत्य, लेख, कविता, धन, जमीन या मकान आदि के माध्यम से क्षतिपूर्ति करते हैं।

8. प्रत्याहार – जब व्यक्ति को अपने पूर्व–अनुभव के आधार पर किसी स्थिति से असफलता या आलोचना का भय रहता है तो वह इस मनोरचना का सहारा लेता है। इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति लज्जालु, एकाकी एवं भीरू स्वभाव का हो जाता है। बर्नहम ने इस अवस्था को मिथ्या–हीन बुद्धि कहा है। यह अवस्था मुख्यतः वयस्कों की अपेक्षा बालकों में देखी जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति किसी कार्य में रूचि नहीं लेते क्योंकि इनकी बुद्धि बहुधा दुर्बल होती है। ऐसा व्यक्ति अक्सर कहता है कि 'मैं नही जानता', 'यह कठिन कार्य है', 'मैं नहीं कर सकता' आदि। ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन एवं प्रशिक्षण आदि के माध्यम से ठीक भी किया जा सकता है।

9. कल्पना–तरंग – प्रायः सभी व्यक्ति जीवन की अनेक कमियों की पूर्ति कल्पना के माध्यम से करते हैं। कल्पना के माध्यम से व्यक्ति अपने संघर्षो एवं विफलताओं को कम करते हैं। इसका उपयुक्त उदाहरण दिवास्वप्न है। मानव किशोरावस्था में सदैव दिवास्वप्न ही देखता रहता है क्योंकि इस आयु में वह एक अत्यन्त तीव्र मानसिक उथल–पुथल से गुजरता है। कल्पना–तरंग सामान्यतया वास्तविक कार्य का स्थानान्तरण न बनकर केवल मनोरंजन आदि का रूप लेती है। ये अधिकतर हानिप्रद नहीं होती। अचेतन रूप से विचार क्रिया को निर्धारित करती है। इस प्रकार की मनोरचना से ज्ञात होता है कि व्यक्ति–विशेष का जीवन अपूर्ण है तथा उसे निराशा मिली है। व्यक्ति कल्पना–तरंग के माध्यम से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करता है। व्यक्ति इस प्रकार की क्रिया में वास्तविक जगत् को छोड़कर

कल्पना–जगत् में ही आनन्द विभोर होता है, जैसे–एक दुर्बल व्यक्ति अपने को पहलवान की कल्पना करके प्रसन्न होता है।

10. वास्तविकता से पलायन – इससे व्यक्ति अपने चारों ओर के वातावरण की ओर कोई ध्यान ही नही देते हैं। वे अपनी आलोचना नही सुनते हैं तथा कान बन्द किये रहते है। उन्हें वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नही होता। इस प्रकार के व्यक्ति अपनी वास्तविकताओं को स्वीकार नहीं करते। यह व्यक्ति कभी भी अपनी आलोचना सुनने को तैयार नही होते। कठिन निर्णयों को वह कल पर टालने का प्रयास करते हैं, जैसे – अगर परिवार का प्रिय व्यक्ति मर जाता है जो कुछ व्यक्ति अनेक विश्वासों से यह समझाने का प्रयत्न करते है कि मृत व्यक्ति जीवित है। मृत व्यक्ति के कपड़ों, बिस्तर, रहने के स्थान आदि को ठीक करते हैं तथा कभी–कभी उनसे बातचीत भी करते हैं– ये सभी वास्तविकता से पलायन के उदाहरण है।

11. नकारात्मकता – इस प्रकार की मनोरचना के माध्यम से व्यक्ति किसी विशेष वस्तु, क्रिया या व्यक्ति के प्रति नकारात्मक बन जाता है। जैसे बालकों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वह उन कार्यो को करता है जिसे माँ–बाप करने के लिए मना करते हैं। एक लड़की ने बताया कि जब वह छोटी थी तो पांच भाई–बहिनों की गलतियों का दोष उसके मत्थे मढ़ा जाता था। इसी के परिणामस्वरूप उसने निर्णय कर लिया कि वह माँ–बाप के किसी भी प्रश्न का उत्तर नही देगी। धीरे–धीरे उसकी आदत पड़ गई कि माँ–बाप की किसी भी राय के प्रति विद्रोह करे। इस प्रकार नकारात्मकता अक्सर अनुचित व पक्षपातपूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप बनती है। ऐसे लोगों में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है जो आत्म–केन्द्रित व अत्यधिक लाड़–प्यार से पले होते है।

5.5 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में मनोविज्ञान का समाज कार्य अभ्यास में महत्व पर प्रकाश डाला गया तथा इसी अध्याय में विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से बताया गया है कि मनोविज्ञान समाज कार्य अभ्यास में किस प्रकार अपनी सहायता प्रदान करता है। जब व्यक्ति अपने जीवन में विफलताओं का सामना करता है तो मानसिक रूप से उसके व्यवहार में चिन्ता की अधिकता उसके अन्तर्मन में कुण्ठा और अनुपयुक्तता की भावना भर देती है। यह भी सत्य है कि व्यक्ति स्वयं को हारा हुआ नहीं समझना चाहता है, अपनी पराजय या असफलता को स्वीकार करने में उसके अहं को ठेस पहुंचती है अतः अपने अहं की रक्षा के लिए वह अर्द्धचेतन एवं अचेतन स्तर पर प्रयास करता है। अपनी अहं की रक्षा हेतु जो प्रयास व्यक्ति करता है, उसे मनोरचनाएं कहते हैं। किन्तु यदि इन अह ंके सुरक्षात्मक उपायों को व्यक्ति आवश्यकता से अधिक प्रयोग करने लगता है तो उसके जीवन में धीरे–धीरे कुसमायोजन उत्पन्न होने लगता है, व्यक्ति में हीनता की भावना भी पनपने लगती है।

5.6 अभ्यास प्रश्न

1. समाज कार्य अभ्यास में मनोविज्ञान के महत्व पर एक निबन्ध लिखिए?
2. मनोरचनाओं से आप क्या समझते हैं ?
3. मनोरचनाओं की विशेषताओं के बारे में लिखिए?
4. मनोरचनायें कितने प्रकार की होती है?
5. प्रमुख मनोरचनाओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?
6. गौण मनोरचनाओं पर एक वृहद निबन्ध लिखिए?
7. शमन, दमन, अन्तःक्षेपण पर टिप्पणी लिखिए?

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

SocialWork Practice	समाज कार्य अभ्यास	Projection	प्रक्षेपण
Mental Mechanism	मनोरचनायें	Introjection	अन्तःक्षेपण
Repression	छमन	Transference	स्थानान्तरण
Suppression	शमन	Displacement	विस्थापन
Inhibition	अन्तर्बाधा	Compensation	क्षतिपूर्ति
Regression	प्रतिगमन	Over compensation	अतिपूर्ति
Conversion	रूपान्तरण	Withdrawl	प्रत्याहार
Sublimation	ङदातीकरण	Phantancy	कल्पना–तरंग
Rationalization	युक्तिकरण	Evation	पलायन
Reaction formation	प्रतिक्रिया निर्माण	Negative	नकारात्मकता
Identification	आत्मीकरण	Experiment	प्रयोग

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, ओमदत्त, आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें, राजीव प्रकाशन मेरठ, वर्ष 2005, पेज 6–8.
2. सिंह, लाभ एवं तिवारी गोविन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2001, पेज 147–172.

इकाई–6

अभिवृत्ति
Attitude

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 परिचय
6.2 अभिवृत्ति की अवधारणा
6.3 अभिवृत्ति की विशेषताएँ
6.4 अभिवृत्ति निर्माण
6.5 अभिवृत्ति के संघटक तत्व
6.6 पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन
6.7 सार संक्षेप
6.8 अभ्यास प्रश्न
6.9 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपके लिए यह सम्भव होगा –

- अभिवृत्ति की अवधारणा को समझना एवं उसकी विशेषताओं के बारे में बताना।
- अभिवृत्ति निर्माण एवं उसके अंगों को बताना।
- पूर्वाग्रह द्वारा कैसे अभिवृत्ति परिवर्तित होती है, को समझना।

6.1 परिचय

अभिवृत्ति सामाजिक मनोविज्ञान का एक केन्द्रीय विषय है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों की रूचि विगत कई दशकों से अभिवृत्ति में रही है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि मनुष्य के व्यवहार को अभिवृत्ति बहुत प्रभावित करती है। अभिवृत्ति का अभिप्राय सामाजिक विश्व के किसी पक्ष के हमारे मूल्यॉंकन से है (फैजिया व रॉस्कॉस–एवोल्डसेन, 1994; ट्रेसर व मार्टिन, 1996)– सामाजिक विश्व के कोई और हर तत्व मुद्दे, विचार, व्यक्ति, सामाजिक समूह, वस्तु–के प्रति हम जिस हद तक सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ रखते हैं। (रॉबर्ट ए. बैरन एवं डौन बायर्न 2004 : 106)

अभिवृत्ति के मनोविज्ञान में निम्नॉंकित आधारभूत समस्याएँ हैं (शेरिफ और शेरिफ 1969 : 333)– अभिवृत्ति के क्या गुण हैं? अवलोकित व्यवहार के किस तरीके से किसी अभिवृत्ति को जाना जा सकता है? वैध अभिवृत्ति सूचकों को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की शोध प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है? एक दी गई वस्तु के प्रति एक व्यक्ति की अभिवृत्ति दूसरे व्यक्ति की अभिवृत्ति से तुलना करने के लिए कौन सी उपयुक्त पैमाना है? शेरिफ और शेरिफ का मानना है कि किसी भी चीज का माप करने के लिए हमें माप की जाने वाली वस्तु की विशेषताओं को जानना चाहिए।

एक बार अभिवृत्ति का निर्माण हो जाने पर उसमें परिवर्तन लाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम अभिवृत्ति की अवधारणा को विविध विद्वानों की परिभाषाओं द्वारा समझने का प्रयास करेंगे। हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि अभिवृत्तियों का निर्माण कैसे होता है, क्या वे सचमुच मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं, अभिवृत्तियो के क्या–क्या गुण हैं और क्या वे सचमुच कभी–कभी परिवर्तित होती है, इत्यादि।

6.2 अभिवृत्ति की अवधारणा

अभिवृत्ति के सन्दर्भ में विविध सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों/उपागमों के चलते मनोवैज्ञानिकों तथा समाज–मनोवैज्ञानिकों में उसकी कोई एक सर्वमान्य परिभाषा के सन्दर्भ में एकमत्य नहीं है।

आलपोर्ट (1935) ने अभिवृत्ति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "अभिवृत्ति मानसिक तथा स्नायुविक तत्परता की एक स्थिति है, जो अनुभव द्वारा निर्धारित होती है और जो उन समस्त वस्तुओं तथा परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को प्रेरित व निर्देशित करती है, जिनसे कि वह अभिवृत्ति सम्बन्धित है।"

आलपोर्ट की उपरोक्त परिभाषा को विश्लेषित किया जाये तो स्पष्ट होता है कि यह मानसिक एवं स्नायुविक तत्परता की एक स्थिति है तथा किसी वस्तुओं या परिस्थितियों के सन्दर्भ में व्यक्ति के मन के भाव पक्ष या मूल्यांकन पक्ष को अभिव्यक्त करती है। चूँकि यह अनुभवों द्वारा निर्धारित होती है अतः जन्मजात नहीं होती अपितु मनुष्य के अनुभवों द्वारा निर्धारित या प्राप्त की जाती है। आलपोर्ट ने मूल रूप से अभिवृत्ति को विशिष्ट प्रकार से अनुक्रिया करने के एक समुच्चय (सेट) के रूप में माना है।

उन्होंने इसके पाँचों महत्वपूर्ण पक्षों को अपनी परिभाषा में समाहित किया है। ये पाँचों पक्ष हैं– (1) अभिवृत्ति को मूर्तरूप में देखना संभव नहीं है। इसके दो मुख्य पक्ष होते हैं– मानसिक तथा

स्नायुविक। (2) अभिवृत्ति प्रतिक्रिया करने की तत्परता है। यह कोई प्रतिक्रिया नहीं है, अपितु प्रतिक्रिया करें की मानसिक तत्परता है। (3) यह संगठित होती हैं। इसके विविध संघटकों–संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध होता है। (4) अभिवृत्ति अनुभव के आधार पर अर्जित की जाती है; और (5) अभिवृत्तियों का निर्देशित या गत्यात्मक प्रभाव पड़ता है। यह व्यवहार की दिशा निर्धारित करने के साथ–साथ एक खास तरह का व्यवहार करने की शक्ति भी प्रदान करती है।

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 109) ने भी अभिवृत्ति को स्पष्ट करते हुए उसके समस्त अवयवों पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि, ''अभिवृत्ति एक ऐसी स्थायी प्रणाली है, जिसमें एक संज्ञानात्मक अवयव, एक अनुभूति सम्बन्धी अवयव तथा एक सक्रिय प्रवृत्ति सम्मिलित होती है। अभिवृत्ति में भावनात्मक अवयव भी सम्मिलित है। यही कारण है कि जब भी कभी कोई अभिवृत्ति बनती है तो यह परिवर्तन की प्रतिरोधी हो जाती है। यह सामान्यतः नये तथ्यों के प्रति अनुक्रिया नही करती। अभिवृत्ति में आस्थाओं और मूल्याँकनों का भी समावेश होता है। उच्चतर जाति का कोई व्यक्ति किसी हरिजन के बारे में प्रायः प्रतिकूल अभिवृत्ति रखता है। किसी पाकिस्तानी या चीनी के बारे में किसी भारतीय की अभिवृत्ति प्रतिकूल होती है। इन अभिवृत्तियों में अन्य समूहों के बारे में कुछ जानकारी (संज्ञानात्मक अवयव), अप्रियता की कुछ भावनाएँ (प्रभावी, मूल्याँकनात्मक अवयव) तथा आक्रमण आदि से बचने की एक पूर्व प्रवृत्ति (क्रियात्मक अवयव) का समावेश होता है।''

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 110) का मानना है कि, ''हमारी अभिवृत्तियाँ प्राथमिक रूप से सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न होती हैं। जन्म से ही मानव प्राणी ऐसी सामाजिक संस्थाओं के जाल में उलझ जाता है, जो भौतिक जगत् के रूप में उसके परिवेश का निर्माण करती हैं। प्रथम सामाजिक इकाई के रूप में परिवार का किसी व्यक्ति के अभिवृत्ति निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि बाद में प्राप्त होने वाले अनुभव आसानी से हम अभिवृत्तियों में बदल नहीं सकते क्योंकि अभिवृत्तियाँ व्यक्तियों, समूहों और अन्य सामाजिक वस्तुओं के प्रति हमारी अनुक्रियाओं को एक संगति प्रदान करती हैं, इसका भी यही कारण है।''

क्रच एवं क्रचफील्ड तथा अन्य (1962) के अनुसार ''व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसकी अभिवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करता है– यह किसी सामाजिक वस्तु के प्रति धनात्मक या ऋणात्मक मूल्यांकनों, संवेगात्मक भावों तथा पक्ष या विपक्ष के क्रियात्मक झुकावों की अपेक्षाकृत स्थायी पद्धतियाँ हैं।'' अभिवृत्ति को परिभाषित करते हुए क्रच एवं क्रचफील्ड (1948 : 152) ने लिखा है कि, ''व्यक्ति की दुनिया के किसी पक्ष से सम्बन्धित अभिप्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक और संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के एक सुस्थिर संगठन को अभिवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। ''स्पष्ट है कि अभिवृत्ति अभिप्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का एक संगठन होती है।

वी.वी. अकोलकर (1960 : 231) ने अभिवृत्ति की अति संक्षिप्त परिभाषा देते हुए लिखा है कि, ''किसी वस्तु या व्यक्ति के विषय में अभिवृत्ति उस वस्तु या व्यक्ति के विषय में एक विशेष ढंग से सोचने, अनुभव करने और क्रिया करने की तत्परता की दशा है।'' दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी वस्तु या व्यक्ति के बारे में विशेष तरह से सोचने, अनुभव करने या क्रिया करने की तत्परता की स्थिति को अभिवृत्ति कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से अभिवृत्तियों के कुछ प्रमुख आयाम स्पष्ट होते हैं। एच.सी. ट्राइण्डिस (1971 : 13) ने किसी अभिवृत्ति–विषय के प्रति व्यवहार के दो प्रमुख आयामों का उल्लेख किया है– (i) सकारात्मक बनाम् नकारात्मक और (ii) सम्पर्क इच्छुक बनाम् सम्पर्क से बचना।

सकारात्मक अभिवृत्ति

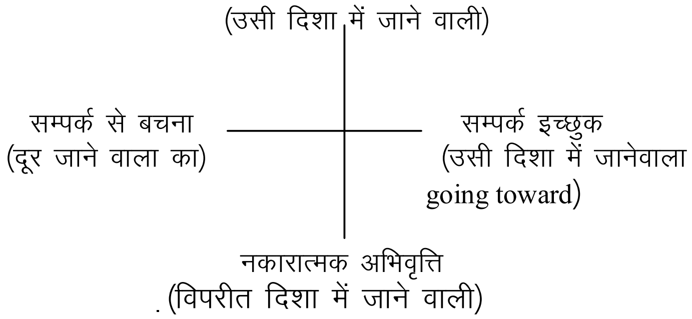

ट्राइण्डिस (1971) ने अभिवृत्तियों के तीन प्रकार्यों का उल्लेख किया है–
(i) इनसे अपने आसपास के संसार को सुव्यवस्थित करने, सरल बनाने और समझने में सहायता मिलती है, (ii) अपने विषय में अप्रिय सत्यों से बचते हुए अपने आत्माभिमान की रक्षा करने में मदद मिलती है, तथा (iii) अपने मूलभूत मूल्यों को अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है। कुप्पुस्वामी (1975:110) ने इसमें एक चौथा प्रकार्य और जोड़ दिया है और वह है कि अभिवृत्तियों से लोगों को समूह के अनुरूप बनने और इस प्रकार समूह से अधिकाधिक पुरस्कार प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है।

काट्ज (1960) ने अभिवृत्तियों द्वारा व्यक्तित्व सम्बन्धी चार प्रकार्यों का उल्लेख किया है– (i) समायोजन सम्बन्धी प्रकार्य, जो बहुमत की अभिवृत्ति से सहमत होकर अधिकाधिक पुरस्कार और दण्ड की प्राप्ति में सहायक होता है, (ii) अहम्–रक्षात्मक प्रकार्य, जो व्यक्ति को अपने सम्बन्ध में अप्रिय मूलभूत सत्यों को स्वीकार करने की क्षमता प्रदान करने में सहायक होता है; (iii) मूल्य अभिव्यक्तात्मक प्रकार्य, जिनमें अभिवृत्तियों के प्रकट होने पर व्यक्ति को प्रसन्नता होती है, क्योंकि उससे उन मूल्यों का पता चलता है, जिनका वह समर्थन करता है, जैसे शाकाहारी या नशाबन्दी इत्यादि, (iv) ज्ञानात्मक प्रकार्य, जो व्यक्ति के संसार को एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने और इसे समझने की उसकी आवश्यकता पर आधारित होते हैं।

स्मिथ और उसके सहयोगियों (1956) ने अभिवृत्ति के एक अन्य प्रकार का उल्लेख किया है। वह है कुछ आन्तरिक समस्याओं को बाह्यीकरण प्रदान करना यानि किसी मुद्दे से सम्बन्धित अपनी प्रतिक्रियाओं को बाहरी समूहों की दिशा में मोड़ देना।

6.3 अभिवृत्ति की विशेषताएँ

आलपोर्ट (1935), बी. कुप्पुस्वामी (1975) क्रच एवं क्रचफील्ड तथा अन्य (1962) इत्यादि की परिभाषाओं एवं व्याख्याओं से अभिवृत्ति के जिस स्वरूप का पता चलता है, उससे इसकी निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। इन विशेषताओं में से कई का ऊपर पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। अभिवृत्ति की **पहली** विशेषता यह है कि, यह एक मानसिक एवं स्नायविक अवस्था है, **दूसरी** विशेषता यह है कि यह प्रतिक्रिया करने की एक तत्परता है। **तीसरी** विशेषता यह है कि यह एक जटिल एवं हस्तक्षेपीय या मध्यस्थ अवधारणा है। जटिल और संगठित इसलिए है कि, इसमें जो संघटक हैं– भावनात्मक, संज्ञानात्मक और व्यवहारात्मक, ये तीनों अत्यन्त जटिल होते हैं। इसलिए अभिवृत्ति भी जटिल होती है। कई संघटकों के कारण यह संगठित होती है। जहाँ तक मध्यस्थ या हस्तक्षेपीय अवधारणा की बात है अभिवृत्ति स्वतंत्र चर का न केवल परिणाम होती है अपितु स्वयं में भी स्वतंत्र चर (किसी व्यवहार या प्रतिक्रिया का निर्धारक होने के कारण) होती है। अभिवृत्ति की **चौथी** विशेषता यह है कि, यह अर्जित की जाती है। व्यक्ति अपने जीवन काल में विविध कारकों के सहयोग से अभिवृत्तियों को अर्जित करता या सीखता है। **पाँचवी** विशेषता यह है कि अभिवृत्ति बहुधा स्थायी होती

है। विशेष परिस्थितियों में इसमें परिवर्तन भी पाया जाता है। इसकी अन्तिम छठी विशेषता यह है कि इसमें एक दिशा और तीव्रता होती है। दिशा या तो सकारात्मक होती या नकारात्मक। सकारात्मक या नकारात्मक अभिवृत्ति में तीव्रता के आधार पर अन्तर होता है। जैसे किन्हीं दो व्यक्तियों में किसी के प्रति घृणा या पसन्दगी की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है। सकारात्मक या नकारात्मक अभिवृत्ति में अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार या प्रतिक्रिया के प्रेरक गुण होते हैं।

अभिवृत्ति की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर हम इसके पाँच पहलूओं का उल्लेख कर सकते हैं– दिशा, तीव्रता, केन्द्रीयता, प्रमुखता तथा सुसंगति।

शेरिफ और शेरिफ (1969 : 334–335) ने अन्य आन्तरिक कारकों से अभिवृत्ति में विभेद के आधारों का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि, अभिवृत्ति किसी सार्थक वस्तु, व्यक्ति या घटना के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक विशेषता, सुसंगति और व्यवहार के चुने हुए तरीकों से ज्ञात होती है। जबकि उस तरह के सभी व्यवहार के तरीके किसी अभिवृत्ति को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, किसी भी नवजात सामान्य शिशु को, जब वह भूखा हो और स्तन दिया जाये, तो वह अपना सिर उस ओर करके स्तनपान करने लगता है। इस प्रकार के व्यवहार की व्याख्या के लिए अभिवृत्ति जैसी अवधारणा की जरूरत नहीं है।

अभिवृत्तियों को अस्थायी समुच्चयों या अपेक्षाओं, स्थितियों और जैवकीय दशाओं या अभिप्रेरकों से विभेद करने के लिए अलग आधारों की आवश्यकता है। निम्नांकित आधारों से विभेद स्पष्ट होगा– (i) अभिवृत्तियाँ सहज (जन्मजात) नहीं होती है, (ii) अभिवृत्तियाँ सावयव की अस्थायी दशाएँ नहीं होती हैं अपितु निर्मित हो जाने पर ज्यादा या कम बनी रहती हैं, (iii) अभिवृत्तियाँ व्यक्ति और वस्तु के सम्बन्धों को स्थापित करती हैं, (iv) व्यक्ति वस्तु सम्बन्धों में अभिप्रेरणात्मक प्रभावी गुण होते हैं, (v) अभिवृत्ति निर्माण में छोटी या बड़ी मात्रा में विशिष्ट मदों की श्रेणियों का निर्माण जुड़ा होता है। (vi) सामान्य अभिवृत्ति निर्माण में जो सिद्धान्त लागू होते हैं वे सामाजिक अभिवृत्ति निर्माण में भी लागू होते हैं। (शेरिफ एवं शेरिफ, 1969 : 334–335)

6.4 अभिवृत्ति निर्माण

अभिवृत्ति का निर्माण कैसे होता है? हम कैसे अपनी क्रिया के बारे में मत धारण करते हैं? सामाजीकरण के दौरान कैसे एक खास प्रकार की अभिवृत्ति निर्मित होती है? व्यक्तिगत अनुभवों से बनने वाली अभिवृत्ति कैसी होती है? सामाजिक तुलना के आधार पर भी क्या मनोवृत्तियों का निर्माण होता है? इत्यादि अनेकों प्रश्न हैं जो अभिवृत्ति निर्माण को जानने–समझने के लिए विशेष रूचि उत्पन्न करते हैं।

अभिवृत्तियाँ आती कहाँ से हैं? क्या वे हमारे साथ पैदा होती हैं? जन्मजात होती हैं या अर्जित की जाती हैं? या क्या आप जीवन के एक लम्बे काल के दौरान अनुभवों से इसे सीखते हैं? पुनः ये प्रश्न, हमें इसके बारे में सोचने को बाध्य करते हैं। पहले ही इस सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है कि अभिवृत्तियाँ सीखी जाती हैं। हमने आलपोर्ट और शेरिफ एवं शेरिफ के विचारों से इसकी विशेषताओं और आधारों को जाना है।

सामाजिक अधिगम मनोवृत्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, लेकिन सप्रमाण यह ज्ञात हुआ है कि मनोवृत्तियों पर अनुवांशिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। रॉबर्ट ए. बैरन एवं डौन बायर्न (2004) ने इस सन्दर्भ में व्यापक विश्लेषण किया है।

अभिवृत्तियों के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत सामाजिक सीख है। सामाजिक सीख वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम अन्य लोगों से नई जानकारी, व्यवहार के तरीके या मनोवृत्तियाँ ग्रहण करते हैं। रॉबर्ट ए. बैरन तथा डॉन बायर्न (2004 : 108) ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है

कि, ''हमारे अनेक मत उन परिस्थितियों में ग्रहण किये जाते हैं जहाँ हम दूसरों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं, या सिर्फ उनके व्यवहार का निरीक्षण करते हैं।''

हमारी अधिकांश अभिवृत्तियाँ उस समूह से विकसित होती है, जिससे हम सम्बद्ध होते हैं। बाल्यावस्था से ही बच्चा परिवार में सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान विविध वस्तुओं, व्यक्तियों इत्यादि के प्रति सकारात्मक एवं नकारात्मक अभिवृत्ति को निर्मित करता है। परिवार के साथ–साथ व्यक्ति अपने संगी–साथियों और समूह के अन्य सदस्यों से भी सामाजिक सीख के द्वारा अभिवृत्तियों को निर्मित करता चलता है। उदाहरण के लिए बच्चे कुछ खाद्य पदार्थों, खिलौनों, वस्तुओं के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करते हैं और कुछ के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करते हैं। हमारी अभिवृत्तियाँ बड़े होने पर भी निर्मित होती रहती हैं। कुछ अभिवृत्तियों में आंशिक परिवर्तन होता है, कुछ में और भी बदलाव आता है। अभिवृत्तियों के बनने, विकसित होने, परिवर्तित होने की प्रक्रिया चलती रहती है। जहाँ एक ओर बहुसंख्यक अभिवृत्तियाँ उस समूह के प्रभाव से निर्मित होती है, जिसके हम सदस्य होते हैं, वहीं कुछ अभिवृत्तियों का निर्माण व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर भी होता है। व्यक्तिगत अनुभवों विशेषकर ऐसा अनुभव जो किसी त्रासदी से सम्बन्धित हो से बनी अभिवृत्ति अपेक्षाकृत ज्यादा तीव्र होती है।

बी. कुप्पुस्वामी (1975 : 118) का कहना है कि, ''अभिवृत्ति–निर्माण प्राथमिक रूप से बाल्यकालीन और किशोरवय की अधिगम प्रक्रिया या सीखने की प्रक्रिया के रूप में ही आरम्भ होता है। जब एक बार अभिवृत्ति बन जाती है तो संज्ञानात्मक संगति के सिद्धान्त का प्रभाव अधिकाधिक महत्व का होता है। व्यक्ति में अब प्राथमिक निष्क्रियता जारी नही रह सकती। वह अब तक जो कुछ सीख चुका होता है, उसके अनुसार ही नई सूचना का संस्कार करना आरम्भ कर देता है। वह असंगत सूचना को अस्वीकार करने और उस सूचना को अधिक उत्साह के साथ ग्रहण करने लगता है, जो उसकी अभिवृत्ति की दृष्टि से संगत होती है।

अभिवृत्ति निर्माण को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों एवं समाज–मनोवैज्ञानिकों ने व्यापक अध्ययन किया है। सामान्यतः इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण उपागमों–सीखना (Learning) और पुनबर्लन (Rein-forcement) के अन्तर्गत ही विषय को समझने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन किए गए हैं।

दूसरों से अभिवृत्तियाँ सामाजिक सीख के द्वारा ग्रहण की जाती हैं। सामाजिक सीख की तीन प्रक्रियाओं का उल्लेख **रॉबर्ट ए. बैरन** तथा **डॉन बायर्न** (2004 : 108–110) ने किया है–

(i) अनुबंधित अनुक्रिया (साहचर्य पर आधारित सीख)

(ii) साधन अनुकूलन (सही मत धारण करने के लिए सीख)

(iii) निरीक्षणात्मक सीख (उदाहरण से सीखना)।

सामाजिक सीख का उपरोक्त तीनों प्रक्रियाओं के विवरण से हम अभिवृत्ति निर्माण को आसानी से समझ सकते हैं।

साहचर्य पर आधारित सीख यानि अनुबंधित अनुक्रिया को हम मनोविज्ञान के उस सिद्धान्त से समझ सकते हैं जिसमें यह बताया गया है कि जब एक उद्दीपक लगातार दूसरे के पहले आता है, तो पहले वाला शीघ्र दूसरे के लिए संकेतक बन जाता है। एक उदाहरण के द्वारा इसे समझा जा सकता है। एक बच्चा अपने पिता को एक खास जाति के व्यक्ति या धार्मिक व्यक्ति को देखकर नाक भौं सिकोड़ते या बड़बड़ाते हुए देखता है तो धीरे–धीरे वो बच्चा भी जो पहले उस जाति या धर्म के व्यक्ति के प्रति उदासीन था, प्रतिकूल मनोवृत्ति निर्मित कर लेता है। स्पष्ट है कि लगातार प्रतिकूल या अनुकूल संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से सामना होते रहने का बच्चे पर तद्नुरूप प्रभाव पड़ता है। इस तरह अनुबंधित अनुक्रिया सीखने का एक आधारभूत रूप है, जिसमें एक उद्दीपन, प्रारम्भ में उदासीन,

किसी अन्य उद्दीपन के साथ बार–बार दुहराये जाने पर प्रतिक्रिया पैदा करने की क्षमता ग्रहण कर लेता है। एक तरह से एक उद्दीपन दूसरे के घटित होने या प्रस्तुत होने के लिए संकेत हो जाता है। (बैरन तथा बायर्न 2004 : 109)

क्रॉस्निक व अन्य (1992) ने अपने एक अध्ययन से यह स्पष्ट किया है कि अभिवृत्ति अवचेतन अनुबन्ध (अनुबन्धित अनुक्रिया जो उद्दीपनों के प्रति चेतन जागरुकता की अनुपस्थिति में होती है) के द्वारा प्रभावित हो सकती है।

अनुबन्धित अनुक्रिया को एक उदाहरण तथा रेखाचित्र द्वारा बैरन तथा बायर्न (2004 : 109) ने सरलतम रूप में स्पष्ट किया है।

प्रारम्भिक स्थिति अल्पसंख्यक समूह के सदस्य ↓ कोई प्रबल प्रतिक्रिया नहीं	माँ–बाप में संवेगात्मक उदासी ↓ बच्ची उदास हो जाती है
अल्पसंख्यक समूह के सदस्य एवं माँ–बाप की उदासी का बार–बार युग्मित होना	
अल्पसंख्यक समूह के सदस्य ↓ बच्ची उदास हो जाती हैं	माँ–बाप में संवेगात्मक उदासी ↓ बच्ची उदास हो जाती है

चित्र : अभिवृत्ति की अनुबन्धित अनुक्रिया प्रारम्भ में एक छोटी बच्ची की किसी अल्पसंख्यक समूह के सदस्यों की दृश्य विशेषताओं के प्रति कम या कोई संवेगात्मक प्रतिक्रिया नहीं होती है। यदि वह अपनी माँ को इन व्यक्तियों की उपस्थिति में जब प्रतिकूल प्रतिक्रिया करते देखती है तो वह भी धीरे–धीरे उनके प्रति प्रतिकूल प्रतिक्रिया सीख जाती है।

सामाजिक सीख की दूसरी प्रक्रिया 'साधन अनुकूलन' होती है, इसके अन्तर्गत सही मत धारण करने के लिए सीख को रखा जाता है और भी स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा सकता है कि साधन अनुकूलन सीख का वह मूलभूत रूप है, जिसमें सकारात्मक परिणाम पैदा करनेवाली या नकारात्मक परिणाम को नकारने वाली प्रतिक्रियाओं को मजबूत बनाया जाता है, इसे सक्रिय सम्बद्ध अनुक्रिया भी कहा जाता है। (बैरन एवं बायर्न 2004 : 110) इस प्रक्रिया में पुरस्कार, प्रशंसा, प्यार के द्वारा एक बच्चे की अभिवृत्तियों को निर्मित किया जाता है। ऐसे व्यवहारों को बच्चा बार–बार करने लगता है, जिसके अनुसरण से उसको प्यार प्रशंसा या पुरस्कार मिलता है। ऐसे व्यवहार जो सकारात्मक परिणाम देते हैं वे पुष्ट होते हैं, वहीं ऐसे व्यवहार जिनको करने पर प्रशंसा, प्यार, पुरस्कार कुछ नहीं मिलता है, को दबा दिया जाता है। परिवार में बड़े बुजुर्ग, माँ–बाप एवं अन्य वयस्क सदस्य बच्चों की अभिवृत्तियों को निर्मित करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इसीलिए अधिकांश बच्चे बाल्यावस्था में अपने पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप ही विचारों को रखते हैं, यद्यपि कुछ बच्चे ऐसा नहीं भी करते हैं। कालान्तर में बड़े हो जाने पर उनकी अभिवृत्ति अन्य कारकों द्वारा प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती है या सकती है। अमेरीकी हाईस्कूल के छात्रों पर जेनिंग्स और नीमी (1968) ने अध्ययन किया है। उनके अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि 76 प्रतिशत हाईस्कूल के छात्र उसी राजनीतिक दल के समर्थक थे, जिनके समर्थक उनके माता–पिता थे। मात्र दस प्रतिशत छात्र ही ऐसे थे जिनकी पसन्दगी अपने माता–पिता से अलग थी। इसके विपरीत न्यूकाम्ब (1943) ने स्पष्ट किया है कि युवा

छात्र या व्यक्ति जब परस्पर मतों से प्रभावित होने लगते हैं, तो उनकी अभिवृत्ति भी परिवर्तित हो जाती है।

उपरोक्त उपागमों से स्पष्ट है कि इसमें दण्ड और पुरस्कार अभिवृत्ति निर्माण में भूमिका अदा करते हैं। बच्चा या एक मनुष्य उन व्यवहारों को सीखता है जिनके करने से किसी पुनर्बलन की प्राप्ति होती है। अभिवृत्तियों की अभिव्यक्ति मौखिक रूप से ज्यादा होती है, इसलिए प्रशंसा, डाँट तथा निन्दा, शक्तिशाली पुनर्बलन का कार्य करती है।

सीख की तीसरी प्रक्रिया, जिसके द्वारा अभिवृत्तियों का निर्माण होता है, उसे निरीक्षणात्मक सीख कहा जाता है। इसमें व्यक्ति दूसरों को देखकर नये प्रकार के व्यवहार या विचार ग्रहण करता है। बच्चों के द्वारा धूम्रपान करना और उनके प्रति अनुकूल विचार रखना निरीक्षणात्मक सीख का एक सरलतम उदाहरण है। बच्चों, युवाओं एवं व्यस्क सदस्यों द्वारा जनसंचार माध्यमों (प्रिंट एवं इलेक्ट्रानिक दोनों ही) से अभिवृत्तियों को निर्मित करना भी इसके अन्तर्गत ही आता है।

अभिवृत्तियों का निर्माण सामाजिक सीख के द्वारा ही नहीं होता है, अपितु सामाजिक तुलना द्वारा भी होता है। व्यक्ति सामाजिक यथार्थता के बारे में अपने विचारों की सत्यता जानने के लिए सामाजिक तुलना का सहारा लेता है। व्यक्ति अपने विचारों की तुलना बाकि लोगों से करते हैं। यदि बाकि लोगों के विचार भी उससे मिलते जुलते हैं तो वह निश्चिंत हो जाता है कि उसके विचार सही हैं। सामाजिक तुलना की प्रक्रिया अभिवृत्तियों के परिवर्तन लाती है और नई अभिवृत्तियों को निर्मित भी करती हैं। फेस्टिंगर (1954) ने अपनी पुस्तक में सामाजिक तुलना द्वारा अभिवृत्ति निर्माण पर प्रकाश डाला है। मैओ, ऐसेस व बेल (1994); शेव (1993) इत्यादि के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि दूसरे लोगों से किसी समूह के बारे में नकारात्मक विचार सुनकर व्यक्ति बगैर उनसे मिले ही उस समूह के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति निर्मित कर लेते हैं।

अभिवृत्तियाँ जन्मजात नहीं होतीं अपितु सीखी या निर्मित की जाती हैं। कई विद्वानों अर्वे व अन्य (1989), केलर व अन्य (1992) इत्यादि के अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि अभिवृत्ति निर्माण में आनुवांशिक कारकों का भी योगदान होता है। इस मत की पुष्टि समरूप जुड़वा बच्चों की अभिवृत्तियों में समानता द्वारा की गयी है। ऐसा पाया गया है कि समरूप जुड़वो की मनोवृत्ति भिन्न जुड़वों की अपेक्षा अधिक सह–सम्बन्धित थी साथ ही परिणामों ने यह भी प्रमाणित किया कि कुछ मनोवृत्तियों का निर्माण आनुवांशिक कारकों द्वारा भी होता है।

6.5 अभिवृत्ति के संघटक तत्त्व

अभिवृत्ति जिन तत्वों से संरचित होती है, उन्हें ही अभिवृत्ति के संघटक तत्व कहा जाता है। अभिवृत्ति की परिभाषाओं से ही उसके संघटक तत्त्वों का अनुमान लग जाता है, चाहे यह परिभाषा आलपोर्ट की हो या क्रच एवं क्रचफील्ड तथा अन्य की हो। वास्तव में अभिवृत्ति उन तीन संघटकों का स्थायी तंत्र है जिन्हें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक संघटक के रूप में जाना जाता है। अभिवृत्ति के तीनों संघटकों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

मनुष्य प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति या अन्यों के प्रति प्रत्यक्षीकरण जिस किसी भी रूप में करते हैं (शाब्दिक अथवा मौखिक या गैर मौखिक), वह संज्ञानात्मक संघटक को इंगित करता है। कुछ ब्राह्मणों का दलितों के प्रति एक विशेष प्रकार की धारणा अभिवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक का बोध कराती है। अभिवृत्ति–वस्तु (जो उपरोक्त उदाहरण में दलित है) के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक विश्वास, अभिवृत्ति का संज्ञानात्मक या प्रत्यक्षात्मक संघटक है। यह विश्वास बहुधा स्थिर प्रकृति का होता है। इसमें परिवर्तन भी होता है और इसकी तीव्रता कम या ज्यादा हो सकती है। अभिवृत्ति प्रतिक्रिया करने

की तत्परता की मानसिक एवं स्नाविक स्थिति है, यह अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति विश्वास को अभिव्यक्त करती है।

अभिवृत्ति का दूसरा संघटक भावात्मक संघटक है। भावनाएँ एवं संवेग इसके अन्तर्गत आती हैं जो अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति के भावों (पसन्दगी अथवा नापसन्दगी) को अभिव्यक्त करती हैं। भावात्मक संघटक किसी भी अभिवृत्ति का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। किसी अभिवृत्ति–वस्तु को अत्यधिक पसन्द करना, कम पसन्द करना या किसी अभिवृत्ति वस्तु को अत्यधिक नापसन्द करना, थोड़ा नापसन्द करने का भाव यह स्पष्ट करता है कि इसकी तीव्रता में व्यक्ति–व्यक्ति में अन्तर हो सकता है।

अभिवृत्ति का तीसरा संघटक तत्त्व क्रियात्मक संघटक होता है। चूँकि यह अभिवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति की क्रिया को अभिव्यक्त करता है, अतः इसे व्यवहार–संघटक भी कहा जाता है। अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है? क्या वह उससे दूरी बना लेता है या आक्रामक व्यवहार करता है या उससे घनिष्ठता बढ़ा लेता है? यह सब अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति की सकारात्मक अथवा नकारात्मक धारणा पर निर्भर करता है। अभिवृत्ति वस्तु के प्रति पसन्दगी या ना पसन्दगी व्यवहार के एक विशेष रूप को प्रदर्शित करती है। क्रियात्मक संघटक के अन्तर्गत अभिवृत्ति वस्तु से दूरी बना लेना, निकटता स्थापित करना, प्रेम करना, आक्रामक व्यवहार करना, शक्ति का प्रयोग करना इत्यादि सम्मिलित होता है।

उपरोक्त तीनों ही संघटक की किसी अभिवृत्ति वस्तु में उपस्थिति को एक उदाहरण द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक अत्यन्त परम्परागत ब्राह्मण की अभिव्यक्ति–वस्तु एक दलित व्यक्ति है। दलित व्यक्ति (अभिव्यक्ति–वस्तु) को देखते ही उसका विश्वास ताजा हो जाता है कि वह एक गन्दा व्यक्ति है यह विश्वास संज्ञात्मक संघटक है, फिर उसके गन्दे होने के प्रति विश्वास के कारण वह उसे नापसन्द करता है जो भावात्मक संघटक है, नापसन्दगी के चलते वह उससे पर्याप्त दूरी बना लेता है। यह दूरी बना लेना क्रियात्मक संघटक है। इसी तरह से प्रत्येक अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति मनुष्य का व्यवहार संचालित होता रहता है।

अभिवृत्ति के संघटकों का विश्लेषण यह भ्रम पैदा कर सकता है कि यह मनुष्य के व्यवहार की ही तीन स्थितियाँ हैं। वास्तविकता यह है कि अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर है। 1930 के दौरान प्रसिद्ध सामाजिक मनोवैज्ञानिक रिचर्ड टी ला पियरे ने गहन शोध कार्य करके यह प्रमाणित किया कि अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर है। अभिवृत्ति मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करती है लेकिन यह भी सच है कि अभिवृत्तियाँ हमारे बाहरी व्यवहार में कभी–कभी परिलक्षित नहीं भी होती हैं। आधुनिक काल में भी अभिवृत्ति और व्यवहार के मध्य सम्बन्धों के विविध पक्षों पर शोध कार्य जारी है। ला पियरे (1934) का अध्ययन स्पष्ट करता है कि मनोवृत्ति और व्यवहार में पर्याप्त अन्तर है। इसे आप एक सरल उदाहरण से आसानी से समझ सकते हैं कि लोग बोलते कुछ हैं और करते कुछ हैं। इतना ही नहीं जटिलता तब बढ़ सकती है जब हम यह कहते हैं कि मनुष्य सोचता कुछ है, बोलता कुछ है और करता कुछ है। वास्तविकता यह है कि, ''अनेक कारक मनोवृत्ति व व्यवहार के मध्य सम्बन्ध के मॉडरेटर के रूप में काम करते हैं, और इस सम्बन्ध के सामर्थ्य को भी प्रभावित करते हैं।

- परिस्थितिजन्य निरोध हमें अपनी मनोवृत्ति को बाह्य रूप से अभिव्यक्त करने से रोकते हैं। इसके अतिरिक्त हम वैसी स्थितियों को पसन्द करते हैं जो हम अपनी मनोवृत्तियों को व्यक्त करने की अनुमति देती हैं और इससे ये मत भी मजबूत होते हैं।

- मनोवृत्तियों के अनेक पहलू भी मनोवृत्ति–व्यवहार सम्बन्ध को मॉडरेट करते हैं। इनके अन्तर्गत मनोवृत्ति–उत्पत्ति (कैसे मनोवृत्ति का निर्माण होता है), मनोवृत्ति–सामर्थ्य (इसके अन्दर मनोवृत्ति अभिगम्यता एवं महत्व शामिल है), और मनोवृत्ति विशिष्टता आते हैं।
- मनोवृत्ति अनेक तंत्रों के द्वारा व्यवहार को प्रभावित करती है। जब हम अपनी मनोवृत्ति को सावधानीपूर्वक विचार देते हैं, तो हमारी मनोवृत्ति से उत्पन्न अभिप्राय व्यवहार की बहुत अधिक भविष्यवाणी करता है। वैसी स्थितियों में जहाँ हम सोचे–समझे विचार में संलग्न रहते हैं, मनोवृत्ति उस स्थिति के बारे में हमारे प्रत्यक्षीकरण का निर्माण कर व्यवहार को प्रभावित करती है। तत्परता, वैयक्तिक मानदण्ड एवं आदिरूप भी मनोवृत्ति–व्यवहार सम्बन्ध पर असर डालते हैं।'' (बैरन एवं बायर्न, 2004 : 118)

6.6 पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन

यह सच है कि अभिवृत्तियों में स्थायित्त्व होता है। यद्यपि इनमें परिवर्तन भी देखा जा सकता है। परिवर्तन के विविध कारक होते हैं। अभिवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक में परिवर्तन भावनात्मक संघटक और क्रियात्मक संघटक में भी परिवर्तन लाता है।

अभिवृत्ति–वस्तु के प्रति पूर्वाग्रह सकारात्मक या नकारात्मक विश्वास को बल देता है। सामान्यतः पूर्वाग्रह नकारात्मक अभिवृत्ति को इंगित करता है, परिणामस्वरूप क्रिया भी नकारात्मक ही होती है।

पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन की चर्चा के पूर्व पूर्वाग्रह के अर्थ को जानना जरूरी है। पूर्वाग्रह किसी व्यक्ति या सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति का द्योतक है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह और विभेदीकरण में अन्तर किया है। विभेदीकरण पूर्वाग्रह का क्रियात्मक पक्ष है। इसे क्रियात्मक पूर्वाग्रह भी कह सकते हैं। नकारात्मक मनोवृत्ति से नकारात्मक व्यवहार (विभेदीकरण) होता है।

उच्च जातियों का दलितों के प्रति पूर्वाग्रह होता है, पुरुषों का महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह होता है, गोरों का कालों के प्रति पूर्वाग्रह देखा जाता है, इसी तरह से पूर्वाग्रह के अनेक आधार होते हैं।

अभिवृत्तियाँ सीधे अनुभव के माध्यम से बदल जाती हैं। इसलिए कभी–कभी जब हम किसी के प्रति पूर्वाग्रही होते हैं और वो हमारे पूर्वाग्रह के आधारों को अपनी योग्यता कुशलता या अन्य आधारों पर तोड़ देता है तो हमारी पूर्वाग्रही अभिवृत्ति भी परिवर्तित हो जाती है। पूर्वाग्रह और नया अनुभव मनुष्य के संज्ञान के मध्य प्रत्याशा और अनुभव या वास्तविकता के मध्य असंगति उत्पन्न कर देता है। इस असंगति को सामान्यतः मनुष्य पुनर्व्यवस्थित करते हुए अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है। यह परिवर्तन आंशिक भी हो सकता है, पूर्ण भी हो सकता है और एक बार में ही हो सकता है, या कई बार के बाद हो सकता है। अति साफ–सुथरे दलित से मिलकर या अति धार्मिक दलित से मिलकर या अति धार्मिक दलित से मिलकर या अति सात्विक दलित से मिलकर पूर्वाग्रही सोच इसलिए प्रभावित होती है कि अनुभव पूर्व धारणाओं से पूर्णतः अलग है। सोच और अनुभव की असंगति या प्रत्याशा और अनुभव असंगति अभिवृत्ति परिवर्तन का कारण बनती है।

भारत में महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह एक विशेष प्रकार की अभिवृत्ति को अभिव्यक्त करता रहा है। आधुनिक काल में उनके प्रति पूर्वाग्रह और परिणामस्वरूप अभिवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन आ रहा है। अभिवृत्तियों के संज्ञानात्मक संघटक की अपेक्षा क्रियात्मक संघटक में ज्यादा परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है, और इसके प्रमुख कारण को आसानी से समझा जा सकता है, वह है कानूनी प्रावधान। व्यक्ति विशेष, समूह विशेष, जाति विशेष इत्यादि के प्रति एक विशेष प्रकार का नकारात्मक क्रियात्मक पक्ष कानून द्वारा प्रतिबन्धित हो जाने के कारण उसमें परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित है।

6.7 सार संक्षेप

अभिवृत्ति से सम्बन्धित उपरोक्त समस्त विवरण से अभिवृत्ति की न केवल अवधारणा स्पष्ट होती है अपितु हम विविध विद्वानों की परिभाषाओं से भी परिचित होते हैं। इसके साथ ही साथ हम अभिवृत्ति निर्माण के विविध पक्षों को समझते हैं तथा पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन के स्वरूप को विश्लेषित करते हैं।

अभिवृत्ति की सर्वमान्य वैज्ञानिक परिभाषा उपलब्ध नहीं है। विविध विद्वानों ने अभिवृत्ति को परिभाषित किया है अधिकांशतः विद्वानों ने अभिवृत्ति के किसी एक पक्ष–मूल्यांकन पक्ष या भाव पक्ष या क्रियात्मक पक्ष के आधार पर इसे परिभाषित किया है। उदाहरण के लिए गरगेन (1974) का कहना है कि, ''विशिष्ट वस्तुओं के प्रति विशेष रूपों में व्यवहार करने की प्रवृत्ति को अभिवृत्ति कहते हैं।'' यह अभिवृत्ति का मूल्यांकन पक्ष है। एडवर्डस् (1957) ने भाव पक्ष को महत्त्व दिया है। उनके अनुसार, ''किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु से सम्बद्ध सकारात्मक या नकारात्मक भाव की मात्रा को अभिवृत्ति कहते हैं।'' आलपोर्ट (1935) ने अभिवृत्ति की अपेक्षाकृत व्यापक परिभाषा दी है। उनके अनुसार ''अभिवृत्ति–प्रतिक्रिया करने की तत्परता की वह मानसिक एवं स्नायुविक स्थिति है जो अनुभव के कारण संगठित होती है, और जिसका निर्देशित या गत्यात्मक प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है।'' आलपोर्ट की परिभाषा से अभिवृत्ति के सभी पक्षों का ज्ञान होता है। इसके संघटक तत्त्वों के अन्तर्गत संज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तीनों ही आते हैं। इन तीनों संघटकों की कई विशेषताएँ होती हैं जैसे अनुकूलता या प्रतिकूलता, संगति, मनोवृत्ति–पुंज में अन्तर्सम्बद्धता इत्यादि–इत्यादि।

अभिवृत्ति एक मानसिक एवं स्नायविक अवस्था के साथ प्रतिक्रिया करने की एक तत्परता भी है। इसमें स्थायित्व होता है साथ ही विशेष कारकों के प्रभाव से परिवर्तन भी आता है। इसकी तीव्रता अलग–अलग लोगों में अलग–अलग प्रकार की होती है। अभिवृत्ति जन्मजात नही होती, यह अर्जित की जाती है। दिशा, तीव्रता, केन्द्रीयता, प्रमुखता तथा संगति के पाँच पहलू अभिवृत्ति के हैं।

अभिवृत्ति के निर्माण का प्रमुख स्रोत सामाजिक सीख है। परिवार, समूह, विद्यालय, कार्य स्थल तथा व्यक्तिगत अनुभव से अभिवृत्तियाँ विकसित होती है। सामाजिक सीख की तीन प्रक्रियाएँ होती हैं– साहचर्य आधारित, सही मत धारणा करने सम्बन्धी और उदाहरण द्वारा। अभिवृत्ति और व्यवहार में अन्तर होता है। अभिवृत्तियाँ परिवर्तनशील भी होती हैं। हमारी पूर्वाग्रही अभिवृत्तियाँ तब परिवर्तित हो जाती हैं जब सोच और अनुभव में असंगति उत्पन्न हो जाती है।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. अभिवृत्ति की अवधारणा एवं परिभाषाएँ लिखिये ?
2. अभिवृत्ति की विशेषताओं का वर्णन कीजिये ?
3. अभिवृत्ति निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये ?
4. अभिवृत्ति के संघटक तत्वों का वर्णन कीजिये ?
5. पूर्वाग्रह और अभिवृत्ति परिवर्तन को समझाइये ?

6.9 पारिभाषिक शब्दावली

परिचय	Inroduction	अन्तर्वैयक्तिक	Interpersonal
औपचारिक	Formal	अभिवृत्ति	Attitude
अनौपचारिक	Informal	वर्णन	Explain
अवधारणा	Concept	साक्षात्कार	Interview
विशेषताएँ	Merits	संघटक	Factors
पूर्वाग्रह	Prejidice	परिवर्तन	Change

सन्दर्भ ग्रन्थ

- रॉबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न (2004)
- बी. कुप्पुस्वामी, 'समाज मनोविज्ञान के मूल तत्त्व', विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि., दिल्ली, 1975 (हिन्दी अनुवाद : श्रीकांत व्यास)
- Akolkar, V.V., 'Social Psychology', Asia Publishing House, Bombay, 1960.
- Allport, G.W., Attitude in Murchison (Ed.) Handbook of Build Psychology, Clark Un Press, Mass, 1935.
- Fazio, R.H. and Roskos-Ewoldsen, D.R. (1994), Acting as we Feel : When and How Attitudes Guide Behaviour in S. Shavitt and T.C. Brock (eds.), Persuasion, Bostan : Allyn and Bacon.
- Katz. D., 'The Functional Approach to the Study of Attitudes', Public Opinion Quarterly, Vol. 24,1960.
- Krech and Crutchfield, 'Theofy and Problems of Social Psychology', McGraw-Hill Book Co., New York, 1948.
- Sherif, M. and C.W. Sherif, "An Outline of Find Psychology', Harper and Bros', New York, 1956.
- Smith et.al., 'Opinions and Personality', Wiley, N.Y. 1956
- Tesser, A. and Martin, L. (1996). The Psychology of Evanation, in E.T. Higgins and A.W. Kruglanski (eds.), Social Psychology : Handbook of Basic Principles, New York : Guilford Press.
- Triandis, H.C. 'Attitude and Attitude Change', Wiley, N.Y. 1971.

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Allport, F.H. (1924) Social Psychology, Boston : Riverside Editions, Houghton Mifflin.
- Allport, G.W. (1954) Nature of Prejudice, Garden City, N.Y. : Double day.
- La Piere, RT, "Attitude vs. Actions", Reproduced in Bickman and Henely, Beyond the Laboratory, McGraw-Hill, 1972.
- Triandis, H.C., Attitude and Attitude Change, Wiley, N.Y., 1971.
- बी. कुप्पुस्वामी, 'समाज मनोविज्ञान के मूल तत्त्व', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली, 1975 (हिन्दी अनुवाद–श्रीकान्त व्यास)।
- रौबर्ट ए. बैरन एवं डॉन बायर्न, 'सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद), 2004, पीयरसन एजुकेशन प्रा.लि., भारतीय शाखा, दिल्ली, 2004.

इकाई –7

प्रेरणा
Motivation

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 परिचय
7.2 प्रेरणा
7.3 प्रेरणा की विशेषतायें
7.4 आवश्यकता की विशेषतायें
7.6 आवश्यकता के सामाजिक – सांस्कृतिक निर्धारक तत्व
7.7 समायोजन
7.8 समायोजन के स्तर
7.9 सामाजिक स्तर पर समायोजन
7.10 प्रतिबल

7.11 प्रतिबल का व्यक्तित्व पर प्रभाव
7.12 नैराश्य
7.13 नैराश्य का व्यक्तित्व पर प्रभाव
7.14 संघर्ष
7.15 संघर्ष का व्यक्तित्व पर प्रभाव
7.16 सार संक्षेप
7.17 अभ्यास प्रश्न
7.18 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इकाई का उद्देश्य – इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- प्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- प्रेरणा की विशेषताओं को जान सकेगें।
- आवश्यकता क्या होती है? इसके अर्थ एवं परिभाषा को जान सकेगें।
- आवश्यकता के सामाजिक – सांस्कृतिक निर्धारकों के बारे में जान सकेगे।
- आवश्यकता की विशेषताओं के बारे में जान सकेगें।
- समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- विभिन्न स्तरों जैसे वैयक्तिक, सामाजिक तथा अन्य स्तरों पर समायोजन की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- प्रतिबल क्या होता है? तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में लिख सकेगें।
- नैराश्य क्या होता है? तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- संघर्ष क्या होता है? तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में लिख सकेगें।

7.1 परिचय

व्यवहार क्यो उत्पन्न होता है ? इसी संदर्भ में प्रेरणा का संप्रत्यय विकसित हुआ। मानव व्यवहार को संचालित करने वाली शक्ति ही प्रेरणा है। इसी शक्ति को आवश्यकता या इच्छा कहते है। किसी भी व्यवहार प्रक्रिया को समझने के लिए सम्बन्धित आवश्कताओं या इच्छाओं को जानना आवश्यक है। अभिप्रेरित तत्वों के कई रूप हो सकते हैं, जैसे– उद्देश्य, प्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ, प्रयोजन, आकांक्षाएँ, रुचियाँ, आदत आदि। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि व्यवहार सामान्य हो अथवा असामान्य, उसका संचालन तथा नियन्त्रण आवश्यकता तथा प्रणोदन द्वारा होता है। अभिप्रेरणा का समायोजन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। व्यक्ति का व्यवहार अभिप्रेरणाओं के अधीन होने के कारण समायोजन प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसी आधार पर यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं एवं विचारों में समन्वय या समंजन स्थापित नहीं कर पाता है उसके व्यवहार को असमायोजित या कुसमायोजित की संबा दी जाती है। अतः यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति के सामान्य समायोजन में उसकी आवश्यकताओं तथा प्रेरणाओं का क्या प्रकार्य है ?

7.2 प्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ

'अभिप्रेरणा' शब्द की रचना लैटिन के मोटिक्स शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है। अतः प्रेरणा से व्यक्ति की वह आन्तरिक शक्ति या ऊर्जा का बोध होता है जिसके द्वारा व्यक्ति एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया करने के लिए उत्तेजित होता है। अतः अभिप्रेरणात्मक व्यवहार व्यक्ति की किसी आन्तरिक आवश्यकता से संचालित होता है। उदाहरण के लिए जब व्यक्ति को भूख लगती है तब भूख की आवश्यकता (शरीर में भोजन की कमी) व्यक्ति को विचलित कर उस व्यवहार की ओर उन्मुख करती है जिससे भोजन की प्राप्ति हो सके। इसका परिणाम यह होता है कि व्यवहार प्रेरणात्मक होने पर चयनात्मक तथा लक्ष्य निर्देशित हो जाता है। इस व्यवहार में निरन्तरता तब तक बनी रहती है जब तक लक्ष्य प्राप्ति ने हो जाय।

इस सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी है। **फिशर** का विचार है, 'प्रेरणा क्रिया की एक प्रवृत्ति या प्रणोदन है जिसमें कुछ अंश अभिस्थापन व निर्देशन से जुड़ा होता है।'

गिलफर्ड के विचारानुसार – 'प्रेरणा किसी खास आन्तरिक स्थिति या अवस्था को कहते हैं जो किसी क्रिया को प्रारम्भ करती है तथा उसे जारी रखती है।'

कोलमैन के अनुसार, 'प्रेरणा व्यक्ति की वह आन्तरिक दशा है जो व्यवहार को एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर उद्वेलित और निर्देशित करती है।'

शैरिफ, ग्लिमर तथा शोएन ने अपना विचार इस प्रकार रखा है कि 'अभिप्रेरणा व्यक्ति के क्रिया करने की उस प्रवृत्ति को कहेगें जो किसी प्रणोदन से आरम्भ होती है तथा अभियोजन में समाप्त होती है।'

इन परिभाषाओं से प्रेरणा की मुख्य प्रकृति यह स्पष्ट होती है कि प्रेरणा एक आन्तरिक कारक या स्थिति है जो किसी क्रिया या व्यवहार को एक निश्चित दिशा में जाग्रत करती है या उन्मुख करती है।

एक प्रेरणात्मक व्यवहार के क्या मुख्य आधार या कसौटियां है इसका उल्लेख काफर तथा एप्ली (1964) ने भी किया है जो इस प्रकार है –

1. प्रेरणा व्यक्ति को ऊर्जा प्रदान कर उत्तेजित करती है।
2. प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार को चयनात्मक तथा लक्ष्योन्मुख बनाती है।
3. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार में तीव्रता तथा मन्दता उत्पन्न करती है।
4. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार में स्वशोधन करती है।
5. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार में उत्पन्न होने वाले द्वन्द्वों का समाधान प्रस्तुत करती है।
6. प्रेरणा प्राणी के व्यवहार को मितव्ययी बनाती है।

अभिप्रेरित व्यवहार का मुख्य कारण प्रणोदन व आवश्यकता है। इस संदर्भ में हल, हेब्ब आदि ने प्रत्येक प्रणोदन या 'अन्तनोद' की उत्पत्ति किसी न किसी शारीरिक आवश्यकता को माना है।

7.3 अभिप्रेरणा अथवा प्रेरणा की विशेषतायें

अभिप्रेरणा की निम्नलिखित विशेषतायें होती है –

1. प्रेरणा एक विशेष आन्तरिक अवस्था है।
2. इसके उत्पन्न होने से प्राणी में एक विशेष प्रकार का मानसिक तनाव तथा असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।
3. इस तनाव को दूर करने के लिए व्यक्ति लक्ष्य निर्देशित अनुक्रिया करता है।
4. यह क्रिया निरन्तर लक्ष्य प्राप्ति तक चलती रहती है तथा लक्ष्य के अनुरूप ही क्रिया का रूप भी बदलता रहता है।
5. लक्ष्य प्राप्ति के बाद तनाव एवं मानसिक असन्तुलन समाप्त हो जाता है।

7.4 आवश्यकता अर्थ एवं परिभाषा

आवश्यकता एक प्रकार से आन्तरिक अवस्था है। हर प्राणी की कुछ–न–कुछ आवश्यकताएं होती है। इनकी सन्तुष्टि तथा असन्तुष्टि से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है। बोरिंग तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकता को एक ऐसा अभाव माना है जो शरीर में तनाव उत्पन्न करके ऐसा व्यवहार उत्पन्न करती है जिससे असन्तुलन समाप्त हो जाता है। हल के अनुसार प्रणोदन व्यवहार को ऊर्जा प्रदान करता है। इस प्रकार वातावरण की उन वस्तुओं को जो प्राणी का अस्तित्व व विकास करने में सहायता प्रदान करती है, आवश्यकता कहते है। अपना अस्तित्व बनाये रखने तथा अपने को विघटन से बचायें रखने के लिए व्यक्ति प्रयासरत् रहता है यह प्रवृति मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों स्तरों पर कार्यरत् रहती है।

7.5 आवश्यकता की विशेषताएं

आवश्यकता की अग्रलिखित विशेषताएं हैं –

1. आवश्यकता एक प्रकार से आन्तरिक विशेषता है।
2. प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ आवश्यकतायें अवश्य होती है।
3. आवश्यकता की सन्तुष्टि तथा असन्तुष्टि से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है।
4. आवश्यकता व्यक्ति को प्रेरणा प्रदान करती है।
5. आवश्यकता की अपूर्ति की अवस्था में व्यक्ति में प्रतिबल की वृद्धि होती है।

7.6 आवश्यकता के सामाजिक – सांस्कृतिक निर्धारक तत्व

1. **शारीरिक आवश्यकताएँ** – इसके अनतर्गत नींद से सम्बन्धित आवश्यकताएँ आती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अर्थात् यह आवश्यकताएँ व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यो को प्रभावित करती है। व्यक्ति ने प्रतिबल तभी बढ़ता है जब व्यक्ति की इन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ती है।
2. **सुरक्षा तथा पीड़ादायक उत्तेजनाओं का परिहार** – प्राणी की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह पीड़ादायक उत्तेजनाओं से बचना चाहता है। व्यक्ति के लिए भूख, प्यास, थकान, गर्मी, सर्दी तथा कुछ संवेग पीड़ादायक होते हैं। वह इनसे बचने के लिए अनेक सुरक्षा के उपाय ढूंढता है। विभिन्न प्रकार के समायोजनात्मक उपाय ढूंढता है किन्तु जब पीड़ाओं से बचने में स्वयं को असमर्थ पाता है तो कुसमायोजन प्रारम्भ हो जाता है।
3. **सैक्स** – इस जैविक प्रेरणा का मुख्य उद्देश्य सृजनात्मक है। इसे यौन–व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का व्यक्ति के यौन अभिप्रेरणाओं पर प्रभाव पड़ता है। यौन–व्यवहार में विचलन व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों स्तर पर पाये जाते हैं। सामाजिक स्तर पर नैतिक स्तर के अवमूल्यन के कारण व्यक्ति में सैक्स के प्रति प्रेरणात्मक व्यवहार परिवर्तित होता है।

   इस प्रकार शारीरिक आवश्यकताएँ आन्तरिक रूप से व्यक्ति को निरन्तर किसी लक्ष्य प्राप्ति के लिए उत्तेजित करती है जैसा कि पेज का विचार है –

इसके तीन प्रमुख प्रकार्य है –

1. शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि
2. प्राणी की शारीरिक आघात से रक्षा करना
3. ऐसी क्रियाओं को उत्तेजित करना जो प्राणी को प्रजनन एवं शिशु रक्षा के लिए सहायक हो।

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ

सम्य समाज में प्रायः जैविक आवश्यकताएँ तथा सुरक्षा प्रायः प्राणी को मिल ही जाती है इससे उन्हें संघर्ष या व्यवधान प्रायः नही के बराबर ही होता है जबकि कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अभाव में ही व्यक्ति में समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य में गिरावट तथा अन्तर्द्वन्द जैसे स्थितियाँ उत्पन्न होती है। इसके लिए पेज ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किये है –

आलपोर्ट महोदय ने इस मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को शारीरिक आवश्यकताओं से उत्पन्न वृहत रूप माना है। उसमें मुख्य आवश्यकताएँ हैं –

1. रक्षा
2. जिज्ञासा
3. प्रेम एवं अनुमोदन की आवश्यकता
4. सम्बन्धन
5. श्रेष्ठता
6. आत्म सम्मान

सामाजिक आवश्यकताएँ

मनुष्य स्वभाव से ही सामूहिकता की प्रवृत्ति लिए हुए होता है। व्यक्ति अपने समूह में समाज से जुड़ा रहता है। इसी सामाजिक अभिप्रेरणा के कारण व्यक्ति सामाजिक रीति–रिवाजों, प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करता है और अपने हर व्यवहार के लिए सामाजिक स्वीकृति चाहता है।

पेज ने मुख्य सामाजिक आवश्यकताएँ निम्नलिखित मानी है –

1. दूसरों से अनुक्रिया
2. मनोलैंगिक प्रेरणा
3. आदत एवं प्रेरणा
4. उत्तेजना

7.7 समायोजन का अर्थ व परिभाषा

एक छात्र अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाता है, पर दूसरे छात्रों की प्रतियोगिता और अपनी कम योग्यता के कारण वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल होता है। इससे वह निराशा और असन्तोष, मानसिक तनाव और संवेगात्मक संघर्ष का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में वह अपने मौलिक लक्ष्य को त्यागकर अर्थात् अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अपनी असफलता के प्रति ध्यान न देकर वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाता है। अब यदि वह अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, तो वह अपनी परिस्थिति या वातावरण से 'समायोजन' कर लेता है। पर यदि उसे सफलता नही मिलती है, तो उसमें 'असमायोजन' उत्पन्न हो जाता है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए परिस्थितियों को अनुकूल बनाना या परिस्थितियों के अनुकूल हो जाना ही समायोजन कहलाता है। यह समायोजन व्यक्ति अपनी क्षमता, योग्यता के अनुसार करता है।

हम 'समयोजन' और 'असमायोजन' के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ दे रहे हैं, यथा –

बोरिंग, लैंगफेल्ड व वेल्ड – ''समायोजन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन रखता है।''

गेट्स व अन्य – ''समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच संतुलित सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।''

गेट्स व अन्य – ''असमायोजन, व्यक्ति और उसके वातावरण में असन्तुलन का उल्लेख करता है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। साथ ही व्यक्ति, परिस्थिति तथा पर्यावरण के मध्य अपने को समायोजित करने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। अतः समायोजन को संतुलित दशा कहा गया है।

समायोजन की विशेषतायें

समायोजन करने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं –

1. परिस्थिति का ज्ञान, नियंत्रण तथा अनुकूल आचरण।
2. संतुलन।
3. पर्यावरण तथा परिस्थिति से लाभ उठाना।
4. समाज के अन्य व्यक्तियों का ध्यान।
5. संतुष्टि एवं सुख।
6. सामाजिकता, आदर्श चरित्र, संवेगात्मक रूप से अस्थिर, संतुलित तथा दायित्वपूर्ण।
7. साहसी एवं समस्या समाधान युक्त।

इसीलिये गेट्स ने कहा है – समायोजित व्यक्ति वह है जिसकी आवश्यकतायें एवं तृप्ति सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संगठित हो।

7.8 समायोजन के स्तर

यह कभी भी सम्भव नही है कि व्यक्ति की सभी इच्छाओं या आवश्यकताओं की पूर्ति हो, क्योंकि अनेक ऐसी इच्छाएँ होती है जो पूर्णतः समाज–विरोधी होती है या व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर होती है या कम अंश में ही पूर्ण होती है। अतः समायोजन को जानते समय यह भी जानना आवश्यक है कि समायोजन का क्या–क्या रूप हो सकता है। कभी–कभी व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं वातावरण की अनेक परिस्थितियों के साथ समायोजन करने में असफल रहता है या गलत ढंग से समायोजन कर लेता है। अतः यहाँ समायोजन के अन्य रूपों के सम्बन्ध में भी जानना आवश्यक है। यहां यह बताना उल्लेखनीय है कि समायोजन की विभिन्न श्रेणियों में किसी भी प्रकार की भेदक रेखा नही खींची जा सकती, क्योंकि इन श्रेणियों में प्रकार का अन्तर नही है बल्कि अंश या तीव्रता का अन्तर है। नीचे हम उन्हीं का क्रमबद्ध वर्णन कर रहे हैं –

समायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ – इस श्रेणी में व्यक्ति की वे प्रतिक्रियाएँ आती है जो परिस्थितियों के साथ मिलकर व्यक्त होती है। जब व्यक्ति एक कार्य करना चाहता है और बाधक परिस्थितियाँ उस कार्य में बाधा पहुँचाती है तो सबसे सामान्य तरीका यही है कि वह और मेहनत एवं बुद्विमानी से कार्य करे। जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा में फैल होने की कुण्ठा से बचाव करने के लिए अधिक मेहनत करता है और सामान्यतः ऐसा करने पर उसे सफलता भी मिलती है। इस प्रकार वह अपनी प्रेरणाओं में सन्तुलन रखता है और कुण्ठा का शिकार नहीं होता। इस प्रकार समायोजनात्मक प्रतिक्रियाओं में मुख्यतः व्यक्ति की रचनात्मक प्रतिक्रियाएँ आती है जिसमें व्यक्ति अपने वातावरण या सामाजिक नियमों या मान्यताओं को मानता है; एक रूढ़िवादी की तरह नहीं बल्कि एक सच्चे दृष्टिकोण के कारण; और अपनी प्रेरणाओं के साथ उनका सन्तुलन करने का प्रयास करता है। **सिगमण्ड्स** के मतानुसार, इस प्रकार की उपयुक्त प्रतिक्रियाओं से व्यक्तित्व विकास या व्यक्ति में परिपक्वता आती है। **सीशोर व कार्ट्ज** के अनुसार इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं की जाँच के लिए निम्नांकित आधारभूत तत्व हैं –

1. वे प्रतिक्रियाएँ जिनसे व्यक्ति को इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो या प्राप्ति में सहायक हो,
2. जिनसे व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो तथा निरन्तर वृद्धि हो,

3. जिनसे समाज को लाभ पहुंचे तथा साथ ही साथ किसी व्यक्ति को नुकसान भी नहीं पहुंचे,
4. जिनसे व्यक्ति में इस प्रकार के आत्मविश्वास का विकास होता है कि वह भविष्य की समस्याओं को साहस व दृढ़ता के साथ सुलझा सके।

7.9 अशान्त समायोजनात्मक या अर्द्ध–सन्तुलित प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति प्रेरणाओं को सिद्ध करने के लिए परिस्थितियों के साथ सन्तुलन करता है तो केवल यही सम्भव नही है कि उसकी प्रेरणा पूर्ण रूप से सन्तुष्ट ही हो जाय। दूसरे शब्दों में, सभी प्रेरणाएं पूर्ण रूप से समायोजनात्मक सिद्ध नहीं होती। कुछ में आंशिक समायोजन ही होता है; उदाहरण स्वरूप, एक विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे नम्बर लाने के लिए मेहनत के स्थान पर यह दिवास्वप्न देखता है कि पेपर आउट हो जायेगा, कापी जांचने वाले निरीक्षक का पता चल जायेगा, आदि। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी कल्पनाओं के माध्यम से आंशिक समायोजन स्थापित कर लेगा, परन्तु उसे पूर्ण सन्तोष प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार की प्रक्रियाओं को ही अंशतः समायोजनात्मक या अर्द्ध–सन्तुलित प्रतिक्रियाएँ कहते हैं। फिशर ने इसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति आदि क्रियाओं को रखा है।

असमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं का परिस्थितियों के साथ समायोजन नहीं कर पाता तो उन्हें असमायोजनात्मक प्रतिक्रिया कहते है। व्यक्ति सामाजिक व बौद्धिक प्राणी होने के फलस्वरूप अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है। उसके सम्मुख विभिन्न प्रेरकों की सन्तुष्टि करने की समस्या रहती है। जब व्यक्ति ऐसे कार्यो को निरन्तर करता रहता है जिनसे कि समायोजन में बाधा पहुंचती है तो इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को असमायोजित प्रतिक्रियाएँ कहते है; जैसे – मद्यपान की आदत डालना जिससे कि वह स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सके। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को करने वाला व्यक्ति परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने से इन्कार कर देता है। वह यह निश्चय कर लेता है कि उसे परिस्थितियों के प्रति निषेधात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करनी है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत प्रतिगम तथा शैशवकालीन व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाएँ भी आती है। व्यक्ति कभी–कभी एक विशेष प्रेरणा या आवश्यकता पर ध्यान नहीं देता तथा अन्य क्रियाएँ करने में लगा रहता है। ऐसी अवस्था में वह प्रेरणा कुण्ठित हो जाती है तथा उस कुण्ठित प्रेरणा का दमन होना शुरू हो जाता है। दमन के प्रयास को ही असमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते है।

विसमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ

इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में वे प्रतिक्रियाएँ आती है जिनका गलत ढंग से समायोजन होता है। इस प्रकार का समायोजन क्योंकि व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए हानिकारक है अतः इसे विसमायोजनात्मक प्रतिक्रियाएँ कहते है। इस प्रकार की क्रियाएँ करने वाले व्यक्तियों की समाज में आलोचना होती है तथा धीरे–धीरे इनका व्यवहार सामान्य व्यवहार से भिन्न होने लगता है। इस प्रकार के व्यक्ति न तो स्वयं ही उन्नति कर पाते हैं और न ही इनके द्वारा समाज व देश की ही उन्नति होती है। उसका सामाजिक सम्बन्ध धीरे–धीरे बिगड़ता जाता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं से अनेक असामान्य व्यवहार व मानसिक विकृतियों का जन्म होता है। इस प्रकार से इन प्रतिक्रियाओं के कारण व्यक्ति को न तो इच्छित लक्ष्य की ही प्राप्ति होती है और न ही इनकी सहायता से भावी समस्याओं के समाधान में ही सहायता प्राप्त होती है। ये व्यक्ति व्यर्थ में ही दिवास्वप्नों में लीन होकर अपना समय बरबाद करते है। विफलताओं से बचाव के लिए वह प्रेरणाओं को अधिक दमित करना सीख लेता है तथा अत्यधिक दमन के कारण व्यक्ति दैनिक जीवन की अनेक भूलों, असामान्य व्यवहारों व मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होता जाता है। उसके अन्दर सदैव एक हलचल बनी रहती है जिससे

उसमें आत्मविश्वास व उत्साह की असमर्थता आ जाती है। **सीशोर व कार्ट्ज** के अनुसार, असमायोजित प्रतिक्रियाओं में निम्न तत्व निहित रहते हैं –

1. जो व्यक्ति को इच्छित एवं प्रारम्भिक लक्ष्य या उसके उपयुक्त स्थानापन्न लक्ष्य की प्राप्ति से दूर ले जाये।
2. जो व्यक्ति को केवल अस्थायी सात्वना प्रदान करे तथा वास्तव में हानिकारक हो।
3. जिसके कारण व्यक्ति समाज का बोझ समझा जाये। वह अन्य व्यक्तियों से तो सहायता ले परन्तु दूसरों की सहायता न कर सके।
4. जिससे व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचे, उसकी कार्यक्षमता में ह्रास हो या आत्मविश्वास की कमी।

फिशर ने इन प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत अवदमन ,आरोपण, बाध्यतामूलक आदि क्रियाओं को रखा है।

7.10 प्रतिबल की परिभाषा

अन्तर्द्वन्द प्रतिबल का ही एक रूप है। फ्रायड के अनुसार असामान्यता का स्रोत प्रतिबल है। कठिनाइयाँ मानव के लिए मुश्किल तो है लेकिन अगर मानव–जीवन में कठिनाइयाँ न हो तो जीवन स्थिर हो जायेगा। क्योकि कठिनाइयाँ के कारण हमारे अन्दर जीवित रहने की इच्छा पैदा होती है लेकिन अगर कठिनाइयाँ बहुत अधिक हो जाये ंतो वही असामान्यता का रूप ले लेती हैं तथा इसी को प्रतिबल कहते हैं। जिस समय तक हम खाना नही खा लेते या अपनी इच्छाओं की पूर्ति नही कर लेते तब तक हमें अपने अन्दर प्रतिबल की भावना का अनुभव होता रहता है। प्रतिबल उत्पन्न होने के तीन कारण हैं –

1. विफलता या नैराश्य 2. अन्तर्द्वन्द 3. कष्ट, भार या दबाव

मान लीजिए कि एक बच्चे की माँ सेब लाती है। बच्चे के अन्दर उस सेब को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। मगर माँ उस सेब को छुपा कर ऐसे स्थान पर रख देती है जहाँ बच्चा नही पहुंच पाता। बच्चा सेब को किए प्रकार प्राप्त करे ? क्योंकि उसके सामने यह समस्या है कि वह रखे हुए सेब तक नही पहुंच सकता। ऐसी अवस्था में वह तीन प्रकार का व्यवहार करेगा : 1. या तो वह आक्रामक प्रकार का व्यवहार करेगा, 2. अपने को परिस्थिति से प्रत्याहरण करेगा, या 3. परिस्थिति के साथ किसी प्रकार का समझौता करेगा। परिस्थिति की आक्रामकता में वह बच्चा प्रयास व त्रुटि विधि का सहारा लेगा तथा सेब को प्राप्त करने का प्रयास करेगा। प्रत्याहरण में यह प्रयास करना बन्द करके रोना शुरू कर देगा। लेकिन समझौते में वह अपनी माँ से यह कहेगा कि अच्छा सेब दीदी को दे दो, मुझे कुछ और चीज दे दो। एक परिस्थिति के साथ इस तीन प्रकार का जो व्यवहार होगा, वह व्यक्ति के आकांक्षा स्तर पर निर्भर होगा। सामान्य रूप से प्रतिबल अधिक हानिकारक होता है। इसमें व्यक्ति के अधिक महत्वपूर्ण प्रेरक अवरुद्ध हो जाते है। इस प्रकार की परिस्थिति काफी समय तक व्यक्ति के सम्मुख बनी रहती है, जिससे व्यक्ति के सम्मुख अपरिचित व असम्भावित समस्याओं की उपस्थिति होती है। व्यक्ति इन समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता और वह अपने को इन समस्याओं पर नियन्त्रण करने में असमर्थ पाता है।

कोलमैन के शब्दों में –

प्रतिबल दो प्रकार का होता है : 1. शारीरिक, व 2. मानसिक, उदाहरणार्थ – जब व्यक्ति को ज्वर आ जाता है तब उसके शरीर का प्रत्येक अंग व प्रत्येक तन्तु तापक्रम से प्रभावित हो जाता है। यह स्थिति शारीरिक प्रतिबल का ही एक रूप है। द्वितीय रूप में जब व्यक्ति अधिक परिश्रम करता है और तब भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इसी प्रकार अनेक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों; तथा–क्लेश, व्यक्तिगत असफलताएँ आदि भी प्रतिबल का कारण होती है। प्रतिबल का सामूहिक रूप भी है; जैसे– युद्ध आदि।

7.11 प्रतिबल का प्रभाव

प्रतिबल व्यक्ति के व्यवहार पर अग्रलिखित प्रभाव पड़ता है –

1. व्यक्ति अक्रामक व्यवहार करने लगता है तथा बात–बात पर झगड़ने लगता है।
2. व्यक्ति अपने को परिस्थिति से अलग कर लेता है अर्थात् वह परिस्थिति से बचना लगता है।
3. व्यक्ति परिस्थिति की अक्रामकता से बचने के लिए प्रयास व त्रुटि विधि का सहारा लेने लगता है।
4. व्यक्ति में अधिक महत्वपूर्ण प्रेरक अवरुद्ध हो जाते है।
5. व्यक्ति के सम्मुख अपरिचित व असम्भावित समस्याओं की उपस्थिति होने लगती है।

7.12 नैराश्य का अर्थ एवं परिभाषा

व्यक्ति की अनेक इच्छायें और आवश्यकतायें होती है। वह उनको सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है। पर यह आवश्यक नही है कि वह ऐसा करने में सफल ही हो। उसके मार्ग में बाधायें आ सकती हैं। वे बाधायें उसकी आशाओं को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से भंग कर सकती है। ऐसी दशा में वह नैराश्य का अनुभव करता है। उदाहरणार्थ, हम प्रातःकाल चार बजे की गाड़ी से दिल्ली जाना चाहते हैं। हम समय से पहले उठने के लिए अलार्म घड़ी में चाभी लगा देते हैं, पर वह बजती नही है। अतः हम जाग नही पाते हैं और दिल्ली जाने से रह जाते है। या मान लीजिए कि हम समय पर स्टेशन पहुंच जाते है। पर भीड़ के कारण हमें टिकट नहीं मिल पाती है या हम गाड़ी में नहीं बैठ पाते हैं और वह चली जाती है। दोनों दशाओं में दिल्ली जाने की हमारी इच्छा में अवरोध उत्पन्न होता है। वह पूर्ण नहीं होती है, जिसके फलस्वरूप हम 'नैराश्य' का शिकार बनते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'नैराश्य' तनाव और असमायोजन की वह दशा है, जो हमारी किसी इच्छा या आवश्यकता के मार्ग में बांधा आने से उत्पन्न होती है। हम 'नैराश्य' अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए दो परिभाषाएँ दे रहे हैं; यथा –

1. **गुडे** – ''नैराश्य का अर्थ है – किसी इच्छा या आवश्यकता में बाधा पढ़ने से उत्पन्न होने वाला संवेगात्मक तनाव।''
2. **कोलेसनिक** – ''नैराश्य उस आवश्यकता की पूर्ति या लक्ष्य की प्राप्ति में अवरुद्ध होने या निष्फल होने की भावना है, जिसे व्यक्ति महत्त्वपूर्ण समझता है।''

नैराश्य के प्रकार

'नैराश्य' दो प्रकार की होती है–

1. **बाह्म** – बाह्म नैराश्य उस परिस्थिति का परिणाम होती है, जिसमें कोई बाह्म बाधा, व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने से रोकती है। उदाहरणार्थ, भौतिक बाधाओं, नियमों, कानूनों या दूसरों के अधिकारों या इच्छाओं का परिणाम बाह्म नैराश्य हो सकती है।
2. **आन्तरिक** – आन्तरिक नैराश्य उस बाधा का परिणाम होती है, जो स्वयं व्यक्ति में होती है। उदाहरणार्थ, भय जो व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने से रोकता है या व्यक्तिगत कमियों (जैसे– पर्याप्त ज्ञान, शक्ति, साहस या कुशलता का अभाव) का परिणाम–आन्तरिक नैराश्य हो सकती है।

7.13 नैराश्य का प्रभाव

नैराश्य की दशा में बालक या व्यक्ति चार प्रकार का व्यवहार करता है–

1. वह आक्रमणकारी बन जाता है।

2. वह आत्मसमर्पण कर देता है।
3. वह कुछ समय के लिए एकान्तवासी बन जाता है।
4. वह किसी रोग से ग्रस्त होने का विचार करता है। पर यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार का कोई व्यवहार करने वाला व्यक्ति–नैराश्य का शिकार है। इस विचार की पुष्टि करते हुए मोर्स एवं विंगो ने लिखा है– ''जो व्यक्ति, नैराश्य का शिकार होता है, वह इन चारों प्रकार के व्यवहार में से किसी प्रकार का व्यवहार करता है, पर यह आवश्यक नही है कि इन चारों प्रकार से व्यवहारों में से किसी प्रकार का व्यवहार करने वाला व्यक्ति, नैराश्य का शिकार है।''

7.14 संघर्ष का अर्थ व परिभाषा

व्यक्ति को लक्ष्य–प्राप्ति के दौरान अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कई बार समय कम होने, अनेक विकल्पों में से एक को चुनने तथा लक्ष्य प्राप्ति के बाद अगले लक्ष्य के निर्धारण में अनेक बाधायें आती हैं। ऐसे समय में मानसिक द्वन्द्व या संघर्ष उत्पन्न होने लगता है। यह स्थिति मानसिक उथल–पुथल की स्थिति होती है।

'संघर्ष' का सामान्य अर्थ है– विपरीत विचारों, इच्छाओं, उद्देश्यों आदि का विरोध। 'संघर्ष' की दशा में व्यक्ति में संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है, उसकी मानसिक शान्ति नष्ट हो जाती है और वह किसी प्रकार का निर्णय करने में असमर्थ होता है।

'संघर्ष' के अनेक रूप हो सकते हैं; जैसे – एक व्यक्ति का दूसरे से संघर्ष, व्यक्ति का उसके वातावरण से संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष आदि। इन सबसे कहीं अधिक गम्भीर और भयानक है – आन्तरिक संघर्ष। यह संघर्ष, व्यक्ति के विचारों, संवेगों, इच्छाओं, भावनाओं, दृष्टिकोणों आदि में होता है।

'संघर्ष' का मुख्य आधार – उचित और अनुचित का विचार होता है। उदाहरणार्थ, बालक जानता है कि उसके पिताजी का बटुआ अल्मारी में रखा रहता है। वह उसके बारे में सोचने लगता है। वह उसमें से कुछ धन निकाल लेना चाहता है। पर वह यह समझता है कि चोरी करना अनुचित कार्य है और यदि उसकी चोरी का पता लग जाएगा, तो उसको दण्ड मिलेगा। वह इन विरोधी बातों पर विचार करता है। फलस्वरूप, उसमें मानसिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है। वह इसका अन्त केवल उत्तम और उचित कार्य को करने का निर्णय करके ही कर सकता है।

'संघर्ष' की कुछ परिभाषाएँ दृष्टव्य है –

डगलस व हालैंड – ''संघर्ष का अर्थ है– विशेष और विपरीत इच्छाओं में तनाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली कष्टदायक संवेगात्मक दशा।''

क्रो व क्रो के अनुसार ''संघर्ष उस समय उत्पन्न होते हैं, जब व्यक्ति को अपने वातावरण में ऐसी शक्तियों का सामना करना पड़ता है, जो उसके स्वयं के हितों और इच्छाओं के विरुद्ध कार्य करती है।''

फ्रायड के अनुसार ''इदम्, अहम्, पराहम् के मध्य सामन्जस्य का अभाव होने से मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है।''

7.15 संघर्ष का प्रभाव

संघर्ष से व्यक्तियों अथवा बच्चों पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है –

1. बालकों एवं व्यक्तियों के समक्ष किसी भी कार्य को करने में मानसिक उलझन उत्पन्न हो जाती है।
2. बालकों व व्यक्तियों को निराशाओं और असफलताओं का सामना करना पड़ता है।

3. बालकों और व्यक्तियों के समक्ष विरोधी प्रश्नों के चुनाव में कठिनाई आती है।
4. बालकों व व्यक्तियों के समक्ष परिस्थितियों का सामना करने में कठिनाई आती है।
5. बालकों और व्यक्त्यिों के समक्ष असन्तोषजनक परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है।
6. बालकों व व्यक्तियों का लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में प्रयास विफल होने लगता है।
7. बालकों और व्यक्तियों में निर्णय करने की क्षमता समाप्त होनी लगती है।
8. बालकों और व्यक्तियों के सामने मानसिक व सांमवेगिंक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं।
9. बालकों व व्यक्तियों के समक्ष परिवार व विद्यालय के पर्यावरण के बीच में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

7.16 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में प्रेरणा अथवा संप्रेरणा की परिभाषा और अर्थ के बारे में प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ प्रेरणा की विशेषताएं भी दी गई है। प्रस्तुत इकाई में ही आवश्यकता का अर्थ व परिभाषा प्रस्तुत की गई है एवं जैविक आवश्यकतायें, मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें, सामाजिक आवश्यकतायें आदि के बारे में वृहद चर्चा की गई है। प्रस्तुत इकाई में समायोजन की परिभाषा, अर्थ तथा विशेषताएं भी प्रदान की गई है एवं समायोजन का विभिन्न स्तरों पर समायोजनात्मक क्रिया के बारे में भी प्रकाश डाला गया है। इसी इकाई में प्रतिबल की परिभाषा तथा इसका व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। नैराश्य क्या होता है? तथा उसकी विशेषताएं क्या होती है के बारे में चर्चा की गई है एवं नैराश्य के प्रकार व इसका प्रभाव व्यक्ति पर कैसे पड़ता है, के बारे में विशेष प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत इकाई में ही संघर्ष का अर्थ व परिभाषा एवं संघर्ष का व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में लिखा गया है।

7.17 अभ्यास प्रश्न

8. प्रेरणा से आप क्या समझते हैं?
9. प्रेरणा की परिभाषा एवं विशेषताएं लिखिए?
10. आवश्यकता क्या है?
11. शारीरिक आवश्यकतायें क्या होती है? वर्णन कीजिए।
12. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर एक टिप्पणी लिखिए?
13. सामाजिक आवश्यकतायें क्या होती हे?
14. समायोजन क्या है?
15. समायोजन की विशेषताएं लिखिए?
16. व्यक्ति के विभिन्न स्तरों पर समायोजन की प्रक्रियाओं के बारे में लिखिए।
17. नैराश्य क्या होता है? तथा इसका व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?
18. प्रतिबल क्या होता है? तथा इसका व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?
19. संघर्ष क्या होता है? तथा इसका मानव व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है?

7.18 परिभाषिक शब्दावली

Motivation	प्रेरणा	Psychosexual	मनोलैगिंक
Need	आवश्यकता	Aggressiveness	उत्तेजना
Adjustment	समायोजन	Somato	दैहिक
Selective	चयनात्मक	Maladjustment	असमायोजन

Drive	चलन	Frustration	नैराश्य
Pain	पीड़ा	Conflict	संघर्ष
Organic Needs	शारीरिक आवश्यकतायें	Stress	प्रतिबल
Favourable	सहायक	Tension	तनाव
Response	अनुक्रिया	Painful	कष्टदायक
Goal Object	डचित वस्तु उद्देश्य	Opposite Goals	विरोधी लक्ष्य
Circumstances	परिस्थितियां	Moral Ideals	नैतिक आदर्श

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3. सिंह, लाभ एवं तिवारी गोविन्द, असमान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2001, पेज 99–103 तथा 130–131.

4. पाठक, पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, वर्ष 2007, पेज 420–422. तथा 426–427.

इकाई–8

वंशानुक्रम तथा पर्यावरण
Heredity & Environment

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 परिचय
8.2 वंशानुक्रम
    8.2.1 हेरीडिटी **(Heredity)** शब्द का व्याख्या
8.3 जीव रचना **(Mechanism)**
8.4 वंशानुक्रम के नियम
    8.4.1 वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव
8.5 प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ
8.6 वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन
8.7 पर्यावरण के प्रकार
    8.7.1 पर्यावरण का प्रभाव
    8.7.2 वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व
8.8 सार संक्षेप
8.9 अभ्यास प्रश्न
8.10 पारिभाषिक शब्दावली
    सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- वंशानुक्रम का अर्थ निरूपित कर सकेगें ।
- हेरीडिटी (Heredity) शब्द का व्याख्या
- जीव रचना (Mechanism) की व्याख्या सकेगें ।
- वंशानुक्रम के नियम जान सकेगें ।
- वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव जान सकेगें ।
- प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियों को जान सकेगें ।
- वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन कर सकेगें ।
- पर्यावरण के प्रकार को समझ सकेगें ।
- वंशानुक्रम पर पर्यावरण का प्रभाव जान सकेगें ।
- वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व समझ सकेगें ।

8.1 परिचय

व्यक्ति का जीवन वंशानुक्रम द्वारा ही सम्भव होता है। उसकी मनोशारीरिक रचना पर वंशानुक्रम सम्बन्धी कारकों का विशेष प्रभाव पड़ता है। बालक की शारीरिक तथा मानसिक रचना का जनक वंशानुक्रम है। अतः वंशानुक्रम का अर्थ तथा उसके प्रभाव को जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

8.2 वंशानुक्रम का अर्थ (Meaning)

व्यक्ति जिन गुणां एवं विशेषताओं को अपने वंश में प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं। अर्थात् जिस प्रक्रिया द्वारा वह शारीरिक व मानसिक विशेषतायें प्राप्त होती है उसे वंशानुक्रम कहते हैं।

रूथ, वेनेडिक्ट : वंशानुक्रम का अर्थ माता पिता से उनकी सन्तानों में विविध गुणों का संचरण है।

BENEDICT, RUTH: Heredity is the transmission of traints from parents to off springs.

फेयरचाइल्ड, एच0पी0 : वंशानुक्रम का अर्थ माता पिता से उनकी सन्तानों में शारीरिक (जन्मजात मनोवैज्ञानिक सहित) गुणों का संचरण है।

FAIRCHILD, H.P. : Heredity means the transmission of physical traits (including innate phychological) from parents to off springs.2

Pt in C p-Heredity

Pt-Parental traits, CP-Child personality

The process through which parental traits are brought in child's personality is known as heredity.

जिस विधि के द्वारा माता–पिता के गुण बालक के व्यक्तित्व में लाये जाते हैं, उसे वंशानुक्रम कहते हैं।

8.2.1 हेरीडिटी (Heredity) शब्द की व्याख्या

H – Human life	E-Emotions
R-Reasoning	E-Explaining capacity
D-Developmental traits	I-Integrating power
T-Talent temperament	Y-Yielding

वंशानुक्रम मानव जीवन सम्भव बनाता है तथा उनमें संवेग, तर्क शक्ति, बात–चीत करने की शक्ति, बुद्धि, विकासात्मक गुण, आन्तरिक शक्ति तथा कार्यात्मक क्षमता का समावेश करता है।

8-3 जीव रचना (Mechanism)

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार बालक में माता–पिता से उनके गुणों का संचरण होता है। इसको समझने के लिए जीव रचना को समझना आवश्यक है। व्यक्ति का शरीर अनेक कोष्ठों से बना है। ये कोष्ठ (Cells) शरीर के प्रत्येक अंग में पाये जाते हैं और शरीर को क्रियाशील बनाते हैं। भ्रूण (Embryo) की रचना युक्त (Zygote) से होती है। युक्त का निर्माण पुरुष के शुक्राणु (Sperm) तथा स्त्री के अण्ड (Ovam) के मिलने से बनता है। पुरुष स्त्री के लैंगिक समागम से पुरुष का शुक्र (Sperm) गर्भाशय में पहुंचता है और स्त्री का अण्ड भी गर्भाशय नाल (Fallopian Tube) द्वारा गर्भाशय में आता है और दोनों का मिलाप होता है जिसके परिणाम स्वरूप निषेचन क्रिया (Fertilization) सम्भव होती है और भ्रूण का निर्माण होता है। शुक्र तथा अण्ड दोनों में विशेष गुण होते हैं अतः वे भ्रूण में आ जाते हैं। गर्भ पूरा होने पर बच्चे का जन्म होता है।

पुरुष में शुक्राणु (Sperms) तथा स्त्री में अण्ड (Ovam) की उत्पत्ति जनन ग्रन्थि से होती है। प्रत्येक मासिक धर्म में डिम्बग्रन्थि से एक–एक डिम्ब ग्रन्थि तैयार होती है। यह डिम्ब ग्रन्थि से डिम्ब प्रणाली (Oviduct) में आ जाता है। इस प्रक्रिया को (Ovulation) कहते हैं। यद्यपि प्रत्येक स्त्री–पुरुष संसर्ग में अनेकों शुक्राणु बाहर आकर डिम्ब से मिलते हैं परन्तु उनमें केवल एक ही डिम्ब प्रणाली में उपस्थित डिम्ब से मिलता है तभी नया जीवन प्रारमी होता है। इस निषेचित अण्ड (Fertilized Ovum) में 46 क्रोमोसोम्स होते हैं जो आधे माता तथा आधे पिता के होते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों के डिम्ब तथा शुक्राणु में 23–23 क्रोमोसोम्स होते हैं तथा प्रत्येक क्रोमोसोम्स में 40–100 तक जीन्स (Genes) होते हैं। जीन्स ही माता–पिता के गुणों को बालक में ले जाते हैं। बालक का रंग, रूप, लम्बाई, चौड़ाई, बनावट आदि इसी आधार से निश्चित होती है।

8.4 वंशानुक्रम के नियम (Laws of Heritance)

वंशानुक्रम के तीन मुख्य नियम माने जाते हैं:

1. समान को जन्म देता है (Like begets like)
2. भिन्नता का नियम (Law of variation)
3. प्रत्ययागमन (Regression)

वंशानुक्रम का सत्य नियम है कि अपने ही अनुरूप एवं समान जीव का विकास होता है। वे ही विशेषतायें होती हैं जो माता–पिता में होती हैं। साथ ही साथ दूसरा नियम यह है कि सन्तान पूर्णतया माता–पिता के समान नहीं होती है, उसके शारीरिक बनावट में भिन्नता पाई जाती है। इसका कारण माता–पिता के जीन्स बालक में अलग–अलग स्थान ग्रहण करते हैं, अतः भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। माता–पिता की संतानों में भी भिन्नता होती है, इसका कारण प्रमुख और गौरण जीन्स के गुण होते हैं। तीसरा नियम यह है कि प्रतिभाशाली माता–पिता की सन्तान प्रतिभाशाली तथा निम्नकोटि के माता–पिता की सन्तान निम्नकोटि की होती है। माता–पिता जो प्रतिभाशाली होते हैं उनके माता–पिता के बीजकोष उन्हें प्रतिभाशाली बनाते हैं। जब उनके बीजकोषों का समागम होता है तो बुद्धिमान बालक का जन्म होता है। परन्तु सदैव माता–पिता अथवा दादा–दादी प्रतिभावाना नहीं हुआ करते हैं। अतः जब पैतृक प्रतिभावान कम प्रतिभावना से मिलते हैं तो बालक में गुण निम्नकोटि के उत्पन्न होते हैं।

स्त्री प्रतिभावान

प्रतिभावान बालक

पुरुष प्रतिभावन

पुरुष प्रतिभावान

कम प्रतिभावान बालक

स्त्री कम प्रतिभावान

8.4.1 वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव

व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषतायें वंशानुक्रम द्वारा प्रभावित होती हैं:

1. शारीरिक रचना (Body Construction)

2. शरीर का आकार, कद, त्वचा, बालों तथा नेत्रों का रंग, लम्बाई, गठन इत्यादि वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं।
3. **क्रियात्मक क्षमता** (Functional Ability)
4. शारीरिक बल, रुधिर वर्गीकरण, प्रजजन, रोगों के प्रति संवेदनशीलता आदि
5. क्रियात्मक लक्षण होते हैं जो वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं।
6. **मानसिक विशेषतायें** (Mental Traits)
7. बुद्धि, क्षीण–मानसिकता, मूर्खता, चतुराई, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक योग्यता आदि
8. लक्षणों पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है।
9. **असामान्य गुण** (Abnormal Traits)
10. इसमें रजकहीनता, कोढ़, रंग अंधापन, रतौंधी आदि सम्मिलित हैं। ये वंशानुक्रम
11. द्वारा हस्तांतरित होते हैं।

वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव

क्षेत्र तथा संकुल	विशिष्ट गुण
1. शारीरिक	
शरीर का अकार :	1. लम्बाई 2. भार 3. मोटाई 40 गठन
रंग :	1. त्वचा का रंग 2. बालों का रंग 3. आँखों की पलकों का रंग
बनावट :	1. शरीर की बनावट 2. मुँह की बनावट 3. आँखों की बनावट 4. सर की बनावट
असामान्यता :	1. शारीरिक दोष 2. मानसिक दोष 3. रोग जैसे रतौंधी, मनोविदलाता, कोढ़ आदि
ध्वनि :	1. तीव्र 2. मध्यम
2. मानसिक	
बुद्धि :	1. अत्युत्कृष्ठ 2. उत्कृष्ट 3. सामान्य से ऊपर 4. सामान्य से नीचे 5. मूर्ख 6. मूढ़ 7. जड़
भावना :	1. आशा 2. निराशा 3. चिड़चिड़ापन 4. अस्थिरता
स्वेग :	1. क्रोध 2. झगडालूपन 3. सहानुभूति 4. प्रेम 5. भय 6. चिंता 7. हंसी
3. क्रियात्मक	
बल :	1. शारीरिक बल 2. मानसिक बल 3. आत्म बल 4. लैंगिकता
रुधिर :	A, AB,B,O
प्रजनन क्षमता:	1. कामेक्षा 2. सन्तानोत्पत्ति की शक्ति 3. बालक होने का अन्तराल
रोगों के प्रति संवेदनशीलता :	1. शरीर की नाजुकता 2. सहनशीलता

8.5 प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ (Primary Reaction Tendencies)

कार्यात्मक स्तर :	1. अति सक्रियता 2. कम सक्रियता 3. निष्क्रियता
अनुकूलन :	1. सामान्य अनुकूल 2. मंद अनुकूलन

3. कठिनाइयाँ

संवेदनशीलता : 1. अति 2. कम

समस्या समाधान : 1. प्रत्यक्षीकरण 2. कल्पना 3. अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता 4. तर्क शक्ति

Thus, heredity not only provides the potentialities for development and behaviour of the species but also is an important source of individual differences.

8.6 वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी कुछ अध्ययन

वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव कहाँ तक महत्वपूर्ण होता है इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु यह निश्चित है कि बिना वंशानुक्रम के बालक में गुणों का विकास नहीं हो सकता है। शारीरिक विशेषतायें बुद्धि, स्वभाव आदि वंशानुक्रम से प्राप्त होती है। फ्रैन्सिस गाल्टने (Francis Galtion) ने वंशानुक्रम के प्रभाव को अपनी पुस्तक हेरिडिटरी जीनियस (Hereditory Genius) में दर्शाया है। उनका विचार था कि जब तक योग्य पुरुष योग्य स्त्री से विवाह करता रहेगा तब तब बुद्धिमान संतान उत्पन्न होगी। गाल्टन ने 30 कलाकारों के परिवारों का अध्ययन किया और पाया कि इन परिवारों के 64 प्रतिशत बालक कलाकार थे जबकि सामान्य जनसंख्या में केवल 1प्रतिशत ही कलाकार पाये गये। सन् 1992 में गोडार्ड (Goddard3) ने कालिकाक (Kallikak) परिवार का अध्ययन प्रकाशित किया। कालिकाक नामक व्यक्ति अमरीका का रहने वाला था जिसने दो विवाह किये थे। एक क्रांति के समय तथा दूसरा बाद में किया था। पहली पत्नी मंद बुद्धि की थी तथा दूसरी बुद्धिमान एवं पदरी की लड़की थी। इन दोनों से जोसंताने उत्पन्न हुई उनमें काफी असमानता देखने को मिली। मंद बुद्धि की पत्नी से उत्पन्न संतानों की पीढ़ियों में कुल 480 से 143 मंद बुद्धि के थे। 24 शराबी, 3 अपराधी, 35 अनैतिक कार्य करने वाले तथा केवल 46 सामान्य पाये गये। पादरी की लड़की से उत्पन्न कुल संताने 496 में से अधिकांश वकील, जज, व्यापारी, प्रोफेसर आदि थे।

कार्ल पियर्सन ने भी वंशानुक्रम के प्रभाव पर अनेक प्रयोग किये। उन्होंने इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि माता–पिता की शारीरिक विशेषताओं का प्रभाव बच्चे पर अवश्य पड़ता है। उन्होंने बताया कि वंशानुक्रम का प्रभाव पर्यावरण से 7 गुना अधिक होता है।

कालमैन (Kallman)5 ने वंशानुक्रम का मनोविदलता (Schizopherenia) की उत्पत्ति पर उसके प्रभावों के संदर्भ में अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सामान्य जनसंख्या की अपेक्षा रक्त सम्बन्धों में मनोविदलता अधिक घटित होती है। जैक्सन (Jakson)6 ने भी अध्ययन किया कि अनेक रोग पीढी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं।

अतः अध्ययनों से पता चलता है कि व्यक्ति की उत्पत्ति की एवं उसकी मानसिक एवं शारीरिक विशेषताओं के निर्धारण में वंशानुक्रम का पूरा–पूरा हाथ रहता है। परन्तु यह बात शत प्रतिशत सत्य नहीं है। जिस प्रकार पेड़–पौधे बिना उचित मिट्‌टी एवं जलवायु के जीवित नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार उचित पर्यावरण के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है।

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है–परि + आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढके हुये। अर्थात् प्राणी को छोड़कर जो कुछ उसके चारों ओर है वह उसके पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए गर्भावस्था में गर्भ ही बालक के लिए पर्यावरण होता है। जन्म लेने पर परिवार तथा भौगोलिक दशायें पर्यावरण में आती हैं। जब वह बाहर जाने लगता है तो उसके पर्यावरण में पड़ौस, खेल समूह तथा अन्य परिस्थितियाँ सम्मिलित हो जाती हैं। इसके बाद विद्यालय एवं अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का प्रभाव पड़ता है।

1. परिभाषा (Definition)

जिंसवर्ट, पी0 : पर्यावरण उस सबको कहते हैं जो किसी एक वस्तु को चारों ओर से घेरे तथा इस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।

GISBERT, P, : Environment is anything immediately surrouding an object and exerting a direct influence on him.7

इलियट, टी0डी0 : चेतन पदार्थ की किसी ईकाई के प्रभावकारी उद्दीपन तथा अन्तःक्रिया के क्षेत्र को पर्यावरण कहते है।

ELLIOTT T.D. : Environment is the filed of effective stimulation and interaction for any unit of living matter.8

2. इनवाइरनमेन्ट **(Environment)** शब्द का विश्लेषण

E=Educational institutions,	N=Neighbourhood
V=Value System	I=Interaction pattern
R=Religion	O=Occupation
N=Nurturing	M=Material facilites
E=Economic conditions	N=Natural surroundings
T=Thoughts	

Thus we can say that environment includes natural surroundings, institutions, religion, occupation, material facilites, economic condition, interaction pattern and value system.

पर्यावरण के अन्तर्गत नैसर्गिक दशायें, संस्थायें, धर्म, व्यवसाय, भौतिक सुविधायें, आर्थिक स्थिति, अन्तःक्रिया के तरीके तथा मूल्य व्यवस्था को सम्मिलित करते हैं।

8.7 पर्यावरण के प्रकार **(Types)**

I. बाह्य पर्यावरण (External)

II. आन्तरिक पर्यावरण (Enternal)

OC+IC=E(Environment)

OC=Outer conditions, IC=Inner conditions

OC=(Phy+Bio+Soc)

Phy=Physical : Water, air, sunlight, climate season soil, humidity, housing, radiation,

Bio=Biological : plants, animals, insects, micro organism, nutrition,

Soc=Social : People, customs, culture, income occupation, religion, social and political organization, institutions, Family life, standard of living, Urbanization, Industrialisation, strees and strain, competion.

III IC =(LS+NG+PE)

LS=Life space : perceiving, meaning, Value Importance

N=Needs : I Life : Food, water, air, sexual, worth,
II Safety : Internal and external
III Love : Affection, attachment, care, attention, emotional support.
IV Relationship : Value, acceptance, appreciation, esteemed, respect, status, approval.
V Achievment : Creative and productive act, welfare, Actualization self-expression.
G=Goals : Occupational goal, educational goal, Home-making, having children, Finding financial security.
PE=Past Experience : Constructive, Destructive, Painful, Traumatic.

8.7.1 पर्यावरण का प्रभाव

व्यक्तित्व के सभी अंग पर्यावरण से प्रभावित होते हैं।

पर्यावरण का व्यक्तित्व पर प्रभाव

प्रकार तथा क्षेत्र		प्रभाव
1. भौतिक तथा जैविकीय		
खान–पान		पंजाब में गेहूं, बंगाल में चावल, टुण्ड्रा में कच्चा मांस वस्त्र शीत प्रदेश में बाल दार खाल, काँगो बेसिन में नंगे, शीतोष्ण में सूती तथा ऊनी।
मकान		पर्वत पर लकड़ी के मकान तथा छत ढालू, मैदानों में ईंट तथा सीमेंट व मिट्टी के मकान।
जनसंख्या		मैदानी भागों में घनी जनसंख्या, पहाड़ी भागों में कम जनसंख्या
व्यवसाय		समुद्र के किनारे मछली पकड़ना, मैदानों में गेहूं, चावल, आदि की खेती।
प्रजाति		शरीर की बनावट, रंग डील–डौल
यातायात के साधन		मैदानों में अधिक रेल तथा साधन पहाड़ों पर कम साधन
स्वास्थ्य		समशीतोष्ण सबसे अच्छी स्थिति
मानव व्यवहार		गर्मियों में आत्म हत्यायें अधिक
आर्थिक जीवन		कृषि उपजाऊ प्रदेश में, कारखानें खनिज प्रदेश में
कला तथा साहित्य		पर्वतीय कला में पर्वतों का वर्णन, मैदानी भाग में शस्यश्यामला हरी भरी धरती का वर्ण
2. सामाजिक पर्यावरण		
परिवार (वर्ग)	उच्च तथा मध्य वर्गीय	समाजीकरण मंद, माता–पिता द्वारा अधिक देख–भाल, अच्छा बनने को

प्रोत्साहन, वैयक्तिक तथा सामूहिक प्रतिमानों को सीखने पर जोर, प्रतिस्पर्धा, अच्छा बनने की चिन्दा।

निम्न वर्गीय समाजीकरण तेज, माता–पिता की कम देख–रेख, जीवन लक्ष्य अपने जैसा, उपलब्धि का प्रोत्साहन नहीं, संख्यात्मक उपाय, प्रेम की कमी न होने के कारण चिन्ता की कमी।

दोषपूर्ण बालक सम्बन्ध तिरस्कार चिन्ता, असुरक्षा, आत्मशक्ति कमजोर, नकारात्मक दृष्टिकोण, एकाकीकरण, ईर्ष्या, चेतन, विकास मंद

अति लाड़ प्यार शर्मीला, आत्ममूल्यांकन की कमी।

अति बन्धन स्वार्थी, माता–पिता के प्रति विरोधी, शक्ति के विरोधी

अवास्तविक मांगे आत्म अवमूल्यन, कठोर चेतना विकास, मानसिक संघर्ष।

अनुशासन की कमी समाज विरोधी व्यवहार

कठोर अनुशासन भय, घ्रणा, मित्र भाव की कमी

अवाँछनीय माता–पिता दोषपूर्ण मूल्य रचना, अवास्तविक उद्देश्य, असमायोजित व्यवहार।

3. विद्यालय

अध्यापकों का स्वभाव 1. निरंकुशः हीनभावना, भावनाओं के स्पष्टीकरण मं बाधा

2. अति सीधेः अनुशासन हीनता

पर्यावरण 1. प्रतिस्पर्धात्मक : मध्यम वर्ग के बालकों के लिए भग्नाषा का अनुभव, निरन्तर तनाव, उच्च एवं हीन भावना का विकास, आत्म केंद्रित

2. सहयोगिक : साथ–साथ कार्य, सभी प्रयत्नों में सहयोग, सफलता व असफलता में सामूहिक भागीदारी, उद्देश्य, केन्द्रित, आत्म केन्द्रित, सामूहिक प्रयास, समूह से आत्मीकरण

पुरुस्कार तथा दण्ड 1. पुरुस्कार : बालक की प्रशंशा सभी के सामने करने से शैक्षिक उपलब्धि

2. दण्ड : एकान्त में दण्ड देने पर सबसे अधिक उपलब्धि सभी के सामने दण्ड देने का अत्यन्त हानिकारक प्रभाव

4. धर्म

आस्थावान नैतिक दृष्टिकोण, प्रेम, सद्भावना, सहयोग, जीवन में शांति, आत्म बल, असामाजिक कार्यों के करने में भय, परम्परागत व्यवहार, आत्म हत्या की भावना तथा तनाव की कमी

धर्म में कम या नहीं विश्वास नैतिक दृष्टिकोण का अभाव, सद्भावना की कमी, सदैव तनाव, आन्तरिक शान्ति की कमी, अनैतिक कार्य करने में डर नहीं, आत्महत्या की प्रवृत्ति।

उपर्लिखित स्थितियों के अतिरिक्त व्यवसाय की कार्य दशायें, उन्नति के अवसर, शिक्षा, वैयक्तिक गुण का महत्व आदि का प्रभाव भी पड़ता है।

पर्यावरण के सामान्य प्रभाव को निम्न शब्दों में लिख सकते हैं।

PER2S5HI4M5A4BC3D

P=Perception प्रत्यक्षीकरण	E=Emotions संवेग
R'=Reasoning तर्क शक्ति	R2=Role भूमिका
S'=Self-development आत्म विकास	S=Self evaluation आत्म मूल्यॉंकन
S3=Style of life जीवन शैली	S4=Self expression आत्म प्रगटन
S5=Security आत्म सुरक्षा	E=Educational achievement शैक्षिक उपलब्धि
H=Habits आदतें	I'=Interests रुचियाँ
I2= Interaction patterns अन्तःक्रिया के तरीके	I3 Intelligence बुद्धि
I4=Importance महत्व	M=Mood मन की दशा
M2=Method तरीके	M3=Mobility गतिशीलता
A1=Attitude मनोवृत्ति	A2=Adjustment समायोजन
A3=Acquisitivenes संग्रहता	A4=Accomplishment उपलब्धि
B=Behaviour व्यवहार	C1=Change परिवर्तन
	C3=Concept प्रत्यय
C2 = Capacity to work कार्य क्षमता	D=Descipline अनुशासन

कुछ अध्ययन (Some Studies)

कुछ प्रमाणों ने यह सिद्ध करने का पूरा–पूरा प्रयास किया है कि व्यक्ति की मानवीय प्रकृति समाज में ही सम्भव होती है। सन् 1938 में 6 वर्ष की अन्ना नामक लड़की पायी गयी। वह न तो बोल सकती थी, न बात कर सकती थी, उसका शारीरिक व मानसिक विकास नहीं हो पाया था। वह लड़की घर में एकान्त में रखी गयी थी और उसे परिवार में रहने का मौका नहीं दिया था। दूसरा उदाहरण कमला, अमला नाम की दो लड़कियाँ जिनको बचपन में भेड़िया उठा ले गया था पायी गयी। वे न तो बोल सकती थीं, न मनुष्यों के समान खाना खा सकती थी। पशुओं के समान चलती थीं, भेड़िया जैसा गुर्राती थी। एक अन्य उदाहरण देखने को मिलता हैः कास्पर हाउसर राजनैतिक कुचक्रों के कारण सामाजिक सम्बन्धों से अलग कर दिया गया था। 1828 ई0 में 17 वर्ष की आयु में न्युरेन वर्ग में पाया गया उस समय वह मामूली चल सकता था। वह केवल दो शब्दों का उच्चारण कर लेता था तथा निर्जीव पदार्थों को जीवित समझता था।

इन सभी अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति का मानसिक स्वरूप समाज में ही सम्भव है। सामाजिक पर्यावरण की दशायें व्यक्तिगत भिन्नता को उत्पन्न करती हैं।

4. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व (Relative Importance of Heredity and Environement)

गाल्टन के अध्ययन के साथ ही इस बात विवाद उत्पन्न हो गया कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है। गाल्टन ने अपने अध्ययन में पाया कि किस प्रकार कम संख्या के अंग्रेजी

परिवार इंग्लैण्ड में महत्वपूर्ण व्यक्तियों को उत्पन्न करते हैं। उन्होंने ज्ञात किया कि 188 प्रमुख व्यक्तियों के 535 प्रमुख सम्बन्धी थे जबकि 977 सामान्य व्यक्तियों के केवल 4 विशिष्ट सम्बन्धी थे। परन्तु इस अध्ययन से यह पता नहीं चलताहै कि जीन्स के प्रभाव के कारण विशिष्ट व्यक्ति उत्पन्न हुये अथवा पर्यावरण के कारण विशिष्ट बने। इस बात को गाल्टन ने स्वयं स्वीकार किया और कहा कि अध्ययन केवल सुझाव प्रस्तुत करता है कोई सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित करता हैः इस सन्दर्भ में हेव तथा (Anastasi)अनास्टासी का कहना है कि यह प्रश्न कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों में कौन कारक व्यवहार को विकसित करने के लिए उत्तरदायी है अनौचित्य एवं अतर्क–संगत है क्योंकि बिना वंशानुक्रम के अवयव (Organism) का विकास हो ही नहीं सकता तथा बिना उपयुक्त वातावरण के अवयव किसी प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करने के लिए जीवित नहीं रह सकता। अतः दोनों को पृथक–पृथक देखा नहीं जा सकता है।

1. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों संरचनात्मक विशेषताओं को उत्पन्न करते हैं
(Heredity and environment both develop structural characteristics)

कुछ ऐसी रचनात्मक विशेषतायें हैं जिन पर वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जैसे लिंग, आँखों का रंग, रक्त प्रकार आदि। इन संरचनात्मक विशेषताओं को पर्यावरण की आवश्यकता बहुत कम होती है। दूसरी विशेषतायें जैसे शरीर का आकार एक ही वंशानुक्रम में भिन्न–भिन्न होता है क्योंकि उस पर पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, जलवायु आदि का प्रभाव पड़ता है।

2. गर्भधारण वंशानुक्रम एवं पर्यावरण पर निर्भर है। (Heredity and environment both responsible for conception and birth of the child)

जिस समय शिशु उत्पन्न होता है उस समय भी वह किसी न किसी पर्यावरण से घिरा होता है। उसके जन्म का कारण भी पर्यावरण होता है जिसमें स्त्री तथा पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध सम्भव होता है। अनुकूल पर्यावरण होने पर ही गर्भ स्थापन हो पाता है। जब तक बालक गर्भ में रहता है तब तक उसका पर्यावरण गर्भ होता है और माता पर पड़ने वाले प्रभाव गर्भ द्वारा बालक पर पड़ते हैं। गर्भ की दशायें भ्रूण पर अपना प्रभाव डालती हैं। माता में पोषण की कमी, औषधि प्रभाव, रोग, सांवेगिक तनाव तथा मानसिक अस्त–व्यस्तता बालक में दोष उत्पन्न कर देती है। रोथचाइल्ड (Rothschild)11 ने अपने अध्ययन में पाया कि जो बालक समय से पूर्व पैदा होते हैं, उनकी अधिकांश मातायें सांवेगिक तनाव से पीड़ित होती हैं। कपूरों तथा मेण्डल (Mandell)12 भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो मातायें गर्भवती होने की अवधि में चिंतित तथा सांवेगिक तनाव से ग्रस्त रहती हैं वे अपरिपक्व बालक को जन्म देती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गर्भ का पर्यावरण बालक के व्यक्तित्व पर अपना प्रभाव डालता है।

3. संरचनात्मक तथा व्यवहारिक विशेषताओं के विकास पर वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रदर्शित होता है। (Heredity and environment exert direct influence on the development of structural and behaviour characteristics)

अनेक विद्वानों ने यह जानने का प्रयास किया कि गामक विकास (उठना, बैठना, चलना आदि) पर विभिन्न प्र्यावरणीय दशाओं का कितना प्रभाव पड़ता है तथा वंशानुक्रम शक्तियों का कितना प्रभाव होता है परन्तु कोई सफल उत्तर न प्राप्त हो सका।

गेसेस (Gessel)13 तथा थाम्पसन (Thampson)14, स्ट्रेयर (Streyer)15 आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि विकास की गति तथा समय पर प्र्यावरणीय दशाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन अध्ययनों में जुड़वा बच्चों पर नियन्त्रण का तरीका उपयोग किया

गया। एक को प्रशिक्षण दिया गया था, दूसरे को प्रशिक्षण नहीं दिया गया। प्रशिक्षण के होने पर भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि पर्यावरण का प्रभाव नहीं होता है क्योंकि यदि सामाजिक पर्यावरण में बालक न रहे तो उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास सम्भव नहीं है ऐसा अनेक परीक्षणों ने सिद्ध किया है।

4. बुद्धि पर वंशानुक्रम तथा प्र्यावरण दोनों ही प्रभावकारी हैं (Heredity and Environment both are effective on Intelligence)

न्यूमैन (Newman), फ्रीमैन, वर्ट (Vert) तथा बान्डेनवर्ग (Wandenberg) आदि ने अपने अध्ययन में सिद्ध कर दिया कि साथ–साथ पालन पोषण हुये बालकों की बुद्धि में काफी समानता होती है। अलग–अलग पालित जुड़वा बच्चों में असमानता देखी गयी है।

5. मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों सक्रिय सहयोग करते हैं (Heredity and environment both actively cooperate in the development of psychological traits)

मनौवैज्ञानिक गुणों (आत्मविश्वास, प्रभावशीलता, प्रधानता, क्रियात्मकता, क्रोध आकाँक्षा का स्तर, विषाद) पर वंशानुक्रम का अधिक प्रभाव होता है। बेन्डनबर्ग (Benden berg) फ्रीडमैन (Freed man) तथा गोटेसमैन (Gotes man) ने अपने अध्ययनों से वंशानुक्रम को मनोवैज्ञानिक गुणों के विकास में महत्वपूर्ण सिद्ध किया है। यद्यपि अध्ययनों में काफी सीमिततायें हैं परन्तु निष्कर्षों से पता चलता है कि बहिमुर्खी (Extrovert) तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है। (Eysenck M.J.) आइसेन्क ने यह सिद्ध किया है। लेकिन ये गुण तब तक विकसित नहीं हो सकते जब तक अनुकूल पर्यावरण न प्राप्त हो।

6. समायोजन पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है वंशानुक्रम का कम

(Adjustment is more affected by environment)

बालकों के विकास तथा समायोजन पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। रोडमैन (Rodman) के विचार से व्यक्ति का सामाजिक वर्ग उसके जीवन को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। जिनका वर्ग निम्न होता है उनमें शारीरिक हीनता होती है, जीवन अवस्था कम होती है, न्यायालयों में कम न्याय मिलता है, इच्छाओं तथा प्रेरणओं का स्तर निम्न होता है।

बलक को यदि आवश्यकता से अधिक प्यार दिया जाता है तो वह समायोजन में कठिनाई अनुभव करता है तथा जीवन कष्टमय होता है।

7. सामाजिक गुणों का विकास पर्यावरण पर अधिक निर्भर होताहै।

(Social traits are more dependent on environment)

समाजिक गुणों (मित्रभाव, सहयोग, सहानुभूति, व्यवहार के ढंग) पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार का पर्यावरण होता है उसी प्रकार के गुण उत्पन्न होते हैं।

8. मानसिक एवं व्यवहारिक विकृतियों पर पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है।

(Mental and Behavioural disorders are the result of unsuited environment)

मानसिक रोगों का कारण वंशानुक्रम न होकर पर्यावरण होता है। केवल कुछ ही रोगों (Schizophrenia) में वंशानुक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यवहारिक विकृतियों (स्वतः प्रेम, उग्रता, अवज्ञा, ध्वन्सात्मकता, चोरी करना, झूठ बोलना, अपराध करना भगेड़ूपन) पर पर्यावरण का प्रभाव अधिक होता है।

उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध हो जाताहै कि वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जीवन की प्रत्येक घटना के लिए समान उत्तरदायी है। उनमें से न ही किसी को दूर कर सकते हैं न ही प्रथम कर सकते हैं। वास्तव में मानव के विकास में पर्यावरण तथा वंशानुक्रम दोनों की अलग–अलग कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस वृक्ष का बीज होता है उससे वही वृक्ष उत्पन्न होता है। बीच के विकास के लिए पर्यावरण की आवश्यकता होती है।

8.8 सार संक्षेप

मनुष्य क्या कर सकता है यह वंशानुक्रम द्वारा निश्चित है वस्तुतः क्या करता है यह उसके पर्यावरण द्वारा निश्चित होता है। वंशानुक्रम केवल क्षमता प्रदान करता है। इस क्षमता के विकास का अवसर पर्यावरण देता है। इन दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है इस प्रकार का प्रश्न करना ऐसी ही बात करना है कि मनुष्य के लिए भोजन अधिक महत्वपूर्ण है या सुरक्षा अथवा वायु। वास्तव में दोनों ही समान महत्वपूर्ण हैं।

8.9 अभ्यास प्रश्न

1. वंशानुक्रम का अर्थ समझाइये ?
2. हेरीडिटी (Heredity) शब्द की व्याख्या कीजिये ?
3. जीव रचना (Mechanism) की व्याख्या कीजिये ?
4. वंशानुक्रम के नियमो का वर्णन कीजिये ?
5. वंशानुक्रम का व्यक्तित्व पर प्रभाव बताइये ?
6. प्राथमिक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ क्या हैं ?
7. वंशानुक्रम के प्रभाव सम्बन्धी अध्ययन का वर्णन कीजिये ?
8. पर्यावरण के कितने प्रकार हैं ?
9. पर्यावरण के प्रभाव की व्याख्या कीजिये ?
10. वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व की व्याख्या कीजिये ?

8.10 पारिभाषिक शब्दावली

Heredity	वंशानुक्रम	Environment	पर्यावरण	Adjustment	समायोजन
Explain	व्याख्या	Mechanism	जीव रचना	Social traits	(सामाजिक गुणों
Relative	सापेक्ष	Importance	महत्व	Dependent	
Intelligence	बुद्धि	Effective	प्रभावकारी	Mental	मनसिक
More	अधिक	Dependent	निर्भर	Perception	प्रत्यक्षीकरण
Extrovert	बहिमुर्खी	Organism	अवयव	Emotions	संवेग

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Benedict, Ruth : Patterns of Culture, Mantor Book company New York, 1929.
- Fairchild, H.P. : Dictionary of Sociology, Philosophical Library, New York, 1966 P. 140.
- Goddard : The Kallikak Family, New York, 1906
- Pearson, Karl : Nature and Nuture, London, 1910
- Kallman, F.J. : Heredity in Health and Mental Disorder, New York, 1953
- Jakson, D. : Etiology of Sehizophrenia, Basic Books, New York, 1912
- Gisbert, P : Op. cit. P. 233
- Elliott, T.D. : Op. cit. P. 10
- Hebb, D,O. : Heredity and Environment, Bristish J. of Animal behaviour P. 43-47
- Anastasi A. : Heredity, Environment and the Question How? Psychological Review, 1958, 65, 197-208
- Rothschild. B.F. : Incuvator Isolution As a Possible Contributive Factor to the High Incidence of emotional disturbance among Pre-mature Persons. Journal of Psychology, 1967, 110(2) P287-304
- Caputo, D. B. & Mandell, W. Consequnces of Low birth weight. Developmental Psychology. 1970 p 363-383
- Gessel, A.L. : The Oontogenesis of Behaviour, Child Psychology, willey, New York, 1954
- Gessel, A, L, Thompson, H. : Learning and Growth in Indentical Infant Thompson, H. Twin, Genetic Psychology, Monograph 1929, 6, P. 1-124
- Streyer, L.C. : Language and Growth, Genetic Psychology, 1930, P. 309-310
- Colemn, James C. : Abnormal Psychology and Modern Life, D.P. Taraporevala Sons & Company, Bombay, 1974 P. 97

इकाई–9
नेतृत्व
Leadership

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 परिचय
9.2 नेतृत्व
9.3 नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ
9.4 नेतृत्व की परिभाषाएं
9.5 नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं
9.6 नेतृत्व की शैली
9.7 नेतृत्व के कार्य
9.8 नेतृत्व की विचारधाराएं
9.9 नेतृत्व के प्रकार
9.10 नेतृत्व सम्बन्धी गुण
9.11 सार संक्षेप
9.12 अभ्यास प्रश्न
9.13 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- नेतृत्व की अवधारणा को समझ सकेगें।
- नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियों को समझ सकेगें।
- नेतृत्व की परिभाषाओं का वणर्न कर सकेगें।
- नेतृत्व की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेगें।
- नेतृत्व की शैली को समझ सकेगें।
- नेतृत्व के कार्य का वणर्न कर सकेगें।
- नेतृत्व की विचारधाराओं को समझ सकेगें।
- नेतृत्व के प्रकारों का वणर्न कर सकेगें।
- नेतृत्व सम्बन्धी गुणों को समझ सकेगें।

9.1 परिचय

Leadership की उत्पत्ति किस प्रकार होती है। इस संबंध में समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों की कई विचारधारायें हैं। वंशपरम्परा परम्परा सिद्धांत को मानने वाले विद्वानो का विचार है कि समाज में कुछ लोग ऐसे होते है। जो जन्मजात पैदा इसी या जन्म जात योग्यता नेतृत्व का लेकर पैदा होते हैं। दूसरी ओर कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि नेता की उत्पत्ति परिस्थिति विशेष होती है और लोग उसे नेता मान लेते हैं।

9.2 नेतृत्व

Leadership की उत्पत्ति के संबंध में दो विचार या सिद्धांत हमारे सामने आते हैं–

(i) Man theory

(ii) Time theory

- Man theory इस सिद्धांत के समर्थकों का कहना है कि नेता जन्मजात होते हैं। व्यक्ति में नेता के गुण तथा योग्यता किसी भी परिस्थिति में उसे नेता बना देती है। और नेता जन्म से ही शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक रूप से सुसज्जित होता है। Brown का कहना है कि साधारणतः जनता भी यह सोचती है कि व्यक्ति अपने गुण के कारण ही नेता बन बैठता है।
- Time theory इस तरह मानव सिद्धान्त के मानने वालों में Brown भी एक हैं और उन्होंने 1936 ई0 में कहा है कि Wilson, Cloyed George, Kaiser, Lenin और अन्य महान व्यक्तियों के कारण ही विश्व की मुख्य धारणायें व महान परिवर्तन हुए न कि विश्व ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक तथा मनावैज्ञानिक रूप से परिस्थिति–परिवर्तन के लिए तत्पर था। Brown के कथन की समर्थक आधुनिक समाजशास्त्री क्रेच एक क्रचकील्ड ने कहा है कि महात्मा गाँधी के प्रभावी नेतृत्व के कारण ही भारत की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महात्मा गाँधी अपने गुण और योग्यता के कारण ही भारतीों के पुज्य नेता बन गये।उपरोक्त विद्वानों के विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति अपने गुण तथा योग्यता के फल स्वरूप ही नेता बनता है।
- Man theory और Time theory दोनों को देखने से पता चलता है कि Leadership की उत्पत्ति के लिए नेता का गुण तथा परिस्थिति दोनों का होगा आवश्यकता है एक की अनुपस्थिति में कोई भी व्यक्ति नेता नहीं बन सकता। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि लोकलमक जय प्रकाश नारायण 1974 पूर्व एक भारतीय सैद्धांतिक नेता के रूप में चर्चा के विषय थे परन्तु 1974 की क्रांति ने उन्हें लोकमान्य बना दिया। नेता की उत्पत्ति के लिए योग्यता तथा परिस्थिति दोनों एक साथ होना अनिवार्य है। Gibb ने कहा है कि Leadership व्यक्ति तथा उसके समूह के अन्य सदस्यों के बीच एक प्रकार की सामाजिक परस्पर क्रिया का ही प्रतिफल है।

9.3 नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ

नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए कौन–कौन सी विशेष परिस्थितियाँ होती हैं। जिनमें की नेता अपने गुणों के कारण परिस्थिति विशेष का लाभ उठाकर नेता बन जाते हैं, वे निम्नलिखित है।

- समूह के निर्माण तथा विकास के लिए नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– जब किसी भी समूह का निर्माण होता है तो प्रारंभ में कुछ सदस्य अन्य सदस्यों की अपेक्षा ज्यादा सक्रिय रहते हैं और समूह पर सक्रियता के कारण उनका आधिपत्य भी उस समूह पर रहता है और अधिपत्य रखने वाला व्यक्ति उस समूह का नेता होता है और नेतृत्व का श्री गणेश यही होता है।वह नेता समूह के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नीति निर्धारण एवं योजना का निर्माण करता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि नेता की उत्पत्ति समूह निर्माण तथा विकास के लिए होती है।

- अस्थिर समूह में नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– जब समूह की बनावट अस्थिर रहती है तो उसके सदस्यगण एक ऐसे नेता की खोज करते हैं जो समूह को स्थिर एवं स्थायी बना सके। इस परिस्थिति में योग्य व्यक्ति उस समूह का नेता अपनी योग्यता के आधार पर बन जाता है एवं समूह की आवश्यकताओं को पूरा करता है। अशांत वातावरण में समूह के अन्दर ऐसे नेता दृढ़ता के साथ कार्य को संपादित करते हैं और अपने उप समूहों को भी सुव्यवस्थित करते हैं इसलिये हम कह सकते हैं कि अस्थिर समूह में भी नेतृत्व की उत्पत्ति होती है।
- समस्या युक्त परिस्थिति में नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– जब समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति में बाहय दबाव या आंतरिक गड़बड़ी रहती है तो इस परिस्थिति में एक ऐसे नेता की आवश्यकता होती है जो आन्तरिक गड़बड़ी एवं वाह्य शक्तियों को नष्ट कर समूह की लक्ष्य को प्राप्ति कर सके। इस परिस्थिति में व्यक्ति अपनी योग्यता बुद्धि, ज्ञान, आत्मविश्वास एवं पुरूषार्थ आदि गुणों से उस समूह को सुरक्षा प्रदान करता है।
- व्यक्तिगत आवश्यकताओं की संतुप्ति के लिए नेतृत्व की उत्पत्ति होती है– नेतृत्व की उत्पत्ति समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। नेता के महत्व के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को हम कंधे पर लेगे। अच्छे कार्यों के लिए पुरस्कार एवं बुरे कार्यों के लिए दंड देने ,पिता के समान व्यवहार करने आदि में देखते हैं इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नेता की उत्पत्ति होती है। नेता की उत्पत्ति सदस्यों के व्यक्तिगत आवश्यकताओं जैसे प्रतिष्ठा, तादात्म्य, मान–मर्यादा आदि की संतृप्ति के लिए होती है। इसके अतिरिक्त भय, प्रेम क्रोध आदि के संतुलन के लिए नेता की उत्पत्ति होती है।
- नेतृत्व की उत्पत्ति नेता की आवश्यकताओं की संतुप्ति के लिए होती है–नेतृत्व की उत्पत्ति एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। नेतृत्व की उत्पत्ति केवल समूह के संपूर्ण परिस्थितियों तथा सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही नहीं होती ,बल्कि नेता के व्यक्ति गत आवश्यकताओं के संतृप्ति के लिए भी नेता की उत्पत्ति होती है। जैसे अधिकपत्य (Dominance)] शक्ति (Power) , प्रतिष्ठा (Prestige) सामाजिक स्वीकृति (Social recognition) आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नेतृत्व की उत्पत्ति होती है।
- उपरोक्त सभी विचारों, सिद्धांतों, गुणों तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए परिस्थिति तथा व्यक्तिगत शील गुण का होना परम आवश्यक है। सामाजिक परिस्थिति नेतृत्व को उत्पन्न करती है एवं नेता के व्यक्तिगत गुण जैसे–प्रभावशाली व्यक्तित्व, मनोवृति, आधिपत्य की भावना, प्रतिष्ठा की इच्छा आदि गुण रखने वाले व्यक्ति नेता बन जाते हैं।

9.4 नेतृत्व की परिभाषाएं

- **जॉर्ज आर. टेरी** ने नेतृत्व को उस योग्यता के रूप में परिभाषित किया है जो उद्देश्यों के लिए स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रभावित करता है।
- **लिंविग्स्टन** के अनुसार नेतृत्व से आशय उस योग्यता से है जो अन्य लोगों में एक सामाजिक उद्देश्य का अनुसरण करने की इच्छा जाग्रत करती है।
- **मूरे** नेतृत्व को एक ऐसी योग्यता मानते हैं जो व्यक्तियों कोनेता द्वारा अपेक्षित विधि के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।
- **जॉन जी. ग्लोवर** नेतृत्व को प्रबन्ध का वह महत्वपूर्ण पक्ष मानते हैं जो उस योग्यता, सृजनशीलता, पहल शक्ति तथा सहानुभूति को व्यक्त करताहै जिसकी सहायता से संगठन

प्रक्रिया में मनोबल का निर्माण करके लोगों का विश्वास, सहयोग एवं कार्य करने की तत्परता प्राप्त की जाती है।

- **ऑर्डवे टीड** के अनुसार, "नेतृत्व उन गुणों के संयोग का नाम है जिनको रखने पर कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से काम लेने के योग्य होता है, विशेषकर उसके प्रभाव द्वारा अन्य लोग स्वेच्छा से कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि नेतृत्व एक दी हुई स्थिति में लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में किसी व्यक्ति या समूह के प्रयासों को प्रभावित करने की प्रक्रिया है।

9.5 नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं Chief Characteristics of Leadership

नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं–

1. **अनुयायिओं को एकत्रित करना** – बिना अनुयायियों के नेतृत्व की कल्पना करना कठिन है। वास्तव में, बिना समूह के नेतृत्व का कोई अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि नेता या नायक केवल अनुवावियों अथवा समूह पर ही अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है। नेतृत्व का उद्देश्य अपने चारों ओर अपने अनुयायियों अथवा व्यक्तियों के समूह को एकत्र करना तथा उन्हें किसी हुई निर्धारित सामूहिक उद्देश्य के प्रति निष्ठावान बनाये रखता है।
2. **अचारण एवं व्यवहार को प्रभावित करना** –नेतृत्व, प्रभाव के विचार की अपेक्षा करता है, क्योंकि बिना प्रभाव के नेतृत्व की कल्पना नहीं की जा सकती। नेतृत्व की सम्पूर्ण अवधारणा अब व्यक्तियों के एक–दूसरे के प्रभाव पर केन्द्रित है। लोक प्रशासन में नेतृत्व की भूमिका का सार ही यह है कि कोई अधिशाषी किस सीमा तक अपने सहयोगी अधिशासियों के आचरण का या व्यवहार को अपेक्षित दिशा में प्रभावित कर सकता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि अन्य व्यक्तियों के आचरण को प्रभावित करने से आशय उनसे अनुचित रूप से कार्य लेने से नहीं है। उसका कार्य अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को निर्देशन देना तथा उन्हें एक ऐसे ढंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करनाहै ताकि उनमें समझदार स्वहित वाली प्रतिक्रिया स्वतः जाग्रत हो सके।
3. **पारम्परिक सम्बन्ध** : मेरी पार्कर फौले ने नेता तथा अनुयायियों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध को नेतृत्व की प्रमुख विशेषता माना है नेता वह नहीं है जो दूसरों की इच्छा को निर्धारित करता है, परन्तु वह है जो यह जानता है कि दूसरों की इच्छाओं को किस प्रकार अन्तर–सम्बन्धित किया जाय कि उनमें एक साथ मिलकर कार्य करने की प्रेरणा स्वतः जाग्रत हो सके। इस प्रकार एक नेता न केवल अपने समूह को प्रभावित करता है वरन् वह स्वयं भी अपने समूह द्वारा प्रभावित होता है।
4. **सामूहिक लक्ष्य** – नेतृत्व की यह प्रकृति एवं स्वभाव है कि वह अपने अनुयायियों के प्रयत्नों को सामूहिक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निदेशित करता है। अतः नेता का यह कर्तव्य है कि वह कुछ लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दे जिससे कि अनुयायी इन लक्ष्यों से अपने हितों का एकीकरण कर सकें।

9.6 नेतृत्व की शैली Leadership Styles

ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय के सेविवर्गीय शोध बोर्ड ने नेतृत्व को 5 वर्गों में रखा है

- **नौकरशाह** (The Bureaucrat)- ऐसा नेता केवल निर्धारित दिनचर्या से चिपका रहताहै, अपने वरिष्ठों को सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है, और अधीनस्थों की उपेक्षा की उपेक्षा करता है अधीनस्थ ऐसे नेता के प्रति उदासीनता एवं अवज्ञा की भावना रखते हैं।

- **तानाशाह या अधिनायक** (The Autocrat)- ऐसा नेता निरंकुश होता है और अपने कर्मचारियों से काम लेते समय भय दिखाना, डराना–धमकाना, प्रताड़ित करना, आदि विधियों का उपयोग करता है। ऐसे नेता के अधीनस्थ विरोधी हो जतो हैं एवं स्वार्थ–सिद्धि में लगे रहते हैं।
- **कूटनीतिज्ञ** (The Diplomat) – ऐसा नेता अवसरवादी होता है और लोगों का शोषण करता है। उनमें लोगों का विश्वास नहीं रहता है।
- **विशेषज्ञ** (The Expert) –ऐसा नेता केवल अपने क्षेत्र से ही सम्बन्धित होता है। वह अपने अधीनस्थों के साथ सहयोग के रूप में व्यवहार करता है। उसके सहकर्मी उसका आदर करते हैं, परन्तु वे किसी परिवर्तन के विरुद्ध होते हैं।
- **सहभागी** (The Quarter-back) – ऐसा नेता अपने अधीनस्थों के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, चाहे उसके वरिष्ठ अधिकारी उससे अप्रसन्न ही न हो जायें।

क्रिय आर्गरिस ने तीन प्रकार के नेताओं के अन्तर स्थापित किया है।

निदेशक (Directive), अनुज्ञात्मक या अनुमतिबोधक (Permissive) तथा सहयोगी (Paticipative) ।

- **निदेशक प्रकार का नेता** (The Directive type) – यह पारितोषिक के साथ–साथ दण्ड की भी व्यवस्था करता है। इसके अधीनस्थ अपने आपको मातहत समझते हैं और इसके कारण निष्क्रिय होते हैं। उनका मनोबल नीचे होता है जिसके कारण नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता है।
- **अनुज्ञात्मक या अनुमतिबोधक प्रकार का नेता** (The Permissive Type) –ऐसा नेता दूसरे के लिए कार्य की शुरूआत करता है। इसमें सहनशक्ति अधिक होती है और वह दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होता है। यह निर्धारित कार्य को पूरा तो करा लेता है, परन्तु नेतृत्व का विकास करने में असफल होता हे।
- **सहयोगी प्रकार का नेता** (The Participative Type) – ऐसा नेता दूसरों में पहल शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता तथा कार्य करने की विधियों को विकसित करने में सहायता प्रदान करता हैं वह दूसरों को अपनी आवश्यकताओं और उनकी सीमाओं को समझने के अवसर देता है। वह अपनी भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त करता है।

टेरी ने नेतृत्व के छः प्रकार बतलाये हैं :– व्यक्तिगत नेतृत्व (Personal Leadership), अव्यक्तिगत नेतृत्व (non-personal Leadership), आदेशात्मक नेतृत्व (Authoritarian Leadership), लोकतान्त्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership), पैतृकवादी नेतृत्व (Patternalistic Leadership) तथा स्थानीय नेतृत्व (Indigenous Leadership) ।

अच्छे नेतृत्व की शैली (Style of Good Leadership)

1 कथनी शैली (Telling Style)

- औसत से अधिक कार्य– अभिमुखी और औसत से कम सम्बन्ध–अभिमुखी।
- इस शैली के लिए 'कथनी' शब्द का अर्थ है कि अनुयायियों से कहना या उन्हें आदेश देना कि उन्हें क्या, कहां और कैसे करना है।

- यह शैली तब सर्वाधिक उपयुक्त है जब अनुयायियों की तत्परता का स्तर औसत से बहुत कम है अर्थात उनमें योग्यता और सहयोगशील दोनों की कमी है। ऐसे में उन्हें निदेशित किए जाने की जरूरत है।
- इसे मार्गदर्शक, निदेशक या संरचक (guidancing, directing or structuring) शैली भी कहा जा सकता है।

2 विक्रयी शैली (Selling Style)

- औसत से अधिक कार्य–अभिमुखी और **सम्बन्ध**–अभिमुखी।
- इस शैली के लिए 'विक्रयी' शब्द का अर्थ है कि यहां अनुयायियों को सिर्फ मार्गदर्शन नही दिया जाता, बल्कि उन्हें अपनी बात कहने और स्पष्टीकरण मांगने का अवसर भी दिया जाता है। यहां क्या, कहां और कैसे के साथ–साथ 'क्यों' भी जुडा है। यहां 'क्यो' का स्पष्टीकरण ही इसे कथनी शैली से अलग करता है।
- यह शैली तब सर्वाधिक उपयुक्त है जब अनुयायियों की तत्परता का स्तर औसत से कम है अर्थात् यद्यपि वे सभी अयोग्य हैं लेकिन प्रयासरत भी है और अपने इस प्रयत्न पर आश्वस्त है।
- इसे व्याख्यापरक, सम्मतिपरक या स्पष्टीकृत(explaining, persuading or clarifying) शैली भी कह सकते है।

3. सहभागी शैली (Participating Style)

- औसत से कम कार्य–अभिमुखी और औसत से अधिक सम्बन्ध–अभिमुखी व्यवहार।
- इस शैली के जिए 'सहभागी' शब्द का आशय है कि यहां नेता के निदेशित व्यवहार की तुलना में समर्थित व्यवहार का महत्तव बढ जाता है। यहां नेता की भूमिका अपने अनुयायियों को सम्प्रेषित करने और उन्हें प्रोत्साहित करने की बन जाती है।

9.7 नेतृत्व के कार्य FUNCTIONS OF LEADERSHIP

नेतृत्व के कार्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अलग–अलग विद्वानों ने नेतृत्व की कार्य सूची में भिन्न–भिन्न कार्यो। को सम्मिलित किया है, जो इस प्रकार हैं:

डाल्टन ई. मैक्फारलैण्ड ने नेतृत्व के कार्यों में भिन्न बातों को सम्मिलित किया है : (1) समूह लक्ष्यों का निर्धारण करना, (2) योजना का निर्माण करना (3) नीति तथा क्रियाविधि निर्धारित करना।, (4) अधीनस्थों का पक्ष–प्रदर्शन करना, (5) कार्यकुशल कर्मचारियों का समूह तैयार करना तथा उनका संरक्षण करना, (6) अधीनस्थों के व्यवहार का उनकी उपलब्धियों के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना, (7) अनुयायियों के लिए एक आदर्श प्रदान करना।

नॉरमैन एफ. वाशबर्न ने एक अच्छे नेता द्वारा किये जाने वाले निम्न आठ कार्यों का वर्णन किया है : (1) क्रियाओं का सूत्रपात करना, (2) आदेश प्रदान करना, (3) अपने समूह में स्थापित वाहिकाओं का प्रयोग करना, (4) अपने समूह के नियमों एवं प्रयाओं को जानना और उनकी अनुपालन करना, (5) अनुशासन बनाये रखना, (6) अधीनस्थों को सूनना, (7) अधीनस्थों की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना, तथा (8) अधीनस्थों की सहायता करना।

उक्त आधारों पर कहा जा सकता है कि एक नेता को निम्नलिखित प्रमुख कार्य करने पड़ते हैं :

1. **अधीनस्थों की भावनाओं एवं समस्याओं को समझना–** सफल नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नेता को अपने समूह के सदस्यों एवं अपने अधीनस्थों की भावनाओं एवं समस्याआं को अच्छी तरह से समझना चाहिए। लोकतान्त्रिक समाज में कर्मचारियों की भावनाओं एवं समस्याओं की अवहेलना नहीं की जा सकती।
2. **सहयोग प्राप्त करना–**एक प्रशासनिक संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति समस्त कर्मचारियों के सहयोग से ही सम्भव हो सकती है। अतः आवश्यक है कि एक नेता को सफल होने के लिए अपने समूह के कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त हो। इसके लिए उसे प्रशासक के रूप में अपने अधीनस्थों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक दिलाये कि उपक्रय की सफलता उनके हित में है।
3. **समन्वय एवं निदेशन–**एक सफल नेता का तृतीय प्रमुख कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों में आदेश एवं निदेशक द्वारा समन्वय स्थापित करना है। इसके लिए उसे संप्रेक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाना होगा तथा आदेश एवं निदेशन की प्रक्रिया में भी मानवीय सम्बन्धों को विशेष रूप से ध्यान में रख्ना होगा।
4. **अनुशासन बनाये रखना –** नेता का चौथा कार्य अपने समूह में अनुशासन बनाये रखना भी है क्योंकि अनुशासन द्वारा ही अपने अधीनस्थों को निर्धारित नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित कर सकता है। और कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अनुशासन में निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है।
5. **आदेश देना–** नेता स्वयं कार्य न करके अपने अधीनस्थों से कार्य लेता है। अतः उनके द्वारा कार्य को सम्पादित कराने हेतु उसे आदेश देना पड़ता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदेश देना ही नेता का एक महत्वपूर्ण कार्य है।
6. **प्रभावी संप्रेक्षण की व्यवस्था करना–**संगठन की गतिविधियों में सामंजस्य एवं सन्तुलन बनाये रखने के लिए और कर्मचारियों में मधुर सम्बन्धों एवं भाईचारे का वातावरण स्थापित करने लिए प्रबन्धकों अर्थात् समूह नायकों को संप्रेषण की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। इस दिशा में नेता ही इस प्रकार की संप्रेषण प्रक्रिया की व्यवस्था करता है, जिससे अधीनस्थों और उसके मध्य विचारों, आदेशों, आदि का आदान–प्रदान निरन्तर होता रहे।
7. **संगठन के प्रति निष्ठा बनाये रखना–** एक कुशल नेता का यह भी प्रमुख कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों से सम्बन्धित निर्णय आम सहमति से लें।

8. **सहयोग प्राप्त** (Securing Co-operation) – नेता अपने समूह से सहयोग प्राप्त करता है। सहयोग द्विमार्गीय प्रक्रिय होती है। अधिकारी और समूह दोनों के सहयोग से ही कार्य को सर्वश्रेष्ठ ढंग से पूरा करना सम्भव होता है। सहयोग की प्राप्ति के लिए नेता निम्न कार्य करता है : (i) वह अपने प्रत्येक अनुयायी को विश्वास दिलाताहै कि संगठन का सफल परिचालन और उसके लिए अपने समूह के हितों को जानना और समझना आवश्यकता होता है। (ii) नता के लिए एक कुशल मनोवैज्ञानिक होना भी आवश्यक है। उसके लिए अपने समूह के हितों को जानना और समझना आवश्यक होता है (iii) सहयोग विश्वास पर आश्रित होता है। लोग तभी सहयोग करते हैं, जब उनको अपने नेता में पूर्ण विश्वास होता है।
9. **शक्ति का प्रयोग** (The Use of Power) –नेतृतव के साथ शक्ति जुड़ी होती है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायिक एवं सहानुभूतिपूर्ण तरीके से भी तय किया जा सकता है और बल एवं

उत्पीड़न के द्वारा भी किया जा सकता है। वस्तुतः एक नेता अपनी शक्ति, काप्रयोग उपक्रम ओर समूह के हित साधन में करता है।

10. **समन्वय एवं आदेश** (Co-ordination and Command)- वांछित परिणाम की प्राप्ति के लिए नेता आदेशों के माध्यम से अपने अधीनस्थों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। लिविंग्स्टन के अनुसार नेता द्वारा दिये जाने वाले आदेश सुनिश्चित क्रमबद्ध, लोचपूर्ण और स्पष्ट होने चाहिए।
11. **अनुशासन अनुरक्षण** (Maintenance of Discipline)- अनुशासन एक प्रकार का बल है, जो समूह के प्रत्येक सदस्य को समूह के नियमों, प्रथाओं, आदतों, परम्पराओं, आदि के अनुसार उत्पन्न परिस्थितिमें वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से प्रतिक्रिया को जन्म देता है। कुछ अनुशासन नियमों एवं कानूनों द्वारा आरोपित और कुछ स्वयं द्वारा आरोपति होता है। अनुशासन को बनाये रखने की दृष्टि से नेता द्वारा किये जाने वाले अनुरक्षण और अनुमोदन दोनों सुसंगत होने चाहिए।
12. **उच्च समूह मनोबल का विकास** (Development of High Group Morale)–नेता निरन्तर अपने समूह के सदयों का मनोबल ऊंचा बनाये रखता है, क्योंकि मनोबल बढ़ने के साथ लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में किये जाने वाले प्रयासों में प्रबलता आती है और मनोबल के गिरने के साथ यह प्रबलता क्षीण हो जाती है।

9.8 नेतृत्व की विचारधाराएं **Theories of Leadership**

नेतृत्व के सम्बन्ध में अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं। इन विचारधाराओं को नेतृत्व अध्ययन के दृष्टिकोण अथवा उपागम भी कहा जाता है। नेतृत्व सम्बन्धी प्रमुख विचारधाराएं एवं दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं :

- **महान् व्यक्ति दृष्टिकोण** (The Great Man Approach)-नेतृत्व के अध्ययन के दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि 'नेता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते।' यह विचारधारा इस बात में विश्वास रखती है कि 'नेता नेता है' (A Leader is a Leader) अर्थात् वह महान् व्यक्ति है और हर तरह से योग्य है। इन नेताओं में वंशानुगत रूप से नेतृत्व गुण होते हैं। ऐसे महान जन्मजात नेताओं के उदाहरण बताए जाते हैं, जैसे महात्मा गांधी, माओ, अब्राहम लिंकन, सिकन्दर, आदि। इस विचारधारा के
- **समर्थक' अधिशासी विकास'** (Exective Development) की नीति में कोई विश्वास नहीं रखते। नेतृत्व की सफलता के मूल्यांकन के लिए वे नेता के व्यवहार एवं उसकी कार्यविधियों के अध्ययन एवं विश्लेषण में कोई रुचि नहीं रखते।

इस विचारधारा की यह मान्यता है कि ऐसे लोग किसी भी समय, काल व परिस्थिति में नेता के रूप में सफल होते हैं, क्योंकि उनमें जन्मजात नेतृत्व कौशल व गुण पाए जाते हैं। यह कहा जाता है कि इतिहास इन्हीं महान व्यक्तियों की कथा कहानी है। ऐसे महान् नेता अपने युग के रचयिता होते हैं, न कि वह युग उनका रचयिता होता है।

इस विचारधारा से निम्नांकित आशय झलकता है :

(1) कुछ लोगों को महान् बनने का दैवी वरदान मिलता है। ऐसे नेता मानवता के लिए दैवी उपहार हैं। इन नेताओं में दिव्य गुण व विशिष्टता होती है।

(2) नेता बनने के लिए और अपने अनुयायियों को प्रभावित करने के लिए तथा सफलता पाने हेतु जन्मजात नेतृत्व कौशल आवश्यक और पर्याप्त होते हैं।

(3) यह विचारधारा इस बात को अमान्य बनाती है कि किसी व्यक्ति को नेतृत्व करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। नेतृत्व गुणों को शिक्षा व प्रशिक्षण द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता।

गुण दृष्टिकोण (The Trait Approach) –'गुण' विचारधारा महान् व्यक्ति दृष्टिकोण से भिन्न है। गुण दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि सफल नेतृत्व नेता की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं पर आश्रित होता है और उन विशेषताओं व गुणों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण करना सम्भव होता है। यहां नेतृत्व के विश्लेषण करने का उद्देश्य बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक और अन्य व्याक्तत्वजन्य विशेषताओं को पहचान करना रहा है जो प्रभावी नेताओं में पाए जाते हैं।

जहां तक व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों के निर्धारिण का प्रश्न है यह अत्यनत विवादास्पद मामला है। गुण सूची में 5–6 से लेकर 20 इससे भी अधिक गुणों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत गुणसूची उपलब्ध नहीं है। यद्यपि अन्यशास्त्री किसी एक सामान्य गुण सूची के सम्बन में मतैक्य उत्पन्न नहीं कर सके हैं तथापि निम्न तीन सामान्य गुण क्षेत्रों के सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से एकमत हैः (1) बुद्धिमत्ता, (2) संचार चातुर्य, (3) समूह लक्ष्य की मूल्यांकन योग्यता।

स्टोइगिल ने गुण विचारधारा मूलक साहित्य का विस्तृत सर्वेक्षण करने के बाद यह बताया है कि एक प्रभावी नेता में विभिन्न गुण होते हैं। इनमें से पांच शारीरिक गुण, चार बुद्धि और योग्यतामूलक गुण, सोलह व्यक्तित्व जन्य गुण, छः कार्य से सम्बधी गुण तथा नौ सामाजिक गुण हैं।

स्टोडगिल द्वारा प्रस्तृत्व गुणों के ये वर्गीकरण इस प्रकार हैं :

- शारीरिक गुण – जैसे लम्बाई, सवास्थ्य, हृष्ट–पुष्ट, रंग–रूप, आदि।
- बुद्धि और योग्यता का गुण–जैसे धैर्य, उदारता, आत्मविश्वास, आदि।
- व्यक्तित्वजन्य गुण–जैसे धैर्य, उदारता, आत्मविश्वास, आदि।
- कार्य से सम्बन्धित गुण–जैसे उपलब्धि, उद्यमशीलता, पहलपन, प्रबलपन, प्रबल इच्छाशक्ति, आदि।
- सामाजिक गुण–जैसे सहकारिता, पर्यवेक्षकीय योग्यता, अन्तर्व्यक्तिगत कौशल, आदि।
- **परिस्थितीय दृष्टिकोण** (The Situation Approach) – इस दृष्किोण का विकास आर. एम. स्टोडगिल एवं उकने सहयोगियों द्वारा किया गया है। यह विचारधारा इस तथ्य पर बल देती है कि नेतृत्व की सफलता उस परिस्थिति विशेष से प्रभावित होती है, जिसमें नेता कार्य करता है। नेतृत्व की सफलता के अध्ययन में परिस्थिति विशेष का विश्लेषण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक सफल नेता का व्यवहार सदैव एकसा नहीं रहता। वह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न तरह से व्यवहार करता है।

परिस्थितीय दृष्टिकोण वह आकस्मिकता मत है जिसमें ध्यान अनुयायियों पर केन्द्रित किया गया है। नेतृत्व पद्धति का चुनाव करके सफल नेतृत्व प्राप्त किया जा सकता है।यह चुनाव हरसे–ब्लेनकार्ड के मतानुसार अनुयायी की परिपक्वता पर निर्भर करता हैं यह मत नेतृत्व के दो परिणाम मानता है–लक्षित कार्य व्यवहार तथा सम्बन्ध व्यवहार। इन अन्वेषकों का विश्वास है कि कार्मियों की कार्य में परिपक्वता बढ़ने के साथ–साथ नेतृत्व पद्धति में भी बदलाव किया जाना चाहिए। हरसे–ब्लेनकार्ड ने चार नेतृत्व पद्धतियों का वर्णन किया है जिन्हें कार्मिकों की परिपक्वता स्तरों से सम्बन्धित किया जा सकता है : (i) निदेश, (ii) विक्रय, (iii) भाग ग्रहण एवं (iv) हस्तान्तरण।

व्यवहार दृष्टिकोण (The Behavioural Approach) – व्यावहार दृष्टिकोण में नेता के व्यक्तिगत गुणों और उसकी विशेषताओं के स्थान पर उसके व्यवहार के अध्ययन एक अधिक बल दिया जाता है। व्यवहार से अभिप्राय नेता द्वारा किये जाने वाले कार्य और नेतृत्व विश्लेषण के इस दृष्टिकोण में अधिकारियों द्वारा निरोजन, अभिप्रेरणा एवं संचार में लगाया जाने वाला समय और विधि का अध्ययन सम्मिलित है। इस दृष्टिकोण के अनुसार नेतृत्व की सफलता नेताओं के व्यवहार पर निर्भर करती है अर्थात् किसी नेता की सफलता का मूल्यांकन उसके व्यवहार का विश्लेषण करके ही किया जा सकता है।

- **लक्ष्य विचारधारा** (Path-Goal Theory of Leadership)- नेतृत्व की इस विचारधारा के प्रारम्भिक प्रतिपादक हाऊस है किन्तु बाद में इसे हाऊस और मिचैल द्वारा विकसित किया गया। यह विचारधारा ओहिओ स्टेटे नेतृत्व अध्ययन और अभिप्रेरणा के प्रत्याशा सिद्धान्त से प्रेरित है।

पथ–लक्ष्य विचारधारा का इस बात पर बल है कि नेता अधीनस्थों को पथ–लक्ष्यों तथा आवश्यकता–सन्तुष्टि के प्रति उनके अवबोध को प्रभावित कर संगठनात्मक प्रभावशीलता को अनुकूलतम बना सकते हैं। इसकी पहली मान्यता यह है कि अधीनस्थों द्वारा नेता को स्वीकारा जाता है और उसके लक्ष्यों, योजनाओं व नीतियों का उस सीमा तक प्रत्युत्तर दिया जाता है जिस सीमा तक उन्हें यह लगता है कि उसने उनकी तात्कालिक या भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी।

इसकी दूसरी मान्यता है कि नेता अपने अधीनस्थों से सफलतापूर्वक कार्य लेने व संगठनात्मक लक्ष्यों में योगदान करने में उस सीमा तक सफल होगा जिस सीमा तक उन्हें यह लगता है कि उनसे उनकी तात्कालिक या भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी। इसकी मान्यता यह है कि अधीनस्थों द्वारा नेता को स्वीकारा जाता है और उसके लक्ष्यों, योजनाओं व नीतियों का उस सीमा तक प्रत्युत्तर दिया जाता है जिस सीमा तक उन्हें यह लगता है कि उनसे उनकी तात्कालिक या भावी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी। इसकी दूसरी मान्यता है कि नेता अपने अधीनस्थों से सफलतापूर्वक कार्य लेने व संगठनात्मक लक्ष्यों में योगदान करने में उस सीमा तक सफल होगा जिस सीमा तक वह (अ) कर्मचारियों की आवश्यकता–सन्तुष्टि को प्रभावी निष्पादन पर आधरित करताहै और, (ब) उन्हें प्रभावी निष्पादन के लिए तैयार करने, (ब) उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता व मार्गदर्शन देने, तथा (स) उनकी आवश्यकता–सन्तुष्टि को प्रभावी निष्पादन पर आधारित करने की कितनी योग्यता रखताहै।

इस प्रकार, जब कर्मचारियों को यह लगता है कि उनकी आवश्यकता निष्पादन पर आधारित करने की कितनी योग्यता रखता है। इस प्रकार, जब कर्मचारियों को यह लगता है कि उनकी आवश्यकता सन्तुष्टि उनके प्रभावी निष्पादन पर निर्भर है, तब वे संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में अपनी पूरी क्षमता से काम करेंगे और अपना अनुकूलतम योगदान प्रदान करेंगे।

- **जीवन चक्र दृष्टिकोण**, (The Life Cycle Approch) –ए.के. कोरमेन पाल हर्से तथा केनेथ ब्लेनकार्ड इस दृष्टिकोण के प्रणेता हैं। यह दृष्टिकोण 'ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययनों' का परिणाम है। जीवन चक्र दृष्टिकोण में नेता की विशेषताओं तथा परिस्थिति के स्थान पर अनुयायियों की महत्ता पर बल दिया गया है। इसकी मान्यता के अनुसार नेतृत्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक अनुयायी होते हैं क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्तिगत रूप

से वे ही किसी नेता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करते हैं और सामूहिक रूप से वे ही वस्तुतः नेता की व्यक्तिगत शक्ति का निर्धारण स्रोत होते हैं।

इस नेतृत्व की यह मौलिक मान्यता है कि सर्वाधिक प्रभवशाली नेतृत्व शैली की उपयुक्तता अनुयायियों की तत्परता–सतर पर निर्भर है। हर्से और ब्लेनकार्ड ने कई परिस्थित्यात्मक कारकों की चर्चा की है–नेता, अनुयायी, शीर्ष अधिकारी (boss) , मुख्य सहयोगी (key associates), संगठन, कार्य की प्रकृति (job-demands) और निर्णय–समय। लेकिन उनका यह दृढ़ विचार है कि किसी भी नेतृत्व–स्थिति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक नेता और उनके अनुयायियों के बीच सम्बन्ध ही है। यदि अनुयायी नेता का अनुसरण न करने की ठान लें तो फिर यह बात अर्थहीन है कि शीर्ष अधिकारी और मुख्य सहयोगियों के क्या विचार हैं, अथवा कार्य की प्रकृति कैसी है। अनुयायियों के बिना नेतृत्व नहीं किया जा सकता है।

9.9 नेतृत्व के प्रकार (Types of Leadership)

परिस्थित्यात्मक नेतृत्व

- वह अपने अधीनस्थों को अपने कार्यक्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की अनुमति देता है।
- वह अपने अधीनस्थों को उन निर्णयों को लेने में सहभागी बनाता है जो उन्हें प्रभावित करते हैं।
- वह अपने आदेशों में अन्तर्निहित कारणों को स्पष्ट करता है तथा भावी योजनाओं से समूह को अवगत रखता है।
- वह अपने अनुयायियों को एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है।।
- वह कर्मचारी–केन्द्रित अधिक होता है और कर्मचारियें को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। व मूलाधार
- **पॉल हर्से और ब्लेनकार्ड** का मानना है कि नेता की कौन–सी नेतृत्व शैली सर्वाधिक उपयुक्त होगी, यह वस्तुतः लोगों के तत्परता–स्तर पर निर्भर है। इससे स्पष्ट है कि अनुयायियों या अधीनस्थों की तत्परता का स्तर यह निर्धारित करता है कि नेता द्वारा किस नेतृत्व शैली का चयन होना चाहिए। तत्परता को परिपक्वता (maturity) अथवा विकास (development) भी कहा जा सकता है।

निर्बाध नेतृत्व (Free-rein Leadership) – यह एक ऐसे प्रकार का नेतृत्व है जिनमें नेता अपने अनुयायियों और अधीनो के साथ सम्पर्क नहीं रखता और उन्हें अपने लक्ष्य निर्धारित करने तथा स्वयं निर्णय लेने के लिए अवसर प्रदान करता है। वास्तव में, अधीनस्थानों को पर्याप्त अधिकार सौंप दिये जाते हैं। ऐसा नेता मार्गदर्शन नहीं करता है। इस प्रकार वह आज्ञा देने के आदेश होता है। वह सम्पूर्ण प्रयास में शायद ही अपना योगदान देता है।

फलतः सम्पूर्ण संगठन में अव्यवस्था पायी जाती है, क्योंकि वह व्यक्तियों को विभिन्न दशाओं में कार्य करने की अनुमति प्रदान करता है। ऐसा नेतृत्व उसी स्थिति में सफल हो सकता है जब अधीनस्थ पूर्णतया समझदार तथा कर्तव्य के प्रति निष्ठावान हो। यही कारण है क इस प्रकार का नेतृत्व कुछ विशेष परिस्थितियों में ही सफल हो सकता है। सामान्य रूप से इस प्रकार के नेतृत्व को अपनाने का सुझाव नहीं दिया जा सकता।

जनतन्त्रीय नेतृत्व (Democratic Leadership) –जनतन्त्रीय विचारों वाला नेता ऐसा व्यक्ति होता है जो कि समूह के साथ विचार–विमर्श करके नीतियों का निर्माण करता है। इस प्रकार के नेतृत्व की अवधारणा अधिकार तथा निर्णयन के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। एक लोकतांत्रिक नेता अपने अनुयायी को एक सामाजिक इकाई के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा समूह के सदस्यों की निपुणताओं और योग्यताओं का पूरा–पूरा लाभ उठाता है।

9.10 नेतृत्व सम्बन्धी गुण (Merits of Leadership)

1. **संप्रेषण की योग्यता (Ability to Communicate)**– एक अच्छे नेता में निदेशों एवं बिचारों तथा आदेशों को अन्य व्यक्तियों को संप्रेषित करने की योग्यता होनी चाहिए। साथ ही साथ संप्रेझण के परिणमस्वरूप उसमें अन्य व्यक्तियों की प्रतिक्रिया जानने की झमता भी होनी चाहिए।

2. **सत्यनिष्ठा (Integrity)**–नेतृत्व सर्वोत्तम ढंग से उसी समय कार्य करता है जबकि वह सद्‌भावना, निष्कपटता तथा सत्यनिष्टा, नैतिक सुटृढता एवं सच्चाई पर आधारित होता है।

3. **निर्णायकता (Decisiveness)**– यह गुण नेता मे निर्णय लेने से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक नेता में किसी भी परिस्थिति मे निर्णय लेने की झमता अवश्य होनी चाहिए क्योकि प्रभावशाली निर्णयकर्ता पर भी संगठन वी सफलता निर्भर करती है।

4. **उत्साहित करने की योग्यता (Ability to Inspire)**– एक नेता मे अपने अनुयायियों को प्रभावित करने की पर्याप्त योग्यता होनी चाहिए।

5. **साहस (Courage)**– एक नेता में उन कार्यो को करने जिन्हें वह ठीक समझता है, का नैतिक साहस होना चाहिए। उन्हें निर्णय लेने और उन निर्णयों के अनुसार कार्य करने में अडिग बने रहने के लिए निर्भीक होना चाहिए। फील्ड मार्शल स्लिम के अनुसार, ''बिना साहस के कोई भी सद्‌गुण प्रभावी नही होते है। क्योकि विश्वास, आशा तथा दया आदि सभी सद्‌गुण नही रह पाते जब तक कि उनका प्रयोग करने के लिए साहस का आश्रय नही लिया जाता है''

6. **विचारों में लोचशीलता (Flexibility in Ideas)**–त्रीव गति से परिवर्तनशील सामाजिक आर्थिक वातावरण मे एक नेता में लोचशीलता होना आवश्यक है। परिस्थितियों के बदलने पर उसमें अपने विचारों में परिवर्तन करने की झमता भी होनी चाहिए।

7. **उत्तरदायित्व (Responsbility)**–एक अच्छे नेता मे दूसरे उत्तरदायित्व को निभाने की झमता भी होनी चाहिए। अपने उत्तरदायित्व को वहन करने पर ही वह अपने नैतिक कर्तव्य को पूरा कर सकता है।

8. **अनुभूति (Persuasiveness)**–एक नेता में दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं, जिज्ञासाओं, हितों एवं परिस्थितियों को समझने एवं अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए। एक अच्छा नेता वही माना जाता है जो अपने अधीनस्थों की भावनाओं के अनुरूप कार्य करता है। लोग ऐसे नेता के आदेशों का अनुपालन करते है, उसके निर्देशानुसार अपना कार्य स्वेच्छा से करने के लिए तत्पर रहते है।

9. **समझदारी** :– एक नेता में अपने अनुयायियों से अधिक समझदारी होनी चाहिए जिससे कि वह पूर्व उचित मार्गदर्शन दे सके और उनसे अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके।

10. **अच्छा निर्णय** :– एक अच्छे नेता में भविष्य के सन्दर्भ में सोचने एवं समझने की क्षमता होनी चाहिए जिससे कि वह भविष्य में किये जाने वाले कार्यों एवं समस्याओं के समाधान के लिए अच्छे निर्णय ले सके।

उपर्युक्त गुणों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि एक नेता में दो प्रकार के गुणों का होना नितान्त आवश्यक है : 1. अनिवार्य गुण तथा, 2. आन्तरिक एवं अमूर्त गुण।

अनिवार्य गुणों के अन्तर्गत साहस, दूरदर्शिता, दृढ़ संकल्प, निर्णायकता, बुद्धिमानी कल्पना शक्ति, सकियता निपेक्षा, समन्वय, संप्रेषण एवं प्रबन्ध करने की क्षमता, रचनात्मकता, आदि गुण सम्मिलित किये जाते है।

आन्तरिक गुणों के अन्तर्गत सत्यनिष्ठा, नैतिक, साहस, उदारता कूटनीतिज्ञता, व्यवहार कौशल शिष्टाचार सामंजस्य का तथा परानुभूति के गुण सम्मिलित है।

ये सभी गुण मिलकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाते हैं। नेता का व्यक्तित्व प्रसन्नचित होना चाहिए ये सभी गुणों के होने पर उसके सहायोगी एवं अनुयायी उसे पसन्द करेंगे। और उस पर विश्वास करेंगे साथ–साथ एक अच्छे नेता को अपने अधीनस्थों को प्रोत्साहित करने तथा उनकी सहायता करने की तत्परता होनी चाहिए।

नेता को अपने अधीनस्थों की विशेषताओं का मूल्यांकन भी करना चाहिए कि उनमें कितनी सक्षमता, अभिप्रेरणा तथा प्रतिबद्धता है। यदि उनमें आत्मनिर्भरता की अत्यधिक आवश्यकता है। निर्णयन के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की तत्परता है, अस्पष्टता कि प्रति उच्चस्तरीय सहनशीलता है, समस्या में रूचि है, संगठनात्मक लक्ष्यों के प्रति समझ व प्रतिबद्धता है, निर्णय लेने के लिए आवश्यक ज्ञान व कुशलता है तथा निर्णयन में सहभागी बनने की अपेक्षा है तो उन्हें निर्णय लेने की अधिक स्वतन्त्रता दी जा सकती है।

परिस्थितियों में निहित शक्तियां भी नेतृत्व शैली के चुनाव को प्रभावित करती जैसे कि संगठन की विशेषताएं जैसे उसके परम्पराएं कार्यशील ईकाई का आकार उनका भौगोलिक स्थल उपक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु आवश्यक स्तर संगठनात्मक और संगठन के भीतर अन्तरक्रियाओं की मात्रा समूह सदस्यों का एक इकाई के रूप में साथ साथ काम करने की क्षमता समस्या की प्रकृति व उसके लिए अपेक्षित ज्ञान व सफलता, समय का दबाव और दीर्घकालीन व्यूहरचना।

नेता को अपने अधीनस्थों की वैयक्तिक रूप से और समूह सदस्यों के रूप में विशेषताओं का तथा संगठन एवं उदाहरण में निहित शक्तियों का पता होना चाहिए, उसमें परिस्थिति के अनुरूप उपयुक्त नेतृत्व शैली को अपनाने की स्पष्टता होनी चाहिए। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि एक सफल प्रबन्धक न तो सुदृढ़ होता है और न ही अनुमत प्रस्तुत परिस्थितियों का सही सही आकलन कर अपने लिए सर्वाधिक उपयुक्त नेतृत्व व्यवहार का निर्धारण करता है। और वैसा व्यवहार करता है। वह अन्तदृष्टिपूर्ण तथा लाचशील दोनों होता है। इसलिए उसे नेतृत्व की समस्या असमंजस में नहीं डालती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि टैननबाम और शिमिट ने प्रबन्धकों के लिए नेतृत्व शैलियों के चयन हेतु व्यावहारिक मार्गदर्शन रूपरेखा प्रस्तुत की है। उनका यह योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वे इस बात को मान्यता देते है कि सभी परिस्थितियों में एक विशिष्ट नेतृत्व शैली प्रभावित नहीं होती। प्रबन्धक को प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुरूप अपने नेतृत्व व्यवहार में परिवर्तन चाहिए।

नेतृत्व के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया है : (1) स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वस्थता या क्षमता, (2) समझदारी मानसिक शक्ति, (3) नैतिक गुण, (4) समानता, तथा (5) प्रबन्धकीय योग्यता।

श्री केट्ज ने एक नेता में तीन प्रकार के गुणों के होने पर विशेष बल दिया है : (1) तकनीकी गुण, (2) माननीय गुण तथा (3) सैद्धान्तिक गुण। तकनीकी गुणों से आशय उसकी उस योग्यता से है जिसके द्वारा वह अपने ज्ञान, एवं तकनीकों का समुचित रूप से अपने कार्य निष्पादन में प्रयोग करने में समर्थ हो पाता है। यह योग्यता उसको अनुभव, तथा प्रशिक्षण से प्राप्त होती है। मानवीय गुण के अर्न्तगत उसकी उस योग्यता एवं निर्णयन की क्षमता को सम्मिलित किया तथा सहायता से वह अन्य व्यक्तियों के साथ कार्य करने में अभिप्रेरण प्रक्रिया को समझने में तथा प्रभावी नेतृत्व का उपयोग में स्वयं हो पाता है। सैद्धान्तिक गुण से आशय उसकी योग्यता से है जो उसे समग्र संगठन को समझने तथा यह ज्ञात उसमें उसका क्या स्थान है, में समर्थ बनाती है।

9.11 सार संक्षेप

इस प्रकार यह कहां जा सकता है कि एक अच्छे नेता में आत्मज्ञान पर आधारित आत्मविश्वास होना चाहिए। इस गुण के व्यक्तियों के विश्वास को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा। एक अच्छे नेता में स्फूर्ति , शक्ति, चेतना और सजगता का मिश्रण होना आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा ही वह अधीनस्थ एवं अनुयायियों को तैयार करने के लिए सक्षम हो पाता है। यह गुण उसके अनुभव एवं ज्ञान में वृद्धि करता है और उसका व्यक्तिगत प्रभाव होता है।

9.12 अभ्यास प्रश्न

1. नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियों की व्याख्या कीजिये ?
2. नेतृत्व की परिभाषाओं का वणर्न कीजिये ?
3. नेतृत्व की प्रमुख विशेषताओं को समझाइये ?
4. नेतृत्व की शैली का वर्णन कीजिये ?
5. नेतृत्व के कार्यों का वर्णन कीजिये ?
6. नेतृत्व की विचारधाराओं की व्याख्या कीजिये ?
7. नेतृत्व के प्रकारों का वणर्न कीजिये ?
8. नेतृत्व सम्बन्धी गुणों को समझाइये ?

9.13 पारिभाषिक शब्दावली

नेतृत्व	Leader	शैली	Style
विशेषताएं	Quality	विचारधारा	Theories
गुण	Merits	स्पष्टीकरण	explaining
सहभागी	Participating	अनुभूति	Persuasiveness

सत्यनिष्टा	Integrity	दृष्टिकोण	Approach
चक्र	Cycle	नौकरशाह	Bureaucrat

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- फाड़िया, बी0 एल0 : लोक प्रशासन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन।
- शर्मा, राजेन्द्र कुमारःराजनैतिक समाजशास्त्र,अटलांटिक पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर
- Merriam,C:Political Power,McGraw Hill,New York 1934
- Hyman,H:Political Socialisation,Free Press,1959
- Gouldner,A.(ed.):Studies in Leadership,Harper,New York,1954

इकाई–10

संचार : एक परिचय

Communication : an Introduction

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1परिचय

10.2 संचार की परिभाषा

10.3 संचार का महत्व
10.3.1 नियोजन एवं संचार
10.3.2 संगठन एवं संचार
10.3.3 उत्प्रेरण एवं संचार
10.3.4 समन्वय एवं संचार
10.3.5 नियन्त्रण एंव संचार
10.3.6 निर्णयन एवं संचार
10.3.7 प्रभावशीलता
10.3.8 न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन
10.4 संचार में चरण
10.5 संचार के ढंग
10.6 संचार में कारक
10.7 संचार–प्रक्रिया एवं तत्व
10.8 संचार नेटवर्क
10.9 संचार, सोच–विचार करने की प्रक्रिया के रूप में
10.10 संचार प्रेषण के रूप में
10.11 संचार एक सांस्कृतिक उत्पादक के रूप में
10.12 प्रभावी संचार की विशेषतायें
10.13 स्व–मूल्यांकन हेतु प्रश्न रिक्त स्थान, विकल्पीय, एक शब्द, अति लघु
10.14 सार संक्षेप
10.15 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रंथ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. संचार की अवधारणा एवं परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
2. संचार के महत्व एवं ढंगों को लिख सकेंगे।
3. संचार के कारकों को समझ सकेंगे।
4. संचार की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
5. संचार के तत्वों को समझ सकेंगे।
6. संचार नेटवर्क का जान सकेंगे।
7. संचार की विशेषताओं को लिख सकेंगे।

10.1 परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और संचार करना उसकी प्रकृति है । अपने भावों व विचारों का अदान–प्रदान करना उसकी जन्मजात प्रकृति है । ऐसा माना जा सकता है कि मानव के अस्तित्व में आने के साथ ही संचार की आवश्यकता का अनुभव हो गया हो गया होगा । जोकि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता हो गया। संचार किसी भी समाज के लिए अति आवश्यक है । जो स्थान शरीर के लिये भोजन का है, वही समाज व्यवस्था में संचार का है । मानव का शारीरिक एवं मानसिक विकास पूरी तरह से संचार–प्रक्रिया से जुड़ा रहता है । जन्म से मृत्यु तक मनुष्य एक दूसरे से

बातचीत के माध्यम से सम्बद्ध रहता है, एक दूसरे को जनता है, समझता है तथा परिपक्व होता है। संचार को मानव सम्बन्धों की नींव कहा जा सकता है । समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि किसी भी परिवार, समूह, समुदाय तथा समाज में यदि मनुष्यों के बीच परस्पर वार्तालाप बन्द हो जाये तो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी एवं मानसिक विकृतियाँ जन्म लेने लगेंगी।

10.2 संचार की परिभाषा

कम्युनिकेशन (Communication) शब्द लैटिन भाषा के कम्युनिस (Communis) से बना है जिसका अर्थ है to impart, make common । मन के विचारों व भावों का आदान–प्रदान करना अथवा विचारों को सर्वसामान्य बनाकर दूसरों के साथ बाँटना ही संचार है ।

संचार शब्द, अंग्रेजी भाषा के शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है । जिसका विकास Commune शब्द से हुआ है । जिसका अर्थ है अदान–प्रदान करना अर्थात बाँटना ।

संचार एक आधुनिक विषय है । मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, समाज कार्य जैसे विषयों से इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है । विभिन्न विचारकों ने इसकी परिभाषा को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है ।

चेरी के अनुसार संचार उत्प्रेरक का अदान प्रदान है ।

शेनन ने संचार को परिभाषित करते हुए कहा है कि एक मस्तिक का दूसरे मस्तिक पर प्रभाव है ।

मिलेन ने संचार को प्रशासनिक दृष्टिकोण से परिभाषित किया है । आपके अनुसार, संचाार प्रशासनिक संगठन की जीवन–रेखा है ।

डा. श्यामारचरण दूबे के शब्दों में :–संचार सामाजीकरण का प्रमुख माध्यम है । संचार द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती है । सामाजीकरण की प्रत्येक स्थिति और उसका हर रूप संचार पर आश्रित है । मनुष्य जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी तब बनता है, जब वह संचार द्वारा सांस्कृतिक अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार–प्रकारों को आत्मसात कर लेता है।

बीबर के अनुसार, वे सभी तरीके जिनके द्वारा एक मानव दूसरे को प्रभावित कर सकता है, संचार के अन्तर्गत आते है ।

न्यूमैन एवं समर के दृष्टिकोण में, संचार दा या दो से अधिक व्यक्तियों के तथ्यों, विचारों तथा भावनाओं का पारस्परिक अदान–प्रदान है ।

विल्वर के अनुसार संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्रोत से श्रोता तक सन्देश पहुँचता है ।

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संचार एक प्रकार की साझेदारी है, जिसमें ज्ञान, विचारों, अनुभूतियों और सूचनाओं का अर्थ समझते हुए पारस्परिक आदान–प्रदान किया जाता है । यह साझेदारी प्रेषक और प्राप्तिकर्ता के मध्य होती है। संचार में निहित संवाद का प्रभावकारी और अर्थपूर्ण होना आवश्यक है । संचार हमें एक सूत्र में बाँधता है। संचार को समाज–निर्माण की धुरी भी कहा जा सकता है, जिसे जीवन से परित्याग करने से मनुष्य की भावनात्मक हानि हो सकती है।

10.3 संचार का महत्व

संचार एक द्वि–मार्गीय प्रक्रिया है जहाँ पर विचारों का आदान–प्रदान होता है । बिना संचार के मानवीय संसाधनों को गतिमान किया जाना असंभव है । संचार को प्रेषित करने के अनेक माध्यम है । संचार को तभी सफल माना जा सकता है जब प्रेषित सन्देश को प्राप्तकर्ता अर्थनिरूपण कर

उसकी प्रतिपुष्टि करें । मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं में संचार का अत्याधिक महत्व है । संचार को व्यावहारिक तत्व भी माना जा सकता है क्योंकि एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है । प्रशासन एवं संगठन में संचार केन्द्रीय स्तर पर रहता है जो मानवीय एवं संगठन की गतिविधियों को संचालित करता है । सचांर की गतिविधियों को संचालित करता है । संचार के महत्व के सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता कि विश्व की सभी समस्याओं का कारण एवं समाधान है । प्रभावी संचार के अभाव में प्रबन्ध को कल्पना तक नहीं की ला सकती । प्रशासन में संचार के महत्व को स्वीकारते हुए एल्विन डाड लिखते है कि ''संचार प्रबन्ध की मुख्य समस्या है ।'' थियो हैमेन का कहना है कि ''प्रबन्धकीय कार्यों की सफलता कुशल संचार पर निर्भर करती है। टेरी के शब्दों में'' संचार उस चिकने पदार्थ का कार्य करता है जिससे प्रबन्ध प्रक्रिया सुगम हो जाती है। सुओजानिन के अनुसार' अच्छा संचार प्रबन्ध के एकीकृत दृष्टिकोण हेतु बहुत महत्वपूर्ण है। संचार के महत्व को निम्न बिन्दुओं के सन्दर्भ में भली प्रकार समझा जा सकता है–

1. **नियोजन एवं संचार** – नियोजन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक कार्य है लक्ष्य की प्राप्ति कुशल नियोजन के प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। संचार योजना के निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन दोनों के लिये अनिवार्य ह। कुशल नियोजन हेतु अनेक प्रकर की आवश्यक एवं उपयोगी सूचनाओं, तथ्यों एवं आँकड़ों और कुशल क्रियान्वयन हेतु आदेश, निर्देश एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है ।
2. **संगठन एवं संचार** –अधिकार एवं दायित्वों का निर्धारण एवं प्रत्यायोजन करना और कर्मचारियों को उनसे अवगत कराना संगठन के क्षेत्र में आते है ये कार्य भी बिना संचार के असम्भव है। बर्नाड के शब्दों में'' संचार की एक सुनिश्चित प्रणाली की आवश्यकता संगठनकर्ता का प्रथम कार्य है।''
3. **अभिप्रेरणा एवं संचार**– प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जाता है, जिसके लिए संचार की आवश्यकता पड़ती है। ड्रकर के शब्दों में'' सूचनायें प्रबन्ध का एक विशेष अस्त्र है प्रबन्धक व्यक्तियों को हॉकने का कार्य नहीं करता वरन वह उनको अभिप्रेरित, निर्देशित और संगठित करता है। ये सभी कार्य करने हेतु मौखिक अथव लिखित शब्द अथवा अंकों की भाषा ही उसका एकमात्र औजार होती है ।''
4. **समन्वय एवं संचार** – समन्वय एक समूह द्वारा किये जाने वाले प्रयासों को एक निश्चित दिशा प्रदान करने हेतु आवश्यक होता है । न्यूमैन के अनुसार'' अच्छा संचार समन्वय में सहायक होता है।'' कुशिग नाइलस लिखती है कि समन्वय हेतु अच्छा संचार अनिवार्यता है । बर्नार्ड के शब्दों में '' संचार वह साधन है जिसके द्वारा किसी संगठन में व्यक्तियों को एक समान–उद्देश्य की प्राप्ति हेतु परस्पर संयोजित किया जा सकता है'' ।
5. **नियन्त्रण एंव संचार** – नियन्त्रण द्वारा कुशल प्रबंधन यह जानने प्रयास करता है कि कार्य पूर्व निश्चित योजनानुसार हो रहा है अथवा नही ? इसके अतिरिक्त वह त्रुटियों एवं विचलनों को ज्ञात कर यथाशीध्र ठीक करने और उनकी पुनरावृत्ति को रोकने का प्रयास करता है । ये सभी कार्य बिना कुशल संचार प्रणाली के सम्भव नहीं होता है ।
6. **निर्णयन एवं संचार** – सही निर्णयन लेने हेतु प्रबंन्धकों को सही समय पर सही एवं पर्याप्त सूचनाओं, तथ्यों एवं आंकड़ों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है । यह कार्य भी बिना प्रभावी संचार प्रणाली के सम्भव नही होता है ।
7. **प्रभावशीलता** – प्रभावी सेवाएं उपलबध करने के लिये जरूरी है कि स्टाफ के सदस्यों के बीच विचारों एवं मुक्त अदान–प्रदान बना रहे है । किसी संगठन की प्रभावशीलता इसी बात पर

निर्भर होती है कि वहां के कर्मचारी आपस में विचारों को कितना आदान–प्रदान करते है और वे एक दूसरे की बात कितनी समझते हैं

8. **न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन–** समस्त विवेकशील प्रबंधकों का लक्ष्य अधिकतम, श्रेष्ठतम् व सस्ता उत्पादन करना होता है। उत्पादकता बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि संगठन में मतभेद न हो, परस्पर सद्भाव हो , जिसमें संचार' बहुत सहायक सिद्ध हुआ है ।

10.4 संचार में चरण

संचार प्रक्रिया में चरणों को चार मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

प्रथम चरण:– प्रेषक संदेश को कूटसंकेत करता है एवं भेजने के लिये उपयुक्त माध्यम का चयन करता है । प्रेषित किये जाने सन्देश का प्रेषक मौखिक, अमौखिक अथवा लिखित रूप में उचित माध्यम से भेजना है ।

द्वितीय चरण:–प्रेषक दूसरे चरण में सन्देश को भेजता है तथा यह प्रयास करता है कि सन्देश प्रेषित करते समय किसी भी प्रकार का व्यवधान न उत्पन्न हो तथा प्राप्तकर्ता बिना किसी व्यवधान के संदेश को समझ सकें ।

तृतीय चरण:– प्राप्तकर्ता प्राप्त सन्देश का अर्थ निरूपण करता है तथा आवश्यकता के अनुसार उसकी प्रतिपुष्टि करने का प्रयास करता है ।

चर्तुथ चरण:– प्रतिपुष्टि चरण में प्राप्तकर्ता प्राप्त सन्देश का अर्थनिरूपण करने के पश्चात् प्रेषक के पास प्रतिपुष्टि करता है ।

10.5 संचार के ढंग

वर्तमान समय में संचार की अनेक ढंगों का उपयोग किया जा रहा है जो कि निम्नवत् है

1. **ज्ञापन** :– ज्ञापन विधि का प्रयोग अधिकतर आन्तरिक संचार के लिये किया जाता है जहाँ पर सदस्यों तथा सदस्यों से सम्बन्धित फर्म के मध्य संक्षिप्त रूप में सूचना का अदान–प्रदान होता है।
2. **पत्र** :–वाहय संचार के अधिकतर पत्रों के माध्यमों से सूचना अथवा सन्देश का आदान–प्रदान किया जाता है । यथा–आदेश, व्यापार से सम्बन्धित अभिलेख इत्यादि।
3. **फैक्स** :– फैक्स भी संचार की विधि है जिसके द्वारा त्वरित संन्देश प्राप्तकर्ता तक पहुँचता है ।
4. **ई–मेल** :– सूचनाओं को हस्तांतरित करके के लिये ई–मेल के द्वारा त्वरित एवं सुविधाजनक रूप में सन्देश को प्रेषित किया जाता है ।
5. **सूचना** :– सूचना भी संचार की एक प्रविधि है । उदाहरण के लिये किसी संगठन में कर्मचारियों को उनसे सम्बन्धित रोजगार, सुरक्षा, स्वास्थ्य, नियम, कानून तथा कल्याणकारी सुविधायें सूचनाओं द्वारा प्रदान की जाती है ।
6. **सारांश** :– सारांश प्रविधिका प्रयोग संचार के लिये अधिकतर मीटिंग में किया गया जाता है।
7. **प्रतिवेदन** :– प्रतिवेदन भी संचार की एक प्रविधि है यथा वित्तीय प्रतिवेदन, समितियों की सिफारिशें, प्रौधोगिकी प्रतिवेदन इत्यादि ।
8. **दूरभाष** :– मौखिक संचार के लिये दूरभाष का प्रयोग किया जाता है । दूरभाष प्रविधि का प्रयोग वहाँ पर अधिक किया जाता है जहाँ पर आमने–सामने सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है ।

9. **साक्षात्कार** :– साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग कर्मचारियों के चयन उनकी प्रोन्नति तथा व्यक्तिगत विचार विमर्श के लिये किया जाता है ।
10. **रेडियो** :– एक निश्चित आवृत्ति पर रेडियो के द्वारा संचार को प्रेषित किया जाता है ।
11. **टी0वी0** :– टी0वी0 का भी प्रयोग संचार के लिये किया जाता है । जिसे एक उचित नेटवर्क के द्वारा देखा व सुना जाता है ।
12. **वीडियों कान्फ्रेन्सिंग** :– वर्तमान समय में वीडियो कान्फ्रेन्सिंग एक महत्वपूर्ण विधि है । जिसमें फोन के तार के द्वारा वीडियों के साथ आवाज को सुना जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त योजना, चित्र, नक्शा, चार्ट, ग्राफ आदि ऐसे ढंग है जिससे संचार को प्रेषित किया जाता है ।

10.6 संचार में कारक

संचार में कारकों को मुख्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । एक वे कारक जो संचार को प्रभावी बनाने में सहायक होते है दूसरे जैसे कारक जो कि संचार व्यवस्था में नकारात्मक भूमिका निभाते है। संचार को **प्रोत्साहित** करने वाले कारक निम्न हैं :–

1. **विषय का ज्ञानः** – संचारक को संचारित किये जाने वाले विषय की पूरी जानकारी होनी आवश्यक है। विषय के गहन अध्ययन के अभाव में संचार सफल नहीं हो सकता है।
2. **संचार कौशलः** – संचार प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण पहलू है संकेतीकरण एवं संकेत को समझना। संकेतीकरण के अन्तर्गत लेखन एवं वाक्शक्ति आते है तथा संकेत के अर्थनिरूपण में पठन एवं श्रवण जैसी विधाए शामिल है । इसके अतिरिक्त सोचना तथा तर्क करना सफल संचार के लिये आवश्यक है ।
3. **संचार माध्यमों का ज्ञानः** – संचार कार्य विन्नि माध्यमों से सम्पन्न होता है । संचार माध्यमों की प्रकृति, प्रयोज्यता एवं उपयोग की विधि के विषय में संचारक को ज्ञान होना चाहिए ।
4. **रूचिः** – किसी भी कार्य के सफल क्रियान्वयन के लिये आवश्यक है कि कार्यकर्ता अपने कार्य में रूचि ले तथा पूरी तन्मयता के साथ उसका निर्वाह करें । रूचिपूर्वक कार्य सम्पादित करके संचारक न केवल अपनी उन्नति के द्वार खोलना है बल्कि दूसरों की प्रगति का मार्गदर्शक भी बनता है ।
5. **अभिवृत्ति** – हर व्यक्ति की अपने कार्य, स्थल तथा सहकर्मियों के प्रति कुछ अभिवृत्तियाँ होती है । ये अभिवृत्तियाँ व्यक्ति की कार्य–सम्पादन शैली को प्रभावित करती है । यदि संचारक अपने कार्य, कार्य–स्थल, सहकर्मियों तथा संचार ग्रहणकर्ता के प्रति आस्थावान हो और सामान्य सौहार्दपूर्ण अभिवृत्ति रखता हो तो वह निश्चित रूप में अपने कार्य में सफल होगा ।
6. **विश्वसनीयता** – विश्वसनीयता संचारक का अति महत्वपूर्ण गुण है । संचारक के प्रति विश्वसनीयता सन्देश ग्राह्यता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । संचारक के प्रति ग्रहणकर्ताओं में जितना ही अटूट विश्वास होगा, ग्रहणकर्ता उतनी ही तत्परता, तन्मयता तथा सम्पूर्णता के साथ सन्देश को ग्रहण करेगें ।
7. **अच्छा व्यवहार** – संचारक की भूमिका एक मार्ग–दर्शक की होती है । ग्रहणकर्ता के साथ उसका अच्छा व्यवहार सफल संचार–सम्बन्ध को स्थापित कर सकता है ।
8. संदेश स्पष्ट एवं सरल होने चाहिये ।

संचार व्यवस्था में **नकारात्मक** भूमिका को निभाने वाले कारक निम्न है :–

1. उपयुक्त एवं उचित संचार प्रक्रिया का आभाव
2. वैधानिक सीमायें एवं अनुपयुक्त संचार नीति

3. अनुपयुक्त वातावरण
4. उचित रणनीति का आभाव
5. सरल एवं स्पष्ट भाषा का आभाव
6. प्रेरणा का आभाव
7. संचार कुशलता का आभाव

10.7 संचार–प्रक्रिया एवं तत्व

संचार एक द्विमार्गीय प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक लोगों के बीच विचारों, अनुभवों, तथ्यों तथा प्रभावों का प्रेषण होता है । संचार प्रक्रिया में प्रथम व्यक्ति संदेश स्रोत (Source) या प्रेषक (Sender) होता है । दूसरा व्यक्ति संदेश को ग्रहण करने वाला अर्थात प्राप्तकर्ता या ग्रहणकर्ता होता है । इन दो व्यक्तियों के मध्य संवाद या संदेश होता है जिसे प्रेषित एवं ग्रहण किया जाता है प्रेषित किये शब्दों से तात्पर्य 'अर्थ' से होता है तथा ग्रहणकर्ता शब्दों के पीछे छिपे 'अर्थ' को समझने के पश्चात् प्रतिक्रियों व्यक्त करता है। सामान्यतः संचार की प्रक्रिया तीन तत्वों क्रमशः प्रेषक (Sender) सन्देश (Message) तथा प्राप्तकर्ता (Reciver) के माध्यम से सम्पन्न होती है। किन्तु इसके अतिरिक्त सन्देश प्रेषक को किसी माध्यम की भी आवश्यकता होती है जिसकी सहायता से वह अपने विचारों को प्राप्तिकर्ता तक पहुंचाता है।

अतः कहा जा सकता है कि संचार प्रक्रिया में अर्थों का स्थानान्तरण होता है । जिसे अन्तः मानव संचार व्यवस्था भी कह सकते है।

एक आदर्श संचार–प्रक्रिया के प्रारूप को निम्नवत् समझा जा सकता है :–

1 **स्रोत/प्रेषक** - संचार प्रक्रिया की शुरूआत एक विशेष स्रोत से होता है जहां से सूचनार्थ कुछ बाते कही जाती है। स्रोत से सूचना की उत्पत्ति होती है और स्रोत एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह भी हो सकता है। इसी को संप्रेषक कहा जाता है ।

2 **सन्देश** - प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व सूचना सन्देश है। सन्देश से तात्पर्य उस उद्दीपन से होता है जिसे स्रोत या संप्रेषक दूसरे व्यक्ति अर्थात सूचना प्राप्तकर्ता को देता है। प्रायः सन्देश लिखित या मौखिक शब्दों के माध्यम से अन्तरित होता है । परन्तु अन्य सन्देश कुछ अशाब्दिक संकेत जैसे हाव–भाव, शारीरिक मुद्रा, शारीरिक भाषा आदि के माध्यम से भी दिया जाता है ।

3 **कूट संकेतन** - कूट संकेतन संचार प्रक्रिया की तीसरा महत्वपूर्ण तथ्य है जसमें दी गयी सूचनाओं को समझने योग्य संकेत में बदला जाता है । कूट संकेतन की प्रक्रिया सरल भी हो सकती है तथा जटिल भी । घर में नौकर को चाय बनाने की आज्ञा देना एक सरल कूट संकेतन का उदाहरण है लेकिन मूली खाकर उसके स्वाद के विषय में बतलाना एक कठिन कूट संकेतन का उदाहरण है क्योंकि इस परिस्थिति में संभव है कि व्यक्ति (स्रोत) अपने भाव को उपयुक्त शब्दों में बदलने में असमर्थ पाता है।

4 **माध्यम** - माध्यम संचार प्रक्रिया का चौथा तत्व है । माध्यम से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा सूचनाये स्रोत से निकलकर प्राप्तकर्ता तक पहुँचती है । आमने सामने का विनियम संचार प्रक्रिया का सबसे प्राथमिक माध्यम है । परन्तु इसके अलावा संचार के अन्य माध्यम जिन्हें जन माध्यम भी कहा जाता है, भी है । इनमें दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म, समाचारपत्र, मैगजीन आदि प्रमुख है ।

5 **प्राप्तिकर्ता** - प्राप्तकर्ता से तात्पर्य उस व्यक्ति से होता है । जो सन्देश को प्राप्त करता है । दूसरे शब्दों में स्रोत से निकलने वाले सूचना को जो व्यक्ति ग्रहण करता है, उसे

प्राप्तकर्ता कहा जाता है । प्राप्तकर्ता की यह जिम्मेदारी होती है कि वह सन्देश का सही –सही अर्थ ज्ञात करके उसके अनुरूप कार्य करे ।

6 **अर्थपरिवर्तन** - अर्थपरिवर्तन संचार प्रक्रिया का छठा महत्वपूर्ण पहलू है । अर्थपरिर्वन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सूचना में व्याप्त संकेतों के अर्थ की व्याख्या प्राप्तकर्ता द्वारा की जाती है । अधिकतर परिस्थिति में संकेतों का साधारण ढंग से व्याख्या करके प्राप्तकर्ता अर्थपरिवर्तन कर लेता है परन्तु कुछ परिस्थिति में जहां संकेत का सीधे–सीधे अर्थ लगाना कठिन है । अर्थ परिवर्तन एक जठिल एवं कठिन कार्य होता है ।

7 **प्रतिपुष्टि** - संचार का सातवाँ तत्व है । प्रतिपुष्टि एक तरह की सूचना होती है जो प्राप्तिकर्ता की ओर से स्रोत या संप्रेषक को प्राप्त स्रोत है। जब स्रोत को प्राप्तकर्ता से प्रतिपुष्टि परिणाम ज्ञान की प्राप्ति होती है । तो वह अपने द्वारा संचरित सूचना के महत्व या प्रभावशीलता को समझ पाता है । प्रतिपुष्टि के ही आधार पर स्रोत यह भी निर्णय कर पाता है कि क्या उसके द्वारा दी गयी सूचना में किसी प्रकार का परिमार्जन की जरूरत है यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि केवल द्विमार्गी संचार में प्रतिपुष्टि तत्व पाया जाता है ।

8 **आवाज** – संचार प्रक्रिया में आवाज भी एकतत्व है यहॉ आवाज से तात्पर्य उन बाधाओं से होता है जिसके कारण स्रोत द्वारा दी गयी सूचना को प्राप्तकर्ता ठीक ढ़ग से ग्रहण नहीं कर पाता है या प्राप्तकर्ता द्वारा प्रदत्त पुनर्निवेशत सूचना के स्रोत ठीक ढ़ग से ग्रहण नहीं कर पाता है । अक्सर देखा गया है कि स्रोत द्वारा दी गई सूचना को व्यक्ति या प्राप्तकर्ता अनावश्यक शोरगुल या अन्य कारणों से ठीक ढ़ग से ग्रहण नहीं कर पाता है । इससे संचार की प्रभावशाली कम हो जाती है ।

उपरोक्त सभी तत्व एक निश्चित क्रम में क्रियाशील होते है और उस क्रम को संचार का एक मौलिक प्रारूप कहा जात है जिसे चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है ।

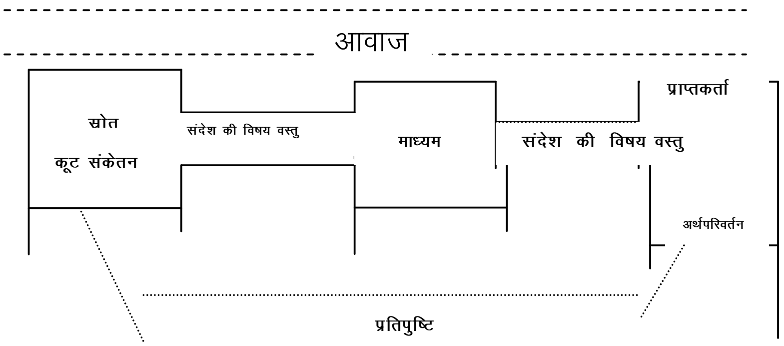

10.8 संचार नेटवर्क

संचार नेटवर्क – संचार नेटवर्क से तात्पर्य किसी समूह के सदस्यों के बीच विभिन्न पैटर्न से होती है । संचार नेटवक्र का अध्ययन लिमिट्ट, तथा शॉ द्वारा किया गया है । लिमिट्ट तथा शॉ द्वारा किये अध्ययन के आधार पर पॉच तरह के संचार नेटवर्क को पहचान की गयी है । संचार नेट वर्क इस प्रकार है ।

1. **चक्र नेटवर्क** (Wheel Network)- इस तरह के नेटवर्क में समूह में एक व्यक्ति ऐसा होता है जिसकी स्थिति अधिक केन्द्रित होती है । उसे लोग समूह के नेता के रूप में प्रत्यक्षण करते है ।

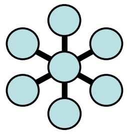

3. **श्रंखला नेटवर्क** (Chain Network)- श्रंखला नेटवर्क में समूह का प्रत्येक सदस्य अपने निकटमत सदस्य के साथ ही कुछ संचार कर सकता हे । इस तरह के नेटवर्क में सूचना ऊपरी तथा निचली किसी भी दिशा में प्रवाहित हो सकती है।

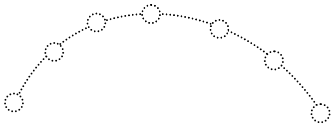

4. **वृत्त नेटवर्क** (Circle Network)- इस तरह के नेटवर्क में समूह का कोई सदस्य केन्द्रित स्थिति में नहीं होता तथा संचार सभी दशाओं में प्रवाहित होता है।

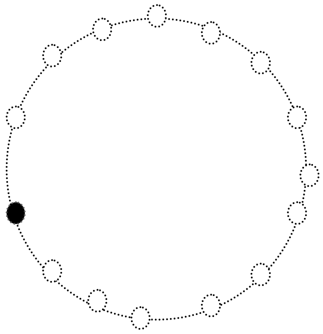

4. **वाई नेटवर्क** (**Y** Network)- वाई नेटवर्क एक केन्द्रित नेटवर्क होता है जिसमें व्यक्ति ऐसा होता है जो अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है।

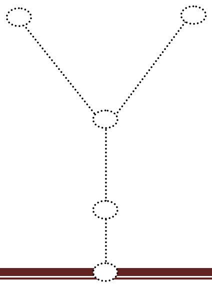

5. **कमकन नेटवर्क** (Comcon Network) –कमकन नेटवर्क एक तरह का खुला संचार होता है जसमें समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य से सीधे संचार स्थापित कर सकता है ।

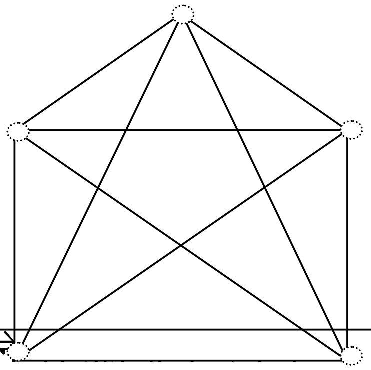

10.9 संचार, सोच–विचार करने

संचार की प्रक्रिया संचारक, सन्देश, संचार माध्यम, प्राप्तकर्ता तत्वों से मिलकर पूर्ण होती है। संचार प्रक्रिया में संचारक महत्वपूर्ण बिन्दु होता है जिसे प्रारम्भ बिन्दु भी कहा जा सकता है। किसी तथ्य या सत्य को प्रस्तुत करना और लोगों को उसके द्वारा प्रभावित करना अत्यन्त चुनौती भरा तथा दायित्वपूर्ण कृत्य है। संचारक का कर्तव्य सामाजिक जिम्मेदारियों से परिपूर्ण होता है उसकी प्रस्तुति मात्र तथ्यों, विचारों, सूचनाओं को प्रेषित ही नहीं करती वरन् लोगों को परिवर्तन की ओर अग्रसर होने को उत्प्रेरित करती है। अतः संचारक को सोच–विचार के कार्य करना पड़ता है संचारक को संतुलित व्यक्तित्व का होना चाहिए, उसे अपने विषय का विस्तृत, विविध संचार माध्यमों का ज्ञान, विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता तथा अपने काम के प्रति रूचि व ईमानदारी होनी चाहिये।

संचार एक सुनियोजित एवं व्यवस्थित प्रक्रिया है। जिसके लिए सोच–विचार से परिपूर्ण पूर्व नियोजित कार्यक्रम महत्वपूर्ण हैं। संचारक विषय का जन्मदाता होने कारण संचार प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व उसे कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते है जो कि निम्नलिखित है :–

1) सन्देश का चयन
2) सन्देश की विवेचना
3) संचार माध्यम का चयन
4) प्राप्तकर्ता का चयन

संचार प्रक्रिया में संचारक का प्रथम कार्य संदेश या उसकी विषय वस्तु का चयन करना होता है। यह कार्य प्रायः मानसिक धरातल पर प्रारम्भ होता है एतदर्थ गहन सोच–विचार आवश्यक है।

सन्देश की विषय–वस्तु महत्वपूर्ण, उपयोगी, समसामयिक तथा सर्वानुकूल होने के साथ रूचिकर भी होनी चाहिए।

विषय–वस्तु के चयन के पश्चात् विषय–वस्तु की विवेचना अर्थात् उसकी प्रस्तुति तथा उसका प्रतिपादन महत्वपूर्ण चरण होता है। प्रस्तुति सदैव सजीव एवं आकर्षक होनी चाहिये जो लोगों को सहज आकर्षित कर सके। संचारक को अपनी बात नपे तुले शब्दों में प्रस्तुत करनी चाहिए। विषयवस्तु के विभिन्न पक्षों को बताने के पश्चात् सभी बिन्दुओं को समेटते हुए संदेश का समापन करना चाहिये जिससे पूरी प्रस्तुति एक सूत्र में बँध जाये। साथ ही, संचार मे प्रतिपुष्टि के महत्व को देखते हुए, संचारक को प्राप्तकर्ता के विचार या जिज्ञासा को आमन्त्रित करना चाहिये।

संचार माध्यम में लोकमाध्यम जैसे– लोकगीत, लोकनाटक, लोक नृत्य, कठपुतली इत्यादि तथा आधुनिक माध्यम में रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र पत्रिकायें, फिल्म पोस्टर, विज्ञापन, इत्यादि का चयन संचारक के लिए महत्वपूर्ण होता है। सफल संचार–प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि संचारक संचार के माध्यमों का चयन सोच–विचार के करे।

संचार को प्राप्त करने वाले प्रायः संचार माध्यम से सम्बद्ध होते है। सन्देश प्रेषण के लिए सन्देश की भाषा और जानकारियों का स्तर सामान्य होना चाहिये। यदि सन्देश स्तरीय हो तो सन्देश माध्यम के द्वारा ज्ञानवान प्राप्तकर्ताओं का चयन किया जाना चाहिये।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संचारक ही वह मुख्य केन्द्र बिन्दु होता है जो संचार प्रक्रिया को सफल बना सकता है। संचारक द्वारा सोच–विचार कर किया गया संचार तार्किक एवं व्यवस्थित होता है। अतः संचार प्रक्रिया में तार्किक सोच–विचार बिंदु सफल संचार का द्योतक है।

10.10 संचार प्रेषण के रूप में

संचार एक द्विमार्गीय प्रक्रिया है जिसमें प्रेषक सूचना को प्रात्तकर्ता के पास भेजता है तथा प्राप्तकर्ता प्राप्त सूचना की प्रतिपुष्टि करता है। संचार प्रक्रिया में प्रेषण महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें प्रेषक द्वारा भेजी गयी सूचना माध्यमों से प्रेषित होकर प्राप्तकर्ता को प्राप्त होती है। संचार और प्रेषण को यदि अलग–अलग रूप में परिभाषित किया जाये तो संचार संकेतो के द्वारा प्रेषित होकर प्राप्त की जाती है जबकि प्रेषण में सूचना को केवल भेजा जाता है उसकी प्रतिपुष्टि नहीं हो पाती है। इसलिए प्रेषण को एक मार्गीय क्रिया माना जाता है। उदाहरण के लिए मोबाइल, फोन के द्वारा संचार की प्रक्रिया द्विमार्गीय होती है जिसमें संचारक तथा प्राप्तकर्ता दोनों सूचना का आदान–प्रदान करते हैं। जबकि रेडियों, टेलीविजन, जनसंचार के ऐसे माध्यम है, जिससे सूचना को प्रेषित किया जाता है परन्तु उसकी प्रतिपुष्टि नहीं हो पाती है।

संचार प्रक्रिया में प्रेषण के लिए उपयुक्त माध्यम की आवश्यकता होती है जिससे कि प्राप्तकर्ता बिना किसी अवरोध के सन्देश को प्राप्त कर सके। यह तभी सम्भव है जब संचारक उचित माध्यम का चयन करे। प्रेषण के लिए आवश्यक है कि संचारक आमने–सामने के सम्बन्ध के द्वारा या पत्र द्वारा या टेलीफोन द्वारा या फैक्स के द्वारा संचार करें। एक शिक्षक लिए आवश्यक है कि वह अच्छा लिखे बल्कि यह भी जरूरी है कि मौखिक संचार तथा उसके हाव–भाव सभी एक साथ मिलकर के पढ़ाई को अत्यधिक प्रभावी बना सकते हैं।

10.11 संचार एक सांस्कृतिक उत्पादक के रूप में

संचार एक सुनियोजित प्रक्रिया है। इसके निमित सूझ–बूझ से परिपूर्ण पूर्व नियोजित कार्यक्रम महत्वपूर्ण है। संचारक या प्रेषक इस प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। संचार को प्रारम्भ करने से पूर्व कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं जो संचार को प्रभावी बनाता है।

प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक बन्धनों और सांस्कृतिक रीति–रिवाजों, विश्वास के दायरे में बंधा रहता है। ये सब उसके जीवन में आदत का रूप धारण कर लेते हैं। संचारक का यह कर्तव्य होता है कि जब कोई सन्देश प्रेषित करे तो व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्वासों का किसी प्रकार से हनन न हो। सन्देशों में सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति अनुरूपता होनी चाहिये। किसी भी सांस्कृतिक मान्यता को स्पष्ट रूप से गलत या बुरा कहना संचार प्रक्रिया में बाधक हो सकता है। इनमें यदि परिवर्तन लाना हो तो परोक्ष तरीकों को अपनाया जाना चाहिये। संस्कृति ही एक ऐसा माध्यम होती है जो हमें नैतिकता का ज्ञान कराती है। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर हस्तांतरित होती रहती है। संस्कृति के द्वारा ही मनुष्य मूल्यवान होता है। सांस्कृतिक अवमूल्यन की स्थिति में हस्तांतरण की प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती है। सांस्कृतिक हस्तांतरण के लिये एक उपयुक्त भाषा की आवश्यकता होती है। वाचक अथवा लिखित प्रारूप के द्वारा संस्कृति निरन्तर आगे बढ़ती है। जिसके लिए एक उचित संचार माध्यम की आवश्यकता पड़ती है।

संचारक द्वारा प्रेषित किया जाने वाला सन्देश जन सामान्य अथवा समाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है अतः ऐसा प्रयास होना चाहिये कि जिससे सांस्कृतिक मान्यतायें एवं विश्वास प्रभावित न हों। संचार सामाजिक, परिवर्तन के लिए आवश्यक है। संचार प्रक्रिया में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच विचारों, अनुभूतियों, ज्ञान, विश्वासों, मूल्यों, भावनाओं का प्रभावकारी आदान–प्रदान है। संचार में निहित संवाद का प्रभावकारी और अर्थपूर्ण होना आवश्यक है। प्रेषक जिस भावार्थ के साथ सन्देश प्रेषित किया जाता है ग्रहणकर्ता द्वारा उस शब्द को उसी भावार्थ के साथ ग्रहण किये जाने पर संचार सफल होता है। लोग संचार के माध्यम से दूसरों के विचारों, मान्यताओं और व्यवहार में परिवर्तन लाने की चेष्टा करते हैं।

पारस्परिक प्रक्रियायें लोगों को एक–दूसरे को समीप लाती है तथा एक दूसरे को समझने में सहायता प्रदान करती है। मानवीय संबंधों, मानवीय मूल्यों, मानवीय विश्वासों को सुरक्षा प्रदान करने तथा संस्थापित करने में संचार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों, मूल्यों, विश्वासों, परम्पराओं तथा संस्कृति के बिना जीवन की परिकल्पना नहीं की जा सकती है, ठीक उसी प्रकार संचार जीवन के साथ प्रारंभ होता है तथा जीवन की समाप्ति के साथ समाप्त होता जाता है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में तथा उसे यथोचित स्थान दिलाने में जो स्थान संस्कृति का है वहीं स्थान संचार का है। सच माना जाए तो सभ्यता एवं संस्कृति का उद्भव एवं विकास वास्तव में संचार का उद्भव एवं विकास है। हमारी सामाजिक मान्यतायें, आस्था एवं विश्वास, रीति–रिवाज जैसी धरोहरें संचार के माध्यम से ही निरन्तरता बनाये हुए हैं। तात्पर्य यह है कि संचार में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए मनुष्य को संचार का आधार प्राप्त है और संचार के अभाव में मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

10.12 प्रभावी संचार की विशेषतायें

प्रभावी संचार की विशेषतायें निम्नवत् है –

1- संचार का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए

2- संचार की भाषा बोधगम्य, सरल व आसानी से समझ में आने वाली होनी चाहिये ।
3- संचार यथा सम्भव स्पष्ट एवं सभी आवश्यक बातों से युक्त होना चाहिए ।
4- संचार प्राप्तकर्ता की प्रत्याशा के अनुरूप होने चाहिए ।
5- संचार यथासमय अर्थात् सही समय पर होना चाहिये ।
6- संचार प्रेषित करने के पूर्व सम्बन्धित विषय में पूर्ण जानकारी का ज्ञान होना आवश्यक है ।
7- संचार करने से पूर्व परस्पर विश्वास स्थापित करना आवश्यक है ।
8- संचाार में लोचशीलता होनी चाहिये अर्थात् आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन किया जा सके ।
9- संचार को प्रभावी बनाने के लिये उदाहरणों तथा श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए ।
10- विलम्बकारी प्रवृत्तियों अथवा प्रतिक्रियाओं को व्यवहार में नहीं लाना चाहिए । संचार सन्देशों की एक निरन्तर श्रंखला होनी चाहिये ।
11- एक मार्गीगीय संचार की अपेक्षा द्विमार्गीय संचार श्रेष्ठ होता है ।
12- सन्देश प्रेषित करते समय ऐसा प्रयास किया जाना चाहिये कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्वासों पर किसी प्रकार का कुठाराघात न हो ।
13- संचार हमेशा लाभप्रद होना चाहिये क्योकि मनुष्य का स्वभाव है कि किसी भी बात में लाभप्रद सम्भावनाओं को देखता है ।
14- संचार में प्रयोग की जाने वाली विधियाँ या कार्य खर्चीले नही होने चाहिये अर्थात मितव्यियता के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए ।
15- संचार में विभाज्यता का गुण होना चाहिये क्योंकि प्रेषित सन्देश का उद्देश्य पूरे समुदाय या वर्ग के कल्याण में निहित होता है ।
16- संचार बहुहितकारी होना चाहिये अर्थात बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना होनी चाहिये ।

10.13 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में संचार की अवधारणा, अर्थ, परिभाषा तथा विशेषताओं के अतिरिक्त संचार की प्रक्रिया, संचार नेटवर्क, संचार के कारक तथा संचार के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसी इकाई में संचार के चरणों, ढंगों तथा तत्व के विषय में जानकारी प्रदान की गयी है। इस इकाई में संचार किस प्रकार से कार्य करता है तथा उसकी क्या उपयोगिता है, को समझाया गया है।

10.14 अभ्यास प्रश्न

1. संचार की अवधारणा क्या है?
2. संचार की परिभाषा को लिखिए।
3. संचार की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।
4. संचार के तत्वों को समझाइये।
5. संचार की विशेषताओं को लिखिए।
6. संचार के महत्व पर प्रकाश डालिए।
7. संचार के नेटवर्क को समझाइये।
8. संचार के कारकों को लिखिए।

10.15 पारिभाषिक शब्दावली

संचार	Communication	सूचना	Information
सामाजीकरण	Socializtion	प्रतिवेदन	Reporting
संस्कृति	Culture	वीडियों कान्फ्रेन्सिंग	Video Confrencing
नियोजन	Planning	स्रोत / प्रेषक	Source / Sender
संगठन	Organiztion	सन्देश	Message
अभिप्रेरणा	Motivation	कूट संकेतन	Encoding
समन्वय	Coordination	माध्यम	Channel
नियन्त्रण	Controlling	प्राप्तिकर्ता	Reciver
निर्णयन	Decision Making	अर्थपरिवर्तन	Decoding
प्रभावशीलता	Effectiveness	प्रतिपुष्टि	Feedback
ज्ञापन	Memo	आवाज	Noise
पत्र	Letter	लोचशीलता	Flexbility

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
3. मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
4. मीडिया लेखन, आर.सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

इकाई–11

संचार की अभिरचना एवं प्रकार

Design and Types of Communication

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 परिचय
11.2 औपचारिक संचार
11.3 औपचारिक संचार के लाभ
11.4 औपचारिक संचार के दोष
11.5 अनौपचारिक संचार

11.6 अनौपचारिक संचार के लाभ
11.7 अनौपचारिक संचार के दोष
11.8 लिखित संचार
11.9 लिखित संचार के लाभ
11.10 लिखित संचार के दोष
11.11 मौखिक संचार
11.12 मौखिक संचार के लाभ
11.13 मौखिक संचार के दोष
11.14 अमौखिक संचार
11.15 अमौखिक संचार के लाभ
11.16 अन्तर्वैयक्तिक संचार
11.17 अन्तर्वैयक्तिक संचार लाभ
11.18 जन–संचार
11.19 संचार के सिद्धान्त
11.20 सार संक्षेप
11.21 अभ्यास प्रश्न
11.22 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- संचार के प्रकारों को जान सकेंगे।
- औपचारिक तथा अनौपचारिक संचार को लिख सकेंगे।
- लिखित संचार को समझ सकेंगे।
- मौखिक संचार को जान सकेंगे।
- अन्तर्वैयक्तिक संचार एवं जन संचार में अन्तर स्थापित कर सकेंगे।
- संचार के प्रकारों के लाभ तथा दोषों को जान सकेंगे।
- संचार के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

11.1 परिचय

संचार का मानवीय जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, संचार के बिना जीवन की परिकल्पना करना व्यर्थ है। संचार के द्वारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सदैव निरन्तरता बनी रहती है। संचार हमारे जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है जिसे उद्देश्यों के आधार पर इसे कई प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यहाँ पर संचार के कुछ प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया गया है जो संचार की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं–

1. औपचारिक एवं अनौपचारिक संचार
2. अन्तर्वैयक्तिक एवं जन–संचार
3. मौखिक संचार

4. लिखित संचार
5. अमौखिक संचार

11.2 औपचारिक संचार

औपचारिक संचार किसी संस्था में विचारपूर्वक स्थापित की जाती है। किस व्यक्ति को किसको और किस अन्तराल में सूचना देनी चाहिए, यह किसी संस्था में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत् व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट करने में सहायक होता है। औपचारिक सन्देशवाहन के निर्माण व प्रेषण में अनेक औपचारिक सम्वाद अधिकांशतः लिखित होते हैं। यथा–संस्था का प्रधानाचार्य अपने उप प्रधानाचार्य को कुछ निर्देश प्रदान करता है, तो वह औपचारिक प्रकृति का ही समझा जायेगा क्योंकि एक उच्चाधिकारी अपने नीचे रहने वाले अधिकारियों या कर्मचारियों को निर्देश देने की ही स्थिति में बाध्य होता है। औपचारिक सन्देशवाहन के अन्य उदाहरण, आदेश, बुलेटिन आदि।

11.3 औपचारिक संचार के लाभ

औपचारिक संचार के लाभ निम्नवत् है–

1. औपचारिक संचार अधिकृत संचारकर्ता के द्वारा सही सूचना प्रदान की जाती है।
2- यह संचार लिखित रूप में होता है।
3- इस संचार के द्वारा संचार की प्रतिपुष्टि होती है।
4- यह संचार व्यवस्थित एवं उचित तरीके से किया जाता है।
5- यह संचार करते समय संचार के स्तरों के क्रमों का विशेष ध्यान रखा जाता है।
6- इस संचार के माध्यम से संचारक की स्थिति का पता सरलता से लगाया जा सकता है।
7- इस संचार के द्वारा व्यावसायिक मामलों को आसानी से नियंत्रित एवं व्यवस्थित किया जा सकता है।
8- इस संचार के द्वारा दूर स्थापित लोगों से सम्बन्ध आसानी से स्थापित किये जा सकते हैं।

11.4 औपचारिक संचार के दोष

औपचारिक संचार के दोष निम्नलिखित हैः–इस संचार की गति धीमी होती है।

1- समान्यतया इस संचार में उच्च अधिकृत लोगों का अधिभार ज्यादा होता है।
2- इस संचार में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से संचार की आलोचना नहीं की जा सकती है।
3- इस संचार में नियमों का शक्ति से पालन किया जाता है जिसंके कारण संचार में लोचशीलता के अभाव के कारण बाधा उत्पन्न होने की संभावना हमेशा विद्यमान रहती हैं।

11.5 अनौपचारिक संचार

अनौपचारिक सन्देश वाहनों में किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं बरती जाती। ऐसे सन्देशवाहन मुख्यतः पक्षकारों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों पर निर्भर करते हैं। अनौपचारिक सन्देशवाहन के कुछ उदाहरण है – नेत्रों से किये जाने वाले इशारे, सिर हिलाना, मुस्कराना, क्रोधित होना आदि। ऐसे संचार का दोष यह होता है कि सावधानी के अभाव में कभी–कभी अफवाहों को फैलाने में सहायक हो जाते हैं।

11.6 अनौपचारिक संचार के लाभ

अनौपचारिक संचार के लाभ निम्नवत् है–

1. इस संचार के द्वारा सौहार्द सम्बन्धी एवं संभावनाओं का आदान प्रदान होता है।

2. इस संचार के द्वारा संचार की गति अत्यधिक तेज होती है।
3. इस संचार में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से विचारों का आदान–प्रदान किया जाता है।
4. इस संचार के माध्यम से सम्बन्धों में व्याप्त तनाव में कमी आती है तथा लोगों के मध्य सांवेगिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

11.7 अनौपचारिक संचार के दोष

अनौपचारिक संचार के दोष निम्नलिखित हैः–

1. इस संचार के द्वारा अविश्वसनीय तथा अपर्याप्त सूचना प्राप्त होती है।
2. इस संचार में सूचना प्रदान करने का उत्तरदायित्व निश्चित नहीं होता है तथा सूचना किस स्तर से तथा कहाँ से प्राप्त हुई है, का पता लगाना आसान नहीं होता है।
3. इस प्रकार का संचार ज्यादातर किसी भी संगठन में समस्या को उत्पन्न कर सकता है।
4. इस संचार में सूचना किस स्तर से तथा कहाँ से प्राप्त हो रही है का स्रोत निश्चित नहीं होता है जिसके कारण सूचना के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा उसका अर्थ निरूपण करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

11.8 लिखित संचार

लिखित संचार एक प्रकार औपचारिक संचार है जिसमें सूचनाओं का आदान–प्रदान लिखित रूप में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को प्रेषित किया जाता है इस संचार के द्वारा संचारक को लिखित रूप में प्रेषित किये गये संदेश का अभिलेख रखने में आसानी होती है। लिखित संचार के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि आवश्यक सूचना प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से प्रदान की गई है। एक लिखित संचार सही, सक्षिप्त, पूर्ण तथा स्पष्ट होता है।

लिखित संचार के साधन–बुलेटिन, हैंडबुक्स व डायरियां, समाचार पत्र, मैगजीन, सुझाव –योजनायें, व्यावहारिक पत्रिकायें, संगठन–पुस्तिकायें संगठन–अनुसूचियाँ, नीति– पुस्तिकायें कार्यविधि पुस्तिकायें, प्रतिवेदन, अध्यादेश आदि।

11.9 लिखित संचार के लाभ

लिखित संचार के लाभ निम्नलिखित हैः–

1. लिखित सम्प्रेषण की दशा में दोनों पक्षों की उपस्थिति आवश्यक नहीं है
2. विस्तृत एवं जटिल सूचनाओं के सम्प्रेषण के लिए यह अधिक उपयुक्त है।
3. यह साधन मितव्ययी भी है क्योंकि डाक द्वारा समाचार योजना, दूरभाष पर बात करने की उपेक्षा सस्ता होता है।
4. लिखित संवाद प्रमाण का काम करता है तथा भावी संदर्भों के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

11.10 लिखित संचार के दोष

लिखित संचार के दोष निम्नलिखित हैः–

1. लिखित संचार की दशा में प्रत्येक सूचना को चाहे वह छोटी हो अथवा बड़ी, लिखित रूप में ही प्रस्तुत करना पड़ता है जिनमें स्वभावतः बहुत अधिक समय व धन का अपव्यय होता है।
2. प्रत्येक छोटी–बड़ी बात हो हमेशा लिखित रूप में ही प्रस्तुत करना सम्भव नहीं होता।
3. लिखित संचार में गोपनीयता नहीं रखी जा सकती।
4. लिखित संचार का एक दोष यह भी है कि इससे लालफीताशाही का बढ़ावा मिलता है।
5. अशिक्षित व्यक्तियों के लिए लिखित स्म्प्रेषण कोई अर्थ नहीं रखता।

मौखिक अथवा लिखित संचार के अपेक्षाकृत श्रेष्ठ कौन है, इसका निर्णय करना एक कठिन समस्या है। वास्तव में इसका उत्तर प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

11.11 मौखिक संचार

मौखिक संचार से तात्पर्य संचारक द्वारा किसी सूचना अथवा संवाद का मुख से उच्चारण कर संवाद प्राप्तकर्ता को प्रेरित करने से है। दूसरे शब्दों में, जो सूचनायें या संदेश लिखित न हो वरन् जुबानी कहें या निर्गमित किये गये हो उन्हें मौखिक संचार कहते हैं। इस विधि के अन्तर्गत संदेश देने वाला तथा संदेश पाने वाले दोनों एक–दूसरे के सामने होते है इस पद्धति में व्यक्तिगत पहुँच सम्भव होती है।

लारेन्स एप्पले के अनुसार, ''मौखिक शब्दों द्वारा पारस्परिक संचार सन्देशवाहन की सर्वश्रेष्ठ कला है।

मौखिक संचार के साधन – आमने सामने दिये गये आदेश, रेडियो द्वारा संचार, दूरदर्शन, दूरभाष, सम्मेलन या साभाएँ, संयुक्त विचार–विमर्श, साक्षात्कार, उद्घोषणाएँ आदि।

11.12 मौखिक संचार के लाभ

मौखिक संचार के लाभ निम्नलिखित हैः–

1. इस पद्धति से समय व धन दोनों की बचत होती है।
2. इसे आसानी से समझा जा सकता है।
3. संकटकालीन अवधि में कार्य में गति लाने के लिए मौखिक पद्धति एक मात्र विधि होती है।
4. मौखिक संचार लिखित संचार की तुलना में अधिक लचीला होता है।
5. मौखिक संचार पारस्परिक सद्भाव व सद्विश्वास में वृद्धि करता है।

11.13 मौखिक संचार के दोष

मौखिक संचार के दोष निम्नलिखित हैः–

1. मौखिक वार्ता को बातचीत के उपरान्त पुनः प्रस्तुत करने का प्रश्न ही नहीं उठता।
2. मौखिक वार्ता भावी संदर्भ के लिए अनुपयुक्त है।
3. मौखिक सन्देशवाहन में सूचनाकर्ता को सोचने का अधिक मौका नहीं मिलता।
4. खर्चीला
5. तैयारी की आवश्यकता।
6. अपूर्ण।

11.14 अमौखिक संचार

यह संचार का प्रकार है जो न मौखिक होता है और न ही लिखित। इस संचार में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अमौखिक रूप से सूचना को प्रदान करता है, उदाहरण के रूप में–शारीरिक हाव–भाव के द्वारा। इस संचार में शारीरिक भाव–भंगिमा के माध्यम से संचार को प्रेषित किया जाता है। जिसे प्राप्तकर्ता अमौखिक रूप से सरलता से समझ जाता है, जैसे–चेहरे का भाव, आंखों तथा हाथ का इधर–उधर घूमना आदि के द्वारा भावनाओं, संवेगों, मनोवृत्तियों इत्यादि को असानी से समझ सकता है।

11.15 अमौखिक संचार के लाभ

अमौखिक संचार के लाभ निम्नलिखित है–

1. इस संचार के द्वारा भावनाओं, संवेगों, मनोवृत्ति इत्यादि को कम समय में प्रेषित किया जा सकता है।
2. इस संचार को एक प्रकार से मौखिक संचार का प्रारूप माना जा सकता है जिसमें मौखिक संचार के लाभों एवं दोषों को शामिल किया जा सकता है।

3. इस संचार के द्वारा लोगों को प्रेरित, प्रभावित तथा एकाग्रचित किया जा सकता है।

11.16 अन्तर्वैयक्तिक संचार

अन्तर्वैयक्तिक संचार का एक प्रकार हैं जिसमें संचारकर्ता तथा प्राप्तकर्ता एक–दूसरे के आमने–सामने होते हैं। अन्तर्वैयक्तिक संचार लिखित अथवा मौखिक दोनों रूप में हो सकते हैं, अन्तर्वैयक्तिक संचार के अन्तर्गत लिखित रूप में यथा पत्र, डायरी इत्यादि को शामिल किया जा सकता है जबकि मौखिक संचार में टेलिफोन, आमने–सामने की बातचीत इत्यादि को शामिल कर सकते हैं।

11.17 अन्तर्वैयक्तिक संचार लाभ

अन्तर्वैयक्तिक संचार के लाभ निम्नवत् है–

1. इस संचार के द्वारा संचारक तथा प्राप्तकर्ता के मध्य सामने–सामने के सम्बन्ध होते हैं। जिसके कारण मौखिक संदेश की गोपनीयता बनी रहती हैं।
2. इस संचार में संचारक तथा प्राप्तकर्ता ही होते हैं जिसके कारण सूचना अन्य लोगों के पास नहीं जा पाती है।

11.18 जन–संचार

जन–संचार संचार का एक माध्यम हैं जिसके द्वारा कोई भी संदेश अनेक माध्यमों के द्वारा जन–समुदाय तक पहुंचाया जाता है। वर्तमान समय में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा जो जन–संचार माध्यम से न जुड़ा हो। सच पूछा जाय तो आज के मनुष्य का विकास जन–संचार के माध्यमों द्वारा ही हो रहा है। जन–समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में जन–संचार माध्यमों की बड़ी भूमिका होती है। जो कि सभी वर्ग, सभी कार्य क्षेत्र से जुड़े लोगों तथा सभी उम्र के लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में सहायता प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में जन–संचार के अनेक माध्यम हैं, जैसे–समाचार पत्र/पत्रिकायें, रेडियों, टेलीविजन, इंटरनेट इत्यादि।

11.19 संचार के सिद्धान्त

संचार की प्रक्रिया विभिन्न अध्ययनों के पश्चात् स्पष्ट होता है कि संचार को आधार प्रदान करने के लिए सिद्धान्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। संचार के सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

1. **उद्देश्यों के स्पष्ट होने का सिद्धान्त**–संचार की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि संचार के उद्देश्य विशिष्ट एवं स्पष्ट हों जिससे की प्राप्तकर्ता संचार के विषय को सार्थक रूप से समझ सके।
2. **श्रोताओं के स्पष्ट ज्ञान का सिद्धान्त**–संचार की सफलता के लिए आवश्यक है कि संचारक को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि श्रोतागण कैसे हैं जिससे प्रेषित किये जाने वाले विषय को श्रोता के ज्ञान एवं उनकी इच्छा के अनुसार सारगर्भित रूप में प्रेषित किया जा सके। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि संचार को श्रोतागण आसानी से समझ सके।
3. **विश्वसनीयता बनाये रखने का सिद्धान्त**–संचारक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह समुदाय में अपनी स्थिति प्रास्थिति को बनाये रखे क्योंकि संचारक के द्वारा प्रेषित किये जाने वाला संचार संचारक के सामर्थ्य पर निर्भर करता है यदि समुदाय के लोगों को इस बात का विश्वास होता है कि संचारक समुदाय के हित के लिए संदेश को प्रेषित करेगा।
4. **स्पष्टता का सिद्धान्त**–संचार में प्रयोग की जाने वाली भाषा एवं प्रेषित किये जाने वाला विषय सरल एवं समरूप होना चाहिए जिससे कि संचार को लोग आसानी से समझ सके। संचार करते

समय यदि क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया जाता है तो संचार की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

5. **शब्दों को सोच–विचार कर प्रेषित एवं संगठित करने का सिद्धान्त**–संचारक के लिए आवश्यक होता है कि संचार में प्रयोग किये जाने वाले शब्दों का चयन उचित प्रकार से किया जाये तथा विचारों में तारतम्यता निहित हो। यदि संचार करते समय शब्दों का चयन कुछ सोच–समझकर नहीं किया जाता है और शब्दों के मध्य तारतम्यता तथा एकरूपता नहीं होता है तो प्राप्तकर्ता संचार के उद्देश्यों को समझ नही पाता है।
6. **सूचना की पर्याप्तता का सिद्धान्त**–संचारक के लिए यह आवश्यक होता है कि संचार करते समय सूचना पर्याप्त रूप में प्रेषित की जाये इसके लिए यह भी आवश्यक होता है कि सूचना किस स्तर पर प्रेषित की जा रही है। सूचना की अपर्याप्तता के कारण प्राप्तकर्ता संचार के उद्देश्यों का अर्थ निरूपण विपरित लगा सकता है जिसके कारण संचार के असफल होने की संभावना उत्पन्न हो जाती है।
7. **सूचना के प्रसार का सिद्धान्त** –संचार की सफलता के लिए आवश्यक होता है कि सूचना का प्रसार सही समय पर, सही परिप्रेक्ष्य में, सही व्यक्ति को उचित कारण के संदर्भ में प्रेषित की जाये तथा सूचना प्रसारित करते समय इस तथ्य का भी ध्यान रखा जाय कि सूचना प्राप्तकर्ता कौन है यदि संचारक सूचना प्रेषित करते समय, परिप्रेक्ष्य, उचित व्यक्ति तथा स्पष्ट उद्देश्य का ध्यान नहीं रखता है तो संचार असफल हो जाता है।
8. **सघनता एवं सम्बद्धता का सिद्धान्त**–सफल संचार के लिए आवश्यक है कि सूचना में सघनता एवं सम्बद्धता का तत्व विद्यमान हो, सूचना को प्रदान किये जाने का क्रम 666 क्रियान्वित किया जा सके।
9. **एकाग्रता का सिद्धान्त**–संचार की सफलता के लिए आवश्यक है कि संचारक एवं प्राप्तकर्ता दोनों एकाग्रचित्त होकर कार्य करे। संचारक के लिए आवश्यक है कि संचार प्रेषित करते समय अपनी एकाग्रता को भंग न होने दे तथा प्राप्तकर्ता के लिए भी यह आवश्यक होता है कि वह एकाग्रचित होकर के प्रेषित संचार का अर्थ निरूपण करे।
10. **समयबद्धता का सिद्धान्त**–संचार तभी सफल हो सकता है जब वह उचित तथा निश्चित समय पर किया जाये। संचार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संचार करते समय संचार के उद्देश्यों की प्राप्ति सही समय पर हो पायेगी अथवा नहीं।
11. **पुर्ननिर्देशन का सिद्धान्त**–संचार की प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है जब प्राप्तकर्ता प्रेषित संदेश का सही एवं उचित अर्थ निरूपण करके संचारक को प्रतिपुष्टि प्रदान करें क्योंकि प्रतिपुष्टि के द्वारा संचारक को इस बात का ज्ञान होता है कि जिस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संदेश को प्रेषित किया गया है वह सफल हुआ है अथवा नहीं।

11.20 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में संचार के प्रकारों, उससे होने वाले लाभों तथा दोषों एवं संचार के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। संचार के प्रकारों में विशेषकर औपचारिक एवं अनौपचारिक संचार, मौखिक, अमौखिक एवं लिखित संचार तथा अन्तर्वैयक्तिक एवं जन संचार के विषय में बताया गया है।

11.21 अभ्यास प्रश्न

1. संचार के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. औपचारिक एवं अनौपचारिक को स्पष्ट कीजिए।
3. लिखित, मौखिक एवं अमौखिक संचार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

4. संचार के लाभों एवं दोषों को इंगित कीजिए।
5. अन्तर्वैयक्तिक एवं जन संचार को समझाइये।
6. संचार के सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

11.22 पारिभाषिक शब्दावली

परिचय	Inroduction	अन्तर्वैयक्तिक	Interpersonal
औपचारिक	Formal	जन संचार	Mass Communication
अनौपचारिक	Informal	अभिलेख	Document
लिखित	Written	साक्षात्कार	Interview
मौखिक	Verbal	श्रोता	Audience
अमौखिक	Non-verbal	ज्ञान	Knowledge

संदर्भ ग्रन्थ सूची

5. लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
6. प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
7. मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
8. मीडिया लेखन, आर. सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

इकाई–12

संचार निर्देशन
Directions of Communication

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 परिचय
12.2 उर्ध्वाधर संचार
12.3 क्षैतिज संचार
12.4 भारत में माध्यम परिदृश्य
12.5 परम्परागत माध्यम
12.6 आधुनिक जनसंचार माध्यम
12.7 मुद्रण
12.8 श्रव्य
12.9 दृश्य
12.10 दृश्य–श्रव्य
12.11 माध्यमों के लिए प्रभावी लेखन
12.12 मुद्रण माध्यम
12.13 श्रव्य संचार माध्यम
12.14 दृश्य–श्रव्य माध्यम के लिए लेखन
12.15 प्रेस
12.16 विशेष समारोह का खाका
12.17 वृत्तचित्र
12.18 प्रेस सम्मेलन
12.19 प्रेस विज्ञप्ति
12.20 सार संक्षेप
12.21 अभ्यास प्रश्न
12.22 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- क्षैतिज तथा उर्ध्वाधर संचार को जान सकेंगे।
- भारत में माध्यम परिदृश्य को समझ सकेंगे।
- आधुनिक संचार के साधनों को लिख सकेंगे।
- परम्परागत संचार के माध्यमों को जान सकेंगे।
- संचार के माध्यमों के प्रभावी लेखन को समझ सकेंगे।
- आधुनिक संचार के विभिन्न माध्यमों को जान सकेंगे।

12.1 परिचय

निर्देशन के आधार पर संचार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उर्ध्वाधर या लम्बवत् (Vertical)
2. क्षैतिज (Laterally)

12.2 उर्ध्वाधर संचार

उर्ध्वाधर संचार को पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

अ) नीचे की ओर अथवा ऊपर से नीचे की ओर

ब) ऊपर की ओर अथवा नीचे से ऊपर की ओर

अ) नीचे की ओर संचार

नीचे की ओर संचार का प्रयोग अधिकतर संगठनों में उच्च स्तर से निचले स्तर पर कार्यरत् अधीनस्थों के लिये किया जाता है। नीचे की ओर संचार का प्रयोग प्रबन्धकों द्वारा अपने अधीनस्थों को आदेश को क्रियान्वित करने के लिये, नीतियों को लागू करने, कार्य के विषय में सूचित करने इत्यादि के लिये किया जाता है। नीचे की ओर संचार करने के लिये मौखिक रूप से या सम्पर्क में रहना आवश्यक नहीं है। नीचे से संचार के माध्यम से वरिष्ठ अपने अधीनस्थों को सलाह देते हैं, दिशा–निर्देश देते हैं और नियन्त्रित करते हैं।

ब) ऊपर की ओर संचार

नीचे से ऊपर की ओर संचार प्रक्रिया में अधीनस्थ अपने वरिष्ठों को सन्देश अथवा सूचना की ओर संचार एक प्रकार से उच्च स्तर पर प्रबन्धकों को प्रतिपुष्टि देता है कि कार्य की प्रगति और उसका निष्पादन कैसा है। नीचे से ऊपर की ओर संचार उच्च स्तर पर प्रबन्धकों को इस योग्य बनाता है कि वे संगठन के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आवश्यकतानुसार पूर्व में दिये गये दिशा–निर्देश में सुधार कर सके। संगठन की कार्य निष्पादन की प्रक्रिया का मूल्यांकन के लिये आवश्यक है कि वरिष्ठ अपने अधीनस्थों को प्रेरित करे और समय–समय पर सही सन्देश प्रेषित करते रहे।

12.3 क्षैतिज संचार

जब संचार एक ही स्तर पर कार्य समूह के सदस्यों के मध्य, एक ही स्तर पर प्रबन्धकों के बीच या किसी क्षैतिज समकक्ष कर्मियों अथवा विभागों के बीच में होता है तो उसे समानान्तर अथवा क्षैतिज संचार कहते हैं। क्षैतिज संचार के द्वारा समय की बचत होती है औश्र समन्वय के लिये अति आवश्यक है क्षैतिज संचार के द्वारा विभागीय समस्याओं का समाधान किया जाता है। क्षैतिज संचार उर्ध्व संचार के दबाव को कम करता है। एक विभाग के कर्मचारी कुशल हो, अपने कार्य में निशेषज्ञता हासिल करे तथा संगठन अत्यधिक विकसित हो, क्षैतिज संचार के बिना सम्भव नहीं है।

12.4 भारत में माध्यम परिदृश्य

माध्यम अर्थात् Media अर्थात् दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला साधन। संचार माध्यम के द्वारा सम्प्रेषक और स्रोता के बीच सूचनाओं का परस्पर आदान–प्रदान होता है। हैराल्ड लाज्वेज (Harrold Laswel) संचार माध्यमों के निम्नलिखित उद्देश्य बतायें है ।

(1) सूचना का संग्रहण करना

(2) सूचना का विश्लेषण करना

(3) सामाजिक मूल्यों व ज्ञान का संचरण अर्थात नैतिक व शैक्षिक ज्ञान

(4) सूचना का प्रसार करना, तथा
(5) मजोरंजन

जनसंचार माध्यमों के दों विभाग हैं–

(क) परम्परागत माध्यम
(ख) आधुनिक माध्यम

12.5 परम्परागत माध्यम

सृष्टि के प्रारम्भ से मानव दूसरों से सम्पर्क करता रहा है तथा आवश्यकता के अनुसार माध्यम चुनता व खोजता रहा है। परमपरागत संचार माध्यमों से तात्पर्य उन्हीं माध्यमों से है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी विकसित होते हैं तथा जिनकी प्रासंगिता व महत्व आज भी है। इन माध्यमों का सांस्कृतिक महत्व भी है।

परम्परागत संचार माध्यमों के निम्न प्रकार हैं –

(1) वार्ताएँ, कथाएँ
(2) मेले, उत्सव, पर्व
(3) लोकगीत
(4) लोकनाट्य (रासलीला, रामलीला, कठपुतली, तमाशा, नौटंकी आदि)
(5) शिलालेख
(6) लोककलाएँ (ब्रज की सांझी, बिहार मधुबनी, कांगड़ा शैली)
(7) मूर्तिकला (अजन्ता, एलोरा आदि)
(8) वास्तुकला (खजुराहो तथा कोणार्क)
(9) ललित कलाएँ (संगीत व चित्रकला)
(10) सन्देश प्रेषण हेतु पक्षियों का प्रयोग

12.6 आधुनिक जनसंचार माध्यम

संचार अनेक माध्यमों द्वारा संभव है । जिन्हें मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **श्रव्य** (Audio) अर्थात सुनना :– इस माध्यम के उदाहरण है – सम्मेलन समितियां, साक्षात्कार टेलीफोन रेडियो प्रसार, जनसभाएं आदि ।
2. **दृश्य** (Visual) अर्थात देखना– इस माध्यम के अन्तर्गत लिखित संचार यथा–परिपत्र पुस्तिकायें प्रतिवेदन विवरणिका, ग्राफ स्लाइड्स आदि सम्मिलित है।
3. **दृश्य–श्रव्य** (Audio&Visual) – अर्थात देखना एवं सुनना इस माध्यम के उदाहरण है । बोलते चित्र, दूरदर्शन, व्यक्तिगत प्रदर्शन आदि है।

उपर्युक्त तीनों में से प्रत्येक माध्यम के अपने गुण है तथा अपनी–अपनी सीमाये है। यह संचारक पर निर्भर है कि वह इस बात का निर्णय करे कि कब कौन सा संचार माध्यम उपयुक्त होगा ।

12.7 मुद्रण

मुद्रण संचार की एक अद्वितीय विधि है। सर्वप्रथम मुद्रण कला का आविष्कार चीन में 868 ई. में हुआ था। यद्यपि चीन में मुद्रण–कला 0वीं शताब्दी में विकसित हुई परन्तु आधुनिक छापेखाने की नींव 15वीं शताब्दी में जर्मनी के योहाल गुटेनबर्ग ने डाली। मुद्रण कला के विकास ने समाचार–पत्रों की स्थापना की। भारत में पत्रकारिता की शुरूआत 1780 ई. में ए. हिक्की के 'बंगाल गजेट' से होती है। यह एक राजनीतिक एवं व्यापारिक अखबार था। आधुनिक जनसंचार के माध्यमों में मुद्रित माध्यम

सबसे पुराना है। इनमें समसामयिक तथा दैनिक समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, परिपत्र, सूचना–पत्र, विज्ञप्ति इत्यादि सम्मिलित है। आधुनिक जीवन में मुद्रित माध्यम अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सभी प्रकार के समाचार पत्रों के अतिरिक्त, विविध विषयक लेख, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, कहानियाँ, कविताएं, संस्मरण, व्यंग्य, साक्षात्कार, ज्योतिष विचार, बाजार–भाव, खेल समाचार, धर्म चर्चा इत्यादि सम्बन्धित मुद्रित समाग्रियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय जीवन का समाज को प्रभावित करती हैं।

12.8 श्रव्य

संचार के श्रव्य माध्यमों में रेडियो, टेलीफोन, मोबाइल फोन, पेजिंग, टेलिप्रिन्टर, ट्रांसमीटर आदि का प्रयोग किया जाता है। रेडियो विद्युत तरंगों के माध्यम से कार्य करता है। रेडियो के प्रसारण के लिये 150 हजार हर्ट्ज से 30 हजार मैगा हर्ट्ज की तरंगों की आवश्यकता होती है। उन तरंगों को तीन भागों में बांटा जाता है। मीडियम वेव, शार्ट वेव तथा अल्ट्राशार्ट वेव। अल्ट्राशार्ट वेव की आवृत्ति अधिक तथा मीडियम वेव की न्यूनतम होती है। इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों में रेडियो अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम है। जिसके द्वारा सूचना, शिक्षा व मनोरंजन सभी एक साथ किया जाता है।

12.9 दृश्य

दृश्य संचार में फैक्स तथा कम्प्यूटर को सम्मिलित किया जाता है।

12.10 दृश्य–श्रव्य

दृश्य श्रव्य संचार माध्यमों में टेलीविजन (दूरदर्शन), फिल्म, वृत्तचित्र इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। जनसंचार माध्यमों में टेलीविजन अत्यन्त महत्वपूर्ण, शक्तिशाली और लोकप्रिय है। चलती फिरती तस्वीरों, चित्रमय समाचारों और चलचित्रों को घर बैठे ही देखने का अपना आनन्द है। टेलीविजन कार्यक्रमों का नियमित प्रसारण बी.बी.सी. द्वारा ब्रिटेन में सन् 1936 में हुआ। भारत में 15 सितम्बर, 1959 को दिल्ली में टेलीविजन प्रसारण की शुरूआत यूनेस्को की सहायता से हुई।

फिल्में जनसंचार का अत्यन्त सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम है। ये ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर मुख्य रूप से आधारित होती हैं किन्तु इनका मुख्य उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में, समाज में व्याप्त कुरीतियों और अन्धविश्वासों को दूर करने में, नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में फिल्मों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किन्तु इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि आजकल के जीवन में बढ़े अपराध–स्तर के लिये काफी हद तक फिल्में ही जिम्मेदार हैं।

12.11 माध्यमों के लिए प्रभावी लेखन

जन समुदाय तक कोई भी संदेश अनेक माध्यमों के द्वारा पहुँचाया जाता है। वर्तमान समय में शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो किसी न किसी माध्यम से जुड़ा न हो। जनसंचार माध्यमों के लेखन सृजनात्मक लेखन से कुछ अलग नहीं होता बल्कि इस अन्तर के साथ कि माध्यम विशेष मांग को ध्यान में रखते हुए ही लिखा जाये तथा किस श्रोता अथवा दर्शक वर्ग के लिए लिख रहे हैं, उसके प्रति सचेत रहें।

12.12 मुद्रण माध्यम

मुद्रित शब्द का मन पर स्थायी प्रभाव रहता है। समाचार पत्र जन–जन की आवाज बनता है साथ ही साहित्य सृजन का प्रेरक भी माना जाता है। मुद्रित माध्यमों का प्रयोग भारत में सर्वप्रथम 1550 में पुर्तगालियों द्वारा गोवा में धार्मिक सामग्री के प्रचार–प्रसार प्रारम्भ होता है। भारत में प्रेस की स्थापना सन 1956 में हुई थी। आज तो इलेक्ट्रानिक प्रिटिंग का प्रयोग होने लगा है। मुद्रित लेखन

के लिये आवश्यक है कि सरल एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया जाये तथा ऐसा लेख हो जो लोगों को आकर्षित करे।

12.13 श्रवय संचार माध्यम

आधुनिक संचार माध्यमों में श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियों का बहुत महत्व है। रेडिया का माध्यम ध्वनि तरंगों से जुड़ा होता है, जिसमें समय और दूरी की कोई सीमा नहीं होती भारत में सन 1927 में मुम्बई में रेडियो कार्यक्रम का प्रसारण प्रारम्भ हुआ था। सस्ता साधन होने के साथ रेडियो की एक विशेषता यह है कि निरक्षर व्यक्ति भी इसके द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को सुन व समझ सकता है।

रेडियो का श्रोता प्रत्येक वर्ग, जाति, स्थान का व्यक्ति शिक्षित–निरक्षर, कोई भी हो सकता है। विभिन्न श्रोताओं को ध्यान में रखकर ही इस विधा का लेखन करना चाहिये। रेडियो के लिये लेखन करते समय श्रोताओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है तथा ऐसा कार्यक्रम बनाए जाने की आवश्यकता है जो श्रोताओं के लिए बोरिंग, भारीभरकम न हो, अपितु मनोरंजनात्मक भी हो। रेडिया के लिए लिखते हुए वर्णन एवं विवरण दोनो का होना आवश्यक है।

रेडियो प्रसारण को दुबारा नहीं सुना जा सकता अतः जो भी लिखा जाये, उसका मन्तव्य पूरी तरह से स्पष्ट होना चाहिये। रेडियो के लिए लेखन करते समय निम्नांकित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिये :–

- वाक्य साधारण हो, लम्बे व घुमावदार या Complex न हों।
- कृतवाच्य में लिखा जाए ताकि बात सीधे श्रोता से सम्पर्क करे।
- युग्म व तत्सम शब्दावली से बचना चाहिए। ऐसे शब्द उच्चारण में भी कठिनाई ला सकते हैं। चुटीली व व्यंजनात्मक शैली का प्रयोग करें।
- संस्कृतनिष्ठ शब्दों की अपेक्षा स्थानीय बोलचाल के शब्दों को प्रयोग में लाएं।
- प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग श्रोता का हृदय स्पर्श करता है।
- सम्बोधन शब्दों की अपेक्षा लेखन को आत्मीय बनाता है अतः ऐसे ही सम्बोधन शब्दों का प्रयोग करें।

12.14 दृश्य–श्रव्य माध्यम के लिए लेखन

टेलीविजन अर्थात 'टेली' तथा 'विजन' जिसका अर्थ है – 'टेली' यानि 'दूर' 'विजन' अर्थात 'देखना दूर से जिसका दर्शन किया जा सके' वही 'दूरदर्शन या टेलीविजन कहलाता है। दर्शन या देखने की प्रक्रिया आँखों द्वारा सम्भव है। मूक सिनेमा का युग अब रहा नहीं। आज यह दृश्य–श्रव्य माध्यम हैं रेडियो केवल श्रव्य माध्यम है। दृश्यात्मक होने के कारण यह माध्यम अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि देखते हुए हमारा ध्यान इधर–उधर भटकता नहीं। दर्शक पर्दे पर चलते–फिरते सजीव पात्रों से सीधा सम्पर्क करता है। यहां तक कि पर्दे पर दिखता समाचार वाचक भी सीधा आपके कमरे में बैठा दिखता है, मानो आपसे रू–ब–रू हो।

दूरदर्शन का माध्यम अत्यन्‍ लोकप्रिय है। इसकी लोकसम्मत विधाएं हैं–धारावाहिक, नाटक, फैंटेसी कथाएं, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन–विचार चर्चा, साहित्यिक कार्यक्रम, समाचार, खेल समाचार, कृषि दर्शन, वृत्तचित्र आदि। दृश्य–श्रव्य इस माध्यम के लिए लेखन अत्यन्त चैलेजिंग है क्योंकि दृश्यात्मकता जो नहीं कह पाती उसे ही कम पंक्तियों में अभिव्यक्त करना होता है। लेखक को दृश्य के अनुसार पटकथा लिखने के अतिरिक्त सभी दिशा–निर्देश, मंच निर्देश व अन्य सूचनाएं भी देनी होंगी। दूरदर्शन के लिए लेखन करते हुए निम्नलिखित तथ्यों की जानकारी आवश्यक है :–

1. कार्यक्रम की समय–सीमा क्या है?
2. वह रंगीन है या श्वेत–श्याम है।
3. किस कार्यक्रम के लिए लिखना है–मनोरंजक, सूचनात्मक, साहित्यिक, ज्ञान–विज्ञान आदि।
4. दर्शक किस वर्ग का है अर्थात कार्यक्रम कहां दिखाया जाना है–विदेशों के लिए, ग्रामीण जन के लिए, किसानों के लिए, युवाओं व बच्चों के लिए अथवा महिलाओं के लिए आदि।
5. दूरदर्शन के लेखक को उसके उपकरणों की जानकारी भी होनी चाहिए।
6. पात्रों के क्रियाकलापों तथा भावों की अभिव्यक्ति की ओर भी ध्यान देना चाहिए।
7. दूरदर्शन के लिए लेखन का मुख्य गुण है– बिम्बधर्मिता अर्थात् बिम्बों और दृश्यों में हर स्थिति को ढालना।
8. टीमवर्क होने के कारण लेखक को अभिनेता, कैमरामैंन, निर्माता, निर्देशक, रूपसज्जाकार तथा पृष्ठभूमि सभी का ध्यान रखना होता है अतः इनका थोड़ा बहुत ज्ञान होना आवश्यक है।
9. दूरदर्शन के लिए लेखन करते हुए भाषा का तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस माध्यम में शब्दों के अतिरिक्त चेहरे ही नहीं बोलते, मौन भी, संगीत भी और पृष्ठभूमि भी बोलती है।

12.15 प्रेस

प्रेस एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा शासकीय, अर्द्धशासकीय स्वादत्त, सार्वजनिक तथा अन्य संस्थाओं से संबधित सूचनाए प्रेषित की जाती है । ये जानकारिया प्रेस रिलिज, फीचर, लेख, संपादक के नाम पत्र तथा विज्ञापन आदि के रूप में होती है । प्रेस एक ऐसा यंत्र है, जिसके द्वारा किसी चीज को दबाया या कसा जाता है । परन्तु अंग्रेजी में प्रेस शब्द से तात्पर्य समाचार पत्र से लिया जाता है । लोकतंत्र में समाचार पत्रों का महत्वपूर्ण स्थान होता है । समाचार पत्रों के द्वारा लोगों को देश–विदेश की गतिविधियों से परिचित कराया जाता है । प्रेस को चौथा स्तम्भ माना जाता है, जो कि जनमत को प्रकट करने का सर्वोत्कृष्ट श्रोत है । प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में जहां बहुमत दल सभी अधिकारों को अपने पास रखता है, वहाँ पर प्रेस की स्वतंत्रता आवश्यक हो जाती है ।

संचार के लिए प्रेषित यूनेस्को प्रतिवेदन में कहा गया है कि समाचार पत्र का महत्व सत्ता के समकक्ष है, समाचार पत्रोंने जनमत को हमेशा प्रभावित किया है । समाचार पत्रों के संवाददाता समाचार की तलाश में विभिन्न संस्थाओं में आते है । समाचार प्राप्त करने का सबसे अच्छा श्रोत किसी भी संस्था का जनसंपर्क अधिकारी होता है। संपर्क अधिकारी के साथ मधुर एवम सौहार्द संबन्ध के द्वारा संवाददाता को सही सूचना प्राप्त होती है । यदि दोनों के बीच संबध सौहार्दपूर्ण नहीं है, तो प्रतिकूल सूचना मिलने की संभावना बनी रहती है । प्रेस की स्वतन्त्रता एक विकसित समाज में स्वभाविक आवश्यक समझी जाती है । यही कारण है, कि किसी भी देश भी स्वतन्त्रता और उस देश की प्रगतिशीलता को नापने के लिए समाचार पत्रों को एक अचूक एवं अच्छा मानदण्ड माना जाता है ।

12.16 विशेष समारोह का खाका

एक विशेष समारोह इवेंट का आयोजन एक निश्चित समय पर किसी विशेष अवसर अथवा महत्वपूर्ण अवसर पर किया जाता है। विशेष समारोह का आयोजन निश्चित किये गये उद्देश्य क्रमशः नौकरी हेतु, पुस्तक विमोचन हेतु, पुरस्कार विवरण हेतु इत्यादि, की पूर्ति हेतु किया जाता है चूंकि विशेष समारोह अन्य कार्यक्रमों से अलग होता है अतः इसकी उपयोगिता ज्यादा बढ़ जाती है। निर्धारित तिथि पर आयोजित होने वाले समारोह के लिये आवश्यक है कि आयोजन को निर्धारित

समय से पूर्व समारोह स्थल पर पहुंच जाना चाहिए । समय से पूर्व समारोह में यदि वक्ता पहुंच जाते है तो उन्हें कार्य–विवरण के विषय में संक्षिप्त रूप से बता देना चाहिए तथा पूछने योग्य सम्भावित प्रश्न को पहले से लिख लेना चाहिए। निश्चित समय पर समारोह के प्रारम्भ होने पर कार्य विविरण पर संक्षिप्त रूप से विचार'–विमर्श करना चाहिये ह। यह भी आवश्यक है कि आयोजन समारोह में शामिल होने वाले सभी प्रतिभागियों का परिचय करा दें। प्रश्नोत्तर के पश्चात अधिकारिक रूप से प्रेस सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा की जानी चाहिए। प्रेस सम्मेलन के पश्चात् प्रसे विज्ञप्ति उन लोगों को जारी करनी चाहिये जिन्होंने प्रेस सम्मेलन न में भाग नहीं लिया है। एक सफल विशेष समारोह के लिए आवश्यक है कि निम्नलिखित दिशा–निर्देशों का पालन किया जाये–

- सफलता के लिए रणनीतियों को विकसित करना,
- विशेष समारोह के उद्देश्य को स्पष्ट करना,
- समय का विशेष ध्यान रखना,
- सही एवं उचित तरीके से समारोह का प्रचार–प्रसार एवं मूल्यांकन करना,
- चेक लिस्ट का निर्माण करना,
- बजट का निर्धारण करना,
- समानान्तर कई कार्य किये जाते है जिसके लिये आवश्यक यथा लोगों के बीच समन्वय, परिवहन तथा अन्य प्रकार की सुविधायें पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए,
- प्रचार–प्रसार की योजना का निर्माण करना, तथा
- समारोह का मूल्यांकन करना

12.17 वृत्तचित्र

दूरदर्शन की विभिन्न विधाओं में वृत्तचित्र एक महत्वपूर्ण विधा है । वृत्तचित्र अंग्रेजी शब्द डाक्यूमेन्ट्री का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका अर्थ है शिलालेख, विशिष्ट घटना या कार्य की जानकारी के लिये दिखया जाने वाला सिनेमा चित्र। डाक्यूमेन्ट्री तथा वृत्तचित्र में यदि समानता देखी जाये तो अलग प्रतीत होते है लेकिन गम्भीरता से विश्लेषण करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि दोनों में एक तत्व समान है वह है प्रमाण और सत्यता। अतः यह कहा जा सकता है कि वृत्तचित्र वह विधा है जो कि किसी सत्य घटना, तथ्य ,सूचना, व्यक्तित्व और परिस्थिति पर आधारित होती है। तथा जिसका उद्देश्य मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा और सूचना देने अधिक होता है। जब यह कार्य दृश्यों द्वारा किया जाय तो यह प्रक्रिया फिल्म अथवा टेलीविजन डाक्यूमेन्ट्री कहलाती है। जब यह कार्य ध्वनि माध्यम द्वारा किया जाये तो रेडियो डाक्यूमेन्ट्री कहलाती है।

डाक्यूमेन्ट्री में सत्यता का पहलू अनिवार्य होता है अतः आवश्यक है कि सम्बन्धित विषय, अवधि, तथ्यों का संकलन सावधानी पूर्वक किया जाये। तथ्य एकत्रित करने के उपरान्त उन्हें एक आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए है।

प्रचलन एवं तकनीकी के आधार पर वृत्तचित्र के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते है। वृत्तचित्र के कुछ प्रकार निम्मलिखित है :–

1. सूचनात्मक वृत्तचित्र
2. कहानी वृत्तचित्र
3. न्यूज वृत्तचित्र
4. यात्रा वृन्तान्त वृत्तचित्र
5. सामाजिक वृत्तचित्र

6. शोधपरक वृत्तचित्र
7. ऐतिहासिक वृत्तचित्र

12.18 प्रेस सम्मेलन

प्रेस सम्मेलन या प्रेस कान्फेंस जनसम्पर्क का सर्वोत्तम माध्यम है । इसके द्वारा समाचार पत्र के प्रतिनिधियों से सीधे वार्तालाप और सम्प्रेषण का अवसर उपलब्ध होता है । प्रत्युत्तर में जनता के समक्ष संस्था या संस्थान का सही रूप उनक माध्यम (समाचार पत्र, मुद्रित माध्यम) में प्रतिबिम्ब होता है । प्रेस वार्ता तभी आयोजित की जाती है जब शासकीय कार्यालय या संस्थान में कोई विशेष प्रयोजन हो या कोई विशेष कारण हो । लेकिन जब तक कोई विशेष कार्य न हो तब प्रेस वार्ता का आयोजन नहीं किया जाना चाहिए । शासन या संस्थान द्वारा कोई नई नीति, जनता की भलाई के लिए तथा कोई घोषणा आदि कार्यों की घोषणा की जाती हो तो उसके दोनों पक्षों को लेकर प्रेसवार्ता का आयोजन किया जा सकता है । ऐसे समय जनसम्पर्ककर्ता को अपने संस्थान की पूरी जानकारियाँ आँकड़े, सूचनाएँ आदि उसके मस्तिष्क में या उसके पास होनी चाहिए । तभी वह समय पर सही प्रत्युत्तर दे पाएगा । छोटी–छोटी बातों पर या मामूली बातों पर प्रेसवार्ता का आयोजन उपयुक्त नहीं । इसका आयोजन तभी किया जाए जब कोई विशेष समाचार या सूचना दी जाती है । इसके आयोजन की आवश्यकता की जानकारी भी संपादकों, पत्रकारों या संवाददाताओं बता देना चाहिए और यह भी देना उपयुक्त होगा कि जनता के लिए यह जानकारी क्यों आवश्यक है?

सार्वजनिक या निजी संस्थाओं द्वारा आयोजित की गई प्रेसवार्ता में उन्ही पत्रकारों को आमंत्रित करना चाहिए जो उनकी संस्था विशेष में रूचि रखते हैं । इस कार्य के लिए इस प्रकार के संवाददाताओं की स्तरीय सूची तैयार कर रखनी चाहिए । लेकिन इस कार्य में पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए कि संवाददाता या पत्रकार का नाम ठीक और सही लिखा गया हो, अन्यथा समाचार पत्रों के प्रमुख संपादक या प्रमुख रिर्पोटर के नाम से आमंत्रण भेज देना चाहिए जो किसी जिम्मेदार व्यक्ति को प्रेसवार्ता के लिए नियुक्त कर सकें । ऐसे आयोजन में यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि कार्यालय के कम–से–कम व्यक्ति रहें और जनसम्पर्ककर्ता स्वयं कार्यालय या संस्थान के प्रमुख व्यक्ति के साथ उपस्थित हों ।

प्रेसवार्ता के लिए निमंत्रण सूचना पूर्व से ही भेज देना चाहिए ताकि पत्रकार पूर्व से ही अपना कार्यक्रम बनाते समय संस्थान की वार्ता को भी अपने कार्य में सम्मिलित कर लें । निमंत्रण में समय, तिथि और वार्ता के स्थान का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए । साथ ही उसमें प्रेसवार्ता देने वाले व्यक्ति का नाम, और स्थिति भी होना चाहिए है । प्रेसवार्ता का समय प्रायः 11 बजे के आसपास या दोपहर तीन बजे के पूर्व हो तो उपयुक्त होता है क्योंकि इससे डाक संस्करण के समाचार पत्रों में समाचार जा सकते हैं । सायंकालीन या रात्रि समय में भी प्रेसवार्ता को समचार पत्रों में उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिल पाता है । ऐसी स्थिति में पत्रकारों तथा संवाददाताओं से यह आग्रह करना चाहिए कि वे अगले दिन वार्ता के समाचारों को प्रकाशित करें । ज्यादातर आगन्तुक इसके लिए सहमति दे देते हैं । प्रेसवार्ता का समाचार, समाचार पत्रों में आए लेकिन उसका प्रस्तुतिकरण उपयुक्त हो तो और भी अच्छा होता है । अतः ऐसी व्यवस्था कर लेना चाहिए कि छायाचित्र भी पत्रकारों को तुरन्त उपलब्ध कराया जा सके ।

12.19 प्रेस विज्ञप्ति

प्रेस विज्ञप्ति तैयार करना जनसम्पर्क शाखा का प्रमुख कार्य होता है, तथा संस्थान या संगठन से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्र करना, उन्हें तैयार करना और उनमें यदि कोई कमी है तो उस जानकारी को जोड़कर सम्पूर्ण प्रकाशन योग्य सामग्री बनाना । इसके बाद में ये जानकारियाँ प्रेस

प्रतिनिधियों को या रिपोटर्स को अथवा प्रेस को प्रकाशन के लिए भेजी जाती हैं । जनसम्पर्क अधिकारी का यह कार्य होता है कि संगठन या संस्थान की गतिविधियों की नियमित और सिलसिलेवार प्रकाशन सामग्री प्रेस विज्ञप्ति आदि प्रेस को प्रकाशन के लिए उपलब्ध कराता रहे । वर्तमान समय में मीडिया एक जटिल रूप लेता जा रहा है । जो संस्था, संगठन या प्रोडक्ट मीडिया में है उसी का अस्तित्व हैं लोगों को उसी की जानकारी रहती हैं । लम्बे अन्तराल के बाद मीडिया या समाचार पत्र में आना अर्थात अपनी स्वयं की पहचान खो देना, और उस पहचान को फिर से स्थापित करना एक कठिन ही नहीं दुष्कर कार्य भी है । अतः जनसम्पर्क अधिकारी को यह बात ध्यान में रखना चाहिए ।

प्रेस नोट तैयार करते समय कुछ बातें ध्यान में रखना आवश्यक है । प्रेस विज्ञप्ति की भाषा सरल, बोधगम्य हो जिसे साधारण जनता आसानी से समझ सके। वाक्य छोटे–छोटे और सारगर्भित हों। यदि इसमें तकनीकी शब्द है तो उन्हें भी सरल रूप दें। विज्ञिप्त सारगर्भित हो उसे अनावश्यक विस्तार न दें। छोटी विज्ञप्तियों को आकाशवाणी और समाचार पत्रों में आसानी से स्थान मिल जाता है । इसका स्वर सूचनात्मक होना चाहिए ।

दूसरी महत्वपूर्ण बात सामयिकता की है । जो भी प्रेस विज्ञप्ति जारी की जाए वह समयानुकूल हो, पुरानी जानकारियों का समावेश इसमें ने हो। उसमें सूचना है जिसे निश्चित समय के पश्चात जारी होना है तो निर्देश में स्पष्ट रूप से ''इम्बारगो'' कर देना चाहिए।

प्रेस नोट आवश्यक और तुरन्त विषयों से सम्बन्धित है तो उस पर तुरन्त (इमीडिएट) अंकित कर देना चाहिए । इससे प्रेस में प्रकाशन के समय इस प्रकार के प्रेस नोट को वरीयता प्रदान की जाती है । यदि प्रेस नोट के छायाचित्र है तो उसके पीछे टाइप कराकर केपसन्श चिपकाकर प्रेरित कर देना चाहिए ।

12..20 अभ्यास प्रश्न

1. उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज संचार से आप क्या समझते हैं?
2. जन संचार के माध्यमों का उल्लेख कीजिए।
3. मुद्रण माध्यम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. प्रेस पर प्रकाश डालिए।
5. प्रेस सम्मेलन को समझाइये।
6. प्रेस विज्ञप्ति को स्पष्ट कीजिए।

12..21 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज संचार को समझाया गया है, इसी इकाई में संचार के आधुनिक एवं परम्परागत माध्यमों का उल्लेख करते हुए उसके विभिन्न साधनों को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में प्रेस, प्रेस विज्ञप्ति, प्रेस सम्मेलन इत्यादि को भी इंगित किया गया है।

12.22 पारिभाषिक शब्दावली

उर्ध्वाधर संचार Vertical Communication क्षैतिज संचार Horizintal Communication
माध्यम परिदृश्य Media Scene परम्परागत माध्यम Tradditional Medium
मुद्रण Print श्रव्य Audio
दृश्य Visual दृश्य–श्रव्य Audio &Visual
प्रभावी लेखन Effective Writting मुद्रण माध्यम Printing Medium
प्रेस Press विशेष समारोह का खाका Preparation of Event

वृत्तचित्र Documentary प्रेस सम्मेलन Press Conference
प्रेस विज्ञप्ति Press Note ऊपर की ओर संचार Upward Communication
नीचे की ओर संचार Downward Communication

संदर्भ ग्रन्थ सूची

9. लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
10. प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
11. मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
12. मीडिया लेखन, आर.सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

इकाई– 13

संचार के अवरोधक या बाधाएं

Barriers of Communication and Crises Management

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 परिचय
13.2 संगठनात्मक संरचना के अवरोध
13.3 व्यक्तिगत अथवा मनोसामाजिक अवरोध
13.4 भौतिक अवरोध
13.5 तकनीकी अवरोध
13.6 भाषायी अथवा शब्दार्थ अवरोध
13.7 संचार को सुनने व समझने की निपुणता में अवरोध
13.8 संचार के अवरोधों को दूर करने के ढंग
13.9 संचार को प्रभावी बनाने के मापन
13.10 निर्मित संचार को अधिक प्रभावी बनाना
13.11 संकट में मीडिया की भूमिका
13.12 जनसम्पर्क अभियान में संचार प्रबन्धन
13.13 संकट रोकथाम में संचार प्रबन्धन
13.14 कठपुतली
13.15 लोकगीत
13.16 लोक साहित्य
13.17 नुक्कड नाटक
13.18 पोस्टर
13.19 लोगो

13.20 सार संक्षेप
13.21 अभ्यास प्रश्न
13.22 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संचार के अवरोधों को जान सकेंगे।
- संचार के अवरोधों को दूर करने के उपाय को समझ सकेंगे।
- संचार को सुनने एवं समझने की निपुणता को जान सकेंगे।
- संचार को कैसे प्रभावी बनाया जायेगा, को समझ सकेंगे।
- संचार के मापन को लिख सकेंगे।
- संचार प्रबन्धन को समझ सकेंगे।
- मीडिया प्रबन्धन को जान सकेंगे।
- कठपुतली, पोस्टर, लोगो, लोक साहित्य, लोक संगीत आदि को जान सकेंगे।

13.1 परिचय

एक अप्रभावी संचार जीवन के प्रत्येक स्तर पर विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उत्पन्न करता है। जबकि दूसरी ओर संचार की कुशल व्यवस्था सभी प्रकार की समस्याओं को समाधान कर सकती है। इसके द्वारा किसी संगठन को बनया अथवा नष्ट किया जा सकता है। इसके द्वारा किसी संगठन के कर्मचारियों को समीप लाया जा सकता है अथवा दूर। संचार किसी भी संगठन की प्रबन्धकीय प्रक्रिया को सरलता से गतिमान करता है। संचार के द्वारा प्रेषित संदेश किसी संगठन में प्रभावी रूप से हस्तांतरित अथवा प्राप्त नहीं होता है तो कई प्रकार की रूकावटे, बाधायें, अवरोधक, समस्यायें उत्पन्न होती है जो प्रभावी संचार व्यवस्था को प्रभावित करती है, जिसे संचार–अवरोध के रूप में जाना जा सकता है। टेरी ने शब्दों को दो भागों में विभाजित करते हुए बताया है जो कि विस्तारमूलक और अभिप्रायमूलक हो सकते है। विस्तारक मूलक शब्द जैसे व्यक्ति, स्थान तथ सामग्री, को सरलता से समझा जा सकता है। इसके विपरीत अभिप्रायमूलक शब्द किसी ऐसी वस्तु को प्रकट नहीं करते है जिसकी ओर संकेत किया जा सके। यथा एक ही भाषा के शब्दों, वाक्यांशों तथा कहावतों के विभिन्न अर्थ होते है। भारत जैसे देश में शासकीय मान्यता प्राप्त अनेक भाषाएं तथा अनेक बोलियां है यह समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। जो स्वयं ंसचार में एक अवरोध है।

पिफ्नर ने सैद्धान्तिक बाधाओं के विषय को स्पष्ट किया है। पृष्ठभूमि, शिक्षा तथा प्रत्याशा में अन्तर होने से सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों में अन्तर आ जाता है। सम्भवतः प्रभावशाली संचार में ये सबसे बड़ी बाधाएं जिसे दूर कर पाना कठिन कार्य है।

आधार तथा दूरी को कुछ विद्वानों ने संचार की बाधा माना है। संगठन जितना बड़ा होगा, कर्मचारियों की जितनी संख्या अधिक होगी संचार उतना ही कठिन होगा। दूरी की समस्या भी ऐसे अभिकरण के सम्बन्ध में पैदा होती है जिसे संगठन की क्षेत्रीय शाखाएं दूर व्याप्त होती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है विभिन्न के अवरोध संचार में बाधा उत्पन्न करते है और लोगों के मध्य असंतोष तथा नसमझी उत्पन्न करते है। इसलिये संचारक के लिये आवश्यक हे कि वह जल्दी से जल्दी संचार की बाधाओं को दूर करने का प्रयास करें। संचार अवरोधों को मुख्यतः निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है : –

- संगठनात्मक संरचना के कारण अवरोध
- व्यक्तिगत अथवा मनोसामाजिक अवरोध
- भौतिक अवरोध
- तकनीक अवरोध
- भाषायी अथवा शब्दार्थ अवरोध
- संचार को सुनने व समझने की निपुणता में अवरोध

13.2 संगठनात्मक संरचना के कारण अवरोध

किसी बड़े संगठन में कई पदसोपान और स्तर होते है जिसके कारण प्रेषित सूचना के प्रारूप में परिवर्तन हो सकता है। यदि किसी सूचना को उच्च स्तर से नीचे को प्रेषित किया जाता है तो यह सम्भावना बनी रहती है कि प्रत्येक स्तर पर स्थिति व्यक्ति अपनी रूचि व पसंद से कोई दूसरा रूप देने का प्रयास करे। वास्तव में, उच्च तथा निम्न स्तर के मध्य सूचना का स्वरूप बदल जाता है तथा उसे नया रंग देने की कोशिश की जाती है। उच्च स्तर बैठा अधिकारी यह जानने का प्रयास नहीं करता है कि प्रचलनात्मक स्तर पर वास्तव में कौन सी समस्याये है, लोग क्या महसूस करते है, उनके विचार क्या है उनका दृष्टिकोण कैसा है। प्रभावी संचार के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर सूचना को उचित रूप में प्रेषित किया जाये।

13.3 व्यक्तिगत अथवा मनोसामाजिक अवरोध

सामान्यतः यह देखा जाता है कि व्यक्तिगत अथवा मनो–सामाजिक कारणों कारण संचार को प्रभावित करते है। सामाजिक मूल्य, हीन भावना, पूर्वाग्रह, संवेग, मनोवृत्ति इत्यादि संचार की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। एक व्यक्ति के प्रेरक संवेग, भावना मनोवृत्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होते है। सन्देश को कूट संकेत देना अथवा उसका अर्थ निरूपण भी भावनाओं, विचारों से प्रेरित होते हैं इसके अतिरिक्त आत्मविश्वास की कमी, भय तनाव, इत्यादि स्वतंन्त्र विचारों में बाधा उत्पन्न करते है।

व्यक्ति की स्थिति, अहम तथा प्रस्थिति भी संचार को प्रभावित करती है। यह पाया जाता है कि संचार की आवृत्ति निम्न स्तर की अपेक्षा उच्च स्तर पर कम होती है। जब कर्मचारी अपने वरिष्ठों के पास जाते हैं तो उनकी प्रस्थिति, अहम् तथा प्राधिकार संचार में बाधा उत्पन्न करते है।

13.4 भौतिक अवरोध

कभी–कभी यह भी देखा गया है कि पर्यावरणीय कारक संचार को प्रभावित करते है तथा भेजे एवं प्राप्त किये गये सन्देश की गुणवत्ता का कम करते है। दूरी भी संचार में बाधा उत्पन्न करती है। शोरगुल, खराब मौसम, इत्यादि भी संचार का प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

13.5 तकनीकी अवरोध

यह माना जाता है कि संचार में आने वाली सभी प्रकार की समस्यायें तकनीकी दोष के कारण उत्पन्न होती हे संचार में प्रयोग किये जाने वाले उपकरण यथा–टेलीफोन, इण्टरकॉम, पी. बी. एक्स. तथा अन्य संचार के माध्यमों में तकनीकी दोष उत्पन्न होने के कारण संचार की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

13.6 भाषायी अथवा शब्दार्थ अवरोध

शब्दार्थ, अर्थ का विज्ञान है। उस शब्द कोई अर्थ नहीं है जिसकी कोई उपयोगिता न हो। सूचक के विभिन्न अर्थ हो सकते है। सूचक को भाषा, चित्र अथवा क्रिया में वर्गीकृत किया जा सकता है।

भाषा या शब्द, संचार के मुख्य उपकरण है। भाषा या शब्द को न समझ पाना संचार में अवरोध उत्पन्न होता है। क्योंकि एक ही शब्द के कई अर्थ निकाले जा सकते है।

13.7 संचार को सुनने व समझने की निपुणता में अवरोध

प्रभावी संचार तथा गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि उसे उचित ढंग स प्रेषित किया जाये। निर्देशित किये गये सन्देश को यदि लोग सावधानी पूर्वक सुनते व समझते नहीं है तो संचार बाधित होता है। प्रभावी संचार के लिये आवश्यक है कि सन्देश उपयुक्त एवं पर्याप्त हो जिससे संचार के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

13.8 संचार के अवरोधों को दूर करने के ढंग

संचार की प्रक्रिया में संचारक द्वारा विभिन्न अवरोधों का सामना करना पड़ता है, यदि प्रेषक के द्वारा भेजे गए संदेश को प्राप्तकर्ता अर्थनिरूपित नहीं कर पाता है, तो संचार टूट जाता है, इसके लिए आवश्यक है, कि संचार को पूर्ण करने के लिए उसके अवरोधों को दूर किया जाए तथा प्रभावशाली संचार व्यवस्था की स्थापना की जाए संचार व्यवस्था में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए, निम्नलिखित ढंगों का प्रयोग किया जा सकता है, जिसे संचार को प्रभावी बनाया जा सकता है ।

1. **समझने के ढंगों में व्याप्त अन्तर को दूर करना**–संगठन को यह सुनिश्चत करना चाहिए की संचार व्यवस्था को तभी बेहतर बनाया जा सकता है, जब सही कार्य के लिए सही व्यक्ति का चयन है । साक्षात्कारकर्ता का यह उत्तरदायित्व है, कि वह यह सुनिश्चत करे कि उत्तरदाता को भाषा को लिखिने एवं समझने की योग्यता है। इसके लिए आवश्यक हे, कि एक ऐसी नीति का चयन किया जाए, जिसके द्वारा उचित प्रशिक्षण एवम आगमन कार्यक्रम के माध्यम से कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाए।
2. **सरल भाषा का प्रयोग** – संचार की बाधाओं को दूर करने के लिए सरल भाषा एक अनिवार्य शर्त है । संचार प्रक्रिया के दौरान सरल एवम स्पष्ट शब्दों एवम भ्रम उत्पन्न करने वाले शब्दों का प्रयोग नही किया जाना चाहिए।
3. **तत्परता से सुनना**– प्रभावी संचार के लिए आवश्यक है कि प्रेषित किए गए संदेश को सावधानी पूर्वक तथा एकाग्रचित होकर सुना जाए। सुनना एवम सुनवाई के बीच अन्तर होता है, सक्रियता के साथ सुनने से तात्पर्य है, कि प्राप्तकर्ता द्वारा जो भी संदेश सुना गया है, उसे उचित तरीके से समझा जाए। यदि किसी से द्वारा को प्रश्न पूछा जाता है, तथा उसका तात्पर्य प्राप्तकर्ता के द्वारा गलत समझा जाता है, तो प्रश्न का प्रतिउत्तर अर्थ विहीन हो सकता है। अतः सक्रियता के साथ सुनना संचार की बाधा को समाप्त कर सकता है ।
4. **स्पष्ट भावना** – संचार के दौरान के प्रेषक के लिए आवश्यक है कि वह शारीरिक भाषा का प्रभावी उपयोग करे। यदि संचार प्रक्रिया के दौरान प्राप्तिकर्ता के द्वारा प्रेषक की भावनाओं को नही समझा जाता है, तो संचार तंत्र टूट सकती है। यथा प्रेषक का मूड अच्छा नहीं है तो ऐसी स्थिति में प्राप्तकर्ता यह अर्थ लगा सकता है, कि प्रेषक द्वारा भेजा गया संदेश ठीक नहीं है ।
5. **सरल संगठनात्मक ढांचा** –संचार प्रक्रिया के लिए आवश्यक है किसी भी संगठन की संरचना जटिल ना हो, संगठन क अर्न्तगत पदानुक्रम स्तरों की इष्टमत संख्या होनी चाहिए, जिससे कि संगठन को नियंत्रित किया जा सके है । ऐसे संगठन जिसकी संचरना सरल होती है, उनमें संचार प्रभावी होता है ।
6. **अधिभार सूचना से बचना** – संचारक यह अच्छी तरह से जानता है कि अपने काम की प्राथमिकता कैसे दे। उसको चाहिए कि कार्य का अतिरिक्त भार ना ले। संचारक के लिए

आवश्यक है कि वह अपने अधिनस्थ के साथ गुणवत्ता युक्त समय व्यतीत करे और उनकी समस्याओं का समाधान प्रतिपुष्टि के द्वारा सक्रिया से करे ।

7. **रचनात्मक प्रतिपुष्टि**– संचारक के लिए आवश्यक है कि वह नकारात्मक प्रतिपुष्टि से बचे, सकरात्मक प्रतिक्रियो संचार को प्रभावी बना सकती है ।
8. **उचित माध्यम का चयन** –प्रेषक को संचार को उचित माध्यमों का चयन करना चाहिए। उचित माध्यम के द्वारा सरल भाषा में संदेश प्रेषित किया जाना चाहिए। मिंटिग अथवा आमने–सामने मौखिक संचार महत्वपूर्ण होता है। यदि लिखित रूप में प्रेषक के द्वारा संदेश भेजा जाता है तो संचार जटिल होता है । अनुस्मारक संचार के लिए लिखित संचार बेहतर होता है ।
9. **लोचशीलता** –किसी भी संगठन में प्रभावी संचार के लिए आवश्यक है कि प्रेषक यह सुनिश्चित करे कि सही समय पर लक्ष्य को पूरा करेंगे, यदि निश्चित लक्ष्य सही समय पर पूरा नही होते है तो लोचशीलता के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है ।

13.9 संचार को प्रभावी बनाने के मापन

संचार अत्यधिक संवेदनशील पहलू है, यह दो धुरी शस्त्र के समान है। जिसका सही उपयोग न होने पर उपयोग करने वाले को हानि हो सकती है। किसी संगठन में संचार की बाधाओं को दूर करने के लिये संचारक के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह उचित व सही नीति का पालन करें। संगठन में वह विश्वास का वातावरण उत्पन्न करें । एक प्रभावी संचार व्यवस्था के मुख्य ढंग निम्न है –

1. **संचार नेटवर्क को सुदृढ़ करना** :– संचार नेटवर्क को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि संचार की प्रक्रिया को सरल बनाया जाये। संचार माध्यमों निहित स्तरों को कम से कम रखा जाए। प्राधिकार का हस्तांतरण व विकेन्द्रीकरण किया जाये तथा आयोजित होने वाले सम्मेलनों, मीटिंग में कर्मचारियों की पूर्णसहभागिता हो तथा मुद्दों पर बहस हो ।
2. **द्वि–मार्गीय संचार पर बल देना**:– एक अच्छा द्वि–मार्गीय व्यवस्था पर आधारित होने चाहिये अर्थात उच्च से निम्न तथा नीचे से ऊपर की ओर संचार सरलता से होना चाहिए। संचार व्यवस्था में प्रतिपुष्टि व्यवस्था पर घ्यान देना चाहिए जिससे यह ज्ञात हो सकता है कि दिये गये निर्देश का पालन हुआ है अथवा नहीं।
3. **सहभागी दृष्टिकोण को प्रोत्साहन**:– संचार में सहभागी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये जिससे किसे जाने वाले कार्यो को व्यवस्थित किया जा सके। निर्णय की जाने वाली प्रक्रियाओं में अधीनस्थों को शामिल किया जाना चाहिए। एक अच्छा संचार पारस्परिक विश्वास, पूर्ण सहभागिता, सामूहिक सौरदेबाजी, सहयोग एवं दलभावना पर निर्भर करता है।
4. **संचार के उचित माध्यम का चयन**:– एक संचार तभी सफल हो सकता है जब सही माध्यम का चयन किया जाये। सही सन्देश सही समय सही व्यक्ति द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के संचार के लिये आवश्यक है कि सभी निर्देशों अथवा संदेशों को लिपिबद्ध करते हुए उसका स्थायी रिकार्ड हो।
5. **सुनने पर बल देना**:– बहुत से व्यक्ति बहुत अच्छे श्रोता होते है। सफल संचार सुनने वाले के इच्छा व रूचि पर निर्भर करता है। संचार करते समय हमेशा इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये कि जो भी सन्देश प्रेषित किया जा रहा है उसे सुनने वाला आसानी से समझ सके। इसलिये आवश्यक है कि भेजा गया संदेश सही, संक्षिप्त तथा अर्थपूर्ण हो।
6. **अपूर्ण मूल्यांकान से बचना** :– प्रायः यह देखा गया है कि बहुत से लोग प्राप्त संदेश को बगैर सुने व समझे अपना प्रति उत्तर देते है ऐसे तरीको से बचना चाहिए क्योंकि इस प्रकार संचार

अपने आप में अपूर्ण है। जोकि संचार में बाधा उत्पन्न करता है। आवश्यक है कि भेजा गया सन्देश प्राप्तिकर्ता द्वारा धैर्य एवं सावधानी पूर्वक सुना व समझा जायें।

7. **भाव भंगिमा तथा सुर पर महत्व** :–भाव भंगिमा तथा सुर को शारीरिक भाषा' के रूप में अमौखिक संचार के रूप मे जाना जा सकता है। व्यक्ति की अन्तरवैयक्तिक क्रिया के द्वारा उसकी शारीरिक भाषा के माध्यम से किये जाने वाले संचार को समझा जा सकता है। यह एक तकनीकी है जिससे सम्पूर्ण शरीर का अंग हाव–भाव के द्वारा संचार प्रेषित करता है। चेहरे की अभिव्यक्ति, हाथ का हिलना इत्यादि प्रभावी संचार में एक सूचक का कार्य करते है।
8. **संचार को अभिव्यक्त करना न कि प्रभावित करना**:– एक अच्छे संचार का आवश्यक नियम है कि हमेशा संचार की अभिव्यक्ति की जाये न कि उसे प्रभावित करने का प्रयास किया जाये। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण संचार, प्रेषक द्वारा अभिव्यक्त किये शब्दों, उसके विचारों तथा विषय वस्तु पर निर्भर करता है। यदि अभिव्यक्ति अच्छी है तो उसका प्रभाव अपने आप स्वयं आता है।
9. **संचार में अपनेपन की भावना विकास** :– एक अच्छे संचार के लिये आवश्यक है कि उसमें अपनापन हो। अपनेपन के अभाव में संचार प्रभावित होता है।

13.10 निर्मित संचार को अधिक प्रभावी बनाना

निर्मित संचार को और अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिये आवश्यक है कि निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया जाये –

1. उद्देश्य को जानना
2. विश्वसनीयता को बनाये रखना
3. जनसमूह के विषय में जानना
4. छोटे–छोटे रूप में लोगों को सूचना देना
5. स्पष्टता बनाये रखना
6. सोचना तथा शब्दों को संगठित करना
7. सही तथा उचित समय पर प्रसार करना
8. सही तथा पर्याप्त सूचना देना
9. सामंजस्य बनाये रखना
10. सतर्कता बनाये रखना
11. प्रतिपुष्टि करना

13.11 संकट में मीडिया की भूमिका

आज के युग में, संकट एक ऐसी अवधारणा है जो प्रत्येक संगठन में पाया जाता है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि संकट के अनेक प्रकार है जो संगठन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। संकट की स्थिति में मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। संकट का समाधान प्रभावशाली संचार के द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। जब किसी संगठन में संकट उत्पन्न होता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि मीडिया की भूमिका के द्वारा उसका समाधान किस प्रकार किया जाये। आज के समय, मीडिया संकट को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भमिका निभाता है। मीडिया का यह उत्तरदायित्व है कि जनता में जो अफवाह व्याप्त है उसे कैसे दूर करे तथा लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाये।

संकट को एक ऐसी घटना के रूप में परिभषित किया जा सकता है जहाँ व्यवसाय की छवि खतरे में होती है और की जाने वाली गतिविधियों में जोखिम की सम्भावना होती है। अध्ययन के आधार पर संकट को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः–

- प्रचलनात्मक संकट
- कपटपूर्ण क्रिया द्वारा उत्पन्न संकट
- प्राकृतिक आपदा द्वारा उत्पन्न संकट
- प्रसार समस्या द्वारा उत्पन्न संकट
- वैधानिक संकट

संकट के समय मीडिया की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह लोगों को सूचित करे कि संकट की स्थिति कैसे उत्पन्न हुई है। संकट की समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि संकट की स्थिति व परिस्थिति को देखते हुए उचित माध्यम द्वारा एक उपयुक्त मीडिया योजना का निर्माण किया जाये। संकट अथवा आकस्मिकता के समय एक प्रबन्धक के पास विविध प्रकार मीडिया उपकरण उपलब्ध होते हैं। इन विविध उपकरणों में से उत्तम उपकरण अथवा माध्यम का चयन करते हुए जनसामान्य को यथास्थिति से अवगत कराया जाये। इसके लिए रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार पत्र महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित कर सकते हैं। संकट की स्थिति में यह भी आवश्यक है कि सम्बन्धित कहानी में जीवन्तता बनाये रखे जिससे कि पत्रकार सही समय पर सही सूचना प्रेषित कर सके। कहानी समाप्त हो जाने के पश्चात् यह आवश्यक है कि मीडिया के साथ अच्छे सम्बन्ध विकसित किये जाये। संकट की स्थिति में प्रबन्धक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह मीडिया की भूमिका के योगदान को कैसे उपयोग करे। इसके लिए जरूरी है कि–

- पूर्व में ही संकट के लिए योजना बनायें,
- संचार के उद्देश्यों को स्पष्ट करें,
- वक्ता का निर्धारण करे तथा उसकी कुशलता का पूर्व में ही परीक्षण कर लें,
- संचार के लिए उत्तम माध्यम का चयन,
- सन्देश का प्रमुख बिन्दु क्या होगा,
- तथ्यों से अवगत रहे तथा उसके प्रभाव का ज्ञान हो,
- मीडिया के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध को विकसित करे, तथा
- व्यवसायिक सहायता के लिए तैयार रहे।

13.12 जनसम्पर्क अभियान में संचार प्रबन्धन

जनसम्पर्क वह आधुनिक मानवीय विज्ञान है, जिसके द्वारा कुछ तकनीकों, और सम्प्रेषण के माध्यम से जन तक पहुँचा जा सकता है। विभिन्न विद्वानों का मानना है कि जनसम्पर्क जनता से सम्बन्ध स्थापित करने की जीवंत कला है। जन से तात्पर्य जनता तथा सम्पर्क से तात्पर्य है आदान–प्रदान। कटलिप ने जनसम्पर्क के तीन अर्थ बतायें हैं– किसी संगठन के लोग जिसके द्वारा संगठन बना हैं उनसे सम्पर्क तथा उपकरण, जिसके द्वारा अपने पक्ष से सम्पर्क बनाया गया है, सम्पर्क की वह गुणवत्ता या प्रतिष्ठा।

इस प्रकार जन–सम्पर्क अभियान के माध्यम से संगठन अथवा संस्थायें अपने कार्यों की गतिविधियों की जानकारी जनता तक पहुँचाते है तथा इसके द्वारा अपने पास में जनमत तैयार करते हैं। जनसम्पर्क में सत्यता का होना परम आवश्यक है, यह जनसम्पर्क की प्रमुख विशेषता है। जनसम्पर्क एक दर्पण की भाँति होता है जो यह स्पष्ट करता है कि संगठन की छवि जनता में कैसी है।

जनसम्पर्क, जनसंचार का एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा संगठन योजनाबद्ध तथा सतत् प्रयास द्वारा जनता से अपने पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर जमानत की स्थापना हेतु सुव्यवस्थित एवं प्रभावशाली प्रयास करते है। अतः कह सकते हैं कि जनसम्पर्क एक द्विपक्षीय व्यवस्था है।

रौलमैन, ए.आर. ने जनसम्पर्क को द्विपक्षीय संचार माना है जिसमें सहमति का आधार सत्य, ज्ञान एवं पूर्ण सूचनायें होती है जिनसे तनाव कम और आपसी सौहार्द्र अधिक होता हैं।

जनसम्पर्क मूलतः वैज्ञानिक तत्वों पर आधारित व्यवस्था है। जनसम्पर्क अभियान के चार मूल तत्व क्रमशः द्विपक्षीय सम्प्रेषण, सुदृढ़ नीतियाँ, दर्शन की अभिव्यक्ति तथा प्रबंधकीय सामाजिक दर्शन एक साथ मिलकर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

जनसम्पर्क का मुख्य तत्व संचार होता है जो जनता तथा संगठन को घनिष्ठ रूप से जोड़े रखता है। संगठन की नीतियों को जनता तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम जनसम्पर्क अभियान ही है, जो कि उचित एवं सही संचार प्रबन्धन पर निर्भर करता है। किसी भी संस्था में उचित संचार प्रबन्धन न होने पर जनसम्पर्क अभियान में रूकावटें उत्पन्न होती हैं। संचार प्रबन्धन एक व्यवस्थित योजना है जिसमें संचार के विभिन्न माध्यमों के द्वारा जनसम्पर्क अभियान से प्रेषित किये सन्देश को जनता तक पहुँचाना, उसका अनुश्रवण एवं पुनरावलोकन किया जाता है। जनसम्पर्क अभियान में संचार प्रबन्धन की विभिन्न विधियों, संचार की नई तकनीकियों, नेटवर्क इत्यादि को सम्मिलित करते हुए जनमत को अपने पक्ष में करने की चेष्टा की जाती है। संचार प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य संचार की रणनीति को विकसित करना, आन्तरिक एवं बाह्य संचार की दिशा–निर्देश की रूपरेखा तैयार करना तथा सूचना प्रवाह का प्रबन्धन करना है जिससे जनसम्पर्क अभियान सफल हो सकता है।

जनसम्पर्क का कार्यक्षेत्र जनता के बीच होता है जिसे दो प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है– बाह्य कार्यक्षेत्र जो कि संगठन के प्रचार–प्रसार, विज्ञापन इत्यादि तथा आन्तरिक कार्यक्षेत्र जो कि संगठन के अंदर समन्वय सम्पर्क इत्यादि से सम्बन्धित है। संचार के अनेक माध्यम है। जनता तक कौन सा माध्यम आसानी से पहुँचने योग्य है इसका सही चयन जनसम्पर्क कर्ता ही करता है। जनसम्पर्क अभियान के लिए आवश्यक है कि

- जनता को किस प्रकार की सूचना प्रदान की जाये तथा सूचना प्रवाह कैसा हो,
- लोग सूचना में क्या चाहते हैं
- सूचना का प्रवाह कब और कैसे किया जायेगा,
- सूचना प्रदान करने का प्रारूप कैसा होगा, तथा
- सूचना प्रेषित करने के लिए कौन उत्तरदायी होगी तथा किसे सूचना प्रदान की जाये।

जनसम्पर्क अभियान वस्तुतः संचार का ही एक प्रारूप है जिसमें तथ्यों, विचारों तथा दृष्टिकोणों को लोगों के साथ विनिमय किया जाता है। जनसम्पर्क अभियान में संचार के विविध माध्यमों का

प्रयोग करके विचारों, नीतियों, योजनाओं को जनता तक प्रेषित करके तथा जनता की प्रतिक्रिया द्वारा पारस्परिक समझ उत्पन्न की जाती है।

जनसम्पर्क अभियान को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि संचार प्रबन्धन करके उद्देश्यों की प्राप्ति की जाये। उसके लिए जनसम्पर्ककर्ता को चाहिये कि वह अभियान की सूचना पूर्व में ही प्रदान करें, सूचना पर्याप्त दे तथा प्रेषित की गयी सूचना उपयुक्त हो। जनसम्पर्क कर्ता के लिए यह भी आवश्यक है कि वह सूचना प्राप्तिकर्ता की पहचान करें, संचार की योजना का निर्माण करें, सूचना का सही वितरण करे, सूचना प्राप्तकर्ता की प्रत्याशाओं को समझने का प्रयास करे तथा उसकी प्रतिपुष्टि प्राप्त करे।

वर्तमान समय में संचार प्रबन्धन तथा जनसम्पर्क अभियान एक दूसर के पूरक है। विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाये तो जनसम्पर्क साध्य है जो संचार साधन।

13.13 संकट रोकथाम में संचार प्रबन्धन

संकट रोकथाम या संकट प्रबन्धन एक विधा है जो किसी संगठन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को दूर करने की योजना है। बहुत से संगठन संकट की रोकथाम करने के लिए संकट प्रबन्धन योजना एवं दल को विकसित करते है जो संकट के समय सहायता प्रदान करते है। एक प्रबन्धक को हमेशा इस बात का ध्यान रखना चाहिये के संकट किस प्रकार से व्यवसाय को प्रभावित कर सकता है तथा उसका वास्तविक परिणाम क्या होगा। इसके लिए प्रबन्धक को चाहिये कि वह पूर्व में ही संकट की स्थिति का आंकलन कर ले और समय पर उसकी रोकथाम कर सके।

प्रभावशाली संकट की रोकथाम के लिए आवश्यक है कि संचार व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाये। संकट की रोकथाम के लिए संचार प्रबन्धन का तीन स्तरों पर उपयोग किया जा सकता है–

1. संकट पूर्व स्तर पर
2. संकट के स्तर पर
3. संकट पश्चात् स्तर पर

संकट–पूर्व स्तर मुख्य रूप से रोकथाम के स्तर को स्पष्ट करती है जिसमें संचार माध्यमों से संकट की रोकथाम की जा सकती है। संकट उत्पन्न होने की स्थिति में वास्तविक योजना होनी चाहिये तथा संकट पश्चात् स्थिति में यह देखना चाहिये कि संकट की स्थिति पुनः न उत्पन्न हो और उससे सबक लेते हुए पूर्व रोकथाम की रणनीति बना ली जाये।

संकट की स्थिति में संचार माध्यमों यथा रेडियों, टेलीविजन एवं समाचार पत्रों का प्रयोग किया जाना चाहिये। संकट की रोकथाम के लिए पारम्परिक एवं आधुनिक जनसंचार माध्यमों का उपयोग किया जाना चाहिये। आधुनिक जनसंचार माध्यमों की अधिक उपयोगिता है। आज के समय, संकट की पूर्व रोकथाम के लिए इण्टरनेट पर वेबसाइट का निर्माण कर लेना चाहिये और जिसके माध्यम से जनसामान्य को संकट की स्थिति से अवगत करना चाहिये। उसके अतिरिक्त प्रभावित लोगों को सही समय पर सूचना प्रदान कर देनी चाहिए। एक प्रबन्धक संकट की स्थिति का सही आंकलन करते हुए सही तथ्यों को जनसम्पर्क के द्वारा जनसामान्य तक पहुँचायें, जनसंचार के सही माध्यम का चयन करें, सूचना का सही प्रकार एवं वितरण करें, संचार उद्देश्य को निरूपित करने के साथ संचार के लक्ष्य का निर्धारण करे तथा संकट के कारण खराब हुई छवि को सुधारने का प्रयास करें।

13.14 कठपुतली

लोक माध्यम का एक सशक्त माध्यम कठपुतली मनोरंजन एवं शिक्षा का एक लोकप्रिय माध्यम है । इस कला में सृजन, मंचन, संगीत तीनों का ही अनोखा सम्मिश्रण देखने को मिलता है । कठपुतली के मंचन से दर्शक का सहज ही तदात्म्य स्थापित हो जाता है । कथानक पात्रों से दर्शक का अनोखा भावात्मक सम्बन्ध निर्मित हो जाता है । कठपुतलियों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है, लेकिन इनके माध्यम से दिया गया संदेश अधिक प्रभावकारी सिद्ध होता है । इनकी भूमिकाओं का उल्लेख करते हुए जेम्स एस. मूर्ति लिखते हैं– कठपुतलियों को वास्तविक जीवन पात्रों की तुलना में संगठित करना सरल है । इसमें कम से कम लोगों की आवश्यकता पड़ती कठपुतलियों का हस्तकौशल एक आसानी से हासिल होने वाली कला है । यदि आवश्यक हुआ तो भूमिकाओं का पाठ स्थानीय लोगों द्वारा भी किया जा सकता है । कठपुतलियों एवं उनके लिए कथानकों की योजना सभी कलाओं एवं विविध प्रकार के विषयों के लिए की जा सकती है । उनका प्रयोग धार्मिक विषयों के लिए भी किया जा सकता है । कठपुतलियों विरूप चित्रण एवं अतिश्योक्ति पूर्ण प्रस्तुति के लिए विशेष रूप से प्रभावशाली होती है ।

कठपुतलियां अपने अभिनयों से काफी प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषण करती हैं, उन्हें बहुत कम प्रयास से किसी भाषा के अनुरूप ढाला जा सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार कल्याण कार्यक्रम, अशिक्षा, अस्वास्थ्य की रोकथाम में ये प्रभावशाली सिद्ध हो सकती हैं ।

वर्तमान में कठपुतली विद्या पूर्णतः विज्ञापन के स्वरूप में आ गई है । अब इस माध्यम का प्रयोग नशबंदी परिवार कल्याण, खाद का प्रचार, बैंकों की बचत, प्रौढ़ शिक्षा, अधिक अन्न उपजाओं आदि कार्यक्रमों में किया गया है। सम्बन्धित कम्पनियाँ या सरकारी उपक्रम के द्वारा कठपुतलियों की कहानियों की स्क्रिप्ट तैयार करके दे दी जाती हैं जिसके आधार पर कठपुतलियों के पात्रों की रचना और निर्माण किया जाता है । फिर कठपुतली नाटक इस कहानी की स्क्रिष्ट के आधार पर तैयार किया जाता है । प्रसिद्ध कठपुतली कलाकार श्री दिलीप भाई के शब्दों में कठपुतली चार प्रकार की होती है –

1. धागे वाली कठपुतली
2. छड़ी वाली कठपुतली
3. दस्ताने वाली कठपुतली
4. छाया कठपुतली

कठपुतली की जानकारी के अनुसार पहले ये लोग भारत के गौरवशाली इतिहास की झलक कठपुतलियों के माध्यम से प्रस्तुत किया करते थे यथा महाराणा प्रताप, अमर सिंह राठौर, झाँसी की रानी, कृष्ण–सुदामा मित्रता, पृथ्वीराज चौहान की गाथा आदि ।

13.15 लोकगीत

लोकमाध्यम का एक सशक्त माध्यम है लोकगीत है। लोकगीत अधिकाशतः सामूहिक होते है। जीवन की सरलता के समान ही सहज स्वर सरल धुनों तथा गीत के मुखणो एवम अन्तरों को दुहराये जाने की परम्परा है । जिनके द्वारा लोगों के लिए गाना–बजाना आसान हो गया है। लोकगीत का महत्व हमारे यहाँ पग–पग पर संस्कार के रूप में दिखायी देता है । चाहे जन्म उत्सव हो या विवाहोत्सव हो, का गायन विशिष्ट होता है । भक्ति, उपासना, कर्मकाण्ड के साथ–साथ अन्धविश्वासों की आधारशिला पर मानव शान्ति के लिए किए जाने वाले स्वर का प्रयोग धुन और गीत लोक गीतों के अंग बन गए है ।

अवधी, ब्रज, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, कुमॉअयनी, बुन्देलखण्डी, आसामी डोगरी, पंजाबी आदि भाषाओं में रचे गीतों में ग्राम्य जीवन की झलक देखने को मिलती है । लोकगीतों की रचना व्यक्ति नहीं करता है बल्कि समूह करता है । यदि किसी एक व्यक्ति के द्वारा लोकगीत की रचना की जाती है तो वह समूह के साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है ।

13.16 लोक साहित्य

लोकसाहित्य, लोकमाध्यम का एक महत्वपूर्ण अंग है । लोकसाहित्य परंपरागत रूप में समृद्ध विरासत का दर्शन कराते है । सुदूर ग्रामीण अंचलों में धार्मिक पर्व में, सामाजिक उत्सवों के अवसर पर इसका आभास किया जा सकता है । लोकसाहित्य अपनी सुदढ़ विषय वस्तु के कारण काफी प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हुए है । विभिन्न भाषाएं जातिगत विशेषताओं रीति–रिवाजों और भौगोलिक विस्तार के कारण भिन्न–भिन्न लोक साहित्य प्रचलित है । आदिम और लोक समाज में सामाजिक संस्तरण वैचारिक बन्धन धार्मिक प्रतिबद्धताओं के कारण ये साहित्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्थानान्तरित होते हुए आज भी अपनी जीवन्नता बनाए हुए हैं। चूँकि इनका विस्तार परिवार और समुदाय तक है। इस कारण इसकी विशिष्टताएं विभिन्न स्वरूप लिए होती है ।

लोक साहित्य जन की सहज व स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। निश्छल उद्‌गार, उदान्त विचारधारा, आदर्श मूल्य, कल्पना, सांस्कृतिकता उसके आधार कहे जा सकते हैं। हम सभी इस बात से अवगत है कि लोक साहित्य का कथ्य एवं शिल्प जनसामान्य को अधिक प्रभावित करता है। लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं ने युग–युग में वैचारिक संचार का कार्य किया है और आज के कम्प्यूटरीकृत युग में भी यह अधिक लाभकारी हो सकता है। जरूरत इस बात की है कि इन विधाओं को आधुनिक संचार माध्यमों एवं विषयों से जोड़ा जाये। साहित्य, संगीत, कला इत्यादि अभिव्यक्ति के सर्वोत्तम माध्यम है, किन्तु शास्त्रीयता से परिपूर्ण माध्यम एक वर्ग विशेष तक सीमित रह जाते हैं। अगर हमे जनमानस के साथ जुड़ना है तो लोककला तथा कलाकारों को प्रश्रय देकर उनका उपयोग करना चाहिये।

13.17 नुक्कड नाटक

नाट्क शैली की एवं विशेष विधा है, जिसका प्रदर्शन एवम प्रस्तुति सार्वजनिक स्थलों पर किया जाता है। ये सार्वजनिक स्थल, पार्क, बाजार, मनोरंजन के केन्द्र, तथा किसी सड़क पर, कही भी हो सकता है। नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति का मुख्य आधार जन चेतना तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान, सामाजिक कुरितियें एवम अन्धविश्वास को दूर करने इत्यादि के लिए किया जाता है। नुक्कड़ नाटक के अर्न्तगत आमतौर पर भाग लेने वाले प्रतिभागी प्राकृतिक रूप से मुखर होते है, क्योंकि भीड़ को आकृर्षित करने के लिए यह आवश्यक है । सार्वजनिक स्थलों पर बिना किसी रंगमंच के लोगों को मुख्य धारा में जोड़ने के लिए नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति की जाती है । नुक्कड़ नाटक एक बहुत लोकप्रिय शैली है, जिसके द्वारा कलाकार प्रदर्शन के माध्यम से लोगों के बीच विषय वस्तु को प्रस्तुत करते है, जिसे एकात्रित हुई भीड़ कुछ सीख सके तथा सामाजिक जीवन धार में लोगों को प्रेरित कर सके ।

13.18 पोस्टर

एक पोस्टर सूचना प्रदान करने का एक माध्यम है, जिसके द्वारा संक्षिप्त रूप में संबधित विषय के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । एक पोस्टर आमतौर पर एक घोषणपत्र होता है, जिसे सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शन किया जाता है, जो की आकर्षित एवं चित्रमय होता है ,

सामान्यतः पोस्टर का उपयोग उत्पादो के विज्ञापन के लिए, लोगों को जानकारी प्रदान करने के लिए, आन्दोंलन अथवा प्रदर्शन के विषय में निर्देश देने के लिए तथा विषयगत सूचना देने के लिए

किया जाता है । साधारणतः एक पोस्टर में शाब्दिक, ग्राफिक तथा चित्रमय तत्वों को शमिल किया जाता जा सकता है । यथा विशेष घटनाओं को इंगित करने, फिल्मों के प्रचार प्रसार, शैक्षिक गतिविधियों के प्रोत्साहन करने, उत्पादों का विक्रय करने को प्रोत्साहित इत्यादि के लिए किया जा सकता है। एक पोस्टर मुद्रित पेपर का कोई भी टुकडा हो सकता है, जिसका खाका तैयार करने के पश्चात किसी दिवार अथवा उर्ध्व सतह पर लगाया जा सकता है ।

बहुत से लोग पोस्टर को एकत्रित एवम विक्रय करते है । कुछ पोस्टर के प्रकार निम्नलिखित है

- यात्रा पोस्टर
- प्रचार एवं राजनीतिक पोस्टर
- विज्ञापन पोस्टर
- फिल्म पोस्टर
- किताब पोस्टर
- शैक्षिक पोस्टर
- रेलवे पोस्टर

13.19 लोगो

लोगो एक ग्राफिक चिन्ह अथवा प्रतीक चिन्ह होता है । जिसका प्रयोग सामान्यतः वाणिज्यक, उद्योगो, संगठनों और यहां तक की व्यक्तिगत रूप में लोगों के बीच अपनी पहचान को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता है । लोगो विशुद्ध रूप से ग्राफिक अथवा प्रतीक चिन्ह होता है, जो कि अपने संगठन का प्रतिनिधित्व करता है, तथा संगठन से संबधित विचारों को प्रस्तुत करता है ।

यह एक विशिष्ट चित्र होता है, जिसके द्वारा जनसंचार सरलता से होता है, वर्तमान युग में लोगो का प्रयोग सन् 1950 से प्रारम्भ माना जाता है । आज विभिन्न निगमों, उत्पादों, सेवाओं और अन्य सस्थाओं द्वारा किसी ना किसी प्रकार का चिन्ह अथवा प्रतीक चिन्ह उपयोग में लाया जा रहा है, जिसे लोगो की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। एक लोगो की अवधारणा विशिष्ट लक्षण लिए होती है जिसके द्वारा किसी संगठन अथवा संस्था की विशिष्ट पहचान बनती है ।

13.20 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में संचार के अवरोधों क्रमशः भौतिक अवरोध, भाषायी अवरोध, तकनीकी अवरोध, सामाजिक अवरोध आदि का उल्लेख किया गया है। इसी इकाई में संचार के मापन एवं ढंगों को भी समझाया गया है। संचार को किस प्रकार से प्रभावी बनाया जाय, को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त इसी इकाई में कठपुतली, पोस्टर, लोगो, लोक साहित्य, लोक संगीत आदि पर प्रकाश डाला गया है।

13.21 अभ्यास प्रश्न

1. संगठनात्मक संरचना के अवरोधों को स्पष्ट कीजिए।
2. भौतिक अवरोध पर टिप्पणी कीजिए।
3. मीडिया प्रबन्धन पर प्रकाश डालिए।
4. संचार प्रबन्धन को समझाइये।
5. संचार के मापन एवं ढंगों का उल्लेख कीजिए।
6. कठपुतली पर टिप्पणी लिखिए।
7. लोक साहित्य एवं लोक संगीत को समझाइये।
8. पोस्टर तथा लोगो पर टिप्पणी लिखिए।

13.22 पारिभाषिक शब्दावली

संगठनात्मक संरचना Organizational Structure अवरोध Barrier
भौतिक अवरोध Physical Barrier तकनीकी अवरोध Technical Barrier
निपुणता Skills ढंग Method
मापन Measurement संकट Crisis जनसम्पर्क Public Relation प्रबन्धन Management
रोकथाम Prevention कठपुतली Puppets लोकगीत Folksong लोक साहित्य Folklore नुक्कड नाटक Street Play
पोस्टर Posters
लोगो Logo वाणिज्यक Commercial
उद्योग Industry विज्ञापन Advertisement प्राकृतिक आपदा Natural Disaster

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- लोक प्रशासन, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं श्रीराम महेश्वरी, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- प्रिन्सिपल ऑफ मैनेजमेन्ट, निर्मल सिंह, दीप एण्ड दीप पबिल्केशन, नई दिल्ली।
- मैनेजमेन्ट थ्योरी, एन.के. साहनी, कल्याणी पब्लिशर, नई दिल्ली।
- मीडिया लेखन, आर.सी. त्रिपाठी एवं पवन अग्रवाल, भारत प्रकाशन, लखनऊ।

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष **संयोजक**

कुलपति **निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

1.**प्रोफ़ेसर आर॰ पी॰ द्विवेदी, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी**

2.**प्रोफ़ेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1. **डॉ॰ संदीप सिंह, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय ,कानपुर**
2. **डॉ॰ विनोद कुमार पाण्डे ,तीर्थांकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद**
3. **डॉ॰ राजेश कुशवाहा,डॉ॰ बी0 आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय , आगरा**
4. **डॉ॰ सुषमा मिश्रा,डी0 ए0 वी0 कालेज, वाराणसी**
5. **डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल**

संपादन

डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

आई॰ एस॰ बी॰ एन॰ नं॰: 978-93-84433-93-2

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष :

Published by: **उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल**-263139

....

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसीअन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MSW-06

सामाजिक वैयक्तिक कार्य एवं परामर्श

(Social Case Work and Counselling)

खण्ड – 1

इकाई 1	वैयक्तिक समाज कार्य :एक परिचय **Social Case Work: an Introduction**	पृष्ठ – 1–19
इकाई 2	सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के उपागम **Approaches in Social Case Work**	पृष्ठ – 20–38
इकाई 3	सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के सम्प्रदाय **Models of Social Case Work**	पृष्ठ – 39–58
	खण्ड – 2	
इकाई 4	सामाजिक प्रक्रियायें **Social Processes**	पृष्ठ – 59–85
इकाई 5	सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में प्रविधियाँ एवं निपुणतायें **Techniches and Skills in Social Case Work**	पृष्ठ – 86–104

इकाई 6 वैयक्तिक समाजकार्य : निदान एवं मूल्यांकन पृष्ठ – 105–124

Social Case Work : Diagnosis and Evaluation

खण्ड – 3

इकाई 7 मंत्रणा : एक परिचय पृष्ठ – 125–132

Counselling : an Introduction

इकाई 8 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य : मंत्रणा एव मनश्चिकित्सा पृष्ठ – 133–152

Social Case Work : Counselling and Psychotherapy

इकाई 9 वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका पृष्ठ – 153–173

Role of Social Worker in Case Work

खण्ड – 4

इकाई 10 समाज कार्य की प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध पृष्ठ – 174–193

Inter-relation between Methods of Social Work

इकाई 11 भारत में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के क्षेत्र पृष्ठ –194–224

Scope of Social Case Work in India

इकाई 12 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में साक्षात्कार एवं वैयक्तिक अध्ययन पृष्ठ – 212–225

Case Study and Interview Process in Social Case Work

इकाई–1

वैयक्तिक समाज कार्य :एक परिचय

Social Case Work: an Introduction

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 परिचय
1.2 वैयक्तिक समाज कार्य
1.3 वैयक्तिक समाज कार्य की विशेषताएँ
1.4 वैयक्तिक समाज कार्य के उद्देश्य
1.5 वैयक्तिक समाज कार्य की प्रकृति
1.6 वैयक्तिक समाज कार्य के अंगभूत
1.7 वैयक्तिक समाज कार्य की मौलिक मान्यतायें
1.8 वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास
1.8.1 अमेरिका में वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास
1.8.2 इंग्लैण्ड में वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास
1.8.3 भारत में वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास
1.8.4 बीसवीं शताब्दी में वैयक्तिक समाज कार्य की नवीन रूचि
1.9 सार संक्षेप
1.10 अभ्यास प्रश्न
1.11 पारिभाषिक शब्दावली
संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप :–

- वैयक्तिक समाज कार्य को परिभाषित कर सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य की विशेषताओ को जान सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य के उद्देश्यों को समझ सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य की प्रकृति को जान सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य के अंगभूत से परिचित हो सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य की मौलिक मान्यताओं को जान सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य के इतिहास को समझ सकेगें।

1.1 परिचय

भारतीय समाज में आरम्भ में वैयक्तिक आधार पर सहायता करने की परम्परा रही है। यहाँ पर निर्धनों को भिक्षा देने, असहायों की सहायता करने, निराश्रितों की सहायता करने, वृद्धों की देखभाल करने आदि कार्य किये जाते रहे हैं, जिन्हें समाज सेवा का नाम दिया जाता रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि भारत में भी अमेरिका, इंग्लैण्ड की भाँति शोषण का सरलतापूर्वक शिकार बनने वाले वर्गों की सहायता का प्रावधान प्राचीन काल से चला आ रहा है। पहले इस सहायता को समाज सेवा के रूप में देखा जाता रहा है, लेकिन धीरे–धीरे इसने अपना स्वरूप बदल लिया और उन्नीसवीं शताब्दी में समाज कार्य के रूप में सामने आयी।

समाज कार्य की छः प्रणालियाँ हैं जिनका उपयोग करते हुए लोगों की सहायता की जाती है, इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है,

पहली–प्राथमिक प्रणाली एवं

दूसरी– सहायक प्रणाली।

प्राथमिक प्रणाली में वैयक्तिक समाज कार्य, सामूहिक समाज कार्य तथा सामुदायिक संगठन, जबकि सहायक प्रणाली में समाज कल्याण प्रशासन, समाज कार्य शोध तथा सामाजिक क्रिया को रखा गया है।

1.2 वैयक्तिक समाज कार्य की परिभाषायें

वैयक्तिक समाज कार्य–

समाज कार्य की प्राथमिक प्रणाली है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति विशेष की मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता है। वैयक्तिक समाज कार्य सेवार्थी की अन्तर्दृष्टि को उकसाने वाली एक प्रक्रिया है, जो सेवार्थी के विभिन्न पहलुओं की जानकारी कराती है। इसके माध्यम से सेवार्थी के पर्यावरण में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है जिससे सेवार्थी की सोंच एवं क्षमताओं का विकास हो सके और वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके तथा परिस्थितियों के साथ उचित समायोजन स्थापित कर सके।

मेरी रिचमन्ड (1915) ने वैयक्तिक समाज कार्य की परिभाषा करते हुए यह कहा है कि यह "विभिन्न व्यक्तियों के लिये उनके साथ मिलकर उनके सहयोग से

विभिन्न प्रकार के कार्य करने की एक कला है। इसका उद्देश्य एक ही साथ व्यक्तियों और समाज की उन्नति करना हैं।"

टैफ्ट् (1920) के अनुसार वैयक्तिक समाज कार्य "समायोजन रहित व्यक्ति की सामाजिक चिकित्सा है जिसमें इस बात का प्रयास किया जाता है कि उसके व्यक्तित्व, व्यवहार, एवं सामाजिक सम्बन्धों को समझा जाए और उसकी सहायता की जाऐ मत एक उच्चतर सामाजिक एवं वैयक्तिक समायोजन प्राप्त कर सके।''

मेरी रिचमण्ड (1922) के अनुसार, वैयक्तिक समाज कार्य का अर्थ है "वह प्रक्रियायें जो व्यक्तित्व के विकास के लिए एक एक करके व्यक्तियों और उनके सामाजिक पर्यावरण के बीच समायोजन सीापित करती है"।

वाटसन (1922) के अनुसार, वैयक्तिक समाज कार्य, "असन्तुलित व्यक्तित्व को इस प्रकार सन्तुलित बनाने और उसका पुनर्निर्माण करने की एक कला है कि व्यक्ति अपने पर्यावरण से समायोजन प्राप्त कर सकें।

क्वीन (1922) ने वैयक्तिक समाज कार्य को "वैयक्तिक सम्बन्धों में समायोजन लाने की एक कला" के रूप में परिभाशित किया।

ली (1923) ने वैयक्तिक समाज कार्य को "मानवीय मनोवृत्तियों को परिवर्तित करने की एक कला के रूप में परिभाषित किया।"

रिनॉल्ड्स (1932) ने वैयक्तिक समाज कार्य की परिभाषा इस प्रकार की, "यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सेवार्थी को एक ऐसी समस्या के विषय में परामर्श दिया जाता है जो विशेष प्रकार से उसी की समस्या है और जिसका सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धो की उन कठिनाइयों से है जिनका यह सामना कर रहा है।"

डखीनीज़ (1939) ने वैयक्तिक समाज कार्य की परिभाषा इस प्रकार की : "ऐसी प्रक्रियायें जो व्यक्तियों को सामाजिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा निश्चित नीतियों के अनुसार और वैयक्तिक आवश्यकताओं को सामने रखकर सेवा प्रदान करने, आर्थिक सहायता देने या वैयक्तिक परामर्श देने से सम्बद्ध है।

स्वीथन बॉवर्स (1949) ने कहा : "वैयक्तिक समाज कार्य एक कला है जिसमें मानवीय सम्बन्धों के विज्ञान के ज्ञान और सम्बन्धों में निपुणता का प्रयोग इस दृष्टि से किया जाता है कि व्यक्ति में उसकी योग्यताओं और समुदाय में साधनों को गतिमान किया जाए जिससे सेवार्थी और उसके पर्यावरण के कुछ या समस्त भागों के बीच उच्चतर समायोजन स्थापित हो सके।''

सैनफोर्ड सोलेन्डर (1957) ने कहा "वैयक्तिक समाज कार्य एक ऐसी प्रणाली है जिसका प्रयोग समाजकार्यकर्ता व्यक्तियों की सहायता करने के लिये करते हैं मत

उन सामाजिक असामन्जस्य की समस्याओं का समाधान कर सकें जिनका सामना वे स्वयं संतोषजनक रूप से नही कर पा रहें है।”

पर्लमैन (1957) के अनुसार, ”वैयक्तिक समाज कार्य एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कुछ मानव कल्याण संस्थाएं करती हैं ताकि व्यक्तियों की सहायता की जाए मत सामाजिक कार्यात्मकता की समस्याओं का सामना उच्चतर प्रकार से कर सकें।”

होलिस के अनुसार, ‘‘वैयक्तिक समाज कार्य मानव व्यक्तित्व, सामाजिक मूल्यों एवं उद्देश्यों के प्रति कुछ मौलिक मान्यताओं पर आधारित है। वैयक्तिक समाज कार्य की यह मान्यता है कि सामाजिक संरचना का उद्देश्य व्यक्ति को इच्छित जीवन स्तर जीने के योग्य बनाना है। व्यक्ति राज्य के लिए नहीं वरन् राज्य व्यक्ति के कल्याण के लिए विनिर्मित हुआ है।

उपरिलिखित परिभाषाओं का अध्ययन एवं अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि वैयक्तिक समाज कार्य एक सहायता मूलक कार्य है यह ऐसे व्यक्ति को दी जाती है जो मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित है तथा जिसके पर्यावरण में परिवर्तन की आवश्यकता है, जिससे कि उसकी क्षमताओं का विकास हो सके और वह समाज में अच्छा समायोजन सीापित कर सके।

1.3 वैयक्तिक समाज कार्य की विशेषताएँ (Characteristics of Social Case Work)

उपरिलिखित परिभाषाओं पर विश्लेषणात्मक दृष्टि डालने पर वैयक्तिक समाज कार्य की विशेषताओं का ज्ञान होता है जोकि निम्नलिखित है :

1. वैयक्तिक समाज कार्य आपस में सहयोगात्मक प्रवृत्ति का कार्य करने की एक कला है।
2. सामाजिक सम्बन्धों में अधिक अच्छे समायोजन लाने की कला है।
3. वैयक्तिक समाज कार्य कुसमायोजित व्यक्ति का सामाजिक उपचार है।
4. असन्तुलित व्यक्ति को सन्तुलित करने की कला है।
5. वैयक्तिक समाज कार्य मानवीय मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने की एक कला है।
6. वैयक्तिक समाज कार्य एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समस्याग्रस्त व्यक्ति को परामर्श दिया जाता है।

7. वैयक्तिक समाज कार्य सेवार्थियों के लिए समुदाय में उपलब्ध साधनों को गतिमान करने तथा पर्यावरण से बेहतर समायोजन रखने की कला है।
8. वैयक्तिक समाज कार्य एक सहायता मूलक कार्य है।
9. वैयक्तिक समाज कार्य सेवार्थी को उसी रूप में स्वीकार करते हुए जिसमें वह है, की सहायता करने एवं उसके लिए उपयुक्त उपचार करने की एक प्रक्रिया है।
10. वैयक्तिक समाज कार्य उलझे हुए व्यक्ति को सुलझाने की प्रक्रिया है।

1.4 वैयक्तिक समाज कार्य के उद्देश्य (Objectives of Social Case Work)

वैयक्तिक समाज कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. सेवार्थी की मनोसामाजिक समस्याओं का अध्ययन करना तथा समाधान करना;
2. सेवार्थी की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाना।
3. सेवार्थी में समायोजन लाने की क्षमता का विकास करना।
4. सेवार्थी में आत्मनिर्णयात्मक मनोवृत्ति का विकास करना।
5. सेवार्थी को स्वयं सहायता करने के लिए प्रेरित करना।
6. नेतृत्व की क्षमता एवं योग्यता का विकास करना।
7. सेवार्थी का वैयक्तिक अध्ययन करना।
8. सेवार्थी की समस्याओं का सामाजिक निदान करना तथा उपचार करना।
9. विभिन्न समाज विज्ञानों का सहारा लेते हुए सेवार्थी में चेतना का प्रसार करना।
10. पर्यावरण में परिवर्तन लाने एवं सेवार्थी की सोंच में परिवर्तन लाने का प्रयास करना।

1.5 वैयक्तिक समाज कार्य की प्रकृति (Nature of Social Case Work)

वैयक्तिक समाज कार्य मानवतावादी दर्शन पर आधारित है। यह समस्याग्रस्त व्यक्ति की इस प्रकार सहायता करता है जिससे वह स्वयं अपनी सहायता कर सके। यह अपने सेवार्थियों की सहायता करने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणताओं का प्रयोग करता है। वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणताओं से परिपूर्ण एक व्यावसायिक सदस्य होता है जोकि किसी न किसी संस्था से सम्बद्ध होता है, वह अपनी सेवायें सेवार्थी को उपलब्ध कराने के लिए

संस्था के अन्दर या संस्था के बाहर सेवार्थी से प्रत्यक्ष सम्पर्क करता है और उसकी समस्याओं को जानने के उपरान्त उपयुक्त उपचार करने का प्रयास करता है।

1.6 वैयक्तिक समाज कार्य के अंगभूत (Components of Social Case Work)

पर्लमैन (1957) के द्वारा दी गई परिभाषा यह है कि ''वैयक्तिक समाज कार्य एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग मानव कल्याण संस्थाएं करती हैं ताकि व्यक्तियों की सहायता की जा सके जिससे वे अपनी समस्याओं का सामाजिक कार्यात्मकता से सामना कर सकें।''

उपर्युक्त परिभाषा में वैयक्तिक समाज कार्य के चार अंगभूतों का उल्लेख किया गया है जो हैं :

(1) व्यक्ति (Person)
(2) समस्या (Problem)
(3) स्थान (Place)
(4) प्रक्रिया (Process)

वैयक्तिक समाज कार्य में व्यक्ति से तात्पर्य ऐसे सेवार्थी से है जो मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित है, यह व्यक्ति एक पुरूष, स्त्री, बच्चा अथवा वृद्ध कोई भी हो सकता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो भी व्यक्ति स्पष्टतया सहायता चाहता है, वैयक्तिक समाज कार्य उसको सहायता उपलब्ध कराता है। कोई भी समस्या व्यक्ति के सामाजिक समायोजन को प्रभावित करती है इसका स्वरूप कैसा भी क्यों न हो। समस्या शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक या मनोवैज्ञानिक इत्यादि प्रकृति की हो सकती है। वस्तुतः वैयक्तिक समाज कार्य में समस्या वही आती हैं जो व्यक्ति की सामाजिक क्रिया को गम्भीर रूप से प्रभावित करती हैं। उन समस्याओं के कारण व्यक्ति का सामाजिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और वह समस्या से ग्रसित हो जाता है। वैयक्तिक समाज कार्य इसी असन्तुलन को समाप्त करने का प्रयास करता है। सीन से तात्पर्य ऐसी संस्था से है जिसके तत्वावधान में व्यक्ति की सहायता की जाती है। यह संस्था सरकारी या गैर–सरकारी हो सकती है। सेवार्थी को विषेश सहायता इन्हीं संस्थाओं के तत्वावधान में अथवा संस्था के बाहर कार्यकर्ता द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। वैयक्तिक समाज कार्य में संस्था ऐसी घटक होती है जो सेवार्थियों की सहायता करने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करती है।

वैयक्तिक समाज कार्य में प्रक्रिया से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसके माध्यम से सेवार्थी की सहायता की जाती है। इस सहायता प्रक्रिया में सर्वप्रथम वैयक्तिक

समाज कार्यकर्ता सेवार्थी से मधुर सम्बन्धों की स्थापना करता है तत्पश्चात् उसके पारिवारिक, व्यक्तिगत इतिहास की जानकारी करता है, उसकी समस्याओं को जानने का प्रयास करता है फिर समस्याओं का सामाजिक निदान करने के उपरान्त उपयुक्त उपचार योजना बनाता है तथा मूल्यांकन करता है, यह सब एक प्रक्रिया के माध्यम से होता है।

1.7 वैयक्तिक समाज कार्य की मौलिकमान्यतायें (Basic Assumptions of Social Case Work)

वैयक्तिक समाज कार्य का मूल मानवतावादी दर्शन एवं जन कल्याण की भावना पर आधारित है। यह ऐसी सहायता है जो व्यक्ति की आन्तरिक एवं वाह्य समस्याओं का पता लगाकर उसे समायोजन एवं दृढ़ता प्रदान करती है जिससे कि व्यक्ति स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान कर सके। वैयक्तिक समाज कार्य की मान्यताओं के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रदत्त मान्यतायें निम्नलिखित है :

हैमिल्टन के अनुसार वैयक्तिक समाज कार्य की मान्यतायें :

1. व्यक्ति और समाज में पारस्परिक निर्भरता होती है।
2. सामाजिक शक्तियों क्रियाशील रहते हुए व्यक्ति में व्यवहार तथा दृष्टिकोण में अपेक्षित परिवर्तन लाकर उसे आत्मविकास का अवसर प्रदान करती हैं।
3. वैयक्तिक समाज कार्य से सम्बन्ध रखने वाली अधिकांश समस्यायें अन्तर्वैयक्तिक होती है।
4. अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए सेवार्थी की भूमिका उत्तरदायित्वपूर्ण होती है।
5. वैयक्तिक समाज कार्य की प्रक्रिया के दौरान कार्यकर्ता तथा सेवार्थी के बीच समस्याओं के निराकरण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चेतन तथा नियन्त्रित सम्बन्ध होता है।

1.8 वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास

1.8.1. अमेरिका में वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास :

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय में अमेरिका में निर्धनता, रोग एवं बेरोजगारी की समस्याएं सामान्य रूप से फैली हुई थीं। विशेष रूप से बड़े–बड़े नगरों में बेरोजगारी की समस्या अधिक थी। उस समय के परोपकारी व्यक्तियों पर यह बात स्पष्ट हो गई कि निर्धन विधान को चलाने वाले अधिकारियों द्वारा जो सहायता दी जा रही है वह न तो पर्याप्त है और न ही रचनात्मक। यह बात भी

स्पष्ट हो गई कि परोपकारी संस्थाओं के बीच सहयोग के अभाव के कारण एक दूसरे के कार्यों एवं कार्यक्षेत्र के विषय में सूचना नही मिल पाती है और परिणामस्वरूप जो कुछ परिश्रम किया जाता है और धन व्यय होता है वह अधिकतर व्यर्थ हो जाता है। कार्यों में द्वितीयावृत्ति के कारण कुछ क्षेत्रों में आवश्यकता से अधिक संस्थाएं कार्य करती हैं और कुछ क्षेत्रों में संस्थाओं का अभाव है। इस परिस्थिति के सुधार करने के लिए 1877 में चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी आन्दोलन की स्थापना हुई थीं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि इस आन्दोलन का आधार टॉमस चामर्स के विचारों पर था। इस आन्दोलन का आधार इस विचार पर था कि सार्वजनिक निर्धन सहायता अपने उद्देश्य में असफल है और सेवार्थी का इस प्रकार पुनर्वास होना चाहिए कि वह अपना और अपने परिवार का भरण पोषण कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस आन्दोलन ने इस बात की व्यवस्था की कि निर्धनों के घर जाकर उनका निरीक्षण किया जाये, उन्हें परामर्श दिया जाये, अनुचित कार्यों से रोका जाये और आर्थिक सहायता दी जाये। इस प्रकार निर्धनों के पुनर्वास के पूर्व उनकी दशा का सावधानी से परीक्षण और उनकी समस्या के विषय में स्वयं उनसे और उनके आस–पास के लोगों से विचार विमर्श आवश्यक समझा जाने लगा। निर्धनों एवं समस्याग्रस्त व्यक्तियों के विषय में इस प्रकार की वैयक्तिक रूचि समाज कार्य की एक नई दिशा की ओर संकेत करती है। इसी नई दिशा से वैयक्तिक समाज कार्य की उत्पत्ति हुई।

चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटीज ने सेवार्थियों की वैयक्तिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए सामाजिक हल (सुझाव) का प्रयोग करना चाहा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण, उपकरण, छोटे–छोटे कारखानों या व्यापार के लिए धन, भोजन, वस्त्र, एवं परिवारों के लिए कमरों या एक छोटे से घर की सुविधाएं प्रदान कीं। इस अवसर पर एक प्रमुख बात यह हुई कि स्वयं सेवकों और सी. ओ. एस. के प्रतिनिधि वैतनिक थे और वे सी.ओ.एस. के कार्यों के लिऐ नगर के धनी व्यक्तियों से धन एकत्र करते थे। स्वयंसेवक सेवार्थियों से वैयक्तिक सम्पर्क रखते थे और उन्हें आत्म निर्भर बनाने के लिए उपदेश एवं निर्देश देते थे। सेवार्थियों से यह आशा की जाती थी कि वे उनके सुझावों का पालन करेंगे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक स्वयं सेवकों को यह अनुभव हुआ कि निर्धनता का कारण बहुधा सेवार्थी के व्यवहार का दोष ही नहीं है बल्कि उसकी सामाजिक परिस्थिति भी है जिसमे वह रहता हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सामाजिक दशाओं के सुधार पर बल दिया जाने लगा। सी.ओ.एस. ने इस बात का

प्रयास करना आरम्भ किया कि ऐसे सामाजिक विधान बनने चाहिये जिसमें निराश्रित, रोग, सामाजिक विघटन का प्रतिबन्ध हो सके।

सामाजिक सुधार के उपायों से निर्धन व्यक्तियों की दशा में उन्नति होने लगी परन्तु फिर भी कुछ परिवार ऐसे थे जिनकी आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाती थीं और जिन्हें ऐसे सहायकों की आवश्यकता थी जो उनकी समस्याओं को सहानुभूति के साथ समझकर उन्हें उपदेश दें जिससे वे सामुदायिक साधनों का सदुपयोग कर सकें। यह समझा जाने लगा कि सामाजिक सुधार से ही समस्त वैयक्तिक समस्याएं नहीं सुलझ जातीं। अतः सामाजिक संस्थाएं वैयक्तिक समाज कार्य सेवाएं प्रदान करती रहीं। बीसवी शताब्दी के आरम्भ में समाज कार्य के विद्यालयों की स्थापना हुई और व्यवसायिक प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध हुई। सामाजिक संस्थाओं ने अब प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं को नियुक्त करना आरम्भ कर दिया। अब सेवार्थी की समस्या का अध्ययन, निदान और चिकित्सा की योजना इन प्रशिक्षण प्राप्त कार्यकर्ताओं का ही उत्तरदायित्व हो गया।

इस प्रकार उनका महत्व बढ़ गया क्योंकि अब उनकी जांच का प्रतिवेदन किसी समिति के सम्मुख रखने की अपेक्षा स्वयं उनकी राय के अनुसार ही सहायता का कार्य होने लगा। 1917 में पहली बार मेरी रिचमण्ड ने वैयक्तिक समाज कार्य की प्रक्रियाओं को एक निश्चित रूप में अपनी पुस्तक सोशल डाइग्नोसिस में प्रस्तुत किया। परन्तु यह स्पष्ट हो गया कि केवल परामर्श से ही पुनर्वास नहीं हो सकेगा और यह कि इसके लिये आर्थिक साधनों की भी आवश्यकता होगी। अतः निजी एवं सार्वजनिक आर्थिक सहायता के कार्यक्रम प्रचलित रहे और अब भी प्रचलित हैं।

1.8.2 इंग्लैण्ड में वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास

मध्यकाल में इंग्लैण्ड में गरीबों की सहायता का कार्य चर्च का था। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लोग असहायों, अंधों, लंगड़ों तथा रोगियों की सहायता करते थे। दान वितरण के कार्य को अधिक महव देने के कारण चर्च तथा राज्य में असहमति उत्पन्न हुई उसके फलस्वरूप सोलहवीं शताब्दी में निर्धनों की सहायता का उत्तरदायित्व राज्य पर हो गया।

- **एलिजाबेथ का धनहीनों के लिए कानून** :सन् 1601 में एलिजाबेथ पुअर ला बना जिसके द्वारा पुरखों तथा अभावग्रस्त माता पिताओं की सहायता करना अनिवार्य कर दिया गया। इस कानून ने निर्धनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया : समर्थ निर्धन, असमर्थ निर्धन तथा आश्रित बालक। समर्थ निर्धनों को हाउसेज आफ करेक्शस या वर्क हाउसेज में रखने की व्यवस्था थी तथा उन्हें दान देना निषिद्ध था। रोगी, विराश्रित, बुद्ध, अन्धे, बहरे, गूंगे, लंगड़े,

पागल और वे मातायें जिनके पास छोटे–छोटे बच्चे थे, असमर्थ निर्धन की श्रेणी में आते थे, उन्हें या तो भिक्षा जिनके पास छोटे–छोटे बच्चे थे, असमर्थ निर्धन की श्रेणी में आते थे, उन्हें या तो भिक्षा गृहों में रखा जाता था या घर पर ही बाह्य सहायता सामान्य वस्तुओं जैसे खाना, कपड़ा, ईंधन के रूप में दी जाती थी। अनाथ पिताहीन, परित्यक्त बालक या निर्धन माता–पिता के बालक आश्रित बालक कहे जतो थे। ऐसे बच्चे उन नागरिकों को दिये जाते थे जो रखना चाहते थे। लड़कों को उनके मालिक के व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता था। निर्धनों के निरीक्षक (oversears of the poor) निर्धनों के कानून का पालन कराते थे। उनका कार्य निर्धनों की सहायता के लिए प्रार्थना पत्र लेना, उनकी दशाओं की जाँच करके पता लागना कि उनको सहायता दी जाय या नहीं और यदि दी जाय तो उसका रूप कया हो।

- **पुअर ला अमेंडमेंट ऐक्ट** : कार्यग्रह निवासियों के दुर्व्यवहार, उचित स्वच्छता का अभाव, अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार के कारण सन् 1982 में पुअर ला अमेंडमेंट ऐक्ट बना। जिससे वैतनिक निरीक्षकों के स्थान पर वैतनिक संरक्षक नियुक्त किये गये। आश्रमों की सहायता समाप्त कर दी गयी और कार्य न मिलने की अवधि में इच्छुक व्यक्तियों को सहायता दी जाने की व्यवस्था की गयी।

- **थामस चाल्मर्स का योगदान** : थामस चाल्मर्स (Thomas Chalmers 1780-1847) ने अपने अनुभव के आधार पर दान पद्धति को कटु आलोचना की क्योंकि यह व्यवस्था निर्धनों में आचार भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देती थी। स्वावलम्बन की इच्छा को निर्बल बनाती थी। **इस संबंध में थामस चाल्मर्स ने सुझाव दिया कि :**

(1) दुर्गति के प्रत्येक मामले की जाँच भली भाँति की जाय, कष्ट के सभी कारणों का निश्चय किया जाय और निर्धनों में आत्म–निर्भरता की सभी सम्भावनाओं को विकसित किया जाय।

(2) यदि आत्मावलम्बन (Self-support) सम्भव न हो तो सम्बन्धियों, मित्रों और पड़ोसियों को अनाथ, बृद्ध, बीमार और अपंगों की सहायता के लिए प्रोत्साहित किया जाय,

(3) यदि निर्धन परिवारों की आवश्यकता इस प्रकार भी पूरी न की जा सके तो कुछ धनाड्य नागरिकों से उनके निर्वाह के लिए सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

(4) केवल जब इन प्रस्तावित तरीकों में से एक भी सफल न हो तो तभी जिले का डीकन (Deacon) अपनी धार्मिक परिषद् से सहायता से प्रार्थना करे।

थामस चाल्मर्स को दान–भिक्षा कार्यक्रम का व्यावहारिक अनुभव होने से दान की अवधारणा में परिवव्रन लाने में काफी योगदान रहा। उन्होंने वैयक्तिक आधार पर जाँच करने को प्रोत्साहन दिया तथा दरिद्रता के कारणों को ज्ञात करने का प्रयत्न करने के सिद्धांत को उत्पन्न करती है। उन्होंने व्यक्तिगत असफलताओं को ही निर्धनता का निराश्रितों (Destiture) के भाग्य निर्धारण में वैयक्तिक रूप से ध्यान देना आवश्यक होता है, सहायता कार्य की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण मानी गयी। चाल्मर्स के अग्रगामी कार्य के 50 वर्ष बाद लंदन चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी ने सहायता का एक कार्यक्रम संगठित किया, जो प्रमुख रूप से थामस चाल्मर्स के विचरों पर ही आधारित था। उन्होंने समाज कार्य में व्यक्तिगत उपागम (Approach) की प्रथम आधारशिला रखी जिसे आज हम "वैयक्तिक कार्य" को संबल देते हैं।

- **जान हावर्ड (John Howard) तथा एलिजाबेथ फ्राई (Elizabeth fry)**

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों में इंग्लैण्ड के कारागारों की व्यवस्था बहुत अस्त–व्यस्त थी। बन्दियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता था तथा उनके आवास एवं भोजन तथा वस्त्र की उचित व्यस्था न थी। जान हावर्ड जेल सुधार के दृढ़ समर्थक थे। उनका विचार था कि अपराधियों को अपराध विशेष के आधार पर दण्ड किया जाय तथा अपराध के कारणों की खोज की जाय। बन्दियों को आवश्यक आवश्यकताएँ प्रदान की जायें। हावर्ड का जेल सुधार सम्बन्धी विचार अपने युक्तिगत जेल अनुभव पर आधारित था। वेडफोर्ड के शेरिफ पद पर कार्य करते हुए उन्होंने अपने दुखदायी अवलोकनों का अभिलेख तैयार किया। इन अभिलेखों से उसने यह निष्कर्ष निकाला कि इस सम्बन्ध में और अधिक खोजपूर्ण अन्वेषणों की आवश्यकता है।

श्रीमती एलिजाबेथ फ्राई शांति प्रचारक समिति की सदस्य होने के कारण न्यूगेट जेल (Newgate prision) जिसे धरती पर नरक (Hell upon earth) कहा जाता था, का निरीक्षण कर जेल में ही बच्चों के लिए विद्यालय को प्रारम्भ कराने में सफलता प्राप्त की। बन्दिनियों में से एक को विद्यालय की अध्यापिका नियुक्त किया।

अनेक सुधारकों ने जेल व्यवस्था में सुधार लाने का अथक प्रयास किया परन्तु जब तक 1877 में प्रिजन एक्ट ने दण्ड सम्बन्धी संस्थाओं का प्रशासन एक केन्द्रीय संस्था नेशनल प्रिजन एक्ट ने दण्ड सम्बन्धी संस्थाओं का प्रशासन एक केन्द्रीय

संस्था नेशनल प्रिजन कमीशन को सौंप न दिया तब तक कारागारों में सन्तोषजनक सुधार न हुआ।

हेनरी सोली (Henry Solly) तथा चार्ल्स स्टुअर्ट लोच (Charles Steward Loch) चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी की स्थापना सन् 1869 में सोसाइटी फार आर्गनाइजेशन रिलीफ एण्ड रिप्रेसिंग से बदलकर की गयी। इसके संगठन का मूल श्रेय हेनरी सोली को है जिन्होंने सन् 1868 में वैयक्तिक एवं सार्वजनिक परोपकारी समितियों की कार्य विधियों के बीच समन्वय करने वाली परिषद के निर्माण की एक योजना प्रस्तुत की। इस दान संगठनसोसाइटी की नींव थामस चाल्मर्स के सिद्धांतों पर की गयी। दान संगठन समितियों का कार्य प्रार्थियों से साक्षात्कार करना, उनके सामाजिक अमामर्थ्य की चिकित्सा की योजना बनाना और जो संस्थाएँ पहले ही से विद्यमान थीं उनसे धन प्राप्त करना था। इस समितियों के कार्यों में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के स्वरूप की झलक मिलती है। समाज कार्य ऐतिहासकों का विचार है कि समाज कार्य की संगठित क्रियाओं की वर्तमान पद्धति की उत्पत्ति चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी की इसी योजना से हुई।

- **कैनन सैमुअल अगस्टस बारनेट (Cannon Samuel Augusts Barnett)**

बारनेट ने यह पाया कि व्हाइट चैनेट के निर्धन 8000 पैंरिश निवासियों में अधिकांश बेकार अथवा रोग से पीड़ित थे। आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज स्थित कालेजों ने बारनेट से इस बात की जानकारी चाही कि सामाजिक अध्ययनों में रुचि रखने वाले विद्यार्थी निर्धनों की सहायता के लिए कुछ कर सकते हैं। उन्होंने छात्रों को विशेषाधिकार हीन व्यक्तियों के जीवन का अध्ययन करने, उन्हें शिक्षा सम्बन्धी और व्यक्तिगत सहायता प्रदान करने के लिए आमन्त्रित किया।

बारनेट तथा उनके साथियों ने निर्धनता की समस्या को सुलझाने का दो प्रकार से प्रयास किया। अविवेकपूर्ण दान पद्धति बन्द करें ‘पुअर ला’ के अधीन सहायता केवल वर्क हाउस में दी जाय तथा दूसरे इस बात की कोशिश की कि व्यक्तियों को पुनः आत्म स्वावलम्बी बनाया जाय। इसके लिए उनकी आवश्यकताओं, योग्यताओं एवं कमियों का सावधानी से अध्ययन किया जाय। उनका विचार था कि सहायता का उद्देश्य का उद्देश्य वैयक्तिक कठिनाइयों को थोड़े समय के लिए कम करना नहीं है बल्कि समाज के रोग की चिकित्सा करना है। बारनेट के विचारों ने सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की जड़ों को और अधिक सुदृढ़ बनाया।

- **इडवार्ड डेनिसन (Edward Denison)**

इडवार्ड डेनिसन सन् 1887 में माइल दण्ड रोड की फिलपाट स्ट्रीट में रहने गये। यहाँ पर उन्होंने एक स्कूल की स्थापना की तथा रात्रि में वे इस स्कूल में पढ़ाने का कार्य करते थे। दिन के समय रोगियों की देखभाल, स्थनीय निकायों का निरीक्षण तथा गरीबों की आवश्यकताओं को जनता व सरकार तक पहुँचाने का कार्य करते थे। इससे हम देखते हैं कि प्रारम्भिक सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता नकद या भौतिक सहायता देते हुए भी उनका प्रमुख उददेश्य आर्थिक अथवा भौतिक आवश्यकताओं से नहीं बल्कि सम्बन्ध स्थापन से था।

1.8.3 भारत में वैयक्तिक समाज कार्य का इतिहास

- **प्राचीन दृष्टिकोण** : भारत में दीन दुखियों, असहायों तथा पीड़ित व्यक्तियों की सहायता करने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। मानेचिकित्सा सम्बन्धी कार्य भी प्राचीन युग से ही चले आये हैं। कृष्ण का अर्जुन को उपदेश देना, वशिष्ठ का राम को कर्तव्य बोध कराना, बुद्ध का अंगुलिमाल के व्यवहार को परिवर्तित करना आदि इसके उदाहरण हैं।

भारतीय संस्कृति तथा धर्म का मुख्य उद्देश्य उन व्यक्तियों की सहायता करना है जो उत्पीड़ित हों तथा दयनीय जीवन व्यतीत करते हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक भी भिखारियों को दान देना, निर्धनों तथा असहायों की सहायता करना, धर्मशालाएँ बनवाना रोगियों की सहायता करना आदि पुण्य के कार्य समझे जाते रहे हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ऐसे सहायता मूलक कार्य करने के लिए व्यक्तियों में होड़ लगती थी।

- **बौद्ध काल** : बौद्ध काल में समाज की भलाई के लिए अनेक प्रकार के उपदेश देने का प्रबन्ध किया गया था। बोधिसत्त्व में इस बात का उल्लेख मिलता है कि दानी व्यक्तियों के कौन–कौन से कार्य थे। बोधिसत्त्व के अनुसार सहायताकारी कार्यों को पहले अपने सगे सम्बन्धियों तथा मित्रों की सहायता उसके पश्चात् असहाय, रोगी, संकटग्रस्त तथा दरिद्र व्यक्तियों तथा मित्रों की सहायता उसके पश्चात् असहाय, रोगी, संकटग्रस्त तथा दरिद्र व्यक्तियों की सहायता करनी चाएिह।

- **मौर्य काल** :– मौर्य काल में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया था। बच्चों, वृद्धों तथा रोगग्रस्त व्यक्तियों की देखभाल का कार्य अत्यन्त धार्मिक समझा जाता था। गाँव के वयोवृद्ध तथा मुखिया माता–पिता विहीन बालकों की देख भाल का कार्य करता था। निर्धन बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा तथा भोजन का प्रबन्ध अध्यापक करता था।

- **इस्लाम काल** :–13वीं शताब्दी से भारतीय लोक जीवन में इस्लाम का आविर्भाव हुआ। इस्लाम धर्म में प्रारम्भ से ही भिक्षा देने की व्यवस्था तथा प्रथा रही है। यह दान उन व्यक्तियों को दिये जाने की व्यवस्था है जो हज पर जाने का व्यय न वहन कर सके, जिनके पास भोजन न हो, भिखारी हों तथा जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ईश्वर हेतु अर्पित कर दिया हो। जकात से प्राप्त धन का उपयोग समाज कल्याण के कार्यों में ही किया जाता था। कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश, नासिरुद्दीन आदि सुल्तानों ने इस क्षेत्र में अनेक कार्य किये। फिरोज ने ऐसे व्यक्तियों की सहायता करने के लिए जिनके पास पुत्रियों का विवाह करने के लिए पर्याप्त धन नहीं था एक दीवान–ई–खरात संस्था का निर्माण किया था।

मुगल काल में ऐसी अनेक दुकानें खोल दी जाती थीं जहाँ पर सस्ते मूल्य पर अनाज मिलता थ। उस समय एक ऐसे विभाग का संगठन भी था जो आवश्यकता वाले व्यक्तियों की सूची रखता था। निरीक्षकों को नियुक्ति भेदभाव को रोकने के लिए की जाती थी। सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक ने व्यक्तियों को रोजगार देने तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने का वृहद् कार्यक्रम बनाया था। उसका विचार था कि अपराधों का कारण आवश्यकताओं की संतुष्टि का न होना है।

- **अंग्रेजी शासन काल** :– अंग्रेजी शासन काल में अनेक समाज सुधार आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। राजाराम मोहन राय ने बाल विवाह तथा सती प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् 1829 ई0 में प्रतिबन्ध अधिनियम (Regulation Act) पारित किया गया जिसने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। सन् 1856 ई0 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (Hindu widow Remarriage Act) पास हुआ। गाँधी जी के प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक सुधार सम्भव हो सकें। भारत में सन् 1936 ई0 से पहले सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य को एक ऐच्छिक कार्य समझा जाता था। सन् 1936 ई0 में पहली बार समाज कार्य की व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक संस्था पर रावजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क के नाम से स्थापित हुई। इस समय इस बात की आवश्यकता महसूस हो चुकी थी कि वैयक्तिक सेवा कार्य करने के लिए औपचारिक शिक्षा अनिवार्य है।

- **स्वतंत्रता के बाद** : बीसवीं शताब्दी में ऐसी समाज सेवी संस्थाओं की वृद्धि हुई। अनाथालयों, शिशु सदनों की तथा अंधों के लिए स्कूलों की स्थापना की गयी। विकलांग बालकों के लिये पहली बार सन् 1947 ई0 में एक

ऐच्छिक संस्था स्थापित हुई। इस संस्था के कार्यों से प्रभावित होकर भारत के अनेक चिकित्सालयों में विकलांग चिकित्सा विभाग स्थापित हुए। सन् 1952 ई0 में इन्डियन कौंसिल फॉर चाइल्ड वेलफेयर की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य शिशु कल्याण के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना और दूसरी ओर ऐच्छिक संस्थाओं एवं राज्य के बीच सम्पर्क स्थापित करना है।

समाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का चिकित्सा क्षेत्र में उपयोग होना शीघ्र ही प्रारम्भ हुआ। जब भारतीय चिकित्सक अमेरिका तथा इग्लैंण्ड गये और उन्होंने रोगियों के साथ सेवा कार्य के महत्त्व को समझा तो भारतीय चिकित्सालयों ने भी इसके विकास पर जोर दिया। दि हेल्थ सर्वे एण्ड डेवलपमेन्ट कमेटी (भोर कमेटी) ने सन् 1945 ई0 में चिकित्सालयों में प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता की नियुक्ति की सिफारिश की। चिकित्सीय वैयक्तिक सेवा कार्य के विकास में यह महत्वपूर्ण कारक था। दूसरा कारण मानसिक चिकित्सालयों की स्थापना तथा इसमें मनोसामाजिक कार्यकर्ताओं के महत्त्व को समझ जाता है।

सन् 1946 ई0 में टाटा इन्स्टीट्यूट ने चिकित्सकीय समाज कार्य की शिक्षा का प्रबन्ध किया। सन् 1944 ई0 में डा0 जे0एम0 कुमारप्पा इन्स्टीट्यूट के निदेशक, अमेरिका गये तथा चिकित्सकीय समाज कार्य के लिए विजिटिंग प्रोफेसर के लिए समझौता किया। इसके परिणामस्वरूप लूईस विले, कंट्री की मिस लुईस ब्लैन्की (Miss Lois Blankey) नवम्बर सन् 1946 ई0 में भारत आयी। कुछ महीनों तक उन्होंने भारतीय स्वास्थ्य समस्याओं को समझने तथा चिकित्सालयों की समस्याओं से अवगत होने में अपना ध्यान लगाया। कुछ समय बाद एक नये विभाग चिकित्सकीय तथा मनोचिकित्सकीय समाज कार्य का संगठन किया। जिस अवधि में मिस ब्लैन्की भारत आयीं थीं उन्हीं दिनों डॉ0 (मिस) जी0आर0 बनर्जी चिकित्सकीय तथा मनोचिकित्सकीय समाज कार्य में प्रशिक्षण हेतु शिकागो गयीं और वापस आकर मिस ब्लैन्की से सन् 1948 ई0 में कार्यभार सँभाल लिया।

सन् 1946 ई0 में जे0 जे0 हास्पिटल बाम्बे में प्रथम चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति हुई थी। उस समय से उसमें काफी वृद्धि हो रही है। आज चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता ने केवल सामान्य चिकित्सालयों में बल्कि विशेषीकृत चिकित्सालयों, क्लिनिकों तथा पुनर्स्थापन केन्द्रों में कार्य करने लगे हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का क्षेत्र व्यापक हो रहा है परन्तु कार्यकर्ता अपनी भूमिकाओं को पूरा करने में अनेक बाधाएँ अनुभव कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को चयन में कोई विशेष वरीयता नहीं

मिलती है। आशा है समय परिवर्तन के साथ–साथ इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आयेगा तथा सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का सामान्य विकास सम्भव हो सकेगा।

1.8.4 बीसवीं शताब्दी में वैयक्तिक समाज कार्य की नवीन रूचि

बीसवीं शताब्दी के पहले दस वर्षों में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ताओं ने इस बात पर बल देना आरम्भ किया कि जिस व्यक्ति की सहायता करनी है उसके जीवन के विषय मे पर्याप्त सूचना प्राप्त की जाये। इन सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक एवं वैयक्तिक समस्याओं का सामाजिक निदान बनाया जाये जो उन समस्याओं के कारणों को स्पष्ट करता है। इसी सामाजिक निदान के आधार पर चिकित्सा की योजना बनाई जाये। उस समय चिकित्सा की योजनाएं अधिकतर पर्यावरण के बाहरी परिवर्तन, जीवन सम्बन्धी दशाओं और व्यवसाय से सम्बन्धित परिवर्तन एवं उन्नति से सम्बन्धित होती थीं।

मनोविज्ञान एवं मनोचिकित्सा विज्ञान में जो विकास हुआ उसका प्रभाव समाज कार्य की प्रणालियों एवं अभ्यास पर पड़ा। इन विचारों के प्रभाव से समाज कार्य की रूचि आर्थिक एवं सामाजिक कारकों से हटकर सेवार्थी की मनोवैज्ञानिक एवं संवेगात्मक समस्याओं की ओर केन्द्रित हुई और उसकी प्रतिक्रियाओं, सम्प्रेरणाओं एवं मनोवृत्तियों को अधिक महत्व दिया जाने लगा। विशेष प्रकार से सिगमन्ड फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सम्बन्धी सिद्धांतों ने सामाजिक वैयक्तिक समाज कार्य को प्रभावित किया और वैयक्तिक समाज कार्य में मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रयोग होने लगा।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दस वर्षों में समाज कार्यकर्ताओं का प्रयोग सामान्य चिकित्सालयों में होने लगा। इसके पूर्व केवल मानसिक चिकित्सालयों में ही समाज कार्यकर्ताओं का प्रयोग होता था। सामान्य चिकित्सालयों में जो वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता नियुक्त किये जाते थे वे रोगी के रोग के विषय में जानकारी प्राप्त करके और उसकी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति का पता लगाकर चिकित्सक की निदान और चिकित्सा योजना बनाने में सहायता करते थे। इसके अतिरिक्त वे रोगी के परिवार के साधनों और समुदाय, सामाजिक संस्थाओं, नियोक्ताओं एवं मित्रों से सम्बन्धों का भी प्रयोग करते थे जिससे रोगी की चिकित्सा में सहायता मिल सके।

जब द्वितीय महायुद्ध हुआ तो अमेरिकन रेडक्रास ने ऐसे परिवारों की सहायता के लिए जिनके पति युद्ध पर गए हुए थे होम सर्विस डिवीजन्स स्थापित किये। यहां जो परिवार आते थे उन्हें आर्थिक सहायता की उतनी आवश्यकता नहीं होती थी जितनी मनोवैज्ञानिक और संवेगात्मक सहायता की। अतः सहायता के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता थी। इसी कारण और भी अधिक समाज कार्यकर्ताओं की

रूचि पर्यावरण सम्बन्धी कारकों से हटकर अधिकतर मनोवैज्ञानिक कारकों की ओर हुई।

युद्ध के कारण अनेक प्रकार के मनोविकार सामने आने लगे। विशेषतया ''शेल–शाक'' से प्रभावित व्यक्ति रोगी बनकर आने लगे। अतः मनोचिकित्सात्मक समाज कार्यकर्ताओं की अधिक आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए पहली बार 1918 में स्मिथ कालेज में साइकिट्रिक सोशल वर्कर्स प्रशिक्षिण दिया जाने लगा। इस समय मनोचिकित्सकों का इतना अभाव था कि मनोविकार की चिकित्सा में मनोचिकित्सात्मक समाज कार्यकर्ताओं को पर्याप्त उत्तरदायित्व दिया जाने लगा और वे सेना के मनोचिकित्सकों से घनिष्ठ सम्पर्क रखते हुए कार्य करने लगे।

फ्रायड के सिद्धान्तों ने यह सिद्ध कर दिया था कि बहुधा मनुष्य का व्यवहार भावनाओं पर आधारित होता है और व्यक्ति को स्वयं अपनी सम्प्रेरणाओं का ज्ञान नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह बात भी स्पष्ट हो गई थी कि बाल्यावस्था की घटनाओं का प्रभाव व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण रूप से पड़ता है और बहुत कुछ व्यक्तित्व का विकास प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों के अनुसार होता है। इन सब सिद्धान्तों से समाज कार्यकर्ताओं को जो नवीन ज्ञान प्राप्त हुआ उसे उन्होंने अपने अभ्यास में प्रकट करने का प्रयत्न किया।

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ताओं ने अनुभव किया कि सेवार्थी के व्यक्तित्व सम्प्रेरणाओं एवं भावनात्मक आवश्यकताओं को समझने के लिये अधिक विस्तृत सूचना प्राप्त करने की आवश्यकता है। इस प्रकार मानवीय व्यवहार की मनोवैज्ञानिक व्याख्या उच्चतर प्रकार से की जाने लगी और आर्थिक समस्याओं का भी अधिक विषयात्मक रूप से मूल्यांकन किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप वैयक्तिक समाज कार्य में एक प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण का प्रवेश हुआ जिसके अनुसार सेवार्थी को एक मनुष्य के रूप में देखते हुए उसके वैयक्तिक महत्व एवं मूल्य की प्रतिष्ठा की जाने लगी। वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी को उसके वास्तविक रूप में स्वीकृत करने लगे और इस बात का ध्यान रखने लगे कि सेवार्थी को सूचना देने के लिए बाध्य न किया जाये। आरम्भ में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ताओं ने कुछ निष्क्रियता का दृष्टिकोण ग्रहण किया और अधिकतर सेवार्थी के वर्णन पर ही विश्वास करते रहे परन्तु 1930 के उपरान्त वैयक्तिक समाज कार्यकर्ताओं ने पूर्ण निष्क्रियता एवं पूर्ण अधिकार की परस्पर विरोधी सीमाओं के बीच एक संतुलित स्थान ग्रहण किया। अर्थात् जहाँ आवश्यकता समझी वहां अधिकार का प्रयोग करने में कोई संकोच न किया।

स्व मूल्याकंन हेतु प्रश्न

1. फ्रायड के सिद्धान्तों ने यह सिद्ध कर दिया था कि बहुधा मनुष्य का व्यवहार. .... पर आधारित होता है
2. वैयक्तिक समाज कार्य में सेवार्थी के..................के सिद्धान्तों को बड़ा महत्व प्राप्त हुआ है।
3. चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी आन्दोलन का आधार .... के विचारों पर था।
4. वैयक्तिक समाज कार्य से सम्बन्ध रखने वाली अधिकांश समस्यायें .... होती है।
5. वैयक्तिक समाज कार्य में.........अंगभूतों का उल्लेख किया गया हैं।
6. वैयक्तिक समाज कार्य................व्यक्ति का................ उपचार है।
7. वैयक्तिक समाज कार्य– समाज कार्य की................ प्रणाली हैं।

1.9 सार संक्षेप

वैयक्तिक समाज कार्य में सेवार्थी के आत्म–निर्देशन के सिद्धान्तों को बड़ा महत्व प्राप्त हुआ है। यह समझा जाता है कि सेवार्थी की समस्या को स्थाई रूप से सुलझाने के लिये उसका सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त होना और उसकी रूचि को सामने रखना आवश्यक है। वर्तमान वैयक्तिक समाज कार्य में अहं शक्ति को बड़ा महत्व प्राप्त है क्योंकि यह स्पष्ट हो चुका है कि व्यक्तित्व को संतुलित रखने में अहं शक्ति का बड़ा हाथ है। आधुनिक कार्यकर्ता सेवार्थी के भूमिका सम्बन्धी कार्य सम्पादन और भूमिका सम्बन्धी आंकाक्षाओं को भी बड़ा महत्व देते हैं और साथ ही साथ वे सेवार्थी के सामाजिक पर्यावरण और दशाओं का उसकी निराशाओं, मानसिक तनाव एवं भय से सम्बन्ध जानने का भी प्रयास करते हैं। आधुनिक वैयक्तिक समाज कार्य में सामाजिक समायोजन को भी बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता है और समायोजन की योग्यता को विकसित करने के लिये वैयक्तिक एवं पारिवारिक परामर्श पर बल दिया जाता है

1.10 अभ्यास प्रश्न

1 वैयक्तिक समाज कार्य को परिभाषित कीजिये ?

2 वैयक्तिक समाज कार्य की विशेषताओ की व्याख्या कीजिये ?

3 वैयक्तिक समाज कार्य के उद्देश्यों को समझाइये ?

4 वैयक्तिक समाज कार्य की प्रकृति का वर्णन कीजिये ?

5 वैयक्तिक समाज कार्य के अंगभूत पर टिप्पणी कीजिये ?

6 वैयक्तिक समाज कार्य की मौलिक मान्यताओं का वर्णन कीजिये ?

1.11 पारिभाषिक शब्दावली

वयैक्तिक अध्ययन	Case Work	संगठन	Organisation
नेतृत्व	Leadership	संस्था	Society
मंत्रणा/परामर्श	Counselling	व्यवसाय	Profession
दानार्थ	Charity	मनवतावादी	Humanitarian
आत्मनिर्णयात्मक	Selfdecesion	स्वयं सहायता	Self help
परिवर्तन	Change	समायोजन	Adjustment
समस्याएं	Problems	सेवार्थी	Client
मनोसामाजिक	Psychosocial	अभिवृत्ति	Attitude

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेष हिन्द संस्थान लखनऊ।

2. डा. कृपाल सिंह सुदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पटिलकेशन्स, लखनऊ।

3. आर0के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम प्रकाशन : रावत, नई दिल्ली।

4. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।

5. डा0 सुरेन्द्र सिंह व डा0 पी0डी0 मिश्र, समाज कार्य : इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियॉ संशोधित संस्करण, न्यू रॉयल बुक कम्पनी, लखनऊ।

इकाई– 2

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के उपागम

Approaches in Social Case Work

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के उपागम

2.3 मनोसामाजिक उपागम

2.4 पावलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त

2.5 मनोचिकित्सकीय समाज कार्य

2.6 चिकित्सकीय समाज कार्य

2.7 वैयक्तिक सेवाकार्य में समस्या की प्रकृति

2.8 निदान तथा उपचार

2.9 सार संक्षेप

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.11 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे–

- सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के मुख्य उपागम के बारे में जान सकेंगे।
- चिकित्सीय समाज कार्य एवं मनोचिकित्सीय समाज कार्य के बारे में जान सकेंगे।
- वैयक्तिक सेवा कार्य में समस्या की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- सेवार्थी का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

2.1 परिचय

इस इकाई में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के मुख्य उपागम के बारे में विस्तार से बताया गया है तथा चिकित्सीय समाज कार्य एवं मनोचिकित्सीय समाज कार्य की जानकारी दी गई है। वैयक्तिक सेवा कार्य में समस्या की प्रकृति को समझाया गया है एवं सेवार्थी के मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन की व्याख्या की गई है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में निदान तथा उपचार के चरणों की भी विवेचना है।

2.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के उपागम

व्यक्तिगत समाज कार्य में उपचार की प्रक्रिया के विकास में बहुत से सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता आया है। इन सिद्धान्तों का आधार विभिन्न समाज विज्ञानियों के विचार हैं जो समय– समय पर सामने आते रहे है। मनोविज्ञान, मनोरोगाविज्ञान, समाजशास्त्र के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर समाज कार्य के अभ्यासकर्ताओं ने अपने क्षेत्रीय अनुभवों और अनुसंधान कार्य के प्रयोग के बाद इन सिद्धान्तों को विकसित किया है। इन सिद्धान्तों के विकास में उस समय की प्रचलित विचारधाराओं का प्रभाव भी देखने में आता है। विभिन्न विचारकों के आपसी मतभेद भी सिद्धान्तों के विकास में अपनी भूमिका निभाते आये हैं। प्रत्येक सामाजिक विज्ञान के ज्ञान में समय के अनुसार वृद्धि ने भी सिद्धान्तों को प्रभावित किया है। व्यक्तिगत समाज कार्य के उपचार के यह सब उपागम या दृष्टिकोण या शैलियां समय–समय पर प्रतिपादित इन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है। ये सिद्धान्त या उपागम निम्नलिखित है।

2.3 मनोसामाजिक उपागम

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में ज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ सिद्धान्तों एवं प्रत्ययों में भी परिवर्तन होता रहा है। सन् 1937 ई0 में गार्डन हैमिल्टन ने पहला लेखा 'बेसिक कान्सेप्ट्स इन सोशल केसवर्क' लिखा। यही प्रत्यय आगे चलकर निदानात्मक सम्प्रदाय के नाम से जाना जाने लगा। उनके अनुसार मनोसामाजिक सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता है। "विचार व्यवस्था का खुलापन" इसमें नये ज्ञान, नवीन आँकड़ों तथा नये अनुभवों के द्वारा परिवर्तन आता रहता है।

सन् 1941 ई0 हैमिल्टन का दूसरा लेख "दि अण्डरलाइंग फिलॉसफी ऑफ सोशल केसवर्क" प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने निदानात्मक तथा कार्यात्मक सम्प्रदायों में अंतर स्पष्ट किया। उन्होंने अपने लेखों में मनोसामाजिक सिद्धान्त का उल्लेख किया। आज यही सिद्धान्त व्यवस्था सिद्धान्त उपागम बन गया है। इस सिद्धान्त में निदान तथा उपचार का कार्य व्यक्ति की सम्पूर्ण स्थिति का अवलोकन, निरीक्षण एवं प्रशिक्षण के बाद किया जाता है। उसकी सम्पूर्ण स्थितियों का अध्ययन किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस व्यक्ति की सहायता करनी है, उपचार करना है, उसकी बाह्य पर्यावरण के प्रति अन्तःक्रियाओं को समझना आवश्यक होगा इसके साथ ही साथ बाह्य पर्यावरण के विशय में भी जिससे व्यक्ति सम्बन्धित है, ज्ञान प्राप्त करना होगा। यह उसका सम्पूर्ण परिवार हो सकता है, परिवार का कोई व्यक्ति विशेष हो सकता है। सामाजिक समूह, शिक्षा संस्था, कार्यस्थल या अन्य कोई सामाजिक व्यवस्था का अंग हो सकता है। मनोसामाजिक व्यवस्था का अंग हो सकता है। मनोसामाजिक सिद्धान्त का निरूपण फ्रायड के व्यक्तित्व व्यवस्था में किया गया है।

2.3.1 उपागम का विकास

मनोसामाजिक उपागम का विकास मेरी रिचमण्ड के कार्यो से हुआ। उन्होंने अहं मनोविज्ञान तथा सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में घनिष्ट संबंध स्थापित किया। धीरे–धीरे इस उपागम में सामाजिक आर्थिक घटनाओं का प्रभाव पड़ा जिसमें परिवर्तन आया। सन् 1926 ई. के लगभग फ्रायड का मनोविश्लेषण का सिद्धान्त इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। इसके अतिरिक्त मेरियोफेन–वर्थी न्यूयार्क स्कूल आप सोशल वर्क, बेटसेलिब्बे फेमिली सोसाइटी ऑफ फिलडेल्फिया, गार्डन हैमिल्टन, बेरथारिनोल्ड, चारलेट टावले, फ्लोरेन्सडे, फर्नलोरी, लुखले आस्टिन, एनेट गैरेट, आदि के कार्यो ने मनोसमाजिक उपागम के विकास में सहयोग दिया।

2.3.2 व्यावहारिक विज्ञान आधार

मनोसामाजिक उपागम में अनेक स्त्रोतों से तत्व लिये गये है। व्यववहारिक उपयोग के योगदान का इसमें विशेष महत्व रहा है जो लोग इस क्षेत्र में काम करते थे उनके कार्यो ने विशेष भूमिका निभायी।

वैयक्तिक कार्यकर्ताओं के व्यक्तिगत अनुभव एवं प्रयास के परिणाम स्वरूप इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रभाव इस उपागम पर विशेष पड़ा। फ्रायड, अन्ना फ्रायड, एलेक्जण्डर, फ्रेन्य कार्डिनर इरिक सेन, हार्टमैन आदि के मनोविश्लेषण सम्बन्धी कार्यो ने इस उपागम के विकास में सहयोग दिया। मनोवैज्ञानिकों में पाइगेट का नाम प्रमुख है। डोलार्ड, आलपोर्ट, मरे आदि के विचारों को भी सम्मिलित किया गया है। गैस्टाल्ट मनोविज्ञान के विचारों को इसमें महत्व दिया गया। सामाजिक विज्ञानों का भी इस उपागम पर विशेष प्रभाव पड़ा। परिवार के महत्व का ज्ञान, बालक के पालन पोषण पर सामाजिक कारकों का प्रभाव, वैवाहिक तथा लैंगिक व्यवहार समबन्धी सामाजिक विचारों की सहायता की। सांस्कृतिक मानव विज्ञान का उपयोग व्यक्तित्व को समझने में किया गया। भूमिका व्यवहार के ज्ञान को भी सम्मिलित किया गया।

2.3.3 मनोसामाजिक उपागम के मूल्य

इस उपागम के निम्नलिखित महत्वपूर्ण मूल्य है :–

1. सेवार्थी की स्वीकृति : कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता उसके हित तथा कल्याण के लिए करता है। उसको महत्व देता है तथा उसकी भावनाओं का आदर करता है।
2. सम्बन्ध सम्मान केन्द्रित होता है। सेवार्थी की आवश्यकताएँ महत्वपूर्ण होती है।
3. कार्यकर्ता जहाँ तक सम्भव होता है विषयात्मक रूप से सेवार्थी की समस्या का मूल्यांकन करता है। व्यक्तिगत भावनाओं को इससे दूर रखता है।
4. सेवार्थी को अपना स्वयं निर्णय लेने का अधिकार होता है तथा उसमें आत्म–निर्देशन शक्ति को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।
5. कार्यकर्ता अपने सेवार्थी तथा अन्य की अर्न्तनिर्भरता को स्वीकार करता है और विश्वास करता है कि कभी–कभी आत्म निर्देशन की सीमा को कम करना आवश्यक होता है जिससे दूसरों को तथा सेवार्थी को हानि न हो सके।

2.3.4 मनोविश्लेषणात्मक उपागम

मनोविश्लेषणात्मक उपागम **फ्रायड** के व्यक्तित्व के सिद्धान्त पर आधारित है। फ्रायड ने अपने विचारों का प्रतिपादन करते हुए बताया कि व्यक्तित्व के विकास में

किस प्रकार व्यक्तितत्व के विभिन्न अंग/भाग आपस में संघर्ष करते है। इड अहम और पराहम को व्यक्तित्व की एक स्थिति संरचना के रूप में देखा गया है। फ्रायड का मत है कि संघर्ष का उपचार तभी हो सकता है जब व्यक्ति के 'अचेतन' मन को प्रकट किया जाये और संघर्ष के सभी पक्षों को चेतन मन के स्तर पर सामने लाया जाये।

फ्रायड का मत है कि दमन ही व्यक्तित्व– संबंधी समस्याओं की सबसे बड़ी घटना है। इसलिए चिकित्सक का मौलिक चिकित्सा सम्बन्धी कार्य इन्हीं दमित भावनाओं/आवश्यकताओं/समस्याओं से भुगतना है। फ्रायड ने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में यौन–मूल प्रवृत्ति को केन्द्रीय स्थान दिया है।

2.3.5 समस्या समाधान उपागम

समस्या समाधान उपागम का विकास **हेलेन हेरिस, पर्लमैन** द्वारा शिकागों विश्वविद्यालय के समाज कल्याण प्रशासन के तत्वावधान में सन् 1957 में हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार सेवार्थी, चाहे वह व्यक्ति अथवा परिवार दोनों की क्षमताओं में वृद्धि करना सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य है। सेवार्थी की दो प्रकार की समस्याएँ प्रायः होती हैः **सम्बन्धों को स्थिर रखने तथा स्थायित्व प्रदान करने में समस्या, भूमिका पूरी करने में समस्या**। समस्या का आभास उस समय होता है जब व्यक्ति के अपने समस्या समाधान के तरीके समस्या समाधान करने में असफल हो जाते है। अतः वह संस्था में मनोवैज्ञानिक, भौतिक सामाजिक अथवा अन्य प्रकार की सहायता के लिए आता है जिससे समस्या का समाधान उचित ढंग से कर सके।

समस्या समाधान के निम्नलिखित साधन है उनमें जब कमी अथवा गतिरोध होता है तभी व्यक्ति अपना समायोजन उचित ढंग से करने में असफल होता है।

1. सम्प्रेरणा :–

   अवांछित तरीकों से समस्या के संदर्भ में कार्य करना।

2. क्षमता :–

   अवांछित तरीकों से अपनी क्षमता का समस्या समाधान में उपयोग करना।

3. अवसर :–

   समस्या समाधान के उचित अवसर प्रत्यक्षीकरण में कमी।

ये साधन इस प्रारूप का मूल केन्द्र है। अतः कार्यकर्ता निम्न भूमिका पूरी करने का प्रयत्न करता हैः

1. सेवार्थी की सम्प्रेरणा में परिवर्तन लाने के लिए कार्यकर्ता दिशा प्रदान करता है, शक्ति प्रदान करता है तथा निर्देशन देता है। इस अर्थ में समस्या समाधान प्रारूप का उद्देश्य सेवार्थी के भय एवं चिन्ता को कम करना तथा इस प्रकार से आलम्बन प्रदान करना जिससे अहं सुरक्षात्मक यन्त्रों का कम से कम उपयोग सेवार्थी करे साथ ही साथ पुरस्कार आशा में वृद्धि करना और इस प्रकार अहं शक्ति का समस्या समाधान में अधिक दृढ़ता के साथ लगाना।
2. सेवार्थी की मानसिक, सांवेगिक तथा क्रियात्मक क्षमताओं द्वारा समस्या समाधान में कई बार अभ्यास कराना जिससे सेवार्थी में विश्वास दृढ़ हो जाए।
3. उन स्त्रोतों तथा सहायता को सेवार्थी की पहुँच में लाना जो समस्या समाधान के लिए आवश्यक है।

समस्या समाधान प्रारूप निम्न बातों को महत्वपूर्ण मानता है:–

1. समस्या का ज्ञान सेवार्थी को अवश्य होना चाहिए।
2. समस्या के प्रति सेवार्थी के व्यक्तिगत अनुभवों का ज्ञान होना आवश्यक है।
3. व्यक्ति के जीवन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।
4. समस्या समाधान के साधनों का ज्ञान तथा विकल्पों का निर्धारण भी आवश्यक है।

2.3.6 समस्या समाधान उपागम के लक्ष्य समूह तथा उद्देश्य

इस प्रारूप का कोई विशेष प्रकार का समूह या व्यक्ति नहीं है जिसकी सहायता करना चाहता है। पर्यावरणीय समस्याओं का उपचार तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उपचार पृथक–पृथक नहीं माना जाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति की सहायता की जाती है। वह चाहे बाह्य कारकों से ग्रसित हो अथवा व्यक्तित्व में किसी विशेष गुण की कमी के कारण कठिनाई अनुभव कर रहा है, समस्या समाधान प्रारूप का यह दृढ विश्वास है कि जीवन में अनेक समस्याएँ आती है और जीवन ही समस्या समाधान करने की प्रक्रिया है। जीवन के प्रत्येक स्तर पर परेशानियाँ आती है। प्रत्येक क्षण नयी– नयी समस्याओं से जूझना पड़ता है। इसके लिए उसे नयी प्राविधियों एवं ज्ञान की आवश्यकता होती है जिससे वह इनका समाधान कर सके। कभी–कभी ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक

कार्यकर्ता व्यक्ति की सहायता करता है जिससे वह कार्यो एवं सम्बन्धों को पूरा करने योग्य हो जाता है और स्वयं में दक्षता आ जाती है।

अंग :–

समस्या समाधान प्रारूप के चार अंग

1) व्यक्ति

2) समस्या

3) स्थान

4) प्रक्रिया

2.3.7 व्यक्तिः–

संस्था में सहायता लेने वाला व्यक्ति सेवार्थी कहलाता है। यद्यपि वह अन्य व्यक्तियों के समान ही होता है परन्तु कुछ भिन्नताएँ उस समय प्रकट होती है जब सेवार्थी को एक व्यक्ति के रूप में देखने का प्रयत्न करते है। समस्या चाहे उसकी सामाजिक हो, मनोवैज्ञानिक हो अथवा सांवेगिक वह प्रत्येक स्थिति में पूर्णतः में प्रतिक्रिया करता है। सेवार्थी जब संस्था में आता है तो उसका उद्देश्य उसकी मनोसामाजिक समस्या का समाधान प्राप्त करना होता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी का सामाजिक अनुकूलन दिलाता है। ऐसा करने के लिए वह सेवार्थी के व्यवहार को प्रभावित करता है।

वैयक्तिक कार्यकर्ता को सेवार्थी के व्यवहार के सम्बन्ध में निम्न जानकारी आवश्यक होती है–

1. व्यक्ति विशिष्ट व्यवहार का अर्थ एवं उद्देश्य अर्थात् वह क्या चाहता हैः

   I) संतोष प्राप्त करना

   II) भग्नाशा दूर करना या

   III) समस्या समाधान करना या

   IV) कार्यात्मक सन्तुलन प्राप्त करना।

   वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह सेवार्थी के व्यवहार का सूक्ष्म–से–सूक्ष्म अवलोकन करे।

2. व्यवहार की प्रभावात्मकता का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। व्यक्तित्व संरचना का इससे पता चलता है। व्यक्तित्व संरचना पर प्रभाव डालने वाली संस्थाओं, एवं कारकों की कार्य पद्धति एवं प्रभावात्मकता का ज्ञान सहायता के लिए आवश्यक होता है।

   व्यक्तित्व पर न केवल पूर्व स्थितियों का प्रभाव पड़ता है बल्कि वर्तमान अनुभव भी अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह सेवार्थी की वर्तमान जीवन पद्धति व स्थितियों से अवगत हो। उन वास्तविकताओं का ज्ञान प्राप्त करें, जिनसे सेवार्थी कष्ट में है।

   विगत अनुभवों के साथ– साथ भविष्य की आकांक्षाएँ तथा इच्छाएँ भी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह सेवार्थी की भविष्य की योजना समझे तथा ज्ञान प्राप्त करे कि उसकी कहाँ तक सहायता की जा सकती है।

3. संस्था में आने वाला व्यक्ति सदैव दवाब अनुभव करता है यह दवाब दो प्रकार का होता है:

   I) सेवार्थी जिसको स्वयं समस्या मानता है तथा दवाब एवं तनाव अनुभव करता है

   II) असमर्थता की स्थिति जिससे दवाब एवं तनाव बढ़ता है। समस्या का रूप चाहे जो हो– असफलता, आंतरिक संघर्ष, भूमिका आपूर्ति, उद्देश्य प्राप्त करने में बाधाएँ, व्यक्ति दबाव का अनुभव करता है। जिसके कारण अहं की शक्ति, समस्या समाधान करने में क्षीण हो जाती है।

4. व्यक्ति एक शारीरिक–मनो– सामाजिक संगठन है, अतः जब कोई एक अंग प्रभावित होता है तो उसका प्रभाव सभी अंगों पर पड़ता है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह सेवार्थी की शारीरिक व मनोसामाजिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करे।

2.3.8 समस्या

समस्या, कोई एक या एक से अधिक आवश्यकता होती है जो व्यक्ति की जीवनचर्या में व्यवधान तथा कष्ट उत्पन्न कर देती है। समस्या उस समय उत्पन्न होती है। जब व्यक्ति सामाजिक भूमिका पूरी करने में बाधा अनुभव करता है तथा वह अपने को समस्या समाधान करने में असमर्थ पाता है। संस्था में आने का सेवार्थी का उद्देश्य सहायता प्राप्त करना है जिससे वह अपनी भूमिका को पूरा कर सके।

अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता का कार्य सेवार्थी की भूमिका ग्रहण करने तथा पूरी करने में सहायता करना है। कार्यकर्ता सेवार्थी की आंतरिक समस्याओं के समाधान के लिए मनोचिकित्सा का उपयोग करता है। समस्या के चुनाव में कार्यकर्ता तीन बातों पर ध्यान देता हैः–

I) सेवार्थी क्या चाहता है या उसकी प्रमुख आवश्यकता क्या है?
II) कार्य कर्ता क्या महत्वपूर्ण समझता है?
III) संस्था में कौन–कौन सी सुविधाएँ उपलब्ध है?

कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह अपना कार्य वहाँ से प्रारम्भ करे जहाँ से सेवार्थी इच्छा रखता है परन्तु अपने अनुभव द्वारा समस्या के केन्द्रबिन्दु पर पहुँचें।

समस्या समाधान की प्रक्रिया के दो चरण है :

I) समस्या विश्लेषण चरण
II) निर्णय प्रक्रिया

समस्या विश्लेषण में निम्न बातों का ज्ञान आवश्यक है।

1. आशातीत कर्तव्यपूर्ति का स्तर तथा वास्तविक कर्तव्यपूर्ति में अन्तर।
2. स्तर से व्यवहार का विचलन या भूमिका की अपूर्णता।
3. भूमिका का स्पष्ट अवलोकन, प्रत्यक्षीकरण तथा उसका विवरण।
4. समस्या उत्पन्न करने वाले कारकों के प्रभाव में परिवर्तन।
5. प्रमुख कारकों की खोज जो समस्या उत्पन्न करने में सक्रिय रहा है।

निर्णय प्रक्रिया में उद्देश्यों का स्पष्टीकरण, महत्व के आधार पर उद्देश्यों का वर्गीकरण समाधान के वैकल्पिक उपाय, उपायों का मूल्यांकन तथा निर्णय के सम्भावित प्रभाव आदि ज्ञात करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है।

2.3.9 संस्था :–

सेवार्थी जिस स्थान पर सहायता के लिए आता है उसे **सामाजिक संस्था** कहते है। वैयक्तिक कार्य केवल संस्था के माध्यम से सम्पन्न होता है और सेवार्थी की समस्या का समाधान संस्था के माध्यम से होता है। सामान्यतः सहायता के लिए आवश्यक भौतिक और प्राविधिक उपकरण, विशिष्ट सेवा, आर्थिक सहायता आदि की व्यवस्था संस्था से ही की जाती है। संस्था समाज की इच्छा या विशिष्ट समूह की इच्छा को स्पष्ट करती है। यह एक कार्यक्रम का विकास करती है जिसके द्वारा एक

विशेष क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। इसमें कार्य, उत्तरदायितत्व, कार्य के ढंग तथा नीतियाँ निश्चित होती है। संस्था का प्रत्येक कर्मचारी संस्था के प्रति उत्तरदायी होता है। उसका उत्तरदायित्व संस्था के कार्यो को पूरा करना होता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता संस्था का प्रतिनिधित्व व्यक्तिगत अधिकार के रूप में समस्या समाधान के लिए करता है वह यद्यपि संस्था का प्रतिनिधि होता है परन्तु अपने व्यवसाय का प्रतिनिधित्व पहले करता है। कार्यकर्ता संस्था में काम करता है, सेवार्थी संस्था में आता है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कार्यकर्ता केवल संस्था का अंग होकर ही कार्य कर सकता है। वह संस्था के साधनों एवं श्रोतों का उपयोग, समस्या समाधान के लिए करता है। अपनी उन विधियों ,कार्य प्रणालियों तथा कार्यक्रमों का उपयोग करता है जिनको उसने अपने व्यवसाय से ग्रहण किया है।

2.3.10 प्रक्रिया

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य प्रक्रिया, मूल रूप से समस्या समाधान करने वाली प्रक्रिया है। लेकिन सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान इस प्रक्रिया द्वारा सम्भव नहीं होता है। केवल आन्तरिक तथा बाह्य समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं को इसकी परिधि में रखा जाता है। सारांश में वैयक्त्कि सेवाकार्य प्रक्रिया दो प्रकार की समस्याओं से सम्बन्धित है। असन्तोष के स्थान पर संतोष दिलाना वर्तमान स्थिति से अधिक संतोष प्राप्त करना। तीन प्रकार के साधन सेवार्थी की सहायता करते हैं: **क–** चिकित्सात्मक संबंध, **ख–** कार्यप्रणाली का एक निश्चित रूप, **ग–** समाधान के अवसर। इन साधनों की सहायता से न केवल व्यक्ति की मनोसामाजिक समस्याओं को सुलझाया जाता है वरन् व्यक्ति की क्षमताओं का यथासम्भव अधिकतम विकास कर उसे इस योग्य बनाया जाता है कि वह आत्मनिर्भर होकर अधिकतम सुख एवं संतोष प्राप्त कर जीवनयापन कर सके। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत कार्यकर्ता को मुख्यतः तीन कार्य करने होते है: सेवार्थी की समस्या व्यक्तित्व और सामाजिक पर्यावरण से संबंधित तथ्यों का अध्ययन, समस्या का निदान तथा सहयोग द्वारा आन्तरिक व बाह्य समस्या का उपचार।

2.3.11 व्यावहारिक–परिष्कृत परिवर्तन उपागम

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता का मूल रूप से कार्य सेवार्थी के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। अतः व्यावहारिक परिष्कृत परिवर्तन प्रारूप का महत्व इस क्षेत्र में समझा जाने लगा। वर्तमान समय में प्रत्यक्ष उपचार के रूप में भी इसकी उपयोगिता को आंका गया तथा प्रयोग भी किया जाने लगा।

व्यवहारवादी प्रारूप के प्रभाव के परिणामस्वरूप डोलार्ड मिलर, मोरर, शोवेन,ने सीखने की प्रक्रिया तथा मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त व्यक्तित्व विकास तथा मनोचिकित्सात्मक प्रयोग में संबंध को स्पष्ट किया। स्किनर तथा उनके अनुयायियों (लिंडसले, आइलोन, गोलडायमण्ड, अजरिन, प्रीमैक) के क्रियावादी व्यवहार पर अनुसंधान कार्य किया। वोल्पे के प्रयोग ने इस दिशा में विशेष योगदान प्रदान किया। व्यवहारवादी प्रारूप के विकास का श्रेय इवान पावलव को है लेकिन इसके विस्तार का श्रेय ई.एल थार्नडाइक Thorndike तथा बी.एफ स्किनर को है।

2.4 पावलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त

पावलव ने सन् 1904 में विशेष प्रयोगिक अनुसंधान किये। आपका विश्वास था कि सम्बन्ध प्रतिक्रिया द्वारा सीखने की क्रिया के बहुत से रूपों की व्याख्या सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस सिद्धान्त में उत्तेजना और प्रतिक्रिया का सम्बद्ध होना ही सीखना होता है। पावलव के प्रयोग का विषय कुत्ते के मुँह से लार गिरने की क्रिया का निरीक्षण है। यह लार भोजन न मिलने पर उसके प्रत्यक्ष तथा गन्ध से भी गिरने लगती है। यह प्रतिक्रिया भूख की अवस्था में भोजन का मुख से होना होता है। जब यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक उत्तेजक से भिन्न किसी अन्य उत्तेजक (गन्ध, दृष्टि आदि) से उत्पन्न होती है, उसे **सम्बद्ध उत्क्षेप** कहते है।

इन सम्बन्ध में अपने कुत्ते पर प्रयोग किया भोजन को देखने से लार बहने की प्राकृतिक प्रतिक्रिया को पावलव ने घण्टी बजने की कृत्रिम उत्तेजक से सम्बन्धित कर दिया। अपने कुत्ते को खाना देने से पहले कई दिन घण्टी बजायी और उसके बाद खाना प्रस्तुत किया गया। इसके बाद केवल घण्टी बजायी गयी पर खाना नहीं दिया गया फिर भी लार बहने की प्रतिक्रिया को देखा गया। इसमें घण्टी की कृत्रिम उत्तेजक ने लार बहने की प्राकृतिक क्रिया को नियंत्रित कर दिया। पावलव ने सम्पूर्ण सीखने को इसी प्रकार की सम्बद्धता कहा है। जो कृत्रिम प्रतिक्रिया को प्राकृतिक उत्तेजको के साथ सम्बद्ध करती है।

अनेक प्रयोग चूहों, कुत्तो, बिल्लियों ,बन्दरों तथा वनमानुशों पर किये और इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रयोगात्मक सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा जब किसी पशु को उसकी क्षमता से परे विभेद करने के लिए विवश किया गया तो उनमें स्नायुविक अवरोध के समान स्थिति उत्पन्न हुई जिसको आज **प्रयोगात्मक विकृति** की संज्ञा देते है।

इस प्रकार पावलव ने प्रयोगों के आधार पर मानव की मानसिक व्याधियों के संबंध में एक नया दृष्टिकोण विकसित किया। उनका विचार इस तथ्य पर आधारित था कि सम्बद्ध प्रत्यावर्तन की प्रविधि द्वारा जिस प्रकार का व्यवहार पशु प्रदर्शित करते हैं उसी प्रकार व्यक्ति भी दबाव, तनाव एवं कष्टप्रद मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के समय व्यवहार प्रदर्शन करता है। पावलव ने कुत्तों में तीन प्रकार की सामान्य प्रतिक्रियाओं का आवलोकन किया था। I) उत्तेजनात्मक II) निषेधात्मक, केन्द्रीय प्रत्येक प्रकार की प्रतिक्रिया से भिन्न–भिन्न प्रकार की प्रयोगात्मक मनो–स्नायु विकृतियाँ उत्पन्न हुई थी। उदाहरण के लिए उत्तेजनात्मक प्रकार के पशु को जब विभेदीकरण योग्यता से परे कार्य करने के लिए विवश किया गया तो उसमें (अवसाद) या उत्तेजना के लक्षण उत्पन्न हुए। ये लक्षण एवं प्रतिक्रियाएँ व्यक्ति में उत्पन्न उन्मुक्त अवसाद की प्रतिक्रियाओं के समान ही थी। निषेधात्मक प्रकार के पशुओं में समान परिस्थितियों में मनोविदलता के समान प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुई तथा केन्द्रीय प्रकार के पशुओं में मिश्रित प्रकार की प्रतिक्रियाएँ देखी गयी।

व्यक्ति के व्यवहार के संबंध में पावलव ने अपने उपलिर्खित सिद्धान्त को कुछ परिवर्तित करके प्रस्तुत किया। उन्होंने व्यक्तित्व को दो भागों में वर्गीकृत किया:

1- **कला प्रधान**– व्यक्ति ऐसे व्यक्ति बाह्य उत्तेजना के प्रति अति प्रत्युत्तर करते है।

2- **विचार प्रधान**–ऐसे व्यक्ति शान्तिप्रिय होते है तथा विचारों के प्रति प्रत्युत्तर करते है। कला प्रधान व्यक्ति मानसिक व्यवधान की दशा में उन्माद तथा उन्माद–अवसाद से पीड़ित होते है जबकि विचार प्रधान व्यक्ति बाह्य क्रिया–बाह्म विचार तथा मनोविदलता से पीड़ित होते हैं।

पावलव का अधिकांश कार्य **स्नायुविक कार्यात्मक के सम्बन्ध में व्यक्तिगत विभेदीकरण** पर निर्भर है। इसी विभिन्नता एवं विभेदीकरण के कारण व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ भिन्न–भिन्न होती है तथा भिन्न–भिन्न मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है।

थार्नडाइक का योगदान

थार्नडाइक ने सीखने के नियमों की रचना की ये नियम है–

1) तत्परता का नियम

2) अभ्यास का नियम

3) प्रभाव का नियम

जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए स्वयं प्रेरित होता है तो वह कार्य क्रिया उसक लिये आनन्ददायी होती है। इसके विपरीत जब उसकी इच्छा के विरूद्ध बाध्य किया जाता है तो वह क्रोधित हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी स्थिति तथा प्रतिक्रिया में परिवर्तनात्मक सम्बन्ध बना दिया जाये तो इस संबंध की शक्ति बढ़ जाती है। विपरीत स्थिति में संबंध की शक्ति क्षीण हो जाती है। प्रभाव के नियम में थार्नडाइक ने बताया है कि जब किसी प्रतिक्रिया से सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त होते हैं तो वह प्रतिक्रिया दोहरायी जाती है। कष्टकारी परिणाम उत्पन्न होने की अवस्था में हम उस प्रतिक्रिया को नहीं दोहराते है। थार्नडाइक ने यह अवलोकन किया कि जिन प्रत्युत्तरों से पुरस्कारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं उनके सीखा जाता है इसके विपरीत जिनसे कष्टदायी एवं पीड़ाजनक परिणाम प्राप्त होते है उनको त्याग दिया जाता है। अतः व्यक्ति का व्यवहार दण्ड एवं पुरस्कार के द्वारा नियंत्रित होता है।

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने अनेक व्यवहार परिष्कृत परिवर्तन प्रविधियों का विकास किया है जिनके द्वारा असामान्य व्यवहार के लक्षणों को दूर किया जा सकता है। इन प्रविधियों में निम्न प्रमुख प्रविधियाँ हैः–

1. पर्यावरणीय दशाओं में सुधार।
2. सकारात्मक पुष्टीकरण का उपयोग।
3. निषेधात्मक सम्बद्धता।
4. पुष्टीकरण का प्रत्याहार।
5. असंगत भय उत्पन्न होने वाली दशाओं को संवेदनहीन कर देना।

2.4.1 व्यावहारिक संशोधन उपागम के सामान्य नियम

व्यावहारिक संशोधन उपागम के कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं–

1. उन्हीं प्रत्युत्तरों के सम्बन्ध में चिकित्सात्मक विधि अपनायी जाती है जिनका अवलोकन संभव होता है।

2. व्यवहार के दो रूप होते है : क्रियावादी व्यवहार तथा उत्तरवादी। व्यवहार अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक प्रकार के व्यवहार के लिए भिन्न–भिन्न सिद्धान्त लागू होते है। क्रियावादी व्यवहार पर्यावरण के प्रतिफल से नियंत्रित होता है जबकि उत्तरदायी व्यवहार प्रत्युतरों के उत्तेजनात्मक शक्ति से नियंत्रित होता है। क्रियावादी व्यवहार के सिद्धान्त सामान्य रूप से उत्तरवादी व्यवहार में लागू नहीं होते है यही बात इसके विपरीत में भी सही है। निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यवहार आशोधन सिद्धान्त की मूल धारणा यह है कि

जितना भी व्यवहार होता है वह एक सीखा हुआ व्यवहार होता है और इसे भुलाया जा सकता है। व्यवहार में प्रयत्यक्ष रूप से परिवर्तन लाने के लिये कई विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। ये विधियाँ है :–

1. सकारात्मक पुनर्वलन
2. नकारात्मक पुनर्वलन
3. व्यवस्थित विसुग्राहीकरण प्रतिरूपण और दूसरी विधियाँ

2.5 मनोचिकित्सकीय समाज कार्य

वैयक्तिक समाज कार्य का उपयोग मानसिक रोगियों के साथ अधिकाधिक किया जाने लगा है । अब यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि वैयक्तिक एवं अन्तर्वैयक्तिक समायोजन में जब कोई गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है तो मानसिक एवं साम्वेगिक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है । अतः जब औषधियों के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक परामर्श, सांवेगिक सहयोग अन्तर्दृष्टि, व्याख्या तथा अहं सम्बन्धी सहायता वैयक्तिक कार्यकर्ता से प्राप्त होती है तभी समस्या का समाधान हो पाता है।

2.6 चिकित्सकीय समाज कार्य

चिकित्सकीय समाज कार्य द्वारा रोगियों की अधिकाधिक चिकित्सकीय सुविधाओं को उपयोग करने में सहायता की जाती है । वर्तमान चिकित्सकीय अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अनेक शारीरिक रोग मनोवैज्ञानिक एवं साम्वेगिक असमायोजन के कारण उत्पन्न हो जाते है। इसके विपरीत शारीरिक रोग के परिणामस्वरूप भी अनेक समायोजन सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। वैयक्तिक सेवा कार्य के माध्यम से इन समस्याओं को सुलझाया जाता है । चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता पुर्नस्थापन में निम्नलिखित कार्य करता हैः–

1. रोगी किसी भी नये कार्य को आसानी से अपनाने के लिए तैयार नहीं होता है। व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए भी यह आवश्यक नहीं है कि वह तैयार हो ही जाय कार्यकर्ता रोगी कि उसकी समस्या का स्पष्टीकरण करके व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल देता है तथा उसका सहयोग ग्रहण करता है।

2. साक्षात्कार द्वारा कार्यकर्ता यह पता लगता है किन रोगियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
3. वह रोगी की कमियों तथा शक्तियों का पता लगता है।
4. वह उसकी सावेंगिक क्षमता का पता लगाकर निश्चित करता है कि वह किस कार्य को करने में समर्थ है।
5. रोगियों के लिए व्यावसायिक निर्देशन, प्रशिक्षण तथा रोजगार की योजना बनाता है।
6. रोगी की व्यक्तिगत समस्याओं से अवगत होता है।
7. रोगी की चिन्ता तथा पारिवारिक एवं समाजिक पर्यावरण का ज्ञान रखता है।
8. आर्थिक सहायता के लिए अनेक सामाजिक कल्याणकारी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करता है।
9. रोगी के सामाजिक समायोजन की समस्या भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। अनेक रोगियो को जितना कष्ट शायद रोग से नहीं होता है, उतना परिवार तथा समाज से होता है। यही कारण है कि समाज तथा सहयोग, रोगी मनुष्य के उपचार के लिए आवश्यक समझा जाता है।

2.7 वैयक्तिक सेवाकार्य में समस्या की प्रकृति

वैयक्तिक सेवाकार्य के अन्तर्गत मनो–सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है। सामाजिक समस्याओं के निदान तथा उपचार पर जोर दिया जाता है।

सन् 1941 ई0 में हैमिल्टन का दूसरा लेख **"दि अण्डरलाइंग फिलासफी आफ सोशल केसवर्क"** प्रकाशित हुआ। जिसमें निदानात्मक तथा कार्यात्मक सम्प्रदायों में अन्तर स्पष्ट किया। उन्होंने अपने लेखों में मनोसामाजिक सिद्धान्त का उल्लेख किया। इस सिद्धान्त में निदान तथा उपचार का कार्य व्यक्ति की सम्पूर्ण स्थिति का अवलोकन निरीक्षण एवं परीक्षण के बाद किया जाता है। उसकी सम्पूर्ण स्थितियों का अध्ययन किया जाता है। इसके अनुसार जिस व्यक्ति की सहायता करनी है, उपचार करना है, उसकी बाह्य पर्यावरण के प्रति अन्तः क्रियाओं को समझना आवश्यक होगा। इसके साथ ही साथ बाह्य पर्यावरण के विषय में भी जिससे व्यक्ति सम्बन्धित है, ज्ञान प्राप्त करना होगा। यह उसका सम्पूर्ण परिवार हो सकता है, परिवार का कोई व्यक्ति विशेष हो सकता है। सामाजिक समूह, शिक्षा संस्था, कार्यस्थल या अन्य कोई सामाजिक व्यवस्था का अंग हो सकता है। परिवार

व्यवस्था को सेवार्थी के रूप में देखा जाने लगा है। व्यक्ति के किसी एक व्यवस्था में परिवर्तन का प्रभाव अन्य व्यवस्थाओं में भी पड़ता है।

मनोसामाजिक सिद्धान्त की दूसरी विशेषता उपचार संबंधी है। इस सिद्धान्त के अनुसार सेवार्थी की आवश्यकताओं के अनुरूप ही चिकित्सा प्रक्रिया होनी चाहिए, तथा आवश्यकताओं में परिवर्तन या अंतर होने पर चिकित्सा प्रक्रिया में भी अंतर होना चाहिए।

कार्यकर्ता को सर्वप्रथम सेवार्थी की आवश्यकताओं का पता लगाना चाहिए तदुपरान्त वैयक्तिक रूप से सेवार्थी की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रत्युत्तर करना चाहिए।

वैयक्तिक सेवाकार्य उपचार तीन प्रकार का होता है : (1) व्यक्ति में परिवर्तन (2) सामाजिक या अन्तवैयक्तिक पर्यावरण में सुधार या परिवर्तन (3) दोनों में परिवर्तन। इस प्रक्रिया का प्रमुख कार्य सेवार्थी, कार्यकर्ता तथा दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्ति के बीच होता है तथा कुछ निश्चित सेवाएँ प्रदान की जाती है। संचार प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। सेवार्थी अपनी समस्याओं को समझने तथा समाधान में हिस्सा ले। इस उद्देश्य की प्राप्ति करना कार्यकर्ता का उद्देश्य होता है। सेवार्थी के साथ कार्य करने का उद्देश्य सेवार्थी की परिस्थिति के ज्ञान में वृद्धि, दूसरों तथा अपने विषय में अधिक से अधिक ज्ञान, सम्बन्ध में सुधार कार्यकर्ता सेवार्थी का उद्देश्यपूर्ण संबंध स्थापन, उपचार प्रक्रिया के द्वारा चिन्ता, भय तथा उग्र भावनाओं का स्पष्टीकरण।

निम्नलिखित प्रक्रिया को कार्यकर्ता अपनाता है जिससे सेवार्थी की समस्या का समाधान हो सके।

प्रारम्भिक स्तर :– प्रारम्भिक स्तर में वैयक्तिक कार्यकर्ता का प्रमुख कार्यः –

1. सेवार्थी संस्था में क्यों आया है?
2. सेवार्थी से संबंध स्थापना जिससे वह कार्यकर्ता की सहायता का उपयोग कर सके।
3. सेवार्थी को उपचार कार्य में लगाना।
4. उपचार प्रारम्भ करना।
5. मनोसामाजिक निदान एवं उपचार के लिए आवश्यक सूचना एकत्र करना।

वैयक्तिक कार्यकर्ता के कार्यः –

1) सम्पर्क के कारण का ज्ञान :– कार्यकर्ता सर्वप्रथम यह जानने का प्रयास करता हैं कि सेवार्थी संस्था में क्यों आया है। यदि उसे किसी प्रकार की त्रुटि होती है या संस्था को समझ नहीं पाता है तो कार्यकर्ता दूसरी संस्था को सन्दर्भित कर देता है।

2) सम्बन्ध स्थापनः– सम्बन्ध स्थापित होने पर ही सेवार्थी कार्यकर्ता की सहायता प्राप्त करता है। इस दिशा में दो कारक महत्वपूर्ण हैः– (1) कार्यकर्ता की क्षमता में सेवार्थी का विश्वास, (2) कार्यकर्ता की नियत में विश्वास। कार्यकर्ता की बातें, भावनाओं की अभिव्यक्ति, वाणी, शरीर का पोज, मौखिक वार्तालाप आदि से सेवार्थी कार्यकर्ता की शक्ति का विश्लेषण करता है तथा विश्वास उत्पन्न करता है। कार्यकर्ता की दक्षता "संचार" उपयोग पर निर्भर होती है।

3) सेवार्थी को उपचार कार्य में लगानाः– सेवार्थी को उपचार कार्य में लगाना एक साधारण तथा जटिल दोनों प्रकार का कार्य हो सकता है। सेवार्थी कितना परिवर्तन चाहता है तथा कितना सहयोग देने को इच्छुक है, महत्वपूर्ण होता है। यह भावना इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी तकलीफ में है तथा अनुकूल परिवर्तन में कितना विश्वास है। यदि अधिक परेशानी होगी तो उसको बहुत कम परिवर्तन की आशा रहेगी। जिसके परिणाम स्वरूप उसका संप्रेरक कमजोर होगा कम तकलीफ परिवर्तन की इच्छा नहीं उत्पन्न करेगी। कार्यकर्ता का प्रारंभिक कार्य सेवार्थी को तकलीफ की अनुभूति कराना है तथा परिवर्तन की इच्छा जागृत करना है।

4) **प्रारम्भिक स्तर पर उपचार** :– उपचार कार्य साक्षात्कार के प्रथम दिन से प्रारम्भ हो जाता है परन्तु उस उपचार की कोई अवधि निर्धारित नहीं होती। कार्यकर्ता सेवार्थी की चिन्ता कम करने का प्रयास करता है तथा सेवार्थी को समस्या की वास्तविकता से अवगत कराया जाता है जिससे वह वैयक्तिक कार्य में योगदान करता है।

i) **मनोसामाजिक अध्ययनः–** प्रारम्भिक स्तर पर कार्यकर्ता सेवार्थी की आवश्यकताओं को जानने का प्रयास करता है और यह भी जानता है कि सेवार्थी को किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है वह समस्या को किस दृष्टिकोण से देखता है। क्या सोचता है कि क्या किया जा सकता है। कार्यकर्ता निरन्तर यह जानने का प्रयत्न करता है कि सेवार्थी की वास्तविक समस्या क्या है, वास्तविक समस्या स्त्रोत क्या है किस प्रकार सेवार्थी की

समस्या में सुधार लाया जा सकता है तथा कार्यकर्ता वैयक्तिक सेवा कार्य की सहायता की प्रकार प्राप्त कर रहा है।

मनोसामाजिक उपागम में सेवार्थी का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है तथा निम्न प्रश्न सम्मुख आते है।

1. अतीत इतिहास का कहाँ तक ज्ञान आवश्यक है।
2. व्यक्तित्व के ज्ञान के गहराई क्या होगी?
3. सेवार्थी के जीवन पहलुओं का परीक्षण करेंगे जिनके विशय में वह सहायता नहीं चाहता है।

ii) **सेवार्थी की अपनी स्वयं की परिस्थिति में मूल्यांकन**:– सेवार्थी की समस्या का निदान तीन प्रकार से करते है: (1) **गतिशील** (2) **कारणात्मक** 3)**गंत्यात्मक** निदान में। कार्यकर्ता जानने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार सेवार्थी के व्यक्तित्व में विभिन्न कारक सम्पूर्ण कार्यात्मकता से अन्तःक्रिया कर रहे हैं। कारणात्मक कारकों का पता वर्तमान तथा अतीत दोनों में देखा जाता है। सेवार्थी की कार्यात्मकता के विभिन्न पहलुओं का वर्गीकरण किया जाता है।

iii) **उद्देश्य तथा उपचार नियोजन**:– उद्देश्य का निश्चय दो बातों पर होता है (1) सेवार्थी क्या चाहता है (2) कार्यकर्ता क्या तथा कितनी सहायता करना चाहता है। समय, संस्था के कार्य, कार्यकर्ता की क्षमता आदि निश्चय करते है कि कार्यकर्ता क्या सहायता कर सकता है। सेवार्थी का उद्देश्य यदि ऐसा हो जो प्राप्त नहीं किया जा सकता अथवा उसके स्वयं के लिए हानिकारक है तो कार्यकर्ता तो कभी भी इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहयोग नहीं करेगा।

iv) **चिकित्सा सिद्धान्त तथा ढंग**:– वैयक्तिक सेवा कार्य का मनोसामाजिक उपागम का उपयोग करने का तात्पर्य सेवार्थी के कष्ट व दुखों को दूर करना तथा व्यक्ति–व्यवस्था की अकार्यात्मकता में कमी लाना है। सकारात्मक रूप से इसको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि वैयक्तिक कार्य द्वारा सेवार्थी के अहं की अनुकूलन क्षमता में वृद्धि की जाती है तथा व्यक्ति–परिस्थिति अन्तक्रिया में सुधार किया जाये।

v) **उपचार प्रक्रिया** :– कार्यकर्ता दो प्रकार से सेवार्थी की उपचार प्रक्रिया में भाग लेता है:–प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष। जब वह सेवार्थी के पर्यावरण से सक्रिय सम्बन्ध स्थापित करता है तो विभिन्न भूमिकाएँ निभाता है।

1. सूचना प्रदानकर्ता ।

2. स्थिति अवलोकनकर्ता।
3. व्याख्याकर्ता।
4. मध्य की।
5. वकील।

2.8 निदान तथा उपचार

निदान तथा उपचार में घनिष्ठ संबंध है। वास्तविक निदान ही उपचार के लिए रास्ता निर्धारित करता है। वैयक्तिक सेवाकार्य उपचार में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अनेक सामाजिक व्यवस्थाएँ एक दूसरे से प्रमाणित होती है।

जब निदान कार्य सम्भव हो जाता है तो उपचार का कार्य प्रारम्भ होता है। गत्यात्मक, कारणात्मक तथा क्लिनिकल निदान चिकित्सा के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। ये तीनों व्यवस्थाएँ कार्यकर्ता को बता देती है कि सेवार्थी में कितना परिवर्तन लाया जा सकता है। सेवार्थी स्वयं कितनी सहायता करने में सक्षम होगा तथा कितनी सहायता कार्यकर्ता पहुँचा सकता है।

2.9 सार संक्षेप

प्रस्तुत ईकाई में सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य के उपचार की प्रक्रिया में किन–किन प्रमुख उपागमों/सिद्धान्तों का, सेवार्थी की समस्या को समझने के लिए प्रयोग किया जाता है, बताया गया है।

इस इकाई में चिकित्सीय समाज कार्य एवं मनोचिकित्सीय समाजकार्य को भी बताया गया है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में समस्या की प्रकृति का उल्लेख किया गया हैं।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक, वैयक्तिक सेवा–कार्य के प्रमुख उपागमों सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

2. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में चिकित्सीय समाजकार्य एवं मनोचिकित्सीय समाजकार्य में क्या अंतर है? उल्लेख करते हुए वर्णन कीजिए।
3. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में समस्या की प्रकृति का वर्णन कीजिए।
4. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में मनोविश्लेषणात्मक उपागम का वर्णन कीजिए।

2.11 पारिभाषिक शब्दावली

Theory/ Approaches	उपागम / सिद्धान्त
Psychiatric Social Work	मनोचिकित्सीय समाजकार्य
Medical Social Work	चिकित्सीय समाज कार्य
Modification	आशोधन
Ed	इदं
Ego	अहम
Super Eg.	पराअहम
Motivation	सम्प्रेरणा
Depression	अवसाद
Schizophrenia	मनोविदलता
Pastiue reinforcement	पुर्नवलन
Modelling	प्रतिरूपण
Systmatic Desensitization	सुव्यावस्थित विसुग्राहीकरण

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्द संस्थान लखनऊ।

2. डा0 कृपाल सिंह सूदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पब्लिकेशन्स, लखनऊ।

इकाई–3

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के सम्प्रदाय

Models of Social Case Work

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 निदानात्मक सम्प्रदाय

3.3 कार्यात्मक सम्प्रदाय

3.4 कार्यात्मक सम्प्रदाय की मूल मान्यताएँ

3.5 निदानात्मक तथा कार्यात्मक सम्प्रदाय में अन्तर

3.6 निदानात्मक एवं कार्यात्मक सम्प्रदाय की प्रणाली में अन्तर

3.7 कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध

3.8 सार संक्षेप

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

संदर्भ गन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- निदानात्मक सम्प्रदाय में निदान का अर्थ, आवश्यक शर्तों, मूल्यों को जान सकेगें।
- निदानात्मक सम्प्रदाय मे चिकित्सा के प्रारम्भिक चरण, सेवार्थी का मूल्यांकन, चिकित्सा के सिद्धांत एवं प्रणालियों की व्याख्या कर सकेगें।
- कार्यात्मक सम्प्रदाय में समय के प्रत्यय, सहायक प्रक्रिया एवं मूल मान्यताओं को जान सकेगें।
- निदानात्मक तथा कार्यात्मक सम्प्रदाय में अन्तर को स्पष्ट कर सकेगें।
- कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्धों को समझ सकेगें।

3.1 परिचय

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में विकास के साथ–साथ इसकी प्रविधियों, आधारभूत मूल्यों, धारणाओं तथा कार्य पद्धति में अन्तर आता गया। प्रारम्भ में वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य सहायता प्रदान करना था। परन्तु बाद में मनोविज्ञान तथा मनोविकार विज्ञान के प्रभाव के कारण व्यक्तित्व एवं व्यवहार सम्बन्धी उपचार भी इसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया। धीरे–धीरे सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ताओं के मौलिक अभिस्थापन (Orientation) में अन्तर हो गया जिसके परिणामस्वरूप निदानात्मक (Diagnostic) तथा कार्यात्मक (Functional) सम्प्रदाय का विकास हुआ।

3.2 निदानात्मक सम्प्रदाय (Diagnostic School)

निदानात्मक सम्प्रदाय पर मूल रूप से **फ़ायड के व्यक्तित्व के सिद्धांत** का प्रभाव पड़ा। इस सिद्धांत के अनुसार सेवार्थी की समस्या के निदान एवं उनके उपचार के लिए उसको पर्यावरण के एक अंश के रूप में देखना तथा उसका सम्पूर्ण से सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। व्यक्ति जिस पर्यावरण में रहता है उसके विभिन्न तत्व परस्पर प्रतिक्रिया करते हुए व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। चेतन के साथ–साथ अचेतन प्रभावों का भी मानवीय मूल्यों, व्यवहार तथा आत्म संयम पर प्रभाव पड़ता है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए इन बाह्य तथा आन्तरिक प्रभावों को भलीभाँति समझना आवश्यक होता है।

इसी सम्प्रदाय के विकास का श्रेय **मेरी रिचमण्ड** को है। परन्तु परिस्थितियों में परिवर्तन होने से इनके मूल रूप में परिवर्तन आया। इस सम्प्रदाय के प्रारम्भिक

योगदान में **मेरिओन केनवर्थी** (न्यूयार्क स्कूल आफ सोशल वर्क), **बैस्टसलिब्बे** (फेमिली सोसाइटी आफ फिलडेफिया), **गार्डन हैमिल्टन बर्थे रिनोल्ड्स, चारलोटे टोक्ले, क्लोरेन्स डे, फर्न लोरी, लूसिले आस्टिन, अनेटे गैरेट** आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय है।

3.2.1 निदान का अर्थ

निदान के सम्बन्ध में सभी निदानात्मक सम्प्रदाय के विचारकों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किये हैं। परन्तु उन सभी मतों और विचारों का मूल अर्थ लगभग समान है। यहाँ पर हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं एवं विचारों का उल्लेख निदान शब्द को स्पष्ट करने के लिए कर रहे है।

रिचमण्ड, मेरी (1917)

सामाजिक निदान, जहाँ तक सम्भव हो एक सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा सामाजिक स्थिति की एक यथार्थ परिभाषा पर पहुँचने का प्रयत्न है।

सजफ्लोरेन्स (1950) निदान,

(1) ज्ञात तथ्यों (दर्शनीय तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य) के आधार पर संरचित एक व्याख्या है।

(2) दूसरे सम्भव व्याख्याओं को ध्यान में रखते हुए एक व्याख्या है।

(3) जब सम्बन्धित विषय भिन्न व्याख्या प्रस्तुत करता है तो इसमें परिवर्तन एवं मूल्यांकन भी सम्भव हैं।

सामाजिक निदान की परिभाषायें

काकेरिल, इलेनर है0, लईस जे लेरमैन एण्ड अदर्स1 (पिट्सवर्ग फैकल्टी ग्रुप) 1973 निदान अध्ययन द्वारा प्रकाश में लाये गये तथ्यों की व्याख्या एवं संयोजक है तथा सम्पूर्ण घटना की एक परिभाषा और इसके व्यवहार तथा विकास की व्याख्या एवं ज्ञान प्रदान करता है। इसका उद्देश्य कारण को निश्चित करना तथा भविष्यवाणी करना कि किस प्रकार से एक पारिभाषित दशा में प्राणधारी जीव व्यवहार करेगा।

आप्टेकर, हरबर्ट एच. (1955)

“निदान, जैसा कि निदानात्मक सम्प्रदाय ने देखा है, समस्या के कारणों की खोज है जो सेवार्थी को कार्यकर्ता के पास सहायता के लिए लाती है।” उन्होंने आगे कहा कि समस्या के कारण मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दोनों होते है। अतः निदान

का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक या व्यक्तित्व के कारकों को जो सेवार्थी की समस्या से कारणात्मक सम्बन्ध रखते हैं और सामाजिक या पर्यावरणीय कारक जो इसको स्थिर रखते हैं, के ज्ञान से है।

3.2.2 निदानात्मक सम्प्रदाय की आवश्यक शर्ते

निदानात्मक सम्प्रदाय निम्नलिखित शर्तों को सेवार्थी की समस्या के निदान के एवं उपचार के लिए आवश्यक समझता है :

(1) सेवार्थी की सहायता करने अथवा समस्या की चिकित्सा के लिए बाह्य पर्यावरण के साथ सेवार्थी की अन्तः क्रियाओं की जानना आवश्यक होता है। बाह्मा पर्यावरण का कोई महत्वपूर्ण अथवा सामान्य सूक्ष्य ही भाग क्यों न हो यदि उसका सम्बन्ध सेवार्थी से है तो उसका समझना आवश्यक होता है। बाह्ता पर्यावरण के अन्तर्गत परिवार, सामाजिक समूह, शिक्षण संस्थाऐं तथा अन्य समाजिक संस्थाएँ आती हैं।

(2) सेवार्थी की आवश्यकता के अनुसार चिकित्सा में भेद होना आवश्यक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि कार्यकर्ता को सेवार्थी की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को समझने के लिए सेवार्थी का वैयक्तीकरण करना आवश्यक होता है। समस्या के विकास का कारण या तो सेवार्थी की अपनी कार्यात्मक अक्षमता या फिर दोषपूर्ण सामाजिक परिस्थितियाँ होती हैं। इन दोनों कारकों का सम्मिलित प्रभाव भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त इनके प्रभावों में भी भिन्नता होती है। अतः सेवार्थी की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा समस्या समाधान के लिए इन कारकों को परिभाषित करना आवश्यक होता है।

(3) वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा में व्यक्तिगत या सामाजिक या अन्तर्व्यक्तिगत पर्यावरण अथवा दोनों परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

(4) चिकित्सा का उद्देश्य सेवार्थी की सहायता करना है जिससे वह अपने अथवा सम्बन्धित पर्यावरण में अथवा दोनों में इस प्रकार में परिवर्तन लाये जिसमें उसका उचित अनुकूलन सम्भव हो सके।

(5) इस सम्प्रदाय के विचारकों का पूर्वानुमान होता है कि वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा से व्यक्तित्व में परिवर्तन तथा विकास सम्भव होता है और चिकित्सा द्वारा लाया गया पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तन अनुकूलन को आसान एवं सम्भव बनाता है।

(6) समस्या समाधान की चिकित्सा वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध की गहनता एवं घनिष्ठता पर निर्भर होती है।

3.2.3 निदानात्मक सम्प्रदाय के मूल्य

(1) सेवार्थी को कार्यकर्ता उसके कल्याण, देखभाल तथा समस्या समाधान के लिए स्वीकृति प्रदान करता है। सदभावना के उसका आदर करता है।

(2) सेवार्थी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कार्यकर्ता सेवार्थी में घनिष्ठ सम्बन्ध होने चाहिए।

(3) जहाँ तक सम्भव हो कार्यकर्ता को चाहिए कि वह सेवार्थी को वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ होकर समझे तथा प्रत्युत्तरों एवं मूल्यांकन में व्यक्तिगत भावनाओं को महत्व न दे।

(4) सेवार्थी को अपना निर्णय लेने तथा आत्म निर्देशन करने का अधिकार कार्यकर्ता द्वारा प्रदत्त होना चाहिए।

(5) कार्यकर्ता को अपने सेवार्थी की तथा अन्य दूसरों की अन्तनिर्भरता को स्वीकार करना चाहिए और इस बात का अनुभव करना चाहिए सेवा समय हो सकता है जब सेवाथ्रै की आत्म–निर्देशन की सीमा को उसके अन्य दूसरों के लाभ के लिए कम की जा सकती है।

3.2.4 चिकित्सा का प्रारम्भिक चरण

चिकित्सा के प्रारम्भिक चरण में निम्नलिखित कार्य सम्पादित किये जाते हैः–

(1) सम्पर्क के कारण का ज्ञान :– जब सेवार्थी संस्था में आता है तो उसकी कुछ समस्याऐं होती हैं और इन समस्याओं का ज्ञान कार्यकर्ता के लि चिकित्सा प्रणाली निश्चित करने में आवश्यक होता है। यदि सेवार्थी को समस्या स्पष्ट करने में कुछ कठिनाई होती है तो कार्यकर्ता स्वयं संस्था द्वारा उपलब्ध सेवाओं को स्पष्ट करना है। जब सेवार्थी किसी संस्थान द्वारा सन्दर्भित किया जाता है ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता सन्दर्भित करने वाले व्यक्ति तथा सेवार्थी दोनों से साक्षात्कार करने के कारणों की खोज करता है। कभी कभी ऐसी परिस्थिति आ जाती है जब सेवार्थी को यद्यपि वैयक्तिक सेवा कार्य सेवाओं की आवश्यकता होती है परन्तु वह (सेवार्थी) इन सेवाओं को नहीं चाहता है। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता सेवार्थी सेवा प्राप्त करने के लिए सलाह देता है, मंत्रणा देता है तथा यदि आवश्यक हुआ तो अन्तदुंष्टि का भी विकास करता है।

(2) सेवार्थी से सम्बन्ध स्थापनः – वैयक्तिक सेवा कार्य का मूल्य साधन सम्बन्ध माना जाता है। इस सम्बन्ध में दो बातें प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण होती हैं–कार्यकर्ता की कुशलता में सेवार्थी के विश्वास तथा उसकी ख्याति या साख (Goodwill) में विश्वास। इस विश्वास को उत्पन्न करने के लिए कार्यकर्ता को स्वयं प्रयास करना चाहिए।

(3) सेवार्थी को चिकित्सा कार्य में लगाना :– चिकित्सा प्रक्रिया में सेवार्थी को लगाने के लिए कार्यकर्ता को दो बातों का ज्ञान आवश्यक होता है :

(1) सेवार्थी की सम्प्रेरणा (Motivation)।

(2) सेवार्थी का अवरोध (Resistance) ।

सम्प्रेरणा ये यह पता चलता है कि सेवार्थी कितना परिवर्तन चाहता है तथा इस परिवर्तन में कितना योगदान देने के लिए इच्छुक है। इसका सीधा सम्बन्ध सेवार्थी की कठिनाई की गहनता से होता है। परन्तु यदि उसे परेशानी अत्यधिक है तो हो सकता है कि वह अपने को असहाय महसूस करे तथा परिवर्तन की कोई अच्छा न व्यक्त करे। अतः प्रारम्भिक अवस्था में यह आवश्यक कार्य होता है कि सेवार्थी को कठिनाई तथा उसकी आशा को उस स्तर तक लाने में अवश्य सहायता की जाय जो सम्प्रेरणा के अनुकूल हो।

अवरोधों का भी जानना चिकित्सा के लिए आवश्यक होता है। मूख्यतः अवरोधों का अस्तित्व सहायता के रूप पर निर्भर होता है। जब सेवार्थी के व्यक्तित्व या व्यवहार में परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है तो विरोध अधिक होता है। सेवार्थी इस प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार करने में हिचक महसूस करता है। इसके अतिरिक्त समस्या के रूप पर भी विरोध निर्भर करता है। यदि समस्या का सम्बन्ध सामाजिक अस्वीकृत, आलोचना का भय, चिन्ता, पाप की भावना आदि से होता है तो अवरोध अधिक होता है।

अवरोधों को दूर करने के लिए वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्न कदम उठाते हैं:

(1) सेवार्थी से नकारात्मक तथा उभ्यामुखी भावनाओं के सम्बन्ध में बातचीत करना।

1. सेवार्थी के प्रत्ययों व भ्रमों का समझना तथा उनको स्पष्ट करना।
2. कार्यकर्ता स्पष्ट करता है कि उसकी सहायता स्वीकार करना सेवार्थी की इच्छा पर निर्भर है।
3. प्रारम्भिक चरण में उपचार :– इस सम्प्रदाय के समर्थकों का विश्वास है कि चिकित्सा का प्रारम्भ प्रथम साक्षात्कार से शुरू हो जाता है। कार्यकर्ता प्रारम्भ

से ही सेवार्थी को अपनी भावनाओं को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करता है और यह अवसर चिकित्सा प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में अतुलनीय भूमिका अदा करता है।

(4) चिकित्सा कार्य प्रारम्भ करना।

(5) मनो सामाजिक निदान तथा चिकित्सा निर्देशन के लिए सूचनाएँ एकत्र करना।

3.2.5 सेवार्थी का मूल्यांकन

इस सम्प्रदाय का विश्वास है कि सेवार्थी की समस्या का निदान आवश्यक होता है क्योंकि इससे व्यक्ति को वैयक्तिक भिन्नताओं, विशेषताओं तथा अन्तर्सम्बधों का ज्ञान प्राप्त होता है। निदान का तात्पर्य उन क्रियाओं से है जिनका सम्बन्ध सेवार्थी तथा उसके पर्यावरण के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। **वेबस्टर शब्दकोश** ने निदान शब्द की दो परिभाषाऐं दी है : (1) रोग को इसके लक्षणों से पहचानने की कला अथवा कार्य, (2) वैज्ञानिक निश्चय, आलोचनात्मक छानबीन अथवा इसका परिणामात्मक निर्णय।

प्रथम परिभाषा से दूसरी परिभाषा अधिक स्पष्ट तथा व्यावहारिक है। वैयक्तिक सेवा कार्य में उपलब्ध तथ्यों का विश्लेषण करके यह पता लगाया जाता है कि सेवार्थी की समस्या क्या है, उसके कौन–कौन से कारण हैं, कहाँ पर परिवर्तन की आवश्यकता है, किस प्रकार की चिकित्सा सेवार्थी की समस्या का समधान करने के लिए उपयुक्त होगी तथा वैयक्तिक कार्यकर्ता को कौन–कौन से प्रत्यन्त इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उठाने होंगे।

इस सम्प्रदाय का विचार है कि बिना निदान के वैयक्तिक सेवा नहीं की जा सकती है। निदान उस समस्या के कारणों की खोज है जो सेवार्थी को कार्यकर्ता के पास सहायता के लिए लाती है। समस्या का कारण सेवार्थी स्वयं अथवा उसका प्र्यावरण होता है। अतः मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारकों का ज्ञान प्राप्त करना निदान है के लिए आवश्यक होता है। मनौवैज्ञाानिक अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी कारकों का ज्ञान जिसके कारण सेवार्थी की समस्या उत्पन्न हुई है तथा सामाजिक व वर्यावरण सम्बन्धी कारकों का ज्ञान जिनके कारण समस्या उत्पन्न हुई है तथा सामाजिक व पर्यावरण सम्बन्धी कारकों का ज्ञान जिनके कारण समस्या स्थिर रहती है, से निदान का सम्बन्ध होता है।

निदान के अन्तर्गत हम तीन तथ्यों को निश्चित करते हैं:

(1) गत्यात्मक निदान में अन्य बातों के अतिरिक्त हम इस बात की जाँच करते हैं कि सेवार्थी के व्यक्तित्व के विभिन्न अंग किस प्रकार सम्पूर्ण कार्य में अन्तर्क्रिया करते हैं।

(2) कारणात्मक कारकों की खोज–बीन वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर करते हैं।

(3) सेवार्थी की कार्यात्मकता को तथा क्लिनिकल निदान को वर्गीकृत करने का प्रयत्न करते हैं।

इस तीन प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सेवार्थी मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक संरचना के अन्तर्गत मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। वैयक्तिक एवं सामूहिक व्यवहार सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचे का एक अंग होता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार पर समूह, समाज तथा संस्कृति तीनों का प्रभाव पड़ता है। यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि संस्कृति के धार्मिक तथा नैतिक दृष्टिकोण परिणाम के माध्यम द्वारा व्यक्ति को हस्तान्तरित किये जाते हैं जिनका अहं का पराहयं के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। समूह के अन्तर्गत उसकी भूमिका तथा उससे समूह की आशा का भी प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है। यह सम्प्रदाय व्यक्तित्व सिद्धांत का अनुसरण करने के कारण जानने का प्रयत्न करता है कि सेवार्थी में इड, इगो तथा सुपर इगो की भूमिका क्या है?

सेवार्थी की शक्तियों तथा कठिनाइयों को समझाने, सहने तथा निपटने की क्षमता को ज्ञान करने के लिए उसके अहं को ज्ञान करना आवश्यकता होता है। इससे पता चलता है कि सेवार्थी की समस्या के उत्पन्न करने में क्या योगदान रहा है। उन परिस्थितियों में भी इसका जानना आवश्यक है जब समस्या का कारण ब्राह्य कारक ही क्यों न हो। इस स्थिति में सेवार्थी को परिस्थिति सुधारने एवं परिवर्तित करने में सक्रिय भूमिका निभानी होती है और इस सक्रिय भूमिका में अहं की भूमिका मुख्य होती है। जब समस्या का कारण सेवार्थी स्वयं होता है उस समय लैंगिक तथा उग्र चालकों की कार्यात्मकता तथा पराहयं की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

निदान का वर्गीकरण करना यद्यपि एक बहुत बड़ी समस्या है परन्तु समुचित चिकित्सा के लिए यह आवश्यक होता है। कि निदान को जब हम विश्लेषित करते हैं तो स्वयं वर्गीकरण की प्रकृति स्पष्ट हो जाती है क्योंकि निदान का तात्पर्य एक रोग पहचान करके लक्षणों से करता है।

3.2.6 चिकित्सा के सिद्धांत एवं प्रणालियां

(1) **उद्देश्यः–** वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता का उद्देश्य एक ओर सेवार्थी के कष्ट को दूर करना तथा दूसरी ओर व्यक्ति स्थिति व्यवस्था (Person-situation system) में अकार्यमकता को कम करना। दूसरे शब्दों में कार्यकर्ता सेवार्थी में अधिक सन्तोष, आत्म अनुभूति तथा आत्म सन्तुष्टि एवं आत्म संख का संचार करता है। इसके लिए उसके अहं को दृढ़ बनाकर उसमें अनुकूलन निपुणताओं का विकास करता है। परिवर्तन या तो सेवार्थी में या परिस्थिति में अथवा दोनों में कुछ न कुछ होता है। वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा का केन्द्र बिन्दु अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्ध तथा व्यक्तित्व व्यवस्था होती है।

(2) **सेवार्थी प्रक्रियाः–** कार्यकर्ता की दो प्रकार की मुख्य भूमिका होती है (1) सेवार्थी के साथ प्रत्यक्ष रूप से (2) सेवार्थी के पर्यावरण के साथ। इस प्रकार चिकित्सा प्रक्रिया दो प्रकार की मानी जाती है :

(1) अप्रत्य चिकित्सा (पर्यावरणीय)।

(2) प्रत्यक्ष भूमिक (व्यक्तित्व सम्बन्धी)।

अप्रत्यक्ष भूमिका में कार्यकर्ता सेवार्थी को उसकी आवश्यकता के अनुसार ठोस सेवा प्रदान करता है। अप्रत्यक्ष चिकित्सा में कार्यकर्ता सेवार्थी को चिकित्सकीय साक्षात्कार द्वारा व्याख्या, मंत्रणा, प्राख्या, अन्तर्दृष्टि प्रदान करता हैं।

3.3 कार्यात्मक सम्प्रदाय (Functional School)

कार्यात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य **ओटो रैंक** के व्यक्तित्व विकास के प्रत्यय पर आधारित है। रैंक के विचार से मनो अहं का विकास जैविकीय अहं द्वारा होता है। मनोस्थिति एक सुव्यावस्थित घटना है जो जैविकीय व्यवस्था से सम्बन्धित होती है परन्तु अभिव्यक्ति के लिए विशुद्ध भौतिक या शारीरिक तथ्यों पर आधारित नहीं है।

व्यक्तित्व संरचना की मौलिक शक्ति (इड) के वैयक्तीकरण की प्रक्रिया द्वारा आत्मा का विकास होता है। जब बालक का जन्म होता है उस समय उसमें मूल प्रवृत्तियां, यद्यपि बालक द्वारा संकल्पित (willed) नहीं होती हैं तथापि पर्यावरण से सम्बन्धित होकर गत्यात्मक रूप से कार्य करती हैं। यद्यपि जैविकीय एवं व्यक्तित्व विकास दोनों ही मनोस्थिति में निहित होता है परन्तु व्यक्तित्व वैयक्तीकरण होकर मनो अहं का विकास जिस शक्ति के द्वारा होता है उसे संकल्प (will) कहते हैं। आत्म के आदर्श का निर्माण चेतन के कार्यों में निहित होता है। बालक की जन्मजात चेतना का गुण विशुद्ध जैविकीय अनुभव के सन्दर्भ में प्रारम्भ में अकेन्द्रित तथा अविभेदित होता है परन्तु इस क्षमता के होने के कारण धीरे–धीरे जैविकीय अनुभव मनोवैज्ञानिक महत्व की ओर विस्तारित होता है। जन्म तथा अन्य जीव

विकास घटनाएँ मनोवैज्ञानिक स्थिति की ओर आकर्षित होती है तथा आत्म के विकास की आधारशिला रखती हैं।

यह अन्तर तथा मनोवैज्ञानिक विकेन्द्रीकरण बाह्य पर्यावरण विशेषकर प्रारम्भिक अवस्था में माता से सम्बन्ध स्थापित करने से सम्भव होता है। स्तनपान से बालक का विकास होता है। स्तनपान छुड़ाने की स्थिति में बालक अपनी अर्जित क्षमताओं का उपयोग करना विकास के दूसरे स्तर पर प्रारम्भ करता है। स्तनपान की जब जैविकीय आवश्यकता होती है और बालक को प्राप्त नहीं होता है तो विकास रुक जाता है इसके विपरीत आवश्यकता से अधिक समय तक यदि स्तनपान कराया जाता है तो आत्म विकास को खतरा उत्पन्न हो जाता है। यह सर्वविदित जैविकीय तथ्य है कि मूल अन्तरप्रवृत्तियाँ मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ हैं जो जैविकीय कार्यों द्वारा विभेदीकृत की जाती है जिनको वे नियन्त्रित करते हैं तथा परिपक्व होने के लिए विवश करते हैं। परन्तु यह भी उतना ही सत्य तथ्य है कि मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया विकसित होती है तथा मूल अन्तरप्रवृत्तियों से संघर्ष करती हैं जिससे मनोवैज्ञानिक स्थिरता (Paychological fixation) उत्पन्न होती है। यह स्थिरता विकास के किसी भी स्तर पर बिना शारीरिक परिपक्वता को प्रभावित किये घटित हो सकती है। परन्तु इसके सामान्य विकास की गति अवश्य प्रभावित होती है।

इससे यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का सांवेगिक विकास मनो अहं (Psychic ego) की रचना के लिए स्वयं निश्चित होता है न कि जैविकीय अहं की मूल सैद्धांतिक व्याख्या द्वारा। निर्धारक कारक संकल्प शक्ति होती है जो मूल अन्तरप्रवृत्तियों के विरोध में मनोवैज्ञानिक अनुभव संगठित करने की क्षमता रखती है।

संकल्प द्वारा संगठित विकास की प्रक्रिया शारीरिक विकास गत्यात्मकता के समान ही होती है। क्षेत्र में समानता न होकर विकास सिद्धांतों में समानता होती है। बालक के लिए जन्म की स्थिति एक अस्तित्व से दूसरे अस्तित्व में प्रवेश की होती है। तथा मनोवैज्ञानिक मृत्यु होती है क्योंकि उसका एक अस्तित्व से पृथक्करण होता है अतः जीवन तथा मृत्यु दो भय व्यक्ति में निहित होते हैं। पृथक्करण तथा सम्बद्धता (Seperation and Union) जो कि जैविकीय अवयव के लिए आवश्यक होते हैं वे अहं को मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया के लिए भी आवश्यक होते हैं तथा व्यक्तित्व के विकास को आजीवन उत्साहित करते रहते हैं।

जन्म में पृथक्कीरण का मनोशारीरिक अनुभव प्राप्त होता है परन्तु माता के स्तन पान से यह पुनः सम्बद्धित हो जाता है क्योंकि उसकी भूख की सन्तुष्टि होती है। शिशु के प्रथम भूख के शारीरिक क्लेश स्वयं एक मनोवैज्ञानिक घटना होती है जिसकी सन्तुष्टि तथा कष्ट का निवारण माता के दूध द्वारा होता है लेकिन मानव

प्राणी की यह प्रकृति है कि वह न केवल जैविकीय अनुभव से मनोवैज्ञानिक चेतना प्राप्त है परन्तु उसमें इस अनुभव को विशुद्ध मनोवैज्ञानिक महत्व में प्रयोग की क्षमता होती है। अतः माता से पुनः सम्बद्धता जैविकीय स्मृति की सम्पूर्णता के लिए भी मनोवैज्ञानिक प्रक्षेपण का कार्य करता है। जब स्तनपान से पृथक्करण होता है तो वह प्रत्याहार (withdrawal) मृत्यु (death) के रूप में पृथक्कीकरण का मनोवैज्ञानिक प्रक्षेपण होता है। सम्पूर्णता की पूर्ण अनभिज्ञता से, पूर्ण पृथक्करण द्वारा, बालक आंशिक पृथक्करण की ओर बढ़ता है जिसमें जैविकीय अनुभव पुनः मौलिकता प्रदान करता है। मनोआत्मा (Psyche) का विकास मनोशारीरिक अनुभव द्वारा होता है परन्तु इसका सकारात्मक तथा रचनात्मक उद्देश्य जीवन–मृत्यु के भय से निर्मित होता है। अतः संकल्प की स्वतंत्रा को उस समय धक्का पहुँचता है जब वैयक्किता के लिए इसकी इच्छा अथवा शक्ति का अत्यधिक भय के लिए अथवा दूसरे व्यक्ति द्वारा पूर्ण अस्वीकृति द्वारा विरोध किया जाता है। भय श्रृंखला किसी भी जीवन के क्षेत्र में आत्मिक रूप से पूर्णता का निर्माण करती है जिससे आंशिकता की गत्यात्मक रचनात्मकता को सम्बद्धता तथा पृथक्करण में परिवर्तन द्वारा कार्यरूप में परिगत कर सके।

पृथक्करण तथा सम्बद्धता की गत्यात्मकता प्रक्षेपण तथा आत्मीकरण मनोरचना द्वारा अहं का निर्माण करती है। प्रक्षेपण में व्यक्ति अपनी आन्तरिक मूल प्रवृत्तियों को दूसरे के समक्ष व्यक्त करता है और उस वस्तु (object) की औचित्यता आत्म रुचि में होती है। अतः विषय का अनुभव उस समय तक अनिवार्य होता है जब तक अवयव कार्यात्मकता की परिपक्कवता पर नहीं पहुँच जाता है। प्रक्षेपण में माता के स्तन बालक के लिए प्रथम वस्तु होती है। जैसे–जैसे बालक शारीरिक रूप से सक्षम होता जाता है वैसे वैसे स्तनपान में कमी आती जाती है।

स्तनपान से बालक का विकास सम्भव होता है और जब स्तनपन बन्द होता है तो वह अपनी अर्जित क्षमताओं का उपयोग करना सीख जाता है और जीवन के दूसरे स्तर में प्रवेश करता है। स्तनपान की जब बालक को जैविकीय और जीवन के दूसरे स्तर में प्रवेश करता है। स्तनपान की जब बालक को जैविकीय आवश्यकता होती है और बालक को प्राप्त नहीं होता है तो उसके जीवन को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसके विपरीत आवश्यक समय से अधिक अवधि तक स्तनपान कराया जाता है तो आत्म विकास को धक्का पहुँचता है। इससे यह तथ्य होता है कि अवयव (organism) को बिना धक्का पहुँचाये एक कार्य अथवा सम्बन्ध दूसरे से तब तक पृथक नहीं किया जा सकता है जब तक उससे उच्च स्तर कार्य अथवा सम्बन्ध का निर्माण नहीं हो जाता है। लेकिन यदि एक बार इसका विकास हो जाता है तो अवयव इसकी उच्चतर कार्यात्मकता को तब तक ग्रहण नहीं करता है जब

तक पूर्व कार्य अथवा सम्बन्ध समाप्त होकर इस नयी क्षमता में अन्तर्निहित नहीं हो जाता है।

आत्म (self) का विकास भी इस सिद्धांत पर निर्भर है। माता की स्तनपान छुड़ाने की इच्छा का बालक की प्रतिइच्छा द्वारा विरोध किया जाता है क्योंकि इस प्रक्षेपण में बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक महत्व निहित होता है। वह आत्मीकरण द्वारा विगत पृथक्करण को पुनसम्बन्धित करता है तथा संकल्प शक्ति का मनो अहं का विकास करती है।

आत्मीकरण का विकास पृथवकीकरण अनुभव द्वारा होता है। बालक माता को अपनी इच्छाओं का पूरक समझता है। जब स्तनपान पर रोक लगा दी जाती है। तो बालक इसकी नकारात्मक व्यवहार समझता है। वह अपनी आवश्यकता सन्तुष्टि के लिए संघर्ष करता है। इस संघर्ष से उसमें चेतनता का विकास होता है कि वह (माता) उसका अंग नहीं है और न ही उसके नियन्त्रण में है। वह उससे पृथक वस्तु है। उसको अपने प्रति ज्ञान होता है। उसमें मैं का विकास होता है तथा दूसरों से अपने को पृथक् समझने लगता है। ये प्रक्षेपण तथा आत्मीकरण की मनोरचनाएं सम्बद्धता पृथक्करण व्यक्ति में जीवन पर्यन्त कार्य करती रहती है। कार्यात्मक वैयक्तिक कार्य में इनको चेतन रूप में उपयोग किया जताा है।

3.3.1 समय का प्रत्यय (The concept of time)

सयम की गति के साथ–साथ विकास प्रक्रिया सम्पन्न होती है। समय न केवल विकास तथा परिवर्तन का माध्यम है बल्कि यह चेतनता स्वयं है। अस्तित्व के तीन साधन, समय, क्षेत्र (Space) तथा गति (Motion) है। जिनमें समय की न बहुत ही कम अथवा नाममात्र की मानव नियन्त्रित किया जा सकता है। समय को न तो गतिशील किया जा सकता हैं, न रोका जा सकता है, न कम गतिवान बनाया जा सकता है। समय पर व्यक्ति का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। जन्म और मृत्यु तक का समय प्रत्येक व्यक्ति को व्यतीत करना होता है। अतः यह अस्तित्व का बहुत ही भयानक पक्ष होता है।

समय की इन दोनों सीमाओं के अन्तर्गत (जीवन–मृत्यु) मानव प्राणी कार्य करता है। उसको न तो वह रोक सकता है न स्थगित कर कसता है, केवल उपयोग कर सकता है। समय के इस सार्वभौममिक तथ्य को कार्यात्मक वैयक्तिक कार्या में समय को सहायक प्रक्रिया के रूप में उपयोग में लाया जाता है। वर्तमान समय तथा वर्तमान सम्बन्ध पर महत्व दिया जाता है।

कार्यात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य विशिष्ट सेवाओं द्वारा संस्था के माध्यम से व्यक्तियों की सहायता करता है जिससे इन सेवाओं के उपयोग का अनुभव मनोवैज्ञानिक रूप से रचनात्मक हो सके। इस प्रकार कार्य के दो अपृथकनीय दो तत्व होते हैं।

(1) सेवा संस्था की सहायता करने की क्षमता का ज्ञान।

(2) सेवा द्वारा प्रदान किया गया अनुभव की विशेषता।

एक बालक को फोस्टर होम में प्रवेश करने के अनुभव तथा बाल निर्देशन गृह के अनुभव में अन्तर होता है चाहे ये दोनों स्थितियाँ माता–पिता द्वारा त्याज्य की स्थिति में ही क्यों न हों। समान तभी हो सकता है जब उन्हें वास्तविकता की स्थिति का बोध कराया जाय। यही वास्तविक सम्बन्ध सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का माध्यम है।

3.3.2 सहायक प्रक्रिया

सेवार्थी संस्था में तभी आता है जब यह देखता है कि समस्या का वह स्वयं समाधान नहीं कर सकता है। वह कार्यकर्ता से आंशिक या पूर्ण सहायता के लिए प्रक्षेपण करने का प्रयत्न करता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह प्रक्षेपण को प्रतिरोध न मानकर सहायता की आवश्यकता का आवश्यक अंग समझे। वैयक्तिक कार्य की क्रियाओं के अन्तर्गत दो प्रमुख कार्य हैंः–

(1) प्रक्षेपण का वास्तविक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थ ज्ञात करना तथा सेवार्थी को सामान्य एवं आवश्यक आदर एवं सम्मान करना।

(2) प्रक्षेपण तथा वास्तविकता में अन्तर स्पष्ट करना।

प्रथम कार्य दूसरे कार्य को सम्भव बनाता है। सेवार्थी स्वयं अपनी समस्या को समझ कर समाधान करने का प्रयत्न करता है। स्वयं का ज्ञान तथा शक्ति का आभास सेवार्थी को अपनी इच्छा के अनुरूप समस्या से निपटने का अवसर प्राप्त होता है। वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया में प्रक्षेपण, आत्मीकरण, सम्बद्धता, पृथक्करण प्रारम्भ से लेकर अंत तक कार्य करते रहते हैं। इस प्रक्रिया की सुविधा की दृष्टि से तीन स्तरों में विभाजित कर सकते हैं–प्रारम्भ, मध्य तथा अन्तिम चरण।

प्रथम स्तर में सेवार्थी की प्रक्रिया में भाग लेने की इच्छा का होना निहित होता है यह स्पष्ट होने पर सेवार्थी सकारात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति अनुभव करता है तथा अभिव्यक्ति के लिए उत्सुकता प्रदर्शित करता है। परन्तु जैसे जैसे वह मध्य चरण के अनुभव की ओर बढ़ता जाता है वैसे वैसे उसका भय पुनः जाग्रत हो

जाता है। वह सोच सकता है कि अब प्रक्रिया में भाग लेना निरर्थक है क्योंकि वह अब संघर्ष से परे एवं स्वस्थ अनुभव करता है।

मध्य चरण में सेवार्थी कार्यकर्ता का उपयोग अन्य अर्थपूर्ण व्यक्तियों के समान ही करना चाहता है। कार्यकर्ता की सहायता से वह दूसरों से वास्तविक सम्बन्ध का अनुभव करता है। यह ऐसा अनुभव होता है जिसमें न तो व्यक्ति उसका नियन्त्रण करता है और न सेवार्थी को नियन्त्रण की स्वीकृति देता है बल्कि उसको अपने सम्बन्ध की विशेषताओं का ज्ञान कराता है जिनके कारण समस्या उत्पन्न हुई थी। इस प्रकार सेवार्थी स्वयं एक नवीन तरीके की खोज करके समस्या का समाधान कर लेता है अर्थात् आत्म–शक्ति का समुचित अर्जन कर लेता है।

अन्तिम चरण में पुनः भय उत्पन्न होता है और सेवार्थी संस्था एवं वैयक्तिक कार्यकर्ता से पृथक् नहीं होना चाहता है। वैयक्तिक कार्य सेवार्थी में चेतनता विकसित करता है और संस्था से अलग होने की आवश्यकता का ज्ञान कराता है। उसमें ऐसी आत्म–शक्ति का विकास करता है जिससे सेवार्थी अपना कार्य करने के लिए तैयार हो जाता है।

3.4 कार्यात्मक सम्प्रदाय की मूल मान्यताएँ

(1) व्यक्ति के जीवन में ऐसी सामाजिक वास्तविकताएँ आती है जिनको वह स्वयं सामना करने में असमर्थ होता है जिसके कारण सहायता के लिए संस्था में आता है।

(2) वैयक्तिक कार्यकर्ता सबसे पहले पता लगाता है कि सेवार्थी की समस्या क्या है, वह जो सहायकता देना चाहता है वह कहाँ तक उपयुक्त है तथा यदि उसको अन्य सहायता की आवश्यकता है तो किस प्रकार उसको प्राप्त किया जा सकता है।

(3) सेवार्थी में व्यक्तित्व तथा सामाजिक शक्ति होती है और वह प्रायः अव्यक्त (Latent) असंगठित, अवरोधित, भ्रमित, विकृत होती है। परन्तु सेवार्थी स्पष्टीकरण तथा विकल्पों का ज्ञान कराकर प्रत्यक्ष उपयोग में लाया जा सकता है। सेवार्थी स्वयं अपने व्यवहार तथा कार्यों के उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता उत्तरदायित्व को उससे छीनने का प्रयास नहीं करता है। इन कार्यों के उत्तरदायित्व को पूरा करने में जो कठिनाइयाँ आती है उनको दूर करने के प्रयास में कार्यकर्ता सहायता करता है।

(4) कार्यकर्ता का कार्य सेवार्थी की अव्यक्त शक्ति का विकास करना है जिससे सेवार्थी अपने को समुचित उपयोग समस्या समाधान में कर लेता है।

(5) इस सम्प्रदाय के समर्थकों का दृढ़ विश्वास है कि समस्या समाधान की शक्ति स्वयं सेवार्थी में ही निहित होती है।

(6) सहायक स्थिति में यदि चिकित्सा का कोई प्रत्यय है तो सेवार्थी स्वयं अपनी चिकित्सा करता है।

(7) सेवार्थी जिन आवश्यकताओं की सहायता के लिए कार्यकर्ता से माँग करता है, कार्यकर्ता वही सेवाएँ उपलब्ध करता है तथा सम्बन्ध सेवा द्वारा सहायता प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है।

(8) कार्यकर्ता द्वारा दी गयी सहायता से सेवार्थी अपनी इच्छा तथा शक्तियों का उपयोग अधिक स्वतन्त्रता, कम भय, अधिक अन्र्दृष्टि तथा स्पष्टता से उपयोग करता है।

(9) सेवार्थी जो संस्था में आता है वह अपने व्यक्तित्व का एक भाग न लोकर सम्पूर्णता के साथ आता है।

(10) कार्यकर्ता सेवार्थी की शक्तियों का विकास दबाव एवं संघर्ष को कम करने के लिए करता है।

3.5 निदानात्मक तथा कार्यात्मक सम्प्रदाय में अन्तर

निदानात्मक सम्प्रदाय तथा कार्यात्मक सम्प्रदाय में निम्न अन्तर दृष्टिगोचर होता है:

(1) व्यक्तित्व संरचना के प्रत्यय में अन्तरः– निदानात्मक सम्प्रदाय फ्रायड तथा उनके साथियों द्वारा विकसित किये गये व्यक्तित्व सिद्धांत का पालन करता है जब कि कार्यात्मक सम्प्रदाय ओटो रैंक (Otto Rank) की संकल्प (will) शक्ति पर आधारित है। रैंक के विचार से व्यक्तित्व में ही संगठनात्मक शक्ति (Organizing force) होती है। जिसे संकल्प (will) कहते हैं। फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व संरचना में संगठन शक्ति नहीं होती है। व्यक्तित्व संगठन में अनेक विभिन्न तथा अन्तः क्रियात्मक शक्तियाँ होती है जो न केवल एक–दूसरे के प्रति अन्तक्रिया करती हैं बल्कि पर्यावरण में अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभावों के प्रति भी प्रकट होती है। इन शक्तियों की सापेक्षित ताकत तथा संतुलन व्यवस्था व्यक्ति के पूर्व अनुभव द्वारा उत्पन्न होती है जिसको वह अपने माता–पिता से सम्बन्ध स्थापित

करने के कारण प्राप्त करता है। इस मनोसंरचना में अहं का मुख्य स्थान होता है। वह अनेक कार्य करता है परन्तु सबसे प्रमुख कार्य पराहं तथा आन्तरिक चालकों में सन्तुलन बनाये रखना है। वह व्यक्ति की मनोआवश्यकताओं को वास्तविकता की माँग से समझौता कराता है।

इस प्रकार अहं आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही शक्ति के रूप में कार्य करता है। इसका कार्य प्रत्यक्षीकरण, वास्तविकता परीक्षण, निर्णय, संगठन, नियोजन तथा आत्म संरक्षित रखना है। अहं की शक्ति व्यक्ति के मनो–सामाजिक विकास पर निर्भर होती है। मनो–चिकित्सकीय सहायता द्वारा अहं का विकास किया जा सकता है। निदानात्मक सम्प्रदाय के अनुसार व्यक्तित्व संरचना, अन्तर्मनोसंघर्ष तथा उसका वर्तमान समस्या से सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करना सेवार्थी में सुधार एवं परिवर्तन के लिए आवश्यक होता है। यह मनोकार्यात्मकता में प्रतिमानों के अस्तित्व को स्वीकार करता है जिसके द्वारा व्यक्ति के विचलन को वर्गीकृत करके समझा जा सकता है। मनोसामाजिक व्यवधान चिकित्सा के रूप को निश्चित करता है।

कार्यात्मक सम्प्रदाय व्यक्त्वि सिद्धान्त की आन्तरिक मूल–प्रवृत्तियों एवं आवश्यकताओं में अन्तःक्रिया तथा बाह्य पर्यावरण सम्बन्धी अनुभव को महत्व देता है। परन्तु यह अन्तःक्रिया जन्मजात संकल्प (will) शक्ति द्वारा आत्म विकास के लिए संगठित एवं निर्देशित होती है। वह इस प्रकार से आन्तरिक तथा वाह्य अनुभव उत्पन्न करता है जिससे अहं का विकास होता है। संकल्प अच्छा का कार्य वैयक्तिकता का विकास करना है। अतः मानव प्राणी प्रारम्भिक काल से ही न केवल बाह्य तथा आन्तरिक वास्तविकता द्वारा कार्य करता है बल्कि वास्तविकता पर भी कार्य करता है। इस दृष्टि से अहं तथा आत्म (स्व) का विकास संकल्प साधन द्वारा आन्तरिक तथा बाह्य अनुभवों में रचनात्मक उपयोग द्वारा होता है। आन्तरिक तथा बाह्य शक्तियों में अन्तःक्रिया के फलस्वरूप स्वयं का विकास सम्भव नहीं है।

यह विकास परिवेश में अर्थपूर्ण सम्बन्धों के विकसित होने के साथ–साथ घटित होता है। इन परिवेश के सम्बन्धों में सबसे प्रथम तथा प्रमुख स्थान माता से सम्बन्ध का है। बालक इन सम्बन्धों में अपनी आवश्यकताओं को दूसरों पर प्रक्षेपित करता है इस अवस्था में मुख्य आवश्यकताएँ जैविकीय होती हैं अतः उनमें बहुत अधिक मानसिक महत्व होता है। इस आवश्यकता की संतुष्टि के कार्य में बालक से संघ (Union) स्थापित करने के लिए मनौवैज्ञानिक प्रभाव होता है। बालक इन सम्बन्धों के अनुभव से बिलकुल रिक्त होने के कारण बहुत अधिक प्रभाव अनुभव करता है। परन्तु वास्तविकता में सम्पूर्ण संघ या सम्बन्ध (Union) सम्भव नहीं है अतः पृथक्कीरण स्वभावतः घटित होता है जिसका उपयोग संकल्प शक्ति रचनात्मक

तरीके से करती है और इससे वास्तविकता की सीमाओं की रचना का आन्तरिक सम्पूर्णता का विकास सम्भव होता है अथवा ध्वंसात्मक तरीके से सीमाओं का उल्लंघन कर दूसरे से संघ स्थापित करने के कार्य में निरन्तरता बनाये रखता है।

दोनों सम्प्रदाय प्रक्षेपण तथा प्रतिरोध का अलग–अलग अर्थ लगाते है। निदानात्मक सम्प्रदाय के अनुसार प्रक्षेपण (Projection) एक सुरक्षात्मक यन्त्र है जिसके द्वारा अपनी भावनाओं को दूसरे पर आरोपित कर दिया जाता है। कार्यात्मक सम्प्रदाय के विचारक इसका अर्थ आन्तरिक मूल प्रवृत्तियों के बाह्य वस्तु पर व्यक्तिकरण से समझते है। व्यक्ति उस बाह्य वस्तु औचित्यता को अपनी रुचि के अनुसार उपयोग करता है।

प्रतिरोध भी इसी प्रकार दोनों सम्प्रदायों के लिए अलग–अलग अर्थ रखता है। निदानात्मक सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से प्रतिरोध का अर्थ अस्वीकृत विचारों को व्यक्त होने पर अहं द्वारा रोक लगाना है, प्रतिरोध आत्म ज्ञान में बाधक होता है। अतः चिकित्सा प्रक्रिया में प्रतिरोध को सेवार्थी के इच्छित अनुकूलन तथा समायोजन के लिए दूर करना आवश्यक होता है। कार्यात्मक सम्प्रदाय के विचार से प्रतिरोध का अर्थ संकल्प द्वारा सम्बद्व स्थिति पर नियन्त्रण रखना है जिससे शीघ्र परिवर्तन सम्भव हो। अतः कार्यात्मक वैयक्तिक कार्यकर्ता प्रतिरोधों को दूर करने के प्रयत्न के स्थान पर इस स्थिति के किसी भी भाग पर सेवार्थी की नियन्त्रण की आवश्यकता की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है और इस प्रकार वह नवीन अनुभव प्रदान करता है जिसके द्वारा वह संकल्प के ध्वसंसात्मक प्रयोग का बहिष्कार करता है।

कार्यात्मक कार्यकर्ता सेवार्थी को स्वयं अपने भाग्य का निर्माता मानता है। वह व्यक्तित्व निर्माण आन्तरिक चालकों तथा बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव को स्वीकार नहीं करता है। निदानात्मक कार्यकर्ता के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण मूल आवश्यकताओं तथा शारीरिक एवं मानसिक पर्यावरण के अन्तः सम्बन्धों से होती है।

3.6 निदानात्मक एवं कार्यात्मक सम्प्रदाय की प्रणाली में अन्तर

निदानात्मक सम्प्रदाय के विचार से चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति की अहं शक्ति में वृद्धि करना है। उन प्रभावों को जानने के लिए जो सेवार्थी की अहं कार्यात्मकता पर सकारात्मक परिणाम प्रदान करने वाले कारक तथा वास्तविकता का दबाव का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह ज्ञान सेवार्थी से प्रारम्भिक साक्षात्कारों द्वारा प्राप्त किया जाता है। सेवार्थी का प्रत्युत्तर कार्यात्मक सम्बन्ध–स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है, क्योंकि इसके द्वारा ही

उसकी समस्या का ज्ञान होता है। प्रत्युत्तर द्वारा ही सेवार्थी को समस्या अध्ययन, निदान तथा उपचार कार्य में भागीकृत किया जा सकता है। सेवार्थी को समस्या अध्ययन, निदान तथा उपचार कार्य में भागीकृत किया जा सकता है। सेवार्थी की मनोवृत्ति तथा सम्बन्ध स्थापन की प्रकृति जिसको वह स्थापित करने का प्रयत्न करता है समस्या निदान के लिए आवश्यक समझे जाते हैं परन्तु वे सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा सम्प्रेरणाओं के मूल्यांकन अथवा चिकित्सात्मक निर्देशन के लिए महत्वपूर्ण नहीं होता है।

कार्यात्मक वैयक्तिक कार्यकर्ता व्यथित व्यक्ति की अर्न्तक्षमताओं की अभिव्यक्ति में सहायता करता है। वह मानता है कि संकल्प (will) में कार्य, अनुभव तथा अनुभूति की शक्ति होती है। कार्यकर्ता इनको करके समस्या का समाधान करता हे। उसकी सहायता का केन्द्र बिन्दु संकल्प शक्ति द्वारा व्यक्तित्व में उत्पादात्मक परिवर्तन लाना है। वह वर्तमान स्थिति के प्रति सेवार्थी की भावनाओं का ज्ञान प्राप्त करता है जिसके अन्तर्गत समस्या तथा वैयक्तिक सेवा कार्य सम्बन्ध दोनों–निहित होते है जिसके द्वारा वह समस्या का समाधान कर सकता है। निदानात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य की सहायता नियोजित, लक्ष्य भेदित तथा चिकित्सात्मक होती है।

3.7 कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध (Client Worker Relationship)

कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध द्वारा आन्तरिक संघर्षों को दूर करने के लिए तथा अहं शक्ति को गतिशील बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान की जाती है तथा सामाजिक नियोजन द्वारा वास्तविक दबावों को कम किया जाता है। इसमें उपचार के उद्देश्य तथा प्रविधियाँ भिन्न होती है जिनका उपयोग निदान द्वारा निश्चित किया जाता है। चिकित्सा द्वारा सेवार्थी के व्यक्तित्व के किसी एक अंग में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है परन्तु यह विश्वास किया जाता है कि अन्तःक्रिया के द्वारा उस एक अंग के परिवर्तन से सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है। अतः मनोवैज्ञानिक सन्तुलन स्थापित करने में बाह्य सहायता आवश्यक होती है।

कार्यात्मक सम्प्रदाय के दृष्टिकोण के अनुसार समस्या का विकास सम्बन्धों के ध्वन्सात्मक प्रयोग के कारण होता है। अतः सहायता का केन्द्र बिन्दु सम्बन्ध होता है जिसमें इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि सेवार्थी दूसरे व्यक्तियों के साथ रचनात्मक सम्बन्ध का विकास कर सके।

उत्तरदायित्व में अन्तर – निदानात्मक सम्प्रदाय सेवार्थी की क्षमताओं तथा कमजोरियों का मूल्यांकन करता है तथा उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप आत्म

विकासात्मक सहयोग अथवा कोई ठोस सेवा प्रदान करता है। इसके विचारकों का विश्वास है कि यदि चिकित्सात्मक अनुभव निदान के अनुसार निर्देशित नहीं होता है तो वह नकारात्मक तथा ध्वंसात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। अतः चिकित्सा के निर्देशन का उत्तरदायित्व वैयक्तिक कार्यकर्ता का होता है। इसके विपरीत कार्यात्मक सम्प्रदाय के विचार सेवार्थी की ही इच्छा को सर्वोपरि मानते हैं। वह उसी का उत्तरदायित्व है, कार्यकर्ता केवल सम्बन्धों को प्रभावात्मक बनाता है।

यह कार्यात्मक सम्प्रदाय निदानात्मक सम्प्रदाय से तीन विशेषताओं में मूल रूप से भिन्न है :

(1) मनुष्य की प्रकृति का ज्ञान (Understanding of the nature of man) :निदानात्मक सम्प्रदाय में वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी की व्याधिकीय दशा के लिए निदान तथा उपचार के लिए उत्तरदायी होता है तथा परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु कार्यकर्ता में निहित होता है। कार्यात्मक सम्प्रदाय मनोवैज्ञानिक विकास के लिए कार्य करता है तथा परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु कार्यकर्ता में न होकर सेवार्थी में होता है। कार्यकर्ता सेवार्थी को सम्बन्ध प्रक्रिया में सन्निहित कर सेवार्थी में विकास तथा विकल्प चुनने की शक्ति का विकास करता है। कार्यात्मक सम्प्रदाय सहायता (Helping) शब्द का उपयोग अपनी प्रणाली को संदर्भित करने के लिए करते हैं जब कि निदानात्मक सम्प्रदाय चिकित्सा शब्द का उपयोग करता है।

(2) समाज कार्य के उद्देश्य का ज्ञान (Understanding the purpose of social work) : निदानात्मक सम्प्रदाय के अनुसार समाज कार्य का उद्देश्य सेवार्थी की व्यक्तिगत एवं सामाजिक दशाओं को स्वस्थ बनाना है। संस्था की भूमिका न केवल द्वितीयक होती है बल्कि कार्यकर्ता के उद्देश्य के विपरीत भी होती है। कार्यात्मक सम्प्रदाय के विचार से संस्था समाजकार्य सेवा की मुख्य आधार होती है। कार्यकर्ता को संस्था से ही सेवा के उद्देश्य, दिशा तथा केन्द्र बिन्दु का ज्ञान होता है। वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली का उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक उपचार न होकर विशिष्ट सामाजिक सेवाओं को उपलब्ध कराना है। इसमें मनोवैज्ञानिक ज्ञान तथा सहायता की निपुणताओं का उपयोग इस प्रकार से किया जाता है कि सेवार्थी को अधिकाधिक अवसर व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास मिलता है तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक कल्याण सम्भव होता है।

(3) प्रक्रिया प्रत्यय का ज्ञान (Understanding of the concept of process) : निदानात्मक सम्प्रदाय में प्रक्रिया शब्द का प्रयोग न होकर प्रणाली शब्द का उपयोग किया जाता है। कार्यात्मक सम्प्रदाय के अनुसार वैयक्तिक सेवा कार्य एक सहायक प्रक्रिया है जिसके द्वारा संस्था की सेवा समाजकार्य के सिद्धान्तों को ध्यान में रख

कर सेवार्थी को प्रदान की जाती है। कार्यकर्ता न तो सेवार्थी की समस्या को वर्गीकृत करता है और न ही चिकित्सा का प्रकार निश्चित करता है। वह सेवार्थी के साथ सम्बन्ध व्यवसाय में भाग लेकर उसमें इस ज्ञान शक्ति का विकास करता है।

3.8 सार संक्षेप

निदानात्मक सम्प्रदाय पर मूल रूप से फ़ायड के व्यक्तित्व के सिद्धांत का प्रभाव पड़ा। इस सिद्धांत के अनुसार सेवार्थी की समस्या के निदान एवं उनके उपचार के लिए उसको पर्यावरण के एक अंश के रूप में देखना तथा उसका सम्पूर्ण से सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। व्यक्ति जिस पर्यावरण में रहता है उसके विभिन्न तत्व परस्पर प्रतिक्रिया करते हुए व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। चेतन के साथ–साथ अचेतन प्रभावों का भी मानवीय मूल्यों, व्यवहार तथा आत्म संयम पर प्रभाव पड़ता है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए इन बाह्य तथा आन्तरिक प्रभावों को भलीभाँति समझना आवश्यक होता है।

कार्यात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य का उपयोग सेवार्थी के मनोविज्ञान का ज्ञान, विकास की प्रकृति तथा सेवार्थी द्वारा इच्छित परिवर्तन के लिए सहायक सामग्री पर निर्भर होता है। सहायक प्रक्रिया का मूल मंत्र कार्यकर्ता का व्यावसायिक सम्बन्ध होता है। अतः कार्यकर्ता की योग्यता अर्जित मानव व्यवहार ज्ञान पर निर्भर होती है। स्नेह, प्रेम, कल्पना आदि गुणों के अतिरिक्त कार्यकर्ता में इस प्रकार का गुण हो कि वह अपनी आवश्यकताओं, भावनाओं, प्रवृत्तियों तथा पूर्वाग्रहों पर नियन्त्रण रखकर सेवार्थी की सहयाता उचित प्रकार से कर सके।

अतः उसे आत्मज्ञान तथा दूसरे व्यक्ति के सन्दर्भ में ज्ञान अर्जित करना अत्यन्त आवश्यक होता है। व्यक्ति की कार्यात्मकता तथा स्थान के आधार पर उसकी समस्याओं को अनेक वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, पृष्ठभूमि, धर्म आदि महत्वपूर्ण वर्गीकरण है। यदि शारीरिक रोग होता है तो चिकित्सक द्वारा किसी वर्गीकरण पर पहुँचा जाता है परन्तु मनोसामाजिक समस्याओं का वर्गीकरण वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा होता है जैसे पिता पुत्र के समायोजन की समस्या, सीखने की समस्या, वैवाहिक समस्या इत्यादि। मनोविकार सम्बन्धी समस्याओं में निदान वर्गीकरण मनोविकार विज्ञान के आधार पर किया जाता है।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

निदानात्मक	Diagnostic	संकल्प	will
कार्यात्मक	Functional	प्रत्याहार	withdrawal
कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध	Client Worker Relationship	गति	Motion
प्रक्षेपण	Projection	आत्म	self
संकल्प	will	मनो अहं	Psychic ego
संघ या सम्बन्ध	Union	सम्प्रेरणा	Motivation

3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निदान का अर्थ लिखिये ?
2. निदानात्मक सम्प्रदाय की आवश्यक शर्तों की व्याख्या कीजिये ?
3. निदानात्मक सम्प्रदाय के मूल्य क्या हैं ?
4. चिकित्सा का प्रारम्भिक चरण समझाइये ?
5. सेवार्थी का मूल्यांकन कीजिये ?
6. चिकित्या के सिद्धांत एवं प्रणालियो का वर्णन कीजिये ?
7. कार्यात्मक सम्प्रदाय का उल्लेख कीजिये ?
8. समय का प्रत्यय क्या है ?
9. सहायक प्रक्रिया का उल्लेख कीजिये ?
10. कार्यात्मक सम्प्रदाय की मूल मान्यताएँ क्या हैं ?
11. निदानात्मक तथा कार्यात्मक सम्प्रदाय में अन्तर सझाइये ?
12. निदानात्मक एवं कार्यात्मक सम्प्रदाय की प्रणाली में अन्तर क्या है ?
13. कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध क्या है ?

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्द संस्थान लखनऊ।
2. डा. कृपाल सिंह सुदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पटिलकेशन्स, लखनऊ।

3. आर0के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम प्रकाशन : रावत, नई दिल्ली।

4. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।

इकाई–4

सामाजिक प्रक्रियायें

Social Processes

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 सामाजिक प्रक्रिया की अवधारणा

4.2.1 सहयोग

4.2.2 प्रतिस्पर्धा

4.2.3 संघर्ष

4.2.4 व्यवस्थापन

4.2.5 सात्मीकरण

4.2.6 अनुकूलन

4.4 सार संक्षेप

4.5 अभ्यास प्रश्न

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आपः–

- सामाजिक प्रक्रिया की अवधारणा को समझ सकेगें।
- सामाजिक प्रक्रिया में सहयोग की आवश्यकता को जान सकेगें।
- प्रतिस्पर्धा के तत्वों को जान सकेगें।
- संघर्ष की व्याख्या कर सकेगें।
- व्यवस्थापन को समझ सकेगें।
- सात्मीकरण का वर्णन कर सकेगें।
- अनुकूलन की प्रवृत्तियों से अवगत होगें।

4.1 परिचय

व्यक्ति के जीवन के दो प्रमुख आधार हैं–प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक। वंशानुक्रम से शारीरिक विशेषतायें प्राप्त होती हैं जबकि सामाजिक गुणों का विकास, सामाजिक अन्तःक्रिया द्वारा होता है। इसी कारण उसे सामाजिक प्राणी कहा जाता है क्योंकि उसका अस्तित्व पूर्णतया समाज पर निर्भर हैं। परन्तु दोनों में किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित होता है तथा दोनों में अन्तःक्रिया का क्या स्वरूप होता है यह ज्ञान सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने से ही ज्ञात हो सकता है। प्रस्तुत इकाई में हम निम्न तथ्यों पर चर्चा करेगें।

4.2 सामाजिक प्रक्रिया की अवधारणा

प्रक्रिया जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती है। इसकी 4 विशेषतायें हैं:

1. घटनाओं का सम्बन्धित होना,
2. घटनाओं की पुनरावृत्ति,
3. निरन्तरता,
4. परिणाम,

शारीरिक प्रक्रिया में श्वांस लेने की प्रक्रिया इन शब्दों को स्पष्ट करती है क्योंकि उसमें पुनरावृत्ति भी होती है, निरन्तरता भी पायी जाती है तथा निश्चित परिणाम प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र में भी पुनरावृत्ति होती है तथा निश्चित परिणाम प्राप्त होते हैं।

सामाजिक प्रक्रिया की परिभाषा (Definition of social Process)

जिस विधि से व्यक्ति सामाजिक जीवन का अंग बनता है उसे सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं।

गिलिन, जे0 एल0 एवं गिनि जे0 पी0 : ''सामाजिक क्रियाओं से हमारा तात्पर्य अन्तःक्रिया के उन तरीकों से है जिनका हम उस समय अवलोकन कर सकते हैं जब व्यक्ति तथा समूह परस्पर मिलते हैं तथा सम्बन्धों की व्यवस्था स्थापित करते हैं या पूर्व प्रचलित जीवन के तरीकों में व्यवधान घटित होता है।''

अन्तःक्रिया के विभिन्न स्वरुपों को सामाजिक प्रक्रियायें कहते हैं। व्यक्ति समूह से सम्बन्ध दो आधारों पर स्थापित करता हैः 1. सहयोगिक, 2. विरोधात्मक। सहयोगिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत सहयोग, व्यवस्थापन, अनुकूलन तथा सात्मीकरण तथा विराधात्मक में प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष प्रमुख है।

4.2.1सहयोग (Cooperation)

सहयोग व्यक्ति की जन्मजात आवश्यकता है। उसका अस्तित्व, विकास तथा जीवन सहयोग पर निर्भर है। भूख व्यक्ति की मौलिक आवश्यकता है, इसकी संतुष्टि के लिए उसे किन–किन व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है, यह सभी जानते हैं। इसी प्रकार उसकी बहुत–सी आवश्यकतायें हैं जिनकी संतुष्टि के लिए दूसरों का सहयोग सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है।

4.2.1.1 सहयोग का अर्थ

सहयोग का अर्थ स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं।

ग्रीन, ए डब्लू ,''सहयोग दो या अधिक व्यक्तियों के किसी कार्य को करने या किसी उद्देश्य, जोकि समान रूप से इच्छित होता है, पर पहुँचने को निरन्तर एवं सम्मिलित प्रयन्न को कहते हैं।''

आगवर्न तथा निम्काफ ,'' जब व्यक्ति समान उददेश्य के लिए एक साथ कार्य करते हैं तो उनके व्यवहार को सहयोग कहते हैं।''

फेयरचाइल्ड, एच0पी0 ,‘‘ सहयोग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एकाधिक व्यक्ति या समूह अपने प्रयत्नों को बहुत कुछ संगठित रूप में सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त करते हैं।’’

उपर्लिखित परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सहयोग व्यक्ति की मौलिक आवश्यकता है क्योंकि इससे उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा उद्देश्यों की पूर्ति होती है। व्यक्ति चेतन रूप से सहयोगिक क्रिया में भाग लेता है।

Cooperation शब्द का विश्लेषण स्वयं अपनी विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

C=Consciousness	O=Object common
O=Organized efforts	P=Participation
E=Efforts (Group)	R=Reciprocity
A=Agreement	T=Tendency to help
I=Interaction positive	O=Onus (responsibility)
N=Norms	

अर्थात सहयोग चेतन अवस्था है जिसमें संगठित एवं सामूहिक प्रयत्न किये जाते हैं क्योंकि समान उद्देश्य होता है। सभी की सहभागिता होती है, क्रियाओं एवं विचारों का आदान–प्रदान होता है। अन्तःक्रिया सकारात्मक होती है तथा सहायता करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। सहयोग में भाग लेने वाले व्यक्ति उत्तरदायित्व पूरा करते हैं। परन्तु उसके निश्चित प्रतिमान होते हैं।

4.2.1.2 सहयोग की आवश्यक शर्तें

सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उसकी आवश्यक शर्तें पूरी हों। ये आवश्यक शर्तें हैं :

1. **समान उद्देश्य**

व्यक्ति सहयोग के लिए तभी तत्पर होते हैं जब उनके उद्देश्य में समानता हो। उदाहरण के लिए किसी संगठन का सदस्य इसलिए बनता है क्योंकि उससे उसके हितों की पूर्ति होती है।

2. **सहमति**

सहयोग के लिए आवश्यक है कि दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विशेष उद्देश्य के लिए एकमत हों। सामूहिकता की भावना अत्यन्त आवश्यक होती है।

इस भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति दूसरे से समन्वय स्थापित करते तथा कार्य की पूर्ति के लिए सहयोग करते हैं।

3. **सामूहिक प्रयत्न**

सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए विकास एवं उन्नति कर सकते हैं।

4. **समान इच्छा**

सहयोग के लिए आवश्यक है कि सहयोग करने वाले व्यक्तियों की समान इच्छा हो तथा मानसिक रूप से सहयोग करने के लिए तत्पर हों।

5. **प्रेम एवं सद्भावना**

सहयोग प्रक्रिया प्रेम तथा सद्भावना पर आश्रित है। जितना अधिक परस्पर प्रेम होगा, सहयोग उतना ही अधिक होगा।

6. **व्यवहारों में एकरूपता**

समूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए विकास एवं उन्नति कर सकते हैं।

7. **सम्बन्धों की घनिष्ठता**

सम्बन्धों की प्रगाढ़ता सहयोग के प्रकार को निश्चित करती हैं जितने ही सम्बन्ध घनिष्ट होते हैं उतना ही सहयोग अधिक प्राप्त होता है।

8. **अन्तः क्रिया**

बिना अन्तःक्रिया के सहयोग का प्रारम्भ ही नहीं हो सकता है। व्यक्ति , हाव–भाव, शब्द, शारीरिक गति आदि के द्वारा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

4.2.1.3 सहयोग के प्रकार

ग्रीन (Green) ने तीन प्रकार के सहयोग का वर्णन किया है :

1. **प्राथमिक सहयोग**
   - प्राथमिक सम्बन्ध होते हैं।
   - प्राथमिक समूहों में पाया जाता है।
   - व्यक्ति तथा समूह के स्वार्थों में कोई भिन्नता नहीं होती हैं।
   - त्याग की भावना प्रधान होती है।
   - परिवार तथा मित्र मंडली, इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
2. **द्वितीयक सहयोग**
   - यह जटिल समाजों में पाया जाता है।

- औपचारिकता अधिक होती है।
- व्यक्तिगत हितों की प्रधानता होती है।
- स्कूल, आफिस, कारखाने आदि में द्वितीयक सहयोग पाया जाता है।

3. **तृतीयक सहयोग**
   - उद्देश्य प्राप्ति तक सहयोग किया जाता है।
   - लक्ष्य बिल्कुल अस्थायी होता है।
   - अवसर की प्रधानता होती है।
   - चुनाव जीतने के लिए भिन्न पार्टियों में सहयोग या लड़ाई के समय विभिन्न पार्टियों में सहयोग तृतीयक सहयोग होता है।

मैकाइवर तथा पेज (Mclver & Page) ने सहयोग के दो प्रकार बताये हैं :

1. प्रत्यक्ष 2. परोक्ष

इन सहयोग के प्रकारों को वही विशेषता है जो प्राथमिक तथा द्वितीयक सहयोग की है।

4. **सहयोग के स्वरूप**

सहयोग की आवश्यकता प्रत्येक क्षेत्र में होती है। जितने प्रकार की क्रियायें होती हैं सहयोग भी उतने प्रकार का होता है। सामान्यतः सहयोग के निम्न स्वरूप हैं:

1. सामाजिक सहयोग
2. मनोवैज्ञानिक सहयोग
3. सांस्कृतिक सहयोग
4. शैक्षिक सहयोग
5. आर्थिक सहयोग

6- सहयोग का महत्व

मानव जीवन की सुरक्षा, उन्नति तथा विकास के लिए सहयोग आवश्यक प्रक्रिया है। इसका महत्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हैं।

1. **सामाजिक क्षेत्र**
   - सहयोग से सामाजिक गुण विकसित होते हैं।
   - व्यवहार करना सीखता है।
   - सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है।

- सामाजिक व्यवस्था बनी रहती है।
- सामजिक संगठन कार्य करने में सक्षम होते हैं।

2. मनोवैज्ञानिक क्षेत्र

- व्यक्तित्व का विकास होता है।
- मनोवृत्तियाँ विकसित होती हैं।
- निर्णय करने की क्षमता आती है।
- सांवेगिक पक्ष दृढ़ होता है।
- प्रत्यक्षीकरण उचित दिशा में होता है।
- समस्याओं का समाधान करना सीखता है।

3.सांस्कृतिक क्षेत्र

- संस्कृति का विकास होता है।
- संस्कृति की रक्षा होती है।
- सांस्कृतिक परिवर्तन सहयोग पर निर्भर है।
- सांस्कृतिक गुण सहयोग से आते है।

4.शैक्षिक क्षेत्र

- सभी प्रकार का सीखना सहयोग पर निर्भर है।
- शैक्षणिक उन्नति का आधार सहयोग है।
- अर्जित ज्ञान की रक्षा सहयोग पर निर्भर है।

4.आर्थिक क्षेत्र

- आवश्यकताओं की पूर्ति सहयोग ही कर सकता है।
- आर्थिक विकास सहयोग पर निर्भर है।

4.2.2 प्रतिस्पर्धा (Competition)

नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा श्रम विभाजन के फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा का विकास हुआ है। आधुनिक समाजों में यह प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी है। क्योंकि वस्तुयें सीमित होती जा रही हैं तथा उसके प्राप्त करने वाले दिनों दिन बढ़ते जा रहे हैं। अतः उनमें एक प्रकार की होड़ लगी हुई है जिसे प्रतिस्पर्धा के नाम से जानते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिस्पर्धा तभी होती है जब वस्तु सीमित मात्रा में होती है और उसको प्राप्त करने वालों की, संख्या अधिक होती

है। इस प्रकार हम कह कसते हैं। कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों में सामान्य परन्तु सीमित मात्रा वाले उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न को प्रतिस्पर्धा कहते हैं।

4.2.2.1 प्रतिस्पर्धा का अर्थ

1.बोगार्डस, ई0 एस0 : प्रतिस्पर्धा किसी वस्तु को प्रापत करने की प्रतियोगिता को कहते हैं जो कि इतनी मात्रा मे कहीं नहीं पाई जाती जिससे मांग की पूर्ति हो सके।

2. फिचर, जे0 एच0 : प्रतिस्पर्धा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें दो या दो अधिक व्यक्ति अथवा समूह समान उद्देश्य प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

3. ग्रीन, ए0 डब्ल्यू0: प्रतिस्पर्धा में दो या अधिक पार्टियाँ समान उद्देश्य के लिए प्रयत्य करती हैं जिसमें कोई भी एक दूसरे के साथ सम्मिलन के लिए तैयार नहीं होता है अथवा सम्मिलन की कोई आशा नहीं रखता है।

प्रतिस्पर्धा शब्द अंग्रेजी भाषा कें 'Competition' का हिन्दी रूपान्तर है। यदि हम इसका विश्लेषण करें तो इनकी विशेषताएं तथा इसका प्रत्यय स्पष्ट दिखता है।

Competition :

C=Common objective

O=Organized efforts

M=Meaningful behaviour separately

P=Preparation

E=Expectation of getting himself

T=Things in scarcity

I = Interaction less (internal)

T=Tendency of hate

I=Internal conflict

O=Other feeling

N=No knowledge of others (Some times)

इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिस्पर्धा में यद्यपि समान उद्देश्य होता है परन्तु सम्मिलित प्रयत्न नहीं होते हैं यदि होते भी है तो उसमें स्वार्थ की भावना अधिक होती है। जो व्यवहार उस समय होता है वह अर्थपूर्ण तथा नियोजित होता है। आन्तरिक घृणा तथा संघर्ष की स्थिति होती है। 'हम भावना' के स्थान पर 'परभावना' महत्वपूर्ण कार्य करती है। कभी–कभी प्रतिस्पर्धा में भाग

लेने वाले सभी के विषय में न तो जानकारी होती है और न ही प्राप्त की जा सकती है।

4.2.2.2 प्रतिस्पर्धा के निर्धारक (Determinants of Competition)

प्रतिस्पर्धा के लिए निम्न दशाओं का होना अनिवार्य होता है :

1. वस्तु या स्थान की सीमित मात्रा
2. वस्तु या स्थान का महत्व
3. समूह की संरचना
4. समाज में प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य व्यवस्था
5. भौतिकवादी दृष्टिकोण
6. जटिल समाज
7. व्यक्तिगत गुणों का महत्व

Competition = (Lt+Ut+SMV+I)

Competition is based on

(i) Lt = Limited things or post
(ii) Ut = Utility of thing or post
(iii) Smv = Social and material values
(iv) I = Individualistic view

4.2.2.3.प्रतिस्पर्धा की विशेषताएं (Characteristcs)

1. प्रतिस्पर्धा सभी समाजों में पाई जाती है।
2. जैसे–जैसे नगरीकरण बढ़ता है, प्रतिस्पर्धा बढ़ती है।
3. भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रतिस्पर्धा की गति तेज कर रहा है।
4. इसमें जन्म एवं जाति का महत्व कम हो जाता है।
5. वैयक्तिक गुणों का महत्व होता हैं।
6. असहयोगिक सम्बन्ध पाये जाते हैं।
7. यद्यपि संघर्ष की स्थिति नहीं होती है परन्तु व्यक्ति का व्यवहार विरोधात्मक होता है।
8. स्वार्थपरता अधिक होती है।
9. व्यक्ति के स्थान पर उसके प्रयत्नों से ईर्ष्या होती हैं।
10. क्षमता तथा योग्यता के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति प्रतिस्पर्धा में भाग ले सकता है।

4.2.2.4 प्रतिस्पर्धा के प्रकार (Types)

साधारणतया प्रतिस्पर्धा दो प्रकार की होती है–

1. वैयक्तिक (Personal)
2. अवैक्तिक (Impersonal)

वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा में प्रतियोगिता के सम्बन्ध में ज्ञान रहता है। उदाहरण के लिए कक्षा में प्रथम आने वाले विद्यार्थियों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा वैयक्तिक होती है। अवैयक्तिक प्रतिस्पर्धा में प्रतियोगिता का ज्ञान नहीं होता है केवल उद्देश्य महत्वपूर्ण होता है। विभिन्न प्रकार की प्रतियोगितायें इसकी उदाहरण हैं।

4.2.2.5 प्रतिस्पर्धा के स्वरूप (Forms)

प्रतिस्पर्धा निम्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है या उसके निम्न स्वरूप हैं :

1.	**आर्थिक प्रतिस्पर्धा** (Economic competition)	– उत्पादन में प्रतिस्पर्धा – विनिमय में प्रतिस्पर्धा – वितरण में प्रतिस्पर्धा – उपभोग में प्रतिस्पर्धा
2.	**स्थिति की प्रतिस्पर्धा** (Competition for status)	– रिक्त स्थान प्राप्त करने में प्रतिस्पर्धा – प्रोन्नति में प्रतिस्पर्धा – शक्ति प्राप्त करने में प्रतिस्पर्धा – उपभोग में प्रतिस्पर्धा
3.	**राजनैतिक प्रतिस्पर्धा** (Political competition)	– शक्ति प्रदर्शन में प्रतिस्पर्धा – सत्ता प्राप्त करने में प्रतिस्पर्धा – नेतृत्व प्राप्त करने में प्रतिस्पर्धा
4.	**सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा** (Cultural competition)	– धर्म के महत्व को सिद्ध करने में प्रतिस्पर्धा – आदर्शों को महत्वपूर्ण सिद्ध करने में प्रतिस्पर्धा

प्रतिस्पर्धा के कार्य (Functions)

गिलिन तथा गिलिन ने प्रतिस्पर्धा के 4 मुख्य कार्य बताये हैं:

1. प्रतिस्पर्धा में भाग लेने वाले व्यक्तियों तथा समूहों की इच्छायें अधिक अच्छे ढंग से संतुष्ट होती है। यदि मानव कोई इच्छा रखता है और उसकी संतुष्टि प्रतिस्पर्धा में भाग लेकर हो जाती है तो वह सामान्य से अधिक संतोष प्राप्त करता है।
2. जनता की इच्छाओं, अभिलाषाओं को अच्छी प्रकार से प्रतिस्पर्धा से विजयी लोग पूरा करने में सक्षम होंगे।
3. प्रतिस्पर्धा के द्वारा लैंगिक तथा सामाजिक चयन अधिक सुचारु रूप से हो सकता है।
4. विभिन्न कार्यात्मक समूहों के सदस्यों के चयन से प्रतिस्पर्धा का कार्य महत्वपूर्ण होता है।

4.2.2.6. प्रतिस्पर्धा के परिणाम (Results)

1. संगठनात्मक परिणाम (Associative)

1. नये संघों, संगठनों का निर्माण
2. उच्च एवं अच्छी सेवा
3. कार्यस्तर में वृद्धि
4. कीमत में कमी
5. नये ज्ञान में वृद्धि
6. सहकारिता की भावना का विकास
7. नवीन खोजें तथा समस्या के समाधान के नये तरीके।

2. विघटनात्मक परिणाम (Dissociative)

1. संघर्ष की स्थिति का प्रारम्भ
2. असामाजिक तथा जाल फरेब
3. झूठ का बोल बाला
4. हिंसा का उपयोग
5. कानूनी तरीकों का अतिक्रमण
6. मान हानि का प्रयत्न
7. नकली–वस्तुओं के निर्माण में वृद्धि

8. दिखावापन

3. व्यक्तित्व के संदर्भ में परिणाम

4.2.2.7 उचित एवं अनुचित प्रतिस्पर्धा में अन्तर

(ए) उचित प्रतिस्पर्धा

1. सामाजिक भावनाओं का
2. सम्पर्क में वृद्धि
3. उदार दृष्टिकोण
4. मानसिक संतुष्टि

4. उन्नति के संदर्भ में परिणाम

1. प्रतिस्पर्धा में समाज समायोजित बना रहता है।
2. अधिक से अधिक उन्नति होती।
3. जीवन का प्रत्येक क्षेत्र विकसित होता है।
4. व्यक्ति में चुस्ती एवं ताजगी बनी रहती है।

(बी) अनुचित प्रतिस्पर्धा

1. असामाजिक भावनाओं का विकास
2. सीमित सम्पर्क तथा गुटबाजी
3. अनैतिकता में वृद्धि
4. तनाव तथा दबाव का अनुभव
5. वह सदैव दूसरों के क्रियाओं को जानने के लिए सचेत रहता है।
6. भौतिक तथा सामाजिक उन्नति होती है।

5. सामूहिक एकरूपता के संदर्भ में परिणाम
    1. जब तक उचित स्पर्धा रहती है तब तक सामूहिक एकरूपता बनी रहती है।
    2. अनुचित स्पर्धा होने पर संगठन को जोरदार धक्का लगता है।
    3. सम्बन्धों में कमी आती है।
    4. एकांगी दृष्टिकोण हो जाता है।

4.2.2.8 प्रतिस्पर्धा का महत्व

सामाजिक विकास एवं वैयक्तिक उन्नति के लिए प्रतिस्पर्धा आवश्यक है। क्योंकि इससे :

1. वस्तु की उपयोगिता का ज्ञान होता है।
2. ज्ञान में वृद्धि होती है।
3. आविष्कार एवं अनुसंधान होते हैं।
4. व्यक्तित्व का समुचित विकास होता है।
5. व्यक्ति अधिक मेहनत करता है।
6. कार्य योग्य व्यक्तियों द्वारा करने से अच्छा कार्य होता है।
7. विशेषीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।
8. मनोवैज्ञानिक संतुष्टि होती है।
9. उत्साह का संचार होता है।
10. अन्तः क्रियाएं गतिशील होती है।

यद्यपि प्रतिस्पर्धा जीवन का महत्वपूर्ण अंग है परन्तु उस पर नियंत्रण होना आवश्यक होता है। असीमित एवं अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा से अनेक बुराईयाँ उत्पन्न हो जाती है। संगठन शक्ति का ह्रास होने लगता है, एकाधिकार विकसित हो जाता है, वर्गों में संघर्ष होने लगता है तथा गरीब और अधिक गरीब होते चले जाते हैं। अतः प्रतिस्पर्धा पर नियंत्रण होना आवश्यक है।

4.2.3 संघर्ष (Conflict)

संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब प्रतियोगियों का ध्यान अभीष्ट उद्देश्यों से हटकर व्यक्तियों तथा समूहों पर केन्द्रित हो जाता है। प्रतिद्वंदी सदैव एक दूसरे को उचित अनुचित सभी साधनों के द्वारा पराजित करने तथा हानि पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक एकीकरण में बाधा पहुंचती है तथा विघटन की प्रक्रिया कार्य करने लगती है।

4.2.3.1 संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा

संघर्ष एक सामाजिक प्रक्रिया है जो सभी समाजों में पायी जाती है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अथवा समूह किसी उददेश्य की प्राप्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों अथवा समूहों को रोकने का प्रयत्न करते हैं।

1. **परिभाषा**

ग्रीन, ए0 डब्लू0 : संघर्ष किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की इच्छा का जानबूझकर विरोध करने अथवा उसे शक्ति से पूर्ण कराने से सम्बन्धित प्रयत्न है।

गिलिन एण्ड गिलिन : संघर्ष सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह अपने उद्देश्य की प्राप्ति अपने विरोधी को हिंसा अथवा हिंसा के भय द्वारा प्रत्यक्ष चुनौती देकर करते हैं।

संघर्ष प्रतिकूलता के पश्चात प्रारम्भ होता है। स्वार्थपरता बढ़ने से व्यक्ति दूसरे को हानि पहुंचाने लगता है। इसके विरोध में दूसरा व्यक्ति अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है और उसको हानि पहुंचाने से रोकता है। जिससे मनोवैज्ञानिक स्तर पर संघर्ष की रूपरेखा बनती है तथा अवसर आने पर प्रत्यक्ष संघर्ष होने लगता है।

4.2.3.2 संघर्ष की स्थितियाँ

संघर्ष के लिए निम्न परिस्थितियाँ आवश्यक हैं :

1. वैयक्तिक भिन्नता
2- मनोवैज्ञानिक स्तर पर विरोधाभास
3- प्रतिस्पर्धा
4- समझौता न होने की स्थिति
5- क्रोध का संवेग
6- नियंत्रण अप्रभवकारी

4.2.3.3 संघर्ष की प्रकृति

संघर्ष एक चेतन एवं, निरन्तर चलने वाली तथा सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

1. संघर्ष में द्वन्दियों का पूरा ज्ञान होता है।
2- उद्देश्य व लक्ष्य प्राप्त करने के साथ–साथ विरोधी का दमन भी करना होता है।
3- शक्ति का अधिकाधिक उपयोग होता है।
4- संवेग (क्रोध) तेज होते हैं।
5- सतर्कता अधिक होती है।
6- स्थितियों का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण होता है।
7- व्यक्ति प्रधान होता है।
8- लक्ष्य विरोधी की ओर अग्रसित होते हैं।
9- नियम व कानूनों का उल्लघन होता है।
10- विरोधी का दमन होता है।

11- शक्ति का ह्रास होता है।
12- परिवर्तन की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है अतः संघर्ष चलता रहता है।
13- संचय की प्रवृत्ति उत्पन्न करती है।

4.2.3.4 संघर्ष तथा प्रतिस्पर्धा में अंतर

प्रतिस्पर्धा	संघर्ष
1. यह अवैयक्तिक प्रक्रिया है।	1. संघर्ष चेतन होता है।
2. यह अवैयक्तिक प्रक्रिया है।	2. यह वैयक्तिक प्रक्रिया है।
3. यह निरन्तर होती है।	3. संघर्ष कभी–कभी होता है।
4. विरोधियों के प्रति कम द्वेष होता है।	4. विरोधियों को हानि पहुँचाना प्रमुख उद्देश्य होता है।
5. उद्देश्य प्राप्त करना लक्ष्य होता है।	5. स्वार्थ सिद्ध के साथ साथ विरोधी को समाप्त करना भी उद्देश्य होता है।
6. सामाजिक नियमों को कठोरता से पालन किया जाता है।	6. सामाजिक नियमों का पालन नहीं होता है।
7. यह अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित है।	7. हिंसा का प्रयोग होता है।
8. प्रतिस्पर्धा से दोनों पार्टियों को लाभ होता है।	8. प्रायः दोनों विरोधियों को हानि होती है।
9. यह न्यूनतम प्रथक करने वाली प्रक्रिया है	9. यह पूर्ण प्रथम करने वाली प्रक्रिया है।
10. यह वैयक्तिक गुणों तथा परिश्रम को प्रोत्साहित करती है।	10. संघर्ष परिश्रम को प्रोत्साहित नहीं करता है।
11. प्रतिस्पर्धा से उत्पादन बढ़ता है।	11. संघर्ष उत्पादन को कम करता है।

4.2.3.5. संघर्ष के प्रकार (Types)

संघर्ष के निम्न प्रमुख प्रकार है :

1. **वैयक्तिक संघर्ष**

निजी स्वार्थों के कारण यह संघर्ष होता है। इससे समूह को कोई लाभ नहीं होता अतः हर सम्भव प्रयत्न संघर्ष रोकने के लिए किया जाता है।

2. **प्रजाति संघर्ष** :विभिन्न प्रजातियों में यह संघर्ष होता है। जैसे हिंदू–मुस्लिम संघर्ष, हिन्दू सिख संघर्ष, सिया–सुननी संघर्ष, आदि।

2. **वर्ग संघर्ष** :वर्तमान समय में वर्ग संघर्ष प्रमुख स्थान लेता जा रहा है। आज ऐसा कोई दिन नहीं होता जब समाचार पत्र में यह संघर्ष न पढ़ने को मिलता हो।
3. **राजनैतिक संघर्ष** :यह दो प्रकार का होता है। देश के अन्दर तथा अंतर्राष्ट्रीय। पहला संघर्ष देश में विभिन्न दलों के मध्य होता है तथा दूसरा संघर्ष युद्ध होता है।

संघर्ष का परिणाम

समाज पर संघर्ष के निम्न प्रभाव होते है :

1. स्व समूह में एकरूपता
    - समूहों में संगठन
    - आन्तरिक विवादों तथा मतभेदों का अंत
    - कार्यों एवं विश्वासों में एकरूपता
2. समूह में एकता की कमी
    - जब समूह में संघर्ष होता है तो उसमें एकता समाप्त हो जाती है।
    - मतभेद बढ़ जाते है।
    - नियंत्रण कमजोर हो जाता है।
3. व्यक्तित्व में परिवर्तन
    - समूह संघर्ष अथवा समूह से प्रथम संघर्ष दोनों ही स्थितियों में कुछ लोग अवश्य ऐसे होते हैं जो दोनों पक्षों से सम्बन्ध रखते हैं ऐसे व्यक्तियों के आदर्श, उद्देश्य, मूल्य दो में विभक्त हो जाते है।
    - तनावपूर्ण विघटन होता है।
    - सांवेगिक विघटन होता है।
    - दृष्टिकोण सीमित हो जाता है।
    - घृणा का वीभत्स रूप देखने को मिलता है।
4. खून खराबा तथा आर्थिक हानि
    - संघर्ष में जन तथा धन दोनों की हानि होती है।
    - यदि दोनों पार्टियाँ समान शक्तिशाली होती है तो व्यवस्थापन होता है अन्यथा आधिपत्य का परिणाम होता है।

4.2.3.6 संघर्ष के स्वरूप

संघर्ष के प्रायः दो स्वरूप होते हैं :–

1. उद्देश्य के आधार पर संघर्ष–युद्ध, कलह, प्रतिद्वंदिता, मुकदमेबाजी, आदि।
2. समूह भागीकरण के आधार पर संघर्ष–प्रजातीय–संघर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष, राजनैतिक संघर्ष, धार्मिक संघर्ष, औद्योगिक संघर्ष, आदि।

संघर्ष का समाजशास्त्री महत्व

संघर्ष जहाँ एक ओर विघटन उत्पन्न करता है वहीं दूसरी ओर अनेक आवश्यक गुणों का विकास भी करता है। ये निम्न गुण हैं:

1. चेतनता का विकास	– सदैव सतर्क रहते हैं।
	–अवसर का उपयोग करते हैं।
	–स्थिति का निरीक्षण एवं परीक्षण करते हैं
2. सहयोग में वृद्धि	–पारस्परिक सहयोग बढ़ जाता है।
	–सामूहिक एकरुपता बढ़ जाती है।
3. परिश्रम में वृद्धि	–व्यक्ति अधिक से अधिक परिश्रम करता है।
	–नवीन ज्ञान अर्जित करता है।
4. शक्ति का ज्ञान	–समस्त श्रोतों का ज्ञान होता हे।
	–क्षमता का ज्ञान होता है।
	–साधनों का ज्ञान होता है।
5. आत्म चेतना विकास	–ज्ञान एवं बुद्धि का विकास होता है।
	–निर्णय क्रिया एवं प्रत्यक्षीकरण में सूक्ष्मता आती है।
6. सामूहिक भावना का	–समूह हित की भावना बढ़ती है।
विकास	–नये समूह निर्मित होते हैं।
7. चरित्र निर्माण	–गुणों का प्रकटन होता है।
	–आत्म स्थापन की इच्छा पूरी होती है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि संघर्ष का होना भी समाज के हित में है परन्तु अधिक संघर्ष हानि पहुंचाने लगता है। इसीलिए संघर्ष को टालने के सदैव प्रयत्न किये जाते हैं।

4.2.4.व्यवस्थापन (Accommodation)

व्यवस्थापन एकीकरण करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया संघर्ष के पश्चात अथवा संघर्ष टालने के लिए उपयोग में लायी जाती है। दोनों पक्ष अपने–अपने विचारों में परिवर्तन एक दूसरे की इच्छानुसार कर लेते हैं। पति पत्नी विवाह के पश्चात यदि विरोधी स्थिति पाते हैं तो उस समय दोनों पक्ष अपने में परिवर्तन थोड़ा–थोड़ा कर लेते हैं जिससे समायोजन सम्भव होता है।

4.2.4.1. व्यवस्थापन का अर्थ

गिलिन तथा गिलिन : ‘‘व्यवस्थापन यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रतियोगी तथा संघर्षरत व्यक्ति और समूह एक दूसरे के साथ अपने सम्बन्धों को अनुकूल करते हैं जिससे प्रतिस्पर्धा, अतिक्रमण या संघर्ष के कारण उत्पन्न कठिनाइयों को पार किया जा सकें।’’

जोन्स, ई0एम0 :‘‘ एक अर्थ में व्यवस्थापन असहमत रहने के लिए समझौता कहा जा सकता है।’’

आगर्बन तथा निम्काफ ने व्यवस्थापन प्रक्रिया को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि संघर्ष समूह की एकता को धक्का पहुंचता है अतः इसको रोकने के लिए व्यवस्थापन प्रयोग किया जाता है।’’

Accommodation शब्द का विश्लेषण स्वयं अपनी विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

A=Agreement, C=Competing.

C=Conflicting ideas O=Orbitration,

M=Mediation, M=Mechansim

O=Organized efforts D=Displacement

A=Adjustment T=Tolration,

I=Intervention O=Opposition,

N=New ways

व्यवस्थापन एक ऐसा यंत्र व साधन है जिसके द्वारा विरोधात्मक तथा संघर्षात्मक विचारों का समन्वय ,समझौता तथा हस्ताक्षेप के द्वारा होता है। इससे विचारों में परिवर्तन आता है तथा नये विचारों का विकास होता है।

4.2.4.2 व्यवस्थापन की प्रकृति (Nature)

व्यवस्थापन एक चेतन तथा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इन विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:

1. व्यवस्थापन में निश्चित व्यक्तियों तथा दलों का ज्ञान होता है।
2- संघर्ष की स्थिति तथा परिणाम ज्ञात होते हैं।
3- व्यक्ति अथवा समूह अपनी शक्ति का अनुमान लगा लेता है।
4- हार जीत की लगभग स्पष्टता होती है।
5- हानि का अनुमान होता है।
6- घृणा का तत्व पाया जाता है परन्तु उसे प्रेम में परिवर्तित कर देते हैं।
7- व्यवस्थापन में श्रेष्ठता तथा निम्नता बनी रहती है।

व्यवस्थापन के प्रकार (Types)

गिलिन तथा गिलिन ने दो प्रकार के व्यवस्थापन का उल्लेख किया है :

1. समपदस्थ व्यवस्थापन (Coordinate)
2. उच्चपदस्थ निम्नपदस्थ (Super Ordinate-Subordinate)

जब दो शक्तियों में संघर्ष होने के उपरान्त किसी प्रकार का व्यवस्थापन होता है तो उसे समपदस्थ व्यवस्थापन कहते हैं क्योंकि इसमें दोनों पक्षों की स्थिति समान रहती है। उदाहरण के लिए उद्योगपतियों तथा श्रमिकों में समप्रदस्थ व्यवस्थापन होता है। शक्तिशाली राष्ट्र जैसे अमेरिका तथा रूस यदि कोई संधि–पत्र तैयार करते हैं तो व्यवस्थापन का यही रूप होता है।

जब दो शक्तियों में एक निर्बल तथा दूसरी सशक्त होती है तो सशक्त–शक्ति दूसरे को दबा लेती है, पराजित कर देती है, अपनी सुविधानुसार परिवर्तन के लिए बाध्य करती है। जिसकी शक्ति अधिक होती है समझौता उसी के अनुसार होता है। उदाहरण के लिए मुगल सम्राटों ने अनेकों शक्तियों जैसे मराठों, राजपूतों आदि को पराजित कर व्यवस्थापन के लिए मजबूर कर दिया था।

4.2.4.3 व्यवस्थापन की पद्धतियाँ

निम्न पद्धतियाँ संघर्ष को समाप्त करने अथवा संघर्ष टालने के लिए उपयोग में लायी जाती है:

1. **मध्यस्थता (Mediation)**

तटस्थ व्यक्ति को समझोता कराने के लिए नियुक्त किया जाता है। वह न तो निर्णय लेता है और न ही अपनी इच्छा प्रकट करता है। वह केवल संदेशवाहक का कार्य करता है।

2. **सुलह (Concillation)**

सुलह कराने वाला व्यक्ति प्रभावकारी होता है। निर्णय की ओर संकेत करता है। मानना या न मानना विरोधी व्यक्तियों पर निर्भर होता है।

3. **निर्णायक**

इस पद्धति में निर्णायक की बात मानना दोनों दलों के लिए अनिवार्य होता है।

4. **बल का प्रयोग**

शक्तिशाली पक्ष दूसरे को व्यवस्थापन के लिए विवश कर देता है। व्यक्ति इन तरीकों के अतिरिक्त कुछ तरीकों का उपयोग समायोजन तथा अस्तित्व रक्षा के लिए करता है।

5. **युक्तीकरण (Rationalization)**

व्यक्ति जब उद्देश्य प्राप्त करने में असफल रहता है तो कोई न कोई कारण ढूंढता है जिससे सन्तोष प्राप्त होता है। वह जिस स्थिति में होता है उसी को उचित मान लेता है।

6. **स्थिति परिवर्तन (Conversion)**

असंतोष को दूर करने के लिए व्यक्ति स्थिति में परिवर्तन कर लेता है। उदाहरण के लिए दल परिवर्तन।

7. **स्थानापन्नता (Displacement)**

जब व्यक्ति एक उद्देश्य प्राप्त करने में असफल रहता है तो उसके स्थान पर उससे भिन्न उद्देश्य निश्चित करता है और अपने को परिस्थिति से समायोजित कर लेता है।

4.2.4.4 व्यवस्थापन के सहायक कारक (Helping Factors)

व्यवस्थापन की प्रक्रिया निम्न सामूहिक क्रियाओं द्वारा तेज की जा सकती है।

1. **सूचना, शिक्षा तथा प्रचार (Information, Eduction,Propoganda)**

- सही सूचनायें दोनों पक्षों को प्राप्त हों।

- अनुकूल प्रचार कार्य हो।
- अफवाहों को रोका जाय।
- शिक्षात्मक प्रयत्न किये जाय।

2. **राजनैतिक एवं वैधानिक दबाव (Political and Legal Pressure)**

- राजनैतिक प्रभाव का उपयोग हो।
- कानूनों में संशोधन हो।
- कानूनी कार्यवाही साधारण हो।

3. **व्यवसायों एवं पेशों में अंतः समूह सम्पर्कों का संगठन (Organization)**

इन संगठनों का निर्माण कारखानों तथा आफिसों में किया जा सकता है क्योंकि यहाँ विभिन्नतायें अधिक होती हैं।

1. राष्ट्रीय फेडरेशन तथा रीजनल कांउसिल
2. सार्वजनिक प्रशंशा तथा पारितोष।
3. व्यक्ति तथा समूह की मानसिक चिकित्सा।
4. व्यवस्थापन के परिणाम (Results)

4.संघर्ष तथा प्रतिस्पर्धा पर रोक

1. विघटनकारी शक्तियों पर रोक लगती है।
2. सामाजिक एकता को प्रोत्साहन मिलता है।
3. विरोधात्मक क्रियायें एवं विचार समाप्त होते हैं।
4. नये कानून बनते हैं।
5. सम्बन्धों का रूप परिवर्तित होता है।

5.विरोधी दमन (Strangling of Opposition)

1. विजेता समूह पराजित समूह को दबाकर रखता है।
2. अधिकार दमन होता है।
3. मानसिक पराजिता का पुट होता है।
4. विविध व्यक्तित्वों का एकीकरण

6.–व्याक्तित्व सम्पन्न व्याक्तियों का सहयोग

1. विभिन्न विचारों, भावनाओं वाले व्यक्तियों में सम्बन्ध स्थापित होता है।
2. अंतरों को कम करते हैं।

3. प्रयत्नों में सहायता करते हैं।

7.संस्थाओं में परिवर्तन

1. नयी परिस्थिति के अनुसार नयी संस्थाओं का विकास।
2. नये कानूनों की रचना।

8.परिस्थिति में परिवर्तन

1. संघर्ष से उत्पन्न विघटित स्थिति को पुनः गठित होने का अवसर मिलता है।
2. नयी स्थितियों का निर्धारण होता है।

9.सात्मीकरण की तैयारी

1. व्यवस्थापन से समरूपता आती है।
2. जीजवन पद्धति एक सी होने लगती है।
3. अपनापन आने लगता है।

10.व्यवस्थापन का महत्व (Importance)

व्यवस्थापन एक अनिवार्य प्रक्रिया है क्योंकि संघर्ष से जो हानि होती है उसको रोकना आवश्यक होता है। यह कार्य व्यवस्थापन द्वारा ही सम्भव है :

1. विघटन रुकता है।
2. विरोधी क्रियायें समाप्त होती है।
3. आर्थिक हानि से बचाव होता है।
4. शक्ति का संचय होता है।
5. समाजिक एकता आती है।
6. आंतरिक संघर्ष समाप्त होते हैं।
7. नयी संस्थाओं का विकास होता है।
8. जीवन पद्धति में परिवर्तन आता है।
9. व्ययस्थापन पक्ष तथा विपक्ष की स्थिति को औपचारिक बनाता है।
10. व्यक्तित्व समायोजित होता है।

4.2.5 सात्मीकरण (Assimilation)

सम्बन्ध की स्थापना व्यक्तियों के अन्तरों को कम करती है। अन्तःक्रिया के फलस्वरूप रुचियों, व्यवहारों तथा मनोवृतियों में समानता आती है। जिस प्रक्रिया के द्वारा विभिन्न व्यक्तियों की रुचियों, व्यवहारों तथा मनोवृतियों में समानता आती है तथा एक दूसरे के समान आते हैं उसे सात्मीकरण कहते है।

1. सात्मीकरण का अर्थ (Meaning)

यहाँ पर हम कुछ परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं :

बोगार्डस, ई0 एस0 : सात्मीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनेक व्यक्तियों की मनोवृतियाँ एकीकृत होती हैं और इस प्रकार वे एक संयुक्त समूह के रूप में विकसित हो जाती है।

आगवर्न तथा निम्काफ : जिस प्रक्रिया द्वारा किसी समय असमान रहकर एकाध व्यक्ति या मूह समान हो जाते हैं अर्थात अपने स्वार्थ तथा दृष्टिकोण के मामले में एकरूपता आ जाती है उसे सात्मीकरण कहते हैं।

सात्मीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तियों तथा समूहों के बीच घटता हुआ अंतर और साथ ही सामान्य स्वार्थों तथा लक्ष्यों के विषय में क्रियाओं मनोवृत्तियों तथा मानसिक प्रक्रियाओं की बढ़ती हुई एकरूपता देखने को मिलती है जब वे अपने उन अंतरों को खो बैठते हैं जो उन्हें बाहरी व्यक्ति बनाये हुये हैं अर्थात सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर समान हो जाते हैं तो उसे सात्मीकरण कहते हैं।

Assimilation शब्द का विश्लेषण यह गुण स्पष्ट करता है।

A= Adjustment in action, S=Similarity

S=Shaping of new ideas I=Interests

M=Making for unity I=Increased unity

L=Less distinction A=Attitude similar

T=Tonned emotionally I = Inner similarity

O=Outer Similrity N=New wasy

सात्मीकरण की आवश्यक शर्ते (Essential Conditions)

सात्मीकरण की प्रक्रिया कुछ मान्य एवं निश्चित तरीकों द्वारा चलती है। ये आवश्यक शर्ते निम्न हैं :

1. आपसी लेन देन (Give and Take)
- सम्पर्क की अधिकता
- विचारों का आदान–प्रदान
- अन्तःक्रिया की प्रगाढ़ता

2. **मित्रवत व्यवहार (Friendly Behaviors)**
- एक दूसरे के व्यवहार की स्वीकृति
- व्यवहार की मान्यता
- विश्वसनीयता
- मित्रभाव

3. **स्वतंत्रता (Freedom)**
    - निर्णय लेने का अधिकार
    - कानून के समक्ष समानता
    - समान अधिकार

4. **निकट का सम्बन्ध (Intimate Relations)**
    - घनिष्ठता
    - निकटता
    - व्यवहारिक सम्बन्धों में वृद्धि

5. **एक भू–भाग (One Territory)**
- एक भू भाग पर रहकर ही सात्मीकरण सम्भव है।
- अमेरिका में रहकर भारत की संस्कृति से सात्मीकरण नहीं हो सकता है।

6. **प्रत्यक्ष साधन (Direct Means)**
- आमने सामने के सम्बन्ध महत्वपूर्ण
- टेलीफोन, तार, पत्र कार्य नहीं करते हैं।

7. **निरंतरता (Continutiy)**
    - निरन्तर वार्तालाप हो
    - निरन्तर विचारों का आदान–प्रदान हो।
    - निरन्तर मेल मिलाप हो।

सात्मीकरण प्रक्रिया के सहायक कारक (Helping Factors)

सात्मीकरण सामाजिक प्रक्रिया है अतः इसका होना, न होना, रुग्ण अवस्था में होना समाज के गुणों पर निर्भर होता है। समाज की दशा, स्थिति, मनोवृत्ति, व्यवहार आदि का प्रभाव सात्मीकरण प्रक्रिया में सहायता करता है। निम्न कारक सहायता प्रदान करते हैं।

1. पारस्परिक स्वीकृत
2- सहनशीलता

3- घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध
4- सांस्कृतिक समानतायें
5- मानसिकता में एकरूपता
6- समान आर्थिक अवसर
7- अन्तर्विवाह
8- सांस्कृतिक संचार व्यवस्था।

सात्मीकरण का महत्व (Importance)

सात्मीकरण का एकीकरण करने वाली प्रक्रिया है जिससे सामाजिक एकता एवं संगठन को बल मिलता है, अतः यह आवश्यक है। इसके निम्न कार्य हैं :

1. समायोजन स्थापित होता है।
2- परिस्थितियों से समझौता होकर व्यवहारिक परिवर्तन होताहै।
3- एकता उत्पन्न होती है।
4- समाजिक संगठन को प्रोत्साहन मिलता है।
5- रचनात्मक व्यक्तित्व विकसित होता है।
6- व्यवहारिक समरूपता आती है।
7- समाजिक आदान–प्रदान को प्रोत्साहन मिलता है।
8- समाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं में असमान व्यक्ति समान बनते हैं।

सात्मीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे न कि केवल सामाजिक एकरूपता आती है बल्कि व्यक्ति और समूह दूसरे व्यक्तियों या समूहों की स्मृतियों, भावनाओं, व्यवहार के ढंगों, अनुभवों आदि में भाग लेकर एक सामान्य सांस्कृतिक जीवन में प्रवेश करते हैं।

4.2.6 अनुकूलन (Adaptation)

अनुकूलन का तात्पर्य जैविकीय, सामाजिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुसार अपने को परिवर्तित करना होता है जिससे विकास एवं प्रगति सम्भव हो सके। परिवर्तित पर्यावरण से पूर्व पर्यावरण में आने की क्षमता या उसके अनुसार परिवर्तित कर लेने की क्षमता को अनुकूलन कहते हैं।

1.अनुकूलन का अर्थ

फेयर चायल्ड एच0 पी0 : दिये हुये पर्यावरण में रहने की योग्यता प्राप्त करने की प्रक्रिया को अनुकूलन कहते हैं।

रयूटर एण्ड हार्ट : उन परिवर्तनों के लिए अनुकूलन का प्रयोग होता है जिसके पर्यावरण द्वारा जीवन को वैसा होने से सहायता एवं सुरक्षा मिले और जीवन भौतिक पर्यावरण से सम्बन्धित हो सके।

मनुष्य सभी प्रकार की जलवायु तथा पर्यावरण में रहता है यद्यपि पर्यावरण में पर्याप्त भिन्नता होती है। इसका मुख्य कारण है कि उसने जीवन की कला सीख ली है। समायोजन एक प्रकार की कला है जो जीवन प्रदान करती है और कुसमायोजन दूसरे प्रकार की कला है जो मृत्यु प्रदान करती है। अतः समायोजन प्राप्त करना जीवन के लिए आवश्यक है। यह समायोजन जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है। इसी समायोजन को अनुकूलन कहते हैं।

2.अनुकूलन के स्वरूप (Forms)

अनुकूलन के निम्न स्वरूप हैं :

1. प्राणिशास्त्रीय अनुकूलन (Biological Adaptation)
2. भौतिक अनुकूलन (Physical Adaptation)
3. समाजिक अनुकूलन (Social Adaptation)

- **प्राणिशास्त्रीय अनुकूलन** : जैविकीय दृष्टिकोण से सभी प्राणी इस जगत में अनुकूलन नहीं कर पाते हैं इसलिए वे समाप्त हो जाते हैं। जो शक्तिशाली होते हैं वही रह पाते हैं। इस सिद्धान्त को **प्राकृतिक प्रवरण** (Natural selection) कहते हैं। जैविकीय अनुकूलन के लिए प्रायः 3 प्रकार से व्यक्ति संघर्ष करता है–

1. प्रकृति से संघर्ष : गर्मी में लू न लगना, सर्दी में ठंडक न लगना, आदि परन्तु सभी बचाव नहीं कर पाते।
2. अन्य जीवों से संघर्ष : जंगली जानवर, कीटाणु आदि से रक्षा।
3. समान व्यक्तियों से संघर्ष : व्यक्तियों से रक्षा।

- **भौतिक अनुकूलन** : भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत 3 प्रकार का पर्यावरण आता हैंः 1. भौगोलिक 2. जलवायु सम्बन्धी 3. मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुयें। भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव भोजन, वस्त्र, मकान, रहन–सहन के ढंग आदि पर पड़ता है। शारीरिक बनावट पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। जलवायु का भी प्रभाव इन्हीं दशाओं पर पड़ता है। परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित करना होना है। जो बदल लेते हैं वे अनुकूलन प्राप्त कर लेते हैं।

- **समाजिक अनुकूलन** : यद्यपि सामाजिक पर्यावरण की बहुत अधिक दबावमूलक प्रकृति नहीं होती है कि व्यक्ति सभी परिस्थितियों से अनुकूलन

अवश्य करे परन्तु उसके लिए अनुकूलन करना सामूहिक जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक होता है। इस प्रक्रिया को **सामाजिक प्रवरण** (Social selection) प्रक्रिया कहते हैं।

व्यक्ति सामाजिक अनुकूलन दो प्रकार से करता है: प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। जब वह जानबूझकर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है जो उसके अनुकूल होती हैं और उसे सहायता करती हैं, प्रत्यक्ष अनुकूलन होता है: चिकित्सा, व्यवस्था, स्वच्छता अभियान। अप्रत्यक्ष सामाजिक अनुकूलन उसे कहते हैं जब समाज ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें जिसका उद्देश्य अलग ही हो। मिलों की स्थापना उद्योग धंधों में उन्नति के लिए की जाती है परंतु इससे नगरीकरण होता है तथा सम्पूर्ण सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। अपने जीवन को नयी सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार बदलने को अप्रत्यक्ष अनुकूलन कहते हैं।

4.4 सार संक्षेप

जिस विधि से व्यक्ति सामाजिक जीवन का अंग बनता है उसे सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं। जब व्यक्ति समान उददेश्य के लिए एक साथ कार्य करते हैं तो उनके व्यवहार को सहयोग कहते हैं। जब वस्तु सीमित मात्रा में होती है और उसको प्राप्त करने वालों की, संख्या अधिक होती है तो सीमित मात्रा वालो उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न को प्रतिस्पर्धा कहते हैं। संघर्ष एक सामाजिक प्रक्रिया है जो सभी समाजों में पायी जाती है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अथवा समूह किसी उददेश्य की प्राप्ति के लिए दूसरे व्यक्तियों अथवा समूहों को रोकने का प्रयत्न करते हैं। व्यवस्थापन एक ऐसा यंत्र व साधन है जिसके द्वारा विरोधात्मक तथा संघर्षात्मक विचारें का समन्वय समझौता तथा हस्ताक्षेप के द्वारा होता है। इससे विचारों में परिवर्तन आता है तथा नये विचारों का विकास होता है। सात्मीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे न कि केवल सामाजिक एकरूपता आती है बल्कि व्यक्ति और समूह दूसरे व्यक्तियों या समूहों की स्मृतियों, भावनाओं, व्यवहार के ढंगों, अनुभवों आदि में भाग लेकर एक सामान्य सांस्कृतिक जीवन में प्रवेश करते हैं।समायोजन एक प्रकार की कला है जो जीवन प्रदान करती है और कुसमायोजन दूसरे प्रकार की कला है जो मृत्यु प्रदान करती है। अतः समायोजन प्राप्त करना जीवन के लिए आवश्यक है। यह समायोजन जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है। इसी समायोजन को अनुकूलन कहते हैं।

4.5 अभ्यास प्रश्न

1.सामाजिक प्रक्रिया की अवधारणा को समझाइये ?

2.सामाजिक प्रक्रिया में सहयोग की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिये ?

3.प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष के बीच अन्तर की विवेचना कीजिए ?

4.संघर्ष की व्याख्या करें ?

5.व्यवस्थापन के चरणों को समझाइयें ?

6.सात्मीकरण का वर्णन कीजिए ?

7.अनुकूलन की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिये ?

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

सात्मीकरण	Assimilation	व्यवस्थापन	Accommodation
प्रतिस्पर्धा	Competition	संघर्ष	Conflict
सामाजिक प्रक्रिया	SocialProcesses	अनुकूलन	Adaptation
प्राणिशास्त्रीय अनुकूलन	Biological	भौतिक	Physical
	Adaptation	अनुकूलन	Adaptation

संदर्भ ग्रन्थ

1. Gillin, J.L. & Gillin, J.P.:op.cit. P. 488
2. Green, A.W.: Socialogy, Mac Graw Hill Book comp. 1952. P.59
3. Ogburn, W.F.& Nimkoff, M.F.:A Hand book of Sociology, Eurosia Publishing House, New Delhi 1972 P. 108.
4. Fairchild, H.P. : Dictionery of Sociology, Philosophical Library, New York, 1944. P.68
5. Bogardus, E.S. : Sociology, The Mc Millan company, New York 1953 P. 527

6. Fitcher, J.H. : Sociology, The University of Chicago Press Chicago, 1957. P. 239

7. Green, A.W. : Op. cit. P. 58

8. Green, A.W. : Op. cit. P.51

9. Gillin, J.L. & Gillin, J.P. : Op. Cit. P. 625

इकाई– 5

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में प्रविधियाँ एवं निपुणतायें

Techniches and Skills in Social Case Work

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में प्रविधियाँ एवं निपुणतायें

5.3 वैयक्तिक अध्ययन में प्रयुक्त विधियॉ

5.4 सार संक्षेप

5.5 अभ्यास प्रश्न

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे–

1. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रविधियों एवं निपुणताओं के बारे में जान सकेंगे।
2. इस ईकाई में साक्षात्कार, ग्रहभ्रमण की उपयोगिता को समझ सकेंगे।
3. संसाधनों का एकत्रीकरण, सन्दर्भित सेवा, पर्यावरणीय जोड़–तोड़ के महत्व को समझ सकेंगे।
4. वैयक्तिक कार्य संबंध एवं सम्प्रेशण की उपयोगिता को समझ सकेंगे।

5.1 परिचय

सेवार्थी की समस्या के समाधान के लिये समस्या का अध्ययन आवश्यक है, जिसके लिये वैयक्तिक कार्यकर्ता को कुछ प्रविधियों व उपकरणों का उपयोग अपनी निपुणताओं के आधार पर करना पड़ता है सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रविधियों एव निपुणताओं का उपयोग करके कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या का समाधान करते है इस इकाई में हम ने वैयक्तिक सेवाकार्य में संसाधनों का एकत्रीकरण, सन्दर्भित सेवा, पर्यावरणीय जोड़–तोड़ के महत्व को समझायेगें तथा वैयक्तिक कार्य संबंध एवं सम्प्रेषण की उपयोगिता का विवरण प्रस्तुत किया जायेगा।

5.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में प्रविधियाँ एवं निपुणतायें

सेवार्थी की समस्या के समाधान के लिये समस्या का अध्ययन आवश्यक है, जिसके लिये वैयक्तिक कार्यकर्ता को कुछ प्रविधियों व उपकरणों का उपयोग अपनी निपुणताओं के आधार पर करना पड़ता है, जो इस प्रकार हैं–

1. सेवार्थी और उसकी स्थिति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण व्यक्तियों से साक्षात्कार।
2. सेवार्थी के कुछ चुने हुये पक्षों जैसे–आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश से सम्पर्क एवं इनका प्रेक्षण (अर्थात् उसका घर, व्यवसाय, शिक्षा, धर्म, मनोविनोद और चिकित्सा या सामाजिक संस्थायें आदि)।
3. अभिलेखों और प्रलेखों, दस्तावेजों की जाँच या परीक्षा।
4. स्वयं सेवार्थी या उसके पारिवारिक समूह के अतिरिक्त अन्य भिन्न शाखीय साधन।
5. सेवार्थी और उसकी अनुमति से परिवार के सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों के कुशल प्रयोग द्वारा दोनों को उपचार में सम्मिलित करना।

निपुणता किसी कार्य को करने की योग्यता होती हैं या इस तरीके से कार्य को करना कि कम से कम समय के अन्दर उद्‌देश्यों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किया जा सके। निपुणता का विकास मानव व्यवहार के प्रशिक्षण, अभ्यास, अनुभव तथा ज्ञान पर निर्भर करता है। आधारभूत रूप से, प्रभावी वैयक्तिक सेवा कार्य अभ्यास के लिये चार निपुणताओं की आवश्यकता होती है, जो इस प्रकार हैं–

1. सम्बन्धों में निपुणता।
2. समस्या का गहराई से अन्वेषण (खोज) करने की निपुणता।
3. संसाधनों को इस्तेमाल करने की निपुणता।
4. समस्या के समाधनों के विकल्प ढूंढने की निपुणता।

1. **सम्बन्धों में निपुणता**:– वैयक्तिक सेवा कार्य में उपचार का मार्ग सेवार्थी तथा वैयक्तिक कार्यकर्ता के मध्य के सम्बन्ध होते हैं। ये सम्बन्ध विश्वास, भरोसे

तथा आपसी सम्मान के वातावरण का निर्माण करते हैं, जिससे सेवार्थी में सहयोग व साहस की भावना महसूस होती है और वह अपने बारे में, अपनी, समस्या के बारे में तथा मदद के लिये आसानी से बता पाता है। निपुणता तब दिखायी देती है, जब कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या, उसका सम्मान तथा उसमें वास्तविक रूचि लेता है, सेवार्थी के विचारों तथा मूल्यों का सम्मान करना तथा उसके साथ प्रत्येक स्तर पर उसकी समस्या के समाधान में सम्मिलित होना वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिये आवश्यक है।

2. **समस्या की गहराई से अन्वेषण करने की निपुणताः–** वैयक्तिक कार्यकर्ता के अन्दर इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि वह सेवार्थी की समस्या का विवरण तथा उसके क्रमवत विकास को ग्रहण कर सके। कार्यकर्ता के अन्दर काबिलियत होनी चाहिये कि वह सेवार्थी, कार्यकर्ता को अपनी सारी समस्या से संबंधित बातें बता सके तथा कार्यकर्ता उसकी वास्तविक समस्या का पता लगा सके, इन सभी बातों के लिये कार्यकर्ता के अन्दर सुनने की, सेवार्थी की बातों में रूचि लेने कि तथा सम्मान देने की योग्यता सेवार्थी की दशा को ध्यान में रखते हुये तथा मानव व्यवहार की दशाओं को ध्यान देते हुये होनी चाहिए।

3. **संसाधनों का इस्तेमाल करने की योग्यता :–** कई बार, सेवाओं तथा उपलब्ध संसाधनों का इस्तेमाल सेवार्थी की समस्या का समाधान करने में मदद करने वाले उपकरणों के रूप में होता है। इसलिये कार्यकर्ता के अन्दर यह योग्यता होनी चाहिये कि वह सभी उपलब्ध संसाधनों चाहें वह मित्रों के समूहों में हो, सेवार्थी के सम्बन्धियों में हो या फिर समुदायों में उपलब्ध हो सामान्य रूप से मदद करने वाले हों उन सभी का इस्तेमाल करें। कार्यकर्ता की योग्यता इस बात से पता चलती है कि वह सभी संसाधनों को सेवार्थी की समस्या को सुलझाने में इस प्रकार से इस्तेमाल करे कि सेवार्थी के आत्मसम्मान को कोई क्षय (हानि) न पहुँचे, विशेषकर हमारे भारतीय समाज में इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

4. **समस्या के समाधानों के विकल्प ढूंढने में निपुणता :–**

कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी के साथ मित्रवत् सम्बन्ध स्थापित करने, समस्या का पता लगाने तथा आवश्यक संसाधनों को नियन्त्रित करने के उपरान्त, ये बहुत जरूरी हो जाता है कि समस्या के समाधानों के सम्भावित विकल्पों को बड़े ही विस्तृत तथा शुद्ध रूप में चर्चा की जाये। सभी विकल्पों को चाहिये कि वह स्पष्ट, वास्तविक तथा सभी दिशाओं को ध्यान देते हुये विकल्पों के फायदे तथा नुकसान

को खोजें, क्योंकि ये उलझन सदैव रहती है कि इन विकल्पों का प्रभाव प्रत्येक पर कैसा होगा। कार्यकर्ता के अन्दर यह योग्यता होनी चाहिए कि वह सेवार्थी की समस्या करे सुलझाने के लिए उसकी स्थिति को समझते हुये उपलब्ध विकल्पों में से सबसे उपर्युक्त व प्रभावशाली विकल्प ही ढूँढे। कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की समस्या के लिये विकल्पों का चुनाव उसकी क्षमता, स्तर, संसधनों तथा उसके सामुदायिक मूल्यों के अनुसार ही करना चाहिए।

सबसे पहले सेवार्थी के विषय में पर्याप्त तथ्यात्मक सामग्री को इक्टठा करना आवष्यक है, जिससे सेवार्थी की वर्तमान स्थिति को समझा जा सके और यह जाना जा सके कि सेवार्थी ने क्या किया है और हमसे क्या करवाना चाहता है। उसकी समस्या का आरम्भ कैसे हुआ या उसकी समस्या का आरम्भ एवं उसमें वृद्धि के क्या कारक हैं, भूतकाल में सेवार्थी ने अपना प्रबन्ध कैसे किया और उसकी समस्या से सम्बन्धित महत्वपूर्ण व्यक्ति कौन है। इसके लिये कार्यकर्ता कई प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग करता है। वैयक्तिक अध्ययन में जो अनिवार्य घटक हैं वह यह है कि व्यक्ति किस प्रकार अपने सामाजिक परिवेश को प्रभावित कर रहा है।

सेवार्थी की समस्या का स्पष्ट एवं अधिक अन्तः प्रवेषी या गहन निदान तब होता है जब व्यक्ति और उसके परिवार के परस्पर सम्बद्ध अर्थो के सम्बन्ध में सेवार्थी के सामाजिक–आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक कारकों का विश्लेषण किया जाता है। तभी उपचार की योजना का बनाया जाना सम्भव होता है। तभी कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ कार्य कर सकता है, उसकी आवष्यकताओं की पूर्ति कर सकता है, और सेवार्थी को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता दे सकता है। सेवार्थी की स्थिति का ज्ञान और उसकी उपयुक्त केस–हिस्ट्री अच्छे विश्लेषण के लिये ही नहीं बल्कि असामाजिक और गलत उपचार से बचने के लिए भी अनिवार्य है। इस हिस्ट्री के दो पक्ष हैं, एक निदान के लिये ली गयी प्रारम्भिक हिस्ट्री जो सेवार्थी के साथ हुई पहली मुलाकात में आसानी से प्राप्त हो जाता है। और दूसरी वह हिस्ट्री जो भावविवेचना के रूप में सामने आती है या जिसे सेवार्थी बताता हुआ अपने कुछ संवेगात्मक अनुभवों को फिर से अनुभव करता है और जो बहुत धीरे–धीरे कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्धों के फलस्वरूप सामने आती है और जो उपचार की प्रक्रिया का भाग भी बनती है।

सेवार्थी को निदानात्मक बोध जितना ही अच्छा होगा, सामाजिक अध्ययन के लिए केस–हिस्ट्री और अन्य साधनों को जुटाया जाना उतना ही उपयुक्त और किफायती या सस्ता होगा। कार्यकर्ता को सेवार्थी की हिस्ट्री की इस दोहरी आवधारणा भावविवेचना और इन ऐतिहासिक अनुभवों को पुनः अनुभव करना उपचार

के लिए महत्व रखता है। सेवार्थी के व्यक्तित्व के विकास को समझने के लिए हिस्ट्री के प्रयोग का अर्थ है कि कार्यकर्ता पारिवारिक हिस्ट्री और सम्बन्धों, विकास एवं स्वास्थ सम्बन्धी सूचनाओं, लक्षणों व्यवहार प्रतिमानों, मनोवृत्तियों और संवेगात्मक अनुभवों का अध्ययन करता है। इस प्रकार की सूचनाओ के आधार पर ही कार्यकर्ता सेवार्थी के मनोजनिक निदान का प्रतिपादन करता है। इसी के साथ–साथ इन संवेगात्मक अनुभवों को फिर से सेवार्थी द्वारा अनुभव करना। उपचार का एक महत्वपूर्ण पक्ष भी है। जिसके लिए कार्यकर्ता को उपरोक्त प्रविधियों और निपुणताओं का प्रयोग करता है–

कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की जांच के पक्ष :–

1. सेवार्थी की वर्तमान समस्या और इस समस्या का प्रारम्भ :– कब से यह समस्या (या व्यवहार) चला आ रहा है, कब प्रारम्भ हुई, कहाँ पर प्रारम्भ हुई, यह समस्या (या व्यवहार), किसके विरूद्ध है, परिवार द्वारा इस सम्बन्ध में क्या किया गया है और क्या किया जा रहा है।
2. सेवार्थी के विकास से सम्बन्धित तथ्य :– जन्म, स्तन्य–त्याग सोना, खाना–पीना, आदतें, गतिशीलता, मलमूत्र नियमन प्रशिक्षण, जीवन के प्रारम्भिक वर्शो के कोई प्रमुख अनुभव या घटनायें, आक्रामकता, मय आदि।
3. स्कूल प्रगतिः–सीखने में कठिनाइयां, प्रतिक्रिया आदि।
4. अमिघातज अनुभव :– बीमारी, दुर्घटना, बाधायें।
5. पारिवारिक पृष्ठभूमि।
6. सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति।
7. महत्वपूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध, मनोवृत्तियाँ और घटनायें :– छोटी आय में माता–पिता से बिछुड़ जाना, घरेलू दषायें, बहिन–भाईयों से सम्बन्ध, मित्रों से सम्बन्ध, दाम्पत्य। वैवाहिक सम्बन्ध, मनोविनोद, अभिरूचियों और गुण आदि। ये सूचनायें सेवार्थी के साथ बहुत दिनों तक किये गये साक्षात्कार द्वारा जुटाई जाती है और कार्यकर्ता को निदान में सहायता देती हैं।

पलमैन ने इस वैयक्तिक समाज कार्य प्रक्रिया "अध्ययन" के निम्नलिखित पक्ष बताये है:

1. वर्तमान समस्या की प्रकृति।
2. इस समस्या की महत्ता,
3. समस्या के कारण, आरम्भ और इसमें वृद्धि के कारण।
4. समस्या के निदान के विशय में किये गये प्रयास।
5. व्यक्तिगत समाज कार्य संस्था द्वारा समस्या समाधान की प्रकृति।

6. सेवार्थी और उसकी समस्या के संदर्भ में संस्था और इसके समस्या समाधान के साधनों की वास्तविक प्रकृति।

5.3 वैयक्तिक अध्ययन में प्रयुक्त विधियाँ

1. घरेलू अध्ययन और प्रेक्षण :– संस्था में साक्षात्कार की अपेक्षा या पूरक के रूप में सेवार्थी के घर पर यह अध्ययन और प्रेक्षण किया जाना सेवार्थी की स्थिति को समझने में सहायता करता है।।
2. भिन्न शाखीय साधनों का प्रयोग :– भिन्न शाखीय साधनों का प्रयोग जिसमें सेवार्थी के बारे में सूचनायें एक अधिक साधनों और एक से अधिक स्थानों, व्यक्तियों आदि से सम्पर्क करके इक्ट्ठा की जाती है।
3. विशेष परीक्षण:– जिसमें सेवार्थी की स्थिति समझने के लिये अन्य क्षेत्रों के विषेशज्ञों की सहायता ली जाती है। सेवार्थी की चिकित्सक एवं सामाजिक उपचारों के लिए या उसके मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि के लिए सम्बन्धित विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है।

5.3.1 साक्षात्कार

प्रत्येक व्यक्ति साक्षात्कार की प्रक्रिया में भाग लेता है। कभी उसका साक्षात्कार दूसरा व्यक्ति लेता है और वह स्वयं साक्षात्कार दूसरों का लेता है। कुछ व्यक्तियों का कार्य दिन प्रतिदिन साक्षात्कार देना तथा लेना है, जैसे वकील, डॉक्टर, नर्स, संवाददाता, पुलिस, मंत्रीगण, सलाहकार, मैनेजर आदि। ये सभी व्यक्ति साक्षात्कार लेने की कला में अत्यन्त निपुण होते है।

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता भी अपना कार्य साक्षात्कार से प्रारम्भ करता है और उपचार तक साक्षात्कार करता है। इस प्रकार वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता के लिये साक्षात्कार एक कला तथा विज्ञान है जिसके सिद्धान्तों से अवगत होना तथा प्रविधियों का व्यवहारिक ज्ञान परमावश्यक है।

5.3.2 साक्षात्कार की परिभाषायें

साक्षात्कार व्यक्ति के पारस्परिक सम्पर्क की क्रमबद्ध प्रणाली है जिसके माध्यम से दूसरे व्यक्ति के अपरिचित तथ्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। इसका आधार केवल देखने पर नहीं है बल्कि निकटता के द्वारा, तथ्यपरक अनुभूति की उपलब्धि करना है।

पी0 वी0 यंग के अनुसार, "साक्षात्कार को एक क्रमबद्ध प्रणाली माना जा सकता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में अधिक अथवा कम काल्पनिकता से प्रविष्ट होता है जो कि उसके लिए सामान्यतः तुलनात्मक रूप से परिचित है।"

हेडर तथा लिण्डमैन के अनुसार "साक्षात्कार के अन्तर्गत दो व्यक्तियों या अधिक व्यक्तियों के बीच संवाद अथवा मौखिक प्रत्युत्तर होते है।"

इस प्रकार साक्षात्कार वह प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और जिस सम्पर्क के पीछे विशिष्ट उद्देश्य निहित होता है।

समाज कार्य के अभ्यास में, मुख्य रूप से व्यक्तिगत समाज कार्य के अभ्यास में साक्षात्कार प्रविधि एक मौलिक निपुणता है जिसे सीखना पड़ता है। साक्षात्कार की विभिन्न व विशेष प्रविधियाँ, जिनका प्रयोग किया जा सकता है, जैसे– सूचनायें इकट्ठी करना, उपयुक्त सेवा प्रदान करना, परामर्श देते समय स्पष्टीकरण करना, सेवार्थी की संवेगात्मक पुष्टि या उसकी मनोवृत्ति या व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये प्रेरित करना आदि।

साक्षात्कार मुख्यतः मौलिक व्यवसायिक मनोवृत्ति जिसे स्वीकरण या स्वीकृति कहते है, पर आधारित है। इस स्वीकृति का अर्थ यह है कि दूसरे व्यक्ति (सेवार्थी) को, जैसा भी वह है, स्वीकार करना, जिस स्थिति में वह हो, भले ही वह स्थिति साक्षात्कार कर्ता के लिये सुखद या दुखद हो, अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, चाहे जैसा भी व्यवहार हो, जैसे आक्रामकता , शत्रुता , पराश्रितता या निष्कपटता का हो। साक्षात्कार कर्ता सेवार्थी को जैसा भी वह होता है स्वीकार कर लेता है। साक्षात्कार कर्ता इस स्वीकृति का प्रदर्शन विशिष्टता, धैर्य सेवार्थी की बात सुनने की इच्छा, सेवार्थी की निन्दा न करना आदि कार्यो से करता है। किसी भी साक्षात्कार में शिथिलता और मैत्री भावना हो। साक्षातकार कर्ता का यह दृष्टिकोण सेवार्थी में स्वीकृति की भावना का विकास करता है।

साक्षात्कार कर्ता सेवार्थी की अपनी शक्तियों की खोज करके, उन्हें दृढ़ करके, उसकी आवश्यकताओं और हीनता (कमियों) की भावनाओं को समझकर सेवार्थी का आदर करता है। सेवार्थी को अपनी समस्या की उपचार प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। साक्षात्कार के माध्यम से उसे अपने और अपनी समस्या के सामाजिक तथ्यों या सामाजिक हिस्ट्री और अपनी भावनाओं के प्रगटन में प्रोत्साहन दिया जाता है। पहले साक्षात्कार में साक्षात्कार कर्ता सेवार्थी की स्थिति का प्रारम्भिक प्रतिपादन करता है और उसका निदान करता है।

साक्षात्कार कर्ता की निपुणता इसी में है कि वह केवल ऐसे प्रश्न ही करे जो आवश्यक होते हैं और जिनके उत्तर सेवार्थी बिना किसी संकोच के दे सके। किसी भी सेवार्थी की केस–हिस्ट्री लेने और एक मैत्रीपूर्ण पर्यावरण में साक्षात्कार करके सूचनायें इकट्ठा करने में अन्तर होता है। एक अनुक्रियाशील/अनुक्रियात्मक पर्यावरण में साक्षात्कार के माध्यम से जो सूचनायें इक्टठा की जाती है उनमें सेवार्थी की अर्न्तभाविता अधिक उपयोगी होती है। वह अपनी बात को आसानी और सरलता से कह पाता है। प्रश्नोत्तर या 'हाँ' या 'ना' की प्रक्रिया द्वारा सूचनायें इक्ट्ठी करना सेवार्थी में यह भावना नहीं लाता। केस–हिस्ट्री का सेवार्थी द्वारा दिया जाना और कार्यकर्ता द्वारा लिया जाना सम्बन्धों के प्रभावशाली होने पर निर्भर करता है। केस–हिस्ट्री के माध्यम से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इसलिये व्यक्तिगत समाज कार्य में साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है और एक प्रमुख उपकरण एवं प्रविधि भी है।

साक्षात्कार के माध्यम से साक्षात कर्ता सेवार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षों को समझता है जैसे तनाव, विनिवर्तन लक्षण एवं दुश्चिन्ता के चिन्ह साक्षात्कार में प्रेक्षण के माध्यम से सेवार्थी की कार्यात्मकता के स्तर का ज्ञान होता है और उसमें सहायता लेने की तत्परता का ज्ञान होता है। इसी से साक्षात्कार का प्रयोग सेवार्थी के अहम् को दृढ़ करने के लिए किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता को सेवार्थी के संवेगात्मक भावों को समझना चाहिए, सूचनाओं को देते समय सेवार्थी कब, कहाँ और कितना रूकता है इस ओर ध्यान देना चाहिए और सेवार्थी में दुख या दुश्चिन्ता की भावनाओं को समझना चाहिए। सेवार्थी की ही भाषा का प्रयोग करके साक्षात्कार को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। साक्षात्कार कर्ता, साक्षात्कार की गति को नियंत्रित रखता है और उसे आगे बढ़ाता है।

5.3.4 साक्षात्कार में अर्थनिरूपण स्पष्टीकरण और व्याख्या

साक्षात्कार की प्रक्रिया में अर्थनिरूपण कई प्रकार से किया जाता है: व्याख्या देकर, स्पष्टीकरण करके, व्यवहार के प्रतिरूपों की ओर संकेत करके और सेवार्थी की प्रेरणाओं का कुछ सीमा तक अर्थनिरूपण करके, व्याख्या का अर्थ निरूपण करक,व्याख्या का अर्थ है कि साक्षात्कार कर्ता संस्था की नीतियों एवं नियमों को समझने में सहायता करता है। समुदाय के अन्य साधनों की व्याख्या की जाती है, मुख्य रूप से जब इन साधनों के प्रयोग की आवश्यकता समझी जाती है। स्पष्टीकरण का अर्थ है कि समस्या के समबन्ध में विभिन्न पक्षों का अर्थ निरूपण जैसे चिकित्सा के क्षेत्र में समस्या का सही अर्थ निरूपण मरीज और उसके परिवार को चिकित्सक या मनोरोग विज्ञान ,मनोरोग चिकित्सक द्वारा दिया जाता है क्योंकि

यह उसका प्राथमिक कार्य है। परन्तु समाज कार्यकर्ता से यह आशा की जाती है कि वह रोगी की समस्या का एक अतिरिक्त अर्थनिरूपण करे जो प्रबल हो, जिससे सेवार्थी के कार्य–जीवन या पारिवारिक जीवन के अर्थ और स्पष्ट हो सकें। परन्तु इस कार्य की सफलता इस बात पर होती है कि सेवार्थी को समस्या के विभिन्न पक्षों का पूरा ज्ञान हो और वह पर्याप्त मात्रा में समय दे जो चिकित्सक के पास नहीं होता।

सेवार्थी की समस्या में साक्षात्कार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ–साथ सेवार्थी की समस्या के अध्ययन में (एवं उपचार में भी) एक कुशल साक्षात्कार कर्ता की आवश्यकता होती है। साक्षात्कार कर्ता में निम्न गुण होने आवश्यक हैंः–

1. प्रेक्षण करने में कुशलता।
2. सेवार्थी की बात को सुनने की क्षमता।
3. बातचीत करने में कुशलता।
4. साक्षात्कार में निर्देशन और
5. विभिन्न उद्देश्यों के लिये विभिन्न प्रकार के साक्षात्कार करने की क्षमता।

व्यक्तिगत समाज कार्य की संरचना, जो अध्ययन, निदान तथा उपचार की तीनों प्रक्रियाओं पर आधारित है, में उपरोक्त साक्षात्कार की कुशलताओं का प्रयोग किया जाता है।

5.3.5 गृह भ्रमण (Home Visit)

समाजकार्य में कार्यकर्ताओं के लिये परिवार का अध्ययन करना बहुत ही महत्वपूर्ण है, विशेषकर उनके लिये, जो मानसिक स्वाथ्य की पृष्ठभूमि से जुड़े हैं। प्रभावशाली उपचार के लिये यह जरूरी है कि पारिवारिक जीवन का संवेदनशील, सामाजिक तथा भौतिक रूप में अध्ययन किया जाये। सभी विस्तृत जानकारियों को एकत्रित करना भी बहुत आवश्यक होता है, क्योंकि तभी की गयी भविष्यवाणियों के गलत या हानिकारक होने की कम सम्भावनायें होती हैं और यह सब आसानी से प्रभावशाली गृह भ्रमण द्वारा ही प्राप्त होता है।

WHO की यूरोपियन बैठक में Mental Hygiene Practice (1959) में सिफारिश की गयी कि गृह भ्रमण लम्बे समय के रोगियों के लिए तथा उपचार व देखभाल के उद्देश्य से उनके ही घर पर किया जाता है।

बरनार्ड (1964) ने कहा था कि गृह भ्रमण द्वारा यह देखा जाता है कि रोगी (सेवार्थी) जहाँ रह रहा है, वहाँ का वातावरण कैसा है, उसके परिवार तथा अन्य

आवश्यक सामाजिक सम्बन्धों का सबसे पहले निरिक्षण किया जाता है, सेवार्थी की उपयुक्त निदानात्मक उपचार की योजना के लिये सेवार्थी की पूरी समझ का विकास किया जाता है। आवासीय निरीक्षण पूरे उपचार का सबसे प्रभावी उपकरण बन चुका है।

आवासीय निरिक्षण का उद्देश्य निम्नलिखित है–

1- सेवार्थी तथा उसके परिवार की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना :– औषधीय चिकित्सा तथ मनोचिकित्सा में एक मानसिक चिकित्सक तथा मनोविज्ञानी के लिये बच्चे, अभिभावको तथा अन्य लोगों से मिलकर साक्षात्कार द्वारा एक ही जगह पर बैठकर पारिवारिक स्थितियों का पर्याप्त या तुलनात्मक दृश्य प्राप्त करना काफी मुश्किल है।

थैप (1959) के अनुसार, सबसे उपयुक्त, मेहनती, अनिश्चितता वाला एक तारीका यह भी है कि सेवार्थी के क्रमिक शब्दों वाले अनेक साक्षात्कार किये जाये, परन्तु इस विधि में एक जौखिम यह है कि कहीं सेवार्थी का स्वयं पर से भरोसा खत्म न हो जाये। **कैमरोन** (1961) के अनुसार, कुछ ही क्षणों में गृह भ्रमण द्वारा एक अनुभवी प्रेक्षक रोगी तथा उसके वातावरण के बारे में अधिक योग्य व शुद्ध तथ्य प्राप्त कर सकता है, बजाय इसके कि वह घण्टों अपने ऑफिस में बैठकर साक्षात्कार के दौरान प्राप्त कर पायेगा। गृह भ्रमण निम्न बातों को जानने के लिये बहुत सहायक है–

i) बच्चे या सेवार्थी की समस्या, तथा उसकी समस्या से सम्बन्धित पारिवारिक कारण।

ii) अभिभावकों व भाई–बहनों की व्यक्तिगत विशेषतायें तथा परिवार के आन्तरिक प्रचलनों के तरीके, आन्तरिक व्यक्तिगत सम्बन्ध।

iii) परिवार का सामाजिक–आर्थिक स्तर तथा बाहरी दुनियां के साथ परस्पर प्रभावी सम्बन्धों के तरीके।

2- सेवार्थी को अधिक विस्तार वाले क्षेत्रो की सेवाओं का उपयोग करने के लिये उकसानाः– ये अनुसरण किया गया है कि सेवार्थी या रोगी की स्थिति में परिवर्तन उसके द्वारा क्लीनिक में एक या दो बार जाने से नहीं आता बल्कि कुछ अन्य जाँचों के आधार पर यह पता चलता है कि उसमें अपने उपचार के प्रति प्रेरणा की कमी पायी जाती है। इस प्रकार प्रेरणाओं की कमी के कारण वह चिकित्सा संसाधनों का तथा सेवाओं को पर्याप्त रूप से व सही ढंग से इस्तेमाल नहीं करते। इसलिये, कुछ स्थितियों में गृह भ्रमण, सेवार्थी

तथा उसके परिवार को पर्याप्त रूप से प्रेरित करता है ताकि वह उपचार को जारी रखे।

3- परिवार के सदस्यों को सम्बन्धित व्यक्तियों की बीमारी तथा चिन्ता को शान्त करने के लिये शिक्षित करनाः– रोगी (सेवार्थी) के सम्बन्धियों के चिकित्सा, मनो चिकित्सा तथा इनसे जुड़ी सेवाओं के बारे में बहुत गलत विचार होते हैं। जिनका कारण उनमें ज्ञान की कमी होती है। समाज कार्यकर्ता एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है, लोगों को इन विभिन्न प्रकार की बीमारियों तथा उनके गृह भ्रमण द्वारा उपचार के विषय में बताया जा सकता है तथा वह अपने अतार्किक भय को शान्त करके गलतफहमियों को समाप्त कर सकते हैं।

4- सेवार्थी का संस्था तथा परिवार के मध्य शक्तिशाली बन्धन :–

डेविड (1965) के अनुसार, समाज कार्यकर्ता द्वारा पहले से किये गये गृह भ्रमण, रोगी (सेवार्थी) तथा उसके परिवार के मध्य शक्तिशाली बन्धन का निर्माण करते है, जो कि समाप्ति के बिन्दु तक चलते हैं, तथा ये सम्बन्धों को टूटने से बचाते हैं। गृह भ्रमण सेवार्थी के परिवार वालों को उसके संस्था से वापस लौटने के बाद उसकी देखभाल करने के लिये तैयार करता है।

5- संस्था से मुक्त होने के बाद सेवार्थी का पुर्ननिर्वेशन करने की सुविधा :–

शीलै (1962) ने न्यू मैक्सिकों चिकित्सीय समाज, बोरेसटोम में लिखा है कि रोगी को समुदाय के साथ समायोजन स्थापित करने में असफलता, समाज में रहने वाले विरोधियों के कारण होती है, वह ठीक प्रकार से समायोजन नहीं कर पाते, जिसके कारण उसको लगातार मानसिक बीमारियाँ हो जाती है।

गृह भ्रमण इन सभी बातों पर ध्यान से गौर करने में मदद करता है। परिवार के सदस्य सेवार्थी को परामर्श देकर उसके दृष्टिकोण में तथा समस्या में परिवर्तन ला सकते हैं और इस प्रकार से सेवार्थी को पुनर्निर्देशन करने में सुविधा होती है।

6- मुक्त रोगियों की पारिवारिक चिकित्सा तथा बाद में दी जाने वाली रक्षा की सेवायें :–

फैरियेरा तथा विन्टर (1965) ने अपने चिकित्सीय अनुभवों के आधार पर पारिवारिक चिकित्सा के बारे में बताया है, तथा उन्होंने इसका प्रयोग हाथो–हाथ करके उनके परिणाम भी प्राप्त किये हैं। निष्कर्ष निकालते हुये उन्होंने लिखा है कि एक व्यक्तिगत रूप से रोगी व्यक्ति का परिवार मित्र होता है। कुछ तरीकों में एक सामान्य परिवार से, ये बात उन सभी

कार्यकर्ताओं पर लागू होती है, जो मानसिक चिकित्सा की पृष्ठभूमि से जुड़े हैं, यदि रोगी का सफलतापूर्वक उपचार करना है, तो इसमें परिवार को सम्मिलित होना भी आवश्यक हैं। **मैं–एट–ऑल** (1962) ने भी यह पाया कि गृह भ्रमण सहायक है तथा परिवार, सम्बन्धियों और हर किसी की सलाह देता है कि एक मानसिक रोगी के लिये पारिवारिक वातावरण बहुत महत्व रखता है।

बहुत से रोगी ऐसे होते हैं, जो अच्छे उपचार तथा अस्पताल में रहने के बाद जब मुक्त होते है, चाहे उनमें बदलाव आया हो या न आया हो, जिनका सम्बद्ध मनोचिकित्सक तथा वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता द्वारा दी जाने वाली सेवाओं से होता है, तो पारिवारिक वातावरण एक चिकित्सक के रूप में सहायता करता है। कार्यकर्ता द्वारा किया गया गृह भ्रमण भी परिवार के सदस्यों के व्यवहार में परिवर्तन लाता है तथा पारिवारिक जीवन में परिवर्तन लाने में सहायता करती है। कुछ ऐसे रोगी भी होते हैं, जो सुधार गृहों से मुक्त होते हैं, उनको सबसे अधिक आवश्यकता होती है किसी संस्था की, जोकि उनके आवास पर जाये तथा उनके वातावरण में बदलाव करे, परन्तु कोई भी संस्था उनके यहाँ स्वयं नहीं जाती है।

सेवार्थी की समस्या पर चर्चा करने से पूर्व किसी टीम का पहला चरण गृह भ्रमण करने की योजना में होना चाहिये कि कार्यकर्ता को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि वह अपने निर्णयों, मूल्यों तथा मान्यताओं को सेवार्थी पर थोपे नहीं, कार्यकर्ता के व्यवहार में अधिक औपचारिकता नहीं होनी चाहिए। सम्बन्धों में अनौपचारिकता रोगी तथा उसके परिवार की मदद करने में रूचि लेना, रोगी तथा उसके परिवार का वास्तविक सम्मान, गृह भ्रमण में और अधिक सहायता करता है। भाषा भी ऐसी होनी चाहिए, जिसे सेवार्थी तथा उसके परिवार के सदस्य बिना किसी परेशानी के समझ सके।

आवासीय सैर विशिष्टता निम्न उपचारों में मूल्यवान है–

1. बच्चों तथा किशोरों की संवेदनशील समस्यायें।
2. स्वभाव में व्याधि, तथा बचपन व किशोरावस्था में होने वाली व्याधियों में।
3. शैक्षिक समस्याओं में।
4. बच्चों में अपराधी तथा अन्य व्यवहारिक व्याधियों में।
5. सामाजिक असमायोजन।
6. मनोविकार।
7. पारिवारिक समायोजन की समस्या।

5.3.6 पर्यावरण में परिवर्तन (जोड़–तोड़)

पर्यावरण में सुधार का तात्पर्य सेवार्थी की सामाजिक परिस्थितियों में ऐसे परिवर्तन लाना है, जिससे उस पर दवाब कम हो सके। इस प्रकार के सुधार में किसी भी प्रकार की शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता है। पर्यावरणीय जोड़–तोड़ का प्रयोग सकारात्मक अर्थो में किया जाता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी की बात को सुनकर उसके व्यक्तित्व को समझकर, उसकी आवश्यकताओं, उसके संघर्षो तथा रक्षात्मक मनोभावों को समझकर इनमें जोड़–तोड़ करने का प्रयास करता है। वह सेवार्थी को इन सबमें उचित परिवर्तन लाने की सलाह देता है। उसके पर्यावरणीय सदस्यों को उचित परामर्श देकर सेवार्थी के प्रति उनके व्यवहार में जोड़–तोड या आशोधन करता है। उसके जीवन के सभी अनुभवों का आशोधन करके विकास के अवसर प्रदान किया जाना पर्यावरण जोड़–तोड़ कहलाता है। इसी को अप्रत्यक्ष उपचार भी कहते है। यह जोड़–तोड़ सेवार्थी को डराने या धमकाने के लिये नहीं किया जाता। चिकित्सा की इस प्रणाली में भी सम्बद्ध तथा साक्षात्कार का उपयोग किया जाता है जिससे सेवार्थी परिवर्तन में भाग ले सकें परन्तु मुख्य प्रधानता परिस्थितियों में परिवर्तन को दी जाती है।

जब सामाजिक स्त्रोत तथा व्यवस्थित परिस्थितियाँ मुख्य साधन के रूप में प्रयोग की जाती है। जैसे–ग्रह निर्माण सेवाएँ, कैम्पस, सामूहिक अनुभव रोज़गार सम्बन्धी तथा अन्य समायोजन सम्बन्धी कार्यक्रम सामाजिक चिकित्सा या उपचार कहा जाता है। पर्यावरण में परिवर्तन अथवा सुधार या जोड़–तोड़ के अन्तर्गत जो भी कार्यक्रम आता है उनका उद्देश्य तनाव को कम करना होता है। उदाहरण के लिये असमर्थ व्यक्ति के लिए ऐसे कार्यक्रमों को आयोजित करना जिससे वे बच्चे लाभान्वित हो सकें जो अधिक आयु के होते हुए भी अभी छोटी कक्षा में पहुँच पाये हैं। इसमें ऐसे भी कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा ऐसी सामाजिक परिस्थितियों और अनुभव उपलब्ध कराये जाते है, जिनसे व्यक्ति का विकास तथा समायोजन सम्भव होता है।

इस प्रणाली ने व्यवहारिक साधनों को भी उपलब्ध किया जा सकता है, परन्तु प्राथमिकता परिस्थितियों में परिवर्तन को ही दी जाती है। इस प्रणाली में सेवार्थी के प्रति दूसरे व्यक्तियों का मनोवृत्तियों में होने वाला परिवर्तन भी सम्मिलित होता हैं। इसके अन्तर्गत माता–पिता या वैवाहिक साथी अथवा विद्यालय के अध्यापकों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन, लाना या सेवार्थी के सेवाधिकारी, मित्रों या सम्बन्धियों से साक्षात्कार करना तथा उनकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाना भी सम्मिलित होता है।

5.3.6 वैयक्तिक सेवा कार्य सम्बन्ध तथा सम्प्रेक्षण

सम्बन्ध एक प्रत्यय है, जो मौखिक अथवा लिखित वार्तालाप में प्रकट होता है, जिसमें दो व्यक्ति कुछ लघुकालीन, दीर्घकालीन, स्थायी अथवा अस्थायी सामान्य रूचियों एवं भावनाओं के साथ उक्त क्रिया करते है। ऐसा प्रायः सोचा जाता है कि केवल एक साथ एक स्थान पर एकत्र होने से या सुखदायी अन्तसंचार से या दो व्यक्तियों में दीर्घकालीन समीपस्थ या जान पहचान से सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। मनुष्यों के मध्य परमावश्यक सम्बद्ध भागीकृत एवं संवेगात्मक परिस्थितयों से उत्पन्न होते है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में सम्बद्ध का उपागम आदि से अन्त तक होता है। इस प्रक्रिया में सेवार्थी तथा वैयक्तिक कार्यकर्ता सम्पूर्ण प्रक्रिया में उभयनिष्ठ होते है तथा कार्य का आधार सम्बद्ध स्वयं होता है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में सम्बन्धों को सदैव महत्वपूर्ण माना गया है। इस प्रक्रिया में अन्य समाज कार्य की प्रक्रियाओं के समान ही विकास एवं उन्नति के लिए उत्तरदायी होने के कारण सम्बन्ध को साधन के रूप में उपयोग किया जाता है। क्योंकि समस्या समाधान में लगे मस्तिष्क तथा शारीरिक श्रम उस समय कम कष्ट साध्य हो जाते हैं, जब वे सौहार्द्र तथा सुरक्षित दृढ़ सम्बन्धों के बीच घटित होते हैं।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में सम्बन्ध स्थापित करना ही सहायता का आधार होता है क्योंकि सम्बन्धों के द्वारा वैयक्तिक कार्यकर्ता किसी व्यक्ति व समस्या को समझता है, उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करता है और व्यक्ति की अहं शक्ति एवं अन्तर्दिृष्ट को विकसित करते हुए समस्या सुलझाने का मार्ग प्रशस्त करता है। सेवार्थी के साथ–स्थाापित किया गया सम्बन्ध की वह उपकरण है जिसके माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या का उपचार करता है। उसको सेवार्थी की समस्या का उचित एवं सही ज्ञान तभी प्राप्त होता है जब सेवार्थी के साथ सम्बन्धों एवं सम्पर्को में घनिष्ठता आती है। जैसे– जैसे सम्बन्ध घनिष्ठ होते जाते हैं वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य प्राप्त होता जाता है। इसके अतिरिक्त सेवार्थी पर आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण के प्रभाव को घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापन के पश्चात् ही समझा जा सकता है। अतः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रक्रिया के केन्द्रों में उपचार का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए चेतन तथा नियन्त्रित कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध का उपयोग आवश्यक रूप से किया जाता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की सभी परिभाषाओं में 'सम्बन्ध' को एक विशेष महत्व प्रदान किया गया है। कार्यात्मक समुदाय के विचार इस पर विशेष रूप से जोर देते हैं–

रूथ ई0 स्मैली के अनुसार सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक सम्बन्ध प्रक्रिया द्वारा स्वयं अपने तथा सामान्य सामाजिक कल्याण हेतु सामाजिक सेवाओं के उपयोग में आवश्यक रूप से एक को एक द्वारा सेवार्थी को व्यस्त करने की एक प्रणाली है।

इस अर्थ में सम्बन्ध एक अटूट सन्दर्भ है जिसमें समस्या का समाधान होता है। उसी समय यह पारस्परिक समस्या समाधान के प्रयत्नों को प्रकट करता है, साथ ही साथ व्यक्तित्व के अचेतन स्तर में विश्वास, आत्म महत्व सुरक्षा तथा दूसरे व्यक्तियों से सम्पर्क के अर्थ में परिवर्तन को क्रमबद्ध करने का माध्यम है।

सेवार्थी संस्था में व्यक्तिगत सामाजिक असंतुलनों के साथ संस्था में आता है। इस प्रकार के असंतुलनों को संशोधित करने के लिए सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली में वैज्ञानिक कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध परिवर्तन का माध्यम होता है।

सामान्यतः सेवार्थी अपनी एक या अधिक समस्याओं को लेकर वैयक्तिक कार्य संस्था में आता है परन्तु उसकी समस्याओं का सम्बन्ध उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व अर्थात् शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, विगत जीवन के अनुभव, वर्तमान क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं और भविष्य की आशाओं से होता है। अतः समस्या को समझने के लिए इन सभी कारकों को समझना आवश्यक होता है। परन्तु यह कारक वास्तविक रूप में तभी समझे जा सकते हैं जब सेवार्थी तथा कार्यकर्ता में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो। वैयक्तिक सहायता का रूप कोई भी क्यों न हो उसकी सफलता के लिए सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता तथा सेवार्थी के बीच सम्बन्ध स्थापित करने या बनाने के लिये संचार (सम्प्रेषण) का होना अति आवश्यक है, क्योंकि संचार ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा सेवार्थी अपनी समस्या कार्यकर्ता तक पहुँच पाता है। जहाँ पर भी दो व्यक्ति अर्न्तक्रियाएँ करते हें, संचार के लिये आवश्यक है कि उन दोनों के बीच जो भी बातचीत हो, जिन चिन्हों का प्रयोग हो, उनका अर्थ दोनों द्वारा समझा जा सके। किसी भी विषय पर सहमति या असहमति हो सकती है परन्तु वह क्या करते है, क्या कहते है, दोनों द्वारा समझा जाना आवश्यक है। उन्हें एक दूसरे की भूमिका का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

कार्यकर्ता सेवार्थी अपनी स्थिति के विषय में अपनी समझ के अनुसार व्याख्या करने का प्रयास करता है क्योंकि कार्यकर्ता एक अजनबी व्यक्ति होता है तथा सेवार्थी के मन में थोड़ा संकोच होता है। कार्यकर्ता सही बात जानने के लिये उसकी सहायता करता है। कार्यकर्ता को सेवार्थी के प्रति सहिष्णुता तथा लगाव प्रदर्षित करते हुए उसकी शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए। जब सेवार्थी यह

अनुभव कर विश्वास उत्पन्न कर लेता है कि चिकित्सक उसमें रूचि ले रहा है तो व्यक्तिगत से व्यक्तिगत तथ्य स्पष्ट करने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करता। सम्बन्ध घनिष्ठ तभी बनता हैं, जब सेवार्थी अपनी पूरी बात स्पष्ट कर लेता है तथा चिकित्सक की सहानुभूति प्राप्त होती है। कार्यकर्ता को सदैव सेवार्थी के बौद्धिक स्तर से बातचीत करनी चाहिए क्योंकि यदि सेवार्थी को कार्यकर्ता की बात या सुझाव समझ में नहीं आयेगा तो वह कभी भी हार्दिक सहयोग प्रदान नहीं करेगा।

5.3.7 वैयक्तिक सेवा कार्य में संचार का महत्व

1. बिना संचार से सेवार्थी तथा कार्यकर्ता अपनी बात को एक दूसरे तक नहीं पहुँचा सकते।
2. संचार का स्पष्ट होना आवश्यक है।
3. संचार में प्रयोग की गयी भाषा सरल व सेवार्थी को समझ में आने वाली हो।
4. संचार सेवार्थी तथा कार्यकर्ता बीच के सम्बन्ध को घनिष्ठ करता है।
5. संचार के माध्यम से ही सेवार्थी अपनी समस्या को कार्यकर्ता के सामने रख पाता है।

वैयक्तिक सेवा कार्य संचार में सन्दर्भित करना

कई बार, सम्बन्ध समाप्ति से पूर्व ही सेवार्थी को किसी अन्य वैयक्तिक कार्यकर्ता या चिकित्सक जैसे सामूहिक कार्यकर्ता या इसी प्रकार से किसी अन्य संस्था को, कुछ महत्वपूर्ण कारणों से सन्दर्भित कर दिया जाता है। यह एक प्रक्रिया है, जिसके बारे में न तो सेवार्थी को जानकारी होती है और न ही उसको अधिकार होता है कि वह उनका उपयोग करे।

सन्दर्भित करने वाले कार्यकर्ता द्वारा सन्दर्भित प्रक्रिया में मदद करने की प्रक्रिया का अन्त नहीं होता, परन्तु उसके साथ सेवार्थी का अब कोई अनुबन्ध नहीं रहता। सेवार्थी का एक नये चिकित्सक या संस्था के साथ मदद प्राप्त करने का सम्बन्ध स्थापित होता है।

सन्दर्भित करने की प्रक्रिया निम्न स्थितियों में की जाती है–

1. जब किसी विशेष प्रकार की चिकित्सा या उपचार की सेवार्थी को जरूरत होती है, जिससे उसके उपचार का लक्ष्य पूरा होता हो।
2. जब कार्यकर्ता तथा सेवार्थी उपचार में आगे नहीं बढ़ पाते अर्थात् कार्यकर्ता को सेवार्थी के उपचार में परेशानी आती है।

तब केस को किसी अन्य संस्था के लिए सन्दर्भित कर दिया जाता है। कुछ स्थितियों तथा बिन्दुओं में कार्यकर्ता सन्दर्भित तब करता है, कि वह यह सुनिश्चित

करता है कि उसके पास आवश्यक सेवाओं की कमी हैं अतः वह सेवार्थी को वह सेवायें नहीं उपलब्ध करवा पाता है, जिनकी उसके उपचार में आवश्यक होती है। सन्दर्भित करने वाला कार्यकर्ता, सेवार्थी का सन्दर्भित नोट तैयार करता है, जिसमें सेवार्थी की समस्या का विवरण, कार्यकर्ता द्वारा इस्तेमाल की गयी सभी विधियाँ, प्रयोग, समाधान आदि का विवरण दिया जाता है।

सन्दर्भित करने की प्रक्रिया एक प्रकार से सम्बन्ध समाप्ति की स्थिति होती है परन्तु निर्दिष्ट स्थिति अन्तिम स्थिति नहीं होती है। सन्दर्भित नोट को तैयार करने के लिये निम्न बिन्दुओं का होना आवश्यक है–

1. सन्दर्भित करने के कारण का विवरण।
2. सन्दर्भित प्रक्रिया में समाहित, सकारात्मक तथा नकारात्मक भावनाओं की चर्चा।
3. सभी प्रश्नों के उत्तर सही ढंग से होने चाहिए।
4. सेवार्थी को नये सम्बन्ध के लिये तैयार करना।

यदि सन्दर्भित प्रक्रिया आवश्यक सेवाओं के उपलब्ध न हो पाने के कारण की जा रही है, तो कार्यकर्ता अगर चाहे तो एक एडवोकेट या लाइजनिगं कर्ता की भूमिका भी अदा कर सकता है। ऐसा करने से यह पता चल जायेगा कि समुदाय में सेवार्थी को सुविधा पहुँचाने वाले तथा उसके लिये उपयोगी कौन– कौन से संसाधन या सेवायें उपलब्ध है। एडवोकेसी तब काम आती है, जब सेवार्थी को संस्था द्वारा सेवायें प्राप्त नहीं होती तब वैयक्तिक कार्यकर्ता नियमों को ध्यान में रखते हुये एक की भूमिका निभाते हुये सेवार्थी को सेवायें दिलवाने का पूरा प्रयास करता है।

5.3.8 संसाधनों के एकत्रीकरण का अर्थ

जो भी उपलब्ध साधन हैं उनको अपने संज्ञान में लेना तथा आवश्यकता को देखकर उसका प्रयोग करना अर्थात् संस्था में उपलब्ध संसाधन जुटाना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो सेवार्थी की समस्याओं एवं आवश्यकताओं को दूर करने में अत्यन्त प्रभावशाली है। संसाधन जुटाने के लिये पहले सेवार्थी के विषय में विस्तृत जानकारी एकत्रित करनी चाहिए, जिससे कि उस सेवार्थी को ठीक प्रकार से समझने के लिये निम्नलिखित तथ्यों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है–

1. सेवार्थी के इतिहास को जानना एवं समझना।
2. सेवार्थी के पारिवारिक क्षेत्र का अध्ययन करना।
3. सेवार्थी की विशेषताओं को जानना एवं समझना।
4. सेवार्थी की आवश्यकताओं एवं समस्याओं की पहचान करना।
5. सेवार्थी का वैज्ञानिक आधार पर सर्वे करना।

6. संस्था में उपलब्ध साधनों की सूची तैयार करना।
7. संस्था की गतिशीलता का अध्ययन करना।
8. सेवार्थी की मनोदशा का अध्ययन करना।
9. संस्था तथा सेवार्थी की प्रभावशाली दशाओं का अध्ययन करना।
10. संस्था में या समुदाय में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की सूची तैयार करना।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम सेवार्थी तथा संस्था की संरचना को पूर्ण रूप से समझ सकते हैं, तथा संस्था व समुदाय में उपलब्ध संसाधनों को जुटा सकते हैं, किसी भी कार्यकर्ता को सेवार्थी की समस्या को हल करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक विशेष सोच व उपयुक्त दक्षता व विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता होती है।

5.3.8 संसाधनों के एकत्रीकरण का उद्देश्य

1. सेवार्थी का क्रमबद्ध विकास।
2. सेवार्थी को विकास की भावना से ओत–प्रोत करना।
3. सेवार्थी की आवश्यकता के अनुसार संसाधनों को एकत्रित करना।
4. संस्था व समुदाय में उपलब्ध संसाधनों का उचित प्रयोग करना।
5. वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता के आत्म विश्वास को बनाये रखने में सहायक।
6. व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहायक।
7. संसाधनों का एकत्रीकरण समाजकार्य को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है।
8. संसाधनों का एकत्रीकरण सेवार्थी व संस्था को तर्कसंगत निर्णय लेने में सहायक भूमिका प्रदान करता है।
9. संसाधनों का एकत्रीकरण सेवार्थी की समस्या का समाधान करने में सहायक होता है।

5.3.9 संसाधनों के एकत्रीकरण की विशेषतायें

1. ये प्रक्रिया एक निश्चित व क्रमबद्ध विकास को बढ़ावा देती है।
2. यह सेवार्थी में आत्मविश्वास की भावना को आत्मकेन्द्रित करती है।
3. सेवार्थी का कार्यकर्ता तथा संस्था पर विश्वास बढ़ता है।
4. ये सेवार्थी के अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों का प्रादुर्भाव करती है।
5. सामाजिक कार्यकर्ता को यह प्रक्रिया अपनी दक्षता व योग्यता दिखाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

5.4 सार संक्षेप

प्रस्तुत ईकाई में वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी की समस्या को जानने के लिए किन– किन प्रमुख प्रविधियों एवं निपुणताओं का उपयोग किया जाता है बताया गया है। ग्रह– भ्रमण की उपयोगिता बतायी गयी हैं, संसाधनो का एकत्रीकरण एवं सन्दर्भित सेवा के बारे में बताया गया है। इस ईकाई में पर्यावरणीय आशोधन, वैयक्तिक कार्य संबंध एवं सम्प्रेषण की महत्ता को समझाया गया है।

5.5 अभ्यास प्रश्न

1. वैयक्तिक सेवा कार्य के प्रमुख प्रविधियों एवं निपुणताओं का वर्णन कीजिए।
2. ग्रह–भ्रमण पर टिप्पणी लिखिए।
3. सन्दर्भित सेवा के बारे में बताइये।
4. वैयक्तिक सेवा कार्य में वैयक्तिक कार्य संबंध एवं सम्प्रेषण की महत्ता वर्णन कीजिए।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

Home Visit	ग्रह भ्रमण / आवासीय निरिक्षण
Referal/ Refer	सन्दर्भित / सन्दर्भन
Resourse Mobilization	संसाधनों का एकत्रीकरण
Techniques	प्रविधियाँ
Skills	निपुणता
Environmental Modification	पर्यावरणीय जोड़–तोड़ नवीनीकरण
Communication	सम्प्रेषण
Observation	प्रेक्षण / अवलोकन
Direction	निर्देशन
Interview	सक्षात्कार
Involvement	अन्तर्भाविता
Withdrawal Symptoms	विनिर्वतन लक्षण

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्द संस्थान लखनऊ।
2. डा. कृपाल सिंह सुदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पटिलकेशन्स, लखनऊ।
3. आर0के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम प्रकाशन : रावत, नई दिल्ली।
4. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।

इकाई– 6

वैयक्तिक समाजकार्य : निदान एवं मूल्यांकन

Social Case Work : Diagnosis and Evaluation

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 निदान की प्रक्रिया

6.3 निदान के प्रकार

6.4 उपचार/चिकित्सा

6.5 चिकित्सा का उद्देश्य

6.6 उपचार के साधन

6.7 प्रत्यक्ष उपचार की प्रविधिया

6.8 मूल्यांकन

6.9 सार संक्षेप

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

- निदान की प्रक्रिया को समझ सकेगें ।
- निदान के प्रकारों का वर्णन कर सकेगें।
- उपचार/चिकित्सा की व्याख्या कर सकेगें।
- चिकित्सा का उद्देश्यों को जान सकेगें।
- उपचार के साधनों का वर्णन कर सकेगें।
- प्रत्यक्ष उपचार की प्रविधियां क्या हैं।
- मूल्यांकन का अर्थ, प्रक्रिया, उद्देश्यों एवं प्रकारों का वर्णन कर सकेगें।

6.1 परिचय

निदान शब्द चिकित्साशास्त्र में अधिकांशतः प्रयोग किया जाता है जिसका तात्पर्य रोग के सम्पूर्ण ज्ञान से होता है। समाज कार्य में निदान का अर्थ न केवल समस्या के पूर्ण ज्ञान से होता है बल्कि सेवार्थी (व्यक्ति जो समस्या से ग्रसित है) व उसके सम्बन्ध में भी पूर्ण ज्ञान से होता है। निदान सेवार्थी द्वारा प्रस्तुत समस्या की वास्तविक प्रकृति से सम्बन्धित व्यवसायिक मत है वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी से सम्बन्ध स्थापित करके उसकी समस्या के वास्तविक स्वरूप को निश्चित करता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में निदान एक जटिल कार्य है क्योंकि जिस समस्या का निदान किया जाता है उसका सम्बन्ध व्यक्ति की गत्यात्मक मनोवृत्ति से होता है । व्यक्ति की अस्थिरता के कारण उसकी समस्याओं के महत्व प्रकृति तथा कारण में भी अन्तर होता रहता है अतः एक निश्चित कारण की खोज करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है और इसकी सफलता वैयक्तिक कार्यकर्ता पर निर्भर होती है ।

मूल्यांकन निर्णय करने वाली प्रक्रिया है जो निश्चित करती है कि सेवार्थी के प्रति कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या–क्या शक्तियॉ है तथा क्या–क्या कमजोरियॉ हैं, कौन से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन से कार्य समस्या को जटिल बनाते हैं । इस प्रकार मूल्यांकन उद्देश्य का दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है। यह कार्यकर्ता को निर्णय पर पहुॅचने के लिए नकारात्मक कारको के विरूद्ध सकारात्मक कारको का संतुलन बनाये रखता है।

6.2 निदान

निदान के सम्बन्ध में सभी निदानात्मक सम्प्रदाय के विचारको ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किये हैं परन्तु उन सभी मतो और विचारों का मूल अर्थ लगभग समान है । कुछ विद्वानों की परिभाषाओं एवं विचारों का उल्लेख निदान शब्द को स्पष्ट करने के लिए कर रहे हैं :–

मेरी रिचमण्ड (1917)

''सामाजिक निदान, जहॉ तक सम्भव हो एक सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा सामाजिक स्थिति की एक यथार्थ परिभाषा पर पहुॅचने का प्रयत्न है ।''

आप्टेकर, हरवर्ट एच0 (1955)

''निदान, जैसा कि निदानात्मक सम्प्रदाय ने देखा है, समस्या के कारणो की खोज है जो सेवार्थी को कार्यकर्ता के पास सहायता के लिए लाती है ।''

इस प्रकार निदान ऐसे मनोवैज्ञानिक अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी कारको जो सेवार्थी की कठिनाई के साथ कारणात्मक सम्बन्ध रखते हैं तथा सामाजिक अथवा पर्यावरणात्मक कारको जो इसे बनाये रखते हैं, दोनों को समझने से सम्बन्धित हैं।

निदान सेवार्थी की समस्या, उसके व्यक्तित्व तथा परिवेश को यथार्थ रूप को समझने के लिए किया गया प्रयास है । निदान की प्रक्रिया में समस्या से सम्बन्धित तथ्यो को एकत्रित किया जाता है । सेवार्थी की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कार्यात्मकता का निरीक्षण एवं परीक्षण किया जाता है, पर्यावरण सम्बन्धी कारको को समस्या के संदर्भ मे देखा जाता है तथा सेवार्थी एवं पर्यावरण दोनो की एक साथ व्याख्या करते हुए समस्या के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं । इसी निष्कर्ष को निदान के नाम से जाना जाता है।

मेरी रिचमण्ड जो सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की जन्मदात्री मानी जाती है । निदान के अन्तर्गत कार्यकर्ता के तीन महत्वपूर्ण कार्यो का उल्लेख किया है –

1. कठिनाईयों की परिभाषा
2. कारणात्मक कारक तथा
3. उपलब्धियॉ तथा उत्तरदायित्व

निदान एक ऐसा कार्य है जो सेवार्थी से सम्पर्क स्थापित करने के क्षण से चिकित्सा के अन्तिम चरण तक चलता रहता है परन्तु जिस प्रकार से चिकित्सा से वास्तविक लाभ प्राप्त करने के लिए कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध की आवश्यकता होती है उसी प्रकार निदान की सफलता कार्यकर्ता और सेवार्थी दोनों पर निर्भर होती है । कार्यकर्ता निदान की निष्पक्षता को बनाये रखने के लिए समस्या के प्रति वस्तुगत रूख अपनाता है तथा अपनी भावनाओं को सेवार्थी की भावना से पृथक रखता है ।

6.3 निदान की प्रक्रिया (Process of Diagnosis)

वैयक्तिक सेवा कार्य में प्रत्येक सेवार्थी के विषय में वैयक्तिक कार्यकर्ता को निश्चित करना पड़ता है कि किस प्रकार से उसकी समस्या को अधिकाधिक संतोष के साथ सुलझाया जा सकता है । इसके लिए वह उपलब्ध सूचनाओं का अध्ययन करता है तथा अपने व्यावसायिक ज्ञान द्वारा समस्या के कारणों की खोज करता है। खोज करने के पश्चात यह निश्चित करता है कि चिकित्सा प्रक्रिया का क्या स्वरूप हो। इस प्रकार निदान के अन्तर्गत निम्न तीन चरण होते हैं :–

1. **तथ्यों का मूल्यांकन**

   अ. समस्या का मूल्यांकन

   ब. व्यक्तित्व का मूल्यांकन

   स. सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन

2. **कारणान्वेषण**

   अ. समस्या का रूप

   ब. सामाजिक पर्यावरण का व्यक्तित्व पर प्रभाव

   स. समस्या उत्पत्ति के मुख्य कारक

   द. समस्या के उपचार के उपाय

3. **श्रेणीकरण**

   अ. समस्या के आधार पर वर्गीकरण

   ब. संस्था की सेवा का महत्व

इरिक सेन्सवरी के अनुसार निदान प्रक्रिया के चरण

1. वैयक्तिक सेवा कार्य में सूचना का मुख्य स्रोत सेवार्थी होता है। कार्यकर्ता को समस्या का ज्ञान सेवार्थी से साक्षात्कार द्वारा होता है। साक्षात्कार के माध्यम से ही वह निश्चित करता है कि सेवार्थी समस्या को कैसा अनुभव कर रहा है तथा उसकी समस्या क्या है ? कौन सी संस्था उसकी समस्या के अनुकूल हैं जिसमें संदर्भित करना है।

2. इस सूचना से कार्यकर्ता निश्चित तथ्यों तथा सेवार्थी की भावनाओं की प्रतिक्रिया को वर्णनात्मक स्वरूप संरचित करता है। वह निश्चित करता है

कि कौन–कौन से कारक सेवार्थी के लिए विशेष महत्व के है ? और कौन–कौन से परिवार तथा समूह के सामान्य कारक हैं ? परिवार तथा समूह के प्रभाव को निश्चित करता है। यह भी निश्चित करता है कि समस्या क्षेत्र सीमित है और उसका प्रभाव सेवार्थी के किसी एक अंग पर पड़ रहा है अथवा सेवार्थी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जीवन क्षेत्र इससे प्रभावित हो रहा है । यह निश्चित करने का प्रयत्न करता है कि सेवार्थी की भावनाएं समस्या के अनुरूप ही है अथवा उनमें अधिकता, कमी अथवा अवांछनीय है।

3. समस्या या कठिनाई का स्वरूप एवं विस्तार निश्चित हो जाने पर कार्यकर्ता निश्चित करता है कि सेवार्थी के जीवन तथा अनुभव का कौन सा क्षेत्र क्रमानुगत अन्वेषण चाहता है। इसके अन्तर्गत परिवार की संरचना, संस्था के कार्यो से आशा, शिक्षा एवं रोजगार लेखा, स्वास्थ्य, आय तथा गृह कार्य संगठन आदि क्षेत्र आते हैं। यह निश्चित करता है कि किन–किन स्रोतों से सम्बन्धित निदान के लिए सूचना की आवश्यकता है या दूसरी संस्थाओ को इसके लिए कितनी आवश्यकता है।

4. इस स्तर में वह उपलब्ध आंकड़ो का कार्यात्मक स्वरूप प्रदान करता है। आंकड़ो के अन्तर्गत विचार, भावनाएं, घटनाएं तथा प्रत्युत्तर सेवार्थी का अनुभव प्रभावपूर्ण कारक तथ्य तथा प्रतिक्रिया में सम्बन्ध आदि तत्व सम्मिलित होते है। सारांश में सेवार्थी की आन्तरिक एवं बाह्य तस्वीर आंकड़ो के अन्तर्गत होती है। विभिन्न कारणों की अन्तक्रिया को निश्चित करके समस्या के विशेष कारण को निश्चित करने का प्रयत्न किया जाता है।

तथ्यों का मूल्यांकन (Evaluation of Facts)

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के सम्बन्ध में एकत्रित किए गये तथ्यों का तीन प्रकार से मूल्यांकन करता है :–

अ. समस्या का मूल्यांकन (Evaluation of Problem)

यहॉ पर वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि समस्या का स्वरूप क्या है ? यह शारीरिक कष्ट प्रदान करने वाली समस्या है। मनोवैज्ञानिक दबाव डालने वाली समस्या है, असमायोजन सम्बन्धी समस्या है, भूमिका निष्पादन सम्बन्धी समस्या है, इत्यादि । समस्या का मूल्यांकन करते समय वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता इस प्रकार की स्पष्ट जानकारी प्राप्त करना चाहता है कि सेवार्थी किस समस्या से ग्रस्त है, उसकी समस्या का प्रादुर्भाव कब हुआ,

समस्या को सुलझाने की दिशा में कब–कब और क्या–क्या प्रयास किए गये, इन प्रयासो में क्या सफलता मिली तथा इन प्रयासों को क्यों बन्द कर दिया गया ?

ब. व्यक्तित्व का मूल्यांकन(Evaluation of Personality)

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी की अहम शक्ति का मूल्यांकन करता है। ऐसा करते हुए यह जानने का प्रयास करता है कि सेवार्थी के अतीत के अनुभव क्या रहे हैं ? उसके निर्णय की क्या स्थिति है ? तथा उसमें बाहर एवं आन्तरिक दबावों से निपटने की क्षमता क्या है ?

स. सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन (Evaluation of Environment)

यहॉ पर वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के परिवार, पड़ोस, विद्यालय, धार्मिक संस्थाओं, आर्थिक संस्थाओं, राजनीतिक संस्थाओं, मनोरंजनात्मक संस्थाओं, इत्यादि के बारे में मूल्यांकन करता है। यह मूल्यांकन करते समय वह विभिन्न प्रकार की संस्थाओ के साथ सेवार्थी के सम्बन्धों, इन संस्थाओं द्वारा सेवार्थी पर डाले गये प्रभावो तथा इन संस्थाओं के संदर्भ में सेवार्थी द्वारा प्रतिपादित की गयी भूमिकाओं और उनके उद्देश्यों की प्राप्ति में सेवार्थी द्वारा प्रदान किए गये योगदान का मूल्यांकन करता है ।

6.3.1 निदान के प्रकार (Forms of Diagnosis)

पर्लमैन के मत में निदान के तीन प्रकार हैं :–

1. गतिशील निदान (Dynamic Diagnosis)
2. क्लीनिकल निदान (Clinical Diagnosis)
3. कारणात्मक निदान (Etiological Diagnosis)

- **गतिशील /गत्यात्मक निदान (Dynamic Diagnosis)**

प्रत्येक प्रकार के वैयक्तिक सेवा कार्य में सेवार्थी की वर्तमान समस्या तथा अन्य सम्बन्धित कारको, उनके प्रभावों तथा परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान आवश्यक होता है। इस ज्ञान को **गत्यात्मक** निदान कहते हैं क्योकि ज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ निदान में भी अन्तर होता जाता है। गत्यात्मक निदान में निम्न तथ्य निश्चित किए जाते हैं :–

1. समस्या क्या है ?
2. मनोसामाजिक, शारीरिक या सामाजिक कारको का इस समस्या में क्या योगदान है ?

3. समस्या का व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
4. समाधान के क्या उपाय किये जायें ?
5. सेवार्थी तथा उसकी परिस्थिति में क्या–क्या साधन उपलब्ध हैं ?
6. संस्था में कौन–कौन से स्रोत तथा साधन हैं जिनसे समस्या का समाधान किया जा सकता है ?

गतिशील निदान सरल अथवा जटिल दोनों प्रकार का हो सकता है। कहीं मनोवैज्ञानिक कारक अधिक प्रभावपूर्ण हो सकते हैं तो कहीं सामाजिक कारक वैयक्तिक कार्य की प्रारम्भिक स्थिति में निदानात्मक खोज का केन्द्र बिन्दु बदलता रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह पूर्ण रूप से बदल जाता है इसमें सेवार्थी तथा उसकी परिस्थिति के बारे में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त होने के साथ आवश्यक परिवर्तन किये जाते रहते हैं ।

- **क्लीनिकल निदान (Clinical Diagnosis)**

वास्तविक रोग को रोग के आधार पर वर्गीकृत करने के प्रयास को **क्लीनिकल निदान** कहते हैं । जब तथ्यों के परीक्षण तथा अन्वेषण से यह ज्ञात हो जाता है कि सेवार्थी का व्यक्तित्व उसकी समस्या के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं तो उसके व्यक्तित्व कुसमायोजन तथा व्यक्तित्व अकार्यात्मकता को मूल्यांकित किया जाता है जिसे क्लीनिकल निदान कहते हैं। इसमें सेवार्थी के व्यक्तित्व असमायोजन के गुणों तथा व्यवहारों का वर्णन होता है।

व्यक्तित्व विघटन से सम्बन्धित व्यक्ति मनोविकार चिकित्सक के पास आता है और उसके द्वारा क्लिनिकल निदान किया जाता है परन्तु जब कोई व्यक्ति कोई कुसमायोजन सम्बन्धी समस्या को लेकर संस्था में आता है तो क्लीनिकल निदान करना आवश्यक नहीं कि उचित ही हो। यह उस समय लाभकर होता है जब यह निश्चित हो जाता है कि व्यक्तित्व विकार ही सामाजिक विकार का कारण है। इस स्थिति में क्लीनिकल निदान स्पष्ट करता है कि व्यक्तित्व की क्या समस्या है ? सेवार्थी की क्या आवश्यकता है तथा चिकित्सा की प्रक्रिया में सेवार्थी का कैसा व्यवहार हो सकता है ? परन्तु क्लीनिकल निदान यह स्पष्ट नहीं करता है कि मनोसामाजिक स्थिति की प्रकृति क्या है या उसका सेवार्थी, संस्था,व उददेश्य से क्या सम्बन्ध है अतः वैयक्तिक सेवा कार्य में यह निदान केवल आंशिक समझा जाता है ।

क्लीनिकल निदान में कार्यरत वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता में इस बात की योग्यता होनी चाहिए कि वह इस बात की पहचान कर सके कि सेवार्थी के

व्यक्तित्व में कुल मिलाकर दुख की क्या स्थिति है ? अर्थात उसमें मनो–विकास मनो–स्नायुविकृति, चारित्रिक एवं व्यवहारिक विसंगतियों के लक्षणों को पहचानने की योग्यता होनी चाहिये। इस प्रकार का निदान मनोचिकित्सको के सहयोग से किया जाता है ।

- कारणात्मक निदान **(Etiological Diagnosis)**

वर्तमान समस्या के विकार तथा उससे सम्बन्धित कारणों के ज्ञान की जानकारी यह निश्चित करने में आवश्यक होती है कि अमुक समस्या के लिए गत्यात्मक निदान हितकर है अथवा क्लीनिकल निदान । अतः समस्या के जन्म तथा कारण के प्रभावों को निश्चित करना ही **कारणात्मक निदान** होता है। कारणात्मक निदान भी क्लीनिकल निदान की भांति एकांगी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है क्योकि पूर्व कारको के महत्व को इससे स्पष्ट नहीं किया जाता है । कारण–प्रभाव–कारण के आधार पर समस्या का वास्तविक निदान करना एक दुष्कर कार्य है। कारणात्मक निदान से समस्याग्रस्त व्यक्ति तथा इसके समाधान में सहायक सिद्ध होने इससे प्राप्त वाले साधनों को समझने में सहायता मिलती है।

सारांश में, वैयक्तिक कार्य में निदानात्मक प्रक्रिया तथा इससे प्राप्त परिणाम का उद्देश्य वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता की सहायता प्रदान करने के इरादों एवं निपुणताओं की सीमा का ज्ञान कराना ,सार्थकता एवं निर्देशन प्रदान करना है। एक प्रक्रिया के रूप में यह सेवार्थी के व्यक्तित्व के प्रकार, उसकी आन्तरिक तथा वाह्य क्रिया एवं संसाधनों तथा संस्था के सहायतामूलक साधनों के सन्दर्भ में समस्या की प्रकृति का पता लगाने एवं मूल्यांकन करने का प्रयास करती है । इससे प्राप्त परिणाम कर्ता तथा सेवार्थी के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के महत्वपूर्ण बिन्दु स्पष्ट करता तथा आवश्यक निर्देशन प्रदान करता है। यह कार्यकारण सम्बन्धों का पता लगाती है ताकि समस्या के रोकने अथवा इसमें परिवर्तन लाने की दृष्टि से सार्थक हस्तक्षेप किए जा सके । इसके अन्तर्गत कोई उपचार का नुस्खा नहीं लिखा जाता बल्कि कुछ सामान्य प्रत्याशाओं की ओर इशारा किया जाता है और इस प्रकार वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता की क्रियाओं को मार्गदर्शन दिया जाता है।

6.4 उपचार/चिकित्सा (Treatment)

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य चिकित्सा प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है । चिकित्सा प्रक्रिया में वे साधन, प्रविधियॉ, कौशल तथा तरीके होते हैं जिनके द्वारा सामाजिक तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी समायोजन स्थापित करने में सहायता मिलती है। प्रारम्भिक वैयक्तिक सेवाकार्य चिकित्सा का ध्यान पर्यावरण

द्वारा परिवर्तन पर अधिक था । इस ओर ध्यान स्वाभाविक था क्योंकि सेवार्थियों की अधिकांश समस्याएं समायोजन सम्बन्धी अधिक थी जिनके कारण यह निश्चित माना जाने लगा था कि प्रतिकूल पर्यावरण के कारण व्यक्ति समस्या से ग्रस्त हो जाता है। अतः वैयक्तिक सेवा कार्य ,सामाजिक सेवाओं के रचनात्मक उपयोग पर बल देना प्रारम्भ किया ।

चिकित्सा का अर्थ (Meaning of Treatment)

साधारण बोलचाल की भाषा में चिकित्सा का तात्पर्य शारीरिक व्याधियों के रोग–मुक्त होने से समझा जाता है परन्तु औषधीशास्त्र में भी रोग से मुक्ति नहीं मिलती है केवल रोग को कुछ समय के लिए नियन्त्रण में कर लिया जाता है लेकिन पुनरावृत्ति की सम्भावना बनी रहती है । वैयक्तिक सेवा कार्य में भी कुछ विशिष्ट रोगो को दूर किया जा सकता है । एक बच्चे के लिए बुरे घर के सीन पर नया घर खोजा जा सकता है। परिवर्तनो को कम किया जा सकता है (अपने प्रति तथा दूसरो के प्रति मनोवृत्तियो में परिवर्तन लाया जा सकता है), बिगड़ती हुई स्थिति को रोका जा सकता है। लेकिन व्यक्ति की व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्थिरता उस वृहद समुदाय की सुरक्षा पर निर्भर होती है जिसका वह स्वंय एक भाग होता है इसके अतिरिक्त जीवन की घटनाओ के लिए भी उसी पर निर्भर होता है । यही कारण है कि वैयक्तिक सेवा कार्य में सामाजिक कल्याण से सम्बन्ध होता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में उन क्षमताओ को व्यवस्थित तथा कार्यान्वित करते हैं जिनसे अनुकूल प्राप्त होता है तथा उन साधनों, अवसरो एवं व्यक्तियों को प्रदान करते हैं जिनके द्वारा कोई व्यक्ति सामाजिक समायोजन प्राप्त करता है ।

6.5 चिकित्सा का उद्देश्य (Objective of Treatment)

मनो–सामाजिक समायोजन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य –सामाजिक विघटन को रोकना, शक्तियों को संकलित करना, सामाजिक क्रियाविधि को फिर से सामान्य बनाना, जीवन के अनुभवों को अधिक संतोषजनक तथा लाभ प्रदान करने वाले बनाना, अभिवृद्धि एवं विकास के अवसर उपलध कराना तथा आत्मनिर्देशन करने एवं सामाजिक अंशदान देने की क्षमता में वृद्धि करना होता है।

आप्टेकर ने सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा के दो मुख्य उद्देश्य बताये हैं :–

1. वर्तमान जीवन परिस्थिति की प्राप्ति करने के लिए क्षमता तथा स्त्रोतो में गतिशीलता प्रदान करने में सहायता द्वारा सेवार्थी की वर्तमान शक्तियों को बनाये रखना अथवा उन्हें आलम्बन प्रदान करना ।

2. अपने विषय में, अपनी समस्या के विषय में और इनको उत्पन्न करने में स्वयं की भूमिका के सम्बन्ध में ज्ञान में वृद्धि करें, सेवार्थी की मनोवृत्तियों तथा व्यवहार के तरीको में परिवर्तन लाना ।

मनो–सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतू निम्नलिखित प्रयास किए जाते हैं :–

1. वित्तीय सहायता की आपूर्ति के सुनिश्चित किए जाने अथवा बच्चो के रखे जाने अथवा विद्यालय के कार्यक्रमों में संसोधन किए जाने जैसे पर्यावरण में परिवर्तन द्वारा व्यक्ति की परिस्थिति में परिवर्तन किया जाता है अथवा सुधार लाया जाता है।

2. पर्यावरण में परिवर्तन अथवा प्रत्यक्ष साक्षात्कार सम्बन्धी उपचार द्वारा सामाजिक परिस्थिति के अन्तर्गत मनोवृत्तियों अथवा व्यवहार में परिवर्तन करके व्यक्ति की सहायता की जाती है ।

3. इन दोनों व्यक्ति की परिस्थिति में परिवर्तन तथा पर्यावरण में परिवर्तन का मिश्रित प्रयोग किया जाता है । कभी–कभी मनोवैज्ञानिक एवं व्यवहारिक समर्थन के माध्यम से परिस्थिति को और अधिक न बिगड़ने देने, और यथास्थिति को बनाये रखने का उद्देश्य निर्धारित किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि अन्य समूहों की सहायता से सामान्य आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में सुधार लाने के उद्देश्य की ओर उन्मुख सामाजिक क्रिया समाज कार्यकर्ताओं का भी उत्तरदायित्व होती है किन्तु इस प्रकार की सामाजिक क्रिया वैयक्तिक कार्य प्रक्रिया का अंग नहीं होती क्योंकि इसके अन्तर्गत एवं विशिष्ट परिस्थिति में आन्तरिक एवं वाह्य शक्तियों के बीच संतुलन बनाये रखने का प्रयास किया जाता है ।

वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता का मूलतः उद्देश्य सेवार्थी की कठिनाइयों को दूर करना तथा व्यक्ति परिस्थिति व्यवस्था की अकार्यात्मकता में कमी करना या इसको सकारात्मक रूप में रखकर सेवार्थी की सुविधा, संतोष एवं आत्म अनुभूति में वृद्धि करना है इसके लिए अहं तथा व्यक्ति–परिस्थिति व्यवस्था की कार्यात्मकता की अनुकूलन निपुणताओं में वृद्धि की आवश्यकता हो सकती है । व्यक्ति या परिस्थिति या प्रायः दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता हो सकती है ।

6.6 उपचार के साधन (Means of Treatment)

उपचार के साधनों का वर्णन तीन श्रेणियों में किया जा सकता है–

1. व्यावहारिक सेवाओं का प्रशासन (Administration of Practical Services)
2. पर्यावरणीय परिवर्तन (Environmental Manipulation)
3. प्रत्यक्ष चिकित्सा (Direct Treatment)

1. व्यावहारिक सेवाओं का प्रशासन (Administration of Practical Services)

व्यावहारिक सेवाओं के प्रशासन से तात्पर्य सेवार्थी की इस प्रकार से सहायता करना, जिससे वह समुदाय में उपलब्ध साधनों का चुनाव कर उसका उपयोग कर सके । इस सम्बन्ध में वैयक्तिक सेवा कार्य सम्बन्ध इन सेवाओं को उपलब्ध कराने का साधन है, जिसमें विचार–विमर्श, सूचना तथा स्पष्टीकरण प्रविधियों का उपयोग ,सेवार्थी को ज्ञान प्रदान करने के लिए किया जाता है। सेवार्थी यदि शारीरिक रूप से रोगी है अथवा शारीरिक रूप से अक्षम्य है तो सम्बन्ध का रूप आलम्बनात्मक होता है और सेवाओं को उसकी शक्ति की सीमा के अन्तर्गत लाया जाता है। यदि सेवार्थी अहं (Ego) वाला होता है तो चिकित्सकीय, शैक्षिक अथवा आलम्बन प्रक्रिया का भी उपयोग किया जाता है।

प्रायः सेवार्थी अपनी आवश्यकता के बारे में जानता है किन्तु उसे यह पता नहीं होता कि इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपेक्षित सेवा अथवा संसाधन कहॉ प्राप्त होगा। कभी–कभी उसे अपनी आवश्यकता का स्पष्ट ज्ञान भी नहीं होता तथा कभी कभी वह बाधिता का इतना गम्भीर रूप से शिकार होता है कि वह अपने लिए कुछ नहीं कर सकता । इन सभी परिस्थितियों में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता आवश्यक सहायता उपलब्ध कराता है। यथासंभव अपनी संस्था के संसाधनों का प्रयोग करते हुए यह सहायता प्रदान की जानी चाहिये किन्तु अपनी एजेन्सी में उपयुक्त सहायता उपलब्ध न होने की स्थिति में किसी अन्य ऐसी एजेन्सी में भेजा जाना चाहिये जहॉ सबसे अच्छी सेवायें उपलब्ध हो सके। व्यावहारिक सेवाओं का समुचित रूप से उपलब्ध कराया जाना वैयक्तिक समाज कार्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्पूर्ण उपचार का बहुत बड़ा हिस्सा इन्ही व्यावहारिक सेवाओं से संबंधित है। संसाधन 'उपचार' होता है किन्तु वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली इसका रचनात्मक प्रयोग किये जाने में व्यक्ति की सहायता करती है ।

इस प्रकार की व्यावहारिक सेवाओं के अन्तर्गत वित्तीय सहायता का उपलब्ध कराया जाना, शरण की व्यवस्था किया जाना, विधिक परामर्श अथवा चिकित्सकीय सहायता प्रदान किया जाना, शिविरों की व्यवस्था किया जाना इत्यादि आते हैं। सहायता के सर्वोत्तम स्रोतों के निर्धारण के लिए समुदाय के सांस्कृतिक प्रतिमानों तथा एजेन्सी के कार्यो की विस्तृत जानकारी आवश्यक होती है ।

2. **पर्यावरण में परिवर्तन (Environmental Manipulation)**

पर्यावरण में सुधार का तात्पर्य सेवार्थी की सामाजिक परिस्थितियों में ऐसे परिवर्तन लाना है जिससे उस पर दवाब कम हो सके। इस प्रकार के सुधार में किसी भी प्रकार की शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता है । यहॉ पर परिवर्तन शब्द का प्रयोग रचनात्मक अर्थ में किया जा सकता है जो सेवार्थी की व्यक्तित्व सम्बन्धी संरचना, उसके व्यवहार के प्रतिमानों, मनोवृत्तियों, आवश्यकताओं, संघर्षो, रक्षा–युक्तियों, इत्यादि को भली प्रकार समझ लेने के पश्चात किया जाता हैं वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्याओं का समाधान करने के लिए सुझाव दे सकता है । वह सेवार्थी की समस्या के प्रति मनोवृत्तियों एवं अभिगमों को परिवर्तित कर सकता है वह समायोजन के लिए आवश्यक संवेगात्मक परिवर्तन कर सकता है।

पर्यावरण परिवर्तन के दौरान सेवार्थी को एक अधिक लाभकारी परिस्थितियों में रखा जा सकता है ताकि वह अपने को एक अधिक हितकारी वास्तविकता में पाकर अधिक अच्छे ढंग से कार्य करने लगे और बाद में अपनी सामान्य जीवन परिस्थितियों को अधिक अच्छे ढंग से सामना करने की क्षमता विकसित कर सके । इस नवीन स्थिति में प्राप्त होने वाले अनुभव उसकी पुरानी मनोवृत्तियों में परिवर्तन कर सकते हैं तथा नयी मनोवृत्तियों को जन्म दे सकते हैं ।

पर्यावरण परिवर्तन के दौरान मनोरंजन सम्बन्धी कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है ताकि सेवार्थी की आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । उदाहरण के लिए, उसकी क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि जैसी भावनाओं को रचनात्मक रूप से व्यक्त होने के अवसर प्राप्त हो । पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तन के अन्तर्गत तनाव को कम करने वाले कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं। बाधितों के साथ कार्य करते हुए इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है कि उन्हें प्रतियोगिता का सहारा न लेना पड़े ।

इस प्रकार के अन्तवैयक्तिक सामंजस्य के लिए सेवार्थी के लिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों उदाहरणार्थ– उसके परिवारजनों, शिक्षकों, मित्रों इत्यादि की मनोवृत्तियों में

परिवर्तन किया जाना आवश्यक होता है। विशेष रूप से, इन महत्वपूर्ण व्यक्तियों की नकारात्मक मनोवृत्तियों को परिंवतित करने का प्रयास किया जाता है।

इस प्रणाली द्वारा कभी–कभी पर्यावरण के दवाब की कम कर देने से सेवार्थी को काफी आराम मिलता है परन्तु अहं को दृढ़ करने तथा आत्मज्ञान के लिए एवं उचित प्रत्यक्षीकरण के लिए कर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता होती है ।

3. प्रत्यक्ष उपचार **(Direct Treatment)**

प्रत्यक्ष उपचार से हमारा अभिप्राय साक्षात्कारो की एक ऐसी श्रृंखला से है जो संवेगात्मक संतुलन को बनाये रखने, रचनात्मक निर्णयों को लेने तथा अभिवृद्धि अथवा परिवर्तन के लिए उपयुक्त मनोवृत्तियों को उत्पन्न करने अथवा संबल प्रदान करने के लिए आयोजित किए जाते हैं। इसके अंतर्गत मनोवैज्ञानिक समर्थन को भी सम्मिलित किया जाता है क्योंकि यह वैयक्तिक कार्य प्रणालियों के मनोसामाजिक सामंजस्य में एक महत्वपूर्ण कारक होता है। प्रत्यक्ष चिकित्सा में भौतिक साधनों के उपयोग की आवश्यकता नहीं होती है इसीलिए इसे प्रत्यक्ष उपचार/चिकित्सा कहते हैं। परन्तु वैयक्तिक सेवा कार्य में मनोविश्लेषण का अधिक सहारा लेते हैं।

6.7 प्रत्यक्ष उपचार की प्रविधियॉ

1. मंत्रणा
2. चिकित्सकीय साक्षात्कार
3. मनोवैज्ञानिक आलम्बन
4. स्पष्टीकरण
5. अन्तर्दृष्टि का विकास
6. निर्वचन
7. सुझाव
8. पुर्नवासन
9. अनुनय
10. पुनर्शिक्षा
11. सामूहिक चिकित्सा

1. **मंत्रणा(Counselling)**

यह एक शैक्षिक प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य सेवार्थी को उसकी परिस्थिति से सम्बन्धित विभिन्न मसलों का विवेकपूर्ण ढंग से विवेचना करने, उसकी समस्या को स्पष्ट करने, वास्तविकता के साथ उसके संघर्षो को सामने लाने, विभिन्न प्रकार के क्रिया सम्बन्धी विकल्पो की व्यावहारिकता पर विचार विमर्श करने तथा विभिन्न विकल्पो में चयन करने के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की दृष्टि से सेवार्थी को स्वतंत्रता प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है। वर्तमान समय में परामर्श शब्द का प्रयोग मनमाने ढंग से मार्गदर्शन से सम्बन्धित विविध प्रकार की क्रियाओं को सम्बोधित करने के लिए किया जाता है। यहॉ पर परामर्श शब्द का प्रयोग ऐसे वैयक्तिक परामर्श को सम्बोधित करने के लिए किया जाता रहा है जिसके लिए व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण तथा साक्षात्कार सम्बन्धी अनुभव की आवश्यकता होती है ।

मंत्रणा के अन्तर्गत सूचना का प्रदान किया जाना, परिस्थिति का स्पष्ट किया जाना तथा इससे सम्बन्धित विभिन्न मुददो का विश्लेषण किया जाना तथा क्रिया से संबंधित विभिन्न चरणों का विवेचन किया जाना सम्मिलित है। यदि सामाजिक समस्या से कोई अन्य व्यक्ति सम्बन्धित होता है तो मंत्रणा मनोचिकित्सा का स्वरूप ग्रहण करने लगती है । अपने अधिक सरल स्वरूपों में मंत्रणा का उददेश्य बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना होता है ।

2. **चिकित्सकीय साक्षात्कार (Therapeutic Interviewing)**

इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि सेवार्थी किसी प्रकार की बीमारी अथवा असमर्थता का शिकार होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार के दौरान सेवार्थी को किसी शान्तिपूर्ण कमरे में बैठाकर कार्यकर्ता उसे अपनी समस्या को बिना किसी बाधा के व्यक्त करने के लिए कहता है। बीच–बीच में कार्यकर्ता सेवार्थी को संवेगात्मक भावनायें व्यक्त करने में सहारा भी प्रदान करता है। इस प्रकार के साक्षात्कार के परिणामस्वरूप सेवार्थी के कष्टदायी विचारों की अभिव्यक्ति हो जाती है और वह आराम महसूस करने लगता है। इसके अतिरिक्त चिकित्सक सहचर्य का विश्लेषण कर सेवार्थी के मानसिक संघर्ष की तह तक पहुॅचता है। स्वप्न विश्लेषण द्वारा अतृप्त इच्छाओं को समझा जाता है।

3. **मनोवैज्ञानिक आलंबन (Psychological Support)**

मनोवैज्ञानिक आलंबन प्रदान करते हुए वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी को भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है । उसकी भावनाओं को

समझता है तथा स्वीकृति प्रदान करता है । सेवार्थी में समस्या–समाधान के लिए अपेक्षित रूचि उत्पन्न करता है । वह अपने द्वारा प्रदान की गयी सहायता के प्रकार को स्पष्ट करता है। समस्या–समाधान की क्षमता उत्पन्न करता है तथा आवश्यकतानुसार योजना तैयार करने में सहायता प्रदान करता है। मनोवैज्ञानिक आलंबन के परिणामस्वरूप सेवार्थी को प्रत्यक्ष रूप से उत्साह मिलता है और उसमें अपनी समस्या का समाधान करने की योग्यता में विश्वास उत्पन्न होने लगता है ।

जब मनोवैज्ञानिक आलम्बन चिकित्सा का मुख्य साधन होता है उस स्थिति में कर्ता तथा सेवार्थी के मध्य घनिष्ठ तथा पिता–पुत्र ऐसे सम्बन्ध स्थापित होते हैं ''मनोवैज्ञानिक आलम्बन का सेवार्थी द्वारा ज्ञान विकास करने पर बल न होकर निर्देशन, पुनः विश्वासीकरण द्वारा तनाव को दूर करके उसके अहं शक्ति को पुष्टीकरण पर बल देता है ।''

4. **स्पष्टीकरण (Clarification)**

डा0 एडवर्ड बाइब्रिंग के शब्दो में, स्पष्टीकरण रोगी को कुछ मनोवृत्तियों, भावनाओं के प्रति सचेत बनाते हुए अथवा इसकी यथार्थ बनाम रागात्मक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उसे स्वयं अपने आपको तथा पर्यावरण को एक अधिक विषयात्मक ढंग से देखने की अनुमति प्रदान करता है जिससे अधिक अच्छा नियंत्रण हो जाता है। स्पष्टीकरण की प्रक्रिया के दौरान सेवार्थी को पर्यावरण अथवा उससे संबंधित महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संबंध में ऐसी सूचनायें प्रदान की जाती है जिनकी जानकारी पहले से सेवार्थी को नहीं होती तथा जिनके बिना वह न तो समस्या का और न ही अपनी शक्तियों का और न ही विभिन्न प्रकार के उपलब्ध विकल्पों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रविधि के परिणामस्वरूप सेवार्थी स्वयं अपने आप को, अपनी समस्या को, अपने से सम्बन्धित महत्वपूर्ण व्यक्तियों को और अपने पर्यावरण को विषयात्मक रूप से समझने लगता है ।

5. **निर्वचन**

एक उपचारक के रूप में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सामाजिक अथवा वैयक्तिक कारकों और उनके बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के निर्वचन का प्रयोग अत्यधिक सतर्कता के साथ करता है। निर्वचन के दौरान वह स्पष्टीकरण तथा हस्तान्तरण के अन्तर्गत अहम् को समर्थन प्रदान करने की प्रविधियों का प्रयोग करता है। ऐसा करते समय वह रक्षायुक्तियों में हस्तक्षेप बहुत कम करता है जब तक कि ये नकारात्मक न हो तथा जब तक कि ये बहुत अधिक गतिरोध उत्पन्न न करती हो और नकारात्मक हस्तान्तरण न होता हो । इस सम्बन्ध में कोई अन्तिम

सीमा रेखा नही खीची जा सकती क्योंकि उपचार की प्रक्रिया में विभिन्न रोगियों को भिन्न–भिन्न प्रकार की अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता होती है।

निर्वचन के परिणामस्वरूप आत्म चेतना तो किसी न किसी स्तर पर उत्पन्न होती ही है किन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जब सेवार्थी इसके लिए तैयार हो। रक्षातंत्र में घुसपैठ करने के अपरिपक्व प्रयासों की उपेक्षा की जा सकती है । इनके प्रति गतिरोध प्रदर्शित किया जा सकता है तथा इनसे चिंता स्थितियॉ उत्पन्न हो सकती है यद्यपि भावनाओं को व्यक्त कराते हुए तथा पर्यावरण में सुधार करते हुए भावनाओं एवं व्यवहार में परिवर्तन, विशेष रूप से छोटे बच्चो के, बिना चेतन अन्र्तदृष्टि के सम्भव है किन्तु परिवर्तन के साथ साथ कुछ न कुछ आत्मचेतना विकसित होती ही है। निर्वचन किस समय किया जाये, यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है ।

6. **सुझाव (Suggestion)**

चिकित्सा की एक पद्धति के रूप में सुझाव का प्रयोग प्राचीनकाल से किया जा रहा है। ऐसा करते समय कार्यकर्ता ,सेवार्थी के सामने कुछ सुझाव रखता है और इन सुझावो को मानना अथवा न मानना सेवार्थी की इच्छा पर छोड़ देता है । सुझाव की पद्धति अत्यधिक उपयोगी होती है । चिन्ता तथा अवसाद की स्थिति में रोगी को मनोवैज्ञानिक समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता होती है और इन नाजुक क्षणों में यदि उसे सुझाव के रूप में बाह्य सहायता प्राप्त होती है तो उसे बड़ी राहत मिलती है । इसी प्रकार आर्थिक संकट, वृद्धावस्था, संघर्षात्मक स्थितियों इत्यादि में सुझाव, सेवार्थी के सामने विकल्प प्रस्तुत करते हुए उसके तनाव को दूर करने में सहायक सिद्ध होते हैं ।

7. **पुनराश्वासन (Re-assurance)**

पुराश्वासन के माध्यम से विभिन्न ढंगों का प्रयोग करते हुए सेवार्थी में इस बात का विश्वास उत्पन्न किया जाता है कि वह समस्या से मुक्त हो जायेगा। पुनराश्वासन का प्रयोग करता हुअ एक वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता, सेवार्थी में उपचार के प्रति तथा समस्या के प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और इस प्रकार उसे उपचार की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए मानसिक रूप से तैयार करता है। पुनराश्वासन का प्रयोग करते हुए वह सेवार्थी को यह स्पष्ट रूप से बताता है कि उसकी समस्या क्या है? इसके कारण क्या हैं ? यह किन लक्षणों के रूप में व्यक्त हो रही है तथा इसका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है और विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुए सेवार्थी को इस बात का आश्वासन देता है कि वह निश्चित रूप से समस्या मुक्त हो जायेगा ।

8. **पुनर्शिक्षा (Re-education)**

शिक्षा की प्रक्रिया चाहें वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में, किसी भी समस्या पर क्यों न हो रही हो, व्यक्ति में वास्तविकता को समझने की क्षमता उत्पन्न करती है। शिक्षा के दौरान वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण एवं विवेचन करते हुए वस्तुस्थिति से अवगत करने का प्रयास किया जाता है। वैयक्तिक समाज कार्य के दौरान वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता पुनर्शिक्षा का प्रयोग करते हुए समस्या के लक्षणों एवं कारणों को स्पष्ट करता है तथा चेतन स्तर पर पायी जाने वाली मानसिक स्थिति तथा इसका प्रयोग किये जाने के परिणामस्वरूप सेवार्थी को होने वाली हानियों की चर्चा करता है ।

9. **सामूहिक चिकित्सा (Group Therapy)**

सामूहिक चिकित्सा एक अत्याधिक सामान्य शब्द है जिसका प्रयोग किसी भी मनश्चिकित्सकीय प्रक्रिया को सम्बोधित करने के लिए किया जाता है जिसमें व्यक्तियों के समूह किसी चिकित्सक की देखरेख में मिलते हैं और ऐसी क्रियाओं में भाग लेते हैं जिनके दौरान उन्हें अपनी संवेगात्मक भावनाओं को व्यक्त करने, अपनी कमियों को समझने, दूसरों की आशाओं एवं प्रत्याशाओं के अनुसार समायोजन करने के अवसर प्राप्त होते हैं। सामूहिक चिकित्सा दो प्रकार की होती है –

1. प्रकार्यात्मक चिकित्सा जिसके अन्तर्गत सेवार्थी को विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को आयोजित करते हुए इससे सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं में सम्मिलित कराते हुए चिकित्सा की जाती है।
2. सामाजिक सहचर्य, जिसके दौरान अनेक सेवार्थियों को एक साथ रखते हुए, भोजन कराते हुए, आमोद–प्रमोद कराते हुए इत्यादि के माध्यम से उपचार किया जाता है ।

6.8 मूल्यांकन (Evaluation)

निदान की भांति मूल्यांकन, सेवार्थी के संस्था में आने के साथ से ही प्रारम्भ हो जाता है और अन्त तक चलता रहता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में निदान की आवश्यकता के साथ–साथ इसकी भी आवश्यकता का अनुभव होता है क्योंकि वैयक्तिक सेवा कार्य का सम्बन्ध समस्या समाधान करने, उसका कल्याण तथा विकास करना है। सामाजिक कार्यकर्ता का यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी सेवार्थी की तथा संस्था की क्षमताओं का मूल्यांकन, समस्या के सन्दर्भ में करें जिससे उपचार प्रक्रिया का निर्धारण वास्तविक तथ्यों पर आधारित हो सके ।

6.8.1 मूल्यांकन का अर्थ (Meaning of Evaluation)

निदान तथा मूल्यांकन सेवार्थी को समझने तथा चिकित्सात्मक सुझाव प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक होते हैं। दोनो ही प्रक्रियाएं अन्तर्ग्रहण के समय से ही प्रारम्भ हो जाती हैं तथा सम्बन्ध के अन्तिम चरण तक चलती रहती है अन्तर्गहण के समय सेवार्थी की शिकायत के आधार पर अनिश्चित निर्णय लेते हैं जिसे निदान का प्रारम्भिक रूप कह सकते हैं परन्तु इसके साथ ही साथ उस व्यक्ति की क्षमताओं, असमताओं, सहायता के उपयोग की इच्छा अनिच्छा, सांस्कृतिक कारक आदि के सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाते हुए निर्णय लेते हैं और इन सामाजिक निर्णयों को मूल्यांकन माना जाता है।

हैमिल्टन के अनुसार – जब व्याख्या समस्या को परिभाषित करने की ओर निर्देशित न होकर, व्यक्ति किस प्रकार अपनी समस्या का सामना कर रहा है ,की ओर निर्देशित होती है, तब जो परिणाम प्राप्त होता है वह निदान न होकर मूल्यांकन होता है ।

मूल्यांकन द्वारा वैयक्तिक कार्यकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि व्यक्ति (सेवार्थी) ने उद्देश्य प्राप्त करने, या समस्या का समाधान , कितना तथा क्या प्रयत्न किया है ? वह समस्या को किस प्रकार अनुभव कर रहा है ? किस सीमा तक वह सहायता लेने का इच्छुक है तथा वह संस्था किस सीमा तक सहायता देने की योग्यता एवं क्षमता रखती है। कार्यकर्ता चिकित्सा पद्धति के प्रभाव का भी मूल्यांकन करता है जिससे पद्धति के समुचित नियोजन, नियंत्रण तथा परिमार्जन की सुविधा होती है। मूल्यांकन के द्वारा कार्यकर्ता को अपने विषय में भी ज्ञान हो जाता है अतः उसके अपने व्यवहार तथा कार्य में सुधार करने का अवसर मिलता है ।

6.8.2 मूल्यांकन का कार्यक्षेत्र (Field of Evaluation)

वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्न स्थितियों का मूल्यांकन करता हैः–

1. समस्या का मूल्यांकन
2. सेवार्थी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन
3. सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन

1. समस्या का मूल्यांकन (Evaluation of Problem)

समस्या का मूल्यांकन करते समय वैयक्तिक कार्यकर्ता देखता है कि सेवार्थी वर्तमान समय में किस समस्या से ग्रसित है, कब से समस्या का प्रारम्भ हुआ है,

समस्या के अन्तर्गत कौन–कौन से कारक है जिनके कारण सेवार्थी चिन्तित है, सेवार्थी ने समस्या सुलझाने के क्या प्रयत्न किये हैं, उसे अपने प्रयत्नो में कितनी सफलता प्राप्त हुई है, उसकी समस्या के समाधान के लिए किन–किन तरीकों एवं साधनों की आवश्यकता है, सेवार्थी का इस क्षेत्र में कितना ज्ञान है, वह स्वयं अपनी जिम्मेदारी ग्रहण करना चाहता है, समस्या का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर मूल्यांकन द्वारा प्राप्त करता है ।

2. **सेवार्थी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन (Evaluation of Client Pesonality)**

कार्यकर्ता सेवार्थी की अहं शक्ति का मूल्यांकन समस्या समाधन हेतु करता है । वह देखता है कि उसका व्यवहार कैसा है ? उसके अनुभव कैसे है ? उसकी निर्णय शक्ति किस प्रकार कार्य करती है ? सेवार्थी वाहृय तथा आन्तरिक दबावों को किस प्रकार महसूस करता है ? कार्यकर्ता तथा संस्था से सेवार्थी की क्या आशाएं है तथा इन आशाओ की पूर्ति कहॉ तक की जा सकती है ? सेवार्थी की समायोजन की क्षमता का भी कार्यकर्ता अध्ययन करता है वह मनोरक्षात्मक तरीकों के उपयोग को भी देखता है वह सेवार्थी की सम्प्रेरणाओं तथा विरोधों का भी मूल्यांकन करता है।

3.सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन (Evaluation of Environment)

सामाजिक पर्यावरण के मूल्यांकन में कार्यकर्ता सेवार्थी की परिस्थितियों, घटनाओं तथा सम्बन्धित व्यक्तियों का अध्ययन करता है। सामाजिक पर्यावरण के प्रभाव को समस्या के सन्दर्भ में देखा जाता है । सेवार्थी के सामाजिक पर्यावरण के प्रति विचारों, भावनाओं, धारणाओं का भी मूल्यांकन होता है ।

6.8.3 मूल्यांकन की आवश्यकता (Need of Evaluation)

सुसंगठित तथा योजनाबद्ध मूल्यांकन से निम्नलिखित लाभ होते हैं :–

1. मूल्यांकन से समस्या के महत्व का ज्ञान होता है ।
2. सेवार्थी की मनोशक्ति का पता चलता है ।
3. अवरोधों एवं बाधाओं का पता चलता है ।
4. सेवार्थी की इच्छा का ज्ञान होता है ।
5. सेवा की उपयोगिता का आभास होता है ।
6. सेवार्थी की क्षमताओं, शक्तियों, निपुणताओं, सम्बन्धों, साथ ही साथ कमियों, अक्षमताओं, दोषों तथा संघर्षो को जाना जाता है ।
7. सेवार्थी को कहॉ तक सहायता की आवश्यकता है, जाना जाता है।

8. निदान के परिमार्जन तथा चिकित्सा पद्धति में विकास करने का ज्ञान होता है ।
9. वैयक्तिक सेवा कार्य के तरीकों एवं प्रविधियों की उपयुक्तता का ज्ञान होता है ।
10. मूल्यांकन द्वारा नयी–नयी बातों का पता चलता है तथा नयी समस्यायें उभर कर सामने आती हैं । इससे चिकित्सा की नई–नई प्रविधियों का उपयोग किया जाता है ।

इस प्रकार उपर्लिखित विवेचना से स्पष्ट है कि सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के साथ–साथ मूल्यांकन का कार्य भी अति महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे निदान तथा चिकित्सा दोनों प्रक्रियाओं को लाभ पहुॅचता है । मूल्यांकन सदैव प्रयत्नों में वरीयता स्पष्ट करता है जिससे चिकित्सा कार्य सुचारू व व्यवस्थित रूप से सम्भव होता है ।

6.8.4 निदान एवं मूल्यांकन में अन्तर्सम्बन्ध

निदान– समस्या के समुचित उपचार के लिए इसके कारणों की खोज है, जबकि मूल्यांकन समस्या समाधान की दृष्टि से सेवार्थी की शक्तियों एवं कमियों का अन्वेषण है । इन दोनों में भिन्नतायें तथा समानतायें दोनो ही पायी जाती हैं । इन दोनो में निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होते हैं :–

1. निदान से सेवार्थी की मनो–सामाजिक समस्या के कारणों का ज्ञान प्राप्त होता है, जबकि मूल्यांकन से सेवार्थी की क्षमता, आन्तरिक तथा बाह्य स्रोतों तथा कार्यात्मकता का ज्ञान प्राप्त होता है ।
2. निदान की प्रक्रिया में प्रमुख रूप से समस्या का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है जबकि मूल्यांकन में प्रमुख रूप से समस्याग्रस्त व्यक्ति का प्रयत्क्षीकरण किया जाता है।
3. मूल्यांकन का लक्ष्य सामाजिक है जबकि निदान का लक्ष्य इस सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतू सेवार्थी की क्षमताओं का पता लगाना है ।
4. निदान सम्बन्धी निपुणता, कर्ता के मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक ज्ञान पर निर्भर करती है जबकि मूल्यांकन करने की निपुणता कर्ता के तार्किक विचारों तथा अनुभवों एवं भावनाओं पर निर्भर करती हैं ।
5. निदान तथा मूल्यांकन दोनों का उद्देश्य उपचार को प्रभावकारी बनाना है ।

6.9 सार संक्षेप

सारांश में यह कहा जा सकता है कि निदान समस्या का वैज्ञानिक ज्ञान है । निदान हम चिकित्सा के लिए करते हैं तथा मूल्यांकन हम यह खोज करने के लिए करते हैं कि सेवार्थी अपनी समस्या समाधान की मात्रा के लिए कितनी क्षमता रखता है ।

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. निदान की प्रक्रिया तथा निदान के प्रकारों की विवेचना कीजिए ?
2. निदान की प्रक्रिया में उपचार/चिकित्सा के महत्व को समझायें ?
3. चिकित्सा का उद्देश्य एवं उपचार के साधनों की व्याख्या कीजिए ?
4. प्रत्यक्ष उपचार की प्रविधियों का वर्णन करें ?
5. मूल्यांकन क्या है ?मूल्यांकन के कार्यक्षेत्र कौन से हैं ?
6. मूल्यांकन की आवश्यकता क्या होती है ?
7. निदान एवं मूल्यांकन में अन्तर्सम्बन्ध का वर्णन करें ?

6.11 पारिभाषिक शब्दावली

अन्तर्सम्बन्ध	Inter-related	प्रत्यक्ष चिकित्सा	Direct Treatment
मूल्यांकन	Evaluation	गतिशील निदान	Dynamic Diagnosis
अन्तर्सम्बन्ध	relatedness	व्यक्तित्व	Pesonality
सेवार्थी	Client	कारणात्मक निदान	Etiological
मंत्रणा/परामर्श	Counselling	वयैक्तिक अध्ययन	Case Work

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा0 सुरेन्द्र सिंह व डा0 पी0डी0 मिश्र, समाज कार्य : इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियॉ संशोधित संस्करण, न्यू रॉयल बुक कम्पनी, लखनऊ ।
2. डा0 पी0डी0 मिश्र, सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य।

   डॉ0 सच्चिदानन्द पाठक, लखनऊ ।

इकाई – 7

मंत्रणा : एक परिचय

Counselling : an Introduction

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 परिचय

7.2 मंत्रणा

7.3 मंत्रणा–प्रक्रिया

7.3.1 निर्देशित मंत्रणा की प्रक्रिया

7.3.2 अनिर्देशित मंत्रणा की प्रक्रिया

7.4 मंत्रणा का महत्व

7.5 सार संक्षेप

7.6 अभ्यास प्रश्न

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

संदर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

- मंत्रणा की अवधारणा को समझ सकेगें।
- मंत्रणा का अर्थ निरूपित कर सकेगें।
- मंत्रणा का परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- मंत्रणा–प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेगें।
- मंत्रणा के महत्व को समझ सकेगें।

7.1 परिचय

वास्तव में मन्त्रणा एक शैक्षिक प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी को उसकी समस्या के विषय में शिक्षा देते हैं। मंत्रणा, दूसरों से इस उद्देश्य के साथ{ कि वह अपनी इच्छाओं, समस्याओं, जटिलताओं को स्पष्ट करके तथा उनका समाधान प्राप्त करके तथा संतोषप्रद ढंग से रहने की कला को विकसित करने में समर्थ होगा,} सम्बन्ध स्थापित करने की विधि है। तथा एक प्रशिक्षित मंत्रणादाता तथा सेवार्थी के बीच व्यावसायिक संबंध को दर्शाता है। यह सम्बन्ध प्रायः दो व्यक्तियों के बीच होता है। लेकिन कभी–कभी एक से भी अधिक सेवार्थी हो सकते हैं।

मंत्रणा का उद्देश्य सेवार्थी की सांवेगिक तथा अन्तर–वैयक्तिक समस्याओं के कारणों का पता लगाकर तथा समाधान के तरीकों को खोजकर उसको इस योग्य बनाना होता है कि वह सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए अपने जीवन–लक्ष्य को प्राप्त कर सके। कभी–कभी व्यक्ति अपनी समस्याओं के प्रति उदासीन होता है अथवा सही आंकलन करने में असमर्थ होता है अथवा अन्तर्दृष्टि की कमी होती है। इसलिए स्वयं ही दुःखों को भोगता है। मंत्रणादाता का कार्य इन्हीं समस्याओं को सुलझाना तथा आत्म– सुदृढ़ीकरण करना होता है।

7.2 मंत्रणा

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में मन्त्रणा कार्य का विकास सर्वप्रथम **बेरथा रेयनोल्ड्स** ने सन् 1932 ई0 में किया। सामाजिक संस्थाओं में कार्य करने का अनुभव जैसे–जैसे होता गया वैयक्तिक कार्यकर्ताओं में नये–नये विचार उत्पन्न होते गये। कुछ वैयक्तिक कार्यकर्ताओं ने बिना किसी सामाजिक सेवा के सेवार्थियों को सहायता देने में रूचि प्रकट की। उनका यह अनुभव था कि सेवाओं को उपलब्ध कराने से संबंधित कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य मनोवैज्ञानिक तथा मनोविकास चिकित्सक के समान ही थे। परन्तु समस्या यह थी कि मन्त्रणा शब्द का उपयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता था।

मंत्रणा का संबंध सेवार्थी की व्यक्तिगत समस्याओं से होता है। उदाहरण के लिए संकटकालीन स्थिति से निपटना, दूसरों से मतभेद तथा संघर्ष, अन्तर्दृष्टि विकास की समस्या तथा पारस्परिक संबंधों में मतभेद आदि ऐसी समस्यायें हैं जिनका समाधान मंत्रणा के माध्यम से किया जाता है।

7.2.1 मंत्रणा का अर्थ

मंत्रणा का कार्य उतना ही प्राचीन है जितना कि हमारा समाज, स्वयं जीवन के प्रत्येक स्तर पर तथा दिन–प्रतिदिन के जीवन में मंत्रणा की आवश्यकता होती

है। परिवार के स्तर पर बच्चों को माता–पिता मंत्रणा देते हैं, रोगिंयों को चिकित्सक मंत्रणा देते हैं, वकील अपने सेवार्थी को मंत्रणा देता है, अध्यापक विद्यार्थियों को मंत्रणा देतें है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समस्याओं की कोई सीमा नहीं है, जिनमें मंत्रणा की आवश्यकता न महसूस होती है।

आप्टेकर के अनुसार, '' मंत्रणा उस समस्या–समाधान की ओर लक्षित वैयक्तिक सहायता है जिसका एक व्यक्ति समाधान कर सकने में स्वयं को असमर्थ पाता है और जिसके कारण निपुण व्यक्ति की सहायता प्राप्त करता है। जिसका ज्ञान, अनुभव तथा सामान्य स्थिति ज्ञान उस समस्या के समाधान करने के प्रयत्न में, उपयोग में लाया जाता है।''

गार्डन हैमिल्टन के अनुसार, ''मंत्रणा, तर्क–वितर्क के माध्यम द्वारा एक व्यक्ति की क्षमताओं तथा इच्छाओं को तार्किक बनाने में सहायता करता है। मंत्रणा का मुख्य उद्‌देश्य सामाजिक समस्याओं तथा सामाजिक अनुकूलन के लिए चेतना अहं को प्रोत्साहित करता है।''

वास्तव में मंत्रणा एक मनोवैज्ञानिक पहलू है। मंत्रणा को बिना संस्था के माध्यम से भी सम्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए रिलीफ फन्ड्स, फॉस्टर होम या होम मेकर की आवश्यकता नहीं होती है। मंत्रणा के अन्तर्गत सेवार्थी को कोई ठोस सेवा न प्रदान करके केवल मार्गदर्शन करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु वैयक्तिक सेवा कार्य में जब कार्यकर्ता तथा सेवार्थी समस्या समाधान के लिए मिलते हैं तो ठोस सेवा की उपलब्धि का पुट अवश्य होता है।

मंत्रणा के अन्तर्गत– सूचना देना, व्यवस्था तथा इसके विषयों की व्याख्या करना, सम्मिलित होता है। मंत्रणा के द्वारा सेवार्थी की समस्या को स्पष्ट करके उसके अंह को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

मंत्रणा में कार्यकर्ता का ध्यान सेवा पर न होकर केवल समस्या पर ही रहता है। मंत्रणा का केन्द्र बिन्दु, विशिष्ट प्रकार की समस्या होती है। परन्तु यदि सामाजिक समस्या में दूसरा व्यक्ति–माता–पिता, बालक, पति/पत्नी या अन्य धनिष्ठ संबंधी निहित होता है तो मंत्रणा मनोचिकित्सा की दिशा में मुड़ जाती है।

7.2.2 मंत्रणा का परिचय

मंत्रणा कला तथा विज्ञान दोनों हैं। इसके लिए न केवल यह आवश्यक है कि विषय–वस्तु का ज्ञान हो बल्कि आत्म ज्ञान, आत्म अनुशासन एवं आत्मिक विकास की विधाओं का भी ज्ञान हो। अभिव्यक्ति तब होती है जब मंत्रणादाता सेवार्थी तथा अपने बीच संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए विभिन्न निपुणताओं का उपयोग करता है तथा सेवार्थी की स्वायत्ता बनाये रखने का समर्थन करता है।

मंत्रणा के लिए यह आवश्यक है कि मंत्रणादाता अच्छा सम्प्रेषक हो और यह सम्प्रेषण सावधानी पूर्वक अवलोकन पर निर्भर होता है। परामर्श एक विशेष प्रकार का वैयक्तिक सम्प्रेषण है जिसमें भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों का प्रगटन होता है। जिनका प्रगटन नहीं हो पाता हे, उनकी खोजकर प्रगटन की स्थिति तैयार की जाती है और यदि कोई स्पष्टीकरण की जरूरत होती है तो स्थिति का विश्लेषण करके उसे सेवार्थी को बताया भी जाता है।

अतः कहा जा सकता है कि –

1. मंत्रणा में दो व्यक्ति होते हैं – एक सहायता चाहता है तथा दूसरा व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित होने के कारण सहायता देने में समर्थ होता है।
2. यह आवश्यक है कि दोनों व्यक्ति के बीच सम्बन्धों का आधार पारस्परिक स्वीकृति हो तथा दोनों ही उसे आदर एवं सम्मान करें।
3. मंत्रणादाता को मित्रवत व्यवहार करना चाहिए तथा उसमें सहयोग देने की भावना प्रबल हो।
4. परामर्श प्राप्त करने वाले में मंत्रणादाता के प्रति विश्वास तथा भरोसा हो।
5. मंत्रणा के माध्यम से सेवार्थी में आत्मनिर्भरता तथा उत्तरदायित्व को पूरा करने की भावना का विकास किया जाता है।
6. मंत्रणा के माध्यम से सेवार्थी की सहायता उसकी क्षमताओं को ढूंढने तथा उन्हें पूरी तरह से उपयोग में लाने का प्रयास किया जाता है जिससे उसकी सभी क्षमतायें वास्तविक रूप में प्रकट होकर उसे समस्याओं के समाधान करने में तथा सुखमय जीवन बनाने में सफलता मिल सके।
7. यह केवल सलाह ही नहीं बल्कि इसके माध्यम से सेवार्थी स्वयं समस्या का मार्ग ढूंढता है, मंत्रणादाता केवल उपाय बताता है।
8. मंत्रणा के माध्यम से व्यक्ति में परिवर्तन लाया जाता है जिससे समस्या का समाधान सम्भव होता है।
9. इसका सम्बन्ध मनोवृत्तियों के बदलाव से भी होता है।
10. यद्यपि मंत्रणा प्रक्रिया में सूचना और वैकल्पिक ज्ञान का महत्व होता है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण ,सांवेगिक भावनायें होती है जिस पर प्रक्रिया निर्भर होती है।

मंत्रणा में कार्यकर्ता का ध्यान सेवा पर न होकर केवल समस्या पर ही रहता है। मंत्रणादाता किसी एक विशेष समस्या पर ही केन्द्रित रहता है। मंत्रणादाता किसी एक विशेष समस्या से संबंधित सहायता करने में निपुण होता है। जैसे – विवाह मंत्रणा, व्यावसायिक मंत्रणा, परिवार मंत्रणा, विद्यालय मंत्रणा आदि। उसका

ज्ञान, दक्षता, निपुणता, योग्यता तथा समय, विशिष्ट सहायता प्रदान करने में ही उपयोग में लायी जाती है।

7.3 मंत्रणा–प्रक्रिया (Counselling Process)

सामान्यतः मंत्रणा के दो प्रकार माने गये हैं –

1. निर्देशित मंत्रणा
2. अनिर्देशित मंत्रणा

निर्देशित मंत्रणा के अन्तर्गत मंत्रणादाता सम्पूर्ण प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभाता है। वह सेवार्थी को सलाह देता है तथा इसमें सेवार्थी की समस्या, मुख्य केन्द्र–बिन्दु होती है न कि सेवार्थी।

अनिर्देशित मंत्रणा में सेवार्थी की सहमति से समय व दिन निश्चित किया जाता है तथा मंत्रणादाता सेवार्थी से संबंधित कुछ प्रारम्भिक टिप्पणियों– जैसे विद्यालय से हट कर उसकी गतिविधियां, उसकी रूचि आदि के प्रयोग से मंत्रणा सत्र को प्रारम्भ कर सकता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया मंत्रणादाता व सेवार्थी के मध्य अच्छी अन्तर्क्रिया को प्रेरित करता है व सुगम बनाता है तथा ऐसा होने से सम्पूर्ण मंत्रणा–प्रक्रिया सरल हो जाती है।

7.3.1 निर्देशित मंत्रणा की प्रक्रिया

ई0जी0 विलियम्स के अनुसार निर्देशित मंत्रणा में निम्नलिखित चरण होते हैं–

1. **विश्लेषण** – विभिन्न यंत्रों व प्रविधियों के प्रयोग द्वारा विविध स्रोतों से तथ्य संकलन किया जाता है। सेवार्थी को पर्याप्त रूप से समझने के लिए ये तथ्य आवश्यक होते हैं।
2. **संश्लेषण** – तथ्यों का संक्षिप्तीकरण तथा भली–भांति संगठित होना चाहिए जिससे सेवार्थी के संबंध में सभी आवश्यक सूचनायें प्राप्त हो जाये, जैसे उसके गुण, समायोजन करने की क्षमता, उत्तरदायित्व की भावना, असमायोजन आदि।
3. **निदान** – सेवार्थी द्वारा बतायी गई समस्याओं की प्रकृति व कारण से संबंधित निष्कर्ष निकालना।
4. **समस्या संबंधी** – सेवार्थी की समस्याओं के भविष्य में विकसित होने की प्रति लक्षणों से सेवार्थी को अवगत कराना।

5. **उपचारात्मक मंत्रणा** – इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रक्रियाओं में से कुछ या सभी प्रक्रियायें आती है :
   1. सेवार्थी के साथ संबंध स्थापना
   2. सेवार्थी के सम्मुख एकत्र तथ्यों की व्याख्या व निवर्चन करना।
   3. सेवार्थी के साथ क्रियात्मक कार्यक्रम करने की सलाह देना या योजना बनाना
   4. क्रियात्मक योजना को लागू करने में सेवार्थी की सहायता करना
   5. मंत्रणा या निदान में अन्य मंत्रणादाताओं की आवश्यकता होने पर सेवार्थी को अन्य संस्था में संदर्भित करना।

संक्षेप में, इस स्तर पर मंत्रणादाता सेवार्थी के साथ अनुकूलन या पुनःअनुकूलन के लिए कार्य करता है।

6. **अनुगमन** – अनुगमन में मंत्रणादाता सेवार्थी की किसी नई समस्या या पुरानी समस्या के पुनः उत्पन्न न होने में सहायता करता है। वह सेवार्थी को प्रदत्त मंत्रणा की प्रभावशीलता को सुनिश्चित करता है।

7.3.2 अनिर्देशित मंत्रणा की प्रक्रिया

1. **संबंध–स्थापना** – यह चरण संपूर्ण मंत्रणा प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि मंत्रणा की सम्पूर्ण प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि मंत्रणादाता सेवार्थी के साथ अच्छा संबंध स्थापित कर पाया है या नहीं। मंत्रणादाता का यह दायित्व होता है कि वह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करे जिसमें सेवार्थी स्वयं को मानसिक बंधनों से स्वतंत्र अनुभव करे जिससे वह अपनी समस्याओं के संतोषजनक समाधान प्राप्त कर सके।
2. **समस्या का अन्वेषण** – मंत्रणादाता सेवार्थी के साथ की गई अन्तर्क्रिया के माध्यम से उसकी भावनाओं के संबंध में प्रतिक्रिया करता है। वह सेवार्थी की नकारात्मक भावनाओं को अपनी शांत स्वीकृति के साथ स्वीकार करता है। वह सेवार्थी को सहायता प्रदान करता है जिसमें सेवार्थी अपनी भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति कर सके। मंत्रणादाता सेवार्थी की वास्तविक समस्या की पहचान करने में भी सहायता करता है।
3. **समस्या के कारणों का अन्वेषण** – जब सेवार्थी अपनी वास्तविक समस्या की पहचान कर लेता है, तब मंत्रणादाता सेवार्थी का मार्गदर्शन इस प्राकर करता है जिससे सेवार्थी समस्या की गहनता समझ कर समस्या के कारणों को पहचान सके।

4. **वैकल्पिक समाधानों की खोज करना** – जब सेवार्थी को समस्या के सभी पहलुओं व कारणों की अच्छी समझ हो जाती है तब मंत्रणादाता सेवार्थी की पुनः समायोजन की क्रियाविधि के क्रियान्वयन में सहायता करता है। मंत्रणादाता पूर्व–निर्मित समाधानों को नहीं प्रदान करता बल्कि वह यह प्रयास करता है कि सेवार्थी स्वयं अपनी समस्या के समाधान खोजे व समायोजन की रणनीतियां विकसित करे। मंत्रणादाता यह सुनिश्चित करता है कि सेवार्थी स्वयं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त रणनीति का चयन करे।
5. **सत्र की समाप्ति** – जब मंत्रणादाता चर्चा के परिणामों से सन्तुष्ट हो जाता है तब अगला चरण सत्र की समाप्ति का होता है। इस चरण में मंत्रणादाता सेवार्थी से समस्या के कारणों तथा पुनः समायोजन की रणनीतियों का पुनः अवलोकन करने के लिए कहता है। मंत्रणादाता सेवार्थी को पुनः आश्वासन तथा प्रोत्साहन प्रदान करता है जिससे सेवार्थी पुनः समायोजन की रणनीति का प्रयोग प्रभावशाली प्रकार से कर सके। मंत्रणादाता व सेवार्थी साथ में आपसी सहमति से भविष्य में भेंट की योजना बनाते है जिससे रणनीति की प्रभावशीलता का मूल्यांकन भली–भांति किया जा सके।
6. **अनुगमन** – यह मंत्रणा प्रक्रिया का अंतिम चरण होता है।

7.4 मंत्रणा का महत्व (Importance of Counselling)

वैज्ञानिक उन्नति तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण का बढ़ता हुआ महत्व इस बात की ओर इंगित करता है कि व्यक्ति आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की समस्याओं से निरंतर उलझता रहेगा तथा पीड़ित होता रहेगा। इस पीड़ा का निराकरण कभी तो अपने प्रयत्नों से कर लेता है, लेकिन कभी–कभी ऐसे अवसर आते हैं जब उसकी समझ में नहीं आता है कि कौन सी दिशा का अनुसरण करे जिससे आंतरिक तथा बाह्य कष्ट को दूर करते हुए सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। उसमें असुरक्षा की भावना बढ़ जाती है, आत्मविश्वास कम हो जाता है तथा नैराश्य के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ऐसे अवसरों पर जब तक बाह्य सहायता नहीं प्राप्त होती है तब तक व्यक्ति व्याकुल, बेचैन तथा असमंजस की स्थिति में बना रहता है। ऐसे समय में मंत्रणा का महत्व व आवश्यकता प्रतीत होती है।

मंत्रणा का महत्व आपातकाल, दुर्घटना, जीवनक्षय, अपंगुता, जीवन को संकट में डालने वाली बीमारी तथा रोग, कार्यमुक्ति अथवा नौकरी से निकाल दिया जाना, वैवाहिक संघर्ष तथा इसी प्रकार की अन्य स्थितियां उत्पन्न होने पर समझ में आता है। इसके अतिरिक्त युवकों को उस समय मंत्रणा की आवश्यकता अधिक होती है

जब वे विद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् कार्य जगत में प्रवेश करते हैं। बाल अपराध तथा दुर्व्यसनी व्यक्तियों के लिए भी ये सेवायें बहुत महत्वपूर्ण व लाभकारी हैं। इसके अतिरिक्त वृद्धों तथा रोगियों को भी इन सेवाओं से लाभ होता है। उच्च शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, सामाजिक शिक्षा के लिए भी मंत्रणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मंत्रणादाता अपना योगदान मुख्य रूप से निम्न योगों में करता हैं –

1. शैक्षिक
2. वैयक्तिक तथा सामाजिक
3. जीवनवृत्ति विकास

7.5 सार संक्षेप

मंत्रणा सेवा किसी भी व्यक्ति को शैक्षिक प्रशिक्षण, व्यवसायिक चुनाव तथा अपनी जीवनवृत्ति के प्रबंधन में सहायता करता है।

मंत्रणादाता, विद्यालय में विद्यार्थियों की सहायता उनके अपने जीवन लक्ष्यों को निर्धारित करने तथा बाह्य जगत को समझने में सहायता करने में करता है। प्रारम्भिक अध्यापन दिशा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, आगे की शिक्षा तथा प्रशिक्षण, नौकरी की पंसद, व्यवसाय में परिवर्तन आदि में सहायता करता है। वह नौकरी के संबंध में सूचनायें देता है। कौन सा व्यवसाय उसके लिए उपयुक्त है आादि के विषय में बताता है।

7.6 अभ्यास प्रश्न

1. मंत्रणा की अवधारणा की विवेचना कीजिए ?
2. मंत्रणा का अर्थ स्पष्ट करें ?
3. मंत्रणा का परिचय एवं मंत्रणा–प्रक्रिया का वर्णन करें ?
4. निर्देशित मंत्रणा की प्रक्रिया एवं अनिर्देशित मंत्रणा की प्रक्रिया क्या है ?
5. मंत्रणा के महत्व को समझाऐं ?

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

Counseling	मंत्रणा	Techniques	तकनीक
Psychotherapy	मनश्चिकित्सा	Supportive	सहायक
Client	सेवार्थी	Reassurance	पुनर्आश्वासन
Diagnosis	निदान	Suggestion	संसूचन
Problem	समस्या	Persuation	प्रत्यायन

Guidance	पथप्रदर्शन	Re-educative	पुनर्शिक्षात्मक
Counselor	मंत्रणादाता	Directive	निर्देशात्मक
Circumstances	परिस्थितियां	Reconstructive	पुर्नरचनात्मक
Clarification	स्पष्टीकरण	Free Association	मुक्त साहचर्य
Subjective	विषयात्मक	Transference	संक्रमण
Objective	वस्तुगत	Dream Analysis	स्वप्न–विश्लेषण
Regime	व्यवस्था	Monitoring	अवबोधन
Therapy	चिकित्सा	Evaluation	मूल्यांकन

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्द संस्थान लखनऊ।
2. डा. कृपाल सिंह सूदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पब्लिकेशन्स, लखनऊ।
3. आर0 के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम : रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।

इकाई–8

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य : मंत्रणा एवं मनश्चिकित्सा

Social Case Work : Counselling and Psychotherapy

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 मंत्रणा का अर्थ तथा परिभाषा

8.3 मंत्रणा की विशिष्ट प्रकृति

8.4 मनश्चिकित्सा का अर्थ

8.5 मनश्चिकित्सा के लक्ष्य

8.6 मनश्चिकित्सा की प्रविधियां

8.7 सहायक मनश्चिकित्सा

8.8 पुर्नशिक्षात्मक मनश्चिकित्सा

8.9 पुर्नरचनात्मक मनश्चिकित्सा

8.10 मूल्यांकन का अर्थ

8.11 मूल्यांकन का कार्य क्षेत्र

8.12 मूल्यांकन की आवश्यकता

8.13 मूल्यांकन का उद्देश्य

8.14 मूल्यांकन के प्रकार

8.15 मूल्यांकन की तकनीक

8.16 अवबोधन (अनुश्रवण) तथा मूल्यांकन में अन्तर

8.17 सार संक्षेप

8.18 अभ्यास प्रश्न

8.19 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- मन्त्रणा की परिभाषा तथा मंत्रणा की विशिष्ट प्रकृति को जान सकेगें।
- मनश्चिकित्सा का अर्थ तथा परिभाषा को जान पायेगें।
- मनश्चिकित्सा के लक्ष्य के बारे में लिख सकेगें।

- मनश्चिकित्सा की प्रविधियों के बारे में जान सकेगें।
- सहायक मनश्चिकित्सा को समझ सकेगें।
- पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा बारे में लिख सकेगें।
- पुनर्रचनात्मक मनश्चिकित्सा के बारे में लिख सकेगें।
- मूल्यांकन का अर्थ तथा परिभाषा के बारे में जान सकेगें।
- मूल्यांकन के कार्य क्षेत्र के बारे में लिख सकेगें।
- मूल्यांकन की आवश्यकता के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- मूल्यांकन के उद्देश्यों के बारे में जान सकेगें।
- मूल्यांकन के प्रकार के बारे में लिख सकेगें।
- मूल्यांकन की तकनीक के बारे में लिख सकेगें।

8.1 परिचय

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में मन्त्रणा कार्य का विकास सर्वप्रथम वेरथा रेयनोल्ड्स ने सन् 1932 ई0 में किया। सामाजिक संस्थाओं में कार्य करने का अनुभव जैसे–जैसे– होता गया वैयक्तिक कार्यकर्ताओं में नये–नये विचार उत्पन्न होते गये। कुछ वैयक्तिक कार्यकर्ताओं ने बिना किसी सामाजिक सेवा के सेवार्थियों को सहायता देने में रुचि प्रकट की। उनका यह अनुभव था कि सेवाओं को उपलब्ध कराने से सम्बन्धित कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य मनोवैज्ञानिक तथा मनोविकास चिकित्सक के समान ही होते हैं। परन्तु समस्या यह थी कि मन्त्रणा शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो में किया जाता था। यह भी किया गया कि वैयक्तिक सेवा कार्य से सम्बन्धित बहुत ही सूक्ष्म ज्ञान प्रदान किया गया था तथा दोनों ही शब्द भ्रामक थे अतः इनका स्पष्ट किया जाना अति आवश्यक था। मन्त्रणा एक शैक्षिक प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी को उसकी समस्या के विषय में शिक्षा दी जाती हैं।

8.2 मंत्रणा की परिभाषा

ऐप्टेकर के अनुसार : ''मंत्रणा उस समस्या समाधान की ओर लक्षित वैयक्तिक सहायता है जिसका एक व्यक्ति समाधान कर सकने में स्वयं को असमर्थ पाता है, और जिसके कारण वह निपुण व्यक्ति की सहायता प्राप्त करता है जिसके ज्ञान, अनुभव तथा सामान्य स्थिति ज्ञान द्वारा उस समस्या का समाधान करने का प्रयत्न किया जाता है।''

राबर्ट एवं शेफर के अनुसार : ''मंत्रणा को विभिन्न निर्देशन सेवाओं में से एक समझा जाता है। यह प्रमुख रूप से एक व्यक्ति से आमने सामने के सम्बन्धों में प्रयुक्त होता है, मंत्रणादाता,मंत्रणा प्राप्तकर्ता की अपनी भावनाओं, अपनी स्थिति तथा परिस्थितियों से सांकेतिक किसी भी क्रिया को समझने तथा विश्लेषित करने में सहायता करने का प्रयत्न करता है।''

मंत्रणा शब्द को और अधिक स्पष्ट करने के लिए **शेफर** ने कहा कि ''हमारे समाज की उन बहुत सी क्रियाओं के लिए निर्देशन तथा मंत्रणा शब्द प्रयुक्त होता है जो कि व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं के पूर्ण विकास में सहायता देने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर सचिवों तथा योजनाओं के निर्माण में सहायता करने का प्रयत्न करती है।''

गार्डन हेमिल्टन के अनुसार : मंत्रणा– तर्क वितर्क के माध्यम द्वारा एक व्यक्ति की क्षमताओं तथा इच्छाओं को तार्किक बनाने में सहायता करता है। मंत्रणा का मुख्य उद्देश्य सामाजिक समस्याओं तथा सामाजिक अनुकूलन के लिए चेतन अहं को प्रोत्साहित करना है।

मंत्रणा, प्रत्यक्ष साक्षात्कार उपचार की प्रमुख सामान्य विधि है। मंत्रणा एक व्यक्ति की तार्किक आधार पर उसकी परिस्थिति, सम्बन्धों, विवादी विषय को पृथक् करने, उसकी समस्या तथा उसकी वास्तविकता के बीच संघर्ष को स्पष्ट करने, क्रिया की विभिन्न मार्गो की व्यावहारिकता पर तर्क वितर्क करने और इच्छाओं के चुनने के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में सेवार्थी को यथार्थता में स्वतन्त्र कर देना चाहता है।

एक पूर्ण मनोवैज्ञानिक समझ, एक प्रक्रिया– जो कि स्वाभाविक रूप से चिकित्सीय, संरचनात्मक स्वरूपों में उपयोग करने की निपुणता और सबसे प्रमुख महत्व की प्रशंसा करते हुए इसमें वाह्यकृत समस्या पर प्रकाश डालने की क्षमता मंत्रणा के लिए आवश्यक होती है। मंत्रणा की प्रमुख प्रविधि, स्पष्टीकरण है। स्पष्टीकरण का तात्पर्य रोगी को निश्चित मनोवृत्तियों, भावनाओं के प्रति जाग्रत करना, या इसके विषयात्मक प्रत्यय के विरूद्ध वास्तविकता को स्पष्ट करना है जिससे वह स्वयं तथा पर्यावरण को अधिक वस्तुगत दृष्टि से देखता है और जिससे नियंत्रण की मात्रा बढ़ती है। मंत्रणा के अन्तर्गत सूचना देना, व्यवस्था की तथा इसके विषयों की व्याख्या करना सम्मिलित होता है। मंत्रणा के द्वारा सेवार्थी की समस्या को स्पष्ट करके उसके अहं को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

वास्तव में मंत्रणा मनोवैज्ञानिक पहलू है। मंत्रणा को बिना संस्था के माध्यम से भी सम्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए रिलीफ फन्डस, फॉस्टर होम या

होममेकर की आवश्यकता नही होती है। मंत्रणा के अन्तर्गत सेवार्थी को कोई ठोस सेवा न प्रदान करके केवल मार्ग दर्शन करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु वैयक्तिक सेवा कार्य में जब कार्यकर्ता तथा सेवार्थी समस्या समाधान के लिए मिलते हैं तो ठोस सेवा की उपलब्धि का पुट अवश्य होता है। अतः मंत्रणा को बिना ठोस सेवा के वैयक्तिक सेवा कार्य समझा जा सकता है।

मंत्रणा में कार्यकर्ता का ध्यान सेवा पर न होकर केवल समस्या पर ही रहता है। मंत्रणादाता की वैयक्तिक कार्यकर्ता की भांति संस्था में नियुक्ति आवश्यक नही होती है। परन्तु सामाजिक संस्था अनुभव, यदि उसके पास है तो उसको समस्या का ज्ञान तथा लोगों की सहायता प्राप्त करने की कठिनाइयों का आभास हो जाता है। मंत्रणादाता किसी एक विशेष समस्या से सम्बन्धित सहायता करने में निपुण होता है। जैसे – विवाह मंत्रणा, व्यवसाय मंत्रणा, परिवार मंत्रणा, विद्यालय मंत्रणा आदि। उसका ज्ञान, दक्षता, निपुणता, योग्यता तथा समझ, विशिष्ट सहायता प्रदान करने में ही उपयोग में लायी जाती है। मंत्रणादाता केवल उसी समस्या से सम्बन्ध रखता है जिसमें वह दक्ष होता है। इस प्रकार मंत्रणा का केन्द्र बिन्दु विशिष्ट प्रकार की समस्या होती है। परन्तु यदि सामाजिक समस्या में दूसरा व्यक्ति–माता–पिता, बालक, पति/पत्नी या अन्य घनिष्ठ सम्बन्धी निहित होता है तो मंत्रणा मनोचिकित्सा की दिशा में मुड़ जाती है।

8.3 मंत्रणा की विशिष्ट प्रकृति

1. मंत्रणा विशिष्ट होती है। जिस व्यक्ति को बाल निर्देशन की समस्या होती है वह उसी मंत्रणादाता के पास जाता है अन्यत्र के पास नही जाता। इस विशेषीकरण के कारण ही निपुणताओं, अभियोजन तथा उद्देश्य में अन्तर होता है।
2. विशेषीकरण होने पर भी इन विभिन्न शाखाओं को पूर्णरूप से एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए वैवाहित मंत्रणादाता को बाल निर्देशन मंत्रणा की आवश्यकता हो सकती है क्योंकि यह सम्भव है कि सेवार्थी वैवाहिक समस्या की व्याख्या के साथ–साथ बच्चों को भी समस्या का उल्लेख करें।
3. सेवार्थी की समस्या का केन्द्र बिन्दु एक ही होता है तथा एक क्षेत्र में ली गयी सहायता का महत्व दूसरे से भिन्न होता है।
4. समस्या का केन्द्र चाहे वैवाहिक या बाल सम्बन्धी तथ्य कुछ भी क्यों न हो, यदि वह इस दिशा में कोई प्रयास करना चाहता है तो उसके स्वयं के विषय

में समझ प्राप्त करनी चाहिए। यह प्रयास सेवार्थी को मनोचिकित्सा की ओर अग्रसारित करता है। प्रायः यह घटित होता है कि एक व्यक्ति जो पहले मंत्रणा के आधार पर सहायता प्राप्त करता है बाद में मनोचिकित्सा को प्राप्त करने का निश्चय करता है।

5. कार्य की परिभाषा का होना आवश्यक होता है। मंत्रणादाता सेवार्थी की समस्या को समझने तथा सेवार्थी को स्वयं अपनी बात स्पष्ट करने का मौका देता है। वह सेवार्थी को स्वयं निश्चित करने देता है कि किस प्रकार की मंत्रणा की उसे आवश्यकता है क्योंकि इस प्रकार का निर्णय कभी–कभी चिकित्सकीय पद्धति का आरम्भिक बिन्दु होता है।
6. मंत्रणा में प्रविधि की उत्पत्ति वैयक्तिक सेवा कार्य तथा चिकित्सा से हुई है। यह सहायता का एक ऐसा रूम है जिसको न तो नंदानात्मक और न ही कार्यात्मक सम्प्रदाय पूर्णरूपेण अपना कहते हैं। दोनों सम्प्रदत्य मंत्रणा के लिए मनोचिकित्सा के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

8.4 मनश्चिकित्सा

सरल शब्दों में चिकित्सा का अर्थ है– रोगों का उपचार करना तथा मनश्चिकित्सा का अर्थ है–मानसिक रोगों का उपचार करना। आज मनश्चिकित्सा को एक स्वतन्त्र रूप प्राप्त हो चुका है। जहाँ इसकी प्राचीन प्रविधियां अवैधानिक थीं वहां इसकी आधुनिक पद्धतियां वैज्ञानिक तथा अन्धविश्वास–विहीन है। जैसे–जैसे असामान्य मनोविज्ञान का विकास हुआ, वैसे–वैसे ही मनोचिकित्सा प्रविधियों में भी क्रमशः परिवर्तन हुआ तथा मानसिक रोगों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा। प्राचीन काल में जहां इसका क्षेत्र सीमित था वहीं आधुनिक काल में काफी विस्तृत हो गया। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने मनश्चिकित्सा की परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी है। **किसकर** के मतानुसार, ‘‘मनश्चिकित्सा में मनोवैज्ञानिक विधियों से संवेगात्मक व व्यवहार विक्षोभों का उपचार किया जाता है। ये विधियाँ विभिन्न प्रकार की होती है जिनमें से कुछ व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है तो कुछ समूहों से।’’ किसकर की यह परिभाषा मुख्यतः निम्न विशेष बातों पर जोर देती हैं–

1. इसमें संवेगात्मक एवं व्यवहार सम्बन्धी विक्षोभों से ग्रस्त व्यक्तियों का उपचार किया जाता है।
2. ये विधियां मुख्यतः मनोवैज्ञानिक होती है।
3. मनश्चिकित्सा विधियां मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं – व्यक्तिगत व सामूहिक।

फिशर के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा, विविध प्रकार के मानवीय रोगी एवं विक्षोभों, विशेषतया जो मनोजात कारणों से होते हैं, का निराकरण करने के लिए मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धान्तों का योजनावद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से उपयोग है।''

जेम्स डी. पेज के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा का अर्थ है– मानसिक विकृतियों, विशेषतया मनः स्नायुविकृतियों का मनोवैज्ञानिक प्रविधियों के माध्यम से उपचार करना।''

लैंडिस व बॉल्क के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा का अर्थ है– रोग का निवारण या कम करने के इरादे के साथ मानव मन पर मानसिक क्रिया उपायों की क्रिया .... विस्तृत अर्थ में मनश्चिकित्सा से चिकित्सक या मनोवैज्ञानिक का ही पूर्ण सम्बन्ध नहीं है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य का सम्बन्ध है, जो दूसरे व्यक्ति के आक्रान्त मन, कष्टों को दूर करने की कोशिश करता है।''

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनश्चिकित्सा के माध्यम से मानसिक विकृतियों से ग्रस्त व्यक्तियों का उपचार किया जाता है तथा जो उपचार पद्धतियां उपयोग में लाई जाती है, वे मुख्यतः मनोवैज्ञानिक होती है।

संक्षेप में व्यक्तित्व विक्षोभों के उपचार हेतु मनश्चिकित्सा में मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। मनश्चिकित्सा पद एक सामान्य शब्द है जिसमें अनेक प्रकार की प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। परन्तु समस्त प्रकार की मनश्चिकित्साओं में तीन बातें अवश्य विद्यमान रहती हैं– 1. रोगी व चिकित्सक, 2. चिकित्सीय पर्यावरण, तथा 3. एक अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध। इस प्रकार की चिकित्सा व्यक्तिगत भी हो सकती है तथा सामूहिक भी।

8.5 मनश्चिकित्सा के लक्ष्य

मनोपचार पद्धति का मूल उद्देश्य रोगी को राहत पहुंचाना है। मनश्चिकित्सा का प्रमुख लक्ष्य सामान्यतः रोगी व उसके पर्यावरण के मध्य सामंजस्य स्थापित करना है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनोवैज्ञानिक प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मनोचिकित्सा या मनोवैज्ञानिक केवल मनोवैज्ञानिक प्रविधियों पर ही निर्भर होते है बल्कि ये औषधियों व अन्य सहायक पद्धतियों का भी उपयोग करते है। इस प्रकार मनश्चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को सामान्य व्यक्ति बनाना है, उसकी विभिन्न समस्याओं का उचित समाधान कराना है तथा उसे इस योग्य बनाना है कि वह अपने पर्यावरण के साथ उचित समायोजन के लिए समर्थ बन सके। **कोवली** तथा अन्य के अनुसार, मनश्चिकित्सा के लक्ष्यों को

दो श्रेणियों में रखा जा सकता है– (1) **तात्कालिक लक्ष्य**, जिसका प्रमुख उद्देश्य रोगी को तात्कालिक सहायता प्रदान करना है तथा उसे गम्भीर रोग से बचाना है, (2) **सुदूर लक्ष्य** जिसका उद्देश्य रोगी के निवारण हेतु अन्तर्दृष्टि को बढ़ाना है, जिससे कि व्यक्ति की क्षमताओं में विकास हो सके।

8.6 मनश्चिकित्सा की प्रविधियां

प्राचीन समय से ही मनश्चिकित्सा की आवश्यकता समझी गई, जिसके फलस्वरूप इसकी प्रविधियों का भी आविष्कार होता गया। पहले इस प्रकार की विधियां दार्शनिक थी, आज वैज्ञानिक हो गई है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आज प्राचीन विधियों का मनश्चिकित्सा में कोई महत्व नहीं है। वास्तविक तथ्य तो यह है कि आज भी हम अनेक प्राचीन विधियों का उपयोग करते है। यहां सर्वप्रथम हम कुछ मुख्य वर्गीकरणों पर दृष्टिपात करेगें, बाद में प्राचीन एवं नवीन विधियों का वर्णन करेगें– **किसकर के अनुसार** –

1. सहायक मनश्चिकित्सा
2. पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा
3. पुनर्रचनात्मक मनश्चिकित्सा

8.7 सहायक मनश्चिकित्सा

इस प्रकार की चिकित्सा में चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि कम से कम समय में रोगी को अधिक से अधिक आराम पहुंचे। अन्य शब्दों में, इसका मुख्य उद्देश्य रोग के लक्षणों को शीघ्र से शीघ्र दूर करना है। इस प्रकार की चिकित्सा में रोगी की अभिवृत्तियों में परिवर्तन या अन्तर्निहित कारणों को दूर करने के लिये व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के सम्बन्ध में कोई विशेष प्रयास नही किया जाता है। विधि का उपयोग अनेक मानोसोपचारशास्त्री, नैदानिक मनोविज्ञानी व चिकित्सक करते है।

मुख्य सहायक मनश्चिकित्सा प्रविधियाँ निम्न है –

1. पुनर्आश्वासन

यह सहायक मनश्चिकित्सा की मुख्य प्रविधि है। इस प्रकार की प्रवधि में चिकित्सक अनेक माध्यमों से रोगी को ठीक हो जाने का वचन या आश्वासन देता है तथा उन्हें संवेगात्मक सहायता भी देता है।वह रोगी को बताता है कि उनके रोग सम्बन्धी लक्षणों को दूर किया जा सकता है तथा उससे भी अधिक गम्भीर रोग

पूर्णतः ठीक हो चुके है। चिकित्सक अपने अनुभव व योग्यता के आधार पर कभी प्रत्यक्ष पुनर्आश्वासन तथा कभी अप्रत्यक्ष पुनर्आश्वासन रोगी को देता है।

2. संसूचन

संसूचन या संकेत के उपयोग से भी मनश्चिकित्सा में सहायता मिलती है। यह बहुत ही प्राचीन एवं सरल प्रविधि है जिसमें रोगी को साधारण प्रकार से कुछ सुझाव या संसूचन देता है जिसे रोगी स्वीकार करके अनुकूल प्रतिक्रिया करता है। इस प्रविधि का क्षेत्र काफी व्यापक है, क्योंकि अन्य अनेक चिकित्सालय प्रविधियों में इसका उपयोग किया जाता है। रोगी के सम्मुख चिकित्सक अपने विचारों को व्यक्त कर देता है तथा उसे मानने या न मानने का कार्य उस पर छोड़ देता है। क्योंकि रोगी पर चिकित्सक किसी प्रकार का दबाव नही डालता। अतः वह अवचेतन रूप में चिकित्सक के संसूचनों को स्वीकार कर लेता है। मैक्डूगल के अनुसार, ''संसूचन यह प्रविधि है जिसमें प्रत्यक्ष आदेशों की ओर न जाते हुए व्यक्ति के विश्वासों या क्रियाओं को प्रभावित किया जाता है।'' संसूचन कहां तक रोगी पर प्रभाव डालता है यह चिकित्सक के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं पर्यावरण पर निर्भर होता है। परन्तु इतना होते हुए भी इसे एक वैज्ञानिक प्रविधि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संसूचन की निम्नलिखित त्रुटियां है –

1. **सीमित उपयोग** – क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति भी संसूचनों को स्वीकार नही करता है।
2. **अस्थायी प्रभाव** – अल्प समय के लिए रोगी का उपचार सम्भव है क्योंकि इसके द्वारा केवल लक्षण कम या दूर होते है, न कि कारण।
3. **सभी प्रकार के मानसिक रोगियों के लिए उपयुक्त नहीं।**

किसकर के अनुसार , प्रत्यायन भी एक महत्वपूर्ण मनश्चिकित्सा प्रविधि है जिसमें चिकित्सक रोगी को जीवन के सम्बन्ध में उचित मानसिक अभिवृत्ति अपनाने पर जोर देता है। अन्य शब्दों में, प्रत्यायन में रोगी को अप्रत्यक्ष रूप से संसूचन दिया जाता है। रोगी वह समझकर कि चिकित्सक उसकी भलाई के लिए संसूचन दे रहा है को स्वीकार करता है। इस प्रविधि में दो मुख्य बाते निहित हैं – (1) इनके द्वारा रोगी की बुद्धि या प्रज्ञा को आकर्षित किया जाता है, तथा (2) अप्रत्यक्ष रूप से कौशलपूर्वक संसूचन दिया जा सकता है।

8.8 पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा

मनश्चिकित्सा का मुख्य प्रकार पुनर्शिक्षात्मक चिकित्सा प्रविधियां है। इसकी मुख्य प्रविधियां निम्नलिखित है –

1. अनिदेशात्मक या रोगी–केन्द्रित चिकित्सा

इस प्रकार की पद्धति का प्रतिपादन **कार्ल रॉजर्स** ने 1942 में किया था। इसके अन्तर्गत उपचारक रोगी की बातों को बड़े ध्यानपूर्वक सुनता है परन्तु वह किसी प्रकार का परामर्श या सहायता नही देता बल्कि रोगी में इस प्रकार की अन्तदृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करता है कि वह स्वयं अपनी समस्याओं को समझे तथा रोग के सम्बन्ध में निर्णय ले। इस प्रकार की चिकित्सा के अन्तर्गत रोगी को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह इस चिकित्सा के द्वारा बिना किसी भय के भावनाओं को व्यक्त करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। चिकित्सक के सम्मुख सप्ताह में एक या दो बार रोगी एक घण्टे के लिए आता है। उसे पहले से बता दिया जाता है कि एक निश्चित अवधि तक ही साक्षात्कार चलेगा अगर वह देर से आता है तो शेष समय तक ही साक्षात्कार चलेगा। चिकित्सक बहुत कम बोलता है तथा रोगी अपनी समस्या के सम्बन्ध में अन्तदृष्टि विकसित करता है तथा उसके समाधान के सम्बन्ध में सोचता है। उपबोधक जब रोगी के सम्बन्ध में यह जान लेता है कि उसमें अन्तर्दृष्टि क्षमता आ गई है तो अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देता है, जिसे रोगी स्वीकार कर लेता है।

2. निदेशात्मक मनश्चिकित्सा

इस प्रकार की मनश्चिकित्सा प्रविधि को विकसित करने का श्रेय **एफ.सी0 थॉर्न** को है। इस प्रकार की प्रविधि में चिकित्सक निष्क्रिय न होकर सक्रिय रूप से भाग लेता है। इस प्रकार इसमें चिकित्सक ही मुख्य केन्द्र बिन्दु होता है। रोगी की समस्त समस्याओं की जानकारी स्वयं चिकित्सक करता है तथा रोग के लिए योजना बनाता है। इनमें रोगी चिकित्सक की प्रतिक्रियाओं पर निर्भर होता है। वह पुनः शिक्षण विहर्षण संसूचन आदि विधियों का भी उपयोग करता है।

8.9 पुनर्रचनात्मक मनश्चिकित्सा

इस प्रकार की मनश्चिकित्सा में रोगी को पुनः सामान्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इस मनश्चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य रोग की आधारभूत व्यक्तित्व संरचना को पुनर्गठित करना व गत्यात्मक बनाना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहायक एवं पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा विधियों का भी प्रयोग किया जाता है, परन्तु इन विधियों का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का अचेतन स्तर पर अध्ययन करना तथा उसमें परिवर्तन करना होता है। पुनर्रचनात्मक चिकित्सा के मुख्य प्रकार निम्न है–

1. फ्रायड का मनोविश्लेषण– मनोविश्लेषण भी मनश्चिकित्सा की एक प्रविधि है। फ्रायड का मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जोसफ ब्रुअर के सम्पर्क में 1886 में फ्राउड आए तथा तभी से उन्होनें मनश्चिकित्सा को एक प्रविधि के रूप में स्वीकार किया। ब्रूअर एक चिकित्सक था जो सम्मोहन के माध्यम से मनोसामाजिक रोगियों की चिकित्सा करता था। फ्रायड ने देखा कि सम्मोहन की अवस्था में रोगी स्वतन्त्र रूप से बातचीत करते थे तथा अधिक संवेगों को प्रदर्शित करते थे। संचेत होने पर सुख व प्रसन्नचित दिखाई पड़ते थे। फ्रायड ने इस विधि से प्रभावित होकर इसका उपयोग कुछ रोगियों पर किया।

क) मुक्त साहचर्य – मनोविश्लेषण विधि से चिकित्सा करने के लिए सर्वप्रथम मनोविश्लेषक रोगी से साक्षात्कार करता है तथा उसके वाह्य लक्षणों को देखता है। इस प्रारम्भिक स्तर पर चिकित्सक रोगी के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है जिससे रोगी पर विश्वास व भरोसा करे। जब रोगी समझ लेता है कि चिकित्सक उसका शुभचिन्तक है तो वह अपनी भावनाओं आदि को प्रकट करने में हिचकिचाता नहीं। परन्तु मुक्त साहचर्य स्तर पर मुख्यतः निम्न दो कठिनाइयाँ आती हैं –

1. **प्रतिरोध** – मुक्त साहचर्य स्तर के आरम्भ में प्रतिरोध के कारण रोगी अपनी इच्छाओं, अनुभूतियों, भावों आदि को प्रकट नहीं करता है। स्मरण रहे कि अचेतन में वे इच्छाएं निहित होती है जो उनके निजी जीवन से सम्बन्धित होती है जिन्हें वह प्रकट नहीं करना चाहता, क्योंकि रोगी को सुरक्षात्मक अहम् अप्रिय व अमान्य स्मृतियों को बाहर आने से रोकता है। प्रतिरोध का पता उस समय चलता है जब रोगी बोलते–बोलते रुक जाता है तथा कभी–कभी रोगी काफी समय तक चुपचाप रहता है। यहाँ मनोचिकित्सक को बड़ी कुशलता के साथ रोगी के इस प्रतिरोध को दूर करना चाहिए। परन्तु प्रतिरोध को तोड़ना बड़ा ही कठिन कार्य है अगर मनोविश्लेषक अनुभवी हो तो वह थोड़े समय व परिश्रम में प्रतिरोध को समाप्त कर देता है।
2. **संक्रमण** – मनोविश्लेषण पद्धति में प्रतिरोध के साथ ही साथ दूसरी कठिनाई संक्रमण की होती है। संक्रमण का अर्थ है– रोगी के संवेगों आदि का चिकित्सक पर चला जाना अर्थात् रोगी संवेगों का स्वाभाविक पात्र चिकित्सक को मान लेता है। जैसे–जैसे विश्लेषण का विकास होता है, वैसे–वैसे ही संक्रमण का भी विकास होने लगता है तथा रोगी के लिए मनोविश्लेषण ही उसके प्रेम, घृणा, क्रोध आदि भावों का पात्र बन जाता है। **संक्रमण तीन प्रकार का होता है –**

1. **अनुकूल संक्रमण** – यह वह संक्रमण होता है जिससे रोगी चिकित्सक के प्रति प्रेम व स्नेह की भावनाएं विकसित करता है। अनुकूल संक्रमण की जानकारी उस समय होती है जब रोगी चिकित्सक के साथ स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप करता है, उसके प्रति विश्वास प्रकट करता है तथा शीघ्र ही उससे मुलाकात करने के लिए पहुंच जाता है, चिकित्सक के समीप रहने व बैठने का प्रयास करता है तथा अपनी वस्तुओं को भूल जाता है जिससे कि उन्हें दोबारा लेने के लिए वापस आ सके।
2. **प्रतिकूल संक्रमण** – रोगी प्रतिकूल संक्रमण के अन्तर्गत चिकित्सक के प्रति विरोधी या विपरीत भावनाओं को प्रकट करता है। इस प्रकार के संक्रमण का विकास तब होता है जबकि चिकित्सक, रोगी के कष्टदायक क्षेत्रों के बारे में जांच–पड़ताल करता है। इससे रोगी चिढ़ जाता है तथा इस प्रकार के संक्रमण का जन्म हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप रोगी की मनोवृत्ति तथा व्यवहार में स्पष्ट परिवर्तन आ जाता है। रोगी चिकित्सक से मुलाकात करने के लिए देर से आता है तथा प्रतिकूल व्यवहार प्रकट करता है।
3. **प्रति–संक्रमण** – इस प्रकार का संक्रमण तब होता है जब रोगी के साथ चिकित्सक की संवेगात्मक आसक्ति जो जाती है। जो चिकित्सक कुशल होता है, वह प्रति–संक्रमण को पहचान लेता है तथा उसको नियन्त्रण में करने का प्रयत्न करता है।

ख) स्वप्न–विश्लेषण – फ्रायड ने मनोविश्लेषण के अन्तर्गत रोगी के स्वप्नों के विश्लेषण पर अत्यधिक जोर दिया है क्योंकि इसके विश्लेषण से अचेतन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। फ्रायड के मतानुसार स्वप्न का सम्बन्ध अचेतन की दमित इच्छाएं होती है क्योंकि दमित इच्छाओं का अचेतन में अस्तित्व समाप्त नही होता बल्कि वे अवसर ढूंढती रहती है तथा मौका आने पर तुष्टि चाहती है तथा स्वप्न उसकी तुष्टि का साधन होता है। इस प्रकार स्वप्न में दमित इच्छाओं की पूर्ति होती है, इसी कारण फ्रायड के सिद्धान्त को **'इच्छा–पूर्ति का सिद्धान्त'** भी कहा जाता है।

1. स्वप्न प्रतिबाधक

फ्रायड के अनुसार, जाग्रतावस्था में चेतन, अवचेतन के बीच आदर्श भावना एक प्रतिबन्धक के रूप में कार्य करती है, जिसके फलस्वरूप अनैतिक, अनुचित एवं असामाजिक विचार व इच्छाएं चेतना में नही आ पाती तथा उनका दमन हो जाता है। दमन हो जाने पर ये इच्छाएं अचेतन में चली जाती है जहां वे निष्क्रिय होकर नही बैठती बल्कि समय–समय पर चेतना में आने का प्रयास करती है। निद्रावस्था

में प्रतिबन्धन का भय कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप ये इच्छाएं स्वप्न के रूप में अभिव्यक्त होती है। ये दमित इच्छाएं असली रूप में प्रकट न होकर छद्म रूप में प्रकट होती है। प्लेटो ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है – **''जिन कार्यो को पापी अपने वास्तविक जीवन में करते है, उन्हीं कार्यो का स्वप्न देखकर लोग सन्तोष करते है।''**

2. स्वप्न विषय

फ्रायड के मतानुसार स्वप्न–विचरण के पीछे मुख्यतः दो प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियां क्रियाशील रहती हैं –

1. यह मानसिक प्रवृत्ति, जिनके माध्यम से अचेतन में दमित इच्छाओं की स्वप्न में पूर्ति होती है।
2. दूसरी प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति दमित अतृप्त इच्छा को असली रूप में प्रकट होने से प्रतिरोध करती है।

8.10 मूल्यांकन

समाज कार्य में मूल्यांकन का विशेष महत्व है। यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एवं सभी विज्ञानों में इसका प्रयोग किया जाता है। परन्तु वैयक्तिक सेवा कार्य में निदान की आवश्यकता के साथ–साथ इसकी भी आवश्यकता का अनुभव होता है क्योंकि वैयक्तिक सेवा कार्य का सम्बन्ध समस्या समाधान करने, उसका कल्याण तथा विकास करना है। सामाजिक कार्यकर्ता का यह कर्तव्य होता है कि वह अपने, सेवार्थी की तथा संस्था की क्षमताओं का मूल्यांकन समस्या के संदर्भ में करे जिससे उपचार प्रक्रिया का निर्धारण वास्तविक तथ्यों पर आधारित हो सके।

मूल्यांकन, सेवार्थी की समस्या को समझने तथा चिकित्सात्मक सुझाव प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक होते हैं। सह प्रक्रिया अन्तर्ग्रहण के समय से ही प्रारम्भ हो जाती है तथा सम्बन्ध के अन्तिम क्षण तक चलती रहती है। अन्तर्ग्रहण के समय सेवार्थी शिकायत के आधार पर अनिश्चित निर्णय लेते है जिसे निदान का प्रारंभिक रूप कह सकते है। परन्तु इसके साथ ही साथ उस व्यक्ति की क्षमताओं, अक्षमताओं, सहायता के उपयोग की इच्छा अनिच्छा, सांस्कृतिक कारक आदि के सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाते हुए निर्णय लेते है। और इन सामाजिक निर्णयों को मूल्यांकन माना जाता है।

हैमिल्टन के अनुसार

जब व्यवस्था, समस्या को पारिभाषित करने की ओर निर्देशित न होकर, व्यक्ति किस प्रकार अपनी समस्या का सामना कर रहा है की ओर निर्देशित होती है, तब जो परिणाम प्राप्त होता है वह निदान न होकर मूल्यांकन होता है।

मूल्यांकन एक निर्णय करने वाली प्रक्रिया है जो निश्चित करती है कि व्यक्ति कार्य कर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या–क्या शक्तियां हैं तथा क्या–क्या कमजोरियां है, कौन से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन से कार्य समस्या को जटिल बनाते है। इस प्रकार मूल्यांकन उद्देश्य का दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है। यह कार्यकर्ता को निर्णय पर पहुंचने के लिए नकारात्मक कारकों के विरुद्ध सकारात्मक कारकों का संतुलन बनाये रखता है।

मूल्यांकन द्वारा वैयक्तिक कार्यकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि व्यक्ति (सेवार्थी) ने उद्देश्य प्राप्त करने का या समस्या का समाधान करने का कितना तथा क्या प्रयत्न किया है वह समस्या को किस प्रकार अनुभव कर रहा है, किस सीमा तक वह सहायता लेने का इच्छुक है तथा संस्था किस सीमा तक सहायता देने की योग्यता एवं क्षमता रखती है। कार्यकर्ता चिकित्सा पद्वति के प्रभाव का भी मूल्यांकन करता है जिससे चिकित्सा पद्वति के समुचित नियोजन, नियंत्रण तथा परिमार्जन की सुविधा होती है। मूल्यांकन के द्वारा कार्यकर्ता को अपने विषय में भी ज्ञान हो जाता है अतः उसके अपने व्यवहार तथा कार्य में सुधार करने का अवसर मिलता है।

8.11 मूल्यांकन का कार्य क्षेत्र

वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्न स्थितियों का मूल्यांकन करता है :

1. समस्या का मूल्यांकन
2. सेवार्थी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन
3. सेवार्थी के सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन

1. **समस्या का मूल्यांकन** : समस्या का मूल्यांकन करते समय वैयक्तिक कार्यकर्ता देखता है कि सेवार्थी वर्तमान समय में किस समस्या से ग्रसित है, कब से समस्या का प्रारम्भ हुआ है, समस्या के अन्तर्गत कौन–कौन से कारक हैं जिनके कारण सेवार्थी चिन्तित है, सेवार्थी ने समस्या सुलझाने के क्या प्रयत्न किये है, उसे अपने प्रयत्नों में कितनी सफलता प्राप्त हुई है। उसकी समस्या के समाधान के लिए किन–किन तरीकों एवं साधनों की आवश्यकता है, सेवार्थी का इस क्षेत्र में कितना ज्ञान है, वह स्वयं अपनी

कितनी जिम्मेदारी ग्रहण करना चाहता है, समस्या का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर मूल्यांकन द्वारा प्राप्त करता है।

2. **सेवार्थी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन** : कार्यकर्ता सेवार्थी की अहं शक्ति का मूल्यांकन समस्या समाधान हेतु करता है। वह देखता है कि उसका व्यवहार कैसा है, उसके अनुभव कैसे है, उसकी निर्णय शक्ति किस प्रकार कार्य करती है, सेवार्थी वाहय तथा आन्तरिक दबावों को किस प्रकार महसूस करता है। कार्यकर्ता तथा संस्था से सेवार्थी की क्या आशाएं है तथा इन आशाओं की पूर्ति कहां तक की जा सकती है। सेवार्थी की समायोजन की क्षमता का भी कार्यकर्ता अध्ययन करता है। वह मनोरक्षात्मक तरीकों के उपयोग को भी देखता है। वह सेवार्थी की सम्प्रेरणाओं तथा विरोधों का भी मूल्यांकन करता है।
3. **सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन** : सामाजिक पर्यावरण के मूल्यांकन में कार्यकर्ता सेवार्थी की परिस्थितियों, घटनाओं तथा सम्बन्धित व्यक्तियों का अध्ययन करता है। सामाजिक पर्यावरण के प्रभाव को समस्या के सन्दर्भ में देखा जाता है। सेवार्थी के सामाजिक पर्यावरण के प्रति विचारों, भावनाओं, धारणाओं का भी मूल्यांकन होता है।

8.12 मूल्यांकन की आवश्यकता

सुसंगठित तथा योजनाबद्ध मूल्यांकन से निम्नलिखित लाभ होते हैं :

1. मूल्यांकन से समस्या के महत्त्व का ज्ञान होता है।
2. सेवार्थी की मनोशक्ति का पता चलता है।
3. अवरोधों एवं बाधाओं का ज्ञान होता है।
4. सेवार्थी की इच्छा का पता चलता है।
5. सेवा की उपयोगिता का आभास होता है।
6. सेवार्थी की क्षमताओं, शक्तियों, निपुणताओं, सम्बन्धों, साथ ही साथ कमियों, अक्षमताओं, दोषों तथा संघर्षो को जाना जाता है।
7. सेवार्थी को कहां तक सहायता की आवश्यकता है को जाना जाता है।
8. निदान के परिमार्जन तथा चिकित्सा पद्धति में विकास करने का ज्ञान होता है।
9. वैयक्तिक सेवा कार्य के तरीकों एवं प्रविधियों की उपयुक्तता का ज्ञान होता है।
10. मूल्यांकन द्वारा नयी–नयी बातों का पता चलता है तथा नयी समस्याएं उभर कर सामने आती है इससे चिकित्सा की नयी–नयी प्रविधियों का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार उपरिलिखित विवेचना से स्पष्ट है कि सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के साथ–साथ मूल्यांकन का भी कार्य महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे निदान तथा चिकित्सा दोनों प्रक्रियाओं को लाभ पहुंचता है। मूल्यांकन सदैव प्रयत्नों में वरीयता स्पष्ट करता है जिससे चिकित्सा कार्य सुचारू एवं व्यवस्थित रूप से सम्भव होता है।

8.13 मूल्यांकन के उद्देश्य

1. इस बात की जानकारी प्राप्त करना कि परियोजना या विभाग द्वारा किन लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना था ? इसके द्वारा वे क्या परिवर्तन लाना चाहते थे या क्या प्रभाव डालना चाहते थे ?

2. इन लक्ष्यों या उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में की गई प्रगति का आंकलन करना।

3. परियोजना या विभाग द्वारा अपनाई गई कार्ययोजना की समीक्षा करना। क्या कोई कार्ययोजना बनाई गई थी और क्या इस कार्ययोजना का पालन किया गया था। क्या यह कार्ययोजना सफल हुई ? यदि नही तो क्यों नही ?

4. कार्ययोजना की प्रभावशीलता का आंकलन :
   - क्या उपलब्ध संसाधनों का उचित प्रयोग किया गया ?
   - क्या इस कार्ययोजना के अंतर्गत किए गए कार्य के तरीके सटीक थे ?
   - परियोजना या विभाग द्वारा किए गए कार्य कितने दीर्घकालीन हैं ?
   - विभाग की कार्यशैली से विभिन्न स्टेकहोल्डर पर क्या प्रभाव होंगे ?

मूल्यांकन की प्रक्रिया द्वारा

1. समस्याओं व उनके कारणों की पहचान करने में सहायता मिलनी चाहिए।

2. समस्याओं के संभावित उत्तर सुझाये जाने चाहिए।

3. अनुमानों और कार्ययोजनाओं के बारे में प्रश्न पूछे जाने चाहिए।

4. आपके द्वारा किए जा रहे कार्यो और कार्यशैली पर प्रतिक्रियायें की जानी चाहिए।

5. आपको जानकारी मिलनी चाहिए।

6. प्राप्त जानकारी पर आगे की प्रतिक्रिया करने के लिए आपको प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

7. इस बात की संभावनायें बढ़ जानी चाहिए कि आप विकास कार्यो में सकारात्मक परिवर्तन कर पाये।

8.14 मूल्यांकन के प्रकार

1. **आंतरिक मूल्यांकन** : आतंरिक मूल्यांकन कार्यक्रम प्रबंधकों द्वारा आयोजित एवं पूर्ण किया जाता है।

सकारात्मक विशेषतायें

1. कार्यक्रम लागू किये जाने के साथ ही आंतरिक मूल्यांकन करने से अधिक जानकारियों और सूचनायें मिलती है जो बाहरी तौर पर मूल्यांकन में प्राप्त नहीं हो पाती।

2. मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों पर स्वामित्व रहता है जिससे कि प्राप्त नतीजों को सुधार के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

3. समस्याओं और सम्भावनाओं के बारे में बेहतर जानकारी मिलती है जिससे विश्लेषण और अनुशंसाये व्यावहारिक हो सकती है।

4. आंतरिक मूल्यांकन कम खर्चीला होता है और यह मॉनीटरिंग प्रक्रिया को भी समृद्ध करता है।

आंतरिक मूल्यांकन की कमियां

1. आंतरिक मूल्यांकन के अंतर्गत पहले से प्राप्त जानकारियों या पूर्वाग्रह के आधार पर विश्लेषण करने की प्रवृत्ति रहती है।

2. आंतरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत अपनाई जा रही कार्ययोजनाओं को सही ठहराने की प्रवृत्ति आमतौर पर देखी जाती है।

2. **बाहरी मूल्यांकन** : मूल्यांकन अध्ययनों का अनुभव रखने वाली किसी एजेन्सी या व्यक्ति द्वारा किए जाते हैं।

सकारात्मक विशेषतायें

1. इससे कार्यक्रम के बारे में नई जानकारी मिलती है और इनमें पूर्वाग्रह की कोई संभावना नही होती। कार्यक्रम के बारे में बाहरी मूल्यांकन के अपने दृष्टिकोण हो सकते है परन्तु एक ही कार्यक्रम को अलग नजरिए से देखना लाभप्रद हो सकता है।

2. इससे उन समस्याओं और कारणों का भी पता चलता है जिस पर संभवतः आंतरिक मूल्यांकन के दौरान ध्यान न दिया गया हो।

3. अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण प्रक्रिया है।

बाहरी मूल्यांकन की कमियां

1. यह प्रक्रिया अधिक मंहगी होती है।

2. इसमें उठाये गये विषय सीमित होते हैं।

3. यद्यपि विश्लेषण बहुत अधिक विस्तृत और विवेचनात्मक हो सकता है फिर भी यह आवश्यक नही कि दी गई अनुशंसायें अधिक व्यावहारिक विकल्प हों।

4. किसी बड़े कार्यक्रम में इस तरह के विषयों और कारणों पर अधिक ध्यान दिया जाता है और केवल उस समय उपलब्ध परिस्थितियों को ही ध्यान में रखा जाता है।

3. **प्रक्रिया का मूल्यांकन** : प्रक्रिया के मूल्यांकन में पूरी प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि प्रक्रिया को किस प्रकार बनाई गई योजना के अनुसार क्रियान्वित किया गया और इसकी गुणवत्ता कैसी थी।
4. **परिणामों का मूल्यांकन** : इसमें कार्यक्रम के परिणामों में ध्यान दिया जाता है और यह देखा जाता है कि क्या कार्यक्रम से वांछित परिणाम प्राप्त हुए और किस स्तर तक।
5. **कार्यक्रम का मूल्यांकन** : इसके अन्तर्गत कार्यक्रम की प्रक्रिया और नतीजों दोनों का ही मूल्यांकन किया जाता है। इसमें यह देखा जाता है कि क्या कार्यक्रम से वांछित परिणाम प्राप्त हुए और किस गुणवत्ता के साथ वे परिणाम मिल पाये। इसमें परिणामों को प्राप्त करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया और जानकारियॉ भी कार्यक्रम के आंकलन का एक भाग होती है।
6. **प्रभाव का मूल्यांकन** : इसके अन्तर्गत कार्यक्रम के परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है और यह देखा जाता है कि इस कार्यक्रम के उद्देश्य पूरे हो पाये अथवा नही।
7. **समवर्ती मूल्यांकन, रचनात्मक मूल्यांकन** : कार्यक्रम के दौरान बार–बार कई स्तरों पर यह मूल्यांकन किया जाता है ताकि इसका प्रभाव चलाये जा रहे कार्यक्रम पर पड़े। आमतौर पर समवर्ती मूल्यांकन बाहरी एजेन्सियों द्वारा किया जाता है। यदि इसको आंतरिक तौर पर किया जाये तो इसको मॉनीटरिंग का ही एक भाग माना जायेगा।
8. **कार्यक्रम के अंत में किया जाने वाला मूल्यांकन** : इसे कार्यक्रम की समाप्ति के बाद किया जाता है ताकि कार्यक्रम के नये चरण को आरंभ करने से

पहले वर्तमान कार्यक्रम के अनुभवों से सीखा जा सके या फिर इसी कार्यक्रम को दूसरे स्थान पर दोहराने की योजना तैयार की जा सके।

8.15 मूल्यांकन की तकनीक

विभिन्न प्रक्रियाओं को समझने के लिए अलग–अलग तरह के मूल्यांकन तकनीकों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए प्रशिक्षण का मूल्यांकन, बीसीसी गतिविधियों के परिणामों का मूल्यांकन, सामुदायिक संगठन/सामुदायिक सहभागागिता का मूल्यांकन, सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का मूल्यांकन, ग्राहकों की संतुष्टि का मूल्यांकन। इस तरह कार्यक्रम का मूल्यांकन करते समय प्रशिक्षण मूल्यांकन एवं सामुदायिक संगठन के मूल्यांकन की जानकारी होना आवश्यक है। किसी राज्य संसाधन ईकाई के मूल्यांकन के लिए संतुष्टि और कार्यक्रम के मूल्यांकन के कौशल का होना आवश्यक है। बीसीसी कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए आम तौर पर एक अलग तरह के कौशल और योग्यताओं की आवश्यकता होती है। अक्सर किसी योजना का मूल्यांकन करते समय या विश्लेषकों का चयन करते समय हम इन अंतरों में भेद नहीं कर पाते जिससे हमारे मूल्यांकन के नतीजों पर बुरा असर पड़ता है।

8.16 अवबोधन (अनुश्रवण) तथा मूल्यांकन में अन्तर

अवबोधन	मूल्यांकन
1) परियोजना की प्रगति के साथ–साथ जानकारियों को व्यवस्थित रूप से एकत्रित कर विश्लेषण करने को अवबोधन कहते हैं।	**1)** मूल्यांकन की प्रक्रिया में कार्यक्रम की योजना और इसके वास्तविक प्रभावों की तुलना की जाती है। इसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि आपने क्या लक्ष्य रखे थे, तथा क्या परिणाम प्राप्त किए और किस तरह से।
2) अवबोधन का उद्देश्य किसी परियोजना या विभाग के परिणामों की कार्यकुशलता और प्रभावशीलता को बढ़ाना होता है।	**2)** मूल्यांकन की प्रक्रिया रचनात्मक हो सकती है जिसका उद्देश्य कार्ययोजना में सुधार लाना या स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाना हो सकता है। इसे समवर्ती मूल्यांकन भी कहा जाता है।
3) अवबोधन किसी भी कार्यक्रम की	**3)** मूल्यांकन की प्रक्रिया के अंतर्गत पूरे

योजना तैयार करते समय निर्धारित लक्ष्यों और नियोजित गतिविधियों पर आधारित होती है।	हुए किसी कार्यक्रम के अनुभवों के आधार पर जानकारियों का सारांश तैयार किया जाता है।
4) अवबोधन के अंतर्गत कार्यक्रम की प्रगति का समय–समय पर आंकलन किया जाता है, जिससे कि कार्यक्रम अपनी निश्चित दिशा में प्रगति करता है और कोई भी कमी या त्रुटि होने पर प्रबंधकों को इसकी जानकारी मिल जाती है।	4) मूल्यांकन द्वारा परियोजना में हुये सभी प्रकार के कार्यक्रमों की प्रगति तथा कार्यक्रमों की रूपरेखा की वस्तु स्थिति का पता चलता है।
5) इससे प्रबंधकों को यह निर्धारित करने में सहायता मिलती है कि क्या कार्यक्रम के लिए उपलब्ध संसाधन पर्याप्त हैं और उनका उचित प्रयोग किया जा रहा है। उन्हें यह भी पता चलता है कि क्या उपलब्ध क्षमतायें पर्याप्त व उचित हैं और क्या यह योजनानुसार प्रगति कर रहा है।	5) मूल्यांकन द्वारा प्रबन्धकों को पता चलता है कि जो संसाधन प्रयोग किये गये थे उनका कहां–कहां पर उचित उपयोग नही हुआ तथा किन–किन कारणों से परियोजना सफल हुई अथवा असफल हुई।
6) अवबोधन से मूल्यांकन गतिविधियों के लिए सहायक आधार प्राप्त होता है।	6) मूल्यांकन किसी भी परियोजना का अंतिम चरण होता है। इसी के आधार पर वित्तीय स्थिति का पूर्वानुमान किया जाता है।

8.17 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में मंत्रणा के अर्थ, परिभाषा एवं विशिष्ट प्रकृति के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। मनश्चिकित्सा का अर्थ, मनश्चिकित्सा के लक्ष्य एवं मनश्चिकित्सा की प्रविधियों ,सहायक मनश्चिकित्सा, पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा तथा पुनर्रचनात्मक मनश्चिकित्सा के बारे में भी बृहद रूप से चर्चा की गयी है । प्रस्तुत इकाई में मूल्यांकन का अर्थ एवं परिभाषा तथा मूल्यांकन के कार्य क्षेत्र , मूल्यांकन के प्रकार तथा मूल्यांकन की तकनीकियों पर प्रकाश डाला गया है।

8.18 अभ्यास प्रश्न

1. मंत्रणा से आप क्या समझते है? मंत्रणा की परिभाषा दीजिए ?
2. मंत्रणा की विशिष्ट प्रकृति पर एक लेख लिखिए ?
3. मनश्चिकित्सा का अर्थ लिखिए ?

4. मनश्चिकित्सा के लक्ष्यों के बारे में लिखिए ?
5. मनश्चिकित्सा की प्रविधियों पर एक निबन्ध लिखिए ?
6. सहायक मनश्चिकित्सा क्या है?
7. पुनर्शिक्षात्मक मनश्चिकित्सा से आप क्या समझते है?
8. मूल्यांकन क्या है? इसकी कुछ परिभाषाओं को दीजिए।
9. मूल्यांकन के कार्य क्षेत्र कौन–कौन से है ?
10. मूल्यांकन की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
11. मूल्यांकन के विभिन्न उद्देश्यों के बारे में एक टिप्पणी लिखिए।
12. मूल्यांकन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए ?
13. मूल्यांकन की तकनीकी से आप क्या समझते है ?
14. अवबोधन तथा मूल्यांकन में अन्तर स्पष्ट कीजिए ?

8.19 परिभाषिक शब्दावली

Counseling	मंत्रणा	Techniques	तकनीक
Psychotherapy	मनश्चिकित्सा	Supportive	सहायक
Client	सेवार्थी	Reassurance	पुनर्आश्वासन
Diagnosis	निदान	Suggestion	संसूचन
Problem	समस्या	Persuation	प्रत्यायन
Guidance	पथप्रदर्शन	Re-educative	पुर्नशिक्षात्मक
Counselor	मंत्रणादाता	Directive	निर्देशात्मक
Circumstances	परिस्थितियां	Reconstructive	पुर्नरचनात्मक
Clarification	स्पष्टीकरण	Free Association	मुक्त साहचर्य
Subjective	विषयात्मक	Transference	संक्रमण
Objective	वस्तुगत	Dream Analysis	स्वप्न–विश्लेषण
Regime	व्यवस्था	Monitoring	अवबोधन
Therapy	चिकत्सा	Evaluation	मूल्यांकन

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, पी.डी., सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, वर्ष 1997, पेज 260–263.
2. सिंह, लाभ एवं तिवारी गोविन्द, असामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2001, पेज 423–430.

इकाई – 9

वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका

Role of Social Worker in Case Work

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 परिचय
9.2 वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता और सेवार्थी के मध्य सम्बन्ध
9.3 वैयक्तिक समाज कार्य के सिद्धान्त
9.4 वैयक्तिक समाज कार्य के चरण
9.5 निदान के चरण
9.6 प्रत्यक्ष उपचार
9.7 उपचार
9.8 व्यावहारिक सेवाओं का प्रशासन
9.9 वैयक्तिक समाज कार्य का विषय क्षेत्र
9.10 सार संक्षेप
9.11 अभ्यास प्रश्न
9.12 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आपः–

- वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता और सेवार्थी के मध्य सम्बन्धों को जान सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य के सिद्धान्तों का वर्णन कर सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य के चरणों को जान सकेगें।
- निदान के चरणों की व्याख्या कर सकेगें।

- प्रत्यक्ष उपचार को समझ सकेगें।
- व्यावहारिक सेवाओं के प्रशासन का वर्णन कर सकेगें।
- वैयक्तिक समाज कार्य के विषय क्षेत्र को समझ सकेगें।

9.1 परिचय

सेवार्थी की समस्या को समझने के लिए उसके इतिहास, पूर्व जीवन के अनुभव, वर्तमान परिस्थितियाँ तथा उसके सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित ज्ञान की आवश्यकता होती है। इन जानकारियों का सर्वाधिक उपयुक्त स्रोत सेवार्थी स्वयं होता है। इसीलिए सेवार्थी के साथ साक्षात्कारों की एक श्रृंखला का आयोजन कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। उपयोगी जानकारियां प्राप्त करने के लिए कार्यकर्ता एवं सेवार्थी के मध्य अच्छे ,विश्वसनीय तथा मजबूत सम्बन्ध होने आवश्यक हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध व्यक्तिगत आधार पर ही विकसित होते हैं।

कर्ता को अपनी आत्म चेतना ,पक्षपात एवं विशिष्ट रूचियों का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है तथा अपनी संवेगात्मक भावनाओं, प्रेरणाओं, आवेगों की जानकारी भी नितान्त आवश्यक हैं। उद्देश्य यह है कि कहीं सेवार्थी की भावनाओं को कर्ता अनजाने में कोई ठेस न पहुंचा दें। कर्ता का लक्ष्य सेवार्थी की निन्दा,गुण अथवा दोषों का निर्धारण करना नही होता बल्कि उसकी भावनाओं और समस्याओं को भली–भांति समझना होता है।

9.2 वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता और सेवार्थी के मध्य सम्बन्ध

कार्यकर्ता और सेवार्थी में व्यवसायिक सम्बन्ध होता है। सेवार्थी से कार्यकर्ता जो सम्पर्क स्थापित करता है वह उद्देश्य रहित नहीं होता। व्यवसायिक व्यक्ति अपने उद्देश्य के अनुसार कार्य करता है। उसका उद्देश्य सेवार्थी की मनोसामाजिक आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करना होता है।

किसी व्यक्ति से केवल मिलने और बात करने से ही सम्बन्ध स्थापित नही हो जाते। जब एक व्यावसायिक उद्देश्य के लिये आत्मीयता स्थापित की जाती है तभी व्यक्ति को सेवार्थी कहा जा सकता है।

हैमिल्टन का विचार है कि सेवार्थी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये अनिवार्य है कि कार्यकर्ता एक ऐसे पर्यावरण का निर्माण करे, जिसमें सेवार्थी को अपनत्व की भावना का अनुभव हो, उसकी आवश्यकताएं स्वीकृत की जाएं और उसे इस बात

का अधिकार दिया जाये कि वह अपने विषय में स्वयं निर्णय कर सके। कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं

- **विषयात्मक सम्बन्ध**

यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका आधार वास्तविकता पर है। अर्थात् कार्यकर्ता के विषय में सेवार्थी जो मत स्थापित करता है वह उसकी निपुणता, नम्रता, कार्यक्षमता, और ज्ञान पर आधारित होता है न कि भावनात्मक प्रत्यक्षीकरण पर। कार्यकर्ता को सेवार्थी वैसा ही समझता है जैसा वह वास्तविकता में है।

- **आत्मचेतनात्मक सम्बन्ध**

यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका आधार सेवार्थी की आत्म–चेतनात्मक भावनाओं पर होता है। अर्थात् सेवार्थी कार्यकर्ता को भावनात्मक रूप से देखने लग जाता है और उसके विषय में वह जो कुछ मत रखता है वह उसके अवास्तविक प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होता है। कार्यकर्ता की सफलता इसी में है कि वह सेवार्थी से विषयात्मक सम्बन्ध स्थापित करें।

भावनात्मक स्थानांतरण कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्धों का एक रूप हैं। व्यक्ति की समस्त प्रतिक्रियाओं पर उन मनोवृत्तियों का रंग चढ़ा हुआ होता है जो उसने बाल्यावस्था में ग्रहण की है और जिनका प्रयोग वह अपने वर्तमान सम्बन्धों में करता है। अर्थात् बाल्यावस्था की मनोवृत्तियो के आधार पर ही प्रौढ़ावस्था में अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। इन्हीं घटनाओं को भावनात्मक स्थानांतरण प्रतिक्रिया कहते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि एक परिस्थिति की मनोवृत्तियां दूसरी परिस्थिति को हस्तांतरित की जाती हैं। बाल्यावस्था में जैसी मनोवृत्तियां, विचार और भावनाएं माता–पिता के प्रति होती है वैसी ही मनोवृत्तियां, विचार और भावनाएं, प्रौढ़ावस्था में दूसरे व्यक्तियों और कार्यकर्ता के प्रति होती है। भावनात्मक स्थानांतरण द्वारा जो सम्बन्ध स्थापित होते हैं उनका आधार सेवार्थी के अवास्तविक, आत्म चेतनात्मक प्रत्यक्षीकरण पर होता है।

कार्यकर्ता को चाहिये कि भावनात्मक स्थानांतरण की घटनाओं को समझने का प्रयास करें और कम करने की चेष्टा करें। इसके लिये आवश्यक है कि सेवार्थी की परिस्थिति के वास्तविक कारकों पर प्रत्यक्ष रूप से विचार विमर्श किया जाये और सेवार्थी को वास्तविकता का परिचय कराया जाये। यह भी आवश्यक है कि सेवार्थी अपनी विशेष परिस्थिति के विषय में वर्तमान और सचेत संवर्गों को प्रकट करे।

3. सम्बन्ध और साक्षात्कार

सेवार्थी की समस्याओं को समझने के लिये आवश्यक है कि उससे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किये जाये। समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है

कि सेवार्थी के पूर्व इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त की जाये। साक्षात्कार करते समय कार्यकर्ता को चाहिए कि वह सेवार्थी की वर्तमान परिस्थिति का ध्यान रखे और प्रक्रिया को उसी स्थान से आरम्भ करे जिस स्थान पर सेवार्थी उस समय हो।

4. सम्बन्ध में आत्मज्ञान

किसी भी ऐसे व्यवसाय में जिसका उद्देश्य लोगों की सहायता करना हो सम्बन्धों के सचेत प्रयोग के लिये कार्यकर्ता में आत्मज्ञान होना अनिवार्य है। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि उसने इस व्यवसाय को किन प्रेरणाओं के आधार पर ग्रहण किया है। उसको अपनी आत्मचेतना, पक्षपात और विशिष्ट रूचि का भी ज्ञान होना चाहिए। समस्या के निदान के लिए न केवल सेवार्थी की भावनाओं का ज्ञान आवश्यक है बल्कि कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं का भी ज्ञान होना चाहिये और उसमें इस बात की योग्यता होनी चाहिये कि अपनी और सेवार्थी की भावनाओं के अन्तर को समझ सके।

5. अधिकार का प्रयोग

वैयक्तिक समाज कार्य में कभी–कभी सेवार्थी के हित के लिये संकेत, उपदेश आदि के द्वारा अधिकार का प्रयोग किया जाता है। वैयक्तिक समाज कार्य के वातावरण में कार्यकर्ता के अधिकार का आधार उसकी स्थिति से सम्बन्धित प्रतिष्ठा एवं मर्यादा पर है। इस अधिकार का प्रयोग बलपूर्वक नियंत्रण या धमकी के रूप में नहीं होना चाहिये।

अधिकार के उपचार सम्बन्धी प्रयोग के लिए अनिवार्य है कि कार्यकर्ता सेवार्थी के व्यक्तित्व के विकास का ज्ञान प्राप्त करे। उसकी विद्रोही भावनाओं, आक्रमणकारी प्रवृत्तियों या स्नायुरोग सम्बन्धी विचलन के विषय में ज्ञान प्राप्त करे। जो कार्यकर्ता मनोविज्ञान की पूरी जानकारी रखता है, वह अधिकार का सकारात्मक रूप से प्रयोग करने से नहीं डरता परन्तु वह ऐसा करने से पहले यह निश्चित कर लेता है कि सेवार्थी और संस्था के कार्यों के लिये ऐसा करना उचित होगा कि नहीं।

6. बहुमुखी कार्यकर्ता सम्बन्ध

कभी–कभी हो सकता है कि किसी व्यक्ति की अनेक समस्यायें हों– जैसे एक ही परिवार में आर्थिक समस्या के साथ–साथ स्वास्थ्य की समस्या। या हो सकता है कि एक ही परिवार में एक से अधिक रोगियों की समस्यायें हों–जैसे पति एवं पत्नी, माता–पिता और उनकी सन्तान, रोगी और उसके सम्बन्धी। ऐसी परिस्थितियों में बहुधा एक से अधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। जब एक से अधिक कार्यकर्ता हो तो उनमें आपस में सहयोग होना चाहिये।

अधिकतर संस्थाओं में सेवार्थियों का प्रवेश करने वाले कार्यकर्ता सेवार्थियों की समस्यायें सुलझाने का कार्य नहीं करते। अतः प्रवेश करने वाले कार्यकर्ताओं को चाहिये कि वह सेवार्थी से संवेगात्मक सम्बन्ध न स्थापित करे और सेवार्थी की समस्या के संवेगात्मक पक्षों को न छेड़े ताकि जब सेवार्थी दूसरे कार्यकर्ता को हस्तांतरित किया जाये तो वह इसका विरोध न करें। कार्यकर्ता को चाहिये कि जब वह सेवार्थी को किसी अन्य कार्यकर्ता के प्रति हस्तांतरित करे तो उसका उचित परिचय कराए।

7. सम्बन्धों में मूल्यों का स्थान

यह कहना उचित है कि कार्यकर्ता को अपने मूल्य बलपूर्वक सेवार्थी के सर नहीं मढ़ना चाहिए परन्तु अधिकांश परिस्थितियों में जहां सामंजस्य या समायोजन की समस्या हो वहाँ मूल्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में यह देखना पड़ेगा कि सेवार्थी के मूल्य उसके और समाज के लिए हितकर हैं या हानिकारक। यदि व्यक्ति और समाज के मूल्यों में संघर्ष हो तो उसे इस संघर्ष को दूर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे यह भी करना चाहिए कि वह सेवार्थी की इस प्रकार सहायता करे कि वह विभिन्न रचनात्मक मूल्यों में से अपनी रूचि के अनुसार चुनाव कर सके और हानिकारक मूल्यों को छोड़ दे। फिर भी कार्यकर्ता को यथा सम्भव विषयात्मक रूप से व्यवहार करना चाहिए और अपनी आत्मचेतना सम्बन्धी रूचि पर नियंत्रण रखना चाहिए।

9.3 वैयक्तिक समाज कार्य के सिद्धान्त (Principles of Social Case Work)

वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता–सेवार्थी सम्बन्ध को बड़ा महत्व प्राप्त है। समस्या के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान और समस्या के निदान और समाधान में सेवार्थी का सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है जब कार्यकर्ता– सेवार्थी सम्बन्ध घनिष्ठ हो। यह सम्बन्ध वह उपकरण है जिनसे वैयक्तिक समाज कार्य किया जाता है।

1. व्यक्तिकरण का सिद्धान्त

व्यक्तिकरण का अर्थ है प्रत्येक सेवार्थी के विशेष गुणों को ज्ञात करना और समझना और सिद्धान्त एवं प्रणालियों के भिन्न प्रयोग द्वारा प्रत्येक सेवार्थी की सहायता करना कि वह उच्चतर सामंजस्य प्राप्त कर सके। व्यक्तिकरण का आधार इस बात की स्वीकृति पर है कि मनुष्यों को अपने व्यक्तित्व का विकास अपनी रूचि के अनुसार करने का अधिकार है और इस बात का भी अधिकार है कि उनके व्यक्तित्व के विशेष अन्तरों और विचित्रताओं को महत्व दिया जाये। आधुनिक वैयक्तिक समाज कार्य के अनुसार प्रत्येक सेवार्थी एक व्यक्ति है प्रत्येक समस्या एक

विशेष समस्या है और सामाजिक सेवा सेवार्थी की विशेष परिस्थितियों के अनुसार प्रदान की जाती है।

2. भावनाओं के उद्‌देश्यपूर्ण प्रकटन का सिद्धान्त

वैयक्तिक समाज कार्य में सेवार्थी के इस अधिकार को स्वीकृत किया जाता है कि उसे अपनी भावनाओं को प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता हो, चाहे वह भावनाएं नकारात्मक ही क्यों न हों। कार्यकर्ता उद्‌देश्यपूर्ण रूप से सेवार्थी की बात सुनता है। वह इन भावनाओं के प्रकटन को न तो निरुत्साहित करता है और न ही उसकी निन्दा करता है। कभी–कभी वह सक्रिय रूप से उनके प्रादुर्भाव को उत्तेजना देता है जहां ऐसा करना चिकित्सा के दृष्टिकोण से उपयोगी हो। अर्थात् सेवार्थी की सहायता की जाती है कि वह अपनी भावनाओं का प्रकटन इस प्रकार करें कि उससे समस्या के अध्ययन, निदान और चिकित्सा में सहायता मिले। भावनाएं बिना उद्‌देश्य प्रकट कराने का कोई अर्थ नहीं है।

3. नियंत्रित संवेगात्मक सम्बन्धों का सिद्धान्त

कार्यकर्ता को चाहिये कि वह सेवार्थी की भावनाओं को सूक्ष्मग्राहिता के साथ समझे और उन भावनाओं के प्रति उसका जो प्रत्युत्तर हो उसका आधार ज्ञान और व्यवसायिक उद्‌देश्य पर हो। अर्थात् सेवार्थी के प्रति कार्यकर्ता को जो सहानूभूति हो वह एक व्यवसायिक और वास्तविक सहानूभूति हो और कार्यकर्ता की मनोवृत्तियां और प्रत्युत्तर उद्‌देश्यपूर्ण रूप से निर्मित हों।

4. स्वीकृति का सिद्धान्त

स्वीकृति का अर्थ यह है कि सेवार्थी से उसकी वर्तमान स्थिति के अनुसार व्यवहार किया जाये और उसकी परिस्थिति के अनुसार ही उसके विषय में कोई मत स्थापित किया जाये। सेवार्थी की शक्तियों और दुर्बलताओं, उसके अनुरूप एवं प्रतिकूल गुणों, उसकी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं और उसकी रचनात्मक एवं विनाशकारी मनोवृत्तियों और व्यवहार के अनुसार ही उससे व्यवहार करना चाहिये। परन्तु सेवार्थी से व्यवहार करते समय उसके आन्तरिक महत्व एवं वैयक्तिक मूल्य का ध्यान रखा जाता हैं।

स्वीकृति का उद्‌देश्य केवल उन्हीं वस्तुओं को स्वीकृत करना नहीं है जो कार्यकर्ता को अच्छी लगे। इसका उद्‌देश्य वास्तविकता की स्वीकृति है चाहे वह कार्यकर्ता को पसंद हो या न हो। स्वीकृति का उद्‌देश्य चिकित्सा है साथ ही साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि विचलित मनोवृत्तियों और व्यवहार को स्वीकृत किया जाता है। इस सम्बन्ध में कार्यकर्ता की स्थिति एक शारीरिक रोग चिकित्सक की स्थिति के समान है। एक चिकित्सक प्रत्येक प्रकार के रोगियों को चिकित्सा के लिये अपने औषधालय में स्वीकृत करता है परन्तु वह रोग को दूर करने का प्रयास

करता है चाहे उसका कारण कुछ भी हो। उसी प्रकार कार्यकर्ता भी प्रत्येक सेवार्थी को स्वीकृत करता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उसके असामान्य व्यवहार का पक्ष करता है यह स्वीकृति उसी प्रकार की स्वीकृति है जैसी एक चिकित्सक की स्वीकृति होती हैं।

5. अनिर्णयात्मक मनोवृत्ति का सिद्धान्त

वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता के लिये आवश्यक है कि उसकी मनोवृत्तियां सेवार्थी के प्रति अनिर्णयात्मक हों। अर्थात् वह सेवार्थी का गुण–दोष निर्धारित करने और उसके व्यवहार की नैतिक रूप से निन्दा करने का प्रयास नहीं करता। यह अवश्य है कि वह सेवार्थी की मनोवृत्तियों, आदर्शों या क्रियाओं का वास्तविक रूप से मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन का आधार उसका ज्ञान और अनुभव हैं, नैतिक मानदन्ड नहीं। इस मूल्यांकन में समाज के वर्तमान एवं प्रचलित मूल्यों को भी सामने रखा जाता है परन्तु इसका उद्देश्य सेवार्थी को नैतिक रूप से दोषी ठहराकर उसकी निन्दा करना नहीं हैं।

6. सेवार्थी के आत्मनिर्देशन का सिद्धान्त

वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का मौलिक सिद्धान्त यह है कि सेवार्थी को अपनी समस्या को समझने, उसके निदान में सम्मिलित होने और उसको अपनी रूचि के अनुसार सुलझाने का पूरा अधिकार होना चाहिए। सेवार्थी को इस बात का पूरा अधिकार है कि वह सहायता ले या न ले और अपनी इच्छा के विरुद्ध सहायता लेना या अपनी समस्या का समाधान अपनी रूचि के विरुद्ध करना स्वीकृत न करे। आवश्यक है कि समस्या का जो भी समाधान किया जाये और सेवार्थी के विषय में जो भी निर्णय किया जाये वह सेवार्थी का अपना निर्णय हो। समस्या के वास्तविक एवं स्थाई समाधान के लिए आवश्यक है कि सेवार्थी को इस बात का अवसर दिया जाये कि वह अपने अहं का विकास कर सके और अपने जीवन की महत्वपूर्ण बातों के विषय में स्वयं स्वतंत्र रूप से निर्णय कर सके। सेवार्थी की अहं शक्ति का विकास और उसके आत्मर्निदेशन में परस्पर सम्बन्ध है।

7. गोपनीयता का सिद्धान्त

सेवार्थी के विषय में कार्यकर्ता को जो कुछ ज्ञात हो उसे गुप्त रखना कार्यकर्ता का नैतिक एवं व्यवसायिक कर्तव्य है। वैयक्तिक समाज कार्य में सेवार्थी अपने जीवन की निजी और रहस्यमय बातें कार्यकर्ता को बताता है वह अपने जीवन के संवेगात्मक पक्षों को व्यक्त करता है। इन सूचनाओं को गुप्त रखना अत्यधिक आवश्यक है। यदि सेवार्थी को गोपनीयता का विश्वास न होगा तो वह अपनी समस्याओं को पूर्णरूपेण व्यक्त करने में संकोच का अनुभव करेगा।

बहुधा सेवार्थी के रहस्य की जानकारी संस्था के अन्दर और बाहर के अन्य व्यवसायिक व्यक्तियों को भी होती है। ऐसी परिस्थिति में इन सब कर्मचारियों पर इन सूचनाओं को गुप्त रखने का उत्तरदायित्व है। सेवार्थी के विषय में सूचना प्राप्त करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :

1. सेवार्थी से उतनी ही सूचना प्राप्त करनी चाहिये जितनी सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक है;
2. संस्था के अन्दर सूचना केवल उन्हीं व्यक्तियों को और उसी सीमा तक दी जानी चाहिए जितना सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक हो;
3. अन्य संस्थाओं एवं व्यक्तियों से परामर्श सेवार्थी की अनुमति लेकर करना चाहिये;
4. केवल उसी सूचना को अभिलिखित करना चाहिए और केवल उन्हीं अभिलेखों को सुरक्षित रखना चाहिए जो सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक हो और अभिलेखों का प्रयोग संस्था के कार्यों और सेवार्थी की अनुमति के आधार पर होना चाहिए।

व्यक्तिकरण का मुख्य आधार इस सिद्धान्त की स्वीकृति पर है कि व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व का विकास अपनी रूचि के अनुसार ही करने का अधिकार हो तथा उनके व्यक्तित्व के विभिन्न अन्तरों एवं विभिन्नताओं को महत्व दिया जाता हो। कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता एक व्यक्ति के रूप में इस प्रकार करता है कि वह अपनी समस्या का समाधान खोजने में सक्षम हो जाय।

कार्यकर्ता की इस भूमिका में प्रो. अहमद के अनुसार निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है :

1. कर्ता का एकांकी पक्षपात रहित दृष्टिकोण,
2. मानवीय व्यवहार का ज्ञान,
3. सेवार्थी को धैर्यपूर्वक सुनने और निरीक्षण करने की योग्यता,
4. सेवार्थी की स्थिति को समझने की योग्यता,
5. सेवार्थी में आत्मीयता की भावना का विकास करने और उसकी भावनाओं को समझने की योग्यता, तथा
6. एकान्त स्थान पर साक्षात्कार का आयोजन जिससे सेवार्थी निःसंकोच अपनी बात कह सके।

समस्या का अध्ययन, निदान, उपचार, एवं चिकित्सा सेवार्थी के सहयोग से आयोजित की जाती है। समस्या के समाधान में सेवार्थी के व्यक्तित्व और उसकी

योग्यताओं का ध्यान रखा जाता है। आवश्यक परिवर्तन करने हेतु उपचार की प्रक्रिया को लचीला रखा जाता है।

व्यक्तिकरण करने के लिये कार्यकर्ता में उपयुक्त मनोवृत्तियां, ज्ञान और योग्यताएं होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :

1. एकांकी दृष्टिकोण और पक्षपात से सुरक्षित रहना और सेवार्थी को विषयात्मक दृष्टिकोण से देखना।
2. मानवीय व्यवहार का ज्ञान–इसके लिये आवश्यक है कि कार्यकर्ता विभिन्न विज्ञानों अर्थात् औषधि शास्त्र, मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा, समाजशास्त्र और दर्शन शास्त्र का अध्ययन करे।
3. सुनने और सावधानी से देखने की योग्यता–कार्यकर्ता को चाहिये कि वह व्यक्ति को इस बात का अवसर प्रदान करे कि वह अपनी भावनाएं प्रकट कर सके और अपनी समस्या के विषय में बता सके। साथ ही साथ उसे व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण भी करते रहना चाहिये।
4. सेवार्थी की वर्तमान स्थिति को समझने और उसकी स्थिति और योग्यताओं के अनुसार उसकी सहायता का कार्यक्रम बनाने की योग्यता कार्यकर्ता के लिये अनिवार्य है।
5. सेवार्थी के अन्दर आत्मीयता की भावना उत्पन्न करने और उसकी भावनाओं को समझने की योग्यता भी कार्यकर्ता के लिये अनिवार्य है।
6. सेवार्थी के सम्बन्ध में छोटी–छोटी बातों का भी ध्यान रखना चाहिये जिससे उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो। उदाहरणस्वरूप मिलने का समय निश्चित करने में उसकी सुविधा देखनी चाहिये।
7. साक्षात्कार एकान्त स्थान पर करना चाहिये जिससे सेवार्थी को किसी प्रकार का संकोच न हो।
8. कार्यकर्ता को चाहिए कि वह सेवार्थी का सहयोग अपनी समस्या के अध्ययन, निदान, और चिकित्सा में प्राप्त करे।
9. सेवार्थी की समस्या उसके व्यक्तित्व एवं योग्यताओं को सामने रखकर प्रणालियों और लक्ष्यों में परिवर्तन करने के लिये तैयार रहना चाहिये, अर्थात् लचीलेपन के साथ कार्य करना चाहिये।

9.4 वैयक्तिक समाज कार्य के चरण (Steps of Social Case Work)

वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता विभिन्न चरणों के माध्यम से करता है, ये चरण सेवार्थी की विभिन्न समस्याओं की जड़ में जाकर, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्या–समाधान में सहायक होते हैं। वैयक्तिक समाज कार्य के तीन चरण हैं जिनका उपयोग करते हुए कार्यकर्ता सेवार्थी को अपेक्षित सहायता उपलब्ध कराता है :

(1) मनोसामाजिक अध्ययन;

(2) निदान एवं मूल्यांकन, तथा

(3) उपचार।

1. मनोसामाजिक अध्ययन (Psycho-Social Study)

सर्वप्रथम कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ मधुर सम्बन्धों की स्थापना करता है, वह सेवार्थी को यह विश्वास दिलाता है कि वह उसकी सहायता निःस्वार्थभाव से करेगा इसके लिए कर्ता को कुछ जानकारियाँ चाहिए। कर्ता सर्वप्रथम सम्बन्ध, समर्थन, पुनराश्वासन, स्पष्टीकरण, सलाह, व्याख्या आदि का उपयोग करते हुए कार्यकर्ता, सेवार्थी के साथ इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करता है कि उसकी चिन्ता कम हो सके, उसके आत्मविश्वास में वृद्धि हो सके, वह अपनी समस्या के विभिन्न पक्षों के परिपेक्ष्य में सोंचते हुए विचार व्यक्त कर सके, वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए समस्या–समाधान में कार्यकर्ता का अपेक्षित सहयोग कर सके।

सेवार्थी की मनोसामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन, करने के लिए कार्यकर्ता को सेवार्थी के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करना नितान्त आवश्यक है क्योंकि ऐसा करके वह सेवार्थी में आत्मनिर्णायात्मक मनोवृत्ति का विकास करता है जिससे सेवार्थी अपने विषय में कार्यकर्ता को आवश्यक सूचनायें दे सके, साथ ही कार्यकर्ता सेवार्थी को यह विश्वास दिलाता है कि उसके द्वारा दी गई सूचनाओं को पूर्णतः गोपनीय रखा जायेगा। कार्यकर्ता और सेवार्थी के मध्य मधुर सम्बन्ध समस्या–समाधान के लिए महत्वपूर्ण होता है।

1. वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)

सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा उसकी समस्या का सम्पूर्णता में अध्ययन करने के लिए वैयक्तिक अध्ययन का प्रयोग, वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। यह ऐसा अध्ययन का ढंग होता है जिसमें कार्यकर्ता विभिन्न सूचनाओं के स्रोतों का प्रयोग करते हुए सेवार्थी तथा उसकी समस्या के विभिन्न पक्षों के विषय में अपेक्षित समस्त सूचनाओं को संग्रहीत कर लेता है। इस विधि के माध्यम से अधिक विस्तृत एवं पूर्ण सूचनाओं का संग्रह किया जा सकता है तथा इसके अन्तर्गत सेवार्थी के

व्यक्तित्व तथा उसकी समस्या से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों का संकलन तथा सम्पूर्णता की स्थिति में स्वीकार करते हुए सूचना को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है। कार्यकर्ता इस विधि का उपयोग वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणताओं का प्रयोग करते हुए करता है जिससे सूचनाओं में वैज्ञानिकता हो और वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त हो सकें।

इस विधि का प्रयोग करते हुए यह जानने का प्रयास किया जाता है कि आन्तरिक संरचना के पक्ष कौन से हैं तथा इन पक्षों एवं बाहय वातावरण के मध्य सम्बन्ध क्या हैं। उपरिलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए कार्यकर्ता के द्वारा विभिन्न सूचना के स्रोतों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

वैयक्तिक अध्ययन पद्वति के दौरान कार्यकर्ता सेवार्थी तथा उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्ति से सूचनाएं प्राप्त करता हैं, सेवार्थी के परिवार, व्यवसाय, शिक्षा मनोरंजन, चिकित्सा आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ संग्रहीत करता है, सेवार्थी के इष्टमित्र, सगे सम्बधी से सूचनाएँ प्राप्त करना है जोकि सेवार्थी के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित हैं, सेवाथी के निजी दस्तावेज, पत्र, डायरी इत्यादि से भी कार्यकर्ता सूचनाएँ एकत्रित करता है। वैयक्तिक अध्ययन पद्वति में कार्यकर्ता विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग करते हुए सेवार्थी से महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त करता है, जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं।

(1) इसमें कार्यकर्ता बिना किसी अनुसूची के औपचारिक साक्षात्कार करता है,

(2) सेवार्थी के व्यक्तिगत इतिहास को जानने के लिए उसके दस्तावेजों से इच्छित सूचनाएँ एकत्रित करता है।

(3) जीवन इतिहास की रूपरेखा तैयार करता है, तथा

(4) संगठनात्मक अभिलेखों का अध्ययन एवं अवलोकन करते हुए विभिन्न सूचनाओं का संकलन कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है।

2. निदान एवं मूल्यांकन (Diagnosis and Evaluation)

निदान शब्द का तात्पर्य समस्या या रोग के विषय में सम्पूर्ण जानकारी से है। अधिकांशतः निदान शब्द का उपयोग चिकित्सा से सम्बन्धित क्षेत्रों या चिकित्साशास्त्र में किया जाता है जहाँ पर इसका तात्पर्य रोग के विषय में समस्त जानकारियों से है। लेकिन समाज कार्य में निदान शब्द का तात्पर्य चिकित्साशास्त्र के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले निदान से कहीं अधिक व्यापक है। वैयक्तिक समाज कार्य में न मात्र समस्या के विषय में पूर्ण ज्ञान बल्कि जिस व्यक्ति की सहायता की जानी है, उसके पारिवारिक, व्यक्तिगत इतिहास को ध्यान में रखते हुए उसकी आन्तरिक एवं वाह्य परिस्थितियों का भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है। अतः हम निष्कर्ष रूप में कह

सकते हैं कि समाज कार्य में प्रयुक्त किये जाने वाले निदान शब्द का अर्थ चिकित्साशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले निदान से कहीं अधिक व्यापक है।

मेरी रिचमण्ड के मत में, ''सामाजिक निदान वस्तुतः एक सेवार्थी के व्यक्तित्व एवं सामाजिक परिस्थिति की सही परिभाषा करने का प्रयास है।'' इसी कड़ी में हरबर्ट आप्टेकर के मत में, ''निदानात्मक सम्प्रदाय के दृष्टिकोण के अनुसार निदान उस समस्या के कारण की खोज है जो किसी सेवार्थी को कार्यकर्ता के पास सहायता के लिए जाता है। इस तरह निदान ऐसे मनोवैज्ञानिक अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी कारकों जो सेवार्थी की समस्याओं के साथ कारणात्मक सम्बन्ध रखते हैं, तथा सामाजिक अथवा पर्यावरणात्मक कारकों जो उसे यथास्थिति बनाये रखते हैं, दोनों को समझने से सम्बन्धित हैं।''

निदान सेवार्थी की समस्या, उसके पर्यावरण एवं व्यक्तित्व को सही रूप में जानने का प्रयास है। निदान एक प्रक्रिया है जिसमें समस्या से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, इसमें सेवार्थी की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कार्यात्मकता का निरीक्षण एवं परीक्षण किया जाता है, पर्यावरण से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न कारकों को समस्या के सन्दर्भ में दृष्टिगत किया जाता है तथा सेवार्थी एवं पर्यावरण दोनों का एक साथ विश्लेषण करते हुए समस्या के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सेवार्थी की समस्या के कारणों को जानने एवं विश्लेषण करने का सफलतम प्रयास किया जाता है।

9.5 निदान के चरण (Steps of Diagnosis)

निदान की प्रक्रिया में कार्यकर्ता विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ समस्या के मूल में छिपे कारणों को जानने का प्रयास करता है। ये चरण निम्नलिखित हैं :

(1) तथ्यों का संकलन

सेवार्थी से सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए कार्यकर्ता क्षेत्रीय तथा प्रलेखीय स्रोतों का उपयोग करते हुए सेवार्थी की समस्या, उसके व्यक्तिगत तथा सामाजिक–सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन करता है। सेवार्थी से सम्बन्धित प्रतिवेदनों, संस्था के अभिलेखों, मनोचिकित्सकों तथा मनोवैज्ञानिकों के प्रतिवेदनों, सेवार्थी के सगे सम्बन्धियों, पड़ोसियों तथा मित्रों इत्यादि से प्राप्त सूचनाओं को कार्यकर्ता द्वारा संकलित किया जाता है।

(2) तथ्यों का मूल्यांकन

वैयक्तिक समाज कार्य में सेवार्थी से सम्बन्धित संकलित किये गये तथ्यों का मूल्यांकन कार्यकर्ता तीन प्रकार से करता है :

(i) समस्या का मूल्यांकन

समस्या के स्वरूप के विषय में सर्वप्रथम कार्यकर्ता जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि समस्या मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, सामाजिक अथवा सामन्जस्य से सम्बन्धित है। समस्या का मूल्यांकन करते समय सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात कार्यकर्ता के लिए यह है कि सेवार्थी किस प्रकार समस्या से ग्रसित है, उसकी समस्या का जन्म कब हुआ, समस्या–समाधान हेतु कब–कब और क्या–क्या प्रयास किये गये, इन प्रयत्नों से सफलता मिली अथवा नहीं, आदि की जानकारी करना तथा मूल्यांकन करना।

(ii) व्यक्तित्व का मूल्यांकन

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी की आन्तरिक एवं वाह्य शक्ति का मूल्यांकन करता है, ऐसा वह सेवार्थी की समस्या अथवा रोग प्रतिरोधक क्षमता का ऑकलन करने के लिए करता है, साथ ही कार्यकर्ता यह भी जानने का प्रयास करता है कि उसके अतीत के अनुभव कैसे रहे हैं, उसमें स्वयं निर्णय लेने की क्षमता है अथवा नहीं, अप्रत्याशित घटनाओं को सहजता से लेते हुए उसके लिये निर्णय लेने में वह कितना कुशल है, आदि।

(iii) पर्यावरण का मूल्यांकन

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के परिवार, पड़ोस, सगे–सम्बन्धियों, इष्टमित्रों, विद्यालय, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संस्थाओं, मनोरंजनात्मक संस्थाओं इत्यादि के विषय में मूल्यांकन करता है। इस तरह का मूल्यांकन करते समय वह अनेक प्रकार की संस्थाओं के साथ सेवार्थी के सम्बन्धों, इन संस्थाओं द्वारा सेवार्थी पर डाले गये प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभावों तथा इन संस्थाओं के सन्दर्भ में सेवार्थी द्वारा प्रतिपादित की गयी भूमिकाओं और इनके उद्देश्यों की प्राप्ति में सेवार्थी द्वारा प्रदान किये गये योगदान का मूल्यांकन करता है।

1. कारणात्मक कारकों की खोज (Search of Etiological Factors)

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता इस चरण में यह निश्चित करने का प्रयास करता है कि समस्या का स्वरूप कैसा है, सेवार्थी के व्यक्तित्व पर सामाजिक पर्यावरण का क्या प्रभाव पड़ा, तथा कौन–कौन से कारक हैं जो मुख्य रूप से समस्या की उत्पत्ति में उत्तरदायी हैं।

2. वर्गीकरण

इस चरण में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता समस्या का उसके प्रकार, कारकों, समाधान के लिए अपेक्षित उपायों, इत्यादि के आधार पर वर्गीकरण करता है।

3. निदान के प्रकार (Types of Diagonosis)

पर्लमैन ने निदान के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है :

(1) गतिशील निदान (Dynamic diagnosis)

(2) क्लीनिकल निदान (Clinical diagnosis)

(3) कारणात्मक निदान (Etiological diagnosis)

(1) गतिशील निदान

जो व्यक्ति–समस्या–परिस्थिति की जटिलता में सक्रिय रूप से भूमिका निभाने वाली शक्तियों का निदान करता है, उसे गतिशील निदान कहा जाता है। गतिशील निदान में उन बातों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें सामान्यतः मनोसामाजिक कहा जाता है और इसमें सेवार्थी के क्रियाकलापों को भी सम्मिलित किया जाता है।

गतिशील निदान सरल अथवा जटिल दोनों प्रकार का हो सकता है। यह सेवार्थी की समस्या सम्बन्धी परिस्थिति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का निदान है। इसमें सेवार्थी तथा उसके पर्यावरण के विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त होने के साथ आवश्यक आशोधन किये जाते रहते हैं।

(2) चिकित्सकीय निदान

चिकित्साकीय निदान सेवार्थी को उसकी समस्या की प्रकृति के अनुरूप वर्गीकृत करने का एक प्रयास है। इसके अन्तर्गत वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी के वैयक्तिक कुसमायोजन के स्वरूपों, उसकी दुष्क्रिया के लक्षणों, आवश्यकताओं एवं व्यवहार के स्वरूपों की जानकारी करता है। यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति के प्रतिउत्तर तथा क्रिया के प्रतिमान किस तरह के होंगे तथा ये उसके अन्तर्वैयक्तिक एवं सामाजिक सम्बन्धों को किस तरह से प्रभावित करेंगे।

वैयक्तिक समाज कार्य में चिकित्सकीय निदान के अन्तर्गत कार्यकर्ता में इस बात की निपुणता होनी चाहिए कि वह इस बात की जानकारी कर सके कि सेवार्थी के व्यक्तित्व में दुखद क्षणों की स्थिति क्या है, अर्थात् उसमें मनोविकास, मनोस्नायुविकृति, चारित्रिक एवं व्यावहारिक विसंगतियों के लक्षणों को पहचानने की निपुणता होनी आवश्यक है। इस प्रकार का निदान मनःचिकित्सकों की सहभागिता से किया जाता है।

(3) कारणात्मक निदान

अधिकांशतः कारणात्मक निदान का सम्बन्ध निकटवर्ती कारणों से कम तथा समस्या की प्रारम्भिक स्थिति और जीवन इतिहास से अधिक होता है। इसका सम्बन्ध उस समस्या से होता है जो सेवार्थी के व्यक्तित्व अथवा उसकी क्रिया में सन्निहित होती है। सेवार्थी के पारिवारिक, व्यक्तिगत इतिहास में समस्या से ग्रसित होने, इनका धैयतापूर्वक सामना करने तथा समाधान करने की घटनायें वैयक्तिक

समाज कार्यकर्ता को इस बात का ज्ञान करा सकती हैं कि सेवार्थी किस समस्या से ग्रसित है और समस्या का सामना करने की उसकी क्षमता है अथवा नहीं। इस प्रकार के निदान से समस्याग्रस्त सेवार्थी को समस्या–समाधान में सहायक साधनों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

4. मूल्यांकन (Evaluation)

मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। सेवार्थी के संस्था में आने से प्रारम्भ होकर अन्त तक चलता रहता है। सेवार्थी की उपलब्ध सहायता के उपयोग की इच्छा एवं अनिच्छा, क्षमताओं एवं अक्षमताओं, उससे सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न प्रकार के कारकों, इत्यादि के विषय में अनुमान लगाते हुये निर्णय लिये जाने को मूल्यांकन कहा जाता है। हैमिल्टन के मत में, ''मूल्यांकन एक निर्णय लेने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो यह निश्चित करती है कि व्यक्ति, कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है, इसको पूर्ण करने की कितनी क्षमता है, शक्तियाँ कौन–कौन हैं, कौन से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन से कार्य समस्या को जटिल बनाते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन का उद्देश्य दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है।''

9.6 प्रत्यक्ष उपचार (Direct Treatment)

वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता प्रत्यक्ष उपचार के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रविधियों का उपयोग करते हुए सेवार्थी को सहायता उपलब्ध कराता है। ये प्रविधियाँ हैंः

(1) परामर्श (2) चिकित्सकीय साक्षात्कार, (3) मनोवैज्ञानिक आलंबन, (4) स्पष्टीकरण, (5) अन्तर्दृष्टि का विकास, (6) निर्वचन, (7) सुझाव, (8) पुनराश्वासन, तथा (9) पुनर्शिक्षा।

(1) परामर्श

मंत्रणा या परामर्श एक शैक्षिक प्रक्रिया है। वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी को उसकी समस्या के समाधान के लिए परामर्श देता है। इसका उद्देश्य सेवार्थी की परिस्थिति से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों की विवेकपूर्ण ढंग से विवेचन करने, उसकी समस्या को स्पष्ट करने, वास्तविकता के साथ उसके संघर्षों को सामने लाने, विभिन्न प्रकार की क्रिया सम्बन्धी विकल्पों की व्यवहारिकता पर विचार विमर्श करने तथा विभिन्न विकल्पों में चयन करने के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने की दृष्टि से सेवार्थी को स्वतंत्रता प्रदान करने में सहायक होता है।

(2) चिकित्सकीय साक्षात्कार

वैयक्तिक समाज कार्य में चिकित्सकीय साक्षात्कार का प्रयोग कार्यकर्ता द्वारा उस समय किया जाता है जबकि सेवार्थी किसी बीमारी (रोग) अथवा असमर्थता से ग्रसित होता है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी को शान्त माहौल या पर्यावरण में बैठाकर कार्यकर्ता उसे अपनी समस्या को बिना किसी हिचक के व्यक्त करने के लिए कहता है। कार्यकर्ता सेवार्थी को साक्षात्कार के दौरान समय–समय पर संवेगात्मक भावनायें व्यक्त करने में सहारा भी देता है। इस प्रकार के साक्षात्कार के परिणामस्वरूप सेवार्थी अपने आपको स्वच्छन्द एवं सुखी महसूस करता है।

(3) मनोवैज्ञानिक आलंबन

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी को मनोवैज्ञानिक सहारा देते हुए भावनाओं के प्रकटन में सहयोग करता है, भावनाओं को समझता है तथा स्वीकृति प्रदान करता है, सेवार्थी में आत्मनिर्णय की क्षमता विकसित करता है, समस्या समाधान के लिए अपेक्षित रुचि उत्पन्न करता है, योजनाबद्ध तरीके से समस्या समाधान का प्रारूप तैयार करता है। मनोवैज्ञानिक आश्रय मिलने से सेवार्थी में आत्मचेतना का प्रसार, स्वयं सहायता करने की क्षमता, योग्यता में वृद्धि, समस्या समाधान करने की निपुणता आदि का विकास होता है।

(4) स्पष्टीकरण

स्पष्टीकरण सेवार्थी की कुछ मनोवृत्तियों, भावनाओं के प्रति सजग करते हुए अथवा इसकी यथार्थ बनाम रागात्मक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उसे स्वयं अपने आपको तथा पर्यावरण को एक अधिक विषयात्मक ढंग से देखने की अनुमति देता है जिससे अधिक अच्छा नियन्त्रण हो जाता है। स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में सेवार्थी को वास्तविकता पर आधारित सूचनाएं प्रदान की जाती हैं, सही गलत का बोध कराया जाता है।

(5) अन्तर्दृष्टि का विकास

वैयक्तिक समाज कार्य में अधिकांशतः देखा जाता है कि संघर्षात्मक भावनायें तथा उत्तेजक संवेग वास्तविकता को समझने की शक्ति कभी–कभी नष्ट कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति आन्तरिक प्रत्यक्षीकरण के अभाव से ग्रसित हो जाता है और उपयुक्त निर्णय ले पाने में असमर्थ हो जाता है, इसी आन्तरिक प्रत्यक्षीकरण को अन्तर्दृष्टि कहते हैं। वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता इसी आन्तरिक प्रत्यक्षीकरण का विकास करने का प्रयास करता है जिससे कि सेवार्थी अन्तर्द्वन्द से सामना कर पाने में समर्थ हो सके।

(6) निर्वचन

एक उपचारकर्ता के रूप में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सामाजिक अथवा वैयक्तिक कारकों और उनके मध्य होने वाली अन्तःक्रिया के निर्वचन का प्रयोग अत्यधिक सावधानी के साथ करता है। निर्वचन के दौरान वह स्पष्टीकरण तथा हस्तांतरण के अन्तर्गत अहम् को समर्थन प्रदान करने के ढंगों का प्रयोग करता है।

(7) सुझाव

चिकित्सा की एक विधि के रूप में सुझाव का उपयोग नवीन न होकर अत्यधिक प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या के निराकरण के लिए सुझावों को रखता है। यह सेवार्थी पर निर्भर करता है कि वह सुझावों में किन बातों को स्वीकार करता है। इसके लिए सेवार्थी स्वतंत्र होता है।

(8) पुनराश्वासन

पुनराश्वासन के माध्यम से कार्यकर्ता विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हुए सेवार्थी में इस बात का विश्वास जागृत करता है कि वह उसे समस्या से मुक्ति दिलाने का प्रयास कर रहा है और इस प्रयास से सेवार्थी की समस्या समाप्त हो जायेगी। इसके अतिरिक्त कार्यकर्ता सेवार्थी में चिकित्सा की विधियों को अपनाने, अनुसरण करने पर भी जोर देता है और आश्वासन दिलाता है कि उसकी समस्या जल्दी ही समाप्त हो जायेगी।

(9) पुनर्शिक्षा

व्यक्ति में वास्तविकता को समझने की क्षमता उत्पन्न करने में शिक्षा की प्रक्रिया चाहे वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी भी समय पर क्यों न हो महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी को उन समस्त पहलुओं के विषय में शिक्षित करने का प्रयास करता है जिनके द्वारा समस्या उत्पन्न हुई है। साथ ही पुनर्शिक्षा का उपयोग करने हुए समस्या के कारणों आदि के विषय में सेवार्थी को जागरूक करता है।

9.7 उपचार (Treatment)

वैयक्तिक समाज कार्य में उपचार का उद्देश्य वैयक्तिक समायोजन, प्रत्यक्ष उपचार, पर्यावरणात्मक परिवर्तन करना इत्यादि होता है। सेवार्थी की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की प्राप्ति उसकी स्वयं की अभिरुचि पर निर्भर करती है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब सेवार्थी कार्यकर्ता द्वारा किये जा रहे उपचार से संतुष्ट हो तथा वह पूरी तरीके से सेवार्थी को स्वीकार कर ले और कार्यकर्ता का सहयोग उपचार प्रक्रिया में करे।

1. उपचार के साधन

वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता उपचार में विभिन्न साधनों का प्रयोग करते हुए सेवार्थी को सहायता उपलब्ध कराता है। वह सेवार्थी का उपचार करने से पूर्व उसके विषय में समस्त पहलुओं से अवगत होता है तथा एक उपकल्पना का निर्माण कर चुका होता है जिसका परीक्षण एवं निष्कर्ष शेष रहता है। कार्यकर्ता उपचार के माध्यमों का प्रयोग करते हुए अपने द्वारा तैयार की गई परिकल्पना का परीक्षण उपचार में करता है। ये माध्यम वस्तुतः तीन श्रेणियों में विभाजित होते हैं :

(1) व्यावहारिक सेवाओं का प्रशासन

(2) पर्यावरण में परिवर्तन, तथा

(3) प्रत्यक्ष उपचार।

9.8 व्यावहारिक सेवाओं का प्रशासन

उपचार के प्रमुख साधन के रूप में व्यावहारिक सेवाओं का प्रशासन वैयक्तिक समाज कार्य में प्रमुख भूमिका का निवर्हन करता है। सबसे पहले पोर्टर ली ने इसका वर्णन करने का प्रयास किया था। वर्तमान में इसे 'समाज कल्याण प्रशासन' की संज्ञा दी गई है। इसके अन्तर्गत वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता प्रमुख रूप से इस बात में करता है कि वह समुदाय के सामाजिक संसाधनों में से अपनी आवश्यकतानुसार संसाधनों का चयन करते हुए उनका प्रयोग कर सके। यहाँ पर भी माध्यम के रूप में वैयक्तिक कार्य सम्बन्ध उस सीमा तक कार्य करता है जिस सीमा तक साक्षात्कार का प्रयोग विचार विमर्श, सूचना एवं स्पष्टीकरण के साधन के रूप में किया जाता है।

प्रायः सेवार्थी को अपनी आवश्यकताओं का संज्ञान होता है फिर भी उसे इस बात की जानकारी नहीं होती कि इसकी पूर्ति के लिए कौन सा साधन है और कहाँ उपलब्ध है। कभी–कभी वह अपनी आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप से पहचानने में असफल भी होता है, और अपनी समस्या के लिए कुछ भी कर सकने की स्थिति में नहीं होता। उपरिलिखित परिस्थितियों में वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता ही वह साधन बनता है जो इनको सहायता उपलब्ध कराने की पेशकश करता है। वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता यथासम्भव अपनी संस्था के संसाधनों का उपयोग करते हुए सेवार्थी को सहायता उपलब्ध कराता है, किन्हीं कारणोंवश यदि संस्था में संसाधनों की कमी है तो वह किसी अन्य संस्था में सेवार्थी को जाने का परामर्श देता है। वैयक्तिक समाज कार्य में व्यावहारिक सेवाओं को उपलब्ध कराना कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है और वह इन्हीं सेवाओं को उपलब्ध कराते हुए उपचार करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की सेवाओं में वित्तीय सहायता, शरण दिये जाने,

विधिक परामर्श अथवा चिकित्सकीय सहायता, शिविरों की व्यवस्था आदि सहायता उपलब्ध करायी जाती है।

1. पर्यावरण में परिवर्तन **(Environmental Manipulation)**

वैयक्तिक समाज कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्याओं का समाधान करने के लिए उसके पर्यावरण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। यह परिवर्तन सेवार्थी की स्वीकृति पर आधारित होता है न कि कार्यकर्ता की मनमानी पर। कार्यकर्ता अपनी सेवाओं को सेवार्थी पर जबरदस्ती नहीं थोपता बल्कि सेवार्थी की इच्छानुसार उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परामर्श देता है। सेवार्थी कार्यकर्ता की बात स्वीकार या अस्वीकार करने में स्वतंत्र होता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी के पर्यावरण में परिवर्तन लाने से पूर्व उन कारकों पर ध्यान देता है जिनके द्वारा समस्या इतनी व्यापक हुई है और उन कारकों को योजनाबद्ध तरीके से परिवर्तित करने का सफलतम प्रयत्न करता है, जिससे कि भविष्य में सेवार्थी को इस प्रकार की समस्या से न जूझना पड़े। पर्यावरण में परिवर्तन के दौरान सेवार्थी को एक से अधिक लाभकारी परिस्थितियों में रखा जाता है ताकि वह अपने को एक अधिक हितकारी वास्तविकता में पाकर अच्छे ढंग से कार्य करने लगे और बाद में अपनी सामान्य जीवनचर्या को अधिक अच्छे ढंग से कार्यान्वित कर सके।

9.9 वैयक्तिक समाज कार्य का विषय क्षेत्र

वैयक्तिक समाज कार्य का प्रत्येक उस क्षेत्र में प्रयोग किया जा सकता है जिसमें व्यक्तियों को समायोजन की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हो।

कुछ क्षेत्र जिनमें वैयक्तिक समाज कार्य का विशेष प्रकार से प्रयोग होता है इस प्रकार हैं :

1. परिवार कल्याण

इस क्षेत्र में वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग परिवार के सदस्यों की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं अर्थात् उनकी स्थिति एवं भूमिकाओं से सम्बन्धित समस्याओं, के समाधान के लिये किया जाता है। इस क्षेत्र में यद्यपि समाजकार्य की अन्य प्रणालियों का भी प्रयोग होता है तथापि मुख्य रूप से वैयक्तिक समाज कार्य का ही प्रयोग होता है।

2. बाल अपराध या अपराध

इस क्षेत्र में बाल अपराधियों या अपराधियों के सुधार के लिए वैयक्तिक समाज कार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता है, अपराधी के साथ वैयक्तिक व्यवसायिक

सम्बन्ध स्थापित करके कार्यकर्ता उसकी समस्या का वैज्ञानिक अध्ययन करता है और अपने ज्ञान निपुणता एवं अनुभव के आधार पर उसके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता हैं।

3. चिकित्सालयों में समाजकार्य

वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग चिकित्सालयों में रोगियों की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिये किया जाता है। देखा गया है कि बहुत से शारीरिक रोग संवेगात्मक एवं मानसिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त शारीरिक रोग के परिणामस्वरूप भी अनेक मानसिक एवं संवेगात्मक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। विशेष प्रकार से रोगी को समायोजन बनाए रखने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। फिर रोगी और चिकित्सालय पद्धति में समायोजन और चिकित्सा के उपरान्त रोगी के पुनर्वास की समस्याएं भी होती हैं। इन सब समस्याओं को सुलझाने के लिए वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग किया जाता हैं। चिकित्सालयों में रोगियों के साथ जब वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग होता है तो उसे भैषजिक समाजकार्य (मेडिकल सोशल वर्क) कहते हैं।

4. मानसिक रोग चिकित्सा

मानसिक रोगों की चिकित्सा में भी वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग किया जाता हैं। आधुनिक विज्ञानों ने सिद्ध कर दिया है कि बहुधा मानसिक विचलन का कारण सामाजिक समायोजन का अभाव है। इसके अतिरिक्त मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कारकों के कारण भी मानसिक विचलन उत्पन्न होता है। मुख्य समस्या रोगी को वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कराना है और इस सम्बन्ध में वैयक्तिक समाज कार्य बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ हैं। औषधियों के साथ–साथ जब मनोवैज्ञानिक परामर्श, संवेगात्मक सहारा, एवं अहं सम्बन्धी सहायता मिलती है तभी समस्या का स्थाई रूप से समाधान होता है।

5. शिशु कल्याण

शिशु कल्याण के क्षेत्र में भी वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग किया जाता है। अनाथ बच्चों के दत्तक ग्रहण या उनके लिये पालनगृह ढूंढ़ने में या उन्हें संस्थाओं अर्थात् आश्रमों आदि में रखने के सम्बन्ध मे वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग किया जाता है। इन सब परिस्थितियों में बच्चे और उसके पर्यावरण में समायोजन की समस्या होती है। वैयक्तिक समाज कार्य इन समस्याओं को सुलझाने में एक विशेषज्ञ सेवा का रूप रखता हैं।

6. श्रम कल्याण

श्रम कल्याण के क्षेत्र में भी वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग औद्योगिक परामर्श के रूप मे किया जाता है। श्रमिकों की अभ्यन्तर वैयक्तिक समस्याओं को सुलझाना उनकी उत्पादन शक्ति एवं उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिये अनिवार्य हैं। बहुधा औद्योगिक झगड़े श्रमिकों के असामंजस्य के कारण होते हैं।

अतः वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग औद्योगिक परामर्श के रूप में किया जाता है।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग किसी भी ऐसे क्षेत्र मे हो सकता है और होता है जहां वैयक्तिक असामंजस्य हो और जहां व्यक्ति को अपनी स्थिति एवं उससे सम्बन्धित भूमिकाओं के सम्पादन में कठिनाई का अनुभव हो रहा हो। इन दिनों परिवार कल्याण के क्षेत्र मे भी वैयक्तिक समाज कार्य का प्रयोग किया जा रहा है।

9.10 सार संक्षेप

वैयक्तिक समाज कार्य तभी प्रारम्भ होता है जब सेवार्थी अपनी समस्या के किसी अंग में कर्ता को भागीदार बनाता है अर्थात् अपनी समस्या के संवेदनशील पक्ष के विषय में जानकारी प्रदान करता है। यह तभी सम्भव हो पाता है जब सेवार्थी को यह विश्वास हो जाता है कि कर्ता उसके प्रति वास्तविक सहानुभूति रखता है तथा उसकी समस्या के समाधान के लिए ईमानदारी से उसकी सहायता करना चाहता है। यह भावना सेवार्थी द्वारा कर्ता से सम्बन्धित व्यक्तिगत प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होती है।

इन उद्‌देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यावसायिक सम्बन्धों की स्थापना आवश्यक होती है। विंसटेक ने इन सम्बन्धों को उपकरण माना है, इसकी स्थापना हेतु जिन मार्गदर्शक सिद्धान्तों का उल्लेख किया है उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है व्यक्तिकरण का सिद्धान्त ।

वैयक्तिक समाज कार्य सहायता के लिए आने वाला प्रत्येक सेवार्थी एक व्यक्ति होता है। यद्यपि उसकी समस्या की जड़े सामाजिक पर्यावरण में हो सकती है फिर भी समस्या उसकी अपनी एवं नितान्त व्यक्तिगत समस्या है। इस समस्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु सेवार्थी का सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तिकरण आवश्यक होता है। कार्यकर्ता को यह समझना आवश्यक है कि सेवार्थी का व्यक्तित्व एक अलग व्यक्तित्व है और उसकी समस्या एक अलग समस्या।

9.11 अभ्यास प्रश्न

1. वैयक्तिक समाज कार्यकर्ता और सेवार्थी के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करें ?
2. विषयात्मक सम्बन्ध तथा आत्मचेतनात्मक सम्बन्ध पर टिप्पणी लिखें ?
3. वैयक्तिक समाज कार्य के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए ?
4. व्यक्तिकरण के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
5. भावनाओं के उद्देश्यपूर्ण प्रकटन के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
6. नियंत्रित संवेगात्मक सम्बन्धों के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
7. स्वीकृति के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
8. अनिर्णयात्मक मनोवृत्ति के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
9. सेवार्थी के आत्मनिर्देशन के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
10. गोपनीयता के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिये ?
11. वैयक्तिक समाज कार्य के चरणों की व्याख्या करें ?
12. निदान के चरण क्या हैं ?
13. गतिशील निदान का उल्लेख कीजिये ?
14. क्लीनिकल निदान का उल्लेख कीजिये ?
15. कारणात्मक निदान का उल्लेख कीजिये ?
16. उपचार क्या है ? प्रत्यक्ष उपचार को स्पष्ट करें ?
17. वैयक्तिक समाज कार्य के विषय क्षेत्र की व्याख्या करें ?

9.12 पारिभाषिक शब्दावली

Guidance	पथप्रदर्शन	Re-educative	पुनर्शिक्षात्मक
Counselor	मंत्रणादाता	Directive	निर्देशात्मक
Circumstances	परिस्थितियां	Reconstructive	पुनर्रचनात्मक
Clarification	स्पष्टीकरण	Free Association	मुक्त साहचर्य
Subjective	विषयात्मक	Transference	संक्रमण
Objective	वस्तुगत	Dream Analysis	स्वप्न–विश्लेषण
Regime	व्यवस्था	Monitoring	अवबोधन
Therapy	चिकत्सा	Evaluation	मूल्यांकन

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्द संस्थान लखनऊ।

2. डा. कृपाल सिंह सुदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पटिलकेशन्स, लखनऊ।
3. आर0के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम प्रकाशन : रावत, नई दिल्ली।
4. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।

इकाई–10

समाज कार्य की प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध

Inter-relation between Methods of Social Work

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 परिचय

10.2 वैयक्तिक सेवा कार्य

10.3 उपचार की मुख्य प्रविधियॉ

10.4 सामाजिक सामूहिक कार्य

10.5 समुदायिक संगठन

10.6 समाज कल्याण प्रशासन

10.7 समाज कार्य अनुसंधान

10.8 सार संक्षेप

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.10 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

10.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के बाद आप :–

- वैयक्तिक सेवा कार्य को समझ सकेगें।

- वैयक्तिक सेवा कार्य की उपचार की मुख्य प्रविधियों को जान सकेगें।
- सामाजिक सामूहिक कार्य को समझ सकेगें।
- समुदायिक संगठन को समझ सकेगें।
- समाज कल्याण प्रशासन को समझ सकेगें।
- समाज कार्य अनुसंधान को समझ सकेगें।

10.1 परिचय

आज मनुष्य अनेक समस्याओं से ग्रसित है। ये समस्याएँ एक तो अपने वर्तमान संदर्भ से जुड़ी होती है और दूसरे परिवर्तनों से सम्बन्धित होती हैं। प्रायः दो प्रकार की समस्याएँ भौतिक तथा मनोसामाजिक मनुष्य को अधिक पीड़ित करती हैं। इनमें आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। अतः हर समस्या के निदान व उपचार में दोनों पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक होता है। समाज की जटिलता के साथ–साथ समस्याओं में भी जटिलता बढ़ी है और इस जटिलता को समझना समाज–कल्याण कार्यकताओं के लिए आवश्यक हो गया है।

यद्यपि यह सत्य है कि भौतिक समस्याओं का निदान एवं उपचार भौतिक साधनों द्वारा तथा मनोसामाजिक समस्याओं का निदान व उपचार भौतिक साधनों द्वारा तथा मनोसामाजिक समस्याओं का निदान व उपचार मनोसामाजिक साधनों द्वारा ही संभव होता है परन्तु आज किसी भी समस्या के निदान व उपचार में सभी पक्षों का ध्यान रखा जाता है क्योंकि मनुष्य पर प्रत्येक कारक का अपना विशेष प्रभाव पड़ता है।

मनोसामाजिक समस्याओं के निदान व उपचार के वैज्ञानिक तरीके को समाज कार्य कहते हैं। **प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार** :"समाज कार्य जनतांत्रिक मूल्यों से अभिभूत सामाजिक अभिकरण के माध्यम से सेवार्थी को उसकी भागीदारी के साथ–साथ मनोसामाजिक समस्याओं से मुक्ति दिलाता है और स्वस्थ जीवन से सामंजित कर गति प्रदान करने की चेष्टा करता है।"

10.2 वैयक्तिक सेवा कार्य

आधुनिक समाज कार्य का तात्पर्य एक प्रकार की व्यावसायिक सेवा है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह की सहायता की जाती है जिससे वह संतोषजनक संबंध स्थापित कर सके और इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुसार जीवन–स्तर को

प्राप्त कर सके।समाज कार्य व्यक्ति की सहायता अपनी विशेष प्रणालियों द्वारा करता है। ये 6 प्रणालियाँ या पद्धतियाँ हैं जिनमें से वैयक्तिक सेवा का कार्य, सामाजिक सामूहिक कार्य, सामुदायिक संगठन प्राथमिक हैं और समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक अनुसन्धान, सामाजिक क्रिया द्वितीयक हैं। व्यक्ति की सहायता प्रत्यक्ष रूप से प्रथम तीन पद्धतियों द्वारा ही की जाती हैं परन्तु इसी कार्य में द्वितीयक पद्धतियों से सहायता ली जाती है। एक व्यक्ति के लिए आवश्यक नहीं कि उसे केवल एक ही पद्धति की आवश्यकता हो। उसके साथ कई या अन्य सभी पद्धतियों का उपयोग आवश्यक हो सकता है। अतः एक स्थिति में सभी पद्धतियां अन्तः–सम्बन्ध रखती हैं।

समाज कार्य का उद्देश्य सुगठित समाज की रचना करना तथा व्यक्ति का समाज में इस प्रकार से समायोजन करना है जिससे वह अपना तथा समाज का कल्याण कर सके। अतः जब कार्यकर्ता एक व्यक्ति के साथ कार्य करता है तो उसे सामाजिक वैयक्तिक कार्य, जब समूह के माध्यम से व्यक्ति की सहायता करता है तो उसे सामूहिक कार्य और जब सम्पूर्ण समुदाय की सहायता करता है तो उसे सामुदायिक संगठन कार्य कहते हैं। अन्य तीन प्रणालियाँ इन प्रणालियों में सहायता प्रदान करती हैं। यहाँ पर हम इनका सूक्ष्म वर्णन, समझने के उद्देश्य से, करेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दी तक व्यक्ति का दुःख व कष्ट उसके कर्मों का फल समझा जाता था तथा विश्वास किया जाता था कि उसे इन दुःखों व कष्टों को भोगना ही पड़ेगा। व्यक्ति द्वारा इन कष्टों व दुःखों को दूर कर पाना सम्भव नहीं है। परन्तु जैसे–जेसे ज्ञान का विकास हुआ, इस विचारधारा में परिवर्तन आया। एडवर्ड डेनिसन, सर चार्ल्स लाथ इत्यादि विद्वानों ने वैयक्तिक सहायता की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया मेरी रिचमन्ड पहली कार्यकर्ता थीं जिन्होंने सन् 1917 ई0 में वैयक्तिक सेवा कार्य को परिभाषित करने का प्रयास किया। उनके अनुसार वैयक्तिक सेवा कार्य एक कला है जिसके द्वारा स्त्री, पुरुष और बालकों के सामाजिक सम्बन्धों में अपेक्षाकृत अधिक समायोजन लाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार वैयक्तिक कार्य व्यक्तित्व–विकास की एक प्रक्रिया है। हैमिल्टन आदि विद्वानों ने वैयक्तिक कार्य को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखता है जो व्यक्तित्व (आन्तरिक सम्बन्ध) और सामाजिक परिस्थितियों (बाह्य सम्बन्ध) में समायोजन स्थापित करने का प्रयास करता है।

अतः यह बात स्पष्ट है कि इस विधि द्वारा केवल व्यक्ति की सहायता की जाती है तथा वहीं केन्द्र–बिन्दु होता है। इस विधि से व्यक्ति की आन्तरिक एवं वाह्य क्षमताओं का ज्ञान होता है। कार्यकर्ता व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करता है जिससे वह अपनी क्षमताओं में आवश्यकतानुसार विकास करके बाह्य

जगत् से समायोजन स्थपित कर सके तथा अपना स्थान प्राप्त करके भूमिका निभा सके। परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि वैयक्तिक कार्य में केवल व्यक्ति तक ही कार्य सीमित नहीं रहता है। चूँकि व्यक्ति पर बाह्य कारक प्रत्येक क्षण अपना प्रभाव डालते हैं। इसलिए बाह्य कारकों के सम्बन्ध में भी यह कार्य करता है। वह उन सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक कारकों का पता लगाता है जिनके कारण व्यक्ति कष्ट अनुभव करता है इसके उपरान्त वह ऐसी शक्तियों का विकास करता है जिनसे स्वयं व्यक्ति उन पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जहां एक ओर व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाया जाता है वहीं दूसरी ओर समाज को स्वस्थ नागरिक प्रदान करने में सहायता की जाती है।

वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया में कार्यकर्ता का सम्बन्ध मुख्यतः तीन कार्यों से रहता है :–

(1) सेवार्थी की समस्या के सम्बन्ध में आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण से सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन एवं अध्ययन।

(2) समस्या का वैयक्तिक प्रविधियों द्वारा निदान।

(3) बाह्य तथा आन्तरिक साधनों द्वारा उसका उपचार।

समस्या का अध्ययन कार्यकर्ता निरीक्षण, अन्वेषण तथा वैयक्तिक इतिहास–वृत्त की प्रविधियों के आधार पर करता है। निदान का कार्य भी साथ ही चलता रहता है। साधारणतया कार्यकर्ता निदान में मूल्यांकन, कारणान्वेषण तथा श्रेणीकरण के चरणों में कार्य करता है। कार्यकर्ता व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समस्या का मूल्यांकन करता है। वह देखता है कि समस्या क्या है, उसका स्वरूप क्या है, वास्तविकता क्या है तथा क्या कारण है जिससे सेवार्थी अधिक पीड़ित है। वह सेवार्थी के प्रयासों एवं उसकी क्षमताओं को भी देखता है। वह बाह्य तथा आन्तरिक कारकों का कारण क्या है तथा वास्तविक समस्या क्या है। इसके पश्चात् वह निश्चित करता है कि सेवार्थी को किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। उपर्युक्त बातें निश्चित कर लेने के उपरान्त उपचार कार्य प्रारंभ होता है।

10.3 उपचार की मुख्य प्रविधियाँ

(1) **अन्वेषण**–अन्वेषण द्वारा दोनों कार्य, उपचार तथा तथ्यों का संकलन, किए जाते हैं। कार्यकर्ता घनिष्ठतम संबंध स्थापित करके सेवार्थी की समस्या की तह में प्रविष्ट होता है। वह स्वयं वार्तालाप के माध्यम से अपनी समस्या के कारणों जान लेता है अतः उसे स्वयं सान्त्वना प्राप्त होती है।

(2) **परिस्थितियों में सुधार एवं परिवर्तन** – सेवार्थी बाह्य परिस्थितियों की जटिलता के कारण समायोजन नहीं कर पाता है। कार्यकर्ता इस विधि द्वारा उसके वातावरण में परिवर्तन लाता है तथा तनाव–पूर्ण स्थिति को कम करता है।

(3) **आलम्बन**–कार्यकर्ता अहम् शक्ति के विकास एवं वृद्धि में सेवार्थी को साहस दिलाता है। उसमें आशा का संचार करता है तथा उस पर पड़ने वाले दबाव को कम करता है।

(4) **शिक्षण**–कार्यकर्ता सेवार्थी को समय एवं आवश्यकतानुसार शिक्षा प्रदान करता है जिससे समस्या के विषय में उसे ज्ञान होता है।

(5) **निर्देशन**–कार्यकर्ता को कभी–कभी किसी विषय पर सेवार्थी को निर्देशन भी देना होता है।

(6) **तादात्मीकरण**–कार्यकर्ता सेवार्थी की भावनाओं के संबंध स्थापित करता है। सेवार्थी उसको अपना हितैषी समझने लगता है और इससे समस्या के समाधान में सहायता मिलती है।

(7) **स्वीकृति**–कार्यकर्ता सेवार्थी को जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करता है। वह उसका आदर करता है। वह पाप से घुणा, पापी से नही' का सिद्धांत अपनाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि सेवार्थी स्पष्ट रूप से सच्चाई बता कर राहत प्राप्त करता है।

(8) **प्रोत्साहन**–कार्यकर्ता सेवार्थी को समस्या के समाधान में प्रोत्साहन देता है।

(9) **पुष्टीकरण**– वह यथार्थ विचारों का पुष्टीकरण करता है जिससे विश्वास जाग्रत होता है।

(10) **सामान्यीकरण**–सेवार्थी कभी–कभी अपने को इतना दोषी ठहराता है कि उसकी सभी क्रियाएँ उसके इस विचार से प्रभावित हो जाती है और उसका जीवन नरक बन जाता है। कार्यकर्ता इस विधि द्वारा उसको बताता है कि वही केवल ऐसा नहीं है बल्कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्होंने इसी प्रकार के कार्य किए हैं।

(11) **व्याख्या**– व्याख्या द्वारा कार्यकर्ता सेवार्थी के भ्रमों को दूर करता हैं और उसको वास्तविकता से परिचित कराता है।

(12) **पुनः विश्वासीकरण** – कार्यकर्ता सेवार्थी में विश्वास पैदा करता है कि उसकी समस्या का समाधान संभव है और उसमें शक्ति का विकास करके समाधान किया जा सकता है।

(13) **स्पष्टीकरण**–सेवार्थी को कार्यकर्ता उसकी समस्या के कारणों से अवगत कराता है। प्रभावशील कारकों के विषय में बताता है और उसके व्यवहार को स्पष्ट करता है। फलतः सेवार्थी स्वयं अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

(14) **प्राख्या**–अर्धचेतन स्तर की समस्याओं और कारणों पर कर्ता प्रकाश डालता है और स्पष्ट करता है।

(15) **सलाह**–सेवार्थी को कार्यकर्ता वहाँ सलाह देता है जहाँ उसका सलाह की आवश्यकता का अनुभव होता है।

(16) **सहयोग**–कार्यकर्ता सेवार्थी को सहयोग प्रदान करता है।

कालिस के अनुसार उपचार दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार के उपचार के अन्तर्गत वे क्रियाएँ आती हैं जिनके द्वारा कार्यकर्ता स्वयं प्रयास करके सेवार्थी के पर्यावरण में सुधार करता है। दूसरे प्रकार के उपचार के अन्तर्गत विशेषकर वे मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ आती हैं जिन्हें साक्षात्कार के माध्यम से प्रयोग करते हुए कार्यकर्ता सेवार्थी को अपने प्रयासों के द्वारा स्वयं में परिवर्तन लाकर समस्याओं को हल करने के योग्य बनाने में मदद करता है।

10.4 सामाजिक सामूहिक कार्य

समूहिक कार्य के अन्तर्गत समूह ही सेवार्थी होता है अर्थात् व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है जिससे समूह की उन्नति एवं विकास संभव होता है। कार्यकर्ता विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से समूह में उन्नति एवं विकास लाता है। व्यक्ति के लिए समूह आवश्यक होता है अतः सामूहिक कार्य समूह–विकास द्वारा व्यक्ति के विकास एवं उन्नति में सहयोग देता है। वह व्यक्ति और समूह की एक ही समय में सहायता करता है। वह समूह को इस प्रकार कार्य करने के लिए उत्साहित करता है जिससे सामूहिक अन्तःक्रिया तथा कार्यक्रम दोनों ही व्यक्ति के विकास और वांछित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दें।

ट्रेकर के अनुसार सामाजिक सामूहिक कार्य–कार्य की एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्ता कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में व्यक्तियों की परस्पर सम्बद्ध क्रियाओं का मार्गदर्शन करता है जिससे वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर सकें और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायकि विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं योग्यताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों से लाभान्वित हो सकें।

10.5 सामुदायिक संगठन

सामुदायिक संगठन का तात्पर्य किसी विशेष क्षेत्र में वहाँ की आवश्यकताओं का पता लगाकर तथा साधनों की खोज करके उसमें सामंजस्य स्थापित करना होता है। इस प्रक्रिया के मध्य जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उनको कार्यकर्ता दूर करने का प्रयास करता है, जिसके परिणामस्वरूप समुदाय अपनी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को समझने में पूर्ण समर्थ होता है तथा समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है। सामुदायिक कार्यकर्ता का उद्देश्य चेतन या अर्धचेतन समस्याओं को प्रकाश में लाना, लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित करना, समस्या के समाधान के उपाय सोचना , उन पर वाद विवाद करना, कार्यक्रम नियोजित करना, लोगों को उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित करना तथा सहयोग प्राप्त करना होता है।

सामुदाय में सदैव ऐसे कारक मौजूद रहते है जो संगठन को कमजोर बनाने की सदैव सोचा करते हैं और समय आने पर कमजोर कर देते हैं। यह अवसर उस समय विशेष रूप से देखने को मिलता है जब संघर्ष या कोई विशेष परिवर्तन होता है। सामुदायिक कार्यकर्ता सदैव प्रयत्न करता है कि भौतिक तथा अभौतिक कारकों में संतुलित रूप से परिवर्तन हो जिससे सामान्य स्थिति बनी रहे।

सामुदायिक संगठन की निम्नलिखित प्रमुख अवस्थाएँ होती हैं :–

(1) सामुदायिक कल्याणकारी संरचना, उसकी सामाजिक एजेन्सियों और उनके कार्यों के सम्बन्ध में ज्ञान,

(2) जनता को सर्वोत्तम सेवाएँ प्रदान करने के लिए सार्वजनिक तथा असार्वजनिक सामाजिक एजेन्सियों में उपलब्ध सुविधाओं में सहयोग,

(3) सार्वजनिक तथा असार्वजनिक एजेन्सियों के स्तर में सुधार,

(4) व्यापक मानवीय आवश्यकताओं का निश्चय करने के लिए सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षणों का प्रयोग,

(5) उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखते हुए इन आवश्यकताओं का विश्लेषण करना,

(6) आँकड़ों का संश्लेषण, तथ्यों का परीक्षण और आवश्यकताओं की अविलम्बिता (Urgency) तथा महत्व के अनुसार प्राथमिकता का निर्धारण,

(7) अमहत्पूर्ण (Outlived) सेवाओं का लोप अथवा समंजन और आवश्यकताओं के अनुसार नयी सेवाओं का विकास,

(8) सभी इच्छुक समूहों एवं जनता के लिए सेवाओं के विस्तार अथवा नयी सेवाओं के सृजन के उद्देश्य से आवश्यकताओं की व्याख्या,

(9) समाज कल्याण कार्यों के लिए आर्थिक एवं नैतिक बल का संग्रह और

(10) शिक्षा, सूचना तथा लोगों के सक्रिय भाग द्वारा समाज कल्याण आवश्यकताओं के प्रति सामुदायिक चेतना की सृष्टि।

समुदायिक संगठन की रूपरेखा के अन्तर्गत समाज कार्यकर्ता अपने व्यावसायिक ज्ञान, कुशलता तथा अनुभव का योगदान करता है :

(क) सामाजिक दशाओं की जानकारी के कारण समाज कार्यकर्ता अन्य लोगों की स्वस्थ एवं कल्याणकारी आवश्यकताओं की पहचान करने में हाथ बँटाता है।

(ख) उसमें आवश्यक सर्वेक्षण तथा गवेषणात्मक तथ्य प्राप्त करने तथा दशाओं में सुधार की योजना तैयार करने के लिए लोगों को प्रेरित करने की योग्यता रहती है।

(ग) सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक आवश्यकताओं की व्याख्या अपने सेवार्थियों, पड़ोस और समुदाय के लिए करने में समर्थ होता है।

10.6 समाज कल्याण प्रशासन

समाज कार्य मुख्य रूप से सामाजिक संस्थाओं या विभागों या संबंधित संगठनों, जैसे चिकित्सालय, न्यायालय, विद्यालय, सुधार करने एवं दण्ड देने वाली संस्थाओं में किया जाता है। अतः कार्यकर्ता के लिए समाज कल्याण प्रशासन का ज्ञान होना आवश्यक होता है। समाज कल्याण प्रशासन सरकारी संस्थाओं में सामाजिक अधिनियम को कार्यान्वित करता है तथा लोगों की सेवा में कानूनों, नियमों तथा नियंत्रणों का रूपान्तर करता है। इसका तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा समाज कल्याण क्षेत्र की सार्वजनिक तथा निजी संस्थाओं का प्रशासन एवं संगठन किया जाता है। इसके अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ आती हैं जो किसी संस्था को कार्यक्रम का व्यावहारिक रूप देने में सहायता करती हैं।

समाज कल्याण प्रशासन का व्यावहारिक रूप सामान्य प्रशासन के समान हैं। परन्तु इसमें मानव समस्याओं के समाधान हेतु तथा मानव आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रयत्न किया जाता है। अतः प्रशासक के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। उसके लिए समाज कार्य के दर्शन, उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों से अवश्य परिचित होना चाहिए। उसे समाजकार्य के तरीकों, सामाजिक निदान के ढंग, समूह तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा उनके संस्था से संबंध इत्यादि का ज्ञान आवश्यक होता है।

जान सी0 किडनी (John C. Kidneigh) के अनुसार : "समाज कल्याण प्रशासन सामाजिक नीति को सामाजिक सेवाओं में बदलने तथा सामाजिक नीति को मूल्यांकित एवं संशोधित करने में अनुभव के प्रयोग की एक प्रक्रिया है।"1

आर्थर डनहम (Arthur Dunham) के अनुसार : "समाज कल्याण प्रशासन से हमारा आशय उन सहायक एवं सुविधा–जनक क्रिया–कलापों से है जो किसी सामाजिक संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए अनिवार्य हैं।2

प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार : "सामाजिक अभिकरण तथा सरकारी या गैर सरकारी कल्याण कार्यक्रमों से संबंधित प्रशासन को समाज कल्याण कहते हैं। यद्यपि इसकी विधियाँ–प्रविधियाँ या तौर–तरीके इत्यादि भी लोक–प्रशासन या व्यापार–प्रशासन की ही भाँति होते हैं किन्तु इसमें एक बुनियादी भेद यह होता है कि इसमें सभी स्तरों पर मान्यता और जनतांत्रिकता का अधिक से अधिक ध्यान करके ऐसे व्यक्तियों या वर्ग से संबंधित प्रशासन किया जाता है जो कि बाधित होते हैं।"3

10.7 समाज कल्याण प्रशासन का विश्लेषण

(1) समाज कल्याण प्रशासन एक प्रक्रिया है जिसमें विशेष ज्ञान, सिद्धांत एवं निपुणता होती है।

(2) इसके द्वारा सामाजिक संस्थओं का नियंत्रण, संचालन तथा संगठन किया जाता है।

(3) इस प्रक्रिया में निर्देशन, नियोजन, अन्तर–उत्तेजना, संगठन, सहयोग, संबंध, अनुसन्धान आदि कारकों का उपयोग किया जाता है।

(4) व्यक्तियों, समूहों तथा समुदायों को सामाजिक सेवा प्रदान करता है।

(5) संस्था के उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों, बजट, सेवार्थी–चयन, कार्यकर्ता–चयन, कर्मचारी गण चयन का कार्य करता है। सेवाओं का मूल्यांकन भी करता है।

(6) सामाजिक संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति इसके द्वारा की जाती है।

(7) प्रशासन प्रजातांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित होता है।

10.7.1 प्रजातांत्रिक प्रशासन की प्रविधियाँ

(1) समूह–नेतृत्व की प्रविधि,

(2) शिक्षण की प्रविधि,

(3) समस्या–निवारण की प्रविधि,

(4) समूह–वार्तालाप की प्रविधि,

(5) शिक्षात्मक अधीक्षण की प्रविधि।

10.7.2 समाज कार्य अनुसंधान

समाज कार्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अधिकाधिक सहायता तथा विकास एवं उन्नति करने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अन्तर्गत सिद्धांतों, तरीकों, ढंगों, निपुणताओं तथा प्रविधियों का प्रयोग होता है। अतः इन क्षेत्रों में दिनोंदिन नवीनीकरण एवं परिवर्तन की आवश्यकता होती है क्योंकि व्यक्ति स्वयं एक परिवर्तनशील एवं विकासशील प्राणी है। समाज कार्य अनुसंधान इस आवश्यकता को पूरा करता है। वह नए–नए तरीकों की खोज करता है, सिद्धांतों का सत्यापन एवं पुनर्स्थापन करता है तथा नवीन ज्ञान की खोज करता है। आवश्यकतानुसार कार्य–कारण में संबंध भी स्पष्ट करता है। एक बात यहाँ पर ध्यान देने की है कि चूँकि समाज कार्य का व्यक्तियों की समस्याओं से सम्बन्ध होता है अतः समाज कार्य अनुसंधान में भी इनसे संबंधित सिद्धांतों, अवधारणाओं, प्रविधियों तथा निपुणताओं इत्यादि के विषय में खोज की जाती है। सारांश में, इसके अन्तर्गत उपचार तथा सेवा प्रदान करने की विविध प्रणालियों, उनकी आवश्यकताओं तथा उनसे संबंधित नये साधनों की खोज की जाती है।

अनुसंधान का उद्देश्य सभी वैज्ञानिक क्षेत्रों में ज्ञान का विकास एवं वृद्धि करना है। समाज कार्य अनुसंधान एक ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा समाज कार्य को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। प्रारंभ में समाज कार्य सामाजिक विद्वानों के अनुसंधान के तरीकों को अपनाने में हिचकिचाता था। अतः समाज कार्य अनुसंधान में वैज्ञानिक तरीकों को नहीं प्रमाणित किया गया । प्रारंभिक सामुदायिक अध्ययन (Early Community Studies) समाज कार्यकर्ता द्वारा सामाजिक समस्याओं, संस्थागत कार्यक्रमों, संरचना, कार्य पद्धति तथा समाज कार्य का इतिहास, भौतिक तथा उपचारात्मक अवलोकन इत्यादि खोजों ने केवल नयी सामाजिक सेवाओं पर बल दिया। इस प्रकार के अध्ययन ने सामुदायिक समाज कल्याण योजना को सरल बनाया परन्तु मानव प्रकृति, व्यवहार तथा सम्बन्धों के वैज्ञानिक ज्ञान को गहन नहीं बनाया। इन अध्ययनों ने समाज कार्य के तरीकों की आवश्यकता को सिद्ध किया।

नए ज्ञान एवं तरीकों के विकास के साथ–साथ आनुसंधान का क्षेत्र भी अब बढ़ता जा रहा है। परन्तु सामाजिक अनुसंधान तथा समाज कार्य अनुसंधान में अन्तर है क्योंकि सामाजिक अनुसंधान सामाजिक मूल्यों, धारणाओं तथा कार्य–कारण के

सम्बन्धों को निरपेक्ष भाव से देखता है। इसके लिए आवश्यक नहीं कि प्राप्त निष्कषों का व्यावहारिक परिणामों से सम्बन्ध हो ही अतः ऐसा अनसंधान विशुद्ध अनसंधान (Pure Reserch) होता है। परन्तु समाज कार्य अनुसंधान सामाजिक शक्तियों का अध्ययन व्यक्ति के सन्दर्भ में करता है। उसका उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक समस्याओं का समाधान करना है। वह देखता है कि नये अनुसंधान किस प्रकार सेवार्थी (व्यक्ति, समूह तथा सम्पूर्ण समुदाय) की सेवाओं में सुधार ला सकते हैं।

10.7.3 समाज कार्य अनुसंधान की परिभाषा

समाज कार्य अनुसंधान एक ऐसी खोज है जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके ऐसे उपायों की खोज की जाती है जिससे सेवार्थियों (व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज) को अधिक अच्छे ढंग से सेवा प्रदान की जा सके तथा समस्याओं का समाधान एवं व्यक्ति का सर्वोन्मुखी विकास सम्भव हो सके।

फ्रीडलैन्डर के अनुसार : "समाज कार्य शोध का अर्थ है, समाज कार्य के संगठन, कार्य एवं प्रणालियों की वैधता का आलोचनात्मक अन्वेषण और वैज्ञानिक जाँच जिससे उन्हें प्रमाणित किया जा सके, उनका सामान्यीकरण किया जा सके और समाज कार्य के ज्ञान और निपुणता में वृद्धि की जा सके।"1

वेब्स्टर शब्द–कोष के अनुसार : "सामाजिक शोध एक अध्ययन–परायण अन्वेषण है जो सामान्यतः आलोचनात्मक और अत्यन्त विस्तृत जाँच या परीक्षण के रूप में होता है और जिसका उद्देश्य स्वीकृति–प्राप्त परिणामों के विषय में नवीन सूचनाओं के आधार पर पुनः विचार करना है।"

सोशल वर्क इयर बुक, सन् 1949 ई0 के अनुसार : "समाज कार्य शोध का अर्थ है समाज कार्य के कार्यों और प्रणालियों की वैधता की वैज्ञानिक जाँच।"

10.7.4 विशेषताएँ

(1) यह समाज कार्य का एक सहायक तरीका है क्योंकि इसके द्वारा सेवार्थी की सहायता प्रत्यक्ष रूप से नहीं की जाती है।

(2) यह वैज्ञानिक तरीकों को अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत उपयोग में लाता है। इसमें

(3) सेवार्थियों को अधिक वैज्ञानिक ढंग से सेवा प्रदान करने के लिए नये तरीकों की खोज की जाती है।

(4) इसके द्वारा कार्यकर्ता को नवीन ज्ञान, प्रविधि, निपुणता तथा कौशल प्राप्त होता है।

(5) उपलब्ध ज्ञान को प्रमाणित किया जाता है।

(6) सामाजिक घटना के कारण संबंधी कारकों की खोज की जाती है।

(7) पुरानी उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है।

निम्नलिखित चरणों का उपयोग किया जाता है :–

(1) समस्या क्षेत्र के विषय का चुनाव,

(2) समस्या का परिसीमन,

(3) उपलब्ध सामग्री का अध्ययन,

(4) उपकल्पना का निर्माण,

(5) प्रश्नावली का निर्माण तथा

(6) प्रारम्भिक परीक्षा, तथ्यों का संकलन, तथ्यों का विश्लेषण एवं प्रतिवदेन–निर्माण इत्यादि।

10.7.5 समाज कार्य अनुसंधान के प्रकार

फिलिप क्लीन (Philip Kleen) ने पांच प्रकार बताए हैं :–

(1) सेवाओं की आवश्यकता का स्थापन, परिचय एवं मापन संबंधी अध्ययन।

(2) प्रदत्त सेवाओं की आवश्यकता के संबंध में मापन संबंधी अध्ययन।

(3) समाज कार्य में क्रियाओं के परिणाम का परीक्षण, मापन (प्रामाणिकता) तथा मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन।

(4) सेवा प्रदान करने वाली मूल्य प्रविधियों की क्षमता के परीक्षण सम्बन्धी अध्ययन।

(5) अनुसंधान के ढंगों का अध्ययन।

10.7.6 समाज कार्य अनुसंधान के विषय

(1) उन कारकों का व्यवस्थापन तथा मापन जो सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करते हैं तथा सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता बताते हैं।

(2) दान देनेवाली संस्थाओं के इतिहास, समाज कल्याण अधिनियम, समाज कल्याण कार्यक्रम तथा समाज कार्य की आवश्यकता का अध्ययन।

(3) आशाओं, प्रत्यक्षीकरणों तथा समाज कार्यकर्ताओं की स्थितियों के मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन।

(4) सामाजिक कार्यकर्ताओं के लक्ष्य, निश्चय तथा आत्मचित्र का अध्ययन।

(5) समाज कार्यकर्ताओं की आशाओं, निश्चत तथा क्रियाओं में सम्बन्धों का अध्ययन।

(6) समाज की विविध प्रक्रियाओं का अध्ययन।

(7) उपलब्ध सामाजिक सेवाओं का व्यक्ति, समूह तथा समुदाय की आवश्यकताओं के संदर्भ में उपयोगिता का अध्ययन।

(8) समाज कार्य क्रिया के प्रभावों के परीक्षण, मापन तथा मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन तथा समाज कार्य व्यवहार के लिए वांछित योग्यताओं की खोज।

(9) सेवार्थी की आशाओं, उद्देश्यों, प्रत्यक्षीकरण तथा स्थिति का मूल्यांकन संबंधी अध्ययन।

(10) समाज कार्य के संबंध में सेवार्थी के व्यवहार की प्रतिक्रिया का अध्ययन।

(11) सामाजिक संस्था के अन्तर्गत अनौपचारिक तथा औपचारिक समाज कार्यकर्ताओं की भूमिका की परिभाषा, उनके अन्तर्सम्बन्धों में सहयोग की दशाओं का अध्ययन।

(12) समुदाय में सामाजिक समूहों के मूल्यों तथा वरीयता का अध्ययन जिनके ऊपर समाज कार्य के व्यावहारिक रूप को समर्थन तथा सहयोग के लिए निर्भर होना पड़ता है।

(13) सामाजिक संस्थाओं की विभिन्न इकाइयों में अन्तर्सम्बन्ध तथा उनका सेवार्थी तथा संस्था के स्टाफ पर प्रभाव का अध्ययन।

(14) समाज कार्य अनुसंधान की पद्धति का अध्ययन।

10.7.7 सामाजिक क्रिया

सामाजिक क्रिया, समाज कार्य की एक सहायक प्रणाली है जिसके द्वारा सामान्य सामाजिक समस्याओं का समाधान संगठित सामूहिक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा अन्य क्षेत्रों में उन्नति के लिए जनमत का सहारा आवश्यक होता है। सामाजिक क्रिया का उद्देश्य इच्छित सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक प्रगति करना है। जनमत तथा वैधानिक विचारों को जन–संचार द्वारा प्रभावित करना सामाजिक क्रिया की एक विशेष प्रविधि है। इस प्रणाली का कार्य पर्यावरण में परिवर्तन लाना है।

फ्रीडलैन्डर के अनुसार : "सामाजिक क्रिया एक वैयक्तिक, सामूहिक या सामुदायिक प्रयास है जो समाज कार्य के दर्शन एवं अभ्यास की सीमा के अन्दर किया जाता है और जिसका उद्देश्य सामाजिक उन्नति करना, सामाजिक नीतियों

को परिवर्तित करना एवं सामाजिक विधान, स्वास्थ्य एवं कल्याण सम्बधी सेवाओं में उनति करना है।" **केनेथ प्रे के अनुसार** : "सामाजिक क्रिया एक ऐसा क्रमिक, अन्तरात्मा सम्बन्धी प्रयास है जो उन मौलिक सामाजिक दशाओं एवं नीतियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जिनसे सामाजिक समायोजन एवं असामंजस्य की समस्याएँ उत्पन्न होती है जिनका समाज कार्यकर्ताओं के रूप में हमारी सेवाएँ समाधान करने का प्रयास करती है।" **प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार** : "जब समाज के व्यापक स्तर पर किसी सामाजिक परिवर्तन की चेष्टा की जाती है तो उसे सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत समाहित किया जाता है।"

10.7.8 समाजिक क्रिया के आधारभूत तत्व

(1) समूह तथा समुदाय का सक्रिय रूप से भाग लेना।

(2) जनतान्त्रिक कार्यप्रणाली का कार्यपद्धति में उपयोग होना।

(3) साधनों की उपलब्धि।

(4) लोकतान्त्रिक नेतृत्व की उपस्थिति।

(5) समस्या में सम्बन्धित साधनों का होना।

(6) सामुदायिक सम्पर्क आवश्यक।

(7) बाह्य सहायता की उपलब्धि।

10.7.9 सामाजिक क्रिया के उद्देश्य

(1) स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले कार्य।

(2) सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिए सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार करना।

(3) सामाजिक आँकड़ों को इकटठा करना तथा सूचनाओं का विश्लेषण करना।

(4) अविकसित समूहों के लिए माँग करना।

(5) सामाजिक समस्याओं के लिए ठोस सुझाव तथा प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

(6) नए सामाजिक स्रोतों की खोज करना।

(7) सामाजिक समस्या के प्रति जनता में जागरुकता लाना।

(8) जनता का सहयोग प्राप्त करना।

(9) सरकारी यन्त्र को अपने उददेश्य में योग देने के लिए तैयार करना।

(10) नीति–निर्धारण करने वाली सत्ता से प्रस्ताव स्वीकृत करवाना।

अब हम यहाँ पर उपर्लिखित विधियों का अन्तःसंबंध जानने का प्रयत्न करेंगे–

(1) उद्देश्य के आधार पर सम्बन्ध – समाज कार्य की सभी विधियों का उद्देश्य लगभग समान है। सभी विधियों का उद्देश्य व्यक्ति की अधिक से अधिक सहायता करना है जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके तथा विकास की गति में वृद्धि ला सके। वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य सेवार्थी या एक व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करना होता है जिससे स्वयं सहायता करने की शक्ति का विकास हो और बिना विशेष बाह्य सहायता के वह अपनी समस्या के निराकरण के लिए कदम उठा सके। सामूहिक कार्य में कार्य कर्ता व्यक्ति की सहायता, समूह के माध्यम से करता है। समूह की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास वह अपनी निपुणता एवं योग्यता के आधार पर करके समस्या को स्पष्ट करता है तथा उन्हीं के माध्यम से लक्ष्य तक पहुँचने के कार्यक्रम का नियोजन करता है। व्यक्ति में सामूहिक कार्य के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि गुणों का विकास करता हैं यद्यपि सामूहिक कार्य में केन्द्र–बिन्दु समूह होता है परन्तु व्यक्ति के हित का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर वैयक्तिक सेवा कार्य की भी सहायता ली जाती है। सामुदायिक संगठन का उददेश्य भी समुदाय की सहायता करना है, जिससे वह स्वयं विकास एवं उन्नति कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्ततोगत्वा इन विधियों का उददेश्य व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करना है जिससे वह स्वयं समर्थ हो सके, समस्याओं को समझ सके, समस्या का समाधान करने के साधनों की खोज कर सके तथा स्वयं समाधान कर सके। कार्यकर्ता तो केवल उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल ही सहायता कार्य करता है। परन्तु उददेश्य में ज्यादा घनिष्ठता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ हैं। वैयक्तिक सेवा कार्य में व्यक्ति की समस्याओं के निदान व उपचार पर जोर दिया जाता है।

व्यक्ति या सेवार्थी स्वयं अपनी समस्या को लेकर कार्यकर्ता के पास आता है और वह अपनी प्रविधियों के द्वारा समस्या से ग्रसित व्यक्ति का संबंधित उपचार करता है। समस्या का उपचार इसके उददेश्य का केन्द्र–बिन्दु है। सामूहिक कार्य में 'समूह' व्यक्ति के स्थान पर प्रधान होता है। व्यक्ति गौण हो जाता है। समूह का हित व्यक्ति के हित के ऊपर होता है। समूह का विकास एवं समायोजन संबंधी समस्याओं का समाधान करना समूह कार्य का उददेश्य होता है। कार्यक्रम इसका माध्यम होता है और इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर समूह में परिवर्तन तथा विकास आता है और लक्ष्यों की पूर्ति होती है। अतः इसका उद्देश्य समूह–समस्याओं की शिक्षा, विकास और सांस्कृतिक प्राप्ति पर जोर देना है। सामुदायिक संगठन का

उददेश्य समुदाय की विभिन्न समस्याओं को हल करने में समुदाय को क्रियाशील बनाना होता है। व्यक्ति तथा समूह का महत्व कम हो जाता है। सामुदायिक संगठन में व्यक्ति या समूह की मनोसामाजिक संरचना के आधार पर नहीं बल्कि सामाजिक संस्थाओं ,रीतिरिवाज, मान्यताओं, सांस्कृतिक स्तर, प्रतिमान इत्यादि को ध्यान में रखकर कार्य किया जाता है।

(2) सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्ध – समाज कार्य की प्रणालियों में लगभग समान सिद्धान्तों का उपयोग होता है। मूल रूप से इनमें मानवतावादी सिद्धान्त कार्य करता है। वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी सामान्य व्यक्ति होता है।उसे किसी प्रकार की हीन भावना से नहीं देखा जाता। कार्यकर्ता उसे आदर एवं प्रतिष्ठा देता है और आत्मसम्मान का बोध कराता है। वह सम्बन्ध–स्थापन पर जोर देता है और उसी के माध्यम से उपचार–योजना तैयार करता है। वह सेवार्थी की मनोदशा के अनुरूप कार्य करता है। वह सेवार्थी के स्तर से उपचार करता है। वह उसके गुणों को स्पष्ट करता है तथा स्वावलम्बन का विकास करता है। सेवार्थी स्वयं समस्या के उपचार में कार्यरत होता है। सामूहिक कार्य में भी समूह की इच्छा के अनुसार कार्य किया जाता है। समूह–सदस्य प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक प्रधान होते हैं। समूह में होने वाली समस्त अन्तः क्रियाएँ, जैसे–समूह–निर्माण, उद्देश्यों का निर्धारण, कार्यप्रणाली, कार्यक्रम–नियोजन एवं निर्धारण, संचालन, नेतृत्व तथा निर्णय इत्यादि सदस्यों द्वारा ही प्रेरित होती है। कार्यकर्ता समूह के सम्बन्ध को महत्व देता हैं यदि सम्बन्ध यथोचित नहीं है तो कार्यकर्ता न तो समूह के साथ कार्य कर सकता है और न ही सामूहिक कार्यकर्ता को स्वीकृति प्रदान करता हैं ।

सामुदायिक संगठन में भी लगभग इन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है जो वैयक्तिक सेवा कार्य तथा सामूहिक कार्य में महत्व पूर्ण हैं। व्यक्ति और समूह की भाँति समुदाय को उसी स्थिति में स्वीकार किया जाता है जिस स्थिति में वह होता है। समुदाय की उपयुक्तता के साथ–साथ कार्य किया जाता है। वह स्वयं जब कार्य करने को इच्छुक होता है तभी कार्यकर्ता कोई कार्य करता है। अतः पहले कार्यकर्ता उसमें असन्तोष की भावना का विकास करता और फिर सकारात्मक मोड़ देता है। सहायता कार्य इस आधार पर होता है कि समुदाय स्वयं अपनी समस्या हल करने में समर्थ हो सके। वह लोगों में सामुदायिक भावना का विकास करता हैं इस उद्देश्य से वह विभिन्न समूहों में पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ बनाने में प्रयत्नशील रहता है, जिसके कारण अन्तःक्रिया का संचार होता है और कार्यों व विचारों का आदान–प्रदान होता है।

(3) प्रक्रिया के आधार पर सम्बन्ध – वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन की प्रणालियों में यह प्रयत्न किया जाता है कि व्यक्ति, समूह तथा समुदाय स्वयं अपनी समस्याओं के निराकरण में समर्थ हो सकें, आत्मविश्वास की भावना का विकास हो तथा शक्ति में वृद्धि हो। परन्तु इनकी प्रक्रिया में अन्तर है। वैयक्तिक कार्य में व्यक्ति–विशेष पर जोर दिया जाता हैं सेवार्थी स्वयं कार्यकर्ता के पास आता है और अपनी तकलीफों को उसके सामने स्पष्ट करता है तथा सहायता लेने की इच्छा प्रकट करता हैं कार्यकर्ता वार्तालाप के माध्यम से समस्या के कारणों को ढूँढ़ता तथा निदान करता है। इसके साथ ही साथ उपचार क्रिया भी चलती रहती है अर्थात् सेवाथी में अहम् शक्ति का विकास होता है और वह समस्या का अपनी बुद्धि एवं क्षमता द्वारा समाधान करने की चेष्टा करता है

सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता या तो समूह का निर्माण स्वयं करता है या पहले से संगठित समूह के साथ कार्य करता है। समूह का उददेश्य उन्नति एवं विकास करना या समस्या का समाधान करना होता है। कार्यकर्ता कार्यक्रम का निर्धारण समूह के माध्यम से करता है। वह समूह को पूर्ण अधिकार देता है कि वही कार्यक्रम का क्रियान्वयन करे तथा अभीष्ट उद्देश्य प्राप्त करे। वह केवल अन्तःक्रिया का निर्देशन तथा मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता सामंजस्य सम्बन्धी समस्याओं को भी हल करता है तथा सामुदायिक संगठन में पूरे समुदाय के हित के लिए कार्य करता है। व्यक्ति उसमें गौण होता है। समुदाय की इच्छा सर्वोपरि होती है और उसका कल्याण करना मुख्य कार्य होता है। कार्यकर्ता मनोवैज्ञानिक आधार के स्थान पर समाजशास्त्रीय आधार को अधिक महत्व देता है समुदाय को समझने के लिए सामाजिक संस्थाओं के रीति–रिवाजों, मान्यताओं आदि का अध्ययन किया जाता है। कार्यकर्ता का उदद्देश्य समुदाय में परिवर्तन लाना होता है। पूरा समुदाय उसका कार्य–क्षेत्र होता है तथा वह सामुदायिक संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

(4) प्रत्यय के आधार पर सम्बन्ध–वैयक्तिक सेवा कार्य तथा सामुदायिक संगठन में लगभग समान प्रत्यय होते हैं। कार्यकर्ता इन विधियों में विभिन्न रूपों में कार्य करता है। जब वह देखता है कि व्यक्ति, समूह या समुदाय स्वयं उचित कदम नहीं उठा सकते हैं तो वह अधिनायक या सत्तावादी हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह आदेश देता है और अन्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। कभी–कभी वह स्वयं आदर्श बन जाता है और व्यक्ति उसका अनुसरण करते हैं। वह आदेश तभी देता है जब व्यक्ति साधनों को पहचान नहीं पाते। वह समर्थकारी तरीका भी अपनाता है। वह समूह में भाग लेने तथा कुशलताओं एवं अभिवृत्तियों के विकास में सहायता करता है तथा सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग प्रदान करता है। समूह या समुदाय के

साथ कार्य करते हुए वैयक्तिक सम्पर्क भी बनाए रखता है। वह उसी स्तर के कार्य करता है जहाँ से व्यक्ति आसानी से कार्य कर सकते हैं।

(5) व्यक्ति के ज्ञान के आधार पर सम्बन्ध–समाज कार्य के सिद्धांतों में व्यक्ति के ज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है। सबसे पहले उसके विषय में सम्पूर्ण इतिहास प्राप्त किया जाता है तथा समस्या का निदान वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर किया जाता है तथा समस्या का निदान वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर किया जाता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी के जीवन से सम्बद्ध समस्त घटनाओं का अभिलेखन करता है। वह कभी एक परिस्थिति में दो सेवार्थियों को समान नहीं मानता, बल्कि प्रत्येक का अलग–अलग ज्ञान प्राप्त करता है और उसके अनुरूप उपचार–प्रक्रिया बनाता है। सामूहिक कार्य में यद्यपि कार्यकर्ता का ध्यान समूह पर केन्द्रित होता है परन्तु वह वैयक्तीकरण का सिद्धांत अवश्य अपनाता है। प्रत्येक सदस्य की आदतों, रुचियों, मनोवृत्तियों आदि का ज्ञान रखता है।

सामुदायिक संगठन में व्यक्ति–विशेष के विषय में ज्ञान रखना संभव नहीं होता है परन्तु कार्यकर्ता समूह के माध्यम से इसका प्रयत्न करता हैं वह समुदाय की आवश्यकताओं का पता लगाता है जिनका समुदाय में विशेष महत्व होता है और जिन्हें अपनी समस्याओं के विषय में ज्ञान रहता है तथा उन्हें हल करने के लिए उत्सुक रहता है। वह वैयक्तिक सम्पर्क भी रखता है।

(6) कार्य की रूपरेखा निश्चित करने के आधार पर सम्बन्ध–समाज कार्य की यह विशेषता है कि कोई भी कार्य सेवार्थी के ऊपर दबाव डालकर नहीं कराया जाता। वे जिस प्रकार और जैसे कार्य करने के लिए इच्छा करते हैं वैसे ही कार्य किया जाता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में सेवार्थी को अपना रास्ता, उपाय या उपचार के तरीकों का चुनाव करने की पूरी छूट होती है। यद्यपि कार्यकर्ता सम्पूर्ण विवरण तथा उपचार–प्रक्रिया प्रस्तुत करता है, परन्तु यह सेवार्थी की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह उसको माने या न माने। सामूहिक कार्य में भी समूह–सदस्य स्वयं कार्यक्रम का चुनाव करते तथा निर्णय में भाग लेते हैं। सामुदायिक संगठन में कार्यकर्ता केवल छिपी हुई समस्या को प्रस्तुत करता और सम्भव उपायों को स्पष्ट करता है। वह इसे समुदाय की इच्छा पर छोड़ देता है कि समस्या को सुलझाने का कौन सा तरीका, उसे पसन्द है।

(7) कार्यक्रम के विकास के आधार पर सम्बन्ध–समाज कार्य में कोई भी कार्यक्रम पहले से निश्चित नहीं किया जाता। जब समूह में अन्तःक्रिया का संचार होता है तो कार्यक्रम स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच पहले मानसिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं, फिर अन्तःक्रिया का संचार होता है

और तब कार्यात्मक उपचार का पथ निर्धारित होता है। सामूहिक कार्य में जब कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है तथा कार्यक्रम का निर्धारण होता है, लोगों में समस्या के विषय में सम्बन्ध स्थापित होते हैं तब कार्यक्रम का विकास होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज कार्य की प्राथमिक प्रणालियों के उद्देश्य, सिद्धान्त, पद्धतियाँ तथा निपुणताएँ समान हैं। परन्तु जहाँ पर एक ओर समानता है वहीं पर असमानता भी मौजूद है और इस असमानता के कारण ही इन विधियों का अलग–अलग महत्व है। कार्य करने का कारण एक है, परन्तु कार्यक्षेत्र तथा पद्धतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि एक स्थिति में सभी विधियों की आवश्यकता होती है।

वैयक्तिक सेवा कार्य में सामूहिक कार्य की आवश्यकता होती है और सामूहिक कार्य में वैयक्तिक सेवा कार्य की। इसी प्रकार सामुदायिक संगठन में भी इन विधियों का ज्ञान आवश्यक होता है। सामुदायिक संगठन का उपयोग वह व्यक्ति व समूह–क्षेत्रों की सहायता के लिए भी करता है।

सामूहिक कार्यकर्ता के लिए भी वैयक्तिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन का ज्ञान आवश्यक होता है। वह समुदाय के साधनों का उपयोग समूह के विकास के लिए करता है तथा समूह को समुदाय के लिए उपयोगी बनाता है। सामुदायिक संगठन कार्य में दोनों विधियों का उपयोग व्यावसायिक सम्बन्ध–स्थापन तथा समूहों का ज्ञान प्राप्त करने तथा समस्या का समाधान करने में किया जाता है। अतः एक कार्यकर्ता के लिए सभी विधियों का ज्ञान आवश्यक होता है।

10.8 सार संक्षेप

समाज कार्य मनोसामाजिक समस्या के निदान और समाधान में सेवार्थी को उसकी परिस्थितियों से समंजित करने की चेष्टा करता है तथा परिवर्तन पर भी जोर देता है। प्रायः समाज कार्य दो स्थितियों में व्यक्ति की सहायता करता है। प्रथम, जब सेवार्थी या व्यक्ति सामान्य प्रतिमानों से सामंजस्य भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक सांवेदिक, सांवेगिक या अन्य कारणों से नहीं कर पाता है और वह समाज के लिए घातक हो जाता है तथा निन्दा का पात्र बन जाता है। दूसरे, समाज कार्य व्यक्ति की उन्नति एवं विकास के लिए साधन प्रदान करता है जिससे उसमें प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है। सामाजिक परिवर्तनों पर भी वह जोर देता है।

वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याएँ प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती हैं और वहाँ समाज कार्य की भूमिका हो सकती है। परन्तु समाज कार्य के कुछ विशेष क्षेत्र हैं जिन पर वह प्रमुख रूप से ध्यान देता हैं। ये क्षेत्र हैं : परिवार एवं बाल कल्याण, चिकित्सा एवं मनोचिकित्सा, अपराधी–सुधार प्रशासन, महिला–कल्याण, जनजातीय–कल्याण, श्रम–कल्याण, पिछड़ी जाति एवं वर्ग–कल्याण, शारीरिक वांछित कल्याण, ग्राम्य–कल्याण, युवा–कल्याण, राजकीय कर्मचारी–कल्याण इत्यादि। सामाजिक कार्यकर्ता निम्नलिखित प्रविधियों का उपयोग करके सहायता प्रदान करता है–सम्बन्धी की प्रविधि, सम्बल की प्रविधि, सहभागिता की प्रविधि, साधन–उपयोग की प्रविधि, व्याख्या की प्रविधि, स्पष्टीकरण की प्रविधि, अंशीकरण की प्रविधि, जगतीकरण की प्रविधि, नवज्ञानार्जन की प्रविधि, परिस्थितिपरिवर्तन की प्रविधि, स्थानान्तरण की प्रविधि एवं स्वीकृति की प्रविधि, आदि।

10.9 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य से क्या तात्पर्य है ?
2. सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य उपचार की मुख्य प्रविधियों को समझाइये ?
3. सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य का वणर्न कीजिये ?
4. समुदायिक संगठन की व्याख्या कीजिये ?
5. समाज कल्याण प्रशासन पर टिप्पणी कीजिये ?
6. समाज कार्य अनुसंधान पर चर्चा कीजिये ?
7. कार्यक्रम के विकास के आधार पर सम्बन्धों की चर्चा कीजिये ?
8. सामाजिक क्रिया के आधारभूत तत्वों का वर्णन कीजिये ?

10.10 पारिभाषिक शब्दावली

वयैक्तिक अध्ययन	Case Work	संगठन	Organisation
नेतृत्व	Leadership	संस्था	Society
मंत्रणा/परामर्श	Counselling	व्यवसाय	profession
दानार्थ	Charity	मनवतावादी	Humanitarian
आत्मनिर्णयात्मक	Selfdecesion	स्वयं सहायता	Self help

परिवर्तन	Change	समायोजन	Adjustment
समस्याएं	Problems	सेवार्थी	Client
मनोसामाजिक	Psychosocial	अभिवृत्ति	Attitude

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रे, केनेथ, सोशल वर्क ऐन्ड सोशल ऐक्शन, नैशनल कान्फरेंस आव सोशल वर्क, प्रोसीडिंग्स 1945, पृ0 346।
2. शास्त्री, राजाराम, समाज कार्य, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1970, पृ0 194।
3. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्द संस्थान लखनऊ।
4. डा. कृपाल सिंह सुदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पब्लिकेशन्स, लखनऊ।
5. आर0के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम प्रकाशन : रावत, नई दिल्ली।
6. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।
7. फ्रीडलैन्डर, डब्ल्यू0 ए0, इन्ट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, प्रेन्टिस हाल आव इण्डिया, नई दिल्ली, 1963, पृ0 219।
8. क्लीन, फिलिप ऐन्ड, मैरियम, इडा सी0, द कन्ट्रीब्यूशन आव रिसर्च टु सोशल वर्क, अमेरिकन एसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क, 1948, पृ0 46।
9. फीडलैन्डर, डब्ल्यू0ए0, इंट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, प्रेन्टिस हाल आव इण्डिया, नई दिल्ली, 1963, पृ0 215।
10. किडनी, जान सी0, ऐडमिनिस्ट्रेशन आव सोशल एजेंसीज, सोषल वर्क इयर बुक, ऐसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क 1955, पृ0 76।
11. डनहम, आर्थर, ऐडमिनिस्ट्रेशन आव सोशल एजेन्सीज, सोशल वर्क इयर बुक, ऐसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, 1947, पृ0 15।
12. शास्त्री, राजाराम, समाज कार्य, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1970, पृ0 146।

इकाई–11

भारत में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के क्षेत्र

Scope of Social Case Work in India

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 परिचय

11.2 सुधारात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य

11.3 सुधारात्मक वैयक्तिक कार्य का कार्य क्षेत्र

11.4 बाल अपराध

11.5 भारत में बाल अपराधियों के सुधार की व्यवस्था

11.5.1 विद्यालय में वैयक्तिक कार्यकर्ता की समस्याएँ

11.5.2 परिवार नियोजन कार्यक्रम

11.5.3 जनसंख्या एवं आर्थिक विकास

11.6 वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता की भूमिका

11.7 सार संक्षेप

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.9 परिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

- सुधारात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य का अर्थ तथा उद्देश्य को जान सकेंगे।

- वैयक्तिक कार्यकर्ता के कार्य का वर्णन कर सकेंगे ।
- सुधारात्मक वैयक्तिक कार्य का कार्य क्षेत्र तथा सुधारात्मक समस्याओं को समझ सकेंगे ।
- बाल अपराध ,बाल न्यायालय एवं बाल अपराधियों के सुधार की आवश्यकता तथा महत्व को जानेंगे ।
- भारत में बाल अपराधियों के सुधार की व्यवस्था को जानेंगे ।
- वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता ,महत्व एवं वैयक्तिक कार्यकर्ता की समस्या को समझ सकेंगे।
- परिवार नियोजन कार्यक्रमों में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका को जान सकेगें।
- जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में वैयक्तिक सेवा कार्य की भूमिका को समझ सकेगें।

11.1 परिचय

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में समाज कार्य की एक प्रणाली के रूप में विकास के साथ–साथ इसकी प्रविधियों, आधारभूत मूल्यों, धारणाओं तथा कार्य पद्धति में अन्तर आता गया। प्रारम्भ में वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य सहायता प्रदान करना था। परन्तु बाद में मनोविज्ञान तथा मनोविकार विज्ञान के प्रभाव के कारण व्यक्तित्व एवं व्यवहार सम्बन्धी उपचार भी इसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया।

वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता का उद्देश्य एक ओर सेवार्थी के कष्ट को दूर करना तथा दूसरी ओर व्यक्ति स्थिति व्यवस्था में अकार्यामक्ता को कम करना। दूसरे शब्दों में कार्यकर्ता सेवार्थी में अधिक सन्तोष, आत्म अनुभूति तथा आत्म सन्तुष्टि एवं आत्म सुख का संचार करता है। इसके लिए उसके अहं को दृढ़ बनाकर उसमें अनुकूलन सम्बन्धी निपुणताओं का विकास करता है। परिवर्तन या तो सेवार्थी में या परिस्थिति में अथवा दोनों में कुछ न कुछ होता है।

11.2 सुधारात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य

आपराधी को केवल दण्ड देकर उसकी मनोवृत्ति एवं व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता हैं। दण्डशास्त्र के नवीन दृष्टिकोण के अनुसार अपराधों का मुख्य

कारण समाज की सामाजिक, आर्थिक दोषपूर्ण संरचना है। अतः अपराधी को दण्ड देना अवांछित , अमानवीय एवं अनैतिक है। अपराधी के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाकर उसकी मनोवृत्ति को बदला जा सकता है। अतः अपराधी की दण्ड की अवधि में हर सम्भव प्रयत्नों द्वारा सहायता पहुँचाकर उसके व्यक्तित्व में निहित आत्म–क्षमताओं एवं गुणों को विकसित करना सुधारात्मक दृष्टिकोण का प्रमुख विचार है। यह विचारधारा तथा दर्शन ऐसी वैज्ञानिक पद्धति का विकास करना चाहती है जिसके उपयोग द्वारा अपराधी दण्ड युक्ति के उपरान्त एक आत्म–सम्मानी, निर्भर, आत्म विश्वासी एवं उत्तरदायी नागरिक की तरह समाज में जीवन यापन कर सके।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति में एक निहित आत्मसम्मान की भावना एवं सुधार की क्षमता होती है। यदि उसे सहायता पहुँचायी जाय तो वह अपनी समस्याओं का निस्तारण मार्ग ढूँढ़ सकता है। किसी भी व्यक्ति में कोई जन्मजात दोष नहीं होता है, व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिस्थितियाँ व्यक्ति को समाज विरोधी कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है। सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत बड़ी सीमा तक उसके दोषपूर्ण समायोजन के लिए उत्तरदायी हैं। हर व्यक्ति में परिवर्तन के लक्षण विद्यमान होते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति का सुधार भी सम्भव है। अतः क्रूर तथा अमानवीय तरीकों के स्थान पर सुधारात्मक तरीकों के प्रयोग द्वारा अपराधी में सुधार लाया जा सकता है।

सुधार शब्द का अर्थ है– अपराधी व्यक्ति को कानून का पालन करने वाले नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने योग्य बनाना। **इलियट (Elliott)** के अनुसार सुधार वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आधुनिक समाज कानून तोड़ने वाले व्यक्तियों की आपराधिक मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने तथा उनकी जीवन शैली को सामाजिक नियमों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है। **वेनेट** के अनुसार सुधार का उद्देश्य अपराधी को उसकी दण्ड अवधि में एक नई दिशा प्रदान करना है। **कोनार्ड** के अनुसार सुधार का मुख्य उद्देश्य अपराधी के व्यक्तित्व में एक परिवर्तन लाना है जिससे उसके मन में कारागार अथवा सुधार संस्था से मुक्ति के बाद अच्छा एवं उपयोगी जीवन बिताने की इच्छा उत्पन्न हो सके।

11.2.1 सुधारात्मक सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के उद्देश्य

सुधारात्मक सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के दो प्रमुख उद्देश्य हैं :

(1) व्यक्ति के विचलित व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसी सहायक प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन लाना जो उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन में अधिकतम सहायक सिद्ध हो।

(2) अपराधी व्यक्ति के पर्यावरण एवं परिस्थितियों में परिवर्तन तथा संशोधन द्वारा अनेक प्रकार के निरोधात्मक एवं सुधारात्मक साधनों की उपलब्धि कराके परिवर्तन लाना जो उसमें अपराधिकता को जन्म देती है।

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता की भूमिका :– सुधारात्मक कार्य में कार्यकर्ता अन्य सुधार कार्यकर्ताओं, मनोवैज्ञानिकों, मनोचिकित्सकों के साथ मिलकर कार्य करता है। वह सुधार टोली का एक अभिन्न सदस्य होता है। उसका कार्य अन्य कार्यकर्ताओं के अन्तर सम्बन्धों तथा उसके विशिष्ट ज्ञान पर निर्धारित भूमिका पर निर्भर करता है।

सुधार कार्यकर्ताओं की इस टोली में समाज कार्यकर्ता की निम्न भूमिकाएँ हो सकती हैं :

(1) अपराधी के बारे में जाँच पड़ताल करके उसकी सामाजिक अवस्था तथा अपराधी की दशाओं के बारे में ऐसी रिपोर्ट प्रस्तुत करना जिससे अपराधी सुधार संस्थाओं के अधिकारी किसी निश्चित सुधारवादी निर्णय पर पहुँच सकें।

(2) सेवार्थी (अपराधी) का उस प्रकार से पर्यवेक्षण करना जिससे वह आत्म नियंत्रित होकर अवैधानिक व्यवहार न करें।

(3) सेवार्थी (अपराधी) की सामाजिक तथा वैधानिक मजबूरियों को दूर करने में सहायता करना तथा उसके व्यवहार, सामाजिक आदर्शों के अनुकूल बनाना।

(4) उन सभी अधिकारियों के साथ व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करना जो सेवार्थी के वर्तमान सामाजिक वैधानिक स्तर से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बन्धित हैं।

(5) वैयक्तिक सेवा कार्य तथा सामूहिक सेवा कार्य की विधियों का इस प्रकार से प्रयोग करना जिससे सेवार्थी (अपराधी) कानूनी तथा प्रशासनिक नियमों का पालन अपने हित को ध्यान में रखकर कर सके।

(6) अपराधी ,सुधार संस्था के अन्य कर्मचारियों के साथ सहयोग एवं समन्वयपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना तथा संस्था के समस्त सुधार सम्बन्धी निर्णयों में अपने मत को रखना।

(7) अपराधी–सुधार संस्था के सुधारात्मक कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाना।

(8) सुधारात्मक समाज कार्य के ज्ञान में वृद्धि करने के लिए प्रयत्न करना।

अपराधियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने के लिए वैयक्तिक सेवा कार्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

फ्रीडलैण्डर, ने निम्न प्रकार से इसके महत्व को स्पष्ट किया है :

पुनर्स्थापन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सुधार संस्थाओं में वैयक्तिक सेवा कार्य आवश्यक है। हमने इस बात को माना है कि अनेक सुधार संस्थाओं में पुनर्स्थापन के उद्देश्य की प्राप्ति पूरे रूप से सम्भव नहीं हो पाई है परन्तु फिर भी कारागार तथा बाल सुधार संस्थाओं के संवासियों के लिए वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है। कारागारों तथा अन्य प्रकार की वयस्क एवं बाल सुधार संस्थाओं में संवासियों को मनोसामाजिक सहायता की आवश्यकता अपने दैनिक जीवन में पड़ती रहती है।

मॉडल प्रिजन मैनुअल में अपराधी सुधार संस्थाओं में नियुक्त सामाजिक कार्यकर्ताओं की निम्न भूमिकाओं का वर्णन किया गया है। :–

(1) संवासी का साक्षात्कार करना तथा उसके परिवार एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करके उसके चरित्र, व्यवहार, अपराध की दशाओं तथा सामाजिक आर्थिक जीवन की पृष्ठभूमि के बारे में सम्पूर्ण सूचना उपलब्ध करना।

(2) संवासी की समस्त संस्थागत समस्याओं का स्पष्टीकरण करना तथा उनके समाधान की योजना निर्मित करना।

(3) संवासियों के वर्गीकरण कार्यक्रम में संस्था के अधिकारियों के संवासी के व्यक्तित्व एवं व्यवहार की विशेषताओं को बताकर संवासी को उन कार्यक्रमों में लगाने का प्रयत्न करना जिससे उन संवासी को लाभ पहुँच सकता है।

(4) संवासी तथा प्रशासन कार्यकर्ताओं के मध्य उपयुक्त प्रकार के सहयोगपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने में मदद पहुँचाना,तथा परिवार के सदस्यों को समय–समय पर वांछित सहायता प्रदान करना।

(5) संवासी को अपनी मुक्ति के लिए तैयार करना तथा उनको उन समस्याओं से अवगत कराना जो मुक्ति के बाद उत्पन्न हो सकती हैं परन्तु जिनका समाधान ढूँढ़ा जा सकता है।

11.2.2 वैयक्तिक कार्यकर्ता के कार्य

(1) उन संवासियों को परामर्श देना तथा मार्ग निर्देशन करना जो अपराधी सुधार संस्थाओं में पहली बार आये हैं और जो अपने को इस प्रकार के विचित्र माहौल में अकेला पाते हैं।

(2) संवासियों की मानसिक कुंठाओं, आहत भावनाओं तथा विक्षिप्त मनोदशाओं को दूर करने में सहायता पहुँचाना तथा उन्हें संस्था के अन्य संवासियों,

अधिकारियों तथा कार्य–पद्धतियों के समरूप व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना।

11.3 सुधारात्मक वैयक्तिक कार्य का कार्य

अपराधी सुधार संस्थाओं में सुधारात्मक वैयक्तिक कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व संवासियों में संतोषजनक समायोजन उत्पन्न करने के साथ–साथ उन्हें पुनर्वासन हेतु तैयार करना है।1

सामाजिक कार्यकर्ता निम्न समस्याओं को अपने कार्य क्षेत्र में सम्मिलित करता है।

(1) संवासियों की संस्थागत समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ।

(2) संवासियों के परिवार के सदस्यों, उनके रिश्तेदारों तथा मित्रों सम्बन्धी समस्त समस्यायें जिनसे संवासी चिन्तित रहता है।

(3) संवासियों की मुक्ति, उत्तर रक्षा तथा पुनर्वासन सम्बन्धी समस्यायें।

सुधारात्मक वैयक्तिक कार्यकर्ता की कुशलतायें :– इलियट स्टड ने निम्नलिखित व्यावसायिक कुशलताओं का होना आवश्यक बताया है :–

(1) अपराधी सुधार के क्षेत्र में एवं इससे सम्बद्ध समस्त विषयों, नीतियों तथा कार्यों का पूर्ण ज्ञान।

(2) अपराधियों के व्यक्तित्व, चरित्र, स्वभाव तथा अपराध के कारणों एवं उपचार की आधुनिक विधियों का पूर्ण ज्ञान।

(3) अपराधी सुधार तथा अपराधी पुनर्वासन सम्बन्धी आवश्यक कुशलताओं को सम्पादित करने की क्षमता।

(4) अपराधियों के प्रति सहिष्णुता का दृष्टिकोण तथा उनके सुधार एवं पुनर्वासन के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने का दृढ़ निश्चय।

(5) अपराधी सुधार के क्षेत्र में कार्य करने वाले अन्य कार्यकर्ताओं के साथ सहयोग एवं समन्वय पूर्वक कार्य करने की कुशलता आदि।

11.3.1 सुधारात्मक वैयक्तिक कार्य की समस्यायें

बरवैंक ने उन समस्याओं का उल्लेख किया है जिनसे समाज कार्य के सफल योगदान में बाधा उत्पन्न हो रही है :

(1) सुधारात्मक समाज कार्य, कल्याण के अन्य क्षेत्रों में होने वाले समाज कार्य की अपेक्षा अभी नया है अतः इसे निम्न स्तर का विषय माना जा रहा है।

(2) अपराधी सुधार संस्थाओं के प्रशासक सुधारात्मक समाज कार्यकर्ताओं के योगदान के विषय में अभी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हैं और इस प्रकार के कार्यकर्ताओं की नियुक्ति में हिचकिचाहते हैं।

(3) समाज कार्य का प्रशिक्षण प्रदान करने वाले स्कूलों द्वारा आज तक स्पष्ट रूप से यह तय नहीं हो पाया है कि अपराधी, सुधार के क्षेत्र में समाज कार्यकर्ताओं की क्या–क्या भूमिकायें हो सकती है और उन भूमिकाओं का निर्वाह व्यावसायिक समाज कार्यकर्ताओं की किन कुशलताओं के प्रयोग से हो सकता है।

(4) जिन अपराधी संस्थाओं में (चाहे वे कारागार हों या बाल सुधार संस्थायें) समाज कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की गयी है उनको वहाँ पर निम्न स्तर का कार्यकर्ता ही समझा गया हैं और उनसे ऐसे कार्य कराये जाते हैं जिनको थोड़ा पढ़ा लिखा व्यक्ति भी कर सकता है।

(5) अपराधी सुधार के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता पूर्ण एवं उचित स्वीकृति के अभाव में कुण्ठित हो जाते हैं और अपने कार्य में कुशलता नहीं ला पाते जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती है।

(6) अपराधी सुधार के क्षेत्र में कार्य करने वाले समाज कार्यकर्ताओं का वेतन स्तर इतना कम है कि अधिकांश कुशल कार्यकर्ता इस क्षेत्र में नौकरी करने की इच्छा नहीं प्रकट करते। अच्छे एवं कुशल कार्यकर्ता कोई दूसरी अच्छी नौकरी ढूँढ़ने में तत्पर रहते हैं।

(7) अधिकांश समाज कार्य स्कूलों में सुधारात्मक समाज कार्य का उचित प्रशिक्षण देने के लिए न तो शिक्षक हैं और न आवश्यक सुविधायें उपलब्ध हैं।

(8) सुधारात्मक समाज कार्य सम्बन्धी साहित्य का अभाव अच्छे एवं कुशल कार्यकर्ता तैयार करने में एक बड़ी बाधा उत्पन्न करता है।

उपर्लिखित समस्याओं का मूल कारण भारत में समाज कार्य का प्रारम्भिक अवस्था में होना है। वर्तमान समय में समाज कार्य ही विकास की प्रारम्भिक अवस्था में है, अतः दूसरे क्षेत्र कहाँ तक विकसित हो सकते हैं परन्तु संतोष का विषय है कि सरकार सुधार के क्षेत्र में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की नियुक्ति पर गम्भरीता पूर्वक विचार कर रही है।

11.4 बाल अपराध

वे बालक जिनकी अवस्था 7 वर्ष से 16 वर्ष 18 या 21 वर्ष, तक की है, के अपराधी व्यवहार एवं अन्य असामाजिक कृत्यों को बाल अपराध की श्रेणी में रखा जाता है । ऐसे बच्चों में अपराधी प्रवृत्ति का विकास होने से वे अपराध के कार्य करने लगतें हैं।

11.4.1 बाल न्यायालय

बाल अपराधियों के सुधार क्षेत्र में बाल न्यायालय की स्थापना एक क्रान्तिकारी चेतना का प्रतीक है। विश्व में सबसे पहला बाल न्यायालय **अमरीका के शिकागो** नगर में स्थापित हुआ था परन्तु उसके पूर्व भी इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा स्विटरजरलैंड में ऐसे कानून बनाये जा चुके थे जिनमें बाल अपराधियों के लिए न्यायिक व्यवस्था, वयस्क अपराधियों से भिन्न थी।

बाल कल्याण, बाल हितों के सन्तुलन को बनाये रखने में बाल न्यायालय एक ऐसी वैधानिक प्रणाली है जो न्यायिक कार्यवाही में निहित, अभिभावक प्रेरणा तथा संरक्षण प्रवृत्ति द्वारा बालकों की रक्षा करने की विशेषताओं के आधार पर उन साधारण न्यायालयों से भिन्न है जिनमें न्यायाविधि की कठोरता तथा दण्ड देने की प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है। राज्य को उन बालकों का माता पिता, अभिभावक तथा संरक्षक माना जाता है। जो मन्द बुद्धि, शारीरिक विकलांगता, परित्यक्तता, अनाथपन तथा उचित प्रकार के देख–रेख के बिना जीवन जी रहे हैं यह उसी वैधानिक चेतना का प्रतिफल है। इस प्रकार के न्यायालय अपना न्यायिक उत्तरदायित्व दण्ड के माध्यम से नहीं वरन सुधार, रक्षा तथा शिक्षा द्वारा सम्पादित करते हैं।

11.4.2 बाल न्यायालयों की विशेषताएँ

अपनी विशेषताओं के आधार पर इस प्रकार के न्यायालय उन न्यायालयों से भिन्न होते हैं जहाँ पर वयस्क व्यक्तियों के मुकदमों की सुनवायी होती है जो इस प्रकार है :

(1) बाल न्यायालय उस प्रकार का न्यायालय है जिसमें बाल तथा तरुण आयु के युवकों के मुकदमों की सुनवायी एक विशेष विधि से की जाती है।

(2) इस प्रकार के न्यायालयों के मजिस्ट्रेट से यह आशा की जाती है कि वे अपने सामने प्रस्तुत किये गये बालकों के लिए मार्ग दर्शक की भूमिका अदा करें।

(3) इनमें उन बालकों की जिनकी अवस्था 7 वर्ष से 16 वर्ष 18 या 21 वर्ष, तक की है, के अपराधी व्यवहार एवं अन्य असामाजिक कृत्यों से सम्बन्धित मामलों का निर्णय एक विशेष कानून बाल अधिनियम की धाराओं के आधार पर किया जाता है जो या तो पूर्व बाल अपराध की अवस्था से गुजर रहे हैं या उनमें अपराधी प्रवृत्ति का विकास हो रहा है या कोई अपराध कार्य कर रहे हैं।

(4) इस प्रकार के न्यायालयों में मजिस्ट्रेट नियुक्त होने के लिए आवश्यक नहीं है कि बड़े विधि विशेषज्ञ हों। नियुक्ति उन व्यक्तियों की होती है जो कानून के ज्ञान के साथ–साथ मानव स्वभाव ताकि मानव समायोजन की समस्याओं की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों से भली भांति अवगत हों तथा उन्हें बाल कल्याण के क्षेत्र में दक्षता प्राप्त हो।

(5) इन न्यायालयों में आवश्यक नहीं है कि दोषी ठहराये गये बालकों को दण्ड दिया जाय। इसके विपरीत इन न्यायालयों से यह आशा की जाती है कि वे बालकों के सुधार के लिए सेवाएँ आयोजित करने में सहायक सिद्ध होंगे तथा बालकों की देख–रेख, सुरक्षा, कल्याण तथा शिक्षा सम्बन्धी संस्थागत तथा संस्कारिक कार्यक्रमों की प्राप्ति संभव करा सके, जो उपेक्षित है।

(6) इन न्यायालयों में अपराधी तथा असामाजिक व्यवहार प्रदर्शित करने वाले बालकों से सम्बन्धित शिकायतों का निर्णय पुलिस की रिपोर्ट के आधार पर नहीं किया जाता है। पूरी वैधानिक प्रक्रिया, उपचारात्मक तथा सुधारात्मक कार्यवाही का आधार होती है परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, जो बालक के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा पारिवारिक वातावरण सम्बन्धी कारकों का अध्ययन, निरीक्षण तथा मूल्यांकन बड़ी सावधानी तथा कुशलता से की जाती है।

(7) जिस समय तक बालक के बारे में सामाजिक जाँच परिवीक्षा अधिकारी के द्वारा होती है उस अवधि में उसे जेल में न रखकर उन पर्यवेक्षण गृहों में रखा जाता है जहाँ उनकी सुरक्षा के साथ–साथ स्वच्छ वातावरण तथा स्वास्थ्यप्रद रहन सहन का अवसर प्रदान होता है।

(8) इन न्यायालयों को अपने निर्णय देने में बड़ा विवेकाधिकार प्राप्त होता है। न्यायालय मुकदमों को रदद कर सकता है, बालक तथा उसके माता–पिता को चेतावनी दे सकता है। उन पर फाइन कर सकता है, उन्हें किसी सुधार कार्य करने वाली संस्था की देख रेख में रहने का आदेश दे सकता है या उन्हें बाल सुधार संस्थाओं में रखे जाने का निर्णय दे सकता है।

11.5 बाल अपराधियों के सुधार की आवश्यकता तथा महत्व

बाल अपराधियों के सुधार की आवश्यकता तथा इसके महत्व का प्रश्न दण्ड के आधुनिक सुधारवादी दर्शन के सिद्धान्तों एवं विधियों के अभ्युदय के साथ संलग्न है। दण्ड के प्राचीन सिद्धान्तों एवं विधियों में अपराधियों (चाहे वे बालक हों या वयस्क) का कठोरतम दण्ड देने का भाव निहित था क्योंकि उस युग को स्वीकृत मान्यता यह थी कि समाज अपराधी के प्रति प्रतिशोधात्मक दृष्टिकोण रखने का हकदार है और अपराधियों को कठोर दण्ड देकर ही समाज, गैर अपराधी व्यक्तियों में कानून के भयपूर्वक पालन की आदत डाल सकता है। अतएव बाल अपराधियों के लिए एक ऐसी कारागार प्रशासन की व्यवस्था को कार्यान्वित किया गया जिसमें उनकी शिक्षा, औद्योगिक प्रशिक्षण तथा मनोगत सुधार की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हों।

बाल अपराधी, पारिवारिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का शिकार हो जाते हैं और उनकी अपराधिकता आकस्मिक होने के साथ–साथ उनकी अपरिपक्व बुद्धि, कानून के परिणामों के प्रति अज्ञान तथा अपराध कार्य करने की योजना का प्रदर्शन मात्र है। अतः ऐसी व्यवस्था होनी अनिवार्य है जिसका प्रमुख उद्देश्य उनका सुधार तथा चारित्रिक पुनर्गठन करना हो। इसी विश्वास पर आधारित मान्यताओं को स्वीकार करके आधुनिक युग में बाल अपराधियों के वयस्क अपराधियों से भिन्न प्रकार के बाल सुधार संस्थाओं की स्थापना की गयी है। बाल अपराधियों के सुधार की दिशा में जो भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतियाँ हुई उनमें बाल न्यायालयों की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम है।

11.5.1 वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता

चिकित्सालय में रोगग्रस्त बालक अनेक समस्याओं से जूझता है परन्तु इन समस्याओं की ओर चिकित्सकों का ध्यान बहुत कम जाता है क्योंकि इसके लिए अधिक समय तथा विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है जिसका उनके पास अभाव होता है। उचित निदान एवं उपचार के लिए बालक एवं उसके माता–पिता दोनों का ही योगदान आवश्यक होता है। परन्तु वर्तमान चिकित्सा पद्धति को महत्व नहीं दिया गया है। बालकों को एकान्त में दुनिया से बिलकुल पृथक कर दिया जाता है और वे कष्ट पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। इन परिस्थितियों में वे अन्य समस्याएँ उत्पन्न कर लेते हैं जैसे सांवेगिक तनाव, सांवेगिक ह्रास, प्रतिगमन के लक्षण, प्रत्याहार, अलगाव की भावना, विघटित प्रत्यक्षीकरण, अहमन्यता, ईर्ष्या की भावना आदि।

11.5.1.1 वैयक्तिक सेवा कार्य का महत्व

(1) सांवेगिक प्रतिक्रियाऐंः– चिकित्सालय में प्रवेश स्वयं अपने आप में एक समस्या है। बालक के लिए रोग भी सांवेगिक समस्या है। इस समस्या में उस समय और भी अधिक वृद्धि होती है जब उसकी शल्य चिकित्सा की जाती है। इंजेक्शन लगाने के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है।

(2) परिवार से अलगाव :– चिकित्सालय आने पर बालक के अधिकांश सामाजिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाते हैं। इसका प्रतिफल यह होता है कि वह आदान–प्रदान की प्रक्रिया में भाग नहीं लेता है। वह कभी–कभी न तो बात करता है और न सलाह मानता है। इस विरोध की भावना का कारण अपने सामान्य पर्यावरण से पृथक् होना तथा वर्तमान परिस्थितियों से ताल–मेल न कर पाना होता है।

(3) एकाकीपन की समस्या :– यद्यपि सभी बालक सामान्य क्रियाएं सम्पन्न करने में असमर्थ नहीं होते तथापि चिकित्सालय में वे पंगु बन जाते हैं। वे शैया पर सभी खुशियों एवं प्रसन्नताओं से वंचित पड़े रहते हैं। उनके पास समय व्यतीत करने का कोई साधन नहीं होता है। अतः या तो उनको अकारण भय उत्पन्न हो जाता है या फिर अपने को अर्थहीन समझने लगते हैं।

(4) वात्सल्य एवं प्रेम की कमी :– कोई माता पिता अपने में ही उलझे रहते हैं और बालक की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं। परिणामस्वरूप बालक इस आवश्यक तत्व से वंचित रहता है और उन स्थितियों की खोज करता है जहाँ पर वह माता पिता का प्रेम पा सकता है। बीमार होना एक ऐसी ही स्थिति है।

(5) अहमन्यताः – कभी कभी माता पिता रोगी बालक की इतनी अधिक देख रेख, परवाह तथा लाड़ प्यार करते हैं कि वह केवल एकांगी बन कर रहा जाता है। उसका समायोजन अव्यवस्थित हो जाता है। अस्पताल से वापस जाने पर उसके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

11.5.1.2 कार्यकर्ता की भूमिका

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्न कार्य करता है :–

(1) सांवेगिक व्यवधानों का पता लगाता है।

(2) सामाजिक समस्याओं की खोज करता है।

(3) समस्याओं के समाधान के उपाय खोजता है।

(4) बालकों व उनके अभिभावकों को स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करता है।

(5) आवश्यक सेवाओं का प्रबन्ध करता है।

(6) मनोरंजनात्मक कार्य सम्पन्न करवाता है।

(7) पारिवारिक सम्बन्धों को दृढ़ करता है।

(8) चिकित्सालय पर्यावरण से समायोजन स्थापित करने में सहायता करता है।

(9) अच्छी आदतों के विकास में सहायता करता है।

(10) सफाई सम्बन्धी नियमों को बताता है।

(11) पोषक तत्वों का उल्लेख करता है।

(12) सुरक्षात्मक तरीकों को बताता है।

11.5.1.3 विद्यालय सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य

व्यक्ति के समाजीकरण की यद्यपि परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था है। वह अपना प्रारम्भिक जीवन परिवार की सीमा में ही व्यतीत करता है। उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि भी यहीं होती है। परन्तु जैसे– जैसे वह बड़ा होता जाता है उसकी रुचि बाह्य पर्यावरण की ओर बढ़ने लगती है और परिवार के बन्धन से मुक्त होना चाहता है। वह घर की चहारदीवारी से निकल कर पड़ौस तथा किसी विद्यालय में जाना पसन्द करता है और वहाँ जाकर आनन्द प्राप्त करता है। वह विद्यालय जाने के लिए स्वयं लालायित रहता है और कभी–कभी हठ करने लगता है कि अन्य बालकों की तरह वह भी विद्यालय अवश्य जायगा। विद्यालय में उसका परिचय अनेक विद्यार्थियों से होता है तथा विचारों का आदान–प्रदान होता है। अतः ऐसा वातावरण तैयार करना आवश्यक होता है जिसमें वह अपना सफल समायोजन कर के तथा संवेगात्मक व बौद्धिक विकास के लिए शैक्षणिक व मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों से लाभ उठा सके।

भारतवर्ष में यद्यपि शिक्षा पद्धति में काफी अन्तर आया है परन्तु अभी भी प्राध्यापक का मुख्य ध्यान केवल बौद्धिक विकास पर रहता है तथा रटने–रटाने की प्रथा बराबर पड़ी हुई है। वैयक्तिक कमी अथवा समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है। परन्तु जितना बौद्धिक विकास आवश्यक होता है उतना ही संवेगात्मक समायोजन और मानसिक विकास महत्वपूर्ण होता है।

11.5.1.4 विद्यालय में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता

बालक का अधिकांश प्रारम्भिक जीवन विद्यालय में ही गुजरता है। अतः विद्यालय के साथ समुचित समायोजन आवश्यक होता है। वह क्या पढ़ता है यह आवश्यक नहीं है बल्कि किस प्रकार पढ़ता है, उसकी रुचि किस स्तर की है, सम्बन्ध का क्या स्वरूप है, आदि भी जानना आवश्यक होता है। यदि इन कारकों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है तो बालक पढ़ाई में पीछे रह जाता है, नैराश्य

अनुभव करता है तथा स्कूल से भागने लगता है। ऐसे बालक सामान्यतः विभिन्न संवेगात्मक समस्याओं से ग्रस्त हो जाते हैं।

ऐसे बालकों की समस्याओं के निराकरण के लिए प्रशिक्षित कार्यकर्ता की आवश्यकता होती है जो वैयक्तिक अध्ययन करके समस्या की प्रकृति ज्ञात कर उसका समुचित समाधान कर सके। विकसित देशों में प्रत्येक विद्यालय में वैयक्तिक कार्यकर्ता होता है जो यह कार्य करता है। उच्च विद्यालयों में तो एक समाज कार्य का विभाग ही अलग होता है।

भारतवर्ष में इस प्रकार के प्रत्यय का विकास अभी नहीं हो पाया है। क्योंकि भारत की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है इसके अतिरिक्त समाज कार्य की आवश्यकता का ज्ञान भी केवल चंद लोगों को ही हैं इसके अतिरिक्त समाज कार्य की आवश्यकता का ज्ञान भी केवल चंद लोगों को ही है। इसी कारण विद्यालयों की समस्याओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

11.5.1.5 विद्यालय में वैयक्तिक कार्यकर्ता की समस्याएँ

(1) **समस्याग्रस्त बालक (Problem child)** :– व्यक्तिगत एवं पारिवारिक समस्याओं के कारण विद्यालय में ऐसे भी बालक होते हैं जो संवेगात्मक तथा मानसिक कठिनाइयों से परेशान रहते हैं। उनका न तो कक्षा में समायोजन ठीक प्रकार से हो पाता है और न ही वे अपना ध्यान पढ़ाई पर केन्द्रित कर पाते हैं। कक्षा में विद्यार्थी इतने अधिक होते हैं कि शिक्षक विद्यार्थी की व्यक्तिगत समस्याओं पर ध्यान नहीं दे पाते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें उन प्रविधियों एवं प्रणालियों का ज्ञान नहीं होता है जिनसे उसकी संवेगात्मक समस्याओं का समाधान कियाा जा सके। वह संवेगात्मक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं तथा आवश्यकताओं को समझने और उनका समाधान करने में सक्षम नहीं होता है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता की आवश्यकता होती है जो इन समस्याओं को सुलझा सकता है। कार्यकर्ता बालक का साक्षात्कार करता है और उसके माता–पिता से मिलता है, साथियों से समस्या के बारे में पूछ ताछ करता है। इस प्रकार वह समस्या से सम्बन्धित तथ्यों की खोज करता है। निदान के उपरान्त वह उपचार की रूपरेखा निश्चित करता है। कार्यकर्ता माता–पिता को बालक की समस्या बताते हैं तथा उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। शिक्षक के कारण यदि कोई समस्या बालक में उत्पन्न होती है तो वह शिक्षक की मनोवृत्ति को बदलने में सहायता करता है। उसका कार्य समस्या के वास्तविक तथ्यों की जानकारी करके समस्या का जड़ से समाप्त करना होता है।

(2) **पिछड़ापन (Backward)** :–कक्षा में सभी बालक न तो पढ़ाई में समान होते हैं और न ही खेलकूद में। कुछ बालक सामान्य स्तर से पढ़ाई तथा खेलकूद में ऊँचे

होते हैं और कुछ बालक पढ़ाई तथा खेलकूद में सामान्य से काफी नीचे होते हैं। ऐसे बालक पढ़ने से जी चुराते हैं तथा भागने काप्रयास करते हैं। ऐसे बालकों पर अध्यापक विशेष ध्यान नहीं दे पाता है और निजी तौर पर शिक्षा देना उनके लिए कठिन हो जाता है। परन्तु यदि उनकी समस्या पर ध्यान नहीं दिया जाता है तो उनका व्यक्तित्व प्रभावित होता है और हीनता की भावना विकसित हो जाती है। कभी – कभी इन बालकों को विद्यालय से निकाल दिया जाता है। परन्तु इस पिछड़ेपन के कारण बालक स्वयं न होकर सामाजिक, शारीरिक तथा मानसिक स्थितियाँ होती हैं। इन समस्याओं एवं स्थितियों को समझकर वैयक्तिक सहायता पहुँचाना आवश्यक होता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता बाल मनोविज्ञान के द्वारा तथा मनोचिकित्सा की सहायता से ऐसे बालकों की सहायता करता है।

11.5.2 परिवार नियोजन कार्यक्रम

अधिकांश लोग अब भी परिवार नियोजन का तात्पर्य जनसंख्या नियन्त्रण से लगाते हैं। जनसंख्य नियन्त्रण एक सरकारी नीति है जिसको सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए चलाया जा रहा है। अपने परिवार के सदस्यों की संख्या अपने साधनों के अनुसार सीमित रखने का नाम परिवार नियोजन है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य परिवार के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (1970) ने परिवार नियोजन के अन्तर्गत निम्न कार्यों को सम्मिलित किया है :

(1) जन्म में उचित समयान्तर तथा जन्म दर रोक लगाना।

(2) बच्चे विहीन परिवारों की चिकित्सकीय सुविधाएँ प्रदान करना।

(3) बच्चों की देख–रेख सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करना।

(4) यौन शिक्षा देना।

(5) प्रजनन सम्बन्धी दोषी परिवार का स्क्रीनिंग करना।

(6) जेनटिक मंत्रणा देना।

(7) पूर्व वैवाहिक सलाह देना तथा परीक्षण करना।

(8) गर्भावस्था को टेस्ट करना।

(9) विवाह मंत्रणा देना।

(10) प्रथम बच्चे के जन्म से सम्बन्धित ज्ञान प्रदान करना तथा अन्य सुविधाएँ देना।

(11) अविवाहित माताओं को सेवाएँ प्रदान करना।

(12) गृह अर्थशास्त्र तथा पोषण सम्बन्धी शिक्षा देना।

(13) गोद लेने में सहायता करना।

इस प्रकार से परिवार नियोजन कार्यक्रम का उद्देश्य परिवार के सदस्यों की सीमा में नियन्त्रण करना है। जिन परिवारों में बच्चे अधिक संख्या में पैदा होते हैं उन दम्पत्तियों को परिवार नियोजन करने के लिए और अवांछित बच्चों के जन्मों को रोकने के लिए परिवार नियोजन के विभिन्न तरीकों का ज्ञान एवं सेवा सुविधा की विशेष व्यवस्था भीपरिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत आती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी विभिन्न सेवाएँ प्रदान करना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिरक्षीकरप, प्रसव के पूर्व, प्रसव में तथाप्रसव के पश्चात् माताओं की देख–रेख, दवाइयों काप्रबन्ध चेचक, डिप्थीरिया, काली खासी आदि के बचाव के लिए टीके लगाना तथा दवाइयाँ देना। पौष्टिक आहार की योजना भी अब इसका अंग बन गयी है। इस योजना के अन्तर्गत गर्भवती माताओं तथा शिशुओं को पौष्टिक भोजन बाँटा जाता है। इन अनेक कार्यों में वृद्धि के कारण इस कार्यक्रम का नाम बदल कर परिवार कल्याण एवं मातृ शिशु कल्याण कार्यक्रम रख दिया गया है।

11.5.3 जनसंख्या एवं आर्थिक विकास

देश की जनसंख्या तथा आर्थिक विकास का घनिष्ट सम्बन्ध है। आर्थिक विकास के अन्तर्गत देश की राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, रहन सहन का स्तर, उत्पादन की दशा, रोजगार व्यवस्था आदि सम्मिलित है।आर्थिक विकास के लिए पाँच साधनों की आवश्यकता होती है। भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध एवं उद्यम। उत्पादन शक्ति के उन पाँच साधनों में मानव शक्ति विकास का महत्वपूर्ण साधन है। मानव शक्ति से श्रम, प्रबन्ध एवं उद्यम उत्पादन के तीन साधन तो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त है जबकि पूँजी का सम्बन्ध भी मानव से ही है। अतः स्पष्ट है कि जनसंख्या तथा विकास में घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि देश में जनशक्ति अधिक है तो देश श्रम के क्षेत्र में धनी होगा तथा देश धनी होगा। परन्तु ऐसा नहीं है।

विकासशील देशों के लिए ये हानिकारक है। जब जनशक्ति की अधिकता होगी तो भूमि, साधन सीमित होने के कारण मानव शक्ति बढ़ती जायेगी, फलस्वरूप प्रति व्यक्ति उत्पादन कम होता जायेगा। खाद्य समस्या बढ़ेगी, बेरोजगारी फैलेगी, राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होगी अर्थात् प्रति व्यक्ति आय में कमी होगी, वस्तुओं की

माँग अधिक होने के कारण कीमतें बढ़ेंगी तथा मुद्रा स्फीति पर बुरा असर पड़ेगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विकासशील देशों के लिए जनसंख्या वृद्धि घातक है।

11.5.3.1 परिवार नियोजन के तरीके

परिवार को सीमित रखने के लिए अनेक तरीकों का विकास किया गया है। ये दो प्रकार के तरीके हैं

(1) स्थायी,

(2) अस्थायी।

- **स्थायी तरीके**

स्थायी तरीकों में पुरुष नसबन्दी तथा स्त्री नसबन्दी (Tubectomy) है।

- **अस्थायी तरीके**

अस्थायी तरीके निम्न हैं जिनका उपयोग कर परिवार को सीमित रखा जा सकता है तथा अनिच्छित जन्म को रोका जा सकता है :–

(1) लूप

(2) खाने वाली गोली

(3) निरोध

(4) गर्भ समापन

(5) सुरक्षित काल

11.6 वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता की भूमिका

समाज कार्य ने इस विशाल समस्या के समाधान का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है। समाज कार्य का प्रथम उत्तर दायित्व उन मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करना तथा उन पर विजय प्राप्त करना है जो विकास एवं उन्नति में बाधा पहुँचाते हैं। कार्यकर्ता, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृति कारक जो परिवार नियोजन के तरीकों को अपनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं, दूर करना है। वह शिक्षा, चिकित्सा तथा कल्याणकारी संस्थाओं की सेवाओं का सदुपयोग भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए करता है। वह व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है जिससे व्यक्ति परिवार नियोजन के महत्व को समझ सकने में समर्थ होते हैं। वह पोषण सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करता है, महत्वपूर्ण रोगों के विषय में जानकारी देता है शिक्षा

सुविधाओं की चर्चा करता है, कल्याणकारी कार्यक्रमों से अवगत कराता है, नवीन कानूनों का ज्ञान देता है तथा स्वास्थ्य शिक्षा देता है।

परिवार कल्याण कार्यकर्ता के रूप में वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता के निम्न कार्य हैं :–

(1) घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करके सेवार्थी में विश्वास जाग्रत करना कि वह उनका हितैषी है तथा उन्नति एवं विकास चाहता हैं।

(2) कार्यकर्ता को यह ज्ञान होना चाहिए कि वह सेवार्थी से एक केस के रूप में नहीं बातचीत कर रहा है बल्कि एक व्यक्ति के सन्दर्भ में बातचीत हैं।

(3) वह सेवार्थी को परिवार नियोजन सम्बन्धी सकारात्मक तथा नकारात्मक सभी भावनाओं के स्पष्टीकरण का पूर्ण अवसर देता है।

(4) कार्यकर्ता का कार्य सेवार्थी में केवल उपयुक्त ज्ञान का विकास करना है। इसके पश्चात् वह सेवार्थी की इच्छा पर छोड़ देता है कि वह अपने जीवन को खुशहाल बनाने के लिए स्वयं निर्णय ले। वह यह नहीं बताता है कि उसे "यह" करना आवश्यक है। वह केवल सलाह देता है।

11.7 सार संक्षेप

सुधारात्मक सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य उन व्यक्तियों की सहायता सामाजिक आचार का पालन करने में करता है जो किसी कारण विचलन के मार्ग पर चलने लगे हैं।

परिवार कल्याण के क्षेत्र में वैयक्तिक कार्यकर्ता ऐच्छिक तरीके का उपयोग करता है अर्थात् दम्पत्तियों को स्वयं यह अधिकार देता है कि वे स्थिति पहले समझें तदुपरान्त स्वयं निर्णय करें। वह गर्भावस्था का स्वास्थ्य पर प्रभाव को बताता है, शरीर तथा मन पर गरीबी के प्रभाव को स्पष्ट करता है तथा व्यक्तित्व से इसके सम्बन्ध को दर्शाता है।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. सुधारात्मक वैयक्तिक सेवा कार्य का अर्थ तथा उद्देश्यों का वर्णन करें ?
2. वैयक्तिक कार्यकर्ता के कार्यों का वर्णन करें ?
3. सुधारात्मक वैयक्तिक कार्य का कार्य क्षेत्र तथा सुधारात्मक समस्याओं को स्पष्ट करें ?

4. बाल अपराध ,बाल न्यायालय एवं बाल अपराधियों के सुधार की आवश्यकता तथा महत्व का वर्णन कीजिए ?
5. वयस्क अपराधियों के न्यायालयों से बाल न्यायालय कार्य पद्धति में भिन्नता का वर्णन करें ?
6. भारत में बाल अपराधियों के सुधार की व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए ?
7. वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता ,महत्व एवं वैयक्तिक कार्यकर्ता की समस्या का उल्लेख कीजिए ?
8. परिवार नियोजन कार्यक्रमों में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका की व्याख्या कीजिये ?
9. जनसंख्या एवं आर्थिक विकास में वैयक्तिक सेवा कार्य की भूमिका को समझाइये ?

11.9 पारिभाषिक शब्दावली

वयैक्तिक अध्ययन	Case Work	संगठन	Organization
नेतृत्व	Leadership	संस्था	Society
मंत्रणा/परामर्श	Counselling	व्यवसाय	Profession
दानार्थ	Charity	मनवतावादी	Humanitarian
आत्मनिर्णयात्मक	Selfdecesion	स्वयं सहायता	Self help
परिवर्तन	Change	समायोजन	Adjustment
समस्याएं	Problems	सेवार्थी	Client
मनोसामाजिक	Psychosocial	अभिवृत्ति	Attitude

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, एस0पी0 : भारत में अपराध, दण्ड एवं सुधार, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1977, पृष्ठ 354–355।
2. फ्रीडलैण्डर, वाल्टर ए0 : "इन्ट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, नई दिल्ली, 1967, पृष्ठ 444–445।'दि प्रिज स्पीक्स" इन दि प्रिजर आफ टुमारो, दि ऐनल्स आफ दि अमेरिकन अकादमी आफ पोलिटिकल एण्ड सोशल साइंस, वाल्यूम 157, सितम्बर, 1931, पृष्ठ 138।
3. सेन्ट्रल ब्यूरो आफ करेक्शनल सर्विसेज, प्रिजन इन इण्डिया, 1969, नई दिल्ली, पृष्ठ 19।
4. रसेल, ई0 स्मिथ एण्ड डोरोथी, जी0 : अमेरिकन सोशल वेलफेयर इन्स्टीट्यूशन न्यूयार्क, 1954, पृष्ठ 297।
5. हीरा सिंह, 'वेलफेयर इन प्रिजन्स' समाज कल्याण विभाग, 1973, पृ0 3।
6. बरवैंक, एडमण्ड जी0 सम प्राब्लम्स एण्ड इशूज कफ्रिन्टिग सोशल वर्क एजूकेशन इन करेक्शनल, सोशल वर्क एजूकेशन, वाल्यूम 10 नं0 4, 1962, पृ0 2–3।
7. एच. एच. लाऊ : जुवनाइल कोर्ट इन युनाइटेड स्टेट्स (नार्थ कैरोलिना, 1927), पृष्ठ 14।
8. रास्को पाउण्ड : इण्टरप्रिटेशन आफ लीगल हिस्ट्री (न्यूयार्क, 1923), पृ0 135।

इकाई –12

सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में साक्षात्कार एवं वैयक्तिक अध्ययन

Case Study and Interview Process in Social Case Work

इकाई की रूपरेखा

12.0 उददेश्य

12.1 परिचय

12.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में वैयक्तिक अध्ययन

12.3 वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं

12.4 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में साक्षात्कार

12.5 साक्षात्कार की विशेषताएं

12.6 साक्षात्कार के उद्देश्य

12.7 साक्षात्कार में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियॉ

12.8 अभिलेखन में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियॉ

12.9 साक्षात्कार की प्रक्रिया

12.10 अभिलेखन की प्रक्रिया

12.11 सार संक्षेप

12.12 अभ्यास प्रश्न

12.13 पारिभाषिक शब्दावली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उददे्श्य

- सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में वैयक्तिक अध्ययन की आवश्यकता को समझ सकेगें।
- वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताओं के अवगत हो सकेगें।
- सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में साक्षात्कार की आवश्यकता को समझ सकेगें।
- साक्षात्कार की विशेषताएं एवं साक्षात्कार के उद्देश्यें को जान सकेंगे।
- साक्षात्कार में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अभिलेखन में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियों का वर्णन कर सकेंगे।
- साक्षात्कार एवं अभिलेखन की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

12.1 परिचय

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का उददेश्य व्यक्ति की मनोसामाजिक समस्याओ के निदान व उपचार में सहायता करता है । मानव की प्रकृति की विशेषता है कि वह अपनी मूल समस्या के स्त्रोत को जहां तक सम्भव होता है छिपाने के उपाय करता है और समस्या के कारण को दूसरे कारक पर प्रक्षेपित कर देता है जिसके कारण सेवार्थी को मनोस्थिति तथा बाह्य स्थिति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो जाता है। साक्षात्कार के समय सेवार्थी ऐसी जटिल समस्यायें उत्पन्न करता है जिसके कारण अनुभवी कार्यकर्ता भी कभी–कभी असमंजस में पड़ जाता है और चिकित्सात्मक कार्यों में बाधा उत्पन्न हो जाती है। अतः सेवार्थी का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना वैयक्तिक कार्यकर्ता का प्रथम उददेश्य होता है। वहां सेवार्थी की आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की स्थितियों का अध्ययन करता है। और समस्या से सम्बन्धित सभी पहलुओं का साकार चित्रण करता है। यह कार्य वैयक्तिक कार्यकर्ता के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

साक्षात्कार तथ्यो के एकत्रीकरण की एक क्रमबद्ध प्रणाली है। निश्चित उद्देश्यों के तहत किया गया वार्तालाप साक्षात्कार कहलाता है। सामाजिक वैयक्तिक

कार्यकर्ता भी अपना कार्य साक्षात्कार के माध्यम से करता है। इस प्रकार वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता के लिए साक्षात्कार एक कला तथा विज्ञान है जिसके सिद्धान्तों से अवगत होना और प्रविधियों का व्यवहारिक ज्ञान परम आवश्यक है। साक्षात्कार व्यक्ति के पारस्परिक संपर्क की क्रमबद्ध प्रणाली है जिसके माध्यम से दूसरे व्यक्ति के अपरिचित तथ्यों का ज्ञान होता है। इसका आधार केवल देखने पर नहीं है बल्कि निकटता के द्वारा तथ्य परक अनुभूति की उपलब्धि करना है।

12.2 सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में वैयक्तिक अध्ययन

वैयक्तिक अध्ययन से निरीक्षण तथा अवलोकन में गहनता आती है तथा सेवार्थी को समझने में स्पष्ट दृष्टि प्राप्त होती है। इसके द्वारा सेवार्थी के व्यवहार का अप्रत्यक्ष अध्ययन करने के स्थान पर प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन करते है। सेवार्थी एक व्यक्ति तथा एक परिवार अथवा एक समूह भी हो सकता है। वैयक्तिक अध्ययन में व्यक्ति, संस्था अथवा समुदाय को एक इकाई माना जाता है और उसका सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है। इसमें विषयवस्तु के प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों सन्दर्भों का अध्ययन किया जाता है। इसका क्षेत्र व्यक्ति अथवा इकाई का सम्पूर्ण जीवन वृत है। गुड एण्ड हेट के अनुसार वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक तथ्यों के व्यवस्थापन का एक तरीका है। ताकि अध्ययन की सामाजिक विषयवस्तु के वैयक्तिक गुण सुरक्षित रह सकें।

वैयक्तिक अध्ययन की परिभाषा :– वैयक्तिक अध्ययन के सन्दर्भ में कुछ परिभाषाएं यहां दी जा रही है :–

पी0वी0 यंग :– 'वैयक्तिक अध्ययन किसी सामाजिक इकाई की जीवन की खोज तथा विवेचना की एक पद्धति है। चाहे व इकाई व्यक्ति व परिवार हो अथवा संस्था या सांस्कृतिक समूह अथवा सम्पूर्ण समुदाय।

(Case study is a method of exploring and analyzing the life of a social unit be that a person institution , cultural group of even entire community.)

वींसेज एण्ड वींसेज :– वैयक्तिक अध्ययन गुणात्मक विश्लेषण का एक स्वरूप है जिसमें एक व्यक्ति, परिस्थिति या संस्था का अति सावधानी से अवलोकन किया जाता है।

(The case study is a term a qualitative analysis involving the very careful observation of a persons situation on an institution.)

रूथ स्टंग :– व्यक्तिगत इतिहास या अध्ययन व्यक्ति व उसके पर्यायवरण सम्बन्धी व्यवहारों का वह संकलन है जिसे विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से एकत्रित किया जाता है।

(The case history or study is a analysis and interpretation of information about a person and his relationship to his environment collected by mean of many techniques.)

उपलिखित परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैयक्तिक अध्ययन व्यक्ति का सूक्ष्म से सूक्ष्म अवलोकन है जिससे समस्या का निरूपण वास्तविक अर्थ में हो सके और व्यक्ति की आन्तरिक तथा बाह्य दोनों गतिविधियों का ज्ञान हो सके। इसके अर्न्तगत व्यक्ति के विगत जीवन का सम्पूर्ण चित्रण होता है, वर्तमान दशाओं का अवलोकन एवं उनके प्रभाव को देखा जाता है। साथ ही साथ व्यक्ति की भविष्य की इच्छाओं एवं आशाओं पर भी ध्यान आकृष्ट किया जाता है।

12.3 वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं

वैयक्तिक अध्ययन की प्रमुख विशेषताएं निम्न है–

1. **समस्या का गहन अध्ययन** :– अध्ययन का केन्द्र एक समस्या होती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता उस समस्या से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन करता है। उसके स्त्रोत का पता लगाता है। प्रभावकारी कारकों का अवलोकन करता है, समस्या के स्वरूप का निर्धारण करता है तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है।

2. **व्यक्तिपरक पहलुओं का अध्ययन** :– सेवार्थी की भावनाओं धारणाओं तथा व्यवहारों का अध्ययन करते है। व्यक्ति की समस्त विशेषताओं का अध्ययन वैयक्तिक कार्य में आवश्यक समझा जाता है।

3. **वैयक्तिक मान्यता** :– वैयक्तिक अध्ययन में कार्यकर्ता सामान्यीकरण सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करता है। वह प्रत्येक व्यक्ति को समस्या व परिस्थिति को अनौखा देखता है तथा उसी सन्दर्भ में अध्ययन भी करता है।

4. **सर्वांगीण अध्ययन** :– सेवार्थी के किसी एक पहलू का अध्ययन कर पूर्ण स्थिति का अध्ययन किया जाता है। वैयक्तिक सामाजिक मनौवैज्ञानिक

आर्थिक सांवेगिक विकासात्मक आदि सभी विशेषताओं का अध्ययन सम्मिलित होता है।

वैयक्तिक अध्ययन में सूचना के स्त्रोत

वैयक्तिक अध्ययन के अर्न्तगत सूचना प्राप्ति के निम्नलिखित स्त्रोत है :–

1. **सेवार्थी स्वयं** :– सेवार्थी का साक्षात्कार अध्ययन किया जाता है। जिससे समस्या तथा अन्य महत्वपूर्ण कारकों का ज्ञान होता है। सेवार्थी से जीवन सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते है।

2. **व्यक्तिगत प्रलेख** :– इसके अर्न्तगत आत्मकथाएं एवं डायरीज आती है। इनसे व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी विविध घटनाओं अनुभव विश्वास धारणा दृष्टिकोण परिस्थिति आदि के विषय में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। दैनन्दिनी द्वारा अनेक अस्पष्ट तथ्य स्पष्ट हो जाते है।

आत्म कथाओं से भी व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा सामाजिक सम्पर्क से सम्बन्धित सूचना प्राप्त होती है। इसके अन्दर व्यक्ति का आत्म चित्रण रहता है तथा सच्चे आंकड़े प्राप्त होते है। मानसिक क्रियाकलापों का भी विवरण इनसे मिलता है साथ ही साथ सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप का ज्ञान होता है, अज्ञात रहस्य प्रकट होते है तथा घटना विशेष को समझने में सहायता मिलती है।

3. **जीवन इतिहास** :– व्यक्ति का पूर्ण अध्ययन जीवन इतिहास द्वारा सम्भव है क्योंकि इसमें व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का तत्व सम्मिलित होता है। जीवन इतिहास से व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि, जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाएं, दिशा निर्धारित करने वाले कारक, व्यक्ति की क्रियायें तथा प्रतिक्रियायें, परिवर्तित परिस्थितियां तथा उनका प्रभाव, वर्तमान स्थिति तथा भावी जीवन लक्ष्य एवं धारणाएं, भावनाएं ज्ञात होती है।

4. **अतिरिक्त स्त्रोत** :– पुस्तके, लेख, पत्रिकाएं, अनुसंधान आदि वैयक्तिक अध्ययन न्यू स्त्रोत है कि जिनके द्वारा उपयोगी सूचना प्राप्त की जा सकती है तथा अध्ययन में सुविधा की जाती है।

वैयक्तिक अध्ययन की विषयवस्तु

वैयक्तिक अध्ययन निम्न तथ्यों का किया जाता है।

1. **परिचयात्मक आंकड़े** :– इसके अर्न्तगत सेवार्थी का नाम, आयु, लिंग, व्यवसाय, आय, शिक्षा का स्तर, वैवाहिक जीवन आधार की स्थिति, रहने की आषाएं आदि सम्मिलित करते है।

2. **समस्या का स्पष्ट चित्रण** :– समस्या क्या है, समस्या का रूप क्या है, समस्या से सम्बन्धित क्या क्या शिकायतें एवं परेशानियां है, सेवार्थी संस्था में क्यों है, तथा क्या चाहता है। समस्या किस प्रकार प्रारम्भ हुई, समस्या उत्पन्न करने में कौन कौन सी दशायें थी, कौन कौन से कारण वर्तमान समय में समस्या से सम्बन्धित है। व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक तथा सांवेगिक स्थिति पर समस्या का क्या प्रभाव पड़ा है, समस्या के कारण सेवार्थी की दैनिकचर्या से क्या क्या परिवर्तन हुए है, आन्तरिक दोष एवं व्याधियां किस प्रकार की है तथा उनका समस्या से कितना सम्बन्ध सेवार्थी का स्वास्थ्य एवं स्नायुविक प्रक्रिया कितनी प्रभावित हुई है उसकी नींद पर क्या असर पड़ा है आदि का ज्ञान प्राप्त करते है।

3. **उपचार** :– सेवार्थी समस्या को लेकर कहां कहां तथा किस किस के पास गया किस प्रकार की सहायता प्राप्त की है, समस्या पर सहायता का क्या पड़ा है। सेवार्थी सहायता को किस रूप में स्वीकार किया है, उसका उसके प्रति क्या मूल्यांकन रहा है, सेवार्थी अपने पूर्व अनुभवों को वर्तमान सहायता के सन्दर्भ में किस प्रकार प्रत्युतर कर रहे है, उसने सहायता प्रदान करने वाले व्यक्यिों के सम्बन्ध किस प्रकार के स्थापित अभी तक कितना समय सहायता के लिए सेवार्थी ने व्यतीत किया है, वर्तमान समय में सेवार्थी का दृष्टिकोण क्या है, आदि का अध्ययन करते है।

4. **भावनाएं तथा विचार** :–सेवार्थी का समस्या के प्रति दृष्टिकोण, समस्या का संवार्थी द्वारा विश्लेषण, सेवार्थी द्वारा बताये गये समस्या के कारण, समस्या का सेवार्थी सम्बन्ध सेवार्थी की क्षमताओं एवं कमियों का अध्ययन करते है।

5. **विकासात्मक स्थिति का अध्ययन** :– सेवार्थी की मां की गर्भावस्था में शारीरिक एवं सांवेगिक दशाएं, महत्वपूर्ण घटनाएं, जन्मक्रम में अव्यवस्था अथवा समस्या मां में शारीरिक दोष अथवा व्याधि आदि का अध्ययन करते है। सेवार्थी की बचपन की कोई महत्वपूर्ण घटना बीमारी रोग भयानक सपने निद्रागमन व्यावहारिक दोष चारित्रिक दोष, मानसिक अक्षमताएं आदि का अध्ययन करते है। स्कूल में सेवार्थी के व्यवहार का अध्ययन करते है। पढ़ने में रूचि, सक्रियता खेल में भागीकरण, अध्यापकों से सम्बन्ध, आदर्श का रूप

विद्यार्थियों से सम्बन्ध, महत्वपूर्ण घटनाएं आदि का वैयक्तिक अध्ययन का अंग होती है।

6. **पारिवारिक इतिहास** :– परिवार का प्रकार, परिवार का सदस्य संख्या, सेवार्थी का भाई बहनों में स्थान, माता पिता, भाई बहन, पत्नी आदि की आयु, शिक्षा, व्यवसाय, शारीरिक तथा मानसिक स्तर आदि का अध्ययन करते है। सेवार्थी का माता पिता से सम्बन्ध, माता पिता का व्यक्तित्व, माता पिता का आपस में सम्बन्ध, परिवार के अनुशासन में तरीके, परिवार का प्रभावकारी व्यक्ति तथा उसका व्यक्तित्व का अध्ययन करते है। घर की आर्थिक स्थिति, सांवेगिक स्थिति, सांवेगिक दशायें, मध्यपान आदि को जानने का प्रयत्न करते है। परिवार की सामाजिक दशाएं भी अध्ययन का विषय है।

7. **वैवाहिक इतिहास** :– विवाह की अवस्था, विवाह का प्रकार, पति पत्नी में लैंगिक सम्बन्ध तथा उसके प्रति सेवार्थी का दृष्टिकोण, लैंगिक बाधाएं तथा समस्याएं आदि का अध्ययन करते है। बच्चों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करते है।

8. **व्यावसायिक इतिहास** :– वैयक्तिक अध्ययन में हम सेवार्थी के व्यावसायिक इतिहास को जानने का प्रयत्न करते है। उसके पद तथा कार्य की प्रकृति, कार्य करने की अवधि, व्यावसायिक कमियां कार्य छोड़ने का कारण सहयोगी कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध,मालिक से सम्बन्ध, वर्तमान सेवा स्थान की स्थिति, सम्बन्ध की प्रकृति तथा दृष्टिकोण कार्य की दिशायें आदि का अध्ययन करते है।

9. **व्यक्तित्व की विशेषतायें** :– सेवार्थी के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करते है।

10. सेवार्थी के चेहरे का हाव भाव, शारीरिक लय, बातचीत का ढ़ग बातचीत में तारतम्यता, चिन्ता का स्तर, भग्नाशा की आशा, विचारों की तारतम्यता, दृष्िटाकोण तथा निर्णय शक्ति का अध्ययन करते है।

11. **समस्या का निदान** :– उपलब्ध तथ्यों का मूल्यांकन करते है। मूल्यांकन के व्यापार पर समस्या का रूप निश्चित करते है, समस्या के मुख्य कारक को निश्चित करते है। तथा उपचार के उपायों की खोज करते है।

12. **उपचार** :– निदान के उपरान्त समस्या के उपचार का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में वैयक्तिक अध्ययन का महत्व

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समाज कार्य की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा एक व्यक्ति की सहायता की जाती है जिससे वह अपनी समस्याओं को सुलझा सके तथा भविष्य में इस समस्या से ग्रसित न हो उसे आत्म निर्भर बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

अतः सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पूर्ण व्यक्तित्व जानना आवश्यक होता है। तभी उसमें निहित शक्ति एवं क्षमता को उभार कर सक्रिय रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

12.4 सामाजिक वैयक्तिक कार्य में साक्षात्कार

पी0वी0 यंग के अनुसार, ''साक्षात्कार को एक क्रमबद्ध प्रणाली माना जाता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आंतरिक जीवन में अधिक व कम काल्पनिकता से प्रविष्ट होता है जो कि उसके लिए सामान्यतः तुलनात्मक रूप से अपरिचित है।''

12.5 साक्षात्कार की विशेषताएं

1. साक्षात्कार दो या दो से अधिक लागों के बीच पारस्परिक वार्तालाप की एक प्रक्रिया है।
2. साक्षात्कार का निश्चित उद्देश्य होता है जैसे कि दूसरों के विचारों एवं मनोवृत्तियों को जानना।
3. साक्षात्कार में आमने–सामने अथवा प्रारम्भिक संबंधों की स्थापना होती है।
4. इस प्रक्रिया के द्वारा सामाजिक समस्या को अध्ययन हेतु तथ्यों का एकत्रीकरण किया जाता है तथा समस्याओं का समाधान किया जाता है।

साक्षात्कार की विशेषताएं वैयक्तिक सेवा कार्य के संबंध में

1. साक्षात्कार दो व्यक्तियों के बीच पहले से नियोजित तथा उद्देश्यपूर्ण मिलन है सेवार्थी तथा कार्यकर्ता के बीच।
2. यह एक निश्चित लक्ष्यों की ओर निर्देशित रहता है।
3. इसका संबंध सेवार्थी की समस्या से है।

4. साक्षात्कार में एक व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता के कुशलता तथा ज्ञान की आवश्यकता है।

साक्षात्कार के चार आयाम

1. व्यक्तिगत ईमानदारी
2. स्वामित्व रहित संवेदनशीलता
3. सहानुभूति
4. उद्देश्यों की पूर्ति

12.6 साक्षात्कार के उद्देश्य

1. सेवार्थी के प्रति समझ विकसित करना।
2. सेवार्थी की परिस्थितियों के प्रति समझ विकसित करना।
3. समस्या के विषय में सूचना प्राप्त करना।
4. कार्यकर्ता के उद्देश्यों से परिचित करना।
5. समस्या के जन्म के कारण एवं उसके विकास के चरणों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना।
6. समस्या के घनत्व तथा आयाम का पता लगाना।
7. सेवार्थी को सही मार्गदर्शन देना।
8. सेवार्थी की इस प्रकार सहायता करना कि वह अपनी समस्याओं व परिस्थितियों के विषय में वास्तविक समझ विकसित कर सके।
9. समस्या के कारणों के साथ उसके प्रभाव को जानना।
10. समस्याओं को बॉटना तथा समझना।

12.7 साक्षात्कार में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियॉ –

- पर्यवेक्षण करना
- मौखीकरण
- तार्किक दलील देना
- प्रोत्साहित करना
- सूचना देना
- सामान्यीकरण (सार्वभौमिकिकरण)

- पुनः सुनिश्चित करना
- पृथक्करण (किसी एक पहलू पर केन्द्रीकरण)
- समझाना
- रूचियों का बाह्य प्रकटीकरण करना
- वैयक्तिकरण
- स्रोतों का उपयोग करना (अनतः संबंधों तथा मित्रों से संचार द्वारा)
- परिसीमन
- सेवार्थी के विशिष्ट व्यवहारों से उसका सामना करना
- स्पष्टीकरण तथा विश्लेषण करना।

गैरेट ने साक्षात्कार की निम्न प्रविधियों का उल्लेख किया है

1. **अवलोकन** – विज्ञान का प्रारम्भ अवलोकन से होता है और इसकी पुष्टि के लिए अवलोकन में ही लौटना पड़ता है। अवलोकन का महत्व प्रत्येक प्रकार के साक्षात्कार में होता है। परन्तु वैयक्तिक सेवा कार्य में इसका विशेष ही महत्व है। सेवार्थी क्या कह रहा है उसका अवलोकन करना ही प्रमुख कार्य है। वह क्या नहीं कह रहा है इसका भी अवलोकन आवश्यक है। सेवार्थी का शारीरिक तनाव, उग्रवादिता, मदता, क्षीर्णता, नैराश्य की स्थिति, क्रियाएं, प्रतिक्रियाएं आदि का सम्पूर्ण चित्र खींचना महत्वपूर्ण होता है। अवलोकन इंद्रिय ज्ञान पर आधारित है। साधारणतया चक्षु ज्ञान को ही अवलोकन के अन्तर्गत लेते हैं परन्तु ऐसा नहीं है। देखना तथा अवलोकन में भेद है। अवलोकन प्रयासयुक्त, ध्यानपूर्ण, निर्वाचित एवं उद्देश्यपूर्ण होता है। इसमें कार्यकर्ता सेवार्थी के व्यवहार का तटस्थ होकर अवलोकन करता है और इस अवलोकन के फलस्वरूप प्राप्त अनुभवों को लिपिबद्ध करता है। वह सूचनाओं का संग्रह करता है। इससे विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त होती हैं क्योंकि प्रश्न पूछने से सवोर्थी अनेक बातें स्पष्ट नहीं करता है। उसे संकोच लगता है।

2. **सुनना** – अच्छा साक्षात्कार कर्ता वहीं होता है जो सेवार्थी की बात सावधानी पूर्वक तथा धैर्य के साथ सुनता है। बातचीत में बार–बार व्यवधान उत्पन्न करने सेवार्थी शंका करने लगता है और कुछ न पूछने पर या बीच में बात करने पर वह समझता है कि कार्यकर्ता रूचि नहीं ले रहा है। अतः निम्न सावधानी बरतनी चाहिए –

1. सेवार्थी की बात को पूरे ध्यान से सुने।
2. आवश्यक स्थानों पर कुछ कहे।
3. सेवार्थी को एक ही दिशा में बातचीत करने का अवसर दे।
4. जब सेवार्थी अपनी बात कहने में किसी प्रकार की असमर्थता प्रकट करे तो उसको वह दूर करे।
5. सेवार्थी को अपनी भावनाओं को प्रकट होने का अवसर दे।

3. **साक्षात्कार** – साक्षात्कार में प्रथम कार्य उन स्थितियों तथा साधनों की उपलब्धि करना है जिनमें सेवार्थी आराम का अनुभव कर सके तथा स्वतंत्र रूप से भावनाओं का स्पष्टीकरण कर सके। यह उस समय तक संभव नहीं हो सकता है जब तक साक्षात्कार करने वाला भी स्वयं ऐसा न अनुभव करे।

ऐसी स्थिति में उत्पन्न करने के लिए कार्यकर्ता को निम्न कार्य करने चाहिए–

1. सेवार्थी को अधिक इन्तजार न करना पड़े;
2. सेवार्थी के आने पर उसकी रूचि के अनुसार ही वार्तालाप प्रारम्भ करें;
3. उसके आने के कारण को तुरन्त पूछा जाये;
4. उसकी बातें धैर्यपूर्वक सुने;
5. उसकी भाषा व शब्दों का निरादर न करें;
6. प्रश्न को सरल करें;
7. सेवार्थी ही जहां तक संभव हो समस्या समाधाना के लिए सुझाव रखें।

12.8 अभिलेखन में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियॉ

1. किसी वस्तु के माध्यम से सेवार्थी की स्थिति को स्पष्ट करना
2. इकाई अभिलेख
3. मुख पृष्ठ की सूचनायें
4. पत्राचार का विवरण
5. स्पष्ट भाषा का प्रयोग
6. एक तथ्य के लिए एक पैराग्राफ
7. व्याकरण की शुद्धि

12.9 साक्षात्कार की प्रक्रिया

- समस्या का स्पष्ट कथन
- समस्या, इसके कारण व प्रभावों का व्यवस्थित मूल्यांकन
- साक्षात्कार की प्रक्रिया के दोहराव की पहचान
- सेवार्थी से अनुगमन का ज्ञान
- मंत्रणा के प्रति सेवार्थी की प्रेरक क्षमता का मूल्यांकन
- सेवार्थी की भावनाओं व आशाओं की स्पष्टता
- लक्ष्यों का निधारण
- अनुबन्ध की स्थापना
- मंत्रणा के लिये व्यवहारिक व्यवस्थाएं करना

12.10 अभिलेखन की प्रक्रिया

- चेहरे के हाव–भाव के अध्ययन का अभिलेखन
- समाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की पद्धाति व विधियों द्वारा अभिलेखन
- लेखन
- ध्वनि अभिलेखन
- उपयोगी सूचनाओं के एकत्रीकरण द्वारा अभिलेखन
- सूचना की क्रमबद्धता
- निदानात्मक रूपरेखा तैयार करना
- उपचारात्मक रणनीति तैयार करना

12.11 सार संक्षेप

वैयक्तिक अध्ययन से व्यक्ति की सम्पूर्ण स्थिति का चित्रण होता है, उसकी सम्पूर्ण दशाओं का ज्ञान होता है, परिस्थितियों के प्रभावों का पता चलता है। इन सूचनाओं के आधार पर ही वैयक्तिक कार्यकर्ता उपचार एवं सहायता कार्य करने में सफल होता है। जैसा कि हमें ज्ञात है कि सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता (साक्षात्कर्ता) अपने सामने बैठकर सेवार्थी (साक्षात्कार देने वाला) तथा दूसरे लोग (सेवार्थी से संबंधित) व्यक्तियों से प्रश्न पूछता है तथा वे इन प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं में सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता मानव व्यक्तित्व सामाजिक

पृष्ठभूमि के संबंध में सूचनाओं को एकत्रित करता है जो कि व्यक्ति के जीवनयापन, उनकी संवेदनाओं व कष्टों तथा व्यक्ति की इच्छाओं व व्यवहारिक संबंध में परिवर्तन का कारण होता है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि वैयक्तिक सेवा कार्य में वैयक्तिक अध्ययन तथा साक्षात्कार का विशेष महत्व है।

12.12 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में वैयक्तिक अध्ययन की आवश्यकता को समझाइये ?
2. वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताओं का वर्णन कीजिये ?
3. सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य में साक्षात्कार की आवश्यकता को समझाइये ?
4. साक्षात्कार की विशेषताएं क्या हैं ?
5. साक्षात्कार के उद्देश्यों का वर्णन करें ?
6. साक्षात्कार में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियॉ कौन सी हैं ?
7. साक्षात्कार में अवलोकन के महत्व की विवेचना करें ?
8. अभिलेखन में प्रयोग की जाने वाली प्रविधियों का वर्णन करें ?
9. साक्षात्कार की प्रक्रिया का उल्लेख करें ?
10. अभिलेखन की प्रक्रिया का सविस्तार वर्णन करें ?

12.13 पारिभाषिक शब्दावली

अभिलेखन	–Recording	अवलोकन	–Observation
वैयक्तिक	– Case	अध्ययन	–Study
प्रयोग	–Experiments	साक्षात्कार	–Interview
प्रविधिया	–Technics	व्यक्तित्व अध्ययन	–Case Study

सन्दर्भ

1. डॉ0 प्रयाग दीन मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेष हिन्द संस्थान लखनऊ।
2. डा. कृपाल सिंह सुदनः समाज कार्य सिद्धान्त एवं अभ्यास, नव ज्योति सिमरन पटिलकेशन्स, लखनऊ।
3. आर0के0 उपाध्यायः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, एक चिकित्सीय उपागम प्रकाशन : रावत, नई दिल्ली।

4. पी0डी0 मिश्रः सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रकाशकः मधुकर द्विवेदी, लखनऊ।

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष **संयोजक**
कुलपति **निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

1.**प्रोफ़ेसर आर॰ पी॰ द्विवेदी,महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी**

2.**प्रोफ़ेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

१. प्रो0 ए0 एन0 सिंह लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ
२. डा0 संजय महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
३. डा0 सुषमा मिश्रा डी0 ए0 वी0 कालेज वाराणसी
४. डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

संपादन

डॉ॰ नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

आई॰ एस॰ बी॰ एन॰ नं॰: 978-93-84433-94-9
कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by: **उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल**-263139

....
सर्वाधिकार सुरक्षित |इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसीअन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MSW-07

सामाजिक समूह कार्य
Social Group Work

खण्ड – 1

इकाई 1	सामाजिक समूह कार्य : एक परिचय Social Group Work : an Introduction	पृष्ठ – 1–16
इकाई 2	सामूहिक समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास Historical Development of Social Group Work	पृष्ठ – 17–37
इकाई 3	सामाजिक सामूहिक कार्य के सिद्धान्त एवं निपुणताएं Theories and Skills in Social Group Work	पृष्ठ –38–53

खण्ड – 2

इकाई 4	स्वःसमूह कार्य के सिद्धान्त एवं मूल्य Theories and Values in Self Group Work	पृष्ठ – 54–61
इकाई 5	सामाजिक समूह कार्य के प्रारूप Models of Social Group Work	पृष्ठ – 62–73
इकाई 6	सामूहिक समाज कार्य : कार्यक्रम नियोजन एवं विकास Social Group Work: Programme Planning and Development	पृष्ठ–74–95

खण्ड – 3

इकाई 7	सामूहिक प्रकियाएं Social Processes	पृष्ठ – 96–119
इकाई 8	सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध Inter-relation between Methods of Social Group Work and Social Work	पृष्ठ – 120–140

इकाई 9 सामूहिक समाज सेवाकार्य में अभिलेखन एवं पर्यवेक्षण पृष्ठ – 141–158
Recording and Supervision in Social Group Work

खण्ड – 4

इकाई 10 सामाजिक समूह कार्य में समूह पृष्ठ – 159–186
Group in Social Group Work

इकाई 11 सामाजिक समूह कार्य में टीम बिल्डिंग पृष्ठ – 187–199
Team Building in Social Group Work

इकाई 12 सामाजिक समूह कार्य में संस्था की भूमिका पृष्ठ – 200–214
Role of Agency in Social Group Work

इकाई 1

सामाजिक समूह कार्य : एक परिचय

Social Group Work: an Introduction

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 परिचय
1.4 सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य
1.5 सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य का उद्देश्य
1.8 सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य का विकास
1.9 व्यावसायिक सामूहिक सेवाकार्य का विकास
1.10 सामाजिक सामूहिक कार्य के प्रारूप
1.15 सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य का समाजकार्य से सम्बन्ध
1.16 सार संक्षेप
1.17 अभ्यास प्रश्न
1.18 पारिभाषिक शब्दावली
1.19 सन्दर्भ ग्रन्थः

1.0 उद्देश्य

1. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य की अवधारणा तथा उसके विकास के विषय में जान सकेगे।
2. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य के उद्देष्य के विषय मे जान सकेगें।
3. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य के मूल तत्व को समझ पायेगे।
4. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य के समाजकार्य से सम्बन्ध के विषय में जान सकेगें।

1.1 परिचय

जहॉ सामाजिकता ने मनुष्य को अस्तित्व प्रदान किया है वही पर दरिद्रता, निर्धनता, बेरोजगारी, स्वास्थ, विचलन, सामायोजन सम्बन्धी समस्याओं का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप समाज अनेक प्रकार के सुरक्षात्मक कदम उठायें। सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य द्वारा सामाजिक जीवन–धारा में भाग लेने के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली व्यक्ति को सम्बन्ध सम्बन्धी समस्याओं को सामूहिक प्रक्रिया के प्रभावकारी प्रयोग द्वारा रोका जाता है। इसके अन्तर्गत सामूहिक सम्बन्धों का स्रोत और निर्देशित प्रयोग करके समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व की सीमा व मानवीय सम्पर्को में वृद्वि की जाती है। इसके द्वारा समूह के सदस्यों की शिक्षा, विकास तथा सांस्कृतिक समृद्वि और समुह में व्यक्तिगत सम्पर्को के माध्यम से व्यक्ति में विकास और सामाजिक सामायोजन की प्राप्ति की सम्भावनाओं पर बल दिया जाता है। सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य में सहायता एवं परिवर्तन का माध्यम समूह एवं सामूहिक अनुभव होते है।

1. सामूहिक सेवा कार्य का अर्थ

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर सामूहिक सेवा कार्य के अर्थ पर प्रकाश डाला जा सकता है।

1. वैज्ञानिक ज्ञान, प्रविधि, सिद्धान्तों एवं कुशलता पर आधारित प्रणाली।
2. समूह मे व्यक्ति पर बल।
3. किसी कल्याणकारी संस्था के तत्वावधान मे किया जाता है।
4. व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है।
5. सेवा सम्बन्धी क्रिया कलाप में समूह स्वयं एक उपकरण होता है।
6. इससे प्रशिक्षित कार्यकर्ता कार्यक्रमों सम्बन्धी क्रियाकलापों में समूह के अन्दर अन्तःक्रियाओ का मार्गदर्शन करने में अपने ज्ञान नियुक्ता व अनुभव को प्रयोग करता है।
7. सामूहिक सेवाकार्य के अन्तर्गत समूह मे व्यक्ति व समुदाय के अंश स्वरूप समूह केन्द्र बिन्दु होता है।
8. सामूहिक सेवाकार्य अभ्यास में केन्द्रिय या मूल तत्व सामूहिक सम्बन्धों को सचेत व निर्देशित प्रयोग है।

इस प्रकार ट्रेकर ने समस्त समाजकार्य का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति को माना है। यह व्यक्ति समूह और समूह के अन्य सदस्यों से सम्बद्व होता है।

सामूहिक कार्य समूह के माध्यम से व्यक्ति की सहायता करता है। समूह द्वारा ही व्यक्ति में शारीरिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं को उत्पन्न कर समायोजन के योग्य बनाया जाता हैं। सामाजिक सामूहिक कार्य को व्यवस्थित ढ़ंग से समझने के लिए हम यहां पर कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं को उल्लेख कर रहे है।

न्यूज टेट्र (1935) – ''स्वैच्छिक संघ द्वारा व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक समायोजन पर बल देते हुऐ तथा एक साधन के रूप इस संघ का उपयोग सामाजिक इच्छित उद्‌देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा प्रक्रिया के रूप मे सामूहिक कार्य को परिभाषित किया जा सकता है।''

क्वायल, ग्रेस (1939) – ''सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्‌देश्य सामूहिक स्थितियों में व्यक्तियो की अन्तः क्रियाओं द्वारा व्यक्तियों का विकास करना तथा ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करना जिससे समान उद्‌देश्यों के लिए एकीकृत, सहयोगिक सामूहिक क्रिया हो सके।''

विल्सन एण्ड राइलैण्ड (1949) – ''सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य एक प्रक्रिया और एक प्रणाली है, जिसके द्वारा सामूहिक जीवन एक कार्यकर्त्ता द्वारा प्रभावित होता है जो समूह की परस्पर सग्बन्धी प्रक्रिया को उद्‌देश्य प्राप्ति के लिए सचेत रूप से निदेर्शित करता है। जिससे प्रजातान्त्रिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।''

हैमिल्टन (1949) – '' सामाजिक सामूहिक कार्य एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है, जो नेतृत्व की योग्यता और सहकारिता के विकास से उतनी ही सम्बन्धित है, जितनी सामाजिक उद्‌देश्य के लिए सामूहिक अभिरूचियों के निर्माण से है।''

कर्ले, आड्म (1950) – '' सामूहिक कार्य के एक पक्ष के रूप मे, सामूहिक सेवा कार्य का उद्‌देश्य, समूह के अपने सदस्यों के व्यक्तित्व परिधि का विस्तार करना और उनके मानवीय सम्पर्को को बढ़ाना है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम् से व्यक्ति के अन्दर ऐसी क्षमताओं का निमोर्चन किया जाता है, जो उसके अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क बढ़ने की ओर निदेर्शित होती है।''

ट्रैकर – ''सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है। जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में एक कार्यकर्त्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्त्ता कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं

में व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रक्रिया का मार्ग दर्शन करता हैः जिससे वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर सके और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों को अनुभव कर सकें।''

कोनोप्का – सामाजिक सामूहिक कार्य समाजकार्य की एक प्रणाली है जो व्यक्तियों की सामाजिक कार्यात्मकता बढ़ाने मे सहायता प्रदान करती है, उददेश्यपूर्ण सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्तिगत, सामूहिक और सामुदायिक समस्याओं की ओर प्रभावकारी ढ़ंग से सुलझानें मे सहायता प्रदान करती है।''

परिभाषाओं का विश्लेषण –

1.4 परिभाषाओं का विश्लेषणः न्यूज टेट्टर ने अपनी परिभाषा में सामूहिक कार्य को एक शिक्षात्मक प्रक्रिया बताया है। उन्होने कहा कि स्वैच्छिक संघ ही इस दिशा में काम करते है। परन्तु सामूहिक कार्य केवल शिक्षात्मक कार्य ही नही है बल्कि इसके द्वारा सेवा प्रदान की जाती हैं। यह कार्य केवल स्वैच्छिक संगठनों द्वारा ही नही होता है बल्कि दोनो प्रकार के संगठन स्वैच्छिक तथा सार्वजनिक सामूहिक कार्य प्रणाली को उपयोग करते हैं।

हैमिल्टन के विचार अपने समय के सभी विद्वानों के विचारों से भिन्न है। उनका विचार है कि सामूहिक कार्य एक मनो सामाजिक प्रक्रिया है अर्थात इसके द्वारा व्यक्ति को मानसिक रूप से तथा सामाजिक रूप से दोनो प्रकार से प्रभावित किया जाता है। यह सामाजिक उददेश्यों की पूर्ति के लिए सामूहिक अभिरूचियों के विकास का प्रयत्न करता है। साथ ही साथ उनके नेतृत्व एवं सहकारिता की भावना के विकास पर बल देता है।

ट्रैकर ने सामाजिक सामूहिक कार्य की सबसे उपर्युक्त परिभाषा दी है उनकी परिभाषा को हम पॉच भागों में विभाजित कर विश्लेषित कर सकते है।

प्रथम भाग में सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य को एक प्रणाली या पद्वति कहा गया है। अर्थात एक विशेष प्रणाली द्वारा योजना बद्व व सुव्यवस्थित कार्यक्रम से समूह को सेवा प्रदान की जाती है इसमे सेवा प्रदान करने के दौरान वैज्ञानिक ज्ञान, समूह बोध सिद्वान्त एवं कौशल का समावेश होता है।

द्वितीय भाग में व्यक्ति, समूह, समुदाय एवं सामाजिक संस्था के परिवेशों पर बल दिया गया हैं। चूकि सामूहिक कार्यकर्त्ता किसी समूह मे व्यक्ति के साथ किसी संस्था में कार्य करता है अतः व्यक्ति, समूह एवं समुदाय की आवश्यकता तथा क्षमता तथा संस्था के उददेश्य व स्थान आदि का स्पष्ट ज्ञान व बोध होना चाहिए।

तीसरे भाग में ट्रेकर मार्गदर्शन की बात करते है। सामूहिक कार्यकर्त्ता स्वीकृति, वैयक्तिकरण, कार्यक्रम एवं उददेश्य निर्धारण में समूह की सहायता, प्रेरणा व निदेर्शन, संगठन तथा साधनों के उपयोग पर आधारित सम्बन्धों द्वारा समूह का मार्गदर्शन करता है।

चौथे भाग में कार्यक्रम नियोजन पर बल दिया गया है। कार्यक्रम का रूप किसी एक व्यक्ति का नही वरन् सम्पूर्ण समूह का होता है। नियोजन के पश्चात् कार्यक्रम का कार्यान्वयन एवं कार्य विभाजन किया जाता है। इसमें सदस्यों की की क्षमता, आवश्यकता व सक्रियता पर ध्यान दिया जाता है। समूह में निर्णय लेने की प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण होती है। इसमे सदस्य भाग लेते है और उनकी क्षमता व आवश्यकता का योगदान होता हैं। उत्तरदायित्व, प्राप्तियॉ, आत्म प्रेरणा समायोजन आदि के द्वारा अन्तः क्रिया का वास्तविक बोध होता है।

पाचवॉ भाग व्यक्ति, समूह और समुदाय के विकास से सम्बन्धित है। ट्रेकर ने बताया कि व्यक्ति एवं समह के व्यवहार में इस प्रकार सुपरिवर्तन लाना है कि प्रजातान्त्रिंक सिद्वान्तों जैसे समानता

स्वतन्त्रता, सौहार्द्र, व्यक्ति का आदर, व्यक्ति की योग्यता में विश्वास कर्त्तव्य एवं अधिकार, व्यक्ति की आत्म विकास की क्षमता के विष्वास और इस सम्बन्ध मे अवसर प्रदान करने में विश्वास किया जाता है।

1.5 सामूहिक कार्य का उद्‌देश्य

सामूहिक कार्य का उद्‌देश्य समूह द्वारा व्यक्तियों मे आत्मविश्वास आत्म निर्भरता एवं आत्मनिर्देशन का विकास करना है। सामाजिक कार्यकर्ता व्यथ्तयों मे सामजस्य को बढ़ाने और सामूहिक उत्तरदायित्व एवं चेतना का विकास करने में सहायता देता है। सामूहिक कार्य द्वारा व्यक्तियों में इस प्रकार की चेतना उत्पन्न की जाती है तथा क्षमता का विकास किया जाता है जिससे वे समूह और समुदायों के क्रियाकलापों में, जिसके वे अंग है, बुद्धिमतापूर्वक भाग ले सकते हैं उन्हे अपनी इच्छाओं, आकाक्षाओं, भावनाओं, संधियों आदि की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।

1.5.1 विभिन्न विद्वानो द्वारा सामूहिक कार्य के उद्‌देश्यः

ग्रेस, क्वायलः– 1. व्यक्तियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार विकास के अवसर प्रदान करना।

2. व्यक्ति को अन्य व्यक्तियो, समूहों और समुदाय से समायोजन प्राप्त करने मे सहायता देना।
3. समाज के विकास हेतु व्यक्तियों को प्रेरित करना।
4. व्यक्तियों को अपने अधिकारों, सीमाओ और योग्यताओं के साथ–2 अन्य व्यक्तियों के अधिकारों, योग्यताओं एवं अन्तरों को पहचानने मे सहायता देना।

मेहताः– 1. परिपक्वता प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों की सहायता करना।

2. पूरक, सांवेगिक तथा सामाजिक खुराक प्रदान करना।
3. नागरिकता तथा जनतांत्रिक भागीकरण को बढ़ावा देना।
4. असमायोजन व वैयक्तिक तथा सामाजिक विघटन उपचार करना।

विल्सन, तथा राइलैण्डः– 1. समूह के माध्यम से व्यक्तियों के सावेगिक संतुलन को बनाना तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना।

2. समह की उन उद्‌देश्यों की प्राप्ति में सहायता करना जो आर्थिक राजनैतिक एवं सामाजिक जनतंन्त्र के लिए आवश्यक है।

ट्रेकरः– 1. मानव व्यक्तित्व का सम्भव उच्चतम विकास करना।

2. जनंतान्त्रिक आदर्शो के प्रति समर्पित तथा अनुरक्त।

फिलिप्सः– सदस्यों का समाजीकरण करना।

कोनोष्काः– सामूहिक अनुभव द्वारा सामाजिक कार्यात्मकता में बृद्धि करना।

1.5.2 उद्‌देश्यों का वर्णन

1. जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति करनाः– सामूहिक कार्य का प्रारम्भ आर्थिक समस्याओं का समाधान करने से हुआ है। परन्तु कालक्रम के साथ–2 यह अनुभव किया गया कि आर्थिक आवश्यकता का समाधान सभी समस्याओ का समाधान नही है। स्वीकृति, प्रेम, भागीकरण, सामूहिक अनुभव, सुरक्षा आदि ऐसी आवश्यकताएं है जिनको भी पूरा करना आवश्यक है इस आधार पर अनेक संस्थाओं का विकास हुआ जिन्होने इन आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य प्रारम्भ किया। आज सामूहिक कार्यकर्ता समूह में व्यक्तियों को एकत्रित करके उनके एकाकीपन कीसमस्या का समाधान करता है, भागीकरण को प्रोत्साहन देता है तथा सुरक्षा की भावना का विकास करता हैं

2. सदस्यों को महत्व प्रदान करनाः– आधुनिक युग में भौतिकवादी युग होने के कारयण व्यक्ति का कोई महत्व ने होकर धन, मशीन तथा यन्त्रों को महत्व हो गया है। इसके कारण व्यक्ति में निराशा तथा हीनता के लक्षण अधिक प्रकट होने लगे है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसका कुछ महत्व हो तथा समाज में सम्मान हों यदि हम मानव विकास के स्तरों को सूक्ष्म अवलोकन करें तो ऐसा कोई भी सतर नही है जहॉ पर व्यक्ति अपना सम्मान प्राप्त करने की इच्छा ने रखता हो। सामूहिक कार्यकर्ता समूह के सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करता है तथा उन्हें उचित स्थान व स्वीकृति देता है।
3. सांमजस्य स्थापित करने की शक्ति का विकास करना व्यक्ति की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता सामंजस्य प्राप्त करने की होती है। व्यक्ति इससे जीवन रक्षा के अवसर प्राप्त करता है। तथा बाह्य पर्यावरण को समझ कर अपनी आवश्यकताओं की संन्तुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति जब तक जीवित रहता है तब तक अनेकानेक समस्यायें उसकों घेरे रहती है। और समायोजन स्थापित करने के लिए बाह्य करती है। सामूहिक कार्यकर्ता सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति की सामंजस्य स्थापित करने की कुशलता प्रदान करता है। व्यक्ति में शासन करने, वास्तविक स्थिति को अस्वीकार करने की, उत्तरदायित्व पूरा न करने की।

1.2 सामूहिक सेवाकार्य का विकास (Development of Group Work)

सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य समाजकार्य की दूसरी महत्वपूर्ण प्रणाली है। इसकी उत्पत्ति उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में सेटलमेंट हाउस आन्दोलन से हुई आरम्भ में इस आन्दोलन का उद्देश्य असहाय व्यक्तियों के लिए शिक्षा और मनोरेजन के साधन उपलब्ध कराना था सेटलमेन्ट हाउस आन्दोलन ने गृह–अभाव अस्वच्छ वातावरण, एवं न्यून पारिश्रमिक की समस्या को सुलझाने के लिए सामाजिक सुधार का प्रयास किया। सेटलमेन्ट हाउसेज में व्यक्तियों के समूहों की सहायता की जाती थी। पृथक–2 व्यक्तियों की व्यक्तिगत समस्याओं पर इनमें ध्यान नही दिया जाता था क्योकि उसके लिए अन्य संस्थायें थी।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे स्काउट्स और इसी प्रकार के अन्य समूह लड़कों एवं लड़कियों के लिए बने। इन समूहों ने केवल अभावग्रस्त समूहों की ओर ही ध्यान नही दिया बल्कि वे मध्य एवं उच्च आर्थिक वर्ग के बच्चों की रूचि भी अपनी ओर आकर्षित करने लगे। बढ़ते हुऐ औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण वैयक्तिक सम्बन्धों को पुनः स्थापित करने एवं अपनत्व की भावना या हम की भावना के विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। इन दो कारकों ने सामूहिक कार्य की प्रणलियों एवं उद्देश्यों मे परिवर्तन कर दिया।

विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विकास ने यह बात स्पष्ट कर दी कि व्यक्तित्व विकास के लिए व्यक्ति की सामूहिक जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि आवश्यक है। यह समझा जाने लगा कि व्यक्तित्व के संतुलित विकास के लिए आश्यक है कि व्यक्ति में सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करने, अन्य व्यक्तियों के साथ परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने, मतभेदों को सहनशीलता की दृष्टि से देखने तथा सामान्य कार्यक्रमों में भाग लेने और समूह के हितों और अपने हितों में अनुरूपता उत्पन्न करने की योग्यता हो। इस विचारधारा ने सामूहिक सेवाकार्य को एक महत्वपूर्ण (Tool) साधन बना दिया। सामूहिक सेवाकार्य अब केवल निर्धन व्यक्तियों को लिए ही नही था अपितु मध्य एवं उच्च वर्ग के व्यक्ति भी इससे लाभाविन्त हुए। सामूहिक सेवाकार्य में सामूहिक क्रियाओं द्वारा व्यक्तित्व का विकास करने का प्रयास किया जाता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामाजिक सामूहिक कार्य एक मनोसामाजिक प्रक्रिया है उक्त परिभाषा किसकी है–

1. ग्रेस क्वायल 2. फ्रीडलैण्डर
3. हैमिल्टन 4. ट्रैकर

2. समूह कार्य का मूल उद्देश्य है–
1. व्यक्तित्व विकास 2. समस्या समाधान
3. पुनः समायोजन 4. उपचार

3. समूह कार्य है–

1. कार्यक्रम जनसंचार माध्यम
2. पारस्परिक कार्य की प्रक्रिया
3. लोगों के साथ मिलकर कार्य करने की विधि
4. मनोरंजन का एक प्रकार

1.2.1 व्यावसायिक सामूहिक कार्य का विकास (Development of Professional Group work)

सन् 1935 मे सामूहिक कार्यकताओं मे व्यावसायिक चेतना जागृत हुई इस वर्ष समाज कार्य की राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में सामाजिक सामूहिक कार्य को एक भाग के रूप में अलग से एक अनुभाग बनाया गया इसी वर्ष सोशल वर्क ईयर बुक में सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य पर अलग से एक खण्ड के रूप में कई लेख प्रकाशित किये गये। इन दो कार्यो से सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य व्यावसायिक समाजकार्य का एक अंग बना। सन् 1935 मे सामूहिक कार्य के उद्देश्यों को एक लेख के रूप मे समाजकार्य की राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स मे प्रस्तुत किया गया। ‘‘स्वैच्छिक संघ द्वारा व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक समायोजन पर बल देते हुये तथा एक साधन के रूप में इस संघ का उपयोग सामाजिक इच्छित उद्देष्यों को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा प्रक्रिया के रूप में समूह कार्य को परिभाषित किया जा सकता है।’’ "Group work may be defined as an Educational Process emphasizing the development and social adjustment of an Individual through ?voluntary association and the use of this association as a means of furthering socially desirable ends".

सन् 1937 मे ग्रेस क्वायल ने लिखा कि ‘‘सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य सामूहिक स्थितियों में व्यक्तियों की पारस्परिक क्रिया द्वारा व्यक्तियों का विकास करना तथा ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करना जिससे समान उद्देश्यों के लिए एकीकृत, सहयोगिक, सामूहिक क्रिया हो सकें।’’ " Social group work aims at the development pf persons through the interplay of personalities in Group- situations and at the creation of such group situations as provide for integrated Cooperative group action for common ends".

हार्टफोर्ड का विचार है कि समूह कार्य के तीन प्रमुख क्षेत्र थे–
1. व्यक्ति का मनुष्य के रूप में विकास तथा सामाजिक समायोजन करना।

2. ज्ञान तथा निपुणता में वृद्धि द्वारा व्यक्तियों की रूचि में बढ़ोत्तरी करना।
3. समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।

सन् 1940–50 के बीच सिगमण्ड फ्रायड का मनोविश्लेषण का प्रभाव समूह कार्य व्यवहार में आया। इस कारण यह समझा जाने लगा कि सामाजिक अकार्यात्मकता (Social disfunctioning) का कारण सांवेगिक सघर्ष है। अतः अचेतन से महत्व दिया जाने लगा जिससे समूहकार्य संवेगिक रूप से पीड़ित व्यक्तियों के साथ काम करने लगा। द्वितीय विश्वयुद्ध ने चिकित्सकीय तथा मनोचिकित्सकीय समूह कार्य को जन्म दिया।

1.2.2 सामाजिक सामूहिक कार्य के प्रारूप

सन् 1950 के बाद से समूह कार्य की स्थिति में काफी परिवर्तन आये है। सामाजिक बौद्विक, आर्थिक, प्रौद्योगिक परिवर्तनों ने समूह कार्य व्यवहार को प्रभावित किया हैं। इसलिए सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समूहकार्य के तीन प्रारूप (models) तैयार किये हैः–

1. उपचारात्मक प्रारूप (Rededial Model) विटंर
2. परस्परात्मक प्रारूप (Reciprocal Model) स्क्दारत
3. विकासात्मक प्रारूप (Developmental Model) बेरस्टीन

सामाजिक सामूहिक कार्य सामूहिक क्रियाओं द्वारा रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का विकास करता है। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विकास ने यह सिद्व कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति की सामूहिक जीवन सम्बन्धी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि आवश्यक होती है जहॉ एक ओन सामूहिक भागीकरण व्यक्ति के लिए आवश्यक होता हे वही दूसरी ओर भागीकरण से समुचित लाभ प्राप्त करने के लिए सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करने, अन्य वयक्तियों से परस्पर समबन्ध सथापित करने, मतभेदों को निपटाने तथा अपने हितों को समूह के हितो को ध्यान में रखकर कार्यक्रम नियोजित तथा संचालित करने की योग्यता होनी चाहिए। सामूहिक कार्य द्वारा इन विशेषताओं तथा योग्यताओं का विकास किया जाता है।

सामूहिक जीवन का आधार सामाजिक सम्बन्ध है। मान्टैग्यू ने यह विचार स्पष्ट किया कि सामाजिक सम्बन्धों का तरीका जैविकीय निरन्तरता पर आधारित है। जिस प्रकार से जीव की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार से सामाजिक अभिलाषा भी उत्पन्न होती है। जीव के प्रकोष्ठ एक दूसरे से उत्पन्न होते है उनके लिए और किसी प्रकार से उत्पन्न होना सम्भव नही हैं प्रत्येक प्रकोष्ठ अपनी कार्य प्रक्रिया के ठीक होने के लिए दूसरे प्रकोष्ठों की अन्तः क्रिया पर निर्भर है। अर्थात प्रत्येक अवयव सम्पूर्ण में कार्य करता हैं। सामाजिक अभिलाषा भी उसका अंग है। यह मनुष्य का प्रवृत्तियात्मक गुण है। जिसे उसने जैविकीय वृद्धि प्रक्रिया से तथा उसकी दृढ़ता से प्राप्त किया है। अतः सामूहिक जीवन व्यक्ति के लिए उतना महत्वपूर्ण है जितना उसकी भौतिक आवश्यकतायें महत्वपूर्ण है।

1.6 सामूहिक सेवाकार्य के अंग (तत्व)

सामाजिक सेवाकार्य एक प्रणाली है जिसके द्वारा कार्यकर्त्ता व्यक्ति को समूह के माध्यम से किसी संस्था अथवा सामुदायिक केन्द्र में सेवा प्रदान करता है, जिससे उसके व्यक्तित्व का सन्तमुलित विकसा संभव होता है। इस प्रकार सामूहिक सेवाकार्य की तीन अंग निम्न है।

1.6.1 कार्यकर्ता

सामाजिक सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता एक ऐसा व्यक्ति होता है। जो उस समूह का सदस्य नही होता है। जिसके साथ वह कार्य करता है। इस कार्यकर्ता में कुछ निपुणतायें होती है, जा व्यक्तियों की

संधियों, व्यवहारों तथा भावनाओ के ज्ञान पर आधिरित होती है। उससे समूह के साथ कार्य करने की क्षमता होती है। तथा सामूहिक स्थिति से निपटने की शक्ति एवं सहनशीलता होती है। उसका उद्देश्य समूह को आत्म निर्देशित तथा आत्म संचालित करना होता है तथा वह ऐसे उपाय करता है जिसे समूह का नियंत्रण समूह–सदस्यों के हाथ में रहता है वह सामूहिक अनफभव द्वारा व्यक्ति में परिवर्तन एवं विकास लाता है। कार्यकर्ता की निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है।

1. सामुदायिक स्थापना।
2. संस्था के कार्य तथा उद्देश्य।
3. संस्था के कार्यक्रम तथा सुविधायें।
4. समूह की विशेषतायें।
5. सदस्यों की संधियॅा आवश्यकतायें तथा योग्यतायें।
6. अपनी स्वंय की निपुणतायें तथा क्षमतायें।
7. समूह की कार्यकर्ता से सहायता प्राप्त करने की इच्छा।

सामूहिक कार्यकर्ता अपनी संवाओं द्वारा सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति की स्पष्ट विकास तथा उन्नति के लिए अवसर प्रदान करता है। तथा व्यक्ति के सामान्य निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता हैं। सामाजिक सम्बन्धों को आधार मानकर शिक्षात्मक तथा विकासात्मक क्रियायों का आयोजन व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के लिए करता है।

1.6.2 समूह

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता अपने कार्य का प्रारम्भ समूह साथ काय्र करता है। और ससमूह के माध्यम से ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है, वह व्यक्ति को समूह के सदस्य के रूप में जानता है तथा विशेषताओं को पहचानता है। समूह एक आवष्यक साधन तथा यन्त्र होता है, जिसको उपयोग में लाकर सदस्य अपनी उद्देष्यों की पूर्ति करते है। जिस प्रकार का समूह होता है कार्यकर्ता को उसी प्रकार की भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। सामान्य गति से काम करने के लिए समूह सदस्यों में कुछ सीमा तक संधियों, उद्देश्यों, बौद्धिक स्तर, आयु तथा पसन्दो मे समानता होनी आवश्यक होती है। इसी समानता पर यह निश्चित होता है कि सदस्य समूह में समान अवसर कहॅा तक पा सकेगें तथा कहा तक उद्देश्य पूर्ण तथा सप्रगाढ सम्बन्ध स्थापित हो सकेगां समूह तथा कार्यकर्ता सामाजिक मनोरंजन तथा शिक्षात्मक क्रियाओं को सदस्यों के साथ सम्पन्न करते तथा इसके द्वारा वे निपुणताओं का विकास करते है। लेकिन सामूहिक कार्य इस बात में विश्वास रखता है कि समूह का कार्य कनपुणता प्राप्त करना नही है बल्कि प्राथमिक उद्देश्य प्रत्येक सदस्य का समूह में अच्छी प्रकार से समायोजन करना है। व्यक्ति समूह के माध्यम से अनेक प्रकार के समूह अनुभवों को प्राप्त करता है, जो उसके लिए आवश्यक होते हैं समूह द्वारा वह मित्रों तथा संधियों का भाव सदस्यों में उत्पन्न करता है, जिससे सदस्यों की महत्पपूर्ण आवश्यकता है ''मित्रों के साथ रहने की'' पूर्ति होती है। वे माता पिता के नियंत्रण से अलग होकर अन्य लोगों के सामाजस्य करना सीखते है, तथा निपुणता व विशेषीकरण प्राप्त करते है, स्वीकृती की इच्छा पूरी होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति के विकास के लिए समूह आवश्यक होता है।

1.6.3 अभिकरण (संस्था)

सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था का विशेष महत्व होता है क्योकि सामूहिक कार्य की उत्पत्ति ही संस्थाओं के माध्यम से हुई है। संस्था की प्रकृति एवं कार्य कार्यकर्ता की भूमिका को निश्चित करता है। सामूहिक कार्यकर्ता अपनी निपुणताओं का उपयोग एजेन्सी के प्रतिनिधि के रूप में करता है। क्योकि

समुदाय एजेन्सी के महत्व को समझता है तथा कार्य करने की स्वीकृति देता है। अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह संस्था के कार्यो से भलीभांति परिचित हो। समूह के साथ कार्य प्रारम्भ करने से पहले कार्यकर्ता को संस्था की निम्न बातों को भली भॉति समझना चाहिए।

1. कार्यकर्ता को संस्था के उद्देश्यों तथा कार्यो का ज्ञान होना चाहिए अपनी रूचियों की उन कार्यो से तुलना करके कार्य करने के लिए तैयार रहना चाहिए।
2. संस्था की सामान्य विशेषताओं से अवगत होना तथा उसके कार्य क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिए।
3. उसकों इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि किस प्रकार संस्था समूह की सहायता करती है तथा सहायता के क्या–2 साधन व श्रोत है।
4. संस्था में सामूहिक संबन्ध स्थापना की दशाओं का ज्ञान होना चाहिए।
5. संस्था के कर्मचारियों से अपने सम्बन्ध के प्रकारें की जानकारी होनी चाहिए ।
6. उसको जानकारी होनी चाहिए कि ऐसी संस्थायें तथा समूह कितने है जिनमें किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति को सन्दर्भित किया जा सकता है।
7. संस्था द्वारा समूह के मूल्यांकन की पद्वति का ज्ञान होना चाहिए।

सामाजिक संस्था के माध्यम से ही समूह सदस्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते है तथा विकास की ओर बढते है। वे संस्थायें व्यक्तियों व समूहों की कुछठ सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित की जाती है तथा उनका प्रतिनिधित्व करती है।

1.7 सामाजिक सामूहिक कार्य का समाजकार्य से सम्बन्ध

सामूहिक कार्य सामाजिक कार्य की एक प्रणाली के रूप में सामूहिक क्रियाओं द्वारा व्यक्तियों में रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का विकास करता है। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विकास ने यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति की सामूहिक जीवन सम्बन्धी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की संन्तुष्टि आवश्यक होती है। जहॉ एक ओर सामूहिक भागीकरण व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है वही दूसरी ओर भागीकरण से समुचित लाभ प्राप्त करने के लिए सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करना, अन्य व्यक्तियों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने, मतभदों को निपटाने तथा अपने हितों तथा समूह के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रम नियोजित तथा संचालित करने की योग्यता होनी चाहिए।

समाजकार्य एक व्यवसायिक सेवा है जिसका आधार मानव सम्बन्धों के ज्ञान व सम्बन्धों की निपुणता पर है और जिसका सम्बन्ध आभ्यान्तर वैयक्तिक अथवा आन्तर वैयक्तिक समायोजन सम्बन्धी समस्याओं से है जो अपूर्ण वैयक्तिक सामूहिक और सामुदायिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है। इसका उद्देश्य व्यक्ति समूह तथा समुदायों को विकसित, उन्नत तथा समृद्ध करना है।

सामाजकार्य के उद्देश्यों की पूर्ति उसकी विभिन्न प्रणालियों द्वारा की जाती है जिनमें वैयक्तिक सेवाकार्य सामूहिक सेवाकार्य तथा सामुदायिक संगठन मुख्य है। यहॉ हम सामूहिक संवाकार्य से इनको अर्न्तसम्बन्धों की विवेचना करेंगें।

1. उद्देश्य के आधार पर सम्बन्ध

समाजकार्य की सभी विधियों का उद्देश्य लगभग समान है। सभी विधियों का उद्देश्य व्यक्ति की अधिक से अधिक सहायता करना है, जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान करके तथा विकास की गति में बृद्धि ला सकें सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से करता है। यद्यपि सामूहिक क्र्य में केन्द्र बिन्दु समूह होता हे परन्तु व्यक्ति के हितों का पूरा ध्यान रखाजाता है।

आवश्यकता पड़ने पर वैयक्तिक सेवाकार्य की सहायता ली जाती है। इसी प्रकार वैयक्तिक सेवाकार्य तथा सामुदायिक संगठन का उद्देश्य भी व्यक्ति की सहायता करना हे जिसे वह अपना विकास तथा उन्नति स्वयंकर सके। इस प्रकार हम देखते है कि अन्ततोंगत्वा इन विधियों का उद्देश्य वयक्ति की इस प्रकार सहायता करना है जिससे वह स्वयं समर्थ हो सके। कार्यकर्ता तो केवल उसकी आवश्यकता के अनुकूल सहायता करता है।

2. सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्ध

समाजकार्य की प्रणालियों मे लगभग समान सिद्धान्तों का उपयोग होता मूलरूप से इनमें मानवतावादी सिद्धान्त कार्य करता है। वैयक्तिक कार्य सेवार्थी समान्य व्यक्ति होता है वह किसी प्रकार की हीन भावना से नही देखा जाता है। कार्यकर्ता उसे आदर एवं प्रतिष्ठा देता है और आत्म सम्मान का बोध कराता है वह सम्बन्ध स्थापनाा पर जोर देता है और उसी के अनुसार उपचार योजना तैयार करता है। सेवार्थी स्वयं उपचार योजना में कार्यरत रहता है सामूहिक कार्य में भी समूह की इच्छा से कार्य किया जाता है समूह सदस्य प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक महत्पूर्ण होते है। समूह में होने वानी समस्त अन्तः कियाये जैसे समूह निर्माण, उद्देश्यों का निर्धारण, कार्य प्रणाली, कार्यक्रम नियोजन एवं निर्धारण, संचालन, नेतृत्व तथा निर्णय आदि सदस्यों द्वारा ही प्रेरित होते है। कार्यकर्ता बस बाह्य निर्देशन करता है। सामुदायिक संगठन में भी लगभग इन्ही सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति और समूह की तरह समुदाय को उसी स्थिति में स्वीकार किया जाता है जिस स्थिति में वह होता है। समुदाय की उपयुक्तता के अनुसार के साथ–साथ कार्य किया जाता है सहायता कार्य इस आधार पर होता है कि समुदाय स्वयं अपनी समस्या का हल करने में समर्थ हो सके।

3. प्रकिया के आधार पर सम्बन्ध

सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य, वैयक्तिक सेवाकार्य तथा सामुदायिक संगठन प्रणालियों में यह प्रयत्न किया जाता है कि व्यक्ति समूह तथा समुदाय स्वयं अपनी समस्याओं के निराकरण में समर्थ हो सके। आत्म विश्वास की भावना का विकास हो तथा शक्ति में बृद्धि हों वैक्तिक सेवाकार्य में व्यक्ति पर विशेष बल दिया जाता है व्यक्ति स्वयं कार्यकर्ता के समक्ष अपनी समस्या का निरूपण करता है तथा सहायता की इच्छा प्रकट करता है। कार्यकर्ता वार्तालाप के माध्यम से सेवार्थी की समस्या को समझता है तथा उपचार और निदान प्रक्रिया संचालित करता है। सा0 कार्य में कार्यकर्ता या तो स्वयं समूह का निर्माण करता है अथवा पहले से संगठित समूह के साथ कार्य करता है वह समूह को अधिकार देता है कि वही कार्यक्रम का क्रियान्वयन करे तथा अभीष्ट उद्देश्य प्राप्त करे वह केवल अन्तःक्रिया का निर्देशन तथा मूल्याकन करता हैं सामुदायिक संगठन में पूरे सदस्यों के हितों के लिए कार्य होता है। कार्यकर्ता मनोवैज्ञानिक आधार के स्थान पर समाजशास्त्रीय आधार को अधिक महत्व देता है।

4. प्रत्यय के आधार पर सम्बन्ध

वैयक्तिक सेवाकार्य तथा सामुदायिक संगठन में लगभग समान प्रत्यय होते है। कार्यकर्त्ता इन विधियों में विभिन्न रूपों से कार्य करता है ज बवह देखता है कि व्यक्ति समूह या समुदाय स्वयं उचित कदम नही उठा सकते तो वह अधिनायक या सत्तावादी हो जाता है तथा अन्य उसके आदेशों का पालन करते है कभी–2 वह स्वयं आदर्श बन जाता है और व्यक्ति साधनों को पहचान नही पाते है। वह समूह में भाग लेने तथा कुशलताओं तथा अभिवृत्तियों के विकास में सहायता प्रदान करता है तथा सामंजस्य स्थापित करने में साहयोग प्रदान करता है। समूह या समुदाय के साथ कार्य करते हुए वैयक्तिक सम्बन्ध भी बनाये रखता है।

5. व्यक्ति के ज्ञान के आधार पर सम्बन्ध

समाजकार्य के सिद्धान्तों में व्यक्ति के ज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है सबसे पहले व्यक्ति के विषय में सम्पूर्ण इतिहास प्राप्त किया जाता है तथा समस्या का निदान वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर किया जाता है वैयक्तिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी के जीवन से सम्बन्द्ध समसत घटनाओं का अभिलेखन करता है उसने के अनुसार उपचार प्रक्रिया अपनाता है। सामूहिक कार्य में यद्यपि कार्यकर्ता का ध्यान समूह पर केन्द्रित होता हैं परन्तु वह वैयक्तिकरण का सिद्धान्त अवश्य अपनाता है। प्रत्येक सदस्य की आदतो, रूचियों, मनोवृत्तियों आदि का ज्ञान रखता है सामुदायिक संगठन में व्यक्ति विशेष के विषय में जानकारी रखना कठिन होता है लेकिन कार्यकर्ता समूह के माध्यम से कोशिष करता है। वह वैयक्तिक सम्पर्क भी रखता है।

6. कार्य की रूप रेखा निश्चित करने के आधार पर सम्बन्ध

समाजकार्य की तरह इसमें यह विशेषता है कि कोई भी कार्य सेवार्थी पर दबाव डालकर नही कराया जाता। वे जिस प्रकार और जैसा कार्य करने की इच्छा रखतें है वैसे ही कार्य किया जाता है वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी को अपना रास्ता उपाय तथा उपचार के चुनाव की पूरी छूट होती है यद्यपि कार्यकर्ता सम्पूर्ण विवरण तथा उपचार प्रक्रिया प्रस्तुत करता है सामूहिक कार्य में भी समूह सदस्य स्वयं कार्यक्रम का चुनाव करते तथा निर्णय में भाग लेते है। सामुदायिक संगठन में कार्यकर्त्ता केवल छिपी समस्याओं को प्रस्तुत करता है और सम्भव उपायों को स्पस्ट करता है। और इसे समुदाय पर छोड़ देता है कि समस्या समाधान का कौन सा तरीका उसे पसन्द है।

7. कार्यक्रम के विकास के आधार पर सम्बन्ध

सामाजकार्य मे कोई भी कार्यक्रम पहले से निष्चित नही किया जाता है। जब समूह में अन्तःक्रिया का संचार हाता है वो कार्यक्रम स्वतः उत्पन्न हो जाते है। वैयक्तिक सेवाकार्य में प्रथमतः सेवार्थी तथा कार्यकर्ता के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है। फिर अन्तःक्रिया का संचार होता है और तब कार्यत्मक उपचार का रास्ता तैयार होता है। सामूहिक सेवाकार्य मे पहल कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है फिर कार्यक्रम का विकास होता है।

1.8 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य क्या है। इस पर प्रकाश डाला गया है। सामाजिक सा0 सेवाकार्य की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाये तथा उनका वर्णन किया गया है। इसके क्रमशः विकास को समझाया गया है सा0 सा0 सेवाकार्य के तत्वों जैसे सामाजिक कार्यकर्त्ता, समूह तथा संस्था के विषय मे लिखा गया है। सा0 सामूहिक सेवाकार्य के उद्देश्य विद्वानो द्वारा प्रतिपादित उद्देश्य तथा उद्देश्यो का वर्णन किया गया है। सा0 सेवाकार्य का समाजकार्य से क्या सम्बन्ध है इस पर विस्तृत विवेचन है।

अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य की अवधारणा स्पस्ट करत हुऐ इसकी परिभाषा लिखिये ?
2. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य के उद्देश्यों का वर्णन करं?
3. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य के तत्वों पर टिप्पणी लिखे?
4. सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य का समाजकार्य से सम्बन्ध स्पष्ट करें?

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

Development - विकास

Group work - समूहकार्य
Aims - लक्ष्य
Personatities - व्यक्तित्व
Essential - जीवनोपयोगी
Importance - महत्व
Adjustment - सामांजस्य
Model - प्रारूप
Intrigrated - एकीकृत
Remedial - परिभाषा
Agency - संस्था
Social worker - सामाजिक कार्यकर्ता

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मिश्रा, पी0डी0 :सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1992।
शास्त्री, ए.एस.इनाम :व्यावसायिक समाजकार्य, गुलसी पब्लिकेशन, वाराणसी 1998।
पाण्डेय, तेजस्कर :समाजकार्य, जुबली फाउडेशन, लखनऊ 2003।
जोसेफ, हेलेन :सोशल वर्क कद ग्रप्स 'ए लिटरेचर रिब्यू', इण्यिन जर्नल आफ सोशल वर्क 1997।
द्विवेदी, मनीष :समाजकार्य, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद 2008।

इकाई –2

सामूहिक समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास

Historical Development of Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 परिचय
2.3 सामूहिक समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास
2.3.1 सामूहिक कार्य का विकास
2.3.2 अमेरिका में सामूहिक समाज कार्य का विकास
2.3.3 भारत में सामूहिक समाज कार्य का विकास
2.4 सार संक्षेप
2.5 अभ्यास प्रश्न
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के द्वारा आपः–

- सामूहिक समाज कार्य का ऐतिहासिक विकास के विषय में जान सकेगें।
- सामूहिक कार्य का विकास के विषय में जान सकेगें।
- अमेरिका में सामूहिक समाज कार्य का विकास के विषय में जान सकेगें।
- भारत में सामूहिक समाज कार्य का विकास के विषय में जान सकेगें।

2.2 परिचय

सामाजिक सामूहिक कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों को मनोरंजन प्रदान करना तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और सामंजस्य सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करके विकास एवं उन्नति करना है। दुनियाँ में इस प्रकार के कार्य बहुत दिनों से होते आये हैं। परन्तु व्यावसायिक समाज कार्य के रूप में सामूहिक समाज कार्य का विकास अधिक समय पहले नहीं हुआ। इसका स्वरूप पहले दान पद्धति थी जिसके द्वारा व्यक्तियों की सहायता की जाती थी। इस प्रकार के कार्यों का आधार धर्म था। व्यक्ति धर्म की भावना से प्रेरित होकर लोगों की सहायता करता था। पुरोहित लोग विधवाओं, असहायों, अनाथों तथा रोग–ग्रस्त लोगों की सुरक्षा का प्रबंध करते थे। गरीबी एवं असहायों की कठिनाइयों को दूर करना तथा अन्य समस्याओं का समाधान करना इसाइयों का आवश्यक कर्तव्य माना जाने लगा था। इस प्रकार व्यक्तियों के संतोष एवं सुखमय जीवन की प्राप्ति के लिए धार्मिक संस्थानों ने सांस्कृतिक एवं नैतिक कार्यों का विकास किया।

प्रारम्भ में क्लेश, दुःख, गरीबी तथा अन्य समस्याओं के लिए ईसाई लोग एक दूसरे की सहायता करते थे। परन्तु मध्यकाल में यह कार्य पादरी करने लगे। वृद्धों, गरीबों तथा रोगियों के लिए आश्रमों एवं संस्थाओं की स्थापना की गयी। गाई डी मान्टेपेलियर्स (Guy De Montepelliers) ने हास्पिटलर्स

(Hospitallers) की तथा सेंट फ्रैंसिस डि एसिसी ने (Saint Francis de Assisi) फ्रैंसिस कैन्स (Francis Cans) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य निर्धन, अपाहिजों, पीड़ितों को शिक्षा देना तथा रोगियों की चिकित्सीय सहायता तथा निराश्रितों को आश्रय देना था। मठ, विहार तथा आश्रम, जहाँ पर दान देने की व्यवस्था थी, वे अस्पताल बन गए। ये स्थान बीमार, वृद्ध, अनाथ, बच्चों तथा गर्भवती स्त्रियों की सेवा शुश्रूषा का प्रबन्ध करते थे।

सोलहवीं शताब्दी के सुधार काल में भिक्षावृत्ति को रोकने का प्रयास किया गया तथा सामान्य दान पेटियों (Common Chests) की स्थापना की गयी। 1523 ई0 में ज्यूरिख तथा स्विटजरलैंड में अलरिक ज्वीगली ने सहायता के लिए प्रभावकारी योजना प्रस्तुत की। अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी असहाय परिवारों की सामाजिक दशाओं को सुधारने में पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त हुई। जुअन लुई वाईव्ज पहले वैज्ञानिक थे जिन्होने इस ओर अपना ध्यान वैज्ञानिक ढंग से समस्या सुलझाने में आकर्षित किया। उन्होने डी सववेन्शन पायरम के नाम से कार्यक्रम बनाया। उन्होंने इस कार्यक्रम द्वारा भिक्षावृत्ति के स्थान पर व्यवसाय संबंधी प्रशिक्षण तथा पुनर्निवेशन पर जोर दिया। वृद्ध तथा अर्योय व्यक्तियों को भिक्षागृह में रखने का सुझाव दिया। इनकी विधियों का प्रयोग कुछ समय पश्चात् सन् 1788 में हैम्बर्ग में शुरू हुआ।

प्रो0 बुश ने भी इस प्रकार की योजना बनाकर शहर को 60 क्वार्टरों में विभाजित किया। प्रत्येक क्वार्टर में समान संख्या में निर्धन परिवार थे। प्रत्येक समिति में तीन नागरिक थे जो बिना किसी पैसे के अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे। ये समितियाँ सेनेट द्वारा नियुक्त की गयी थीं जो जिला स्तर पर व्यक्तिगत भिक्षुओं की खोज करने और उनको सहायता देने का कार्य करती थी। इन समितियों की संख्या 60 थी जो अन्य कार्यों के साथ ही साथ प्रत्येक परिवार की नैतिक तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के बारे में भी जाँच करती थी। औद्योगिक पाठषालाओं में लोगों को औद्योगिक शिक्षा दी जाती थी।

1790 ई0 में म्यूनिख में इसी प्रकार का कार्य प्रारम्भ हुआ। बवेरियन (Bavarian) ने एक सैनिक कर्मषाला की स्थापना की जिसमें उन समर्थ भिक्षुकों को रखा जो सेना के कपड़े तैयार करते थे। जिला स्तर की ऐच्छिक समितियों के सहयोग से पुष्ट शरीर वाले भिक्षुओं को इस कर्मशाला में भर्ती किया गया। सन् 1853 ई0 में एल्वरफेल्ड शहर में भी इसी प्रकार की योजना चलाई गयी। इन समितियों के कार्यकर्ता उन्हीं क्वार्टरों में रहते थे जिनमें गरीब तथा असहाय रहते थे। वे उनकी स्थितियों का अवलोकन करते थे तथा सामाजिक व आर्थिक सहायता प्रदान करते थे।

फ्रांस के श्रेष्ठ सुधारक विन्सेन्ट डि पाल ने इस दिशा में अकथनीय प्रयास किया। उन्होने अपना सारा जीवन गरीबों, भिक्षुकों, कैदियों के परिवारों की दशा सुधारने में अर्पित किया तथा अपने प्रयास द्वारा अनेक अस्पतालों, विधवा आश्रमों तथा अनाथालयों की स्थापना में सहायता की। फादर विंसेन्ट ने 1633 में 'भिक्षा की लड़कियाँ' नामक संघ की स्थापना की जिनमें महिलाएँ भिक्षा का कार्य करती थीं तथा साथ ही साथ गरीबों की सेवा करती थीं। आगे चलकर ये महिलाएँ ही समाज कल्याण की अग्रणी बन गयी।

2.3.1 इंग्लैण्ड में सामूहिक कार्य का विकास

इंग्लैण्ड में भी अन्य यूरोपीय देशों की भाँति गरीबों की देख–रेख का कार्य चर्च करते थे। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लोग असहायों, अंधों, लँगड़ों तथा असमर्थो की सहायता करते थे। 15वीं शताब्दी में बहुत से मठ, अस्पताल तथा अनाथालय बन गए जो गरीबों तथा भिक्षुओं को खाना, कपड़ा तथा शरण देते थें। परन्तु उनको स्वावलम्बी बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। सर्वप्रथम 1531 में हेनरी

अष्ट्म ने इस दिशा में रचनात्मक कार्य किया। उन्होंने स्टैट्यूट ऑफ हेनरी VIII पास किया। इस कानून के द्वारा महापालिका अध्यक्ष, न्यायाधीश वृद्धों एवं निर्धनों के प्रार्थना–पत्रों की जाँच करते थे, असमर्थों को पंजीकृत करते थे तथा भिक्षा माँगने का लाइसेन्स देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि गरीबों की जिम्मेदारी का एहसास जनता करने लगी।

सन् 1536 ई0 में इंग्लिश सरकार ने निर्धनों को पंजीकृत कराके उनकी चर्च द्वारा सहायता करने, पुष्ट शरीर वाले भिक्षुओं को काम करने के लिए बाध्य करने तथा 5 से 15 वर्ष के आलसी बच्चों का अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षण देने हेतु प्रथम योजना बनाई। अंतिम रूप से सन् 1572 ई0 में यह कानून बनाया गया कि सरकार ऐसे व्यक्तियों को आश्रय प्रदान करेगी जो स्वंय अपनी सहायता करने में असमर्थ होगें। 1576 ई0 में सुधारगृह (House of Correction) स्थापित हुए जहाँ पर गरीबों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था। सन् 1601 ई0 में एलिजाबेथ का धनहीनों के प्रति कानून बना जिसके आधार पर वृद्धों, गरीबों, असहायों आदि की देखभाल का उचित प्रबंध किया गया। यह प्रबंध काफी दिनों तक चलता रहा।

सन् 1834 ई0 में इस निर्धन कानून के खिलाफ रिपोर्ट प्रस्तुत हुई तथा सुधार कानून बनाया गया। रिपोर्ट में सिफारिश थी कि–

(1) स्पीनहमलैण्ड तरीके के अंतर्गत दी जाने वाली ''आंशिक सहायता'' का उन्मूलन किया जाय।

(2) सहायता चाहने वाले सभी समर्थ प्रार्थियों को कार्यग्रहों में रखा जाय।

(3) केवल रोगी, वृद्ध, अशक्त एवं नवजात शिशुओं वाली विधवाओं को ही ''बाह्य सहायता'' प्रदान की जाय।

(4) विभिन्न पेरिशों के सहायता संबंधी प्रशासन को ''निर्धन कानून संघ''(Poor Law Union) के रूप में समन्वित किया जाये।

(5) निर्धन सहायता प्राप्त करने वालो की स्थिति समुदाय में निम्न वेतन पाने वाले मजदूरों की तुलना में निम्न घोषित की जाय।

(6) नियंत्रण के लिए एक केन्द्रीय परिषद् की स्थापना की जाय।

अतः 14 अगस्त, सन् 1834 ई0 को नवीन गरीब कानून (The New Poor Law) बना। परन्तु इसके द्वारा भी विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। एडविक चडविक ने इस निर्धन कानून आयोग के सदस्य होने के बावजूद भी उसके प्रति असंतोष प्रकट किया। अतः आयोग के स्थान पर परिषद् का गठन किया गया और एडविक चडविक इसके महाआयुक्त बनाए गए। उन्होने निर्धनता के कारणों का पता लगाने का प्रयत्न किया तथा सामाजिक सुधार के प्रभावशील साधनों की खोज की। निर्धन कानून आयुक्तों ने अपने अन्वेषण में पाया कि निम्न वर्ग में संक्रामक रोगों का एक प्रमुख कारण अकिंचनता है। आवास एवं रहन सहन की अस्वस्थ दशाओं तथा कुपोषण की समस्या के कारण निर्धन लोग बीमार हो जाते हैं।

आवास गृहों की कमी के कारण कई लोग एक पलंग पर सोते हैं जिससे बाल अपराध, लड़ाई झगड़ा, अनैतिकता तथा छुआछूत की बीमारी बढ़ती है। पीने के पानी तथा शौच की उचित व्यवस्था न होने के कारण वे बीमारी के शिकार होते है। इस प्रकार चडविक पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वास्थ्य के प्रति अपना ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने संक्रामक रोगों से बचने के लिए एक कार्यक्रम बनाया जिससे

निःशुल्क टीके लगने लगे। पार्कों तथा बगीचों के बनने में रूचि दिखाई। उनके प्रयास के परिणाम स्वरूप सन् 1848 ई0 में जनस्वास्थ्य ऐक्ट (The Public Health Act) की स्थापना हुई और चडविक उसके सदस्य बने।

औद्योगिक उन्नति के साथ–साथ समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई और इनके निराकरण के लिए चार्टिस्ट, क्रिश्चियन, सोशलिस्ट तथा श्रम संघों ने महत्वपूर्ण कार्य किए। सन् 1844 ई0 में चार्टिस्टों ने पहला सहकारी भंडार खोला जिसके मालिक श्रमिक ही थे। राबर्ट ओवन ने परीक्षण किया कि अच्छी मजदूरी एवं उत्तम कार्य–दशाओं के होने से श्रमिक अधिक मेहनत से कार्य करते हैं। अतः उन्होंने आदर्श औद्योगिक समुदाय (Ideal Industrial Community) की स्थापना की। यहाँ पर वाटिकाएँ थीं, खेलकूद का प्रबंध था, क्रीड़ा स्थल थे, मनोविनोद के लिए साधन थे तथा कम कीमत पर वस्तुएँ मिलती थीं। इस प्रयास के उपरान्त अन्य नगरों में भी इसी प्रकार के प्रयास किए गए।

चार्टिस्ट की शक्ति मे कमी होने पर 1848 में क्रिश्चन सोशलिस्ट फ्रेडरिक डेन्सन मारिस, चार्ल्स किंग्स्ले तथा जे0 एम0 लुडलो के निर्देशन में मजदूरों की शैक्षिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक दशाओं में सुधार करने का प्रयास किया गया। श्रमिकों के लिए रात्रि पाठशालाएँ खोली गयीं। कैनन सेमुअल, अगस्टस वारनेट 1973 ई0 में लंदन के हाइट चैपल स्थित सेंट जूड गिरजाघर के उस क्षेत्र में रहने लगे जिसमें निर्धन रहते थे। वे उसके पादरी बने। वारनेट ने पाया कि हाइट चैपल के 8000 निवासियों में अधिकांश बेकार, अपाहिज तथा रोगी हैं। वे दुर्गन्ध युक्त मकानों में रहते हैं तथा उनकी बहुत ही निम्न दशा है। वारनेट आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में गए तथा उनको वहाँ की स्थिति से अवगत कराया। उन्होंने विद्यार्थियों को इनके वैयक्तिक अध्ययन तथा शिक्षा सम्बन्धी सहायता देने के लिए आमंत्रित किया। उनके प्रयास से हाइट चैपल में विश्व का प्रथम व्यवस्था गृह बना। इस व्यवस्था गृह के तीन मुख्य उद्देश्य थेः–

(1) निर्धनों का शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विकास
(2) निर्धनों की दशा एवं सामाजिक सुधार की अत्यन्त आवश्यकता के सम्बन्ध में छात्रों तथा व्यवस्थागृह के अन्य निवासियों को जानकारी देना, तथा
(3) सामाजिक तथा स्वास्थ्य समस्याओं का निराकरण और सामाजिक विधि निर्माण में व्यापक हितों की सामान्य जाग्रति उत्पन्न करना। इसका उद्दश्य पढ़ाने के अतिरिक्त, सांस्कृतिक प्रभाव भी डालना था। अतः भाषण तथा वाद विवाद गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था।

सामाजिक वैयक्तिक समाज कार्य तथा सामूहिक समाज कार्य लगभग समान परिस्थितियों में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैण्ड और अमेरिका में विकसित हुआ। चैरिटी आरगेनाइजेशन सोसाइटी (Charity Organization Society) ने सामूहिक कार्य के विकास में एक विशेष भूमिका अदा की। जान एडम्स हिल तथा डिवाइन आदि ऐसे समाज सुधारक थे जिन्होंने मानव की विशेष आवश्यकताओं तथा सामाजिक दशाओं की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। उन सामाजिक समस्याओं को दूर करने पर बल दिया जो सामाजिक वातावरण से उत्पन्न होती थी। उन्होंने ऐसे कार्यक्रमों का विकास किया जिनसे व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। परन्तु जैसे–जैसे समस्याएँ गम्भीर होती गयीं सामाजिक संगठनों ने भी सेवाओं के रूप में परिवर्तन करना प्रारंभ किया। समूहों की सहायता एक संगठित आधार पर की जाने लगी तथा समस्याओं के निराकरण के उपाय खोजे गए। खाली समय के

लिए अनेक क्रियाओं तथा शिक्षात्मक कार्यक्रमों का नियोजन प्रारंभ हुआ। जेविश सेन्टर आन्दोलन 1954 ई में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम 1874 ई0 में तथा सेटेलमेन्ट हाउसेज 1886 ई0 में आरंभ हुआ।

सन् 1844 ई0 में जार्ज विलियम्स नामक वस्त्र विक्रेता ने युवकों तथा युवतियों को ईसाई जीवन पद्धति पर चलने की प्रेरणा दी और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए युवक पुरुष ईसाई संघ (Young Men Christian Association) की स्थापना की। सन् 1860 ई0 में एक चर्च महिला समूह ''डैस अवे क्लब'' की स्थापना कनेक्टीकट में की गयी। इस क्लब में बालकों के लिए खेलकूद, संगीत, नृत्य, नाटकीय क्रियाएँ तथा मनोविनोद का पूरा–पूरा प्रबंध था। यह क्लब बच्चों को भाग लेने का समान अवसर प्रदान करता था। इस क्लब के साथ ही साथ अन्य क्लबों की स्थापना बच्चों की दशा सुधारने के उद्देश्य से की गयी। गंदी बस्तियों तथा असामाजिक वातावरण में रहने वाले बच्चे इन क्लबों में जाकर खेलकूद एवं मनोविनोद करते थे। इसके साथ ही साथ वे हस्तकला का कार्य भी सीखते थे।

यद्यपि सामाजिक सामूहिक कार्य 20 वीं शताब्दी में व्यवसायिक क्षेत्र में प्रवेश कर सका परन्तु इस विधि का आधार बहुत पहले ही चुना जा चुका था। सामाजिक सामूहिक कार्य के सिद्वांत, प्रविधियाँ साधन इत्यादि बहुत से समूहों तथा संघों में दिन प्रतिदिन के कार्यों में उपयोग में लाए जाते थे। मित्र समितियाँ (Friendly Societies) युवा संगठन (Youth Organisations), जीर्ण विद्यालय (Ragged Schools) तथा सेटलमेन्ट ऐसे समूह थे। चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी के दो मुख्य उद्देश्य एवं पक्ष थे। एक पक्ष वैयक्तीकरण (Indiuidualization) तथा सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य (Social Case Work) पर जोर देता था तथा समाजीकरण व सामुदायिक संगठन (Socialization and Community-development) पर दूसरा पक्ष निर्भर था। निर्धनता का कारण एक तो व्यक्तिगत कमियाँ तथा दूसरे सामाजिक बुराइयाँ थी। इस विचारधारा ने फ्रेन्डली विजिटर्स (Friendly Visitors) तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रभावित किया। सन् 1893 में सोरेडिच कमेटी (Shoreditch Committee) की डिस्ट्रिक्ट सेक्रेटरी मिस एच0 डेन्डी ने सेवार्थी के पूर्व इतिहास तथा सामाजिक कारक, जो उसके व्यवहार को प्रभावित करते है, जानने पर बल देते हुए कहा है कि व्यक्ति को साधारण इकाई के रूप में जानने पर बल देते हुए कहा है कि व्यक्ति का साधारण इकाई के रूप में उपचार नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी के दो कार्य तथा क्षेत्र स्पष्ट हो गए। इन दोनों पक्षों तथा क्षेत्रों पर समान रूप से बल देना आवश्यक समझा जाने लगा। व्यक्ति की वैयक्तिक रूप से सहायता इसलिए आवश्यक थी जिससे कि वह अपनी समस्याओं का निवारण कर सके। दूसरी ओर समाज की उन बुराइयों को दूर करना था जिनसे वैयक्तिक ह्ास तथा व्यक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता था। इस प्रकार सामूहिक प्रयत्न का कार्य आवश्यक समझा जाने लगा।

प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन (First Annual Report) में यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया कि जिला समितियों (District Committees) के दिन–प्रति–दिन के अनुभव ने यह स्पष्ट किया है कि स्वास्थ दशाओं के सुधार, उत्प्रवास (Emigration) शिक्षा, प्रोविडेन्ट सोसाइटीज, गरीबों के रहने की दशाओं में सुधार तथा अन्य सम्बन्धित विषयों पर अति शीघ्र ध्यान देने की आवश्यकता है। अतः सोसाइटी ने वैयक्तिक सेवा कार्य के साथ सामाजिक दशाओं के सुधार के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया। सन् 1886 ई0 में स्वच्छता सहायता समिति (Sanitary Aid Committee) की स्थापना संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए की गयी। गृहों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया।

कुछ समय उपरान्त स्कूल चिल्ड्रेन्स केअर कमेटी (School Childresn Care Committee) तथा ट्यूबरक्लोसिस डिस्पेन्सरी (Tuberculosis Dispensary) की स्थापना की गयी। अंधों तथा मानसिक मंदित

बालकों की ओर भी सोसाइटी ने अपना ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रकार सोसाइटी ने मेडिकल चैरिटी के सुधार आन्दोलन की नींव डाली। सन् 1895 ई0 में मिस स्टेवार्ट (Stewart) ने हास्पिटल सोशल सर्विस का प्रारम्भ किया।

कैनेन वारनेट तथा अक्टाविया हिल (Canon Barnett and Octavia Hill) आदि विद्वानों ने इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि व्यक्ति बाह्य कारकों से प्रभावित होता है और यदि उसकी वास्तविक रूप से सहायता करना है तो न केवल उन सामाजिक ताकतों को जानना होगा जो प्रभावशाली है बल्कि व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामुदायिक साधनों का समुचित उपयोग करना होगा। इस धारणा ने सामाजिक क्रिया का क्षेत्र विकसित किया।

चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी के अतिरिक्त अन्य समूह, समितियाँ, संघ तथा क्लब जो कि सामूहिक कार्य प्रतिक्रया का उपयोग करते थे। सोसाइटी फार पैरोकियल मिशन विमेन (Society for Parochial mission Women) ने निर्धन वर्ग की माताओं की स्वास्थ्य दशा सुधारने का कार्य प्रारम्भ किया।

डोवागर काउन्टी, गर्ले फ्रेन्डली सोसाइटी, मेट्रोपोलियन एसोसिएशन, यूथ एसोसिएशन इत्यादि संगठनों ने सामूहिक कार्य पर विशेष जोर दिया। सन् 1850 ई0 तक अनेक युवक क्लबों की स्थापना की गयी। युवक संघों के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं एवं संघों ने भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तथा पारस्परिक सहायता की भावना के विकास के लिए प्रयत्न किया। इसी प्रकार सन्डे स्कूल तथा जीर्ण स्कूल (Sundary School and Ragged School) ने सामाजिक कार्यकर्ताओं में ज्ञान के विकास का प्रयत्न किया। मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर विशेष रूप से जोर दिया गया। जीर्ण स्कूलों का मुख्य उद्देश्य बच्चों की देखभाल करना था। इनमें समाज कार्य सेवाओं का उपयोग किया जाता था तथा इन्हें सम्बन्धित शिक्षा दी जाती थी।

उपरिलखित संघों, समूहों, समितियों तथा संस्थाओं के अतिरिक्त मुख्य रूप से सामाजिक सामूहिक कार्य के विकास में सेटलमेन्ट संस्था ने विशेष महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रथम सेटलमेन्ट टायनबी हाल (Toynbee Hall) कैनन बारनेट (Canon Barnett) द्वारा सन् 1884 ई0 में स्थापित किया गया। कुछ ही वर्षो में अन्य वेथनाल ग्रीन में आक्सफोर्ड हाउस, साउथवार्क में वीमेन्स यूनिवर्सिटी सेटलमेन्ट, केनिंग टाउन में मान्सफील्ड हाउस आदि की स्थापना की गयी।

सन् 1903 ई0 तक अनेक सेटलमेन्ट स्थापित हो चुके थे। इस संस्था का उद्देश्य पड़ोस के लोगो का सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक उत्थान करना था। यद्यपि इन सेटलमेन्ट का आधार धार्मिक तथा साम्प्रदायिक था परन्तु कभी–कभी इस आधार को इनके संस्थापकों ने बहिष्कृत किया। इनका मुख्य उद्देश्य श्रद्धाजनक सम्बन्ध (Solemn Sense of Relationship) बनाना था।

कुछ समय उपरान्त यह अनुभव किया गया कि वर्गों में अंतर को उस समय तक कम नहीं किया जा सकता है तब तक कि शिक्षित तथा सम्पन्न व्यक्ति गरीबों की दशाओं का उनके स्थान पर जाकर अवलोकन नहीं करेंगे। डब्ल्यू मोरे इडे (W. Moore Ede) ने 1896 ई0 ने सेटलमेन्ट आन्दोलन का दर्शन प्रस्तुत किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि चर्च को नगर जीवन की सामाजिक समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। उन्होंने कहा कि लंदन के पश्चिमी किनारे के लोगों को सहायता देने के लिए मिशनरीज द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। पश्चिमी किनारे के रहने वाले लोग पूर्व में रहने वाले लोगों के पास जायँ और उनकी कार्यविधि, रहन सहन तथा जीवन पद्धति को समझें। इस प्रकार वे स्वयं सहायता करने के लिए बाध्य हो जायेंगे।

जब सेटलमेन्ट का उद्देश्य अमेरिका की तरह निश्चित हुआ तो पड़ोस का तात्पर्य विस्तृत होकर पड़ोस तथा सामुदायिक कल्याण के सभी पक्षों को ग्रहण किया गया। उत्तम स्वास्थ्य, शिक्षा मनोरंजन के साधन, निवास स्थान में सुधार, औद्योगिक श्रम आदि पक्षों को भी कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। कैनन वारनेट ने सेटलमेन्ट के लिए उन सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया जो आगे चलकर समाज कार्य की सभी प्रणालियों के आधारभूत सिद्धांत माने जाने लगे। उन्होंने व्यक्ति के महत्व को, मान, सम्बन्ध, आत्म निश्चय (Worth, integrity, dignity, relationship and self determination) पर बल दिया। उनका विचार था कि व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति को समूह माध्यम द्वारा सबल बनाया जा सकता है, क्योंकि समूह में सहयोग, विचारों का आदान प्रदान, स्पर्धा इत्यादि कारक उपस्थित रहते है। उन्होंने सेटलमेन्ट के वार्डन के लिए वही योग्यता निर्धारित की जो कि एक सामूहिक समाज कार्यकर्ता में आज होनी चाहिए। कैनन की विचारधारा को आधार मान कर ही सामूहिक समाज कार्य पद्धति का आधुनिक रूप से विकास सम्भव हो सका।

2.3.2 अमेरिका में सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास

सामूहिक समाज कार्य वैयक्तिक सेवा कार्य की तरह ही सामुदायिक संगठन की भाँति समाज कार्य की एक आधारभूत प्रणाली मानी जाती है। अन्य प्रणालियों से इसमें अंतर केवल इतना है कि सामूहिक कार्यकर्ता समूह अनुभव में सामाजिक सम्बन्धों को साधन बनाकर व्यक्ति का विकास करता है। अमेरिका में सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास पिछले 50 वर्षों में ही हुआ। प्रारम्भ में इसका स्वरूप केवल मनोरंजनात्मक क्रियाएँ थी। मनोरंजन व खाली समय (Leisure time) की क्रियाओं के विकास के फलस्वरूप उनमें परिवर्तन होकर सामूहिक समाज कार्य का रूप प्रकट हुआ। ये संगठन तथा संस्थाएँ बहुत पहले से ही संगठित थीं तथा सेवा कार्य कर रही थीं। उनके उद्देश्यों में धीरे–धीरे परिवर्तन आता गया। आज इन संगठनों के कार्यक्रमों को साधारणतया चार भागों में विभाजित कर सकते हैं:–

(1) वे कार्यक्रम जिनके द्वारा पूर्णरूपेण मनोरंजन तथा शिक्षात्मक क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है।

(2) उन क्रियाओं को मनोरंजन तथा शिक्षात्मक क्रियाओं के द्वारा सम्पन्न करना जिनसे व्यक्ति का व्यवहार एवं सामाजिक मनोवृत्ति प्रभावित होती है।

(3) अन्य मूल उद्देश्यों के साथ संगठन की मनोरंजन एवं शिक्षा सम्बन्धी क्रियाएँ द्वितीयक होती है।

(4) शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक व्याधियों के उपचार के लिए मनोरंजन तथा शिक्षात्मक क्रियाओं का उपयोग किया जाता है।

प्रथम प्रकार के कार्यक्रमों में वे क्रियाएँ आती है जो समूह को पूर्णरूपेण शिक्षा तथा मनोरंजन प्रदान करती है। इनमें प्रौढ़ षिक्षा, विद्यालय तथा विश्व विद्यालय प्रसार सेवाएँ, क्लब्स, सेटलमेन्ट्स, कैम्प्स, वाई0 एम0 सी0 ए0 तथा डब्ल्यू0 सी0 ए0 इत्यादि प्रमुख है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मनोरंजन तथा ऐच्छिक शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं की आवश्यकता महसूस हुई और बीसवीं शताब्दी तक अनेक प्रकार की सेवाओं का प्रादुर्भाव हुआ। सन् 1866 ई0 में प्रथम बाल खेल मैदान (First Children's Play ground) बना। इसका महत्व इतना अधिक समझा गया कि सन् 1885 ई0 में राष्ट्रीय स्तर पर इस ओर प्रयास प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण देश में धीरे–धीरे मनोरंजन के महत्व के प्रति जाग्रति आई। शारीरिक शिक्षा आन्दोलन (Physical Education Movement) ने और भी मनोरंजन के महत्व को स्पष्ट कर दिया। धीरे–धीरे यह स्वीकार किया जाने लगा कि मनोरंजन न केवल बच्चों तथा युवकों के लि बल्कि प्रत्येक आयु के व्यक्तियों के लिए आवश्यक है।

आगे चलकर इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत न केवल खेल–कूद एवं शारीरिक क्रियाओं को सम्मिलित किया गया बल्कि मनोरंजनात्मक, कला, संगीत, अभिनय, नृत्य, क्रैफ्ट्स तथा अन्य प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा को भी सम्मिलित किया गया। इन कार्यक्रमों की आवश्यकता न केवल कम सुविधाओं वाले (Under Privileged) गृहों में महसूस हुई बल्कि सभी सामाजिक व आर्थिक स्तरों के लिए सामान्य रूप से आवश्यक हो गयी।

19वीं शताब्दी के मध्य ही प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता को महसूस किया गया। सन् 1870 तथा सन् 1880 ई0 के मध्य प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन चला। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों तथा अजायबघरों में शिक्षा सम्बन्धी सेवाएँ तथा विश्वविद्यालय प्रसार सेवाएँ प्रारम्भ हुईं। प्रौढ़ शिक्षा संघ स्थापित हुए और प्रौढ़–अशिक्षा को दूर करने के प्रयास प्रारम्भ हुए। ईसाईघरों ने इस कार्यक्रम में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्य सामाजिक संस्थाओं ने भी प्रयास करना प्रारम्भ किया। परन्तु इन सभी संस्थाओं का मूल उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करना था।

दूसरे प्रकार के संगठनों का कार्य मनोरंजनात्मक तथा शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा व्यवहार को आशातीत प्रभावित करना है। यह दो रूप से सम्पन्न होता है। किशोरों (9 से 17 वर्ष) के लिए कार्यक्रम को चरित्र निर्माण के रूप में तथा युवकों के लिए धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास करने के साधन के रूप में उपयोग किया जाता है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य युवकों में रचनात्मक क्रियाओं का विकास करना तथा निश्चित सामाजिक मूल्यों के आधार पर व्यक्तित्व विकसित करना है। इस दिशा में अमेरिकन यूथ कमीशन तथा ह्वाइट हाउस कॉन्फरेन्स आन चिल्ड्रेन इन डिमोक्रैसी (1940) ने प्रभावकारी कदम उठाने की सलाह दी। सन् 1875 ई0 में तथा 1895 ई0 के मध्य प्रत्येक बड़े प्रोटेस्टेंन्ट समुदाय ने अपना युवक कार्यक्रम संगठित किया। इपवर्थ लीप, द किंग्स डाटर्स, द बैप्टिस्ट यूथ, तथा प्यूपिल्स यूनियन्स ने युवक कार्यक्रमों को चर्च के उद्देश्यों के साथ सम्मिलित किया। जेविष, कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंन्ट तीनो धार्मिक संगठनों ने चर्चा के अन्तर्गत युवा कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया।

धार्मिक भावनाओं के विकास के साथ–साथ चरित्र निर्माण के लिए ब्वायज स्काउट, गर्ल्स स्काउट, कैम्प फायर गर्ल्स, 4 एच0 क्लब्स तथा अन्य समान संगठनों का विकास हुआ। सांस्कृतिक मूल्यों के विकास के लिए इन संस्थाओं का भी उपयोग किया गया। युवकों में प्रजातांत्रिक मूल्यों के महत्व को चर्चा तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं ने स्पष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। इस बात पर जोर दिया गया कि व्यक्ति का समुदाय तथा सामाजिक परिस्थितियों से अटूट सम्बन्ध है।

तीसरे प्रकार के वे संगठन हैं जिनका विकास मनोरंजन तथा शिक्षा के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों की पूर्ति करना है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक संस्थाओं के लिए मनोरंजन कार्यक्रम, श्रमिक संघों, राजनैतिक पार्टियों तथा राजनैतिक संगठनों को मनोरंजन प्रदान करना है। जहाँ पर सदस्य एक उद्देश्य के लिए एकत्रित होते है वहाँ ये कार्यक्रम अधिक प्रभावकारी होते है। इसके द्वारा उनमें प्रगाढ़ अन्तःसंबंध का संचार होता है। अन्य स्थानों पर मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों का उपयोग सदस्यों की संख्या में बढ़ोत्तरी करने तथा संगठित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इन कार्यक्रमों का उद्देश्य शिक्षा देना होता है परन्तु वास्तविकता इससे भिन्न होती है। सदस्यों की रूचियों, मनोवृत्तियों, तथा व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। अमेरिकन यूथ कांग्रेस इसी प्रकार की संस्था है।

चौथे प्रकार के वे संगठन हैं जिनमें मनोरंजन का उपयोग उपचार के रूप में किया जाता है। सामूहिक कार्य का वह एक विकसित क्षेत्र है। इन कार्यक्रमों को व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा

सांवेगिक व्याधियों से मुक्ति दिलाने या प्रभाव को कम करने के लिए व्यवहार में लाया जाता है। हृदय रोगी, सांवेगिक तनाव ग्रस्त बच्चे, मानसिक रोगी, बाल अपराधी आदि रोगियों के साथ मनोरंजन उपचार के रूप में प्रयोग होता है। अस्पतालों में इसके महत्व को दिनों दिन अधिकाधिक स्वीकार किया जाने लगा है। आन्तरिक संघर्षों को कम करने के लिए तथा मानसिक मंदित बालकों के उपचार के लिए भी इसका उपयोग होता है। संगीत, ड्रामा, नृत्य तथा खेल द्वारा उपचार क्रिया सम्पन्न होती है। तदुपरान्त सामूहिक सम्बन्धों का उपयोग उपचारार्थ किया जाता है।

सन् 1866 ई0 में अमरीका के बोस्टन शहर में लूक्रिटिया वोयड ने प्रथम युवा महिला क्रिश्चियन संघ (Y.W.C.A.) की स्थापना की। ग्रेस डाज ने दूसरा युवा महिला क्रिश्चियन संघ न्ययार्क में सन् 1867 ई0 में स्थापित किया। इस संस्था ने देश के अन्य भागों से आयी हुई लड़कियों के लिए, जो कारखानों व अन्य स्थानों में कार्य करती थीं, स्वच्छ एवं कम कीमत पर आवास तथा सांस्कृतिक एवं मनोरंजन के साधनों को प्रदान करना प्रारम्भ किया क्योंकि आवास की एक बहुत बड़ी समस्या थी। इसी कारण न्यूयार्क में इस संघ द्वारा आवास गृहों की स्थापना की गयी। संयुक्त राज्य अमेरिका में अवस्थापना गृहों ने सामूहिक क्रियाओं, शिक्षा तथा मनोरंजन पर काफी जोर दिया तथा एक नए सामाजिक वातावरण का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रथम अवस्थापना गृह स्टैटन कोइट द्वारा स्थापित किया गया तथा अन्य गृहों को हल जेन एडमस, एलेन स्टार, ग्रेहम टेलर आदि ने 1889 ई0 में शिकागो में स्थापित किया। इन अवस्थापन गृहों का लक्ष्य एवं उद्देश्य गरीबों एवं आश्रितों के लिए भौतिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं में विकास के साथ–साथ अधिकार हीन, मूढ़, शोषित, अशिक्षित, कमजोर तथा बाहर से आने वालों का सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक सुधार करना था। इन गृहों ने व्यक्तियों में आत्म विश्वास एवं प्रतिष्ठा का विकास करने का काफी प्रयत्न किया। स्थानीय कर्मचारियों ने साथ ही साथ रहने एवं कार्य करने की व्यवस्था द्वारा पड़ोस में शिक्षा, संस्कृति, एवं ज्ञान का विस्तार किया। लोग क्रिया–कलापों के माध्यम से पड़ोस से परिचित होते थे। उनमें प्रेम–भाव का संचार होता था, मित्रता बढ़ती थी तथा सहृदयता का विकास होता था। इन गृहों ने घनी एवं गंदी बस्तियों में रहने वालों में मानवीय समानता एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास किया तथा बिना किसी भेदभाव के, रंग, जाति, धर्म का विचार किए बिना निर्धनों, निर्बल, पीड़ितों को समान अवसर प्रदान किए। उन्होंने आपस में भेदभाव, घृणा तथा ईर्ष्या को दूर करने की भरसक कोशिश की।

अवस्थापना गृहों में कम विशेषाधिकार लोगों के बच्चों के सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए अनेक उपाय एवं कार्यक्रम थे। उनके लिए क्लब थे, किंडर गार्टन थे, क्रीड़ास्थल थे। पाठयक्रमों में प्रौढ़ शिक्षा, स्वास्थ्य विज्ञान, हस्तकला, श्रम संबंध, वाद विवाद आदि विषय थे। ये संस्थाएँ सामंजस्य पर अधिक जोर देती थीं तथा बाहर से आने वालों की सामंजस्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती थीं। बालको, किशोरों तथा प्रौढ़ों के साथ महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती थीं। दूसरे अनौपचारिक समूह आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य संबंधी सांस्कृतिक तथा प्रशिक्षणात्मक कार्यों को करते थे। न्यूयार्क में सर्वप्रथम युवक जनों तथा प्रौढ़ों को मनोरंजनात्मक क्रियाओं के लिए विद्यालय क्रीड़ास्थलों तथा उनकी सुविधाओं के उपयोग के लिए अनुमति दी गयी।

सन् 1911 ई0 तक इतने अवस्थापना गृह बने कि केन्द्रीय संचालन संघ की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इन संगठनों का दर्शन, उद्देश्य तथा विधियाँ समान थीं। परन्तु ये संगठन समूह की विशेष आवश्यकताओं पर आधारित थे। अतः सन् 1911 ई0 में नेशनल फेडरेशन ऑफ सेटलमेन्ट् की स्थापना इन संगठनों में सम्बन्ध एवं समरूपता बनाए रखने के लिए की गयी।

सन् 1896 ई0 में प्रथम बाल क्लब (Boy's club) की स्थापना की गयी। सन् 1906 ई0 तक अनेक क्लबों का निर्माण हुआ और सलाह तथा सहयोग के लिए राष्ट्रीय संगठन बनाया गया। सन् 1910 में सर बेडेन पावेल द्वारा अमरीकी बाल स्काउट संघ का संगठन किया गया। सन् 1912 में लड़कियों के लिए समान संगठन जूलियट लॉ द्वारा बनाया गया। जिसका नाम बालिका गाइड रखा गया। कैम्प फायर गर्ल्स का गठन सन् 1918 में डा0 लूथर गुलिक के नेतृत्व में हुआ जिसका उद्देश्य दृश्य दर्शन, पैदल सैर, खेल, गाना, मनोविनोद, प्रयोगशाला, विचार विमर्श, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए अवसर प्रदान करना था।

अब अमरीकी कनिष्ठ रेड क्रास में लगभग 20 मिलियन स्कूली बच्चे शामिल है जो सभी स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा एवं मनोरंजन कार्यक्रमों में भाग लेते है। ग्रामीण युवकों के लिए अमरीकी कृषि विभाग द्वारा फोर–एच क्लब गृह कौशल तथा सांस्कृतिक जीवन के विकास में सहायता करते हैं।

इन सभी संगठनों के उद्देश्य निर्धन पड़ोस के बच्चों में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करना है। मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों का विकास अधिकांशतः प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य हुआ। समाज कार्य में मनोरंजन के विशेष महत्व को देखकर ही सामूहिक समाज कार्य का प्रारम्भ किया गया क्योंकि मनोबल को ऊँचा उठाने में मनोरंजनात्मक क्रियाएँ अपना विशेष महत्व रखती हैं। यह महत्व उस समय विशेष रूप से समझा गया जब सैनिक संगठनों में प्रथम विश्व युद्ध के समय वाई. एम. सी. ए. तथा साल्वेशन आर्मी को भी नियुक्त किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध तक इनकी सेवाओं का मूल्य इतना बढ़ गया कि मनोरंजनात्मक तथा खाली समय की क्रियाएँ सैनिक अधिकारियों द्वारा ही सम्पन्न की जाने लगी। सन् 1930 में मनोरंजन कार्यक्रम रिलीफ का कार्य करने लगे क्योंकि अवसाद (Depression) का समय था और मनोरंजन कार्यक्रम कर्मचारियों के अवसाद को खत्म करने में काफी सहयोगी थे।

मनोरंजन क्रियाओं के विकास के साथ–साथ निपुणताओं में भी वृद्धि हुई तथा मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों के नियोजन एवं संगठन पर जोर दिया जाने लगा। मनोरंजन नेताओं के प्रशिक्षण का प्रबंध किया गया तथा कार्यक्रमों के मूल्यांकन पर जोर दिया गया। शिक्षा के क्षेत्र में विकास के फलस्वरूप खाली समय की क्रियाओं को बहुत बल मिला। ये क्रियाएँ दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ीं। बाद में सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्सम्बन्धों पर विशेष जोर दिया। यहाँ से समूह का विशिष्ट अर्थ समझा जाने लगा तथा अनुसंधान का पथ खुला। कुछ समय उपरान्त उन्नतशील शिक्षा में प्रोजेक्ट विधि का उपयोग आरम्भ हुआ। शिष्यों ने किसी एक कार्य में लगकर सीखने की पद्दति प्रारंभ की और समान क्रियाओं में भाग लेना प्रारंभ किया। इस प्रक्रिया से लोग क्या करते हैं के स्थान पर कैसे करते हैं समझा जाने लगा। फलतः प्रक्रिया का महत्व बढ़ता गया।

मानसिक स्वास्थ्य क्षेत्र में कार्य करने वालों ने अनुभव किया कि सामाजिक अनुभवों का व्यक्ति के व्यक्तित्व, मूल्य, मनोवृत्ति, भावनाओं तथा व्यवहार आदि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि समूह का व्यक्ति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः समूह तथा व्यक्ति दोनों का महत्व समझा जाने लगा और दोनों को शिक्षा में समान महत्व दिया गया। उपर्युक्त अनुभव के फलस्वरूप सामूहिक कार्य को वैज्ञानिक आधार तथा दर्शन प्रणाली प्राप्त हुई। वैयक्तिक कार्य के प्रारंभ के साथ–साथ इस बात को भी अनुभव किया गया कि कुछ सेवार्थियों को समूह अनुभव की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अतः सामूहिक कार्य के महत्व पर जोर दिया जाने लगा।

इस प्रकार सामूहिक कार्य का विकास जन मनोरंजन, शिक्षा तथा समाज कार्य के क्षेत्र में हुआ। अधिक समय तक सामूहिक कार्य के कार्यकर्ता उपर्युक्त किसी एक क्षेत्र से वास्तविक संबंध रखते थे।

अतः काफी समय तक भ्रम बना रहा कि तीन क्षेत्रों में किस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व व्यावसायिक सामूहिक कार्य को करना है। सन् 1935 ई0 में प्रथम बार समूह कार्य अनुभव, जो कि नेशनल कान्फरेन्स आफ सोशल वर्क था, अलग संगठित हुआ। इसने सामूहिक कार्य के विकास में बहुत योगदान दिया और समाज कार्य के लिए सामूहिक कार्य को एक आवश्यक प्रणाली बताया। उसके पश्चात् अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ ग्रुप वर्क को संगठित किया गया। इसके लगभग वे ही सदस्य थे जो कि नैशनल कान्फरेन्स आफ सोशल वर्क में थे। परन्तु यह किसी भी प्रकार से व्यावसायिक संघ नहीं था। इसमें कोई भी व्यक्ति जो समूह कार्य को परिभाषित करने, उद्देश्य निश्चित करने, कार्यक्रम निर्धारित करने, दर्शन तथा प्रत्यय का विकास करने में रूचि रखता था, सदस्य हो सकता था। सदस्य अधिकतर जन–मनोरंजन, शिक्षा तथा समाज कार्य के क्षेत्र के थे। दस वर्ष तक इस संगठन ने इसी प्रकार कार्य किया। इसी बीच अन्य विकास हुए। जन–मनोरंजन तथा शिक्षा के क्षेत्र में अलग–अलग संगठन बने तथा सदस्यों की रूचि उस तरफ अधिक होती गयी। फलतः अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ द ग्रुप वर्क में अधिकतर समाज कार्य के ही सदस्य रह गए।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त जब सामुदायिक चेस्ट (Community Chest) आन्दोलन अधिक बढ़ने लगा तो बहुत सी एजेन्सी जो मनोरंजन क्रियाएँ सम्पन्न करती थीं सामुदायिक चेस्ट की सदस्य बन गयीं और इस प्रकार से कौंसिल आफ सोशल एजेन्सीज से अनुबंधित हो गयीं। इससे पहले सन् 1923 में क्लीव–लैंड में समाज कार्य के स्कूल में प्रथम प्रशिक्षण कोर्स समूह अनुभव कार्य (Group Experience Work) के नाम से प्रारम्भ हुआ। सन् 1926 में एक प्रयोगात्मक सेटलमेंट (Experimental Settlement) की नींव प्रशिक्षण के उद्देश्य से रखी गयी।

सन् 1930 तक सामूहिक कार्य विकास के लिए अनेक कदम उठाए गए तथा संबंधित संगठनों का विकास हुआ। पिट्सबर्ग में 4 व 5 नवम्बर 1933 ई0 को विभिन्न संस्थाओं के समूह नेताओं की एक बैठक हुई। यह अपने प्रकार की प्रथम बैठक थी जिसमें सामूहिक कार्य से संबंधित समस्याओं पर विवाद किया गया। इसी बैठक में अन्य कमेटियों जैसे अनुसंधान कमेटी, प्रशिक्षण कमेटी, स्तर निर्धारण कमेटी, प्रयोगात्मक कार्यक्रम तथा सामाजिक परिवर्तन संबंधित कमेटी की स्थापना की गयी।

सन् 1935 राष्ट्रीय समाज कार्य कान्फरेन्स में पूर्व सामूहिक कार्य अनुभव के आधार पर सामूहिक कार्य में रूचि रखने वाले व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट किया गया, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1936 में अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ द ग्रुप वर्क, जिसको कि आज अमेरिकन एसोसिएशन आफ ग्रुप वर्क्स के नाम से जानते हैं, स्थापित हुआ। इस संगठन ने निम्न क्षेत्रों में कार्य करना प्रारंभ किया:–

- व्यावसायिक शिक्षा का निर्धारण
- व्यावसायिक संगठनों का निर्माण
- नए–नए क्षेत्रों में सामूहिक कार्य सेवाओं का विस्तार
- सामूहिक कार्य का परिवर्तित रूप एवं उसका उपयोग।

इन प्रयत्नों के कारण सन् 1950 तक 21 विश्वविद्यालयों में सामूहिक कार्य अध्ययन प्रारंभ हो गया। सन् 1936 में जो अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ ग्रुप वर्क बना था वह व्यावसायिक ढ़ाँचे पर आधारित नहीं था। इसमें ऐच्छिक तथा व्यवसायी दोनों प्रकार के कार्यकर्ता थे। प्रारंभिक अवस्था में यह समस्या बनी रही कि सामूहिक कार्यकर्ता समाज कार्य संगठन में सम्मिलित हो या शिक्षा संगठन में।

आगे चलकर देश की परिस्थितियों ने सामूहिक कार्य के महत्व को बढ़ा दिया और इसकी गणना व्यावसायिक स्तर पर की जाने लगी। सन् 1946 में सामूहिक कार्यकर्ताओं का अलग संगठन बना और उसका नाम अमेरिकन एसोसिएशन आफ ग्रुप वर्क्स रखा गया। आज इस संगठन में वे ही सदस्य सम्मिलित हो सकते है जो समाज कार्य के किसी स्कूल के स्नातक है।

सामूहिक कार्य का उपयोग अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त इस समय उपचार प्रक्रिया में अधिक किया जाता है। मानसिक अस्पतालों, बच्चों के अस्पतालों, बाल निर्देशन केन्द्रों, शारीरिक रूप से व्याधित रोगियों तथा सांवेगिक रूप से ग्रस्त व्यक्तियों के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। समूह चिकित्सा का उपयोग एवं महत्व दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। अपराधियों के सुधारात्मक उपचार में भी सामूहिक प्रक्रिया का उपयोग बढ़ता जा रहा है। उनमें सामूहिकता एवं सामाजिक संबंधों के विकास के लिए इसकी महत्ता को समझा जाने लगा है।

प्रशासन में भी सामूहिक प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। सामुदायिक संगठन एवं समूह क्रिया कलाप में इसका उपयोग आवश्यक सा हो गया है। अब यह समझा जाने लगा है कि व्यक्ति के व्यवहार को समझना एवं उसमें परिवर्तन लाना सामूहिक कार्य द्वारा सम्भव है।

सामूहिक समाज कार्य एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों की समूह में एक कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। वह समूहों को इस प्रकार कार्य करने के लिए उत्साहित करता है जिससे सामूहिक अन्तःक्रिया और कार्यक्रम दोनों ही व्यक्ति के विकास और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दें।

सामूहिक समाज कार्य की प्रत्येक प्रकार की क्रियाओं में दो प्रकार के अनुभव सदस्यों को प्राप्त होते हैं। पहले तो व्यक्ति की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है और दूसरे सामाजिक उद्देश्यों मे विस्तार आता है। समूह क्रियाओं में भाग लेने के फलस्वरूप व्यक्ति पद ग्रहण करता है। इसका आधार कार्य की क्षमता होती है न कि व्यक्ति–विशेष। समूह क्रियाओं में व्यक्ति अपनी भावनाओं को क्रियात्मक रूप से स्पष्ट करने के लिए स्वतन्त्र होता है। इस अनुभव से वह सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत व्यवहार को सीखता है तथा यह समझता है कि किस प्रकार का व्यवहार असामाजिक होता है। जो व्यक्ति शर्मीला होता है वह इस प्रकार के अनुभव से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता में वृद्धि करता है। उद्दण्ड व्यक्ति पर रोक लगती है। समूह अनुभव से व्यक्ति में नेतृत्व तथा अनुयायी दोनों प्रकार के गुणों का विकास होता है।

समूह अनुभव का माध्यम कार्यक्रम होता है। वार्तालाप, मीटिंग, कला, शिल्प, संगीत, नाटक, खेल, कैम्प, डान्स या अन्य कई प्रकार की क्रियाएँ सामूहिक अनुभव का माध्यम होती है। समूह कार्यकर्ता का कार्य अन्तर्क्रियाओं को रचनात्मक ढंग से निर्देषित करना होता है। वह समूह मे प्रत्येक सदस्य की कमियों एवं क्षमताओं का ज्ञान रखता है तथा कार्यक्रम द्वारा कमियों को दूर करने का प्रयत्न करता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अमेरिका में सामूहिक समाज कार्य का विकास कब तथा कैसे हुआ?
2. अमेरिकन एसोसिएशन फार द स्टडी आफ द ग्रुप वर्क नामक संगठन किन प्रमुख क्षेत्रों में कार्य करता था विवरण दीजिए?
3. इंग्लैंड मे सामूहिक समाज कार्य के विकास की चर्चा कीजिए?
4. 1834 में इंग्लैंड में निर्धन कानून के विरूद्ध प्रस्तुत की गई रिपोर्ट की क्या मुख्य सिफारिशें थीं?

5. प्रथम व्यवस्था गृह के मुख्य उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए?

2.3.3 भारत में सामूहिक समाज कार्य का विकास

यद्यपि मानव समाज में समस्याएँ सदैव विद्यमान रही हैं। किन्तु उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के फलस्वरूप इनकी व्यापकता में काफी वृद्वि हुई है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप हमारी मान्यताओं, मूल्यों, प्रतिमानों तथा विचारों में परिवर्तन आया है और पुरानी सामाजिक संस्थाओं के कार्यों में शिथिलता एवं परिवर्तन हुआ है। जो संस्थाएँ सामाजिक सुरक्षा का कार्य करती थीं। वे आज कमजोर हो गयी हैं।

व्यक्ति पुरानी संस्थाओं से अपनी समस्याओं का समाधान कर पाने में असमर्थ होता जा रहा है। एक स्थिति ऐसा उत्पन्न हो गयी जहाँ पर सामाजिक सहायता की आवश्यकता प्रत्येक स्तर पर महसूस होने लगीं, मानवतावादी विचारकों ने इन समस्याओं की गहनता को समझा तथा इस दिशा में समुचित प्रयास किये जिसके परिणामस्वरूप एक नवीन समाज विज्ञान का विकास हुआ।

भारत प्राचीन काल से ही धार्मिक देश रहा है। यहाँ पर दीन–दुखियों, असहायों, कमजोरों, त्रस्त लोगों की सहायता का कार्य की सदैव प्राथमिकता रही है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक संस्थाएँ किसी न किसी रूप में सदैव विकसित होती रहीं हैं। आश्रमों की स्थापना का उद्देश्य व्यक्ति की आन्तरिक एवं बाह्‌य सांवेगिक एवं मानसिक कठिनाईयों को दूर करके व्यक्तित्व का विकास करना था।

यज्ञ का मौलिक उद्देश्य सामूहिक कल्याण करना था। यज्ञ का प्राचीन रूप सत्र है। यह सामूहिक जीवन के कल्याण करने वाले कार्यों का संगठित नाम था इस शब्द का संस्कृत भाषा में अर्थ योगपद्य, एकत्रिकता या सामूहिकता है। प्रो0 राजाराम शास्त्री ने अपनी पुस्तक समाज कार्य में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

प्रारम्भिक अवस्था में आर्य लोग कुल के आधार पर संगठित थे तथा उनकी क्रियाएँ सामूहिक होती थीं। आर्थिक एवं धार्मिक क्रियाएँ सामूहिकता पर आधारित थीं। नेताओं का भी चुनाव सामूहिक क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए किया जाता था। प्राचीन भारत में वैयक्तिक सहायता के साथ–साथ सामूहिक सहायता की भावना भी प्रबल थी। जन कल्याण के लिए अनेक संस्थाएँ थीं और उनका उद्देश्य सामूहिक सहायता करना था। मठों का निर्माण इसी उद्देश्य पर आधारित था।

ब्राह्म्ण व भिक्षु सामूहिक कल्याण कार्यकर्ता समझे जाते थे। संघों का संगठन भी सामूहिकता की भावना पर आधारित था। बौद्व भिक्षुओं ने इस ओर काफी प्रयास किया। भिक्षुकों की बस्तियाँ 'आराम' शब्द से जानी जाती थीं। इसका अर्थ मनोरंजनात्मक स्थान से था तथा इससे सम्बन्धित सम्पत्ति सामूहिक थी और उसका उपयोग समस्त भिक्षुओं के लिए होता था। इसमें आमोद प्रमोद के साधन थें।

कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में अनेक सामूहिक कार्यों का वर्णन किया है। जन कल्याण के लिए सामूहिक प्रयत्नों पर उन्होंने विशेष जोर दिया था।

सामूहिक दान की प्रथा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रारम्भ में विद्यादान पर जोर दिया जाता था। बोधिसत्व, विश्वविद्यालय शिक्षक थे जिनके निर्देशन में 500 ब्राह्मण युवक शिक्षा प्राप्त करते थे। विद्या का प्रसार करना ब्राहम्णों का मौलिक कार्य था। विद्यार्थियों के रहने के लिए आश्रम थे तथा स्वयं जीवन यापन के लिए साधन ढूँढते थे। धनी लोग, गरीबों के लिए, विशेषकर गरीब विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क भोजन व आवास का प्रबन्ध करते थे।

शिक्षा के पश्चात् धर्म का स्थान था। युवकों में धार्मिक भावना की जाग्रति के लिए अनेक मठों, मन्दिरों तथा धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की गयी। इन स्थानों पर रहकर व्यक्ति धर्म की शिक्षा ग्रहण करता था तथा वह भविष्य के जीवन में उपयोग की विधियों पर अध्ययन करता था। इन संस्थाओं का कार्य व्यक्तियों में धार्मिक भावना जाग्रत कर सामाजिक सम्बन्धों में सुधार करना एवं उन्हें सुदृढ़ बनाना था। अपने कर्तव्यों से अवगत होकर व्यक्ति सामाजिक समस्याओं पर ध्यान आकर्षित करता था।

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। राजा राममोहन राय तथा ईश्वरचन्द विद्यासागर का कार्य इस दिशा में उल्लेखनीय है। शशिपदा बनर्जी ने बंगाल के त्रस्त वर्ग के लोगों के उद्धार एवं विकास के लिए अनेक कार्य किए। महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानडे ने महिलाओं के अधिकारों के लिए सराहनीय कार्य किया। जी0 के0 विघाधर ने सेवासदन की स्थापना पूना में की। इसी शताब्दी में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल समाज की स्थापना सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करने तथा सामाजिक सम्बन्धों में विकास करने के उद्देश्य से की गयी।

सन् 1828 में राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना की गयी। इसका कार्य धार्मिक भावना के विकास के साथ–साथ सामाजिक प्रभाव भी डालना था। आर्य समाज सन् 1875 ई0 में दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित किया गया, जिसके द्वारा अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया गया।

राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक विकास के लिए सर्वप्रथम सन् 1885 ई0 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उदय हुआ तो राजनैतिक विषय के साथ–साथ सामाजिक विषय पर भी चर्चा प्रारम्भ हुई। दीवान बहादुर रघुनाथ तथा महादेव गोविन्द रानाडे ने सामाजिक सुधार के लिए कांग्रेस सभा को सम्बोधित किया।

वाद–विवाद में समझौता न होने पर इससे सम्बन्धित प्रथम सामाजिक कान्फरेन्स (Social Conference) मद्रास में 1887 ई0 में हुई। सामाजिक सुधार से संबंधित सरवेन्ट आफ इंडिया सोसाइटी (Servant of India Society) की स्थापना सन् 1905 ई0 में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा की गयी। यद्यपि प्रारम्भ में इस सोसाइटी का उद्देश्य राजनैतिक था परन्तु बाद में यह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक विकास के लिए काफी प्रयत्नशील रही।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में अनेक संगठन एवं संस्थाएँ बनीं। विधवाओं तथा असहायों के लिए आवासगृह, अंधों, बहरों तथा गूँगों के लिए संस्थाएँ खोली गयीं। सन् 1925 ई0 में महिलाओं की दशा सुधारने के लिए राष्ट्रीय महिला कौंसिल की स्थापना हुई। स्वतन्त्रता आन्दोलन एक प्रकार का बहुत बड़ा सामूहिक कार्य था। महात्मा गाँधी के कार्यों को सामूहिक प्रयत्नों की प्रथम श्रेणी में रखा जाता है। वे एक समाज सुधारक होने के साथ–साथ सामूहिक कार्यकर्ता थे जिन्होंने अपने व्यवहार में पूर्णरूपेण उन गुणों का विकास किया तथा व्यावहारिक जीवन में लाए जो कि एक सफल सामूहिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक माने जाते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् मानसिक एवं शारीरिक विकास के लिए अनेक उपाय किए गए। बच्चों में चरित्र निर्माण के लिए एन0 सी0 सी0, गर्ल्स स्काउट, ब्वायज स्काउट इत्यादि संस्थाएँ तथा संगठन बनें। युवकों से सम्बन्धित क्रियाएँ राष्ट्रीय स्तर पर की जाने लगी है। समाज कल्याण निदेशालय इस दिशा में प्रयत्नशील है। नगरों में युवक कल्याण समितियाँ कार्य करती हैं। वाई0 एम0 सी0 ए0 तथा वाई0 डब्ल्यू0 सी0 ए0 वही भूमिका यहाँ निभा रही है जो अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में अदा करती है।

नौकरी करने वाली महिलाओं के रहने व मनोरंजन के लिए गृहों का निर्माण किया गया है। मानसिक मंदित बालकों के लिए स्कूल खोले गए है।

भारत स्काउट्स तथा गाइड्स, आक्जिलियरी कैंडेट कोर, नैशनल कैडेट कोर युवकों को नेतृत्व का प्रशिक्षण देते है। उनमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास करते है। आज नैशनल सर्विस स्कीम ,व्यक्तित्व का समुचित विकास करने, राष्ट्रीय पुनरूत्थान करने तथा श्रम के महत्व को समझाने के लिए चलाई जा रही है। श्रमिकों के लिए श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गयी है। इन केन्द्रों में स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन, सामाजिक शिक्षा, मनोरंजनात्मक क्रियाएँ, क्राफट शिक्षा आदि सेवाएँ प्रदान की जाती है। श्रमिक शिक्षा का भी केन्द्र सरकार की ओर से प्रबन्ध किया गया है।

2.4 सार संक्षेप

भारत में सामूहिक समाज कार्य व्यवसाय के रूप में अभी पनप नहीं पाया है। इसका अलग से अभी तक संगठन नहीं बन पाया है और न ही अधिक महत्व दिया जा रहा है। प्रशिक्षित सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं की भी नियुक्ति के लिए न तो कोई विशेष सुविधाएँ दी गयी है और न ही कोई क्षेत्र स्पष्ट रूप से है।

2.5 अभ्यास प्रश्न

1. सामूहिक समाज कार्य का जन्म कब तथा किस अवधारणा के कारण हुआ?
2. इंग्लैंड मे सामूहिक समाज कार्य के विकास की चर्चा कीजिए?
3. अमेरिका में सामूहिक समाज कार्य का विकास कब तथा कैसे हुआ
4. भारत में सामूहिक समाज कार्य के विकास की विवरणात्मक चर्चा कीजिए?

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

Development	- विकास	Group work	- समूहकार्य
Aims	- लक्ष्य	Personatities	- व्यक्तित्व
Essential	- जीवनोपयोगी	Importance	- महत्व
Adjustment	- सामांजस्य	Model	- प्रारूप
Intrigrated	- एकीकृत	Remedial	- परिभाषा
Agency	- संस्था	Social worker	-सामाजिक कार्यकर्ता

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
2. Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice New york Association Press.
3. Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.

4. Wilson, G. & Ryland, G. - Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
8. Harford, M.- Groups in Social Work.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य
11. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
12. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य

इकाई –3

सामाजिक सामूहिक कार्य के सिद्धान्त एवं निपुणताएं

Theories and Skills in Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 परिचय
3.2 सामूहिक सेवाकार्य के सिद्धान्त
3.3 निपुणता
3.4 सामूहिक प्रकिया
3.5 कार्यकर्ता की भूमिका
3.6 प्राथमिक कार्यकर्ताओं का अधीक्षण
3.7 प्रशासन
3.8 सामुदायिक नियोजन
3.9 सार संक्षेप
3.10 अभ्यास प्रश्न

3.11 पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पष्चात् छात्र सामूहिक सेवाकार्य के सिद्वान्त को भलीभॉति समझ पायेगे।
- सामूहिक सेवाकार्य की निपुणता को समझ पायेगें।
- सामूहिक सेवाकार्य की निपुणता प्रकार तथा अंगो को जान पायेगे।
- सामूहिक कार्यकर्त्ता की भूमिका स्पष्ट हो सकेगी।

3.1 परिचय

सिद्धान्त अर्थात सामान्य नियम या कानून, प्रत्यय, मूलभूत सत्यता ये, सामान्य रूप से आये मत वे साधन है जिनके द्वारा हम एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति की ओर बढ़ते है प्रत्यय तथा सिद्धान्त दो ऐसे पद है जिनका प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर, किया जाता है । परन्तु दोनो में कुछ महत्वपूर्ण भिन्नतायें होती है, प्रत्यय सेवाकार्य मूल एवं महत्वपूर्ण विचारों से है। व्यक्तियों समूहों या समाज के प्रति यह विचार सामाजिक जैविकीय विज्ञानों व मानविकी से उत्पन्न होते है। जो समाजकार्य अभ्यास के मूलभूत आधार होते है जबकि सिद्धान्त मार्गदर्शी अभिकथन या वक्तव्य होते है जो अनुभव व शोध द्वारा प्राप्त होते है । लियोनार्ड डी हवाइस का मत है कि ''एक सिद्धान्त अवश्य ही उपकल्पना समझी जानी चाहियें जिसका इस प्रकार से निरीक्षण अथवा प्रयोग करने परीक्षण किया गया हो तथा जिसको बुद्धिमतापूर्वक किया के पथ प्रर्दशक के रूप में या ज्ञान के साधन के रूप में रखा जा सकता हो।''

3.2 सामूहिक सेवाकार्य के सिद्धान्त

1. नियोजन का सिद्धान्त
2. लक्ष्यों की स्पस्टता का सिद्धान्त
3. सोद्देश्य सम्बन्ध का सिद्धान्त
4. निरन्तर वैयक्तीकरण का सिद्धान्त
5. निदेर्शित सामूहिक अन्तःक्रिया का सिद्धान्त
6. प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धान्त
7. लोचदार कार्यात्मक संगठन का सिद्धान्त
8. जनतन्त्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयीकरण का सिद्धान्त
9. साधनों के उपयोग का सिद्धान्त
10. मल्याकंन का सिद्धान्त

3.2.1 सामूहिक सेवाकार्य के सिद्धान्त

सामूहिक सेवाकार्य के सिद्धान्त निम्न हैः–

- **सामाजिक नियोजन का सिद्धान्त**

नियोजन लक्ष्यो का आरोपण, उनकी पूर्ति के लिए साधनों की व्यवस्था और क्रियाओं के के व्यावस्थित रूपों, जो सामान्य सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न है का प्रयोग है। नियोजन के अन्तर्गत विद्यमान स्थितियों तथा सम्भावित परिवर्तनों की उपयोगिता का ध्यान में रखकर एक व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपरेखा तैयार की जाती है, जिससे भविष्य के परिवर्तनों को अपेक्षित लक्ष्यों के अनुरूप नियंत्रित निर्देशित तथा संसोधित किया जा सके। निम्नलिखित नियोजित ढंग से कार्य करने पर लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

1. विकास के लक्ष्यों एवं मूल्यों का निर्धारण
2. परिस्थिति विश्लेषण
3. विशिष्ट उद्देष्यों तथा रणनीति का निर्धारण
4. आगत, लक्ष्य, क्षेत्र, साधन आदि का निर्धारण
5. प्रशिक्षण तथा संचार प्रकिया की सीमा
6. क्रिया नियोजन तथा कार्यो की लिपिबद्वता
7. कार्ययंत्र रचना का निर्धारण
8. सम्भावित साधनों की उपलब्धता
9. सदस्य संख्या का निर्धारण
10. शक्ति के श्रोतों का निर्धारण

- **लक्ष्यों की स्पष्टता का सिद्धान्त**

सामूहिक कार्यकर्त्ता के लिए स्पस्ट लक्ष्यों का ज्ञान कार्य पूर्णता के लिए आवश्यक होता है, क्योकि लक्ष्य हक्रया के लिए सम्प्रेरक शक्ति है जिनके आधार पर समूह आगे बढ़ता है, तथा विकास की गति प्राप्त करता है।

1. लक्ष्य ही कार्यकर्ता का मार्ग दर्शन करते है तथा अग्रसर होने के लिए प्ररित करते है।
2. लक्ष्यों की स्पस्टता उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग करने पर बल देती है।
3. लक्ष्यों पर ही कार्यक्रम निर्भर होते है यदि वे स्पस्ट है तो कार्यक्रमों के चयन में परेशानी नही आयेगी।
4. लक्ष्यों की स्पस्टता से संस्था के लिए आवश्यक यन्त्रो, साधनों तथा कोष को निश्चित करने मे सहायता मिलती है।
5. लक्ष्य स्पस्ट होने से समूह का नियंत्रण तथा उसका निर्देशन अच्छा होता हैं।
6. समूह सदस्यों की अन्तक्रियायें एक विशेष दिशा में संचालित होती है।
7. मूल्यांकन की प्रक्रिया का आधार लक्ष्य ही होते है।

- **सोद्देश्य सम्बन्ध का सिद्धान्त**

जीवन का आधार सम्बन्ध है। व्यक्ति सम्बन्ध स्थापित करके ही प्रत्येक स्तर की सामाजिक क्रियाओं का सम्पादन करता है। वह आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सम्बन्ध के माध्यम से करता है। अतः प्रत्येक प्रमाणिक स्थिति में सम्बन्धों का विशेष महत्व है। सामूहिक कार्य के कार्यकर्त्ता तथा समूह के बीच सम्बन्धों की घनिष्ठता होनी चाहिए तथा व सम्बन्ध निश्चित उद्देश्यों पर आधारित हों सामान्यतः सोद्देश्य सम्बन्ध के निम्न लक्षण है।

1. कार्यकर्ता की समूह द्वारा स्वीकृति
2. समूह की कार्यकर्ता द्वारा स्वीकृति
3. स्नेह एवं आत्मसंचार की पूर्णता
4. समस्या सुलझाने की इच्छा का विकास
5. समूह सदस्यों का भागीकरण तथा कार्यकर्त्ता द्वारा व्यावसायिक ज्ञान का उपयोग
6. सदस्यों की इच्छा सर्वोपरि तथा उन्हें आत्म निश्चय का अधिकार
7. सदस्यों को आत्मनिर्णय का अधिकार
8. सामूहिक रूचि तथा भागीकरण में निरंन्तर वृद्धि

- **निरंतर वैयक्तिकरण का सिद्धान्त**

सामाजिक सामूहिक कार्य की यह मान्यता है कि समूह अनेक प्रकार के होते है और व्यक्ति उनका उपयोग विभिन्न तरीको से अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु करता है। परिणाम स्परूप कार्यकर्ता द्वारा वैयक्तिकरण का निरन्तर उपयोग करना आवश्यक होता है। समूह तथा समूहों मे व्यक्तियों को विकास तथा परिवर्तन के रूप में सदैव समझा जाना चाहिए।

वैयक्तिकरण के लिए कार्यकर्ता के लिए ने निम्न गुण होने चाहिए–

1. अभिमत तथा पूर्वाग्रहों से स्वंतन्त्र।
2. मानव व्यवहार का ज्ञान।
3. सुनने तथा अवलोकन करने की क्षमता।
4. सेवार्थी की भावनाओं का समझने की योग्यता।
5. परिप्रेक्ष्य को बनाये रखने की योग्यता।
6. सेवार्थी में आत्मीयता की भावना उत्पन्न करने की योग्यता।
7. समस्या के अध्ययन, निदान तथा चिकित्सा में सेवार्थी का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता।

वैयक्तिकरण के साधन –

1. विस्तृत विचार विमर्श से वैयक्तिकरण प्रकट होता है।
2. साक्षात्कार के समय की पाबन्दी हो।
3. कार्य पद्धति मे नयनीयता हो।
4. सेवार्थी को सहायता प्रक्रिया में सम्मिलित करना आवश्यक होता है।

- **निर्देशित सामूहिक अन्तः क्रिया का सिद्धान्त**

सामाजिक सामूहिक कार्य में प्राथमिक शक्ति का श्रोत जो समूह की निपुणताओं में वृद्धि करती है और व्यक्तियों को परिवर्तित करती है वह अन्तःक्रिया या परस्पर प्रत्युत्तर ही है सामूहिक कार्यकर्ता अपने भागीकरण द्वारा अन्तःक्रिया को प्रभावित करता है जिससे सदस्यों के व्यवहारों, विचारों एवं कार्य विधियों मे अन्तर आता है।

जब समूह में व्यक्ति एकत्रित होते है तो अन्तःक्रिया का होना स्वाभाविक हो जाता है उनके पारस्परिक प्रत्युत्तर होते है। इन प्रत्युत्तरो की चाहे जो कार्य रचना अथवा विधि हो और उनकी गहनता चाहे कम हो या अधिक लेकिन व व्यक्ति को प्रभावित करते है। सामूहिक कार्य में इस अन्तःक्रिया प्रक्रिया का एक निश्चित दिशा की ओर चलने के लिए निदेर्शित किया जाता है।

सामूहिक कार्यकर्ता सामाजिक प्रक्रिया को सामाजिक सामूहिक कार्य प्रक्रिया मे अन्तःक्रिया को प्रभावित एवं निदेर्शित करके बदल देता है। वह समूह को न तो यह बतलाता है कि उसे क्या करना होगा और न ही समह ने लिय काई निर्णय लेता है। बल्कि वह समूह की अन्तःक्रियात्मक क्षमता को बढ़ाने का प्रयत्न सदसयों को अपनी भूमिका पूरी करने मे सहायता के माध्यम से करता है।

- **जनतन्त्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयीकरण का सिद्धान्त**

सामूहिक कार्य में समूह निर्णय के प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक होनी वाली क्रियाये जनतन्त्रीयकरण के सिद्वान्त पर आधारित है। समूह सदस्य स्वयं ही अपना पथ निर्धारित करते तथा पूरा करते हैं। कार्यकर्ता का कार्य केवल सही दिशा प्रदान करना तथा सकारात्मक रूप से समह की अन्तःक्रिया को निदर्शित करना होता है। समूह की समस्त क्रियाये समूह द्वारा स्वतः प्रेरित होती है कार्यकर्ता का कार्य सदस्यों में सामाजिक वास्ततिक का सही ज्ञान कराना तथा उसकी सुशप्त शक्तियों का सही दिशा प्रदान करना है।

- **लोचदार कार्यात्मक संगठन का सिद्धान्त**

सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता समूह का निर्देशन समूह संगठन के माध्यम से करता है। पहले वह समूह को संगठित करता है तदुपरान्त उस संगठन के माध्यम से कार्यक्रम संपादित करता है। लेकिन उसका औपचारिक संगठन दूसरे प्रकार के समूह संगठनों से भिन्न होता है। कार्यकर्ता औपचारिकता को उतना महत्व देता है जिससे आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और कोई बाधा उत्पन्न नही होती है।

समूह का निर्माण एक विशेष उद्देश्य के लिए कियाजाता है, परिणाम स्वरूप इसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुछ न कुछ औपचारिक संगठन की आवश्यकता होती है साथ ही साथ सामूहिक जीवन में स्थापित करता है समूहो में भिन्नता होती है अतः वे एक विशेष प्रकार का संगठन चाहते है तथा संगठनात्मक सतर में भी भिन्नता की आवश्यकता होती है। समयानुसार प्राथमिकताओं तथा रूचियों में अन्तर के कारण आवश्यकताओं बदलती है तथा नवीन रूचियों का विकास होता है। अतः संगठन की रचना में लचीलापन आवश्यक होता है।

- **प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धान्त**

सामाजिक सामूहिक कार्य में कार्यक्रम उसी स्तर से प्रारम्भ होने चाहिए जिस स्तर के सदस्यों की रूचियॉ, आवश्यकतायें, निपुणता तथा दक्षता है जैसे इन शक्तियों में विकास हो वैसे–वैसे कार्यक्रमो मे भी परिवर्तन लाना चाहिए तथा उसके साथ विकासात्मक हो। इस सिद्धान्त के अनुसार समूहकार्य में कार्यक्रम प्रारूप प्रारम्भ करने का एक बिन्दु होता है और उस बिन्दु को परिभाषित करना महत्वपूर्ण होता है।

समूहों की रूचियों आवश्यकताओं तथा योग्यताओं में भिन्नतायें कार्यक्रम विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक होती है अर्थात जैसे सदस्यो की कुशलतायें एवं अनुभाव बढ़ते है। वैसे वह नवीन जटिल कार्यक्रमों का सुझाव समूह में रखता है साराशतः समूह की इच्छा तथा कार्यकर्ता की योग्यता पर कार्यक्रमों की प्रगति निर्भर करती है।

- **साधनों का उपयोग का सिद्धान्त**

सामाजिक सामूहिक कार्य मे संस्था तथा समुदाय का सम्पूर्ण वातावरण साधनों पर निर्भर होता है। अतः साधनों का उपयोग सामूहिक अनुभवों मे वृद्धि करने के लिए कुशलता पूर्वक करना चाहिए। समूह को जब साधन की आश्यकता हो तब कार्यकर्ता को इनसे लाभ उठाने मे पूर्ण समर्थ होना चाहिए। संस्था एवं समुदाय में उपस्थित के उपयोग से समूह अनुभव को न केवल बढ़ाया जा सकता है। यह सभी समूह सदस्यों के विकास में सहायक सिद्ध होता है।

- **मूल्यांकन का सिद्धान्त**

मूल्यांकन एक निर्णय करने वाली प्रक्रिया है जो निश्चित करती है कि समूह कार्यकर्ता संस्था या क्या उत्तरदायित्व है उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है। क्या–2 शक्तिया है तथा क्या–2 कमजोरिया है, कौन–2 से कार्य सचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं इस प्रकार मूल्यांकन का उद्देश्य दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है। यह कार्यकर्ता को निर्णय पर पहुचाने के लिए नकारात्मक कारकों के विरूद्ध सकारात्मक कारकों का सन्तुलन बनाये रखता है। इसकी निम्न स्थितियों का कार्यकर्ता मूल्यांकन करता है।

1. कार्यक्रम का मूल्यांकन
2. सदस्यों के भागीकरण तथा अनुभव का मूल्यांकन
3. स्वयं अपनी भूमिका का मूल्यांकन

- **अधीक्षण का सिद्धान्त**

1. वैध तथा प्राप्त होने योग्य उद्देश्यों का निर्माण।
2. समहो के सदस्यों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता।
3. समयानुसार कार्य का सम्पन्न होना जरूरी।
4. सम्मेलन के दौरान जिज्ञासु व्यवहार का प्रदर्शन।

5. कार्यकर्ताओं को समूह की भावनाओं तथा विचारों के प्रति संवेदित होना चाहिए।
6. सबको अपनी भावनाओं व्यक्त करने का अवसर प्रदान करना।
7. विषय चयन मे प्रजातांन्त्रिक सिद्धान्तों का उपयोग।
8. सम्मेलन मे कार्यकर्ताओं के कार्यो का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

- **प्रशासन का सिद्धान्त**

1. सहम की संरचना तथा पृष्ठभूमि का ज्ञान होना चाहिए
2. अन्य समूहों के सन्दर्भ में समूह के उद्देश्यो तथा कार्यो को सदस्यो द्वारा परिभाषित करने में सहायता प्रदान करनी चाहिए।
3. अनेको समूहों मे एकीकरण करना जिससे उनमें आपसी समंजस्य बना रहे।
4. समूह को अपने उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में अपने कार्य के मूल्यांकन करने में सहायता करना।
5. सदैव कार्यक्रम का मूल्यांकन करना।
6. उसे समूह की सहायता संगठन सम्बन्धी समस्याओ के समाधान में करनी चाहिए।

- **नियोजन का सिद्धांत**

1. संस्था के मूलभूत सदस्यो की रूचियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजन।
2. नियोजन तथ्यो पर आधारित होना चाहिए।
3. प्रभावित लोगो को योजना का अंग बनाना।
4. नियोजन में छोटी से लेकर बड़ी समितियों को सम्मिलित करना।
5. नियोजन प्रक्रिया वैयक्तिकृत तथा विशेषकृत होना चाहिए।
6. व्यावसायिक नेतृत्व की आवश्यकता।
7. अभिलेख अनिवार्य होता है।
8. नियोजन सीमित साधनों के अन्तर्गत होना चाहिए

3.3 सामाजिक सामूहिक कार्य निपुणता

बाइबिल के अनुसार ‘‘हम लोग न केवल वास्तविक रूप से बल्कि अति वास्तविक रूप तथा महत्वपूर्ण स्तर पर एक दूसरे के लिए सदस्य है’’ इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्यों में आत्मनिर्भरता पायी जाती है और सहयोग का मूल्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आत्मनिर्भरता के कारण अपनी भूमिका निर्वाह के लिए उसे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जिससे वह उन निपुणताओं तथा कौशल का विकास कर सके। जिसके द्वारा अपनी उपयोगिता का प्रमाण दे सके व अपने कार्यो का सम्पादन करने में सफल हो।

3.3.1 निपुणता की प्रकृति

किसी भी व्यवसाय के लिए निपुणताओ का होना उसके स्वरूप व महत्व को स्पष्ट करता है। समाजकार्य की उन्नति एवं निकास में निपुणताओ का विशेष महत्व है क्योकि यह मानव व्यवहार के विकास से सम्बन्धित है और वे समस्याये तब तक दूर नही हो सकती जब तक उसमे विशेष कौशल और विशेष योग्यता का विकास नही होता।

3.3.2 निपुणता का अर्थ

ट्रैकर के अनुसार ''निपुणता कार्यकर्ता की विशेष परिस्थितियों में ज्ञान एवं समय के उपयोग की क्षमता है। विरजाइना राबिन्सन के अनुसार '' निपुणता का अर्थ विशिष्ट वस्तु के नियंत्रण तथा कार्यरूप में परिणत करने की क्षमत है जिससे वस्तु में होने वाला परिवर्तन उसकी उपयोगिता तथा गुण उसकी क्षमता से प्रभावित होता है।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति निपुणताओं की प्राप्ति ज्ञान वृद्धि एवं कार्य अनुभव से करता है। जब वह किसी कार्य में सतत लगा रहता है तो निपुणताएं स्वतः आ जाती है अगर कार्यकर्ता अपने समूह एवं मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों का ज्ञान होना आवश्यक है तथा इन प्रत्ययों को समूह में किस प्रकार प्रयोग में लावे इसका भी ज्ञान होना आवश्यक होता है।

3.3.3. निपुणता के अंग

निपुणता के तीन प्रमुख अंग हैः–

1. ज्ञान
2. भावना
3. क्रिया

3.3.4 प्रणाली तथा निपुणता में अन्तर

इस प्रकार प्रणाली का तात्पर्य ज्ञान और सिद्धांतो के आधार पर उद्देश्य पूर्ण ढंग से अर्न्तदृष्टि और सामान्य का उपयोग है निपुणता ज्ञान और समझ की विशिष्ट परिस्थिति मे उपयोग करने की क्षमता है। प्रणाली प्रकिया का उपयोग है तथा निपुणता इसके उपयोग की क्षमता है।

3.3.5 सामूहिक कार्य की आवश्यक निपुणताएं

ट्रेकर ने सामूहिक कार्य की निम्न निपुणताओं का उल्लेख किया है–

1. उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता
2. समूह परिस्थित विश्लेषण की निपुणता
3. समूह के साथ भाग लेने में निपुणता
4. समूह की भावनाओं से निपटने मे निपुणता
1. कार्यक्रम के विकास मे निपुणता

2. संस्था और सामुदायिक साधनों के उपयोग में निपुणता
3. मूल्यांकन में निपुणता

फिलिप्स ने सामूहिक कार्य की चार प्रमुख निपुणताओ का उल्लेख किया हैः–

1. संस्था के कार्यो के प्रयोग की निपुणता
2. भावनाओं के संचार की निपुणता
3. वर्तमान की वास्तविकता के प्रयोग की निपुणता
4. सामूहिक सम्बन्धों को उत्तेजित करने की तथा उपयोग करने की निपुणता

उपरोक्त निपुणताओं के अन्तर्गत संस्था के प्रयोग में आने वाली निम्न आवश्यक निपुणताए हैः–

- **संस्था के कार्यो के प्रयोग की निपुणता :–**

1. अन्तर्गाही निपुणता
2. समूह का संस्था सें सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता
3. समूह कार्य प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति की सहायता की निपुणता
4. सामूहिक क्रियाओं के अतिरिक्त या बाहर व्यक्ति को समझने तथा सहायता करने की निपुणता
5. सन्दर्भित करने की निपुणता

- **भावनाओं के संचार की निपुणता :–**

1. कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं को समझने, नियंत्रण रखने तथा उपयोग करने की निपुणता
2. समूह सदस्यो की भावनाओं को समझने तथा उनसे निपटने की निपुणता
3. सामूहिक भावनाओ को संचार की निपुणता

- **वर्तमान वास्तविकता के उपयोग की निपुणता :–**

1. सामूहिक रूचि का उद्देशीय क्रियाओं के लिए उपयोग करने की निपुणता
2. समूह को उत्तरदायी निर्णय लेने में सहायता देने की निपुणता

- **समूह सम्बन्धो को उत्तेजित करने तथा उपयोग करने की निपुणता :–**

1. सामाजिक सम्बन्धो को सुदृढ़ करने के लिये कार्यक्रमो के उपयोग की कुशलता
2. सदस्यो की अन्तर्निहित शक्तियों की समझने तथा उनके उपयोग करने की निपुणता।

इस प्रकार सामूहिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता उपरोक्त निपुणताओं के माध्यम से निरंतर संस्था के कार्यो की व्याख्या एवं पुर्नव्याख्या करता है तथा अपनी भूमिका का भी विश्लेषण करता है।

3.4 सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य में सामूहिक प्रक्रिया

सामूहिक सेवाकार्य अभ्यास मे व्यक्तित्व परिवर्तन प्रगति एवं विकास का प्राथमिक साधन, समूह के सदस्यो के बीच एक गतिशील अन्तःक्रिया का प्रमुख सिद्धांत है। इसलिए अन्तःक्रिया सामूहिक क्रिया का विशेष महत्व होता है। स्लेवसन के अनुसार ''समूह के सदस्यो व नेताओं के बीच प्रजातांत्रिक सहभागिता के फलस्वरूप अन्तः क्रियाये जन्म लेती है जिससे मानवीय सम्बन्धों का विकास होता है''। डोरोथी स्पेलमैन के अनुसार ''सामूहिक प्रकिया तथा सामूहिक सेवाकार्य प्रकिया की अवधारणाये अलग–अलग होती है। सामूहिक सेवाकार्य में अन्तःक्रिया का निदेशन कार्यकर्ता करता है इस प्रकार कार्यकर्ता गतिशील अन्तःक्रिया के साथ ही कार्यक्रम के माध्यम से उपलब्ध विषयवस्तु का प्रयोग करता है :–

ग्रेस क्वायल के अनुसार इसके तीन तत्व है :–

1. समूह का उद्देश्य
2. सदस्यता के प्रति निर्णय
3. स्वरूप का निर्धारण

इन्होने सामूहिक प्रक्रिया की व्याख्या निम्न अन्य प्रकिया के सन्दर्भ में किया है:–

1. स्वीकृति–अस्वीकृति
2. समूह निर्माण
3. समूह नियंत्रण
4. दलीय भावना
5. चिंतन एवं निर्णय लेना

बेवस्टर शब्दकोष :– समाजकार्य में प्रकिया एक क्षणिक निरन्तर एवं परस्पर सम्बन्धी विकासात्मक प्रकृति की मानवीय क्रिया होती है जो विस्तृत स्वरूप की एकता को जन्म देती है

मैकमिलन के अनुसार ''सामाजिक प्रकिया समस्त मानवीय सम्बन्धों की विशेषता एवं समाजकार्य का कला के रूप में अभ्यास करने का माध्यम है'' इसके अनुसार प्रकिया के तीन तत्व होते है :–

1. व्यक्तिगत व्यवहार
2. सामूहिक सम्बन्ध
3. अन्तर्समूह सम्बन्ध

कुक :– इन्होने सामूहिक सेवाकार्य प्रकिया के निम्न सम्बन्धों का उल्लेख किया है:–

1. व्यक्तिगत सदस्य या सदस्यो एवं समूह के अन्य सदस्यों के मध्य अन्तःवैक्तिक सम्बन्ध
2. प्रत्येक सदस्य तथा समूह के सामान्य कल्याण में मौलिक
3. प्रत्येक सदस्य एवं सम्पूर्ण समूह की समग्रता में सम्बन्ध
4. व्यक्तिगत सदस्यों एवं सामूहिक कार्यकर्ता के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि दो या दो से अधिक व्यक्ति जब समूह का निर्माण करते है उनके बीच विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध व अन्तः क्रियाये प्रारम्भ हो जाती है और जब समूह के सदस्य सामूहिक कार्यकर्ता की सहायता से समूह के सामान्य उद्देष्यो की ओर अग्रसर होते है तो अन्तः क्रियाओं एवं सम्बन्धों की श्रृंखला उत्पन्न हो जाती है। जिन्हे कार्यकर्ता समूह निर्माण एवं सदस्यो की सन्तुष्टि के लिए निदेशित करता है तथा यही निदेशित अन्तःक्रिया को प्रजातान्त्रिक सामूहिक प्रक्रिया अथवा सामूहिक सेवाकार्य प्रक्रिया व्यक्ति व समूह के विकास का मौलिक साधन बन जाती है। कुक के मतानुसार निर्मित समूह नही लेना चाहिए वरन समूह को कार्यक्रम की एक प्रकिया स्वरूप देखना चाहिए मगर कार्यक्रम को समूह पर अध्यारोपित नही करना चाहिए।

स्लेवसन ने सामूहिक अनुभवों को व्यक्तित्व का आधार मानते हुए समूह को कम से तीन व्यक्तियों पर आधारित एक त्रिकोण बताया है मुख्यतः यह तीसरा या अन्य व्यक्ति समूह के समस्या या तनाव उत्पन्न करते है, इसे इन्होने तृतीय व्यक्ति समक्षाये'' कहा है। क्योंकि जब समूह मे तीसरा व्यक्ति आता है तो छिपे हुए संवेगात्मक तनाव स्पष्ट होने लगते है।

स्लेवसन के अनुसार सामूहिक प्रकिया के प्रमुख प्रकार :–

1. अन्तःउद्दीयन
2. अन्तःक्रिया
3. प्रेरणा या अनुगमन
4. गहनता
5. तटस्थता
6. परस्पर तादात्मीकरण
7. आत्म सावन
8. ध्रुवीकरण
9. स्पर्धा
10. प्रक्षेपण
11. समाकलन
12. रूढ़िवादिता

3.5 सामूहिक कार्यकर्ता की भूमिका

अमेरिकन एसोसिएशन आफॅ ग्रुप वर्कर्स ने सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य में कार्यकर्ता की भूमिका निम्न उद्द किया हैः–

कार्यकर्ता समूह के लक्ष्यो, उद्देश्यो एवं ध्येय को निश्चित करने मे सहायता करता है। वह संस्था के उद्देश्यो को समझने सामूहिक भावना तथा आत्मचेतना का विकास करने मे सहायता प्रदान करता है कार्यक्र्ता समूह को अपनी क्षमता व सीमाओं का ज्ञान प्रदान करता ाहे ताकि वह अपने विकास के स्तर को बनाये रखने का निर्णय ले सके। कार्यकर्ता निम्न भूमिकाओ का निर्वहन करता है।

3.5.1 समूह के साथ

1. **सार्थककर्ता भूमिकाः–** कार्यकर्ता समूह सदस्यो को अपनी आवश्यकता को समझने मे सहायता करता हैं वह उन क्षेत्रों को बतलाता है जिनसे आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है तथा सदस्य सहयोग ले सकते है। सभी सदस्यों को भागीकरण का बढ़ावा देता है।

2. **पथ प्रदर्शक के रूप में:–** वह सदस्यों को संस्था व समुदाय की सुविधाओं एवं अन्य श्रोतो से अवगत कराता है जिनकी उन्हें आवश्यकता तो होती है। परन्तु वे जानते नही हैं वह सदस्यों को अपनी भूमिका का एहसास कराता है तथा आवश्यक मुद्दों का स्पस्ट करता हैं वह सामूहिक अन्तःक्रिया का निर्देशन करता है।

3. **अधिवक्ता के रूप में:–** कार्यकर्ता सदस्यों की समस्याओं को उच्च अधिकारियों के समक्ष कखता है। तथा आवश्यक सेवायें प्रदान करने की सिफारिश करता है। वह सभी के कार्यो नीतियों तथा कार्यक्रमों मे परिवर्तन की भी सिफारिश करता है।

4. **विशेषज्ञ के रूप में:–** कार्यकर्ता आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों से विशेष सलाह देता है वह समूह समस्या का विश्लेषण करता है तथा उसका निदान करता है।

5. **चिकित्सक के रूप में:–** कार्यकर्ता समूह की कुछ समस्याओं का प्रयास पहले करता हैं जो अत्यधिक महत्वपूर्ण है और जिनकी जड़े का काफी गहरी है। वह समूह को विघटनात्मक कारकों से परिचित करवाता है जिनका प्रभाव सीधे पड़ता है।

6. **परिवर्तक के रूप में:–** कार्यकर्ता सदस्यों की आदतों में पारिवर्तन लाने के लिए अनेक कार्यक्रम करता है क्योकि कभी–2 आदतो के कारण ही कभी–2 समस्या उठ खड़ी होती है। और परिवार व समाज में विघटन उत्पन्न कर देती है।

7. **सूचनादाता के रूप में:–** कार्यकर्ता समूह की सहायता लक्ष्य निर्धारण तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के तरीकों को निश्चित करने मे करता है। वह संस्था से सहायता लेने मे समूह की मदद करता है।

8. **सहायक के रूप में:–** कार्यकर्ता समूह की सहायता लक्ष्य निर्धारण तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के तरीको को निश्चित करने में करता है। वह संस्था से सहायता लेने मे समूह की मदद करता है।

स्वमूल्यांकन प्रश्नः–

1. एक सिद्धान्त अवश्य ही उपकल्पना समझी जानी चाहिए? उक्त कथन है।

   1. एल.डी.व्हाइट 2. कुक
   3. वेवस्टर 4. स्लेवसन

2. निपुणता से अर्थ है।

   1. कार्य करने की शैली ।
   2. कार्य के कियान्वयन व उसे पूर्ण करने के ज्ञान व दक्षता है।
   3. कार्य विशेषता ।

4. कार्य करने की क्षमता।

3. कौन सी सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका नही है–
    1. उन्हें उनकी एकता के विकास की ओर मार्गदर्शित करना
    2. उन्हें मिलजुलकर काम करने से उनकी शक्ति का बोध कराना
    3. तटस्थ रहकर उनकी गतिविधियों का प्रेषण करना तथा कमजोरियों को बतलाना
    4. उनको अपने उत्तर दायित्व का बोध कराना तथा मिल जुलकर काम करने पर जोर देना।

3.6 प्राथमिक कार्यकर्ताओं का अधीक्षण

सामूहिक कार्यकर्ता समूहो की सहायता करने के पष्चात कार्यकर्ताओं की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करता है यहा पर वह अधीक्षक की भूमिका अदा करता है, जिसके द्वारा समूह की अप्रत्यक्ष ढंग से सहायता करता है। उसका काग्र कार्यकर्ताओं में निपुणता एवं दक्षता का विकास करना है। वह आगे ज्ञान और अनुभव की वृद्धि करता है तथा नये–नये तरीको को समझाता है और निपुणताओं का विकास करता हौ। अधीक्षक अपने तथा दूसरे व्यक्तियों के विषय मे और सामाजिक स्थिति तथा कार्यो के विषय में अपने ज्ञान एवं सूझबूझ के आधार करने में करता है जिसके लिए संस्था संगठित की गयी है।

3.7 सामूहिक कार्य प्रदान करने वाली संस्थाओं एवं विभागों का प्रशासन

सामाजिक सा0 कार्य का तीसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र प्रशासन है इसके अन्तर्गत वह सामाजिक संस्थाओ का संगठन इस आधार पर करता है जिससे सेवार्थियों को अधिक से अधिक लोग पहुॅचा सके। इसका उद्देश्य सामूहिक क्रियाओं का उचित प्रकार से सम्पन्न करना तथा रूकावटों को दूर करना है। प्रशासकीय सेवाओं का सम्बन्ध सामाजिक सेवा को लाभप्रद तरीकों द्वारा समूहो को पहुचाना है। कार्यकर्ता यहॉ पर नियोजन, संगठन, कर्मचारियों के चयन तथा उनके नियंत्रण, निर्देशन, सहयोग, अभिलेखन तथा बजट क्रियाओं में भाग लेता है।

संगठन एवं प्रशासन चाहे जितना उपयुक्त क्यो ना हो, नियोजन सीमाओं के अन्तर्गत क्यो न हो परन्तु यदि कर्मचारीगण कार्य कुशल नही है तो कोई भी संसारित उद्देश्य को प्राप्त नही कर सकती है। कार्यकर्ता का कार्य यहॉ पर अनुभवी व कार्यकुशल कर्मचारी का चयन करना होता है तथा उनका निर्देशन व अनुश्रवण करना होता है। अभिलेखन करता है क्योंकि प्रशासनिक नियंत्रण के लिए अभिलेखन एक आवश्यक यन्त्र है।

3.8 सामाजिक सामूहिक कार्य सेवाओं को प्रदान करने वाली संस्थाओं के लिए सामुदायिक नियोजन

कार्यकर्ता संस्था के लिए सामुदायिक नियोजन करता है जिससे उसकी उपयोगिता बढ़ती है तथा उसकी उपयोगिता का अहसास होता है। वह समुदाय की अवस्थाओं जैसे– शिक्षा, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, सांस्कृतिक तथा अन्य विभिन्नताओं के आधार पर कार्यक्रम का नियोजन करता है वह सुदाय के रीति रिवाजों का भी ध्यान रखता है। वह समुदाय में समूह निर्माण की आवश्यकता एवं उपादेयता सम्बन्धी जन जागरूकता को बढ़ावा देता है।

सारांश मे सामूहिक कार्यकर्ता अपनी सेवाओं द्वारा सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करता है, व्यक्ति को स्वतंन्त्र विकास तथा उन्नति के लिए अवसर प्रदान करता है तथा व्यक्तित्व के सामान्य निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियॉ उत्पन्न करता है। वह सामाजिक सम्बन्धों को आधार मानकर विकासात्मक एवं शिक्षात्मक क्रियाओं का आयोजन व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के लिए करता है।

3.9 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक समूह कार्य के सिद्धान्तों को उनकी विभिन्नता के आधार पर विवेचित किया गया है नियोजन क्या है इसको समझाया गया है। सामूहिक कार्य निपुणता उसके प्रकार तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा निपुणता के सम्बन्ध में दी गयी थ्योरी का विवेचन किया गया है निपुणता की प्रकृति, अंग तथा आवश्यक निपुणताओं के विषय मे विस्तृत विवेचन है। सामूहिक प्रक्रिया या सामूहिक कार्य में क्या महत्व है। उसकी अवधारणा तथा विभिन्न विद्वानों के मतानुसार इसके प्रकार पर प्रकाश डाला गया। सामूहिक कार्यकर्ता की भूमिका की व्याख्या की गयी है।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. सामूहिक सेवाकार्य के सिद्धान्त की विवेचना करते हुऐ इसके प्रकारों का वर्णन कीजियें?
2. सामूहिक कार्य निपुणता क्या है? समझाइये?
3. सामूहिक प्रक्रिया का विवेचन करें?
4. सामूहिक कार्यकर्ता की समूह तथा अन्य कारकों मे भूमिका की व्याख्या कीजिये?

3.11 पारिभाषिक शब्दावली:–

Introduction	- परिचय	Flaxible	- लोचदार
Democratic	- जनतन्तंत्रीय	Utilization	- उपयोग
Evaluation	- मूल्यांकन	Progressive	- प्रगतिशील
Individualizatioin	- वैयक्तीकरण	Relation	- सम्बन्ध
Planing	- नियोजन	Clorification	- स्पस्टता

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

मिश्रा, पी0डी0 :सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1992।

शास्त्री, ए.एस.इनाम :व्यावसायिक समाजकार्य, गुलसी पब्लिकेशन, वाराणसी 1998।

पाण्डेय, तेजस्कर :समाजकार्य, जुबली फाउडेशन, लखनऊ 2003।

जोसेफ, हेलेन :सोशल वर्क कद ग्रप्स 'ए लिटरेचर रिब्यू', इण्यिन जर्नल आफ सोशल वर्क 1997।

द्विवेदी, मनीष :समाजकार्य, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद 2008।

इकाई–4

स्व–समूह कार्य के सिद्धान्त, एवं मूल्य
Theories and Values in Self Group Work

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 परिचय
4.2 स्व समूह
4.4 मूल्य
4.5 प्रत्यय
4.6 स्व समूह कार्य सिद्वान्त
4.10 स्वयं सहायता समूह (विकास का चरण)
4.11 समूह का संचालन
4.12 प्रशिक्षण कार्य
4.13 सार संक्षेप
4.14 अभ्यास प्रश्न
4.15 पारिभाषिक शब्दावली
4.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र स्व समूह कार्य की थ्योरी को समझ जायेगे।
- स्व समूह की अवधारणा मूल्य प्रक्रिया के विषय मे जान सकेगें।
- स्व समूह कार्य के प्रत्यय के विषय मे समझ बनेगी।
- स्वं समूह के उदाहरण के रूप में स्वयं सहायता समूहो के विषय में जान सकेगें।

4.1 परिचय

जब सदस्य कार्यकर्त्ता की प्रेरणा से प्रेरित होकर समूह का निर्माण करते है, समूह की समस्त गतिविधियों में संलिप्त रहतें है। स्वयं को समूह का हिस्सा मानते है, उसे स्व समूह कार्य कहते हैं।

4.2 स्व समूह अवधारणा

स्व समूह कार्य : जब सामाजिक कार्यकर्ता समूह के सदस्यों को अपने लक्ष्यों को स्वंय प्राप्त करने के लिए संलग्न करने हेतु निरंतर प्रोत्साहित करता है तो वे एक स्व सहायता समूह के विकास हेतु सहभागी होते हैं। प्रारम्भ में आत्मनिर्भर होने के पूर्व समूह के सदस्यों को कार्यकर्ता से निरंतर निर्देश एवं

नेतृत्व प्राप्त होता है। समूह चाहे तो स्थापित होने के पष्चात पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी हो जाये अथवा स्व–सहायता समूह के रूप में विकसित होने के पश्चात भी कार्यकर्त्ता से निर्देश प्राप्त कर सकता है (टोसलैण्ड एवं हैकर, 1982)।

4.3 प्रकिया

स्व समूह कार्य एक प्रक्रिया है, जो सम्बन्धों पर आधारित है। यह संबंध उन समूह सदस्यों तथा कार्यकर्ता के मध्य स्थापित होता है जिनके साथ वह कार्य करता है। समूह के सदस्यों को व्यक्तिगत तथा सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यकर्ता आपने व्यावसायिक सम्बन्धों का उपयोग करता है। स्व समूह कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कार्यकर्त्ता समूह के सदस्यों के अंतवैयक्तिक सम्बन्धों का विकास करने तथा उपयोग करने की कितनी योग्यता, क्षमता, बुद्धि एवं निपुणता है।

उद्देश्यपूर्ण एवं मधुर सम्बन्ध प्रेम द्वारा ही उत्पन्न किये जा सकते है। यद्यपि मानवीय रूप से यह असंभव है कि कार्यकर्ता उन सबसे प्रेम करे या उनको पसन्द करे जिनके सम्पर्क मे वह आता है तथा कार्य करता है, परन्तु उसको मानव के मौलिक मूल्यों से प्रेम करना आवश्यक होता हैं वह उसी प्रकार सदस्यों से प्रेम करता है जैसे चिकित्सक रोगी से, अध्यापक विद्यार्थी से। जब तक कार्यकर्ता में व्यक्ति की सहायता करने की आन्तरिक भावना नही होगी, वह सफल नही होगा।

कार्यकर्ता द्वारा समूह सदस्य स्वीकृत किये जाते हैं। उनके व्यवहार को स्वीकृत न किये जाने पर भी इसमें कमी नही आती है। वह उनके व्यवहार को सामूहिक अनुभव के माध्यम से समूह स्तर को बनाता है। यह उनकी आक्रमणकारी भावनाओं एवं प्रवृतियों को दूर करता हैं वे किसी सथान पर यह महसूस नही करते है कि कार्यकर्ता उनको पसन्द नहीं करता है या उपेक्षा करता है। वे कार्यकर्ता में अपने प्रति प्रेम का विश्वास रखते है, क्योंकि वह उनकी सहायता आवश्यकता पड़ने पर करता है तथा सम्बन्धों का उचित एवं अर्थपूर्ण ढंग से उपयोग करता है, सभी संस्कृतियों के सदस्यों को समान रूप से मानता हे तभी भाग लेने के उन्हे समान अवसर देता है ।

4.4 मूल्य

समूह जब स्वतः कार्य करते है तो उनके कुछ उद्देश्य सिद्धान्त और मूल्य होते है। पर मूल्य ,समूह के प्राण होते है। इसी के आधार पर समूह अपने कार्यो की रूपरेखा निर्धारित करते है। स्व समूह कार्य के मूल्य निम्न है–

1. समूह सदस्यो की एकता और महत्ता पर विश्वास
2. आत्म निर्णय का अधिकार
3. आत्म पूर्णता
4. विकास का मुख्य आधार सम्बन्ध
5. अल्पमत विचारों का महत्व
6. व्यक्तित्व अन्तरों की मान्यता व स्वीकृति
7. समूह पर संस्कृति का प्रभाव
8. व्यवहार विभिन्न कारकों का प्रतिफल
9. परिवर्तन का विरोध
10. विकास के समान अवसर

4.5 प्रत्यय

1. सामर्थ्य का प्रत्यय
2. भागीकरण का प्रत्यय
3. सम्बन्ध का प्रत्यय
4. वैयक्तिक भिन्नताओं का प्रत्यय
5. संस्कृति का प्रत्यय
6. बहुकारणात्मक व्यवहार का प्रत्यय
7. परिवर्तन में अवरोध का प्रत्यय
8. मनोवृति का प्रत्यय
9. भूमिका का प्रत्यय

4.6 स्व समूह कार्य के सिद्धान्त

स्व समूह कार्य के लिए अधिकांशतः सामाजिक कार्यकर्ता सर्वाधिक सिस्टम्स थ्योरी का प्रयोग करते है (डगलस, 1979)। सभी समूह कार्य अभ्यास हेतु इसका विस्तृत ज्ञान आवश्यक है।

सिस्टम्स (तंत्र/सामाजिक व्यवस्था) सिद्वान्त समूह को एक अतः क्रियात्मक तत्व के रूप में समझने का प्रयास करता है। संभवतः सामूहिक प्रकार्यता हेतु इस सिद्धान्त का विस्तृत प्रयोग एवं अनुप्रयोग किया जाता है (एण्डरसन, 1979, ओल्सन, 1968),

पारसंस (1951), के अनुसार समूह सामाजिक व्यवस्था का अंग होते है जिसके विभिन्न अनन्यो आश्रित सदस्य एक सम्पूर्ण के रूप में एक स्थायी व्यवस्था एवं एकरूपता बनाने का प्रयास करते है। समूह सदैव अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के एवं एक स्थायी एक रूपता बनाने में परिवर्तनीय मॉगों का सामना करते रहते है। समूह की निरंतरता बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि वे इन परिवर्तनशील मॉगों की पूर्ति करने हेतु संसाधनों की गतिशीलता बनाये रखें।

पारसंस, बेल्स एवं शिल्स (1953)के अनुसार एक व्यवस्था (सिस्टम्स) के चार प्रकार्य है :–

(अ) समाकलन/एकीकरण :– सह सुनिश्चित करना कि समूह के सभी सदस्य एकबद्ध है,

(ब) अनुकूलनः– यह सुनिश्चित करना कि समूह पर्यावरण के अनुसार अपने को ढाल लेगा,

(स) पद्धति बद्धताः– यह सुनिश्चित करना कि समूह अपने मूल उद्देश्य, पहचान एवं कार्य करने के तरीके को परिभाषित करें एवं उसमें सतत्ता बनाये रखे, एवं

(द) लक्ष्य प्राप्तिः– यह सुनिश्चित करना कि समूह अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु संलग्न रहकर उसकी प्राप्ति करेगा।

4.7 सदस्यों को निर्णय लेने की स्वतंन्त्रता

समूह के लिए आवश्यक है कि वे एकरूपता बनाये रखने के लिए उपरोक्त वर्णित चार प्रकार्यो की प्राप्ति करें। जिसकी जिम्मेदारी समूह नेता के साथ–साथ सदस्यों की भी है। जरमेन एवं ग्लिटरमैन (1980), सिपोरिन (1980), अनुसार समूह की अपने पर्यावरण से लगातार अन्तःक्रिया चलती रहती है, वे पारिस्थितिकी तंत्र का हिस्सा बन जातें हैं। होमंस के अनुसार प्रत्येक समूह की एक आंतरिक एवं एक वाहय व्यवस्था होती है। आंतरिक व्यवस्था के अर्न्तगत समूह अपनी प्रकार्यता के दौरान विभिन्न गतिविधियॉ, अन्तःक्रिया एवं नियमन करता है। बाहय व्यवस्था के अर्न्तगत समूह उन दशाओं के साथ

साम्यता बैठाने का प्रयास करता है जो समूह के व्यापक समाज एवं भौतिक वातावरण के सम्बन्धों से उत्पन्न होती रहती है।

4.8 स्व समूह का उदाहरण

उदाहरण स्परूप यदि देश के किसी ग्रमीण समुदाय के निर्धन व्यक्तियों को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी एवं आत्म निर्भर बनाना है तो एक सामाजिक कार्यकर्ता उन व्यक्तियों में छोटी–2 बचतों को प्रोत्साहित करने एवं बैकं से लघु उद्योग, लघु एवं कुटीर उद्योग संचालित करने के लिए ग्रामीण समुदायों में स्व. सहायता समूह बनाकर उनको विकासोन्मुखी एवं स्वावलंबी बना सकता है। स्वयं सहायता समूहा की विशेषताएं, विकास के चरण, संचालन विधि निम्नलिखित है।

स्व–मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. एक आदर्श समूह में सदस्यों की संख्या होनी चाहिए।
   1. 1–6 2. 10–20
   3. 20–25 4. 25–50
2. स्व समूह कार्य का मूल्य है।
   1. प्रकिया 2. आत्मपूर्णता
   3. एकीकरण 4. पद्वति बद्धता
3. व्यवस्था (सिस्टम्स) का प्रकार्य है।
   1. अल्पमत विचारों का महत्व 2. उद्देश्य
   3. लक्ष्य प्रगति 4. भौतिक वातावरण

4.9 स्वयं सहायता समूह की विशेषताएं

1. समूह में अधिकतर 20 सदस्य होते है परन्तु सुविधानुसार घटाए–बढ़ाए जा सकतें है।
2. समूह पंजीकृत अथवा गैर–पंजीकृत हो सकते है।
3. समूह द्वारा स्वयं को नियन्त्रित करने के लिए एक आचार–संहिता होनी चाहिए।
4. समूह द्वारा बचत की जाने वाली धनराशि, ब्याज की राशि तथा सदस्यों को किन–किन उद्देश्यों हेतु ऋण दिया जा सकता हौ उनका समूह द्वारा निर्धारण होना चाहिए।
5. समूह की कार्य प्रणाली लोकतांत्रिक हो जिसमें सदस्यों को अपने विचारों का आदान–प्रदान करने तथा अपने मत व्यक्त करने की स्वतंत्रता हो।
6. समूह द्वारा साधारण प्रारम्भिक अभिलेख जैसे सदस्यता रजिस्टर, उपस्थिति पंजिका, मीटिंग रजिस्टर, बचत–पंजियों को रखा जा सकें
7. समूह द्वारा बैक में एक बचत खाता खोला जाना चाहिए।

4.10 स्वयं सहायता समूह के विकास के चरण

1. सदस्यों का चयन
2. संगठन के नियम–विनियम पर चर्चा

3. सामूहिक बचत ऋण आदि का संगठन
4. पारस्परिक सौहार्द एवं लेखा पद्धति
5. समूह के लेनदेन का नियंत्रण
6. आय वृद्धि कार्यक्रम का प्रारम्भ
7. बैंक आदि से जुड़ाव
8. नये समूहों को सहयोग
9. आय वृद्धि कार्यक्रमों का विस्तार
10. सामूहिक विषयों पर चर्चा
11. समूह व सदस्यों के लिए सम्पत्ति का निर्माण
12. उद्देश्यों को विस्तृत बनाना
13. नये समूह का निर्माण (फेडरेशन) संघ का निर्माण।

4.11 समूह का संचालन

अन्य औपचारिक संगठनों की तरह कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए स्वयंसहायता समूह भी अपने नियम बनाता है। नियम किसी गैर–सरकारी संगठन की मदद से बनाये जा सकते हे या फिर समूह में आपसी तालमेल द्वारा मापदण्ड निर्धारित कर लिए जाए और समय के साथ प्राप्त अनुभवों के आधार पर उसमें सुधार किया जा सकता है। नियमों के सम्बन्ध में समूह के सभी सदस्यों की पारस्परित सहमति होती है।

नियम सामान्यतः समूह के उद्देश्यों, बैंकों का दिन वा समय, बचत की राशि व अवधि बैठक में अनुपस्थित होने का दण्ड, विलम्ब आदि से आने पर और उधार की शर्तो जैसे– कब से कर्ज देना आरम्भ किया जाये, कितना उधार दिया जाए, ब्याज दर, चुकौती तथा नेता के चुनाव तथा पारिवर्तन आदि से सम्बन्धित होते है।

स्वयं सहायता समूह में सामान्य चुनें प्रतिनिधि होते है। अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सचिव सामान्यतः एक निश्चित समय पर बदलते रहते है। समूह इन प्रतिनिधियों को यह अधिकार देता है कि वे बैंक खाते मे लेन–देन करें। आरम्भ में समूह के पास चार–पांच बहीखाते होते हैं जिनकी संख्या कालान्तर में बढ़कर 10 से 11 हो जाती है।

गैर–सरकारी संगठनों के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ता उन समूहों को रिकार्ड, पुस्तकें रखना सिखाते है। अशिक्षित सदस्यों वाले समूहों में या तो गैर–सरकारी संगठन का सामाजिक कार्यकर्ता अथवा कोई स्थानीय व्यक्ति स्वयंसहायता समूह की ओर से देखभाल करता है।

4.12 प्रशिक्षण कार्य

बचत समूह के गठन व संचालन के कार्य में तीन सप्ताह के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

सदस्यों का प्रशिक्षण :– यह प्रशिक्षण समूह के सदस्यों को साल में एक बार दिया जाना चाहिए और बचत प्रशिक्षण होना चाहिए। इससे मुख्य रूप से बचत समिति की कार्यप्रणाली, ध्येय तथा विस्तृत हिसाब से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। बचत समूहों के काम पर निगरानी रखने का तरीका भी बताना चाहिए।

4.13 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में स्वसमूह की अवधारणा तथा उसके सिद्धान्त, की व्याख्या की गयी है। स्व समूह कार्य किन मूल्यों पर आधारित है इस पर प्रकाश डाला गया है। उसकी प्रक्रिया तथा प्रत्यय क्या है इसकी विवेचना की गयी है। सदस्य समूह मे कितने स्वतंत्र होते है इसकी व्याख्या की गयी है। स्व समूह के प्रकार्यात्मक उदाहरण के रूप में तथा विकास के साधन के रूप में स्वयं सहायता समूह पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

4.14 अभ्यास प्रश्न

1. स्व समूह कार्य की अवधारणा स्पस्ट करते हुऐ इसके मूल्यों पर प्रकाश डालिए?
2. स्व समूह कार्य की प्रक्रिया तथा प्रत्यय पर टिप्पणी लिखिए?
3. स्वयं सहायता समूह की विस्तृत व्याख्या किजीए?
4. प्रशिक्षण कार्य पर टिप्पणी लिखें?

4.15 पारिभाषिक शब्दावली

पर्यावरण : पास परोस, प्राथमिक तथा द्वितीयक संस्थायें

पारिस्थितिकी : परिवार, समूह, समुदाय तथा संस्थाओं से व्यक्ति की अन्तःक्रियात्मक स्थिति।

सिस्टम्स : सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक ढाचॉ, सामाजिक तंत्र।

4.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

मिश्रा, पी0डी0 : सामाजिक सामूहिक सेवाकार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1992।

शास्त्री, ए.एस.इनाम : व्यावसायिक समाजकार्य, गुलसी पब्लिकेशन, वाराणसी 1998।

द्विवेदी, मनीष : समाजकार्य, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद 2008।

इकाई–5

सामाजिक समूह कार्य के प्रारूप
Models of Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्‌देश्य
5.1 परिचय
5.2 सामूहिक समाज कार्य के प्रारूप
5.3 विभिन्न स्तरों पर सामूहिक समाज कार्यकर्ता की भूमिका
5.4 भारत में सामूहिक कार्य की आवश्यकता
5.5 सार संक्षेप
5.6 अभ्यास प्रश्न
5.7 पारिभाषिक शब्दावली
5.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- सामूहिक समाज कार्य के विविघ प्रारूपों को जान सकेगें।
- विभिन्न स्तरों पर सामूहिक समाज कार्यकर्ता की भूमिका की व्याख्या कर सकेगें।
- भारत में सामूहिक कार्य की आवश्यकता को समझ सकेगें।

5.1 परिचय

समाजिक सामूहिक कार्य का उद्‌देश्य सामाजिक समायोजन एवं विकास करना है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से की जाती है। भारत विकास की दिशा में प्रयास कर रहा है जिसके कारण अनेक बाधाएँ उपस्थित हो रही है। परिवर्तन समान रूप से न होने के कारण अव्यवस्था एवं सांवेगिक तनाव की स्थिति प्रतीत होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि हमारी मान्यताएँ, मूल्य–प्रतिमान, रीतिरिवाज पुराने हैं और उनमें परिवर्तन उतनी गति से नहीं आ रहा है जितनी भौतिक जीवन में। जातिवाद अपने स्थान पर विषम परिस्थितियाँ पैदा किए हुए है।

समूहिक कार्य के अन्तर्गत समूह ही सेवार्थी होता है अर्थात् व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है जिससे समूह की उन्नति एवं विकास संभव होता है। कार्यकर्ता विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से समूह में उन्नति एवं विकास लाता है। व्यक्ति के लिए समूह आवश्यक होता है अतः सामूहिक कार्य समूह–विकास द्वारा व्यक्ति के विकास एवं उन्नति में सहयोग देता है। वह व्यक्ति और समूह की एक ही समय में सहायता करता है। वह समूह को इस प्रकार कार्य करने के लिए उत्साहित करता है

जिससे सामूहिक अन्तःक्रिया तथा कार्यक्रम दोनों ही व्यक्ति के विकास और वांछित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दें।

ट्रेकर के अनुसार सामाजिक सामूहिक कार्य–कार्य की एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्ता कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में व्यक्तियों की परस्पर सम्बद्ध क्रियाओं का मार्गदर्शन करता है जिससे वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर सकें और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायकि विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं योग्यताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों से लाभान्वित हो सकें।प्रस्तुत इकाई में आप सामूहिक समाज कार्य के प्रारूपों की विस्तृत व्याख्या प्राप्त कर सकेगें।

5.2 सामूहिक समाज कार्य के प्रारूप

सामूहिक समाज कार्य की विभिन्न मान्यताओं, कार्यकर्ता की भूमिका एवं समूह के क्रियाकलापों के आधार पर समूह समाज कार्य के प्रारूपों को चार भागों में विभाजित किया गया है। यह प्रारूप समूह के साथ कार्य करने एवं समूह में व्याप्त असन्तुलन को दूर करके एक इच्छित जीवन स्तर पर पहुँचाने में कार्यकर्ता की मदद् करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रारूप ने रणनीतियाँ हैं जिनको अपनाकर व्यवस्थित ढंग से कार्य सम्पादित किये जाते हैं। समूह समाज कार्य के यह प्रारूप हैं :–

(1) चिकित्सा प्रारूप (Remedial Model)

(2) चिन्तन प्रारूप (Reciprocal or Mediating Model)

(3) विकासात्मक प्रारूप, एवं (Developmental Model, and)

(4) सामाजिक लक्ष्य प्रारूप (Social Goal Model)

5.2.1 चिकित्सा प्रारूप

चिकित्सा प्रारूप मुख्यतया व्यक्ति के असामान्य व्यवहार को परिवर्तित करने पर ध्यान देता है। समूह समाज कार्य अभ्यास का यह उपागम व्यक्ति के अन्दर निहित क्षमताओं, कुशलताओं को बाहर लाने एवं सामाजिक सामंजस्य में सहायता करता है। शारीरिक, मानसिक सामाजिक समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति (सेवार्थी) की सहायता में यह प्रारूप अत्यन्त ही महत्वपूर्ण परिलक्षित होता है।

इस प्रारूप की मुख्य विशेषता सेवार्थी के मन में व्याप्त चिन्ता, तनाव को दूर करना एवं उसको समाज की मुख्यधारा में शामिल कराना है। व्यक्ति विशेष की समस्याओं का चिकित्सात्मक ढंग से निराकरण करना, सामाजिक विषमताओं से सेवार्थी को विरक्त करना, शारीरिक, मानसिक असमर्थताओं को दूर करना, इस प्रारूप के उद्देश्य हैं। इसमें समूह कार्यकर्ता अपने आनुभविक एवं विशिष्ट ज्ञान के बल पर विभिन्न क्रियाकलापों को समूह में निर्देशित करता है।

(1) इसमें कार्यकर्ता केन्द्रीय भूमिका में होता है और आवश्यकताओं के निर्धारण का उद्देश्य इसी का होता है।

(2) कार्यकर्ता प्रवक्ता का प्रतीक है अर्थात् एक शान्त अवलोकनकर्ता होता है। वह समाज के मूल्यों के अनुरूप क्रियाओं को निर्देशित करता है।

(3) वह एक प्रेरक के रूप में कार्य करता है साथ ही साथ समूह के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के निर्धारण में सहायता करता है।

(4) वह एक सहायक होते हुए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में समूह का मार्ग निर्देशन करता है।

5.2.2 चिन्तन प्रारूप अथवा ध्यान प्रारूप

यह प्रारूप सन् 1961 में प्रकाश में आया और इसका आधार खुली व्यवस्था सिद्धान्त है। मानवीय मनोविज्ञान एवं इससे सम्बन्धित प्रमुख पक्षों पर यह प्रारूप प्रकाश डालता है। इस प्रारूप की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं।

(1) मनुष्य और समाज एक दूसरे पर आश्रित है और इसकी आवश्यकताओं में हम एक दूसरे के पूरक के रूप में देखते हैं और जब इस संरचित व्यवस्था में कोई बाहरी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तब यह संरचना विछिन्न हो जाती है परिणामतः संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(2) संघर्ष की स्थितियों से निपटने के लिए सम्बन्धित समूह को अन्तः क्रिया करनी चाहिए और अपनी वस्तु स्थिति को समझ बूझकर संसाधनों का सही ढंग से उपयोग करना चाहिए।

(3) इस प्रारूप में ध्यान को केन्द्र बिन्दु माना गया है अर्थात् सम्बन्धों (समूह के सदस्यों के मध्य) में एक दूसरे पर विश्वास एवं आवश्यकता के प्रति चेतना का प्रसार चूँकि कार्यकर्ता समूह समाज कार्य में सभी कार्यों की धुरी होता है इसलिए उसे समूह के सदस्यों में चिंतन को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(4) यह समूह के सदस्यों के मध्य सम्बन्धों की एक कड़ी का काम करता है अर्थात् हम की भावना को बलवती करता है।

(5) इस प्रारूप के द्वारा समूह के सदस्यों में व्याप्त तनाव, चिन्ता इत्यादि का निराकरण किया जाता है।

(6) आवश्यक लक्ष्यों एवं कार्यों को यह महत्व देता है जोकि सामूहिक भावनाओं पर आधारित होती हैं।

(7) सेवार्थी और कार्यकर्ता एक साथ मिलकर सम्भावित कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार रहते हैं।

इस प्रारूप में व्यक्ति एवं समूह दोनों प्रमुख अंगभूत होते हैं। कार्यकर्ता अपने अनुभव एवं निपुणता के सहारे अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा, क्षमता एवं विद्वता का उपयोग समूह को आवश्यक ऊर्जा देने में लगाता है साथ ही साथ समूह को रक्षात्मक स्थिति में बनाये रखता है।

5.2.3 विकासात्मक प्रारूप

1965 में बर्न्सटेन (Bernstain) के नेतृत्व में बोस्टन यूर्निवसिटी के फैकल्टी सहयोगियों द्वारा इस प्रकार का विकास किया गया। लावी (Laway) को इस मॉडल का मुख्य कर्ताधर्ता माना गया। इस प्रारूप

में स्वतंत्रता को प्रमुखता दी गई है अर्थात् समूह को स्वतंत्र होने देना चाहिए उस पर कोई दबाव न हो। इस प्रारूप की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

(1) यह प्रारूप प्राथमिक रूप से समूह के सदस्यों की गत्यात्मकता एवं घनिष्ठता पर आधारित है।

(2) यह सामूहिक घनिष्ठता (Intimacy) सक्षम कार्यकर्ता के हस्तक्षेप पर आधारित होती है ।

(3) अध्ययन, निदान एवं उपचार की अवधारणा का उदय व्यक्ति एवं समूह के आयामों से होता है अर्थात् समूह के सदस्यों के विषय में जानकारी एवं आवश्यकताओं की पहचान के पश्चात् सामूहिक निदान तथा उपचार प्रक्रिया अपनायी जाती है।

(4) कार्यकर्ता समूह के अध्ययन, निदान एवं उपचार में अपने को शांत रूप से सम्मिलित करता है।

(5) विकासात्मक प्रारूप समूह के विचार, अनुभव, मनोभावों एवं व्यवहार में निरन्तरता पर प्रयास करता है ।

(6) कार्यकर्ता सामूहिक सदस्यों, संस्था एवं सामाजिक पर्यावरण की विभिन्न स्थितियों को सामान्य बनाये रखने का प्रयास करता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि विकासात्मक प्रारूप, चिकित्सा प्रारूप, चिन्तन प्रारूप पारम्परिक उपागम को दृढ़ता प्रदान करता है या सामान्य शब्दों में, चिकित्सा प्रारूप एवं चिन्तन प्रारूप एक ऐसी विधा है जो समूह को विकासात्मक अवसरों में ले जाती है।

5.2.4. सामाजिक लक्ष्य प्रारूप

इस प्रारूप की अवधारणा मुख्यतया सामाजिक चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिक परिवर्तन पर आधारित है। इसके अन्तर्गत यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में सामूहिक परिस्थितियों में परिवर्तन आने से स्वतः परिवर्तन आने लगता है। सहभागितापूर्ण कार्य सम्पादित होने से समूह के सदस्यों में उत्तरदायित्व, चेतना एवं सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाओं का उदय होना स्वाभाविक है और यह परिस्थितियाँ व्यक्ति को सामाजिक क्रिया हेतु प्रभावित करती हैं। सामूहिक सहभागिता एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित क्रिया से व्यक्ति में सामाजिक शक्ति स्वशक्ति, सामूहिक भावना का उदय होता है। जोकि लक्ष्य प्राप्ति को और सुगम बना देता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामूहिक समाज कार्य के विभिन्न प्रारूपों पर एक निबन्ध लिखिए ?
2. सामूहिक समाज कार्य के किन्हीं दो प्रारूपों का विस्तार पूर्वक तितरण दीजिए ?
3. चिकित्सा तथा चिन्तन प्रारूप के मध्य अन्तर बताइए ?

5.3 विभिन्न स्तरों पर सामूहिक समाज कार्यकर्ता की भूमिका

सामूहिक समाज कार्य, समाज कार्य की एक ऐसी विधा है जिसमें व्यक्ति विशेष को सेवायें न देकर समूह की सहायता की जाती है। इस विधा में प्रत्येक सदस्य कार्यकर्ता के कार्यों का केन्द्र बिन्दु होता है, अर्थात् समूह के प्रत्येक सदस्य पर कार्यकर्ता की नजर रहती है। इस प्रक्रिया में समूह की आवश्यकताओं की पहचान से लेकर कार्यक्रम कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन में कार्यकर्ता एक धुरी के समान कार्य करता है।

स्पष्ट है, कि समूह समाज कार्य में कार्यकर्ता अपनी बातों को समूह पर नहीं थोपता वरन समूह की स्वीकृतोपरान्त अपना निर्देशन देता है। सहायक के रूप में कार्यकर्ता समूह के मध्य अन्तर्दृष्टि को उकसाने वाली प्रक्रियाओं पर बल देता है साथ ही साथ सहभागिता हेतु समय–समय पर आवश्यक दिशा निर्देश देता है। समूह समाज कार्यकर्ता जिन विभिन्न स्तरों पर कार्य करता है, वे हैं:–

5.3.1 शैक्षिक क्षेत्र में सामूहिक समाज कार्यकर्ता

शिक्षा के क्षेत्र में, चाहे वह प्राथमिक शिक्षा हो या उच्च शिक्षा। कार्यकर्ता अपने अनुभव एवं निपुणता के आधार पर शैक्षिक गतिविधियों में समूह समाज कार्य प्रणाली का व्यवस्थित रूप से प्रयोग करता है। स्वास्थ्य शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, पर्यावरणीय शिक्षा इत्यादि के सन्दर्भ में समाज कार्य विधियों एवं प्रक्रियाओं का प्रयोग कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। कार्यकर्ता द्वारा दी जाने वाली सेवायें हैं :–

(1) कार्यकर्ता व्यावसायिक ज्ञान एवं निपुणताओं के द्वारा वैज्ञानिक सोंच के साथ सेवार्थी की समस्याओं का समाधान करता है, चूँकि उसके लिए आवश्यक है कि उसमें पक्षपात न आने पाये इस हेतु वह समूह के क्रियाकलापों में भाग नहीं लेता वरन् उसे निर्देशित करता है।

(2) शैक्षिक परिवेश में सुधारात्मक एवं निरोधात्मक कार्यों पर बल देते हुए विकासात्मक दृष्टिकोण अपनाता है ।

(3) शैक्षिक वातावरण में आशातीत परिवर्तन लाने हेतु परिवर्तनकारी दशाओं का अन्वेषण करके सामूहिक गतिविधियों को बल देता है।

(4) समूह के लिए आवश्यक एवं अवश्यम्भावी कार्यक्रमों के निर्माण पर बल देता है जिससे सदस्यों की व्यक्तित्व क्षमताओं एवं कुशलताओं में वृद्धि हो सके।

(5) कार्यक्रम की दिशा एवं दशा व्यक्ति उन्मुख रखते हुए सम्प्रेरणा एवं प्रत्यक्षीकरण की स्थितियों का बोध कराता है।

(6) पाठ्यक्रम एवं विद्यावली परिवेश में आवश्यकतानुरूप परिवर्तन हेतु विद्यालयी प्रबन्धतंत्र को उससे भिज्ञ कराता है।

(7) व्यक्तित्व विकास के समुचित अवसरों को उपलब्ध कराते हुए समूह की भावनाओं एवं इच्छाओं का पूर्ण ध्यान रखता है।

(8) आवश्यकतानुरूप पर्यावरणीय दशाओं में परिवर्तन लाने, समूह के मध्य घनिष्ठता (Intimacy) बनाये रखने, सहभागिता हेतु प्रोत्साहित करने, चेतना का प्रसार करने, मनोसामाजिक समस्याओं के समाधान करने में कार्यकर्ता प्रत्येक सदस्य की अनुमति पर कार्य करता है।

5.3.2 चिकित्सालय में सामूहिक समाज कार्यकर्ता

जब व्यक्ति शारीरिक रूप से रूग्ण होता है या परिवार, पड़ोस एवं समाज द्वारा उसकी अवहेलना की जाती है तब सामान्यतः उसकी शारीरिक एवं मानसिक संरचना पर इसका प्रभाव पड़ता है और उसे चिकित्सालय जाना पड़ता है। इन समस्याओं का मूल कारण कहीं न कही सेवार्थी की विषय परिस्थितियाँ होती हैं जिनके कारण सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, भावनात्मक इत्यादि समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं।

समूह समाज कार्यकर्ता अपने वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणताओं के द्वारा चिकित्सालय में सेवार्थियों की चिकित्सा में सहायता प्रदान करता है। कार्यकर्ता द्वारा चिकित्सालय परिसर में दी जाने वाली इन सेवाओं से सेवार्थीगण लाभ उठाते हैं क्योंकि कार्यकर्ता का सेवार्थी में दृढ़ विश्वास इस कारण होता है कि व्यावसायिक कार्यकर्ता होने के कारण उसका उत्तरदायित्व सहायता प्रदान करना है। इस हेतु सेवार्थी को पूर्ण रूप से सहमत करने के पश्चात् कार्यकर्ता समूह कार्य प्रक्रिया आरम्भ करता है। चिकित्सालय परिसर में दी जाने वाली कार्यकर्ता द्वारा सहायता इस प्रकार हैः–

(1) बीमारी का सामाजिक उपचार,

(2) स्वास्थ्य शिक्षा,

(3) सुधारात्मक एवं निरोधात्मक क्रियाकलापों पर बल,

(4) सामाजिक सम्बन्धों में स्थायित्व,

(5) चिकित्सकीय समूह के साथ समूह समाज कार्य,

(6) व्यावसायिक एवं नैतिक शिक्षा,

(7) सामूहिक उपचार, एवं

(8) सेवार्थी के अभिभावकों से प्रत्यक्ष वार्तालाप।

समूह कार्यकर्ता सेवार्थी से सम्बन्धित उन समस्त पहलुओं का अध्ययन करता है जिनके कारण समस्या उत्पन्न हुई है और इस सन्दर्भ में सेवार्थी को बताता भी है साथ ही साथ आवश्यक परामर्श देने की प्रक्रिया पूर्ण करता है।

5.3.3 समुदाय में समूह समाज कार्यकर्ता

समुदाय वह है जिसका कोई निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है, नाम होता है, विशिष्टता होती है। अर्थात् बोगार्डस के अनुसार, समुदाय का विचार पड़ोस से आरम्भ होकर सम्पूर्ण विश्व तक पहुँचता है। समूह समाज कार्यकर्ता समुदाय के निहित उद्देश्यों को पूरा करने एवं आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति में अपने व्यावसायिक कौशल द्वारा सहयोग निर्धारित करता है।

समुदाय चूँकि एक ऐसी अवधारणा है जिसमें कार्यकर्ता अपने को स्थापित करने में समय लगा सकता है लेकिन जितना अधिक समय कार्यकर्ता द्वारा सामुदायिक प्रक्रिया को समझने में लगेगा उसके लिए कार्य उतना ही आसान हो जाता है। समुदाय के लोगों की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यकर्ता द्वारा सर्वप्रथम समूह निर्माण करना आवश्यक हो जाता है तत्पश्चात् सामूहिक गतिविधियों को लागू किया जाना उसके लिए सुगम हो जाता है।

समुदाय के साथ कार्यकर्ता द्वारा किये जाने वाले कार्य हैं :–

(1) समूह निर्माण

(2) आवश्यकताओं एवं समस्याओं की पहचान

(3) सदस्यों का सहभागिता स्तर

(4) सदस्यों के मध्य सहयोग एवं संघर्ष की स्थिति

(5) सामूहिक सदस्यों से व्यक्तिगत सम्पर्क

(6) आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों का प्राथमिकता के आधार पर निर्धारण

(7) समूह चर्चा (लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के सम्बन्ध में)

(8) कार्यक्रम नियोजन

(9) नेतृत्व क्षमता का विकास

(10) कार्यक्रम क्रियान्वयन में सहभागिता प्रोत्साहन

(11) कार्यक्रम की आवश्यक क्रिया योजना

(12) समय–समय पर फीड बैंक एवं मूल्यांकन

5.3.4 औद्योगिक संस्थान में कार्यकर्ता

समूह समाज कार्यकर्ता औद्योगिक संस्थानों में मालिक एवं श्रमिकों के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। चूँकि समाज कार्य का प्राथमिक उद्देश्य पीड़ित मानवता के कष्टों की रोकथाम करना है इस हेतु कार्यकर्ता संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों की मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करने में सहायता करता है। संस्थान द्वारा उपलब्ध करायी जा रही सुविधाओं के परिप्रेक्ष्य में कार्यकर्ता अवलोकन करने के उपरान्त कर्मचारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का भी अध्ययन करता है और उनके कल्याणार्थ कार्यों को प्रमुखता देते हुए कार्य करता है। औद्योगिक संस्थान में समूह समाज कार्य प्रक्रिया का शुभारम्भ कार्यकर्ता अपने कौशल के द्वारा अवलोकन करके करता है तत्पश्चात् कार्यकर्ता कर्मचारियों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं की सूची बनाता है और समूह का निर्धारण करके कार्य प्रारम्भ करता है।

कार्यकर्ता द्वारा संस्थान में निपुणता विकास कार्यक्रम, प्रशिक्षण कार्यक्रम, सहभागिता कार्यक्रम इत्यादि का आयोजन किया जाता है जिससे कि कर्मचारियों में जागरूकता और उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन आ सके। कर्मचारियों की अनेकानेक समस्याओं के सम्बन्ध में कार्यकर्ता समाज कार्य की अन्य प्रणालियों यथा–वैयक्तिक समाज कार्य, समाज कार्य शोध, सामाजिक क्रिया इत्यादि का प्रयोग करता है और आवश्यकता पड़ने पर किसी व्यक्ति विशेष की मनो सामाजिक समस्याओं के समाधान में मंत्रणा भी देता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कर सकते हैं कि औद्योगिक संस्थान में कार्यकर्ता सहयोगी, अनुभवी, विशेषज्ञ एवं चिकित्सक (मनोसामाजिक) के रूप में कार्य करता है।

5.4 भारत में सामूहिक कार्य की आवश्यकता

समाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य सामाजिक समायोजन एवं विकास करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से की जाती है। भारत विकास की दिशा में प्रयास कर रहा है जिसके कारण अनेक बाधाएँ उपस्थित हो रही है। परिवर्तन समान रूप से न होने के कारण अव्यवस्था एवं सांवेगिक तनाव की स्थिति प्रतीत होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि हमारी मान्यताएँ, मूल्य–प्रतिमान, रीतिरिवाज पुराने हैं और उनमें परिवर्तन उतनी गति से नहीं आ रहा है जितनी भौतिक जीवन में।

जातिवाद अपने स्थान पर विषम परिस्थितियाँ पैदा किए हुए है। जाति के नाम पर अनेक अवांछनीय कार्य हो रहे हैं। भाषावाद की समस्या अलग हमारी एकता को खतरे में डालने के लिए सजग बनी है। तथापि शिक्षा का प्रसार हो रहा है। परन्तु वास्तविक शिक्षा, जिसकी ग्रामीण जनता को आवश्यकता है, सुलभ नहीं हो पा रही हैं परिवार नियोजन कार्य की आशातीत सफलता प्राप्त न होने का कारण सामूहिक जाग्रति या चेतना के विकास का अभाव होता है। अतः इन पिरस्थितियों में सामाजिक सामूहिक कार्य का उपयोग करना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रभावात्मक सामूहिक कार्य की कुछ विशेषताएँ है :

(1) वार्तालाप में समूह सदस्य स्वतंत्र रूप से भाग लेते हैं। समूह र्प्यावरण सहयोगिक, प्रजातांत्रिक तथा प्रेरणात्मक होता है।
(2) नेतृत्व सभी सदस्य करते हैं तथा यह स्थिर नहीं होता है।
(3) तथ्य, अनुभव, तथा विचारों को समूह के समक्ष रखा जाता है। वह समस्या के निदान तथा विचार को स्पष्ट करता है।
(4) तथ्य, अनुभव, तथा विचारों को समूह के समख रखा जाता है। वह समस्या के निदान तथा विचार को स्पष्ट करता है।
(5) मुख्य बात को उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।
(6) जो शब्द भ्रामक होते हैं उन्हें परिभाषित किया जाता है।
(7) समूह–सदस्य के विचारों को स्पष्ट किया जाता है।
(8) किसी के कथन को तथ्य नहीं माना जाता है जब तक ि कवह उदाहरण नहीं प्रस्तुत करता है।
(9) सारांश तैयार किया जाता है। इत्यादि।

समूहिक निर्णय प्राप्त करने के सुझाव

(1) प्रत्येक सदस्य को सुझाव देने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
(2) जो व्यक्ति सुझावों को नहीं समझता उसे प्रश्न करने का पूरा अधिकार दिया जाय।
(3) नेता को चाहिए कि वह सभी सदस्यों को काम करने के सम्भव तरीकों का ज्ञान करावे जो सुझावों से प्राप्त होते हैं।
(4) अल्पसंख्यकों की राय को महत्व दिया जाना चाहिए। उन्हें मतदान में वरीयता दी जाय।
(5) मूल्यों और ढंगों में संघर्ष को दूर करके एकरूपता लानी चाहिए।
सुझाव

(1) समूह का आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए। सदस्य 30 से अधिक न हों।
(2) भौतिक र्प्यावरण सामूहिक प्रक्रियाओं के लिए आरामदेह हो।
(3) प्रत्येक सदस्य को उसकी रुचि के अनुसार उत्तरदायित्व दिया जाय।
(4) कार्य करने के लिए र्प्याप्त समय दिया जाय। सुझावों के लिए भी समय हो।
(5) व्यक्तिगत क्षमता का अवश्य विकास हो।

समूहिक मूल्यांकन

मूल्यांकन एक निरन्तर होने वाली प्रक्रिया है। निम्नांकित तत्वों का मूल्यांकन अक्सर किया जाता है :–

(1) नेतृत्व का मूल्यांकन।
(2) समूह प्रक्रिया का मूल्यांकन।
(3) सदस्यों का मूल्यांकन।
(4) सामूहिक क्रिया का समूह उद्देश्य के सन्दर्भ में मूल्यांकन।

प्रविधियाँ

(1) मूल्यांकन सत्र।
(2) प्रक्रिया अवलोकन रिपोर्ट।
(3) समूह अभिलेखों को पुनरीक्षित करना।
(4) पोस्ट रेटिंग मीटिंग।

5.5 सार संक्षेप

सामूहिक समाज कार्य की विभिन्न मान्यताओं, कार्यकर्ता की भूमिका एवं समूह के क्रियाकलापों के आधार पर समूह समाज कार्य के प्रारूपों को चार भागों में विभाजित किया गया है। यह प्रारूप समूह के साथ कार्य करने एवं समूह में व्याप्त असन्तुलन को दूर करके एक इच्छित जीवन स्तर पर पहुँचाने में कार्यकर्ता की मदद् करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रारूप ने रणनीतियाँ हैं, जिनको अपनाकर व्यवस्थित ढंग से कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि विकासात्मक प्रारूप, चिकित्सा प्रारूप, चिन्तन प्रारूप पारम्परिक उपागम को दृढ़ता प्रदान करता है या सामान्य शब्दों में, चिकित्सा प्रारूप एवं चिन्तन प्रारूप एक ऐसी विधा है जो समूह को विकासात्मक अवसरों में ले जाती है।

5.6 अभ्यास प्रश्न

1. वर्तमान समय में समाज के विकास मेकं सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं की भूमिका का वर्णन कीजिए?
2. शैक्षणिक संस्थानों में सामूहिक समाज कार्यकर्ता की भूमिका का वर्णन कीजिए?
3. समुदाय को जागरूक बनाने में सामूहिक समाज कार्यकर्ता के विभिन्न कार्यों का

उल्लेख कीजिए?

4. चिकित्सालयों में सामूहिक समाज कार्यकर्ता द्वारा प्रदान किये जाने वाले कार्यो का विवरण दीजिए?

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

Introduction - परिचय
Democratic - जनतन्तंत्रीय
Evaluation - मूल्यांकन
Individualizatioin - वैयक्तीकरण
Planing - नियोजन
Flaxible - लोचदार
Utilization - उपयोग
Progressive - प्रगतिशील
Relation - सम्बन्ध
Clorification - स्पस्टता
Teachnics प्रविधियाँ
Models - प्रारूप

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
2. Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
3. Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
4. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
8. Harford, M.- Groups in Social Work.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य
11. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
12. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य

.

इकाई–6

सामूहिक समाज कार्य : कार्यक्रम नियोजन एवं विकास
Social Group Work:Programme Planning and Development

इकाई की रूपरेखा
उद्देश्य
परिचय
कार्यक्रम नियोजन एवं विकास
कार्यक्रम नियोजन का तरीका
सामूहिक समाज कार्य एवं कार्यकर्ता
सामूहिक समाज कार्य में कुशलता प्राप्ति के उपाय
कार्यकर्ता के गुण एवं विशेषताए
कार्यकर्ता की निपुणता
सामूहिक समाज कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका और कार्य
समूह में नेतृत्व विकास की प्रक्रिया
अच्छे नेतृत्व के गुण
सार संक्षेप
अभ्यास प्रश्न
पारिभाषिक शब्दावली
सन्दर्भ ग्रंथ सूची

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः–

- सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम नियोजन एवं विकास की अवधारणा को समझ सकेगें।
- कार्यक्रम का अर्थ एवं उद्देश्यों की व्याख्या कर सकेगें।
- कार्यक्रम नियोजन का तरीका सीख सकेगें।
- सामूहिक समाज कार्य एवं कार्यकर्ता की आवश्यकता का ज्ञान हो सकेगा ।

- सामूहिक समाज कार्य में कुशलता प्राप्ति के उपायों को सीख सकेगें।
- कार्यकर्ता के गुण एवं विशेषताओं को सीख सकेगें।
- कार्यकर्ता की निपुणतों का ज्ञान हो सकेगा ।
- सामूहिक समाज कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका और कार्यों को जान सकेगें।
- समूह में नेतृत्व विकास की प्रक्रिया को समझ सकेगें।
- अच्छे नेतृत्व के गुणों से अवगत हो सकेगें।

परिचय

समूह संस्था में संयोजित किया जाता है और कार्यकर्ता का पहला कार्य एक कार्यक्रम का निर्माण करना होता है। सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम तभी अधिक उपयोगी हो सकता है जब यह कार्यक्रम व्यक्ति–केन्द्रित होता है और विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करता है। इसे समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं और अभिरूचियों के अनुसार विकसित होना चाहिये। इसे सदस्यों की योग्यताओं के अनुसार सदस्यों द्वारा स्वयं नियोजित किया जाना चाहिये।

इसे कार्यकर्ता को एक सहायक व्यक्ति के रूप में प्रयोग करना चाहिये क्योंकि सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्ता दी जाती है। कार्यक्रम के विकास की प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है और इसमें संस्था, समूह, व्यक्ति और कार्यकर्ता के ज्ञान पर बल दिया जाता है क्योंकि ये सब मिलकर कार्यक्रम सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

ट्रेकर के अनुसार ''साधारण शब्दों में सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम को किसी वस्तु या प्रत्येक वस्तु के अर्थों में लिया जाने लगा है जो समूह अपनी अभिरूचियों की संतुष्टि के लिए करता है।''

कार्यक्रम नियोजन एवं विकास

सामूहिक समाज कार्य के विकास में एक समय ऐसा था जब कार्यक्रम को क्रियाकलापों और घटनाओं से सम्बन्धित किया जाता था। ट्रेकर के अनुसार अब ''कार्यक्रम'' को ''एक अवधारणा माना जाता है– एक ऐसी विस्तृत अवधारणा जिसमें क्रियाकलापों, सम्बन्धों, अन्तःक्रियाओं और वैयक्तिक एवं सामूहिक अनुभवों का एक पूरा रेन्ज सम्मिलित किया जाता है और जिसका नियोजन समझ–बूझ कर किया जाता है और जिन्हें कार्यकर्ता की सहायता से व्यक्तियों और समूहों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यान्वित किया जाता है।''

कार्यक्रम को एक प्रक्रिया माना जाता है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं और समूह के सदस्यों की अभिरूचियों को कार्यकर्ता संस्था के उद्देश्यों एवं कार्यों और सामुदायिक पृष्ठभूमि में समझता है। इन आवश्यकताओं और अभिरूचियों को खेजने और समझने में वह व्यावसायिक प्रणालियों, विधियों और अपनी निपुणताओं का प्रयोग करता है। इस प्रयोग में संस्था के पदार्थ साज–सामान और माध्यम सम्मिलित हैं। इन कार्यक्रमों का क्षेत्र सामुदायिक जीवन होती है।

कार्यक्रम विषयवस्तु समूह के तत्वावधान में एक उपकरण है जिसका प्रयोग व्यक्तियों और सम्पूर्ण समूह के अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस दृष्टि से कार्यक्रम व्यक्ति और समूह के विकास का एक माध्यम या उपकरण है और इसे एक विकासात्मक अनुभव होना चाहिए न कि कोई अध्यारोपित वस्तु। इसी प्रकार कार्यक्रम व्यक्ति एवं समूह के विकास का माध्यम है जिसे समूह की मौलिक आवश्यकताओं और अभिरूचियों से ही बनाया जाना चाहिए। समूह द्वारा किया जाने वाला यह क्रियाकलाप कार्यक्रम का एक भाग होता है और उसे कार्यान्वित करने के लिए जो कुछ भी किया जाता है वह उस समूह का उस समय भर का कार्यक्रम कहलाता है।

कार्यक्रम के अंगभूत

कार्यक्रम की व्याख्या में कार्यक्रम के तीन अंगभूतों– विषयवस्तु, क्षेत्र माध्यम एवं कार्यक्रम के सम्पादन की पद्धति का उल्लेख भी आवश्यक है। विषयवस्तु के अधिक भाग में मनोविनोद और अवकाश के समय का प्रयोग आता है। नागरिकों द्वारा समुदाय के मामलों में सहभागिता भी सामूहिक समाज कार्य का महत्वपूर्ण भाग है। कुछ संस्थाएँ घरेलू और पारिवारिक जीवन जिनमें सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों की कई समस्याएँ आती हैं, पर बल देती हैं।

कार्यक्रम के माध्यमों में पार्टी सामाजिक उत्सव, रंगमंच (नाच–गाना) मनोविनोद के कार्यक्रम, आदि, आते हैं। सामूहिक कार्यक्रम की पद्धति में कार्यकर्ता द्वारा समूह के साथ कई प्रकार की क्रियाओं की एक श्रृंखला आती है। कार्यकर्ता समूह को कार्यक्रम सम्बन्धी विषयवस्तु और कार्यक्रम के सम्पादन का माध्यम निर्धारित करने में सहायता देता है।

कार्यक्रम का प्रमुख भाग विचार–विमर्शी है। अतः कार्यकर्ता इस विचार–विमर्श को निर्देशित करके कार्यक्रम के निर्माण में सहायता देता है। यह सामूहिक समाज कार्यकर्ता कार्यक्रम के तीन पक्षों– कार्यक्रम का क्या– विषयवस्तु, कार्यक्रम का कैसे– माध्यम को, कार्यक्रम का क्यों– उद्देश्य, से सम्बन्धित करता हुआ उच्च कोटि की निपुणता का प्रयोग करता है। कार्यक्रम के इस निर्माण में सहायता करता हुआ कार्यकर्ता समूह के सदस्यों की पृष्ठभूमि, दृष्टिकोणों और आकाँक्षाओं का ध्यान रखता है।

विल्सन और राइलैण्ड के अनुसार सामूहिक समाज कार्यकर्ता कार्यक्रम नियोजन और विकास का एक कलाकार होता है। जिसे अपने उपकरणों और सामग्री का पूरा ज्ञान होता है। यह है कार्यक्रम विषयवस्तु की उपयुक्ता, संस्था के उद्देश्य और कार्य, समूह के सदस्यों की विकास सम्बन्धी आवश्यकताएँ एवं अभिरूचियाँ, और किसी विशेष समूह और सम्पूर्ण समुदाय के मूल्य एवं आदर्श। उनके अनुसार कार्यक्रम प्रक्रिया में तीन मूलभूत तत्व होते हैंः (1) सदस्य (2) सामूहिक समाज कार्यकर्ता, और (3) कार्यक्रम विषय–वस्तु। प्रत्येक तत्व के अपने–अपने कई अंगभूत होते हैं। जैसे सदस्य–अपनी अभिरुचियाँ, आवश्यकताएँ, विशेष योग्यताएँ, मूल्य एवं आदर्श और अपने परस्पर संबंध रखते हैं।

कार्यकर्ता– अपना व्यावसायिक ज्ञान एवं निपुणता, अपनी विशेषताएँ, सदस्यों से अपने सम्बन्ध, संस्था के कर्मचारी होने के नाते अपनी भूमिका, और संस्था और सम्पूर्ण समुदाय के मूल्य एवं आदर्श रखता है। कार्यक्रम विषयवस्तु– सदस्यों की आवश्यकताओं और अभिरूचियों को पूरा करने की क्षमता, समूह, समुदाय और समाज के मूल्यों एवं आदर्शों को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

सामूहिक समाज कार्य में समूह के कार्यक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कार्यक्रमों के आधार पर ही समूह की गतिविधियाँ गतिशील रहती हैं, और कार्यक्रमों के नियोजन, संचालन व मूल्यांकन में सदस्य गुँथे रहते हैं। कार्यक्रमों के कार्यान्वयन से सम्बन्धों में दृढ़ता आती है और समूह का प्रत्येक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समूह के नियमों का पालन करता हुआ प्रयत्नशील रहता है।

सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम नियोजन के मूल सिद्धान्तों का तो पालन किया ही जाता है पर साथ ही इसके अन्य सिद्धान्तों का भी पालन किया जाता है। जैसे आत्मनिर्णय का ही सिद्धान्त है। समूह जो करना चाहता है वह स्वंय निश्चित करता है।

कार्यकर्ता समूह के इस कार्य में केवल रास्ता दिखाता है। कार्यकर्ता समूह को कार्यक्रम नियोजन में निम्न प्रकार से मदद् करता है।

समूह को कार्यक्रम नियोजन के लिये प्रेरित करता है। विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की यथोचित समय पर जानकारी देता है। कौन सा कार्यक्रम किस प्रकार से उपयुक्त रहेगा इस निर्णय में समूह के कार्यक्रमों के गुण–दोष बताकर मदद करता है। इससे समूह को हितकारी कार्यक्रमों के चयन व निर्णय में सहायता मिलती है। समूह की आवश्यकताओं के बारे में समूह में चेतना जगाता है।

समूह के सदस्य स्वयं की व समूह की आवश्यकताओं को समझ से और उसके अनुसार कार्यक्रम का नियोजन कर सकें, इसके लिये उनकी मदद करता है। आवश्यकतानुसार कार्यक्रमों के आयोजन में लगने वाले साधनों के चयन में सदस्यों के प्रयासों में सहायता करता है। साधन कहाँ से उपलब्ध हो सकते हैं व किस प्रकार उपलब्ध हो सकते हैं इस प्रयास में भी समूह की सहायता करता है और समूह का ध्यान इंगित करता है, समूह की परिस्थितियों से अवगत कराता है। समूह की स्थितिजन्य कमियों, गुणों एवं शक्तियों से परिचय कराता है।

सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम नियोजन में निम्नलिखित विशेष बातों का ध्यान देना चाहियेः–

1. कार्यक्रम समूह द्वारा नियोजित होना चाहिये। समूह के सदस्यों को मिलकर यह ठहराना चाहिये कि उन्हे क्या कार्यक्रम करना है। निर्णय के लिये समूह चर्चा आवश्यक परिस्थिति होती है।
2. संस्था के नियमों, गुणों साधनों, व सीमाओं का विशेष ध्यान रखते हुए कार्यक्रम नियोजन होना चाहिये इसके लिये कार्यकर्ता को ये चाहिये कि वह समूह को संस्था की सभी विशेषताओं से यथासंभव अवगत कराये और करता रहे।
3. कार्यक्रम निर्णय में सभी सदस्यों की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का भी यथा संभव समावेश होना चाहिये।
4. कार्यक्रमों का स्वरूप समूह के सबसे अधिक समस्याग्रस्त भाग को लाभ पहुँचाने वाले उद्देश्यों को प्राथमिकता देने वाला होना चाहिये।

कार्यकर्ता कार्यक्रम नियोजन में निम्न प्रकार से भी सहायता करता हैः–

1. प्रेक्षण व अवलोकन करके, सुनकर, तथा कार्य करके।
2. विश्लेषण और अभिलेखन।
3. सीमाओं का उपयोग।
   जिसमें तीन प्रकार की सीमायें आती हैं : (क) सामग्री व भौतिक पदार्थ, (ख) साधनों व सुविधाओं द्वारा आरोपित सीमायें और (ग) व्यक्ति के अन्दर अन्तर्निहित सीमायें।
4. घर व समुदाय सम्बन्धी निरीक्षण, परीक्षण और परामर्श करता है।
5. अध्यापन व नेतृत्व करता है।
6. व्यक्तियों को निपुणताएँ प्राप्त करने में सहायता करता है।
7. सदस्यों को नेतृत्व करने में सहायता करता है।
8. विशेषज्ञ का उपयोग करता है। अपने विशेष ज्ञान का समूह कार्य में कार्यक्रमों में नियोजन में उपयोग करता है।

क्योंकिः–

1. समूह की अन्तर्क्रियायें कार्यक्रमों के माध्यम से ही सक्रिय रहती हैं।
2. समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति कार्यक्रमों के द्वारा ही प्राप्त की जाती हैं।
3. कार्यक्रमों के प्रयोजन, नियोजन और संयोजन के लिये निर्णय की प्रक्रिया सामूहिक होती है। अतः समूह का हर सदस्य संगठन के उद्देश्यों से निर्णय के पक्ष या विपक्ष में होता है इस परिस्थिति में किसी सदस्य को अपनी इच्छाओं का सामूहिक इच्छाओं में विलय करना पड़ता है और कुछ सदस्यों को अपनी इच्छाओं का दमन भी करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में सदस्य मिल कर काम करना और रहना सीखते हैं।

कार्यक्रम नियोजन का तरीका

समूह के कार्यक्रम बड़े, छोटे, समयानुसार, लम्बी अवधि के समय काटने के लिये, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये, समस्याओं को दूर करने के लिये, समूह के सदस्यों के विकास के लिये और कई बार समूह कार्य सम्बन्धी संस्थाओं के उद्देश्यों के स्वरूप नियोजित किये जाते हैं।

कार्यक्रम के नियोजन के लिये समूह का मिलना आवश्यक होता है। कार्यकर्ता समूह को समय व स्थान की सूचना देता है और मिलने का संदेश भी।

समूह के सदस्यों के एकजुट हो जाने पर कार्यकर्ता सर्वप्रथम औपचारिक सम्बोधनों, कैसे है ?आदि के या फिर मौसम के बारे में या किसी खास खबर के बारे में बोलकर बातचीत प्रारम्भ करता है। यह तरीका समूह में बातचीत करने का या संचार का सहज वातावरण तैयार करने के लिये अच्छा होता है।

यदि इस औपचारिक कार्यक्रम क्रिया के दौरान किसी सदस्य के व्यवहार में कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया दिखाई पड़ी तो उसके लिये समूह का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करवाना चाहिये ताकि समूह के सदस्य उस कार्यक्रम प्रतिक्रिया को सहजता में बदलने का प्रयास करें। अन्य सदस्यों के इस प्रयास को भी कार्यक्रमों का स्वरूप आ सकता है। जैसे यदि कोई सदस्य उदासीन दिखाई पड़ा, बोलने में हिचक रहा है तो कार्यकर्ता उसे पूछ सकता है कि क्या आपको कोई तकलीफ है?

ऐसा कह कर समूह का ध्यान उस व्यक्ति की ओर आकर्षित करवाता है। सदस्य उत्सुकता दिखाते हैं और यह कह सकते हैं कि हम लोग कोई खेल खेलेगे या फिर चुटकुले कहेंगे जिससे उस उदासीन सदस्य का कष्ट कम हो जायेगा। इस प्रकार खेलने का और चुटकुले कहने का सुझाव सर्वसम्मति से एक समयानुसार कार्यक्रम बन जाता है।

रूपरेखा में निम्नलिखित अवयवों को स्पष्टता से अंकित किया जाता है।

- कार्यक्रम की आवश्यकता।
- कार्यक्रम के उद्देश्य।
- कार्यक्रम का प्रकार व नाम।
- कार्यक्रम के अन्तर्गत होने वाली गतिविधियाँ।
- कार्यक्रम का स्थान।
- कार्यक्रम की तारीख, समय व अवधि।
- कार्यक्रम के संचालनार्थ समितियों का गठन व काम की जिम्मेदारी का निर्णय (कौन–कौन से कार्य करेगा।)

- साधनों की सूची बनाना और साधन इकट्ठा करना।
- व्यवस्था करना।
- अभ्यास करना।
- कार्यक्रम संचालित करना।
- कार्यक्रम के चलते समय आने वाली अड़चनों को दूर करना।
- कार्यक्रम का मूल्यांकन करना।

शिविर

यदि कई लोग एक प्रकार की परिस्थितिजन्य समस्याओं से बाधित हैं तो उनको दूर करने के लिये प्रशिक्षण शिविर व अन्य रोकथाम शिविर का कार्यक्रम किया जा सकता है। जैस युवाओं को रोजगार उपयुक्त बनाने के लिये रोजगार दक्षता शिविर चलाये जा सकते हैं। उसमें उन्हें तरह–तरह के काम सिखाये जा सकते हैं। साथ ही उन्हें रोजगार प्राप्ति के लिये उपयोगी कुशलताओं का प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है। जैसे आवेदन पत्र कैसे लिखना, किसको लिखना, किससे मिलना आदि का ज्ञान।

स्वरोजगार के बारे में भी औपचारिकताओं व रोजगार चलाने के लिये उपयुक्त कार्यकुशलताओं जैसे खर्चे का लेखा–जोखा रखना, ग्राहकों को कैसे आकर्षित करना, किस प्रकार का माल लनाना कीमतें कैसे तय करना आदि के बारे में बताया जा सकता है। इसी प्रकार से स्कूल छोड़े हुये बच्चों के शिविर लगाकर विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा शिक्षा व प्रशिक्षण लेने के लिये प्रेरित किया जा सकता है।

घूमने–फिरने के शिविर

कई संस्थायें जैसे गर्ल गाईड, स्काउट, युवा क्रिश्चियन संस्थायें, आदि बच्चों व युवाओं को पिकनिक आदि ले जाने के कार्यक्रम चलाते हैं। इन कार्यक्रमों द्वारा हवा पानी बदलने से व्यक्ति ताजगी महसूस करता है। समूह भावना विकसित होती है। मिलकर रहने का महत्व मालूम होता है। कम वस्तुओं में जीवनयापन करने की समझ पैदा होती है।

अनजान जगह में समायोजन व अस्तित्व को बनाये रखने में आने वाली अड़चने से साक्षात्कार होता है और उनसे निपट लेने से जोखिम उठाने का बल विकसित होता है जो विकास के लिये अत्यावश्यक होता है। पिकनिक आदि या कैंप में जाने से स्वच्छ हवा भी मिलती है और प्रकृति का आनंद भी उठाया जा सकता है। कई बार घर के झमेलों से दूर चले जाने से व्यक्तित्व को बल मिलता है जिससे वह फिर से उन झमेलों का सामना करने में सक्षम होता है और समायोजन की प्रक्रिया शांतिपूर्ण और सकारात्मक होती है।

शहरी बच्चों को गाँव जंगल व गाँव के बच्चों को शहर दिखाने ले जाने से उनको आनन्द के साथ ज्ञान भी प्राप्त होता है। बच्चे बस में घूमकर खुश होते हैं इससे उनका मनोबल बढ़ता है।

खुले वातावरण में कई बार समाज की रूढ़ियों व नियंत्रित व्यवस्था से हटकर सामान्य व्यवहार करने को मिलता है। इससे तनाव कम होते हैं।

रचनात्मक कार्यक्रम

मिट्टी से खेलना, बालू के टीले का घर बनाना, कागज के एलबम या छोटे–छोटे खिलौने व घर आदि बनाना, लकड़ी काट कर उन्हें आकार देना, माचिस की तीलियों से आकार बनाना, कागज के फूल बनाना, पाककला की वस्तुयें बनाना, बुनना सिलना, ड्राईग (चित्र) आदि सब हस्तकला की गतिविधियाँ हैं। उसमें चटाई बुनना, कागज काटना चिपकाना, टोकरी बनाना पतंग बनाना आदि भी शामिल हो

सकते हैं। चित्र, घर, मानव, आकार आदि बनाने से एक ओर जहाँ कलात्मक कौशल का विकास होता है वहीं भावनाओं को अभिव्यक्ति भी मिलती है।

सामाजिक जीवन की अड़चनों व सम्बन्धों के नकारात्मक पहलुओं को कला के माध्यम से उद्घाटित कर के मन को हल्का किया जा सकता है। बाल निर्देशन केन्द्रों में इस प्रकार की गतिविधियों द्वारा बच्चों की मानसिकता उसकी समस्यायें व अवरोध ग्रंथियों को समझने के लिये उपयोग किया जाता है। चिकित्सा पद्धति में इसका उपयोग भावनाओं के स्पष्टीकरण व कुंठाओं से मुक्ति दिलाने के लिये उपयोग में लाया जाता है।

चर्चा सत्र

- चर्चा करने से व्यक्तियों में आपसी संचार बढ़ता है एक दूसरे से बातचीत करने की क्षमता का विकास होता है।
- अपनी बात दूसरों के सामने रखने का मौका मिलता है जिससे मन तो हल्का होता ही है साथ ही स्वयं को मान सम्मान व सामूहिक स्वीकृति भी मिलती है।
- अपनी गलत धारणायें सुधारने की परिस्थिति प्राप्त होती है।
- ज्ञान मिलता है और ज्ञान बाँटने का मौका भी मिलता है।
- निर्णायक शक्ति का विकास भी होता है।
- कार्यक्रम निर्धारण का मौका मिलता है।
- अपनी घुटन से छुटकारा मिलता है।
- सामूहिकता की भावना बढ़ती है और एक दूसरे की बातें सुनने समझने की भावना भी बढ़ती है।
- चिकित्सकीय चर्चा सत्रों द्वारा मनोशारीरिक रोगों का निदान भी संभव होता है।
- जीवन के प्रति लगाव बढ़ता है और अपनी समस्या कम लगने लगती है।
- यह भी आभास होता है कि समस्या केवल हमें ही नहीं है अन्य लोगों को भी है इससे मनोबल बढ़ता है और समस्या का असर मानसिक तौर पर कम होता है। साथ ही मिलकर समस्या–समाधान के रास्ते निकाले जा सकते हैं और समस्या सुलझाने का प्रयास किया जा सकता है।
- नेतृत्व की शक्ति का आभास व विकास होता है।

नाटक, संगीत या सांस्कृतिक आयोजन

- संगीत से कला व सृजनशक्ति विकसित होती है।
- संगीत से कलात्मक अनुभूति होती है और संगीत गाने वाले को सुनने वालों का ध्यान व उनसे मान भी मिलता है।

भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। दुख की अभिव्यक्ति दुख भरा गाना गाकर की जाती है। और मस्ती का अनुमोदन भी गाना बजाना कर के किया जाता है। नाटक से मनोरंजन होता है, सबको मान मिलता है, सामूहिक क्रियाकलापों का मौका मिलता है। सदस्य मिलकर नाटक करते हैं तो सामंजस्य बढ़ता है। देखने वालों का मनोरंजन होता है। सफल पात्रों के साथ तादात्मीकरण करके लोग सामाजिक क्षेत्रों की असफलताओं से छुटकारा पाने का आनन्द ले सकते हैं। दुखों के कारण बुरे व्यक्ति का हनन

होते देखकर स्वयं के दुश्मनों का हनन होने का सुख पाते हैं। सामाजिक मान्यताओं या समाज परिवर्तन के मुद्दों के प्रसार के लिये नाटकों का उपयोग अच्छा होता है।

नाटक से कला व सृजनशक्ति का विकास तो होता ही है साथ ही समाज के मूल्यों व व्यक्तियों की परिस्थितियों व व्यक्तित्व के बारे में, व्यवहार के बारे में, भूमिकाओं के बारे में ज्ञान प्रबोधन भी होता है। करने वाले का भी और देखने वाले का भी। नाटक करने में कार्यों की कई गतिविधियों का समावेश होता है इसमें ''संगठन लोगों की व्यवस्था, समन्वय, प्रक्षेपण, भावनात्मक प्रक्षेपण, संगठन, आदि का अनुभव होता है जिससे उनमें इन दक्षताओं का विकास होता है। साधन संकलन की दक्षताओं का भी विकास होता है।

इन सभी कार्यक्रम सम्बन्धी बातों का विश्लेषण करने से हमें यह भान होता है कि कार्यक्रमों द्वारा ही समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है इसलिये कार्यक्रमों को समूह कार्य का यंत्र कहा गया है।

कथा कहानी

कथा कहानियाँ कवितायें व पहेलियों आदि के कार्यक्रम बहुत ही रोचक होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इसमें भाग ले सकता है। कथा कहानियों द्वारा भावनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है और साथ ही कहने या लिखने वाले की तरफ लोगो का ध्यान लगा रहता है। इससे कथा या कहानियाँ बताने वाले को सामाजिक मान मिलता है। कथा कहानियों से कलात्मक सृजन शक्ति का विकास होता है। सामाजिक अनुबन्धों का ज्ञान व मान कथा कहानियों द्वारा सहज ढंग से बच्चों एवं बड़ों को भी कराया जा सकता है। जैसे लैला मजनू की कहानी द्वारा लोगों को समाज की अवहेलना कर के प्रेम आदि में न पड़ने की सीख मिलती है और साथ ही प्रेम के पात्रों के तादात्मीयकरण के कारण प्रेम की अभिव्यक्ति भी होती है।

अधिकांश कथा कहानियों अच्छाइयों को उजागर करते हैं और बुराइयों की अन्ततः हार ही बताते हैं इससे सामाजिक मूल्यों का विकास होता है।

पहेलियों द्वारा, कविताओं द्वारा जहाँ एक ओर ज्ञान बढ़ता है साथ ही मनोरंजन भी होता है और सफलता मिलने से मनोबल बढ़ता है और व्यक्तित्व का विकास होता है।

श्रवण शक्ति बढ़ती है। ध्यान शक्ति का भी विकास होता है। काल्पनिक शक्ति भी बढ़ती है। कथा, कहानियों व कविताओं, मुहावरों, पहेलियों को व्यक्ति उनकी रोचकता के कारण याद कर लेते हैं। इससे कथा कहानियाँ जीवन भर उनके मानस को राहत पहुँचाने का सामाजिक समायोजन व व्यक्ति विकास के लिये साधन के रूप में उपयोगी रहती है। संस्कृति का प्रसार भी कथा कहानियों द्वारा होता है। रामायण व महाभारत की कहानियों द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रसार होता है। समूह को जमा करने के लिये कथा कहानियों का सत्र बहुत काम में आता है।

अच्छे कार्यक्रम की कसौटी

सामूहिक समाज कार्य के अच्छे कार्यक्रमों में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए:–

1. कार्यक्रम में समूह के सदस्यों की आवश्यकताओं तथा रूचियों का ध्यान रखा जाना चाहिए।
2. कार्यक्रम बनाने में सदस्यों की भिन्न–भिन्न उम्र, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा आर्थिक स्थिति का ख्याल रखा जाना चाहिए।
3. कार्यक्रम में व्यक्तियों को वे ही अवसर और अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए जिनमें वे स्वेच्छा से भाग लेना स्वीकार करें, क्योंकि रूचि–अरूचि का बहुत महत्व है।
4. कार्यक्रम काफी लचीला और कई प्रकार का होना चाहिए ताकि वह विभिन्न उम्र के और विभिन्न प्रकार की रूचि वाले व्यक्तियों के अनुकूल हो और भाग लेने वालों को उसमें अधिक से अधिक अवसर मिलने की गुंजायश हो।

5. समूह के अनुभव, ज्ञान, क्षमता और तैयारी के अनुसार कार्यक्रम का सिलसिला क्रमिक रूप से सरल से जटिल की ओर होना चाहिए।

सामूहिक समाज कार्य में कुशलता प्राप्ति के उपाय

सामूहिक समाज कार्य को समाज कार्य की एक पद्धति के रूप में कार्यकर्ता द्वारा उपयोग में लाया जाता है। अतः अपेक्षित है कि समूह कार्यकर्ता वृत्तिक समाज कार्य अभ्यास में कुशल एवं गुणी हो जिसके लिये उसका व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है। सामूहिक समाज कार्यकर्ता को कम से कम स्नातकोत्तर स्तर पर दो या तीन वर्षों का व्यावसायिक समाज कार्य प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिये। समूह कार्य करने की प्राथमिक अवधि में कार्यकर्ता को अधिक अनुभव प्राप्त, समूह कार्यक्रम के निरीक्षक के अन्तर्गत कार्य करना चाहिये। कई बार समूह कार्य निरीक्षक के अन्तर्गत कार्य करना चाहिये।

कई बार समूह कार्य की अन्तर्क्रियाओं के बहुदिक होने के कारण नये कार्यकर्ताओं को कठिनाइयों का अनुभव हो सकता है। इसलिये यदि कार्यकर्ता अपने से अधिक अनुभवी कार्यकर्ता को समूह कार्य अभ्यास करते समय देखता है और उसका अवलोकन करता है तो वह अधिक सीख सकता है। यदि स्वयं भी वह अकेले ही समूह कार्य का अभ्यास कर रहा है तो अनुभवी कार्यकर्ता को अवलोकन के लिये बुलाकर बाद में उसके साथ चर्चा द्वारा अपने कार्य का मूल्यांकन करके समूह कार्य में अधिक दक्षता प्राप्त कर सकता है।

इसके अलावा कार्यकर्ता समूह कार्य की रिपोर्ट लिखकर उसके आधार पर अपने पर्यवेक्षक के बारे में मूल्यांकनात्मक चर्चा कर सकता है। ऐसा करने से भी वह अधिक जिम्मेदारी व समझदारी प्राप्त कर सकता है और अपने समूह कार्य के अभ्यास को अधिक प्रभावी और उद्देश्यपूर्ण बना सकता है।

समस्याग्रस्त, समलिंगी, समूहों की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करना कार्यकर्ता के लिये आवश्यक होता है। एक विशेषता के आधार पर बना समूह अपने आप में एक प्रकार के समूह के साथ कार्य कर रहा हो उसके बारे में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करें। विभिन्न प्रकार के समूहों के साथ कार्य करने वाली संस्थायें बीच–बीच में छोटे छोटे अल्पावधि प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाती रहती हैं। इनका लाभ कार्यकर्ता उठा सकते हैं और अलग–अलग प्रकार के समूहों के साथ कार्य करने में सक्षम हो सकते हैं।

संस्थायें अपने उद्देश्यों के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाती हैं। जैसे बालकल्याण संस्था द्वारा एक या दो हफ्ते का बाल व्यवहार विज्ञान का प्रशिक्षण शिविर, युवा कल्याण संस्था द्वारा नेतृत्व विकास प्रशिक्षण शिविर, अस्पताल में टी0बी0 या कैंसर मरीजों के साथ समूह कार्य का प्रशिक्षण शिविर या "मद्यपान करने वाले मरीजों के साथ काम करने के कौशल्य के शिविर आदि।

कार्यकर्ता जिस संस्था में कार्यरत हो उसके तत्वावधान में भी अल्पावधि प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जा सकते हैं। कार्यकर्ता जिन विषयों में कठिनाई अनुभव करता है उन विषयों पर अनुभवी कार्यकर्ताओं के साथ विचार–विमर्श गोष्ठियों का आयोजन भी संस्था द्वारा किया जा सकता है। कार्यकर्ता समूह कार्य के अपने अनुभवों के आधार पर लेख लिख कर भी समूह कार्य अभ्यास के कुछ पक्षों के बारे में अन्तः दृष्टि प्राप्त कर सकता है।

समय–समय पर अपने कार्यों का विचारात्मक मूल्यांकन करने से भी कार्य करने की नयी दिशायें सूझने लगती है।

कार्यकर्ता के गुण एवं विशेषताएँ

कुछ खास प्रकार के गुणों वाले व्यक्ति अच्छे कार्यकर्ता सिद्ध होते हैं। समूह कार्य की भूमिकाओं को बखूबी निभाने में कौशल्य के साथ–साथ व्यक्ति की अपनी विशेषताएँ भी महत्वपूर्ण ठहरती हैं। कार्यकर्ता एक व्यक्ति के नाते एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व वाला होता है उसकी स्वयं की रूचियाँ और कार्य करने की दृष्टिकोण होता है।

सामूहिक समाज कार्य के लिये उपयुक्त कार्यकर्ता के गुण कई बार उसके सामान्य गुणों व व्यक्तित्व के पहलुओं से भिन्न हो सकते हैं। कार्यकर्ता को इस बात का एहसास होना चाहिये कि उसके व्यक्तित्व का कौन सा पक्ष कार्य में अधिक उपयोगी हो सकता है या कौन सा पक्ष समूह के विकास कार्य के लिये हानिकारक ठहर सकता है। सामान्य रूप से बहुत शान्त या सामान्य रूप से बहुत क्रोधी व्यक्ति कायकर्ता बनने लायक नहीं होते हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। क्योंकि सामान्य व्यक्ति की भूमिका में ऊपर लिखे दोनों गुणों का प्रक्षेपण अपने सामान्य सम्बंधियों के सामने धारकों के लिये सामान्य बात होगी।

एक मानव होने के नाते उसे पूरा अधिकार व छूट रहती है कि वह अपने सहज व्यक्तित्व के साथ लोगों के साथ पेश आये। इन गुणों वाले व्यक्ति जब कार्यकर्ता की भूमिका में होते हैं तो इन्हीं गुणों का उपयोग समझदारी से समूह के लिये जो उपयुक्त होता है उस प्रकार से करते हैं समाज कार्य प्रशिक्षण द्वारा इस बात का प्रयास किया जाता है कि कार्यकर्ता अपने सामान्य व्यक्ति के गुणों का ढंग से इस प्रकार से उपयोग करना सीख जायें जिससे कि लाभार्थी की सेवा सम्बन्धी उद्देश्य सिद्ध हो। प्रशिक्षण के दौरान मानव व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान, एवं सहायता करने के अभ्यास द्वारा व्यावसायिक कार्यकर्ता में अपेक्षित गुणों का विकास किया जा सकता है और किया जाता रहा है।

कार्यकर्ता की निपुणता

1. **समूह के साथ भाग लेने में निपुणता।**
   - क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह के प्रति अपनी भूमिका निर्धारित करने, उसकी व्याख्या करने, उसे ग्रहण करने और उसे परिवर्तित करने का निपुणता होनी चाहिये।
   - ख. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह के सदस्यों को सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने, अपने बीच में से नेतृत्व को ढूँढ़ने और अपनी क्रियाओं के विषय में उत्तरदायित्व स्वीकार करने में सहायता देने की निपुणता होनी चाहिये।
2. **समूह की भावनाओं से निपटने में निपुणता**
   - क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह के प्रति अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने की निपुणता होनी चाहिये और उसे प्रत्येक नवीन परिस्थितियों को उच्चकोटि की विषयनिष्ठता, भविष्यात्मकता से अध्ययन करना चाहिये।
   - ख. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह को अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की भावनाओं को व्यक्त करने में सहायता देने की निपुणता होनी चाहिये। कार्यकर्ता में सामूहिक एवं अन्तर्सामूहिक संघर्ष की परिस्थिति का विश्लेषण करने में समूह को सहायता देने की निपुणता होनी चाहिये।
3. **कार्यक्रम के विकास में निपुणता**
   - क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में सामूहिक चिंतन का मार्ग प्रदर्शन करने की निपुणता होनी चाहिये जिससे उनकी अभिरूचियों और आवश्यकताएँ प्रकट हो सकें और समझी जा सकें।

ख. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूहों को ऐसे कार्यक्रमों का विकास करने में सहायता देने की निपुणता होनी चाहिये जिनके माध्यम से समूह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते हों।

4. **उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में निपुणता**

क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह में स्वीकृति प्राप्त करने और समूह से एक सकारात्मक व्यावसायिक आधार पर सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता होनी चाहिये।

ख. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में निपुणता होनी चाहिये कि वह समूह के सदस्यों को एक–दूसरे को स्वीकार करने और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति में समूह के साथ सहयोग करने में सहायता दे सके।

5. **समूह की परिस्थिति का विश्लेषण करने में निपुणता**

क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह के स्तर को जानने उसकी आवश्यकताओं को ज्ञात करने और समूह जितनी जल्दी आगे बढ़ने को तैयार है, निर्धारित करने के लिये समूह के विकास के स्तर को समझने की निपुणता होनी आवश्यक है।

ख. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में इस बात की निुपणता होनी चाहिये कि वह समूह के अपने विचारों को व्यक्त करने, उद्देश्यों का निर्माण करने, लक्ष्यों का स्पष्टीकरण करने और समूह के रूप में अपनी शक्तियों और कमजोरियों को समझने में सहायता कर सके।

6. **संस्था और सामुदायिक साधनों के प्रयोग में निपुणता**

क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में उन विभिन्न सामुदायिक सहायक साधनों का पता लगाने और उनके विषय में समूह को जानकारी कराने की निपुणता होनी चाहिये, जिनका प्रयोग कार्यक्रमों की प्राप्ति के लिये किया जा सकता है।

ख. सामूहिक समाज कार्यकर्ता में समूह के उन सदस्यों को जिनकी आवश्यकतायें समूह के माध्यम से पूरी नहीं हो पाती, विशिष्ट सेवाओं का प्रयोग करने में सहायता देने की निपुणता होनी चाहिये।

7. **मूल्यांकन में निपुणता**

क. सामूहिक समाज कार्यकर्ता द्वारा समूह के साथ कार्य करते समय विकास सम्बन्धी क्रिया के अभिलेखों का प्रयोग और समूह को उन्नति प्राप्त करने में ज्ञान, प्रबोध और सिद्धान्तों के चेतन प्रयोग इस विधि से किया जाना चाहिये जिससे व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार में उचित परिवर्तन आ जायें। फिलिप, ने सामूहिक समाज कार्य से कार्यकर्ता में अपेक्षित निम्नलिखित दक्षताओं का सुझाव दिया है।

1. संस्था के कार्यों के प्रयोग में निपुणता।
2. वर्तमान की वास्तविकता के प्रयोग में निपुणता।
3. भावनाओं के संचारण में निपुणता।
4. सामूहिक सम्बन्धों की उत्तेजना एवं उपयोग में निपुणता।

सामूहिक समाज कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका और कार्य

कार्यकर्ता समूह कार्य के उद्देश्यों की प्राप्ति में समूह की मदद सामूहिक समाज कार्य के सिद्धान्तों एवं प्रणालियों का उपयोग सामाजिक संस्था के तत्वावधान में संस्था की नीतियों का पालन करते हुये करता है। सामूहिक समाज कार्यकर्ता तभी कार्य कर सकता है जब उसे समूह कार्य पद्धति

का अर्थ, उद्देश्यों, प्रणालियों एवं दक्षताओं का ज्ञान हो। समाज कार्य प्रशिक्षण द्वारा उसे इन चीजों का मूल ज्ञान तो होता है किन्तु बदलती परिस्थितियों, बदलते मूल्यों, धारणाओं एवं उनसे प्रभावित प्रणालियों का स्वरूप समाज कार्य व अन्य विषयों के अन्तर्गत हुई खोजों की जानकारी द्वारा अनुमानित किया जा सकता है। अतः कार्यकर्ता का एक मुख्य कार्य होता है कि वह समूह कार्यों सम्बन्धी दिन–प्रतिदिन नये स्थापित तथ्यों से अवगत होने के लिये अध्ययनरत रहे।

समूह की प्रत्येक सदस्य इकाई हर दूसरे पर अन्तर्क्रिया द्वारा प्रभाव डालती है। इन अन्तर्क्रियाओं को उपयुक्त दिशा की ओर रूख करना कार्यकर्ता का कार्य है। यों तो सदस्य आपस में ही एक दूसरे का मार्ग प्रशस्त करते हैं, पर सामान्य परिस्थितियों में स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति, मार्ग प्रदर्शन का मुख्य स्तर पर अनकहा आधार होता है। जब एक सदस्य दूसरे की मदद दोस्ती या स्वीकृति पाने के लिए करता है तो दोनों ही सदस्य लाभान्वित होते हैं। किन्तु जहाँ एक सदस्य दो दोस्तों में से एक की बड़ाई इसलिये करता है ताकि दूसरा पहले से विलग हो जाय तो यह नकारात्मक अन्तः क्रिया होगी क्योंकि इससे न केवल दो दोस्तों के बीच शंका पैदा होगी वरन् लड़ाई लगाने वाले का मन भी कटुता से छुटकारा नही पा सकेगा और समूह में विघटन की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। पहल करने वाले सदस्य को भी अन्य सदस्य शंकित दृष्टि से देखेंगे और उसे स्वीकृत प्राप्त करने में भी कठिनाई होगी।

कई विकास कार्य में लगी संस्थाएँ सामूहिक समाज कार्य के द्वारा इन समस्याओं से निपटने का प्रयास कर रही हैं। जैसे महिला बचत योजना, पंचायती राज प्रशिक्षण शिविर, व्यावसायिक प्रशिक्षण शिविर, उद्योगकर्ता विकास शिविर आदि कार्यक्रमों के संचालन में समूह कार्य का बहुतायत में उपयोग हो रहा है। ऐन्डरसन (1979) का मानना है कि सामाजिक होड़ के विकास का उद्देश्य रखने वाले व्यक्तियों के लिये समूह महत्वपूर्ण साधन सिद्ध होता है। खास कर ऐसे व्यक्तियों के लिये जो निम्नलिखित अनुभवों से गुजर रहे हों अलगाव, निराशा, शोषण, वर्तमान मानवीय, सम्बन्धों के संदर्भ में दूसरों द्वारा न समझा जाना एवं परिवर्तित हो रही ऐसी व्यवस्थाओं में अपर्याप्तता का अनुभव जिन व्यवस्था के वे स्वंय एक भाग हो।'' इस प्रकार की भावनाओं से त्रस्त व्यक्तियों तक पहुँचना और उन्हें उनके कष्टदायी दायरों से बाहर निकाल कर समूह कार्य द्वारा उनका मनोबल बढ़ाना कार्यकर्ता का कार्य होता है, इस प्रकार की भावनाओं से त्रस्त व्यक्ति कई बार इतने निराश रहते है कि उन्हें क्या करना चाहिये यह सूझता नहीं है। कार्यकर्ता ऐसे लोगों की खोज करके उनके पास पहुँचकर उन्हें समूह कार्य द्वारा सहायता पहुँचाने का प्रयत्न करता है ।

अपने अनुभव के माध्यम से कार्यकर्ता का उद्देश्य दूसरे समूहों और विस्तृत समुदाय के साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित करता है जो उत्तरदायी नागरिकता, समुदाय के सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक या अन्य सामाजिक समूहों के बीच परस्पर ग्रहणशक्ति और प्रजातांत्रिक उद्देश्यों की और अपने समाज की निरन्तर प्रगति में एक भागीदारी लाने में योगदान करते हैं।

इस प्रकार के नेतृत्व के पीछे जो पथ–प्रदर्शन का उद्देश्य है वह प्रजातांत्रिक समाज की सामान्य मान्यताओं पर निर्भर है जैसे–प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक अपनी क्षमताओं को प्राप्त करने के अवसर देना, दूसरों की प्रशंसा एवं आदर करना और अपने प्रजातांत्रिक समाज को बनाये रखने और उसमें निरंतर उन्नति लाने के अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को ग्रहण करना।

सामूहिक समाज कार्य अभ्यास के पीछे वैयक्तिक एवं सामूहिक व्यवहार का ज्ञान और सामाजिक स्थितियों एवं सामुदायिक सम्बन्धों का ज्ञान हो जो आधुनिक सामाजिक विज्ञानों पर आधारित है। इस ज्ञान के आधार पर सामूहिक समाज कार्यकर्ता, उस समूह जिसके साथ वह कार्य करता है, को नेतृत्व

की कुशलता का योगदान करता है जो सदस्यों की अपनी पूर्ण क्षमताओं का उपयोग करने और सामाजिक दृष्टि से रचनात्मक सामूहिक क्रियाकलापों का सृजन करने के योग्य बनाता है।

वह दोनों ही कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाकलापों के प्रति और समूह के अंदर सदस्यों के व्यक्तित्व की ओर समूह और उसके आसपास के समुदाय के बीच परस्पर क्रियाओं के प्रति सजग रहता है।

सामूहिक समाज कार्यकर्ता समूह के साथ अपने सम्बन्ध को, कार्यक्रम को एक उपकरण के रूप में समझने के अपने ज्ञान का और वैयक्तिक और सामूहिक प्रक्रिया के विषय में अपने ज्ञान का चेतन रूप से प्रयोग करता है और व्यक्तियों एवं समूहों जिनके साथ वह कार्य करता है, के प्रति और उन विस्तृत सामाजिक मूल्यों, जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है, के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पहचानता है।

विल्सन और राइलैण्ड के अनुसार व्यक्ति समूह में कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठित होते हैं जैसे, (1) सुरक्षा, (2) शिक्षा, (3) अन्वेषण या साहसिक कार्य (4) उपचार, (5) उन्नति (6) परामर्श या सलाह (7) प्रशासन (8) सहयोग (9) एकीकरण (10) नियोजन।

सामूहिक समाज कार्यकर्ता समूह के माध्यम से इनकी पूर्ति के लिए सहायता देता है।

सामूहिक समाज कार्यकर्ता समूह के सदस्यों के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाओं की प्रक्रिया के माध्यम से कार्य करता है। समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य को कई तरीकों से प्रभावित करता है। कार्यकर्ता को इन अन्तर्क्रियाओं की विषयवस्तु को समझना पड़ता है क्योंकि समूह में सदस्यों द्वारा भाग लेने की कई चरम सीमाएँ हो सकती हैं : (सदस्यों द्वारा प्रभावी व्यवहार या भागीदारी या कुछ सदस्यों द्वारा विनिवर्तन की प्रवृत्ति दोनों ही भागीदारी की चरम सीमाएँ हैं जो समूह में भाग लेने का वांछित व्यवहार नहीं है।)

विल्सन और राईलैण्ड ने सामूहिक समाज कार्यकर्ता के कार्यों में निम्न को विशिष्ट कार्य माना है : (1) समूह के साथ बैठक (2) व्यक्तियों के साथ विचार–विमर्श, जिसमें साक्षात्कार विधि का प्रयोग होता है, जैसे–समूह में सदस्य के निबन्धन के समय साक्षात्कार, आकस्मिक साक्षात्कार, नियुक्ति द्वारा साक्षात्कार और सदस्यों के घरों में मुलाकात करना, (3) प्रतिवेदन और अभिलेख लिखना, (4) सामुदायिक कार्यों में संस्था का प्रतिनिधित्व करना,

कार्यकर्ता सामूहिक अन्तः क्रिया की प्रक्रिया में केन्द्र–बिन्दु नहीं होता। यह भूमिका तो समूह के नेता की हो सकती है। कार्यकर्ता तो एक सीमित समय के लिए समूह के साथ कार्य करता है। उसका कार्य समूह के सदस्यों और सम्पूर्ण समूह की आवश्यकताओं को समझना है जिससे वह सीमित समय में अपने व्यवहार को चेतन रूप से नियंत्रित रखता है जिससे वह सदस्यों की व्यक्तिगत और सम्पूर्ण समूह की सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता प्रदान कर सके।

तब कार्यकर्ता को कार्यक्रम सम्बन्धी विषयवस्तु का पूरा ज्ञान होता है, सदस्यों का ज्ञान और उनकी स्वीकृति प्राप्त होती है, और समूह की स्थिति में अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न सम्बन्धों के रचनात्मक प्रयोग करने की कुशलता होती है, तभी वह समूह को निर्धारित सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता दे सकता है।

कार्यकर्ता को सामूहिक जीवन की गति के प्रति की या गतिशील का पूरा ज्ञान होना चहिये क्योंकि समूह एक ऐसा माध्यम होता है जिसके द्वारा
(1) व्यक्ति व्यक्तिगत एवं सामाजिक संतुष्टि और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करते हैं (2) व्यक्तिगत एवं सामाजिक आदर्श बदले जाते हैं, (3) समाज मे नियंत्रण बनाये रखा जाता है, (4) समाज अपने रस्मों, रिवाजों, आदर्शों और मूल्यों को हस्तांतरित करता है।

समूह में नेतृत्व विकास की प्रक्रिया

नेतृत्व समूह का एक प्राकृतिक व आवश्यक तत्व है। नेतृत्व के सहारे ही समूह अपने विकासात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करता है। नेतृत्व का अर्थ व्यक्ति के उस गुण से सम्बंधित होता है जो वह समूह के अन्य सदस्यों को स्वयं आगे बढ़कर रास्ता दिखाने वाला होता है। नेतृत्व शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में होती है। किन्तु किसी में कम और किसी में अधिक दिखाई पड़ती है।

समूह प्रत्येक व्यक्ति की नेतृत्व शक्ति को संचालित करने की योग्यता रखता है। आत्मनिर्णय के लिये समूह कार्य समूह प्रक्रिया द्वारा सदस्यों को प्रेरित करता है। आत्मनिर्णय की प्रक्रिया में व्यक्तिगत नेतृत्व की शक्ति भी संलग्न रहती है। स्वनिर्णय की शक्ति स्वसंचालन प्रेरित करती है और दूसरों पर अवलंबित होने से बचाती है। इस अर्थ में आत्मनिर्णय नेतृत्व शक्ति का अंश होता है।

सामान्यतः नेतृत्व का अर्थ व्यक्ति के उस कार्य या कदम से लिया जाता है जो वह समूह के अन्य सदस्यों के हित के लिये इस अपेक्षा से उठाया है कि अन्य सदस्य उसके साथ उस हितकारी कार्य में सहभागी होंगे और उसका अनुसरण करेंगे। इन अर्थों में नेतृत्व दो तरफा या प्रतिक्रियात्मक होता है। इसमें नेता समूह के अन्य सदस्यों द्वारा प्रदर्शित प्रतिक्रियाओं के आधार पर ही स्वयं को सफल व असफल समझ सकता है। दूसरी ओर अन्य सदस्य भी अपने लिये लाभकारी कार्यों को चाहते हुये भी कर नहीं पाते हैं जब कि उन्हें नेतृत्व का सहारा नहीं मिल जाता है। जब समूह का एक व्यक्ति समूह के सदस्यों को कहता है कि हम एकजुट हो सकते हैं तो सभी सदस्य एकजुट होने का प्रयास करने लगते हैं।

नेता का अनुसरण करने के लिये भी आत्मनिर्णायक शक्ति का उपयोग होता है। कोई व्यक्ति यदि स्वयं में सक्षम है धोखा उठाने को तो वह नेता की राह नहीं देखेगा। उसे जो चाहिये उसके बारे में वह स्वयं अपने आप निर्णय ले लेगा और उसे प्राप्त करने के प्रयास प्रारम्भ कर देगा।

कई समूहों में चर्चा के कार्यक्रम में कुछ देर प्रारम्भ में चुप्पी रहती है। फिर एक व्यक्ति के बोलने पर एक–एक करके सभी बोलने लगते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि एक साथ ही दो तीन लोग बोलते हैं। कई बार एक ही व्यक्ति अपनी बात अधिक जोर देकर बोलता है। इन परिस्थितियों में ''नेतृत्व'', चर्चा प्रारम्भ करने वाले सदस्य में अधिक होगा, ऐसा समझा जा सकता है।

कई बार एक ही समूह में कई बराबरी के नेतृत्ववान व्यक्ति भी हो सकते हैं। इन परिस्थिति में नेतृत्व का संघर्ष भी हो सकता है। न केवल दो या तीन नेतृत्व गुणधारक सदस्यों में बल्कि अन्य सदस्यों में भी। कुछ एक दूसरे को मानेंगे और कुछ इस उलझन में पड़ जायेंगे कि किसको मानें।

अच्छे नेतृत्व के गुण

अच्छा नेता सक्षम कर्ता होता है। समूह उसके लिए काम नहीं करता बल्कि वह समूह के काम में सहायता करता है। वह अन्य लोगों के विचारों का और हर व्यक्ति का आदर करता है। वह व्यक्तियों को अपनी सहायता से परावलंबी नहीं स्वावलंबी बनाता है। समूह भावनाप्रवण होकर नहीं बल्कि बौद्धिक रूप में उससे मार्गदर्शन प्राप्त करता है। यह सब तभी सम्भव है जब कि वह सदा वस्तुनिष्ठ और नमनशील रहे और उसका व्यवहार भावुकतापूर्ण अथवा अधिकार जताने का न होकर लोकतांत्रिक हो और वह समूह को अधिकतम जिम्मेदारी सौंपता हो। उसके व्यक्तित्व का गठन स्वस्थ होना चाहिए और समूह के सदस्यों के प्रति उसका व्यवहार सदा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। उसे समूह की सामाजिक – आर्थिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होना चाहिए।

यह आवश्यक नहीं कि एक ही व्यक्ति हर परिस्थिति में नेतृत्व प्रदान कर सके। एक व्यक्ति खेल के मैदान में अधिक दृढ़ निश्चयी प्रतीत हो सकता है, पर वही व्यक्ति एक मजदूर संघ में दूसरे नेता की

खोज करता है जिसका वह अनुसरण कर सके। जनजाति व्यवस्था में जहाँ प्रत्येक को विकास के मौके स्वयं उपलब्ध कराने पड़ते हैं, नेतृत्व शक्ति एक आवश्यकता होती है। सामूहिक समाज कार्य नेतृत्व प्रोत्साहित करता है।

समूह कार्य द्वारा समूह कार्यकर्ता:–

1. हर व्यक्ति में नेतृत्व की क्षमता अंकुरित करता है।
2. नेतृत्व प्रधान व्यक्तियों को नेतृत्व गुणों के उद्घाटन के मौके प्रदान करता है और
3. समूह के सदस्यों को नेतृत्व के चयन व पालन में मदद करता है।

उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्यकर्ता समूह को:–

(अ) नेतृत्व के विभिन्न पहलुओं नेतृत्व के लक्षण, गुण आवश्यकता एवं नेतृत्व विकसित करने वाले उपायों से अवगत कराता है।

(ब) समूह की अन्तः क्रिया को दिग्दर्शिता करते हुये सदस्यों की नेतृत्व शक्तियों का ध्यान आकर्षित करता है।

(स) सदस्यों को कार्यक्रमों के प्रयोजन, नियोजन व संचालन का उत्तरदायित्व लेने के लिये प्रेरित करता है व उनका मनोबल बनाये रखने में मदद करता है और उन्हें उत्साहित करता रहता है।

(द) कार्यक्रमों में उत्तरदायित्वों के विभाजन की ओर समूह को अग्रसर करता है ताकि प्रत्येक सदस्य कार्य सम्पादन के प्रति उत्तरदायी अनुभव करे और सहयोगी हो।

 (क) संघर्षमय स्थिति से उबरने में समूह की मदद करता है और

 (ख) साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार एवं कार्यों के प्रति स्वयं को उत्तरदायी अनुभव करे, इसके लिये कार्यकर्ता समूह के सभी सदस्यों में नेतृत्व विकास की दृष्टि से व्यक्तिकरण के सिद्धान्त का उपयोग करता है। विकासात्मक सिद्धान्तों द्वारा प्रभावित युग में प्रत्येक व्यक्ति को स्वःनेतृत्व की भावना का आभास होना उसके सुखी समायोजन के लिये आवश्यक है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वःनेतृत्व संचालन में कुछ महत्वपूर्ण तरीकों का उपयोग करता है जो इस प्रकार है:–

1. दूसरों से सम्बन्ध बनाता है।
2. निर्णय लेता है। आत्मनिर्णायक शक्तियों का अनुमान लगाता है और उनका विकास करता है व उपयोग भी करता है।
3. स्वयं की इच्छानुसार कार्य सम्पादित कर लेता है।
4. दूसरों को अपने विचारों से अवगत कराता है और उसकी अच्छाइयों में दूसरों को क्या लाभ है यह बताता है।
5. अपनी शक्तियाँ, सम्बन्ध साधन, दूसरों को देकर उनसे अपने लिये कुछ प्राप्त करता है ।
6. झगड़ों या कठिनाईयों को निबटाता है।
7. कभी–कभी अपनी इच्छाओं या सुझावों को वापस ले लेता है।
8. बाहरी या अन्य समूहों के सम्बन्धी की मदद से समूह विशेष में अपना नेतृत्व सम्पादित करता है।

(9) दबावयुक्त समूहों की रचना का प्रयास करता है।

सार संक्षेप

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम नियोजन एवं विकास का विशेष महत्व है क्योंकि इसके द्वारा सामूहिक समाज कार्य में कार्यक्रम नियोजन एवं विकास की अवधारणा , कार्यक्रम का अर्थ एवं उद्देश्यों की व्याख्या ,कार्यक्रम नियोजन का तरीका, सामूहिक समाज कार्य एवं कार्यकर्ता की आवश्यकता का ज्ञान , सामूहिक समाज कार्य में कुशलता प्राप्ति के उपाय, कार्यकर्ता के गुण एवं विशेषताओं को सीख ,कार्यकर्ता की निपुणतों का ज्ञान ,सामूहिक समाज कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका और कार्यों, समूह में नेतृत्व विकास की प्रक्रिया की व्याख्या का ज्ञान प्राप्त हुआ।

अभ्यास प्रश्न

1. सामूहिक समाज कार्य में नियोजन के क्या तरीके होते हैं ?
2. सामूहिक समाज कार्य के अर्न्तगत लगाए गए शिविरों के रचनात्मक कार्यक्रमों की विवेचना कीजिए ?
3. सामूहिक समाज कार्य में अच्छे कार्यक्रमों की क्या कसौटी निर्धारित की गई हैं ?
4. सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं में कुशलता प्राप्ति के कौन–कौन से उपाय हैं?
5. सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं में क्या निपुणता होनी चाहिए ?

6. समूह में नेतृत्व विकास की क्या प्रक्रिया होती है ?
7. अच्छे नेतृत्व के कौन–कौन से गुण होते हैं ?

8. सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं के क्या मौलिक सिद्धान्त होते हैं?
9. सामूहिक समाज कार्यक्रमों से आप क्या समझते हैं ? इनके उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए?
10. सामूहिक समाज कार्य में किन विशेष बातों का ध्यान रखा जाता है ?
11. सामूहिक समाज कार्य में अच्छे कार्यक्रमों की क्या कसौटी निर्धारित की गई हैं ?
12. सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं में क्या निपुणता होनी चाहिए
13. सामूहिक समाज कार्यक्रमों के क्या उद्देश्य होते हैं ?
14 सामूहिक समाज कार्य में किन विशेष बातों का ध्यान रखा जाता है ?
15. सामूहिक समाज कार्यकर्ताओं की भूमिका का वर्णन कीजिए हैं?

पारिभाषिक शब्दावली

Development - विकास
Group work - समूहकार्य
Aims - लक्ष्य
Personatities - व्यक्तित्व
Essential - जीवनोपयोगी
Importance - महत्व
Adjustment - सामांजस्य
Model - प्रारूप
Intrigrated - एकीकृत

Remedial - परिभाषा
Agency - संस्था
Social worker - सामाजिक कार्यकर्ता

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups.
2.Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
3.Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
4. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
8. Harford, M.- Groups in Social Work.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य
11. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
12. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य
13. फाड़िया, बी0 एल0 : लोक प्रशासन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन।
14.शर्मा, राजेन्द्र कुमारःराजनैतिक समाजशास्त्र,अटलांटिक पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर
15-Merriam,C:Political Power,McGraw Hill,New York 1934
16-Hyman,H:Political Socialisation,Free Press,1959
17-Gouldner,A.(ed.):Studies in Leadership,Harper,New York,1954

इकाई– 7

सामूहिक प्रकियाएं
Social Processes

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 परिचय

7.2 सामूहिक प्रकियाएं
7.4 सामूहिक नियोजन तथा निर्णय
7.4.1 सामूहिक नियोजन के कुछ सिद्धान्त
7.5 ध्रुवीकरण तथा सामूहिक सम्बद्धता
7.6 गतिशीलता
7.7 सार संक्षेप
7.8 अभ्यास प्रश्न
7.9 पारिभाषिक शब्दावली
7.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

7.0 उद्देश्य

- सामूहिक प्रकियाओं को समझ सकेगें।
- सामूहिक समाज कार्य में सामूहिक नियोजन तथा निर्णय की प्रक्रिया समझ सकेगें।
- प्रभावकारी समूह की विशेषताएँ को समझ सकेगें।
- समूह–नियोजन की प्रविधियों की व्याख्या कर सकेगें।
- सामूहिक नियोजन के कुछ सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेगें।
- ध्रुवीकरण तथा सामूहिक सम्बद्धता की प्रक्रिया समझ सकेगें।
- समूह की प्रकृति को समझ सकेगें।
- प्रक्रिया तथा सामाजिक प्रक्रिया के मध्य सम्बन्ध को समझ सकेगें।
- प्रमुख सामूहिक प्रक्रियाओं की व्याख्या कर सकेगें।
- गतिशीलता की अवधारणा को समझ सकेगें।

7.1 परिचय

सामूहिक प्रक्रिया से तात्पर्य वे क्रियाएँ हैं जो समूह में सदैव विद्यमान रहती हैं और सामूहिक अस्तित्व को प्रभावित करती हैं। इन क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा अन्तःक्रिया एवं पर वास्तविकता एवं प्रगति की ओर अग्रसर होते हैं। सभी प्रकार के समूहों में कुछ प्रक्रियाएँ सदैव विद्यमान रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप अन्तःक्रिया संभव होती है।

यह अन्तःक्रिया संगठनात्मक तथा विघटनात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। ऐसा कोई समूह अथवा समाज नहीं है जो पूर्ण संगठित हो। अब यहाँ पर हम प्रक्रिया का अर्थ समझने का प्रयास करेंगे।

7.2 सामूहिक प्रकियाएँ

समाज में व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर तथा आश्रित होता है। पारस्परिक अन्तःक्रिया समूह तथा व्यक्ति के लिए इतनी आवश्यक है कि इसके बिना व्यक्ति को कोई अस्तित्व नहीं है, उसका विनाश हो जायेगा तथा सामूहिक कार्य समाप्त हो जायेगा। समूह तथा व्यक्ति एक दूसरे से विभिन्न तरीकों से संबंधित हैं। सम्पूर्ण समाज विभिन्न प्रकार के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित है।

व्यक्ति और समूह एक दूसरे से स्थिति (Ststus), भूमिका (Role)तथा प्रक्रिया (Process) द्वारा सम्बन्ध स्थापित करते हैं यहाँ पर हमारा तात्पर्य केवल प्रक्रिया के आधार पर सम्बन्ध स्थापन से है। प्रक्रिया शब्द को समाजशास्त्र में सामान्य वैज्ञानिक अर्थ में लिया गया है जिसका तात्पर्य गतिशील कार्य अथवा कार्य की तारतम्यता अथवा पुनरावृत्ति से है।

समाज का सम्पूर्ण कार्य सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा सम्भव होता है। 'सामाजिक प्रक्रिया' दो शब्दों से मिलकर बना है– सामाजिक तथा प्रक्रिया, अर्थात् समाज से सम्बन्धित वे प्रक्रियाएं जिनके द्वारा सामाजिक अन्तःक्रिया संभव होती है। प्रक्रिया का अर्थ है वे क्रियाएं जो सदैव चलती रहती है।

7.2.1 प्रक्रिया का अर्थ

प्रक्रिया का तात्पर्य उन क्रियाओं से है जो सदैव चलती रहती हैं और प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति इनसे प्रभावित होता है। वेब्स्टर्स शब्दकोष के अनुसार प्रक्रिया एक ऐसी घटना है जिसमें समय–समय पर निरन्तर परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए विकास प्रक्रिया या क्रियाओं की तारतम्यता या निश्चित रूप से उद्देश्य प्राप्त करने वाले कार्य।

वैने मैकमिलन (Wayne Mcmillan) ने सामाजिक प्रक्रियां की मौलिक प्रकृति की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि सामाजिक प्रक्रिया या पारस्परिकता प्राप्त करने की घटना तथा पारस्परिक बनने की विशेषता सभी मानव संबंधों में है तथा यह वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज कार्य की कला को व्यवहार में लाया जाता है। विशेषीकरण का कोई भी रूप क्यों न हो, सामाजिक वैयक्तिक कार्य, सामाजिक सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन की आवश्यकता के कार्य सामाजिक प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं।

वैने मैकमिलन के विचार से प्रत्येक सामाजिक प्रकिया में तीन तत्व विद्यमान रहते हैंः–

- व्यक्तिगत व्यवहार,
- सामूहिक सम्बन्ध, और
- अन्तर्समूह सम्बन्ध।

जब हम सामूहिक प्रक्रियाओं के वर्णन का प्रयास करते हैं तो प्रजातांत्रिक शब्द स्वतः आ जाता है। सामूहिक प्रक्रियाएँ यद्यपि प्रजातांत्रिक तथा निरंकुश दोनों स्थितियों में काम करती हैं, परन्तु अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि विकास और उन्नति में प्रजातांत्रिक ढंगों के विषय में कुछ परिचर्चा करनी आवश्यक प्रतीत होती है क्योंकि सामाजिक प्रक्रियाएँ उसी पर अवलम्बित होती हैं जो समूह की उन्नति एवं विकास में योगदान देती हैं।

- प्रजातंत्र का यह प्रथम मौलिक उद्देश्य है कि वह व्यक्ति में स्वयं तथा समूह के सदस्य के रूप में पूर्ण क्षमता का विकास करता है, समूह में खो नहीं जाता और न ही वह अपने समूह के हित के लिए बलिदान करता है। व्यक्ति की विशिष्टता की वृद्धि सहयोगी क्रियाओं द्वारा होती है।
- वर्तमान समय में समुदाय, राष्ट्र एवं विश्व सहयोगिक सामूहिक व्यवहार की प्रविधियों का अभ्यास एवं ज्ञान चाहते हैं। इस प्रकार के प्रयास में सभी व्यक्ति एवं समूह समस्या के समाधान का प्रयास करते हैं।
- शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को समाज में स्थान दिलाना होता है। ऐसा केवल क्रियाओं में भाग लेकर ही सम्भव होता है और प्रजातांत्रिक सामूहिक प्रक्रियाएँ ही इसका आधार है।

- कार्यात्मक सम्बन्धों में सुधार लाकर ही प्रजातांत्रिक जीवन प्रसिद्ध को सन्तोष जनक रूप से ही प्रयास किया जा सकता है।
- व्यक्ति में सामूहिक भावना का विकास तथा अन्तर्निर्भरता प्रजातांत्रिक ढंग पर ही आती है।
- प्रजातांत्रिक सामूहिक प्रक्रियाएँ ही व्यक्ति को उद्देश्य प्राप्त करने का अवसर देती हैं। व्यक्ति समूह द्वारा लक्ष्य प्राप्त करना सीखता है।

7.2.2 समूह की प्रकृति

समाजशास्त्री समूह का विवरण व्यक्तियों के एक कार्य में भाग लेने से देते हैं अर्थात् जब कई व्यक्ति किसी कार्य में एक साथ भाग लेते हैं तो उसे समूह कहते हैं। परन्तु समूह इन व्यक्तियों ककी समस्त विशेषताओं का योग नहीं होता है। बर्ड के विचार से समूह–व्यवहार की सबसे विशिष्ट विशेषताएँ अन्तःक्रिया द्वारा उत्पन्न होती हैं।

लेविन ने अनेक समाजशास्त्रियों के विचारों का समन्वय करके बताया किः

- समूह व्यक्तियों के ऊपर नहीं है,
- यह व्यक्तियों का योग नहीं है,
- यह एक गतिशील पूर्णता है,
- इसमें जो भी विशेषता होती है वह व्यक्तियों के योग से भिन्न होती है।

किसी भी समूह के अस्तित्व के दो मौलिक आधार हैं–

- सदस्यों के व्यवहार में आत्मनिर्भरता,
- सदस्यों का समूह के साथ तादात्मीकरण।

अन्तनिर्भरता समूह के लिए आवश्यक है। सामूहिक सदस्य समूह के साथ अपना सम्बन्ध 'हम भावना' के साथ स्थापित करते हैं। उनमें हम की भावना होती है। व्यक्तियों के एक साथ एकत्र होने से समूह का निर्माण नहीं होता है। व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी सामान्य लक्ष्य या कार्य के लिए समूह का निर्माण करते हैं। समूह व्यक्तियों की अनेकता है परन्तु समूह बहुत नहीं है एक है।

समूह के संगठन, उद्देश्य, लक्ष्य तथा उसकी विशेषताएँ व्यक्तियों के योग से भिन्न होती हैं। बारह व्यक्तियों का समूह केवल बारह व्यक्ति ही नहीं हैं परन्तु एक नया संगठन है। व्यक्ति समूह में जिस प्रकार का व्यवहार करता है वह समूह से पृथक् वैसा व्यवहार नहीं करता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. प्रक्रिया से आपका क्या अभिप्राय है ?
2. समूह की क्या प्रकृति है ?

7.2.3 प्रभावकारी समूह की विशेषताएँ

समूह में आन्तरिक सम्बन्ध, सहयोग तथा अन्तनिर्भरता के कारण उत्पन्न होते हैं जिससे अनेक विशेषताएँ आ जाती हैं। **बाक्सटर तथा कासिडी ने प्रभावात्मक कार्य–समूह की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी हैं :**

- समूह में पारस्परिकता होती है। समूह में लोग एक साथ रहना प्रसंद करते हैं। प्रत्येक अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार योगदान करता है। उस पर कोई विशेष नियंत्रण का प्रश्न ही नहीं उठता।
- सदस्य एक दूसरे पर अविश्वास नहीं रखते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपने लिए तथा समूह के लिए विशेष महत्व होता है। सभी व्यक्ति समूह के मूल्यों से परिचित होते हैं। प्रत्येक व्यतिक्त का सम्बन्ध समान उद्देश्य के लिए होता है। यह समूह के संगठन को दृढ़ करता है।
- समूह सामाजिक नियंत्रण को स्वीकार करता है। बिना किसी दबाव के सदस्य समूह के निर्णय और क्रिया पर विश्वास रखते हैं। यद्यपि निर्णय सदैव एक मत से नहीं होता है परन्तु निर्णय पूर्ण रूप से किसी व्यक्ति से दूर नहीं रहता है। चूँकि निर्णय बिना किसी शक्ति के या दबाव के होता है अतः प्रत्येक व्यक्ति इसमें भाग लेता है। सदस्य ऐसे नियंत्रण से भी बँधे होते हैं, जिन्हें वे स्वयं मिलकर बनाते हैं।
- समूह के सामान्य मूल्य होते हैं। वह प्रत्येक सदस्य को भली प्रकार से जानने का अवसर देता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से सोचने एवं संतोष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त करता है।

सभी समूह उपरिलिखित स्तर पर नहीं पहुँच पाते हैं। यह एक आदर्श है जिसको कि सामूहिक जीवन के लिए पाना आवश्यक होता है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अनेक समूहों का सदस्य होता है। अतः और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार की प्रक्रियाओं का अनुभव करे जिससे समूह एकाकारिता प्राप्त कर सके।

7.2.4 प्रक्रिया तथा सामाजिक प्रक्रिया

समूह शून्य में स्थित नहीं होता। वह कुछ आवश्यकताओं, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के कारण कार्य करता है। अगर समूह क्रियाओं को प्रभावपूर्ण होना है तो प्रक्रियाओं का महत्व और उनका मूल्य आवश्यक हो जाता है। यदि शीघ्रता से लक्ष्य पर पहुँचना है तो प्रक्रियाओं को द्वितीयक महत्व दिया जाता है और उद्देश्य से उन्हें अलग होना पड़ता है। लेकिन उद्देश्यों और साधनों को पूर्ण रूप से अलग नहीं किया जा सकता है। प्रजातांत्रिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रजातांत्रिक साधनों का ही उपयोग में लाना आवश्यक होता है।

व्यक्तियों तथा समूहों की प्रचलित प्रक्रियाओं के प्रति अनेक मनोवृत्तियाँ हैं। कुछ कहते हैं कि मैं लाल फीता की परवाह नही करता, मैं परिणाम चाहता हूँ। इस प्रकार के व्यक्ति एवं समूह इतने अधैर्यवान होते हैं या साधनों और उद्देश्यों में सम्बन्ध का इतना ज्ञान रखते हैं कि वे प्रक्रियाओं पर उचित ध्यान नहीं दे सकते।

कुछ सामूहिक प्रक्रिया को अधिक महत्व देते हैं क्योंकि वे एक निश्चित स्थान से क्रमानुसार आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं। यह एक निरन्तर होनेवाली क्रिया है। उद्देश्य और साधनों में प्रत्येक समय अन्तःक्रिया होती रहती है। साधन उद्देश्य बन जाते हैं और उद्देश्य किसी दूसरे उद्देश्य के लिए साधन बन जाते हैं। इससे प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। साधनों और उद्देश्यों की अन्तःक्रिया की प्रक्रिया तभी प्रभावपूर्ण हो सकती है जब दोनों पर समान रूप से ध्यान दिया जाय।

जिस प्रक्रिया में सुरक्षा अधिक होगी व्यक्ति उसी में रहना पसन्द करता है। प्रक्रियाओं में भाग लेने वाले व्यक्तियों का विकास होना आवश्यक होता है। उनमें आत्मीकरण तथा समूह के साथ रूचियों का विकास अवश्य होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि समूह में कुछ लोग आत्मार्थी होते हैं। उनके स्वभाव में परिवर्तन लाकर दूसरों की सेवा करने की इच्छा जागृत की जाती है तथा वे व्यक्तिगत विकास की भावना से हटकर सामूहिक विकास की भावना की ओर अग्रसर होते हैं।

7.3 सामूहिक प्रक्रिया

सामूहिक प्रक्रिया वे साधन या तरीके हैं जो समूह द्वारा उपयोग में लाए जाते हैं। सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए विचार करना, वार्तालाप करना, नियोजन करना तथा मूल्यांकन करना आदि सामूहिक प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं।

सामूहिक प्रक्रियाओं का उद्देश्य या लक्ष्य समूह उत्पादकता से है जिसका तात्पर्य कुछ ऐसे कार्य करना है जिन्हें एक व्यक्ति द्वारा सम्पन्न करना सम्भव नहीं है।

7.3.1 सामूहिक प्रक्रिया की विशेषताएँ

प्रक्रियाएँ कार्य करने के तरीके हैं, जिनके द्वारा हम किसी कार्य को करते हैं तथा जिनका उपयोग उद्देश्य तक पहुँचने के लिए होता है। सामूहिक प्रक्रियाओं की विशेषताएँ प्रभावात्मक प्रयोग के लिए निम्न प्रकार से वर्णित की जा सकती हैं :–

- **सामूहिक पर्यावरण–** प्रजातान्त्रिक सामूहिक पर्यावरण का तात्पर्य समूह की मौलिक भावनाओं तथा सांवेगिक लाभ से है। इसके अन्तर्गत समूह का जीवन, एक दूसरे के प्रति संवेगों का योग, कार्य तथा संगठन, समूह एक इकाई तथा बाह्म वस्तुओं के प्रति संवेग आते हैं। जब उचित प्रजातान्त्रिक तथा प्रयोगात्मक पर्यावरण, दण्ड स्वरूप, शत्रुतापूर्ण या विरोधी, प्रतिस्पर्धा, निरंकुशात्मक पर्यावरण के स्थान पर होता है तो प्रजातान्त्रिक प्रक्रियाएँ होती हैं।

किसी उद्देश्य की प्राप्ति में समूह कितनी सफलता प्राप्त करता है यह न केवल समूह क्रिया की निपुणता पर बल्कि उस पर्यावरण पर भी निर्भरहोता है जिसको कि समूह उत्पन्न करता है। लेविन तथा उनके साथियों ने एक क्रिया अनुसन्धान का प्रयोग किया। उन्होंने व्यक्तियों की अन्तःक्रिया को निरंकुश, प्रजातांत्रिक तथा यथेष्टाचारिकतात्मक पर्यावरण में अध्ययन किया और परिणामस्वरूप यह पाया कि प्रजातांत्रिक पर्यावरण सामूहिक उत्पादन के लिए अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।

- **प्रत्येक व्यक्ति ऐच्छिक रूप से भाग लेता है–** प्रजातांत्रिक समूह में प्रत्येक सदस्य की अपनी आवाज समूह उद्देंश्यों को निश्चित करने, सोचने, वार्तालाप करने, नियोजित करने, कार्य करने तथा मूल्यांकन करने में बुलन्द करने की स्वतन्त्रता होती है। प्रत्येक सदस्य को भाग लेने का समान अवसर होता है। उसके मत, विचार तथा कार्य का आदर किया है।

- **सभी क्रियाएँ सहयोगिक होती हैं–** लक्ष्यों व साधनों को प्रणाली के विकास में सामान्य समस्या को हल करने के लिए प्रजातांत्रिक सहकारिता पर निर्भर होना महत्वपूर्ण होता है। समूह की शक्ति सहयोग में निहित होती है। व्यक्ति बहुत दिन तक एक साथ काम कर सकते हैं परन्तु आवश्यक नहीं कि उनमें सहयोग की भावना उत्पन्न ही हो।

प्रजातांत्रिक समूह में एकता समूह के लक्ष्यों को निर्धारित तथा स्वीकृत करके प्राप्त की जाती है। उद्देश्यों पर वार्तालाप होता है, योजना बनाई जाती है, निर्णय लिया जाता है और समूह द्वारा क्रिया संचालित की जाती है। प्रत्येक सदस्य कार्य के कुछ भाग को पूरा करने का दायित्व लेता है।

- **सदस्यों में अन्तःक्रिया होती है–** जब सदस्य एक स्थान पर मिलकर समान कार्य करने हेतु प्रयास करते हैं तो उनमें अन्तःक्रिया का होना स्वाभाविक हो जाता है। अन्तःक्रिया सामूहिक प्रक्रियाओं में प्रजातांत्रिक उदेश्य, साधन, निर्देशन क्रियाएँ और मूल्यांकन में सदस्यों के स्वाभाविक भाग लेने से उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में बाह्य शक्ति द्वारा नियंत्रण नहीं हो सकता है।

उद्देश्य समूह द्वारा निश्चित किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के साथ कार्य करता है। प्रत्येक सदस्य अपने दृष्टिकोण को रखने, योजना को प्रस्तुत करने, बिना किसी डर या दबाव के विचार रखने के लिए स्वतंत्र होता है। समूह में प्रत्येक व्यक्ति का आदर होता है।

- **समूह लक्ष्य निर्धारित करता है–** सामूहिक प्रक्रियाओं का मुख्य लक्षण यह है कि समूह में ही उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है। समूह बिना उद्देश्य के नहीं होते हैं। समूह उन्हीं लक्ष्यों पर प्रयास करता है जिनका वह निर्माण करता है तथा अपना समझता है। समूह वही से कार्य करना प्रारम्भ करता है जहाँ पर उसके सदस्य हैं न कि जहाँ पर दूसरे व्यक्ति सोचते हैं कि उन्हें होना चाहिए।

समूह सदस्य जहाँ होते हैं वहीं से क्रिया प्रारम्भ होती है और उसकी गति उतनी ही होती जितनी कि चयलने के लिए तैयार होते हैं। उद्देश्य में परिवर्तन समूह की आवश्यकता के अनुरूप होता है।

- **समूह का प्रत्येक सदस्य परिवर्तनकारी एजेंट होता है**–प्रत्येक सदस्य समूह के दूसरे सदस्यों को प्रभावित करता है। उनकी आवश्यकताओं में परिवर्तन लाने तथा समस्या का

निदान करने हेतु वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। वे क्रिया, मूल्यांकन तथा परिणाम को भी प्रभावित करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार तथा क्रियाओं में परिवर्तन आता रहता है। सामूहिक प्रक्रियाओं में सामाजिक परिवर्तन निहित होता है। सदस्यों की इच्छाओं, विश्वासों, मनोवृत्तियों, ज्ञान तथा निपुणताओं में परिवर्तन आता है। समूह का महत्वपूर्ण सदस्य बनने के लिए प्रत्येक सदस्य को परिवर्तनकारी होना आवश्यक होता है।

- **सामूहिक मनोबल तथा अनुशासन 'हम' भावना पर केन्द्रित होता है–** समूह–मनोबल से तात्पर्य समूह की वह स्थिति जहाँ पर समूह के उद्देश्य एवं लक्ष्य वैयक्तिक उद्देश्यों के साथ एकत्रित एवं स्वीकृत किए जाते है, जहाँ साधनों में, नेतृत्व में, क्रियाओं में सहयोग एवं एकीकरण होता है। सामूहिक अनुशासन से तात्पर्य सदस्यों की अन्तर्प्रवृत्तियों को सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नियंत्रण करने से है। यह स्वयं निर्देशित एवं अनुशासित होता है। लक्ष्य व ज्ञान इसका आधार होता है। **सामूहिक मनोबल तथा अनुशासन में मुख्य रूप से दो कारक होते हैं, ये हैं:–**

1. सांवेगिक सुरक्षा तथा मौलिक मानव आवश्यकताओं की संतुष्टि, जो समूह में आपसी संबंधों से उत्पन्न होती है।

2. 'मैं' भावना से 'हम' भावना का होना। सदस्य स्वार्थ को छोड़कर समूहार्थी हो जाते हैं।

   - **समूह का एक कार्य नेतृत्व करना है–** समूह–प्रक्रियाओं में नेतृत्व किसी बाह्य व्यक्ति का कार्य नहीं है वरन् समूह से ही उत्पन्न होता है। नेता के चुनाव का उत्तरदायित्व समूह के सदस्यों पर होता है। समूह में प्रत्येक व्यक्ति नेता और अनुयायी होता है यदि समूह प्रजातांत्रिक आधार पर कार्य करता है तो प्रत्येक सदस्य को नेतृत्व का कार्य दिया जाता है। सर्वोत्कृष्ट से इसका नेतृत्व नहीं होता है।

   समूह का उद्देश्य नेतृत्व का विकास करना भी होता है। वह प्रत्येक सदस्य का सामूहिक क्रियाओं को सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व बदलता रहता है और इस प्रकार उनमें निपुणता का विकास होता है। नेतृत्व समूह में होता है, समूह पर नहीं होता है।

उपरिलिखित सामूहिक प्रक्रियाओं की विशेषताओं में सहयोगिक क्रिया सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्रजातंत्र में यह सबसे महत्वपूर्ण समस्या के समाधान के लिए तरीका है।

कोरटिस ने सहयोग के 6 स्तर बताए हैं:–

- **दबाव–** प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के साथ कार्य करता है, वह ऐसा करने के लिए बाध्य होता है।
- **समझौता–** व्यक्ति में सहयोग के लिए समझौता उद्देश्य–पूर्ति हेतु दूसरे का शोषण करता है।
- **शोषण–** व्यक्ति अपनी उद्देश्य–पूर्ति हेतु दूसरे का शोषण करता है।

- **सौदेबाजी**– व्यक्ति किसी शर्त पर योगदान करता है।
- **नेतृत्व**– इसमें दूसरे का स्वेच्छा से अनुसरण होता है।
- **प्रजातांत्रिक सहयोग**– इसमें समूह के सदस्य सामान्य लक्ष्य के
- लिए एक साथ कार्य करते हैं।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. प्रभावकारी समूह की क्या विशेषता है ?

2. सामूहिक प्रक्रिया के 6 स्तरों का वर्णन कीजिए ?

7.3.1 सामूहिक क्रियाओं का विश्लेषण

माइल ने सामूहिक क्रियाओं को निम्न प्रकार से विश्लेषित किया है :–

- मस्तिष्क में समरूपता प्राप्त करने के लिए लोगों की मीटिंग।
- वार्तालाप की प्रविधियाँ, जो नवीन तथ्यों, विचारों, विश्वासों, मनोवृत्तियों को उत्पन्न करती हैं। पूर्वाग्रहों को प्रकट करती हैं तथा मनोवृत्ति में परिवर्तन लाती हैं।
- निर्णय लेने तथ सामूहिक नियोजन को उत्पन्न करने की प्रविधियाँ।
- श्रम का विभाजन, जिससे समूह में निहित विशेष योग्यता का उपयोग हो सकता है।
- समूह द्वारा विचारों तथा क्रियाओं का अभिलेखन करना।

सामूहिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि समूह उत्पादकता को प्राप्त करने तथा समस्या को दूर करने के लिए क्या करना चाहता है? यह संकेत प्रविधियों के विकास के लिए आधार प्रदान करता है। समूह को अधिक प्रभावपूर्ण होने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएँ होती हैं:–

- **सामूहिक विचार**

कोई समूह एक ही प्रकार से नहीं सोचता है, लेकिन विचार समूह सदस्यों द्वारा ही उत्पन्न होता है और उनके सम्मिलित विचारों से जो विचार उत्पन्न होता है उसे सामूहिक विचार कहते हैं। ये विचार रचनात्मक होते हैं।

- **सामूहिक वार्तालाप**

समूह में वार्तालाप होना आवश्यक होता है जिससे समूह के सदस्यों के विचारों एवं दृष्टिकोणों को समझा जा सके। वार्तालाप में बहस नहीं होनी चाहिए। इसके द्वारा संघर्ष को दूर किया जाता तथा अन्तरों को समाप्त किया जाता है।

- **सामूहिक नियोजन**

समूह का नियोजन आवश्यक होता है क्योंकि इससे समूह के सदस्यों तथा उद्देश्यों को समझा जाता है और उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाता है। इससे लक्ष्य के साधनों के तरीकों के विषय में सोचना संभव होता है जिससे उद्देश्य की प्राप्ति होती है। समूह का नियोजन तभी संभव होता है जब सदस्य एक सामान्य उद्देश्य पर सहमत होते और सामूहिक प्रयास करते हैं।

- **सामूहिक निर्णय**

क्रिया निर्णय चाहती है। विचार, वार्तालाप तथा नियोजन अनेक मूल्यवान सुझाव प्रस्तुत करते हैं लेकिन क्रिया को प्रारम्भ करने से पहले क्रिया की योजना का चुनाव आवश्य होता है। यह सामूहिक निर्णय कहलाता है।

- **सामूहिक क्रिया**

जब समूह प्रजातांत्रिक आधार पर कार्य करता है और प्रत्येक सदस्य समूह के कार्यों एवं निर्णयों में अधिक से अधिक भाग लेता है तो सामूहिक क्रिया होती है।

- **सामूहिक मूल्यांकन**

मूल्यांकन केवल समूह की उत्पादकता का नहीं बल्कि उन प्रक्रियाओं का होता है जिनके द्वारा समूह अपने उद्देश्य प्राप्त करता है। मूल्यांकन का सम्बन्ध (i) नेतृत्व के मूल्यांकन, (ii)सामूहिक प्रक्रियाओं के मूल्यांकन, (iii) व्यक्ति में परिवर्तन के मूल्यांकन तथा (iv) सामूहिक क्रियाओं के मूल्यांकन, से होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार हम यह कार्य कर सकते हैं? सामूहिक प्रक्रियाओं में कौन–कौन से चरण हैं? हम कहाँ से आरम्भ करते हैं? तथा घटनाओं में क्या तारतम्यता है? सामूहिक प्रक्रियाएँ पूर्ण स्थिति में कार्य करती हैं। प्रत्येक स्थिति, जिसका समूह सामना करना है,भिन्न होती है। अतः कोई एक रास्ता या विधि सामूहिक प्रक्रियाओं की नहीं होती है। प्रकियाएँ समूह की प्रकृति, उद्देश्य, साधनों, बाधाओं तथा लक्ष्यों पर निर्भर होती हैं।

7.3.2 सामूहिक चिन्तन एवं वार्तालाप

सामूहिक चिन्तन का तात्पर्य समूह की कार्य करने की बुद्धि,कुशलता, सामूहिक उद्देश्यों को स्थिर करने तथा उनको प्राप्त करने के लिए प्रयोग किये गये साधनों से होता है। एक बुद्धिमान समूह जब समस्या का सामना करता है तो एक बुद्धिमान व्यक्ति की तरह उसे परिभाषित करता है, सीमाओं का निर्धारण करता है, समस्या का विभाजन करता है, स्पष्ट करता है इत्यादि। अक्सर तीन प्रकार के प्रश्न इसको स्पष्ट करते है– (1)वह क्या है? (समस्या की परिभाषा), हम किस प्रकार उससे निपटते है? कौन क्या करेगा? सामूहिक विचार इन प्रश्नों का उत्तर देता है।

7.3.3 सामूहिक चिन्तन एवं वार्तालाप की प्रविधियाँ

1. प्रत्येक सदस्य को चिन्तन करना चाहिए। सही उत्तर बताकर समय की बचत नहीं करनी चाहिए।

2. सामूहिक वार्तालाप विवाद नहीं होता है। हम तर्क वितर्क नहीं करते हैं। हमारा उद्देश्य व कार्य सच्चाई को प्राप्त करना है। हम सहयोग से ऐसा नहीं करते हैं। हमारा चिन्तन रचनात्मक होता है।
3. अपने आप पूछो या विचार करो कि कौन सा विचार, अनुभव तथा अन्तर मौलिक और मूल्यवान है।
4. संक्षिप्त कथन ही होना चाहिए, भाषण की आवश्यकता नहीं होती है।
5. कोई ऐसा वाक्य नहीं कहना चाहिए जो स्वयं को स्पष्ट न हो। कभी–कभी लोग कुछ शब्द प्रयोग करते हैं और आशा करते हैं कि सभी उन्हें जानते हैं।
6. दूसरों को बोलने का समय देना चाहिए।
7. वार्तालाप में अल्पसंख्यक लोगों का भी पूर्ण प्रतिनिधित्व हो।
8. अगर कोई बात समझ में नहीं आती है या जिसको स्वीकार नहीं कर सकते हैं उसको स्पष्ट करना चाहिए।
9. बैकल्पिक मनोवृत्ति कभी लाभकारी नहीं होती है।
10. जब कोई वार्तालाप प्रभावात्मक हो तो उदाहरणें से उसको स्पष्ट करना चाहिए।
11. सभी समूह का आदर करते हैं क्योंकि उसका अनुभव व्यक्ति के अकेले के अनुभव से अधिक मूल्यवान होता है।
12. प्रत्येक वार्तालाप के लिए समय निश्चित होना चाहिए।
13. सदस्यों के शब्दों में सारांश तैयार होना चाहिए।

7.4 सामूहिक नियोजन तथा निर्णय

सामूहिक नियोजन इस प्रश्न का उत्तर देता है कि हम किस प्रकार कोई कार्य करेंगे या करते हैं। यह सामूहिक चिन्तन के लिए पथ–प्रदर्शक होता है। सामूहिक नियोजन के अन्तर्गत निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं:

(1) समस्या की स्पष्ट परिभाषा तथा वास्तविक लक्ष्यों का निर्धारण।
(2) लक्ष्य–प्राप्ति के लिए कार्य के पथ का चुनाव करना।
(3) कार्य को समस्या की ओर अग्रसारित करना।

7.4.1 सामूहिक नियोजन के कुछ सिद्धान्त

1. प्रत्येक को भाग लेने का अवसर दिया जाय।
2. समूह का नियोजन सदस्य की आवश्यकताओं और रूचियों के अनुरूप ही हो।
3. नियोजन व्यक्ति को संबंध स्थापित करने का अवसर देता है। अतः व्यक्ति की रूचि का ध्यान रखना चाहिए।
4. नियोजन तथ्यों पर आधारित होना चाहिए।
5. निरन्तर मूल्यांकन तथा नियोजन से अच्छी योजनाएँ उभर कर सामने आनी चाहिए।
6. नियोजन लचीला होना चाहिए।
7. इसमें सामूहिक नियंत्रण अवश्य हो।
8. नियोजन में उन उपलब्ध साधनों का उपयोग होना चाहिए जो समस्या के लिए उपयुक्त हों।
9. नियोजन के लिए अभिलेख आवश्यक होता है।

10. नियोजन में शक्ति का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

7.4.2 समूह–नियोजन की प्रविधियाँ

1. समूह समस्या की परिभाषा करता है और लक्ष्य निर्धारित करता है।
2. समस्या का विश्लेषण असन्तोष को खोजने, कारणों में सम्बन्धों को जानने, तारतम्यता को समझने एवं सम्पूर्ण का महत्व समझने के लिए किया जाता है।
3. समूह निर्धारित करता है कि क्या मूल्य का स्तर चुने हुए क्रियात्मक पथ को नियन्त्रित कर सकता है।
4. समूह समस्या से सम्बन्धित आँकड़े तैयार करता है।
5. आँकड़ों का वर्गीकरण करता है जिससे वह मूल्य–स्तर निर्धारित कर सके तथा समस्या को परिभाषित कर सके।
6. कार्य के मार्ग का निर्धारण करता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामूहिक क्रियाओं का विश्लेषण कीजिए ?
2. सामाजिक नियोजन से आपका क्या अभिप्राय है?
3. सामूहिक नियोजन के कुछ सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ?

सामूहिक निर्णय

कार्य करने के मार्ग के निर्धारण के उपरान्त विशेष क्रियाओं का निर्धारण आवश्यक होता है। यह सामूहिक निर्णय को प्रेरणा देता है। सामूहिक निर्णय आवश्यक होता है क्योंकि :–

1. दबाव–निर्णय से समूह–निर्णय अधिक लाभकारी होता है।
2. सामूहिक निर्णय में निपुणताओं का विकास निश्चित समय पर होता है।
3. बिना सामूहिक निर्णय के समूह–सदस्य भाग नहीं ले सकते हैं।
4. जब सदस्य निर्णय में भाग लेते हैं तो अपना निर्णय समझकर कार्य करते हैं।
5. सामूहिक निर्णय व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देता है।
6. सामूहिक निर्णय द्वारा व्यक्ति की विचार–पद्धति तथा सांस्कृतिक आदतों में परिवर्तन आसानी से लाया जा सकता है।

सामूहिक क्रिया

1. प्रभावात्मक सामूहिक क्रिया समूह के एकमत होने पर आधारित होती है। वह उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न होती है जो इसमें भाग ले रहे हैं।
2. यह समूह–सदस्यों का उत्तरदायित्व है कि वह समूह–निर्णय पर कार्य करें।
3. प्रभावात्मक समूह समूह–बीमारियों को, जैसे निर्णय पर पहुँचने की कमी या अयोग्यता, व्यक्तियों की क्षमताओं के प्रयोग में असफलता, स्रोतों को प्रयोग में लाने की अक्षमता तथा मूल्यांकन में असमर्थता को सहन नहीं कर सकता है।
4. सामूहिक निर्णय तथा सामूहिक क्रिया दोनों संबंधित हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है।

5. प्रजातांत्रिक समूह में व्यक्तियों के व्यवहार तथा क्रियाओं में परिवर्तन आसानी से आ सकता है। अतः प्रजातांत्रिक सामूहिक क्रिया को प्राप्त करने के लिए सामूहिक प्रक्रिया में परिवर्तन लाकर प्रजातांत्रिक सामूहिक क्रियाओं का उपयोग करना चाहिए।

प्रमुख सामूहिक प्रक्रियाएँ

जब तक व्यक्तियों में सामूहिकता तथा सम्मिलित होने की भावना नहीं होगी तब तक कोई भी सभ्यता कायम नहीं हो सकती है, यहाँ तक कि जानवरों में भी एक साथ रहने ककी भावना पायी जाती है। चूँकि व्यक्ति समाज पर पूर्णरूपेण निर्भर होता है, अतः समाज उसकी सामूहिक या सामाजिक मूल प्रवृत्तियों को निर्देशित एवं नियंत्रित करता है। सामूहिक अनुभव व्यक्तित्व के विकास कि आधारशिला है। बिना इस अनुभव के वह या तो निम्न स्तर के पशु के समान होगा या मंदबुद्धि तथा असामाजिक होगा।

यद्यपि कला, विज्ञान, संस्कृति एवं संबंधित कारक व्यक्ति के विकास में योगदान करते हैं, परन्तु मुख्य कारक पारस्परिक घनिष्ट संबंध है। ये संबंध ही मूल प्रवृत्तियों (Primitive Impulses) को सामाजिकता प्रदान करते है। जिन विधियों से इन प्रवृत्तियों का समाजीकरण होता है, उन्हें सामाजिक प्रक्रियाएँ कहते हैं। प्रत्येक समूह में अन्तःउत्तेजना (Inter-stimulation), अन्तःसंबंध (Inter-action), अनुगमन (Induction), तीव्रता प्रदान करना (Intensification), प्रभावहीनता (Neutralization), पारस्परिक तादात्म्य (Mutual Identification), ध्रुंवीकरण (Polarity), प्रतिद्वंद्विता (Rivalary), तथा एकीकरण (Integration), प्रक्रियाएँ पायी जाती हैं। यहाँ पर इन प्रक्रियाओं का मुख्य रूप से वर्णन करेंगे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामूहिक निर्णय की क्या आवश्यकता है ?
2. प्रमुख सामूहिक प्रक्रियाओं का नाम लिखिए ?

अन्तः–उत्तेजना

परम्परागत स्कूलों में सामूहिक प्रक्रिया लगभग शून्य सी होती है। अध्यापक अपने शिष्यों को अपने नियंत्रण में रखता है। सामूहिक नियंत्रण का उस पर कोई प्रभाव नही है। कक्षा के विद्यार्थियों में बहुत कम अन्तःक्रिया होती है। परन्तु आधुनिक विद्यालयों में सामूहिक प्रक्रिया पर अधिक जोर दिया जाता है क्योंकि अब यह अनुभव किया जा रहा है कि समस्त मुख्य शिक्षा समूह अनुभव द्वारा ही प्राप्त हो सकती ।

चाहे तथ्यों को सीखना हो, निपुणता ग्रहण करना हो, चरित्र प्रशिक्षण प्राप्त कराना हो या व्यक्तित्व का विकास करना हो, शिक्षात्मक प्रक्रिया सदैव सामाजिक होती है। यह परिवार, कक्षा, वर्ग, गैंग, क्लब या अन्य स्थायी अथवा अस्थायी समूहों से प्राप्त होती हैं। अन्तःशिक्षा को सदैव सामूहिक अनुभव के रूप में होना चाहिए तथा सामूहिक अनुभव शिक्षात्मक होना चाहिए।

बच्चे के विकास के साथ–साथ उस पर समूह का प्रभाव बढ़ता जाता है। नर्सरी उम्र के बच्चे यदा–कदा दूसरों से संबंध रखते हैं। यद्यपि उनका व्यवहार अन्य उपस्थित बच्चों के व्यवहार से प्रभावित होता है।

प्रत्येक बालक अपने व्यवसाय में लगा रहता है लेकिन वहाँ पर उपस्थित सभी बच्चों का व्यवहार एक दूसरे से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन आता है, रूचियों में उत्तेजना होती है तथा कार्य क्षेत्र में बढ़ जाता है। यह व्यवहार या परिवर्तन अन्तः–उत्तेजना का परिचायक होता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि जब बिना सामूहिक क्रियाओं में भाग लिए व्यवहार में परिवर्तन आता है तो उस स्थिति को अन्तः–उत्तेजना कह सकते हैं। समूह में यह प्रक्रिया अक्सर चलती रहती है।

अन्तःक्रिया

सामाजिक अन्तःक्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों में अर्थपूर्ण सम्पर्क की स्थापना होती है और जिसके परिणामस्वरूप उनके व्यवहार में थोड़ा सा परिवर्तन होता है। इलियट तथा मेरिल के अनुसारः–

''सामाजिक अन्तःक्रिया का तात्पर्य उन पारस्परिक प्रभावों से है जिन्हें व्यक्ति तथा समूह समस्याओं के समाधान में और उद्देश्य तक पहुँचने में एक दूसरे के ऊपर डालते हैं।''

समूह में व्यक्ति समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मिलित होता है। अतः वह वही क्रियाएँ करता है जो अन्य सदस्य करते हैं। यह गुण या विशेषता उम्र के साथ–साथ प्राप्त होती है। जैसे जैसे उम्र बढ़ती है पूर्व उम्र के समान स्वतंत्रता प्राप्त होने पर भी अन्तः–क्रियाकलापों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वे दो या तीन या बहुत से बच्चों या व्यक्तियों के साथ कार्य करते हैं। वे विचारों, अमान्य बातों, परिपूरक समाचारों का आदान प्रदान करते हैं। वे सुझावों को रखते हैं। श्रेष्ठ होने के लिए संघर्ष करते हैं तथा एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं।

इस प्रकार सामूहिक गतिशीलता होती रहती है तथा प्रारंभिक उम्र के बच्चों पर होने वाली अन्तः–उत्तेजना, अन्तःक्रिया प्रजातांत्रिक समूहों में अधिक पाई जाती हैं।

अनुगमन

समूह के सदस्यों में अन्तःउत्तेजना सदैव विद्यमान रहती है। समूह सदस्य एक दूसरे को शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक स्तर पर प्रभावित करते हैं जिसके परिणामस्वरूप सांवेगिक संबंध बढ़ जाते हैं तथा अपनेपन की भावना भी बढ़ती है। यह विषेशता सभी प्रकार के समूहों में पायी जाती है। भीड़ के कार्य पूर्णरूपेण अन्तःसंबंध पर आधारित होते हैं। इसको शक्ति मुख्य संवेगों के पारस्परिक तीव्रता प्रदान करने के फलस्वरूप प्राप्त होती है।

जब हम अन्तःउत्तेजनात्मक स्थिति का विश्लेषण करते हैं तो देखते हैं कि जिस प्रकार से व्यक्ति घटना का प्रत्युत्तर करते हैं उसको अनुगमन कह सकते हैं। यह शब्द विद्युत जगत से लिया है जिसमें कि क्वायल अलग–अलग होने पर भी कार्य करने लगते हैं।

अन्तःउत्तेजना तथा अनुगमन केवल मानव व्यवहार की विषेशता नहीं है। ये निम्न कोटि के पशुओं में भी पायी जाता हैं। एस0आर0 स्लावसन ने अपने लेख में लिखा है कि वह एक बार जिन्दा अजायबघर देखने गया। सामूहिक जीवन की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि व्यक्ति दूसरे लोगों के समान अनुभव तथा महसूस करने की क्षमता रखता है और साथ ही यह भी सम्भव है कि वह इन कश्टों से पीड़ित न हो। इस योग्यता एवं क्षमता को पारस्परिक तादात्म्य कहते हैं। यह योग्यता उसे प्रारम्भिक पारिवारिक सम्बन्धों द्वारा प्राप्त होती है। वही समूह सबसे लाभप्रद ढंग से कार्य करता है जिसके सदस्यों में पारस्परिक तादात्म्य अधिक होता है। जहाँ पर पारस्परिकता की भावना अधिक होती है वहाँ सकारात्मक तत्व जल्दी ही विस्तृत हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप समाजीकरण की

प्रक्रिया सम्भव होती है। समाजीकरण जिस स्तर का होता है पारस्परिक तादात्म्य भी उसी स्तर का होता है।

आत्मसात्

यह दूसरी आवश्यक विशेषता है जो समाजीकरण प्रक्रिया में सहायता करती है तथा सामूहिक घनिष्ठता बढ़ाती है। आत्मस्थापन को कम करके इस स्थिति को प्राप्त किया जाता है। बालक माता–पिता को पहली नियन्त्रक शक्ति के रूप में स्वीकार करता है और परिवार समूह का अंग बनता है। युवक तथा वयस्क प्रारम्भिक सन्तुष्टि का विकल्प समूह में ढूँढ़ते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि समूह में आत्मसात् होने की क्षमता आंशिक रूप से प्रारंभिक पारिवारिक जीवन–अनुभव पर निर्भर होती है। आत्मसात् समूह की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके द्वारा व्यक्ति पूर्णरूपेण एक हो जाते हैं। और उन पर नियन्त्रण लग जाता है। रूचियों में किसी स्थान पर समझौता हो जाता है और उसकी स्वीकृति प्राप्त होती है। यह प्रक्रिया उस समय स्थापित होती है जब सदस्य एक दूसरे को अच्छे तरीके से समझ जाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा समूह सदस्यों में असन्तोष दूर हो जाता है।

आत्मसात् एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा पहले के असमान व्यक्ति या समूह समान हो जाते हैं जैसे रूचियों एवं दृष्टिकोणों में समान हो जाते हैं। समूह की तारतम्यता एवं क्रिया–कलापों की सफलता के लिए यह प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अन्तःक्रिया से आपका क्या अभिप्राय है ?

2. समूह में अनुगमन की क्या आवश्यक्ता है ?

7.5 ध्रुवीकरण तथा सामूहिक सम्बद्धता

समूह–ध्रुवीकरण द्वारा व्यक्ति एक आदर्श, समान उद्देश्य तथा समान विचारों से निबन्धित होते हैं। इस तरह उद्देश्यों एवं रूचियों में समानता तथा एकरूपता उत्पन्न होती है तथा नेतृत्व सम्भव होता है। ध्रुवीकरण तथा अनुगम विद्युत जगत् से लिए गए हैं। यह प्रक्रिया समान रूप से सामाजिक तथा भौतिक उपयोग में लायी जाती है। सभी समूह किसी न किसी ध्रुव या स्थान के आसपास होते हैं। सबसे प्रभावी समूह पोल के पास वाला होता है। इसका कार्य संवेगों को तीव्र करना होता है। समूह–सदस्य किसी एक उद्देश्य, आदर्श या रूचि पर केन्द्रित होते हैं तथा एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते हैं। अनुकूल दशाओं के होने पर अधिक अन्तःउत्तेजना उत्पन्न करते हैं।

ध्रुवीकृत समूह इसीलिए अधिक उत्साही होते तथा समुदाय को अधिक प्रभावित करते हैं। वे सामाजिक क्रिया पर आकस्मिक प्रभाव नहीं डालते। दूसरी ओर चूँकि पूर्णतः ध्रुवीकृत समूह में अन्तःक्रिया कम होती है (जैसे धार्मिक समूहों में) इसलिए व्यक्ति का विकास कम हो पाता है। नेता या सिद्धान्त, जिसका वे अनुसरण करते हैं, प्रेरणा का स्रोत होता है न कि व्यक्ति के विचार तथा दृष्टिकोण।

व्यक्तित्व विकास, गुणों का विकास एवं आध्यात्मिक समृद्धता में वृद्धि वहाँ पर सम्भव नहीं है जहाँ पर व्यक्ति सामंजस्य स्थापित करके नहीं रह सकता। मानव व्यक्तित्व का पर्यावरण मानव ही होता है। वे उत्तेजना प्रदान करते हैं, भावनाओं के स्पष्टीकरण का अवसर देते हैं, और क्रिया के लिए उद्देश्य निर्धारित करते हैं।

7.5.1 सहयोग

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ निश्चित जन्मजात तथा अर्जित आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति के लिए वह दूसरों पर आश्रित होता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना कोई भी प्रसन्न एवं सुखी नहीं रह सकता है। अतः उसे दूसरों की सहायता एवं सहयोग लेना ही होता है। समूह–निर्माण इसी का परिणाम है।

सहयोग का तात्पर्य दो या दो से अधिक लोगों का एक समान उद्देश्य के लिए एक साथ कार्य करना है। इस प्रकार कार्य करने की प्रक्रिया को सहयोग कहा जाता है। सहयोग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति तथा समूह सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के हेतु अपने प्रयत्नों को न्यूनाधिक रूप में व्यवस्थित करते हैं।

सहयोग व्यक्ति के लिए मूल आधार है। वह अपनी तथा अपने अपने उद्देश्यों की रक्षा सहयोग द्वारा करता है। समूह में सहयोग का कम होना या अधिक होना सदस्यों की विशेषताओं पर निर्भर होता है। नेता का कर्तव्य होता है कि वह सहयोग की भावना को अधिक से अधिक सदस्यों में विकसित करे जिससे समूह उद्देश्य प्राप्त करने में सफल हो सके।

कुछ समूह–यंत्र ऐसे हैं जो समूह–निर्माण के प्रतिकूल होते हैं। यद्यपि ऐसे यंत्रों की संख्या हमारे जीवन में अधिक है परन्तु उनमें दो महत्वपूर्ण हैं– प्रतिद्वंद्विता तथा प्रक्षेप, प्रतिद्वंदिता परिवार से प्रारम्भ होती है, जहाँ पर बालक पैतृक प्रेम तथा वात्सल्य प्राप्त करने के लिए अपने भाइयों तथा परिवार के सदस्यों से स्पर्धा करता है। प्रेम के लिए संघर्ष करने का कारण उसकी केवल एक बनने या होने की इच्छा में निहित है। वह केवल अकेले सब कुछ पाना चाहता है। यह भावना परिवार से जागृत होकर अन्य सामाजिक क्षेत्रों में बढ़ जाती है। विज्ञान, कला, व्यापार तथा अन्य क्षेत्रों में समान वृद्धि करने वाले से वह ईर्ष्या रखता है।

सामाजिक अनुभव प्राप्त होने से इस भावना में कमी आती है। आत्म केन्द्रित बालक को यदि काफी समय तक ऐसे स्कूल बोर्डिंग में रखा जाय जहाँ का कार्य सामूहिक जीवन पर निर्भर है तो उसकी प्रवृत्ति में कमी संभव हो सकती है। प्रतिद्वंदिता की प्रवृत्ति तथा केवल स्वयं बनने की इच्छा सामूहिक कार्य में बाधक होती है। समूह में विघटन हो सकता है। अतः नेता का कर्तव्य है कि वह इस तरह का वातावरण उत्पन्न करे जिसमें सभी सदस्य अपनत्व महसूस करें तथा समूह को स्वीकार करें।

व्यक्ति चाहे जिस प्रकार के समूह में हो, उसके व्यवहार की यह विशेषता है कि अपने विचारों तथा दृष्टिकोणों को महत्व देता है तथा अपनी वरीयता चाहता है। चूँकि समूह में विभिन्न व्यक्ति होते हैं अतः उनमें अलग–अलग विचार, दृष्टिकोण तथा प्रभुत्व–स्थापन की भावना होती है। अन्तःसंघर्ष का उत्पन्न होना स्वाभाविक हो जाता है।

नेता वही अच्छा माना जाता है जो समूह–सदस्यों की आवश्यकताओं का समूह में प्रक्षेपण करके संतोष कर लेता है और इस प्रकार अहं संतुष्टि प्राप्त करता है। उसको इस योग्य होना चाहिए कि वह विभिन्न सदस्यों के विचारों तथा आवश्यकताओं में संशोधन कर सके जिसके परिणामस्वरूप सामान्य क्रिया संभव हो सके।

7.5.2 एकीकरण

एकीकरण का तात्पर्य मानसिक स्तर पर सम्पूर्ण स्थिति से सामंजस्य स्थापित करना होता है। स्वीकृत करने की प्रवृत्ति सभी समूहों में पायी जाती है। संघर्ष निवारण करके समझौता होता है और इस समझौते को मान्यता मिलती है। इसी को एकीकरण कहते हैं। यह उस समय संभव होता है जब व्यक्ति पूर्णरूपेण एक दूसरे को समझ लेते हैं। समूह का अभिन्न अंग बनने में यह प्रक्रिया सहायता प्रदान करती है। परन्तु अधिक बलवती संबंध स्थापना की भावना व्यक्तित्व–विकास में बाधक हो सकती है। यह प्रवृत्ति किसी की ऐसी आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकती
जिसके परिणामस्वरूप संकुचित व्यक्तित्व का विकास होता है। इसके साथ ही साथ व्यक्ति किसी एक समूह से भक्ति एवं प्रेम सीमित कर देता है तथा इस प्रकार सामाजिक एवं सास्कृतिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। परन्तु सामान्य विकास के लिए व्यक्ति का अनुभव विस्तृत होना चाहिए जिससे सर्वांगीण ज्ञान का विकास हो सके। आवश्यकता से अधिक घनिष्ठता सामाजिक विकास के लिए बाधक होती है। कार्यकर्ता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसके सदस्य किस प्रकार का एकीकरण रखते हैं। उनमें किसी प्रकार की अन्तर्घृणा नहीं होनी चाहिए तथा अधिक लगाव भी नहीं होना चाहिए कि वह उसके प्रथम अपना अस्तित्व न रख सकें तथा उसका व्यक्तित्व असंतुलित हो जाय।

सामाजिक सामूहिक कार्य की निम्नलिखित प्रमुख मान्यताएँ हैं:

(1) शिक्षात्मक तथा मनोरंजनात्मक क्रियाएँ व्यक्ति तथा समाज के लिए लाभदायक हैं। सामूहिक कार्यकर्ता इसी मान्यता के आधार पर व्यक्ति को उसके मनोरंजनात्मक अनुभव प्रदान करता है।

(2) कार्यकर्ता में अपनी भूमिका निभाने की अंतर्दृष्टि होती है। कार्यकर्ता सदैव समूह के अंतर्गत दो बातों का ध्यान रखता है। एक तरफ वह कार्यक्रम, क्रियाओं तथा उनकी उन्नति देखता है तथा दूसरी तरफ समूह में सामाजिक संबंधों की भूमिका को ध्यान में रखता है। अतः वह अपने संबंधों को भी साथ ही साथ समझता जाता है।

(3) कार्यक्रम सदैव व्यतिक्तयों पर प्रभावात्मक होना चाहिए। यह मान्यता इस बात को निश्चित करती है कि कार्यकर्ता के सम्बन्ध व्यक्ति–केन्द्रित हों न कि क्रिया–केन्द्रित। कार्यकर्ता की दृष्टि से सफलता खेल के प्रकार में नहीं बल्कि सदस्यों के अनुभवों से संबंधित होती है। कार्यक्रम सदैव अनुभव के अनुसार आयोजित किये जाने चाहिए।

(4) सामूहिक कार्य के अंतर्गत कार्यक्रम तथा क्रियाएँ कार्यस्थिति, पारिवारिक सम्बन्ध तथा सामुदायिक मनोवृत्ति पर आधारित हों। कार्यकर्ता को न केवल सांवेगिक, सामाजिक तथा शारीरिक तत्वों या कारकों का ज्ञान हो बल्कि उसे समूह के सदस्यों, कार्यस्थिति, दशा, पारिवारिक सम्बन्ध तथा सामुदायिक मनोवृत्तियों से अवगत होना चाहिए।

(5) सदस्यों के व्यवहार का ज्ञान आवश्यक होता है। यदि कार्यकर्ता व्यक्तियों को शिक्षात्मक तथा मनोरंजनात्मक क्रियाओं द्वारा पूर्ण सफलता एवं उद्देश्य से सहायता करना चाहता है तो उसे उनके व्यवहारों का ज्ञान अवश्य हो। बिना इस ज्ञान के कार्यकर्ता कभी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता है।

(6) कार्यकर्ता व्यावसायिक रूप से कार्य करनसे में सक्षम हो। इसका तात्पर्य यह है कि कार्यकर्ता में आवश्यक योग्यता, निपुणता, ज्ञान, तथा कार्य करने की आंतरिक इच्छा हो और वह व्यावहारिक रूप से अपने उद्देश्यों को कार्यान्वित करने में निपुण हो।

समाज कार्य व्यवसाय व्यक्तियों की आवश्यकता की संतुष्टि पर बल देता है। जब व्यक्ति की आवश्यकताओं का समाधान नहीं होता तो उसका सामाजिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। इस स्थिति में समाज कार्य व्यक्तियों की वैयक्तिक रूप से या समूह के माध्यम से सहायता करता है। व्यक्तिगत या

वैयक्तिक रूप से जो सहायता की जाती है उसकी प्रणाली को सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली और समूह द्वारा सहायता को सामाजिक सामूहिक कार्य–प्रणाली कहते हैं।

7.6 गतिशीलता

प्रत्येक समाज में व्यक्ति की स्थिति तथा कार्य निर्धारित रहते हैं। इनके निर्धारण की व्यवस्था सभी समाजों में समान नहीं होती । कहीं जन्म के आधार पर व्यक्ति की स्थिति व कार्य निश्चित रहते हैं।

भारतीय जाति–व्यवस्था इसका उदाहरण है। इसके विपरीत कुछ समाजों में उपलब्धियों द्वारा व्यक्ति की स्थिति व कार्य निश्चित रहते हैं। नगरीय वर्ग–व्यवस्था इसका उदाहरण है। अतः एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में प्रवेश करना सामाजिक गतिशीलता है।

नगरीय मुक्त समाज में, ग्रामीण बन्द समाज की अपेक्षा गतिशीलता की दर अधिक होती है। गतिशीलता के कारण सामाजिक परिवेश बन जाता है और सामाजिक व्यवहार प्रभावित होता है।

7.6.1 गतिशीलता की मात्रा

लिपसेट तथा बेण्डिक्स ने आधुनिक औद्योगिक समाजों का अध्ययन कर, गतिशीलता के तुलनात्मक आँकड़े पेश किए हैं। इन आँकड़ों के अनुसार मुक्ति समाज में संवृत या बन्द समाज की अपेक्षा अधिक गतिशीलता है। यूरोप की अपेक्षा अमेरिका में व्यक्ति के लिए एक सामाजिक स्थिति से दूसरे सामाजिक स्थिति में प्रवेश के अधिक अवसर हैं।

आधुनिक औद्योगिक समाजों में प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग बढ़ रही है। वह माँग उच्च स्तर के नवयुवकों द्वारा पूरी नहीं हो पाती है। फलस्वरूप निम्न या मध्यम वर्गीय नवयुवक उच्च स्थिति की ओर गतिशीलता है। इसके विपरीत उच्च वर्गीय नवयुवक तकनीकी ज्ञान व शिक्षण के अभाव में निम्न स्थिति की ओर उन्मुख हैं। यह गतिशीलता उस समय अधिक प्रभावशाली हो जाती है, जब विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों में उपलब्धि और प्रस्थिति की प्रेरणा तीव्र होती है। यही कारण है कि पूर्व औद्योगिक समाजों में गतिशीलता की मात्रा कम थी।

7.6.2 गतिशीलता के लाभ

समाज के विकास की दृष्टि से गतिशीलता अत्यन्त लाभदायक है। इसके प्रभावों की चर्चा निम्न प्रकार कर सकते हैं–

(1) औद्योगिक विकास

गतिशीलता द्वारा समाज का औद्योगिक विकास होता है। उद्योगों के लिए विभिन्न स्तरों के कर्मचारी सुलभ होते हैं।

(2) मनोवैज्ञानिक आकांक्षाएँ

गतिशीलता द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन का अवसर मिलता है। स्टफरस तथा राज्य फिंगर द्वारा दिये गए परीक्षणों से पता चला है जिन लोगों के लिए पदोन्नति के अवससर होते हैं, उनमें विद्यमान स्थिति के प्रति कम सन्तोष होता है। वह अपनी आकांक्षाओं को उन्नति के अवसरों से जोड़ लेते हैं।

(3) आत्म–विश्वास में वृद्धि

दौवन तथा एडेल्सन ने गतिशीलता के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन किया और यह पाया कि गतिशीलता से व्यक्ति के आत्म–विश्वास तथा मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

(4) प्रत्याशित समाजीकरण

गतिशीलता द्वारा प्रत्याशित समाजीकरण सम्भव होता है। मर्टनस तथा किट ने सामाजिक प्रभाव का अध्ययन कर यह निष्कर्श निकाला है कि जब निम्न प्रस्थिति का व्यक्ति, उच्च प्रस्थिति के प्रतिमानों का अनुकरण करता है, तो उसको उच्च स्तर पर गतिशील होने की सुविधा मिलती है।

7.6.3 गतिशीलता से हानि

गतिशीलता यद्यपि प्रगति के लिए आवश्यक है, किन्तु यह सदैव लाभदायक नहीं होती। गतिशीलता से व्यक्ति की प्रत्याशाओं का स्तर उच्च हो जाता है। फलस्वरूप वह मौजूदा परिस्थितियों में कुण्ठा का अनुभव करता है। एक स्तर से दूसरे स्तर में गतिशील व्यक्ति उस स्तर के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते। एक स्तर से दूसरे स्तर में प्रविष्ट व्यक्ति प्रायः असंगठित पाये जाते हैं।

7.7 सार संक्षेप

सामूहिक प्रक्रिया का लक्ष्य मानव व्यवहार को प्रजातांत्रिक ढंग में परिवर्तित करना है। यह अधिक समय तक लम्बी चलने वाली प्रक्रिया है। इसमें लक्ष्यों तथा साधनों में गहरा सम्बन्ध होता है। लक्ष्यों के अनुसार साधन होते हैं। अतः लक्ष्यों के गुण कभी भी साधनों के गुण नहीं हो सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि परिवार नियोजन कार्यकर्ता समूह में इसकी स्वीकृति बढ़ाना चाहता है तो जितने साधन होंगे समूह पर उसी के अनुरूप प्रभाव होगा। जैसे–जैसे अधिक लाभकारी साधन होंगे, लक्ष्य की पूर्ति में अधिक सुगमता हो सकेगी।

प्रक्रियाएँ सदैव उद्देश्यों से जुड़ी होती हैं। प्रजातांत्रिक उद्देश्य कभी भी निरंकुश साधनों से प्राप्त नहीं होते हैं और निरंकुश लक्ष्य प्रजातान्त्रिक साधनों से प्राप्त नहीं हो सकते हैं। प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया में साधनों को वहाँ नहीं सीखा जा सकता है जहाँ पर पूर्व निर्णय बिना समूह की राय से निश्चित कर लिया जाता है और न प्रजातान्त्रिक निपुणताओं का विकास सम्भव हो सकता है। लोग प्रक्रिया में तभी विश्वास रखते हैं जब वह समूह को सुरक्षा विकास, उन्नति आदि की गारन्टी देती हैं।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. प्रभावकारी समूह की क्या विशेषताएं हैं?
2. ध्रुवीकरण तथा सामूहिक सम्बद्धता में क्या अर्न्तसम्बन्ध है?
3. सामूहिक प्रक्रिया में सहयोग तथा एकीकरण की महत्ता का वर्णन कीजिए ?
4. सामूहिक प्रक्रिया में गतिशीलता के विभिन्न लाभों एवं हानियों का वर्णंन कीजिए ?
5. सामूहिक प्रकियाओं को समझाइये ?

6. सामूहिक समाज कार्य में सामूहिक नियोजन तथा निर्णय की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिये ?
7. प्रभावकारी समूह की विशेषताएँ को समझाइये ?
8.समूह–नियोजन की प्रविधियों की व्याख्या करें ?

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

Development	- विकास	Group work	- समूहकार्य
Aims	- लक्ष्य	Personatities	- व्यक्तित्व
Essential	- जीवनोपयोगी	Importance	- महत्व
Adjustment	- सामांजस्य	Model	- प्रारूप
Intrigrated	- एकीकृत	Remedial	- परिभाषा
Agency	- संस्था	Social worker	-सामाजिक कार्यकर्ता

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
2.Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
3. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
4. Harford, M.- Groups in Social Work.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
8. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
9. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
10. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य
11. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य

इकाई–8

सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध

Inter-relation between Methods of Social Group Work and Social Work

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 परिचय
8.2 अवधारणा
8.3 सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध

8.4 वैयक्तिक सेवा कार्य
8.5 समस्या का अध्ययन
8.6 समाजिक सामूहिक कार्य
8.7 समुदायिक संगठन
8.8 समाज कल्याण प्रशासन
8.9 प्रजातांत्रिक प्रशासन की प्रविधियाँ
8.10 समाज कार्य अनुसंधान
8.11 समाजिक क्रिया
8.12 सार संक्षेप
8.13 अभ्यास प्रश्न
8.14 पारिभाषिक शब्दावली
8.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप :–

- सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- वैयक्तिक सेवा कार्य व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- समस्या का अध्ययन व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- समाजिक सामूहिक कार्य व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- समुदायिक संगठन व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- समाज कल्याण प्रशासन व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- प्रजातांत्रिक प्रशासन की प्रविधियाँ व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- समाज कार्य अनुसंधान व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।
- समाजिक क्रिया व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझ पायेगें।

8.1 परिचय

आज मनुष्य अनेक समस्याओं से ग्रसित है। ये समस्याएँ एक तो अपने वर्तमान संदर्भ से जुड़ी होती है और दूसरे परिवर्तनों से सम्बन्धित होती हैं। प्रायः दो प्रकार की समस्याएँ भौतिक तथा मनोसामाजिक मनुष्य को अधिक पीड़ित करती हैं। इनमें आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। अतः हर समस्या के निदान व उपचार में दोनों पक्षों पर ध्यान देना आवश्यक होता है।समाज की जटिलता के साथ–साथ समस्याओं में भी जटिलता बड़ी है और इस जटिलता को समझना समाज–कल्याण कार्यकताओं के लिए आवश्यक हो गया है।

यद्यपि यह सत्य है कि भौतिक समस्याओं का निदान एवं उपचार भौतिक साधनों द्वारा तथा मनोसामाजिक समस्याओं का निदान व उपचार भौतिक साधनों द्वारा तथा मनोसामाजिक समस्याओं का निदान व उपचार मनोसामाजिक साधनों द्वारा ही संभव होता है परन्तु आज किसी भी समस्या के निदान व उपचार में सभी पक्षों का ध्यान रखा जाता है क्योंकि मनुष्य पर प्रत्येक कारक का अपना विशेष प्रभाव पड़ता है।

8.2 अवधारणा

मनोसामाजिक समस्याओं के निदान व उपचार के वैज्ञानिक तरीके को समाज कार्य कहते हैं। समाज कार्य मनोसामाजिक समस्या के निदान और समाधान में सेवार्थी को उसकी परिस्थितियों से समंजित करने की चेष्टा करता है तथा परिवर्तन पर भी जोर देता है। प्रायः समाज कार्य दो स्थितियों में व्यक्ति की सहायता करता है।

प्रथम, जब सेवार्थी या व्यक्ति सामान्य प्रतिमानों से सामंजस्य भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक सांवेदिक, सांवेगिक या अन्य कारणों से नहीं कर पाता है और वह समाज के लिए घातक हो जाता है तथा निन्दा का पात्र बन जाता है।

दूसरे, समाज कार्य व्यक्ति की उन्नति एवं विकास के लिए साधन प्रदान करता है जिससे उसमें प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है। सामाजिक परिवर्तनों पर भी वह जोर देता है।

प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार,"समाज कार्य जनतांत्रिक मूल्यों से अभिभूत सामाजिक अभिकरण के माध्यम से सेवार्थी को उसकी भागीदारी के साथ–साथ मनोसामाजिक समस्याओं से मुक्ति दिलाता है और स्वस्थ जीवन से समंजित कर गति प्रदान करने की चेष्टा करता है।"

8.3 सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध

आधुनिक समाज कार्य का तात्पर्य एक प्रकार की व्यावसायिक सेवा है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह की सहायता की जाती है जिससे वह संतोषजनक संबंध स्थापित कर सके और इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुसार जीवन–स्तर को प्राप्त कर सके।समाज कार्य व्यक्ति की सहायता अपनी विशेष प्रणालियों द्वारा करता है। ये 6 प्रणालियाँ या पद्धतियाँ हैं जिनमें से वैयक्तिक सेवा का कार्य, सामाजिक सामूहिक कार्य, सामुदायिक संगठन प्राथमिक हैं और समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक अनुसन्धान, सामाजिक क्रिया द्वितीयक हैं।

व्यक्ति की सहायता प्रत्यक्ष रूप से प्रथम तीन पद्धतियों द्वारा ही की जाती हैं परन्तु इसी कार्य में द्वितीयक पद्धतियों को सहायता ली जाती है। एक व्यक्ति के लिए आवश्यक नहीं कि उसे केवल एक ही पद्धति की आवश्यकता हो। उसके साथ कई या अन्य सभी पद्धतियों का उपयोग आवश्यक हो सकता है। अतः एक स्थिति में सभी पद्धतियां अन्तः–सम्बन्ध रखती हैं।

वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याएँ प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती हैं और वहाँ समाज कार्य की भूमिका हो सकती है। परन्तु समाज कार्य के कुछ विशेष क्षेत्र हैं जिन पर वह प्रमुख रूप से ध्यान देता हैं। ये क्षेत्र हैं : परिवार एवं बाल कल्याण, चिकित्सा एवं मनोचिकित्सा, अपराधी–सुधार प्रशासन, महिला–कल्याण, जनजातीय–कल्याण, श्रम–कल्याण, पिछड़ी जाति एवं वर्ग–कल्याण, शारीरिक वांछित कल्याण, ग्राम्य–कल्याण, युवा–कल्याण, राजकीय कर्मचारी–कल्याण इत्यादि। सामाजिक कार्यकर्ता निम्नलिखित प्रविधियों का उपयोग करके सहायता प्रदान करता है–सम्बन्धी की प्रविधि, सम्बल की प्रविधि, सहभागिता की प्रविधि, साधन–उपयोग की प्रविधि, व्याख्या की प्रविधि, स्पष्टीकरण की प्रविधि, अंशीकरण की प्रविधि, जगतीकरण की प्रविधि, नवज्ञानार्जन की प्रविधि, परिस्थितिपरिवर्तन की प्रविधि, स्थानान्तरण की प्रविधि एवं स्वीकृति की प्रविधि, आदि।

समाज कार्य का उद्देश्य सुगठित समाज की रचना करना तथा व्यक्ति का समाज में इस प्रकार से समायोजन करना है जिससे वह अपना तथा समाज का कल्याण कर सके। अतः जब कार्यता एक व्यक्ति के साथ कर्य करता है तो उसे सामाजिक वैयक्तिक कार्य, जब समूह के माध्यम से व्यक्ति की सहायता करता है तो उसे सामूहिक कार्य और जब सम्पूर्ण समुदाय की सहायता करता है तो उसे

सामुदायिक संगठन कहते हैं। अन्य तीन प्रणालियाँ इन प्रणालियों में सहायता प्रदान करती हैं। यहाँ पर हम इनका सूक्ष्म वर्णन, समझने के उद्देश्य से, करेंगे।

8.4 वैयक्तिक सेवा कार्य

उन्नीसवीं शताब्दी तक व्यक्ति का दुःख व कष्ट उसके कर्मों का फल समझा जाता था तथा विश्वास किया जाता था कि उसे इन दुःखों व कष्टों को भोगना ही पड़ेगा। व्यक्ति द्वारा इन कष्टों व दुःखों को दूर कर पाना सम्भव नहीं है। परन्तु जैसे–जेसे ज्ञान का विकास हुआ, इस विचारधारा में परिवर्तन आया। एडवर्ड डेनिसन, सर चार्ल्स लाथ इत्यादि विद्वानों ने वैयक्तिक सहायता की ओर अपना ध्यान आकर्षित कियां मेरी रिचमन्ड पहली कार्यकर्ता थीं जिन्होंने सन् 1917 ई0 में वैयक्तिक सेवा कार्य को परिभाषित करने का प्रयास किया। उनके अनुसार वैयक्तिक सेवा कार्य एक कला है जिसके द्वारा स्त्री, पुरुष और बालकों के सामाजिक सम्बन्धों में अपेक्षाकृत अधिक समायोजन लाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार वैयक्तिक कार्य व्यक्तित्व–विका की एक प्रक्रिया है। हैमिल्टन आदि विद्वानों ने वैयक्तिक कार्य को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा है जो व्यक्तिव (आन्तरिक सम्बन्ध) और सामाजिक परिस्थितियों (बाह्य सम्बन्ध) में समायोजन स्थापित करने का प्रयास करता है। अतः यह बात स्पष्ट है कि इस विधि द्वारा केवल व्यक्ति की सहायता की जाती है तथा वहीं केन्द्र–बिन्दु होता है। इस विधि से व्यक्ति की आन्तरिक एवं वाह्य क्षमताओं का ज्ञान होता है।

कार्यकर्ता व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करता है जिससे वह अपनी क्षमताओं में आवश्यकतानुसार विकास कारक बाह्म जगत् से समायोजन स्थपित कर सके तथा अपना स्थान प्राप्त करके भूमिका निभा सके। परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि वैयक्तिक कार्य में केवल व्यक्ति तक ही कार्य सीमित नहीं रहता है। चूँकि व्यक्ति पर बाह्य कारक प्रत्येक क्षण अपना प्रभाव डालते हैं। इसलिए बाह्म कारकों के सम्बन्ध में भी यह कार्य करता है। वह उन सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक कारकों का पता लगाता है जिनके कारण व्यक्ति कष्ट अनुभव करता है इसके उपरान्त वह ऐसी शक्तियों का विकास करता है जिनसे स्वयं व्यक्ति उन पर विजय प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार जहां एक ओर व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाया जाता है वहीं दूसरी ओर समाज को स्वस्थ नागरिक प्रदान करने में सहायता की जाती है।वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रक्रिया में कार्यकर्ता का सम्बन्ध मुख्यतः तीन कार्यों से रहता है :–

(1) सेवार्थी की समस्या के सम्बन्ध में आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण से सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन एवं अध्ययन।
(2) समस्या का वैयक्तिक प्रविधियों द्वारा निदान।
(3) बाह्य तथा आन्तरिक साधनों द्वारा उसका उपचार।

8.5 समस्या का अध्ययन

कार्यकर्ता निरीक्षण, अन्वेषण तथा वैयक्तिक इतिवृत्त की प्रविधियों के आधार पर करता है। निदान का कार्य भी साथ ही चलता रहता है। साधारणतया कार्यकर्ता निदान में मूल्यांकन, कारणान्वेषण तथा श्रेणीकरण के चरणों में कार्य करता है।

कार्यकर्ता व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समस्या का मूल्यांकन करता है। वह देखता है कि समस्या क्या है, उसका स्वरूप क्या है, वास्तविकता क्या है तथा क्या कारण है जिससे सेवार्थी अधिक पीड़ित है। वह सेवार्थी के प्रयासों एवे उसकी क्षमताओं को भी देखता है। वह बाह्य तथा आन्तरिक कारकों का

कारण क्या है तथा वास्तविक समस्या क्या है। इसके पश्चात् वह निश्चित करता है कि सेवार्थी को किस प्रकार की सहायता की आवश्यकताहै। उपर्युक्त बातें निश्चित कर लेने के उपरान्त उपचार कार्य प्रारंभ होता है। उपचार की मुख्य प्रविधियाँ निम्नलिखित हैं :

(1) अन्वेषण–अन्वेषण द्वारा दोनों कार्य, उपचार तथा तथ्यों का संकलन, किए जाते हैं। कार्यकर्ता घनिष्ठतम संबंध स्थापित करके सेवार्थी की समस्या की तह में प्रविष्ट होता है। वह स्वयं वार्तालाप के माध्यम से अपनी समस्या के कारणों`ो जान लेता है अतः उसे स्वयं सान्त्वना प्राप्त होती है।
(2) परिस्थितियों में सुधार एवं परिवर्तन – सेवार्थी बाह्य परिस्थितियों की जटिलता के कारण समायोजन नहीं कर पाता है। कार्यकर्ता इस विधि द्वारा उसके वातावरण में परिवर्तन में परिर्वन लाता है तथा तनाव–पूर्ण स्थिति को कम करता है।

(3) आलम्बन–कार्यकर्ता अहम् शक्ति के विकास एवं वृद्धि में सेवार्थी को साहस दिलाता है। उसमें आशा का संचार करता है तथा उसे पर पड़ने वाले दबाव को कम करता है।

(4) शिक्षण–कार्यकर्ता सेवार्थी को समय एवं आवश्यकतानुसार शिक्षा प्रदान करता है जिससे समस्या के विषय में उसे ज्ञान होता है।

(5) निर्देशन–कार्यकर्ता को कभी–कभी किसी विषय पर सेवार्थी को निर्देशन भी देना होता है।

(6) तादात्म्यीकरण–कार्यकर्ता सेवार्थी की भावनाओं के संबंध स्थापित करता है। सेवार्थी उसको अपना हितैषी समझने लगता है और इससे समस्या के समाधान में सहायता मिलती है।

(7) स्वीकृति–कार्यकर्ता सेवार्थी को जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करता है। वह उसका आदर करता है। वह पाप से घुणा, पापी से नही' का सिद्धांत अपनाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि सेवार्थी स्पष्ट रूप से सच्चाई बता कर राहत प्राप्त करता है।

(8) प्रोत्साहन–कार्यकर्ता सेवार्थी को समस्या के समाधान में प्रोत्साहन देता है।

(9) पुष्टीकरण – वह यथार्थ विचारों का पुष्टीकरण करता है जिससे विश्वास जाग्रत होता है।

(10) सामान्यीकरण–सेवार्थी कभी–कभी अपने को इतना दोषी ठहराता है कि उसकी सभी क्रियाएँ उसके इस विचार से प्रभावित हो जाती है और उसका जीवन नरक बन जाता है। कार्यकर्ता इस विधि द्वारा उसको बताता है कि वही केवल ऐसा हनीं है बल्कि बहुतेरे हैं जिन्होंने इसी प्रकार के कार्य किए हैं।

(11) व्याख्या– व्याख्या द्वारा कार्यकर्ता सेवार्थी के भ्रमों को दूर करता हैं और उसको वास्तविकता से परिचित कराता है।

(12) पुनः विश्वासीकरण – कार्यकर्ता सेवार्थी में विश्वास पैदा करता है कि उसकी समस्या का समाधान संभव है और उसमें शक्ति का विकास करके समाधान किया जा सकता है।
(13) स्पष्टीकरण–सेवार्थी को कार्यकर्ता उसकी समस्या के कारणों से अवगत कराता है। प्रभावशील कारकों के विषय में बताता है और उसके व्यवहार को स्पष्ट करता है। फलतः सेवार्थी स्वयं अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

(14) प्राख्या–अर्धचेतन स्तर की समस्याओं और कारणों पर कर्ता प्रकाश डालता है और स्पष्ट करता है।

(15) सलाह–सेवार्थी को कार्यकर्ता वहाँ सलाह देता है जहाँ उसका सलाह की आवश्यकता का अनुभव होता है।

(16) सहयोग–कार्यकर्ता सेवार्थी को सहयोग प्रदान करता है।

हालिस के अनुसार उपचार दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार के उपचार के अन्तर्गत वे क्रियाएँ आती हैं जिनके द्वारा कार्यकर्ता स्वयं प्रयास करके सेवार्थी के पर्याथी के पर्यावरण में सुधार करता है। दूसरे प्रकार के उपचार के अन्तर्गत विशेषकर वे मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ आती हैं जिन्हें साक्षात्कार के माध्यम से प्रयोग करते हुए कार्यकर्ता सेवार्थी को अपने प्रयासों के द्वारा स्वयं में परिवर्तन लाकर समस्याओं को हल करने के योग्य बनाने में मदद करता है।

8.6 समाजिक सामूहिक कार्य

समूहिक कार्य के अन्तर्गत समूह ही सेवार्थी होता है अर्थात् व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है जिससे समूह की उन्नति एवं विकास संभव होता है। कार्यकर्ता विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से समूह में उन्नति एवं विकास लाता है। व्यक्ति के लिए समूह आवश्यक होता है अतः सामूहिक कार्य समूह–विकास द्वारा व्यक्ति के विकास एवं उन्नति में सहयोग देता है। वह व्यक्ति और समूह की एक ही समय में सहायता करता है। वह समूह को इस प्रकार कार्य करने के लिए उत्साहित करता है जिससे सामूहिक अन्तःक्रिया तथा कार्यक्रम दोनों ही व्यक्ति के विकास और वांछित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दें।

ट्रेकर के अनुसार सामाजिक सामूहिक कार्य–कार्य की एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्ता कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में व्यक्तियों की परस्पर सम्बद्ध क्रियाओं का मार्गदर्शन करता है जिससे वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर सकें और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायकि विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं योग्यताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों से लाभान्वित हो सकें।

8.7 समुदायिक संगठन

समुदायिक संगठन का तात्पर्य किसी विशेष क्षेत्र में वहाँ की आवश्यकताओं का पता लगाकर तथा साधनों की खोज करके उसमें सामंजस्य स्थापित करना होता है। इस प्रक्रिया के मध्य जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उनको कार्यकर्ता दूर करने का प्रयास करता है, जिसके परिणामस्वरूप समुदाय अपनी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को समझने में पूर्ण समर्थ होता है तथा समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है। सामुदायिक कार्यकर्ता का उद्देश्य चेतन या अर्धचेतन समस्याओं

को प्रकाश में लाना, लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित करना, समस्या के समाधान के उपाय सोचना तथा उन पर वाद ववाद करना, कार्यक्रम नियोजित करना तथा लोगों को उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित करना तथा सहयोग प्राप्त करना होता है।

समुदाय में सदैव ऐसे कारक मौजूद रहते है जो संगठन को कमजोर बनाने की सदैव सोचा करते हैं और समय आने पर कमजोर कर देते हैं। यह अवसर उस समय विशेष रूप से देखने को मिलता है जब संघर्ष या कोई विशेष परिवर्तन होता है। सामुदायिक कार्यकर्ता सदैव प्रयत्न करता है कि भौतिक तथा अभौतिक कारकों में संतुलित रूप से परिवर्तन हो जिससे सामान्य स्थिति बनी रहे।

सामुदायिक संगठन की निम्नलिखित प्रमुख अवस्थाएँ होती हैं :–

(1) सामुदायिक कल्याणकारी संरचना, उसकी सामाजिक एजेन्सिायों और उनके कार्यों के सम्बन्ध में ज्ञान,

(2) जनता को सर्वोत्तम सेवाएँ प्रदान करने के लिए सार्वजनिक तथा असार्वजनिक सामाजिक एजेन्सियों में उपलब्ध सुविधाओं में सहयोग,

(3) सार्वजनिक तथा असार्वजनिक एजेन्सियों के स्तर में सुधार,

(4) व्यापक मानवीय आवश्यकताओं का निश्चय करने के लिए सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षणों का प्रयोग,

(5) प्राप्य साधनों को ध्यान में रखते हुए इन आवश्यकताओं का विश्लेषण करना,

(6) आँकड़ों का संश्लेषण, तथ्यों का परीक्षण और आवश्यकताओं की अविलम्बिता (Urgency) तथा महत्व के अनुसार प्राथमिकता का निर्धारण,

(7) अमहत्पूर्ण (Outlived) सेवाओं का लोप अथवा समंजन और आवश्यकताओं के अनुसार नीय सेवाओं का विकास,

(8) सभी इच्छुक समूहों एवं जनता के लिए सेवाओं के विस्तार अथवा नयी सेवाओं के सृजन के उद्देश्य से आवश्यकताओं की व्याख्या,

(9) समाज कल्याण कार्यों के लिए आर्थिक एवं नैतिक बल का संग्रह और

(10) शिक्षा, सूचना तथा लोगों के सक्रिय भाग द्वारा समाज कल्याण आवश्यकताओं के प्रति सामुदायिक चेतना की सृष्टि।

समुदायिक संगठन की रूपरेखा के अन्तर्गत समाज कार्यकर्ता अपने व्यावसायिक ज्ञान, कुशलता तथा अनुभव का योगदान करता है :

(क) सामाजिक दशाओं की जानकारी के कारण समाज कार्यकर्ता अन्य लोगों की स्वस्थ एवं कल्याणकारी आवश्यकताओं की पहचान करने में हाथ बँटाता है।

(ख) उसमें आवश्यक सर्वेक्षण तथा गवेषणात्मक तथ्य प्राप्त करने तथा दशाओं में सुधार की योजना तैयार करने के लिए लोगों को प्रेरित करने की योग्यता रहती है।

(ग) सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक आवश्यकताओं की व्याख्या अपने सेवार्थियों, पड़ौस और समुदाय के लिए करने में समर्थ होता है।

8.8 समाज कल्याण प्रशासन

समाज कार्य मुख्य रूप से सामाजिक संस्थाओं या विभागों या संबंधित संगठनों, जैसे चिकित्सालय, न्यायालय, विद्यालय, सुधार करने एवं दण्ड देने वाली संस्थाओं में किया जाता है। अतः कार्यकर्ता के लिए समाज कल्याण प्रशासन का ज्ञान होना आवश्यक होता है। समाज कल्याण प्रशासन सरकारी संस्थाओं में सामाजिक अधिनियम को कार्यान्वित करता है तथा लोगों की सेवा में कानूनों, नियमों तथा नियंत्रणों का रूपान्तर करता है। इसका तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा समाज कल्याण क्षेत्र की सार्वजनिक तथा निजी संस्थाओं का प्रशासन एवं संगठन किया जाता है। इसके अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ आती हैं जो किसी संस्था को कार्यक्रम का व्यावहारिक रूप देने में सहायता करती हैं।

समाज कल्याण प्रशासन का व्यावहारिक रूप सामान्य प्रशासन के समान हैं। परन्तु इसमें मानव समस्याओं के समाधान हेतु तथा मानव आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रयत्न किया जाता है। अतः प्रशासक के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। उसके लिए समाज कार्य के दर्शन, उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों से अवश्य परिचित होना चाहिए। उसे समाजकार्य के तरीकों, सामाजिक निदान के ढंग, समूह तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा उनके संस्था से संबंध इत्यादि का ज्ञान आवश्यक होता है।

जान सी0 किडनी (John C. Kidneigh) के अनुसार :"समाज कल्याण प्रशासन सामाजिक नीति को सामाजिक सेवाओं में बदलने तथा सामाजिक नीति को मूल्यांकित एवं संशोधित करने में अनुभव के प्रयोग की एक प्रक्रिया है।"1. आर्थर डनहम (Arthur Dunham) के अनुसार :"समाज कल्याण प्रशासन से हमारा आशय उन सहायक एवं सुविधा–जनक क्रिया–कलापों से है जो किसी सामाजिक संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए अनिवार्य हैं। 2. प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार ,"सामाजिक अभिकरण तथा सरकारी या गैर सरकारी कल्याण कार्यक्रमों से संबंधित प्रशासन को समाज कल्याण कहते हैं। यद्यपि इसकी विधियाँ–प्रविधियाँ या तौर–तरीके इत्यादि भी लोक–प्रशासन या व्यापार–प्रशासन की ही भाँति होते हैं किन्तु इसमें एक बुनियादी भेद यह होता है कि इसमें सभी स्तरों पर मान्यता और जनतांत्रिकता का अधिक से अधिक ध्यान करके ऐसे व्यक्तियों या वर्ग से संबंधित प्रशासन किया जाता है जो कि बाधित होते हैं।"3

समाज कल्याण प्रशासन का विश्लेषण

(1) समाज कल्याण प्रशासन एक प्रक्रिया है जिसमें विशेष ज्ञान, सिद्धांत एवं निपुणता होती है।

(2) इसके द्वारा सामाजिक संस्थओं का नियंत्रण, संचालन तथा संगठन किया जाता है।

(3) इस प्रक्रिया में निर्देशन, नियोजन, अन्तर–उत्तेजना, संगठन, सहयोग, संबंध, अनुसन्धान आदि कारकों का उपयोग किया जाता है।

(4) व्यक्तियों, समूहों तथा समुदायों को सामाजिक सेवा प्रदान करता है।

(5) संस्था के उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों, बजट, सेवार्थी–चयन, कार्यकर्ता–चयन, कर्मचारी गण चयन का कार्य करता है। सेवाओं का मूल्यांकन भी करता है।

(6) सामाजिक संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति इसके द्वारा की जाती है।

(7) प्रशासन प्रजातांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित होता है।

8.9 प्रजातांत्रिक प्रशासन की प्रविधियाँ

(1) समूह–नेतृत्व की प्रविधि,
(2) शिक्षण की प्रविधि,
(3) समस्या–निवारण की प्रविधि,
(4) समूह–वार्तालाप की प्रविधि,
(5) शिक्षात्मक अधीक्षण की प्रविधि।

8.10 समाज कार्य अनुसंधान

समाज कार्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अधिकाधिक सहायता तथा विकास एवं उन्नति करने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अन्तर्गत सिद्धांतों, तरीकों, ढंगों, निपुणताओं तथा प्रविधियों का प्रयोग होता है। अतः इन क्षेत्रों में दिनोंदिन नवीनीकरण एवं परिवर्तन की आवश्यकता होती है क्योंकि व्यक्ति स्वयं एक परिवर्तनशील एवं विकासशील प्राणी है। समाज कार्य अनुसंधान इस आवश्यकता को पूरा करता है। वह नए–नए तरीकों की खोज करता है, सिद्धांतों का सत्यापन एवं पुनरस्थापन करता है तथा नवीन ज्ञान की खोज करता है। आवश्यकतानुसार कार्य–कारण में संबंध भी स्पष्ट करता है। एक बात यहाँ पर ध्यान देने की है कि चूँकि समाज कार्य का व्यक्तियों की समस्याओं से सम्बन्ध होता है अतः समाज कार्य अनुसंधान में भी इनसे संबंधित सिद्धांतों, अवधारणाओं, प्रविधियों तथा निपुणताओं इत्यादि के विषय में खोज की जाती है। सारांश में, इसके अन्तर्गत उपचार तथा सेवा प्रदान करने की विविध प्रणालियों, उनकी आवश्यकताओं तथा उनसे संबंधित नये साधनों की खोज की जाती है।

अनुसंधान का उद्देश्य सभी वैज्ञानिक क्षेत्रों में ज्ञान का विकास एवं वृद्धि करना है। समाज कार्य अनुसंधान एक ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा समाज कार्य को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। प्रारंभ में समाज कार्य सामाजिक विद्वानों के अनुसंधान के तरीकों को अपनाने में हिचकिचाता था। अतः समाज कार्य अनुसंधान में वैज्ञानिक तरीकों को नहीं प्रमाणित किया गया । प्रारंभिक सामुदायिक अध्ययन (Early

Community Studies) समाज कार्यकर्ता द्वारा सामाजिक समस्याओं, संस्थागत कार्यक्रमों, संरचना, कार्य पद्धति तथा समाज कार्य का इतिहास, भौतिक तथा उपचारात्मक अवलोकन इत्यादि खोजों ने केवल नयी सामाजिक सेवाओं पर बल दिया। इस प्रकार के अध्ययन ने सामुदायिक समाज कलयाण योजना को सरल बनाया परन्तु मानव प्रकृति, व्यवहार तथा सम्बन्धों के वैज्ञानिक ज्ञान को गहन नहीं बनाया। इन अध्ययनों ने समाज कार्य के तरीकों की आवश्यकता को सिद्ध किया।

नए ज्ञान एवं तरीकों के विकास के साथ–साथ आनुसंधान का क्षेत्र भी अब बढ़ता जा रहा है। परन्तु सामाजिक अनुसंधान तथा समाज कार्य अनुसंधान में अन्तर है क्योंकि सामाजिक अनुसंधान सामाजिक मूल्यों, धारणाओं तथा कार्य–कारण के सम्बन्धों को निरपेक्ष भाव से देखता है। इसके लिए आवश्यक नहीं कि प्राप्त निष्कषों का व्यावहारिक परिणामों से सम्बन्ध हो ही अतः ऐसा अनसंधान विशुद्ध अनसंधान (Pure Reserch) होता है। परन्तु समाज कार्य अनसंधान सामाजिक शक्तियों का अध्ययन व्यक्ति के सन्दर्भ में करता है। उसका उद्‌देश्य व्यक्ति की सामाजिक समस्याओं का समाधान करना है। वह देखता है कि नये अनुसंधान किस प्रकार सेवार्थी (व्यक्ति, समूह तथा सम्पूर्ण समुदाय) की सेवाओं में सुधार ला सकते हैं।

समाज कार्य अनुसंधान एक ऐसी खोज है जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके ऐसे उपायों की खोज की जाती है जिससे सेवार्थियों (व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज) को अधिक अच्छे ढंग से सेवा प्रदान की जा सके तथा समस्याओं का समाधान एवं व्यक्ति का सर्वोन्मुखी विकास सम्भव हो सके। फ्रीडलैन्डर के अनुसार, "समाज कार्य शोध का अर्थ है, समाज कार्य के संगठन, कार्य एवं प्रणालियों की वैधता का आलोचनात्मक अन्वेषण और वैज्ञानिक जाँच जिससे उन्हें प्रमाणित किया जा सके, उनका सामान्यीकरण किया जा सके और समाज कार्य के ज्ञान और निपुणता में वृद्धि की जा सके।"

1वेब्स्टर शब्द–कोष के अनुसार, "सामाजिक शोध एक अध्ययन–परायण अन्वेषण है जो सामान्यतः आलोचनात्मक और अत्यन्त विस्तृत जाँच या परीक्षण के रूप में होता है और जिसका उद्‌देश्य स्वीकृति–प्राप्त परिणामों के विषय में नवीन सूचनाओं के आधार पर पुनः विचार करना है।"सोशल वर्क इयर बुक, सन् 1949 ई0 के अनुसार ,"समाज कार्य शोध का अर्थ है समाज कार्य के कार्यों और प्रणालियों की वैधता की वैज्ञानिक जाँच।"

विशेषताएँ

(1) यह समाज कार्य का एक सहायक तरीका है क्योंकि इसके द्वारा सेवार्थी की सहायता प्रत्यक्ष रूप से नहीं की जाती है।

(2) यह वैज्ञानिक तरीकों को अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत उपयोग में लाता है। इसमें

निम्नलिखित चरणों का उपयोग किया जाता है :–

(1) समस्या क्षेत्र के विषय का चुनाव,
(2) समस्या का परिसीमन,
(3) उपलब्ध सामग्री का अध्ययन,
(4) उपकल्पना का निर्माण,
(5) प्रश्नावली का निर्माण तथा
(6) प्रारम्भिक परीक्षा, तथ्यों का संकलन, तथ्यों का विश्लेषण एवं प्रतिवदेन–निर्माण इत्यादि।

(3) सेवार्थियों को अधिक वैज्ञानिक ढंग से सेवा प्रदान करने के लिए नये तरीकों की खोज की जाती है।

(4) इसके द्वारा कार्यकर्ता को नवीन ज्ञान, प्रविधि, निपुणता तथा कौशल प्राप्त होता है।

(5) उपलब्ध ज्ञान को प्रमाणित किया जाता है।
(6) सामाजिक घटना के कारण संबंधी कारकों की खोज की जाती है।
(7) पुरानी उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है।

समाज कार्य अनुसंधान के प्रकार

फिलिप क्लीन (Philip Kleen) ने पांच प्रकार बताए हैं :–

(1) सेवाओं की आवश्यकता का स्थापन, परिचय एवं मापन संबंधी अध्ययन।
(2) प्रदत्त सेवाओं की आवश्यकता के संबंध में मापन संबंधी अध्ययन।
(3) समाज कार्य में क्रियाओं के परिणाम का परीक्षण, मापन (प्रामाणिकता) तथा मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन।
(4) सेवा प्रदान करने वाली मूल्य प्रविधियों की क्षमता के परीक्षण सम्बन्धी अध्ययन।
(5) अनुसंधान के ढंगों का अध्ययन।1

समाज कार्य अनुसंधान के विषय

(1) उन कारकों का व्यवस्थापन तथा मापन जो सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करते हैं तथा सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता बताते हैं।
(2) दान देनेवाली संस्थाओं के इतिहास, समाज कल्याण अधिनियम, समाज कल्याण कार्यक्रम तथा समाज कार्य की आवश्यकता का अध्ययन।
(3) आशाओं, प्रत्यक्षीकरणों तथा समाज कार्यकर्ताओं की स्थितियों के मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन।
(4) सामाजिक कार्यकर्ताओं के लक्ष्य, निश्चय तथा आत्मचित्र का अध्ययन।
(5) समाज कार्यकर्ताओं की आशाओं, निश्चत तथा क्रियाओं में सम्बन्धों का अध्ययन।
(6) समाज की विविध प्रक्रियाओं का अध्ययन।
(7) उपलब्ध सामाजिक सेवाओं का व्यक्ति, समूह तथा समुदाय की आवश्यकताओं के संदर्भ में उपयोगिता का अध्ययन।
(8) समाज कार्य क्रिया के प्रभावों के परीक्षण, मापन तथा मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन तथा समाज कार्य व्यवहार के लिए वांछित योग्यताओं की खोज।
(9) सेवार्थी की आशाओं, उद्देश्यों, प्रत्यक्षीकरण तथा स्थिति का मूल्यांकन संबंधी अध्ययन।
(10) समाज कार्य के संबंध में सेवार्थी के व्यवहार की प्रतिक्रिया का अध्ययन।
(11) सामाजिक संस्था के अन्तर्गत अनौपचारिक तथा औपचारिक समाज कार्यकर्ताओं की भूमिका की परिभाषा, उनके अन्तर्गतसम्बन्धों में सहयोग की दशाओं का अध्ययन।
(12) समुदाय में सामाजिक समूहों के मूल्यों तथा वरीयता का अध्ययन जिनके ऊपर समाज कार्य के व्यावहारिक रूप को समर्थन तथा सहयोग के लिए निर्भर होना पड़ता है।
(13) सामाजिक संस्थाओं की विभिन्न इकाइयों में अन्तर्सम्बन्ध तथा उनका सेवार्थी तथा संस्था के स्टाफ पर प्रभाव का अध्ययन।
(14) समाज कार्य अनुसंधान की पद्धति का अध्ययन।

8.11 समाजिक प्रक्रिया

समाजिक क्रिया समाज कार्य की एक सहायक प्रणाली है जिसके द्वारा सामान्य सामाजिक समस्याओं का समाधान संगठित सामूहिक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया में सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा अन्य क्षेत्रों में उन्नति के लिए जनमत का सहारा आवश्यक होता है। सामाजिक क्रिया का उद्देश्य इच्छित सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक प्रगति करना है। जनमत तथा वैधानिक विचारों को

जन–संचार द्वारा प्रभावित करना सामाजिक क्रिया की एक विशेष प्रविधि है। इस प्रणाली का कार्य पर्यावरण में परिवर्तन लाा है।

फ्रीडलैन्डर के अनुसार :

"सामाजिक क्रिया एक वैयक्तिक, सामूहिक या सामुदायिक प्रयास है जो समाज कार्य के दर्शन एवं अभ्यास की सीमा के अन्दर किया जाता है और जिसका उद्देश्य सामाजिक उन्नति करना, सामाजिक नीतियों को परिवर्तित करना एवं सामाजिक विधान, स्वास्थ्य एवं कल्याण सम्बधी सेवाओं में उनति करना है।"1

केनेथ प्रे के अनुसार :

"सामाजिक क्रिया एक ऐसा क्रमिक, अन्तरात्मा सम्बन्धी प्रया है जो उन मौलिक सामाजिक दशाओं एवं नीतियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जिनसे सामाजिक समायोजन एवं असामंजस्य की समस्याएँ उत्पन्न होती हं जिनका समाज कार्यकर्ताओं के रूप में हमारी सेवाएँ समाधान करने का प्रयास करती है।"1प्रो0 राजाराम शास्त्री के अनुसार :"जब समाज के व्यापक स्तर पर किसी सामाजिक परिवर्तन की चेष्टा की जाती है तो उसे सामाजिक क्रिया के अन्तर्गत समण जाता है।"2

समाजिक क्रिया के आधारभूत तत्व

(1) समूह तथा समुदाय का सक्रिय रूप से भाग लेना।
(2) जनतान्त्रिक कार्यप्रणाली का कार्यपद्धति में उपयोग होना।
(3) साधनों की उपलब्धि।
(4) लोकतान्त्रिक नेतृत्व की उपस्थिति।
(5) समस्या में सम्बन्धित साधनों का होना।
(6) सामुदायिक सम्पर्क आवश्यक।
(7) बाह्य सहायता की उपलब्धि।

समाजिक क्रिया के उद्देश्य

(1) स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले कार्य।
(2) सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिए सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार करना।
(3) सामाजिक आँकड़ों को इकटठा करना तथा सूचनाओं का विश्लेषण करना।
(4) अविकसित समूहों के लिए माँग करना।
(5) सामाजिक समस्याओं के लिए ठोस सुझाव तथा प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
(6) नए सामाजिक स्रोतों की खोज करना।
(7) सामाजिक समस्या के प्रति जनता में जागरुकता लाना।
(8) जनता का सहयोग प्राप्त करना।
(9) सरकारी यन्त्र को अपने उददेश्य में योग देने के लिए तैयार करना।
(10) नीति–निर्धारण करने वाली सत्ता से प्रस्ताव स्वीकृत करवाना।

अब हम यहाँ पर उपरिलिखित विधियों का अन्तःसंबंध जानने का प्रयत्न करेंगे–

(1) उद्देश्य के आधार पर सम्बन्ध – समाज कार्य की सभी विधियों का उद्देश्य लगाग समान है। सभी विधियों का उद्देश्य व्यक्ति की अधिक से अधिक सहायता करना है जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके तथा विकास की गति में वृद्धि ला सके। वैयक्तिक सेवा कार्य का उद्देश्य सेवार्थी या एक वरूथ्क्त की इस प्रकार से सहायता करना होता है जिससे स्वयं सहायता करने की शक्ति का

विकास हो और बिना विशेष बाह्य सहायता के वह अपनी समस्या के निराकरण के लिए कदम उठा सके।

सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से करता है। समूह की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास वह अपनी निपुणता एवं योग्यता के आधार पर करके समस्या को स्पष्ट करता है तथा उन्हीं के माध्यम से लक्ष्य तथा पहुँचने के कार्यक्रम का नियोजन करता है। व्यक्ति में सामूहिक कार्य के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि गुणों का विकास करता हैं यद्यपि सामूहिक कार्य में केन्द्र–बिन्दु समूह होता है परन्तु व्यक्ति के हित का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर वैयक्तिक सेवा कार्य की भी सहायता ली जाती है। सामुदायिक संगठन का उददेश्य भी समुदाय की सहायता करना है, जिससे वह स्वयं विकास एवं उन्नति कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्ततोगत्वा इन विधियों का उददेश्य व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करना है जिससे वह स्वयं समर्थ हो सके, समस्याओं को समझ सके, समस्या का समाधान करने के साधनों की खोज कर सके तथा स्वयं समाधान कर सके। कार्यकर्ता तो केवल उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल सहायता कार्य करता है। परन्तु उददेश्य में ज्यादा वनिष्ठता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ हैं।

वैयक्तिक सेवा कार्य में व्यक्ति की समस्याओं के निदान व उपचार पर जोर दिया जाता है। व्यक्ति या सेवार्थी स्वयं अपनी समस्या को लेकर कार्यकर्ता के पास आता है और वह अपनी प्रविधियों के द्वारा ग्रसित समस्या से संबंधित उपचार करता है। समस्या का उपचार इसके उददेश्य का केन्द्र–बिन्दु है। सामूहिक कार्य में 'समूह' व्यक्ति के स्थान पर प्रधान होता है। व्यक्ति गौण हो जाता है। समूह का हित व्यक्ति के हित के ऊपर होता है। समूह का विकास एवं समायोजन संबंधी समस्याओं का समाधान करना समूह कार्य का उददेश्य होता है। कार्यक्रम इसका माध्यम होता है और इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर समूह में परिवर्तन तथा विकास आता है और लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

अतः इसका उद्देश्य समूह–समस्याओं की शिक्षा, विकास और सांस्कृतिक प्राप्ति पर जोर देना है। सामुदायिक संगठन का उददेश्य समुदाय की विभिन्न समस्याओं को हल करने में समुदाय को क्रियाशील बनाना होता है। व्यक्ति तथा समूह का महत्व कम हो जाता है। सामुदायिक संगठन में व्यक्ति या समूह की मनोसामाजिक संरचना के आधार पर नहीं बल्कि सामाजिक संस्थाओं रीतिरिवाज, मान्यताओं, सांस्कृतिक स्तर, प्रतिमान इत्यादि को ध्यान में रखकर कार्य किया जाता है।

(2) सिद्धान्त के आधार पर सम्बन्ध – समाज कार्य की प्रणालियों में लगभग समान सिद्धान्तों का उपयोग होता है। मूल रूप से इनमें मानवतावादी सिद्धान्त कार्य करता है। वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी सामान्य व्यक्ति होता है। व किसी प्रकार की हीन भवना से नहीं देखा जाता। कार्यकर्ता उसे आदर एवं प्रतिष्ठा देता है और आत्मसम्मान का बोध कराता है। वह सम्बन्ध–स्थापन पर जोर देता है और उसी के माध्यम से उपचार–योजना तैयार करता है। वह सेवार्थी की मनोदशा के अनुरूप कार्य करता है। वह सेवार्थी के स्तर से उपचार करता है। वह उसके गुणों को स्पष्ट करता है तथा स्वावलम्बन का विकास करता है। सेवार्थी स्वयं समस्या के उपचार में कार्यरत होता है।

सामूहिक कार्य में भी समूह की इच्छा के अनुसार कार्य किया जाता है। समूह–सदस्य प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक प्रधान होते हैं। समूह में होने वाली समस्त अन्तः क्रियाएँ, जैसे–समूह–निर्माण, उद्देश्यों का निर्धारण, कार्यप्रणाली, कार्यक्रम–नियोजन एवं निर्धारण, संचालन, नेतृत्य तथा निर्णय इत्यादि सदस्यों द्वारा ही प्रेरित होती है। कार्यकर्ता समूह के सम्बन्ध को महत्व देता हैं यदि सम्बन्ध यथोचित नहीं है तो कार्यकर्ता न तो समूह के साथ कार्य कर सकता है और न ही

सामूहिक कार्यकर्ता को स्वीकृति प्रदान करता हैं सामुदायिक संगठन में भी लगभग इन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है जो वैयक्तिक सेवा कार्य तथा सामूहिक कार्य में महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति और समूह की भाँति समुदाय को उसी स्थिति में स्वीकार किया जाता है जिस स्थिति में वह होता है। समुदाय की उपयुक्तता के साथ साथ कार्य किया जाता है। वह स्वयं जब कार्य करने को इच्छुक होता है तभी कार्यकर्ता कोई कार्य करता है।

अतः पहले कार्यकर्ता उसमें असन्तोष की भावना का विकास करता और फिर सकारात्मक मोड़ देता है। सहायता कार्य इस आधार पर होता है कि समुदाय स्वयं अपनी समस्या हल करने में समर्थ हो सके। वह लोगों में सामुदायिक भावना का विकास करता हैं इस उद्देश्य से वह विभिन्न समूहों में पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ बनाने मं प्रयत्नशील रहता है, जिसके कारण अन्तःक्रिया का संचार होता है और कार्यों व विचारों का आदान–प्रदान होता है।

(3) प्रक्रिया के आधार पर सम्बन्ध – वैयत्तिक सेवा कार्य, सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगइन प्रणालियों में यह प्रयत्न किया जाता है कि व्यक्ति, समूह तथा समुदाय स्वयं अपनी समस्याओं के निराकरण में समर्थ हो सकें, आत्मविश्वास की भावना का विकास हो तथा शक्ति में वृद्धि हो। परन्तु इनकी प्रक्रिया में अन्तर है। वैयक्ति कार्य में व्यक्ति–विशेष पर जोर दिया जाता हैं सेवार्थी स्वयं कार्यकर्ता के पास आता है और अपनी तकलीफों को उसके सामने स्पष्ट करता तथ सहायता लेने की इच्छा प्रकट करता हैं कार्यकर्ता वार्तालाप के माध्यम से समस्या के कारणों को ढूँढ़ता तथा निदान करता है। इसके साथ ही साथ उपचार क्रिया भी चलती रहती है अर्थात् वैयक्गित सेवाथी में अहम् शक्ति का विकास होता है और वह समस्या का अपनी बुद्धि एवं क्षमता द्वारा समाधान करने की चेष्टा करता है।

सामूहिक कार्य मं कार्यकर्ता या तो समूह का निर्माण स्वयं करता है या पहले से संगठित समूह के साथ कार्य करता है। समूह का उददेश्य उन्नति एवं विकास करना या समस्या का समाधान करना होता है। कार्यकर्ता कार्यक्रम का निर्धारण समूह के माध्यम से करता है। वह समूह को पूर्ण अधिकार देता है कि वही कार्यक्रम का क्रियान्वयन करे तथा अभीष्ट उद्देश्य प्राप्त करे। वह केवल अन्तःक्रिया का निर्देशन तथा मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता सामंजस्य सम्बन्धी समस्याओं को भी हल करता सामुदायिक संगठन में पूरे समुदाय के हित के लिए कार्य करता है। व्यक्ति उसमें गौण होता है।

समुदाय की इच्छा सर्वोपरि होती है और उसका कल्याण करना मुख्य कार्य होता है। कार्यकर्ता मनोवैज्ञानिक आधार के स्थान पर समाजशास्त्रीय आधार को अधिक महत्व देता है समुदाय को समझने के लिए सामाजिक संस्थाओं के रीति–रिवाजों, मान्यताओं आदि का अध्ययन किया जाता है। कार्यकर्ता का उदद्देश्य समुदाय में परिवर्तन लाना होता है। पूरा समुदाय उसका कार्य–क्षेत्र होता है तथा वह सामुदायिक संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

(4) प्रत्यय के आधार पर सम्बन्ध–वैयक्ति सेवा कार्य तथा सामुदायिक संगठन में लगभग समान प्रत्यय होते हैं। कार्यकर्ता इन विधियों में विभिन्न रूपों में कार्य करता है। ज बवह देखता है कि व्यक्ति, समूह या समुदाय स्वयं उचित कदम नहीं उठा सकते हैं तो वह अधिनायक या सत्तावादी हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह आदेश देता है और अन्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। कभी–कभी वह स्वयं आदर्श बन जाता है और व्यक्ति उसका अनुसरण करते हैं। वह आदेश तभी देता है जब व्यक्ति साधनों को पहचान नहीं पाते। वह समर्थकारी तरीका भी अपनाता है। वह समूह में भाग लेने तथा कुशलताओं एवं अभिवृत्तियों के विकास में सहायता करता है तथा सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग प्रदान करता है। समूह या समुदाय के साथ कार्य करते हुए वैयक्तिक सम्पर्क भी बनाए रखता है। वह उसी स्तर के कार्य करता है जहाँ से व्यक्ति आसानी से कार्य कर सकते हैं।

(5) व्यक्ति का ज्ञान के आधार पर सम्बन्ध–समाज कार्य के सिद्धांतों में व्यक्ति के ज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है। सबसे पहले उसके विषय में सम्पूर्ण इतिहास प्राप्त किया जाता है तथा समस्या का निदान वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर किया जाता है तथा समस्या का निदान वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर किया जाता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी के जीवन से सम्बद्ध समस्त घटनाओं का अभिलेखन करता है। वह कभी एक परिस्थिति में दो सेवार्थियों को समान नहीं मानता, बल्कि प्रत्येक का अलग अलग ज्ञान प्राप्त करता है और उसके अनुरूप उपचार–प्रक्रिया बनाता है।

सामूहिक कार्य में यद्यपि कार्यकर्ता का ध्यान समूह पर केन्द्रित होता है परन्तु वह वैयक्तीकरण का सिद्धांत अवश्य अपनाता है। प्रत्येक सदस्य की आदतों, रुचियों, मनोवृत्तियों आदि का ज्ञान रखता है। सामुदायिक संगठन में व्यक्ति–विशेष के विषय में ज्ञान रखना संभव नहीं होता है परन्तु कार्यकर्ता समूह के माध्यम से इसका प्रयत्न करता हैं वह समुदाय की आवश्यकताओं का पता लगाता है जिनका समुदाय में विशेष महत्व होता है और जिन्हें अपनी समस्याओं के विषय में ज्ञान रहता है तथा उन्हें हल करने के लिए उत्सुक रहता है। वह वैयक्तिक सम्पर्क भी रखता है।

(6) कार्य की रूपरेखा निश्चित करने के आधार पर सम्बन्ध–समाज कार्य की यह विशेषता है कि कोई भी कार्य सेवार्थी के ऊपर दबाव डालकर नहीं कराया जाता। वे जिस प्रकार और जैसे कार्य करने के लिए इच्छा करते हैं वैसे ही कार्य किया जाता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में सेवार्थी को अपना रास्ता, उपाय या उपचार के तरीकों का चुनाव करने की पूरी छूट होती है। यद्यपि कार्यकर्ता सम्पूर्ण विवरण तथा उपचार–प्रक्रिया प्रस्तुत करता है, परन्तु यह सेवार्थी की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह उसको माने या न माने।

सामूहिक कार्य में भी समूह–सदस्य स्वयं कार्यक्रम का चुनाव करते तथा निर्णय में भाग लेते हैं। सामुदायिक संगठन में कार्यकर्ता केवल छिपी हुई समस्या को प्रस्तुत करता और सम्भव उपायों को स्पष्ट करता है। वह इसे समुदाय की इच्छा पर छोड़ देता है कि कौन सा तरीका समस्या को सुलझाने का उसे पसन्द है।

(7) कार्यक्रम के विकास के आधार पर सम्बन्ध–समाज कार्य में कोई भी कार्यक्रम पहले से निश्चित नहीं किया जाता। जब समूह में अन्तःक्रिया का संचार होता है तो कार्यक्रम स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। वैयक्तिक सेवा कार्य में कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच पहले मानसिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं, फिर अन्तःक्रिया का संचार होता है और तब कार्यात्मक उपचार का पथ निर्धारित होता है।

सामूहिक कार्य में जब कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है तथा कार्यक्रम का निर्धारण होता है। जब लोगों में समस्या के विषय में सम्बन्ध स्थापित होते हैं तब कार्यक्रम का विकास होता है।

8.12 सार संक्षेप

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज कार्य की प्राथमिक प्रणालियों के उद्देश्य, सिद्धान्त, पद्धतियाँ तथा निपुणताएँ समान हैं। परन्तु जहाँ पर एक ओर समानता है वहीं पर असमानता भी मौजूद है और इस असमानता के कारण ही इन विधियों का अलग–अलग महत्व है। कार्य करने का कारण एक है परन्तु कार्यक्षेत्र तथा पद्धतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि एक स्थिति में सभी विधियों की आवश्यकता होती है।

वैयक्तिक सेवा कार्य में सामूहिक कार्य की आवश्यकता होती है और सामूहिक कार्य में वैयक्तिक सेवा कार्य की। इसी प्रकार सामुदायिक संगठन में भी इन विधियों का ज्ञान आवश्यक होता है।

सामुदायिक संगठन का उपयोग वह व्यक्ति व समूह–क्षेत्रों की सहायता के लिए भी करता है। सामूहिक कार्यकर्ता के लिए भी वैयक्तिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन का ज्ञान आवश्यक होता है। वह समुदाय के साधनों का उपयोग समूह के विकास के लिए करता है।

समूह को समुदाय के लिए उपयोगी बनाता है। सामुदायिक संगठन कार्य में दोनों विधियों का उपयोग व्यावसायिक सम्बन्ध–स्थापन तथा समूहों का ज्ञान प्राप्त करने तथा समस्या का समाधान करने में किया जाता है। अतः एक कार्यकर्ता के लिए सभी विधियों का ज्ञान आवश्यक होता है।

8.13 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक समूह कार्य एवं समाज कार्य की अन्य प्रणालियों में अन्तःसम्बन्ध को समझाइये ?
2. वैयक्तिक सेवा कार्य व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध की व्याख्या कीजिये ?
3. समस्या का अध्ययन व सामाजिक समूह कार्य की व्याख्या कीजिये ?

4. समाजिक सामूहिक कार्य व समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझाइये ?
5. समुदायिक संगठन व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझाइये ?
6. समाज कल्याण प्रशासन व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझाइये ?
7. प्रजातांत्रिक प्रशासन की प्रविधियाँ व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध की व्याख्या कीजिये ?

8.समाज कार्य अनुसंधान व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझाइये ?

9.समाजिक क्रिया व सामाजिक समूह कार्य में अन्तःसम्बन्ध को समझाइये ?

8.14 पारिभाषिक शब्दावली

Development	- विकास	Group work	- समूहकार्य
Aims	- लक्ष्य	Personatities	- व्यक्तित्व
Essential	- जीवनोपयोगी	Importance	- महत्व
Adjustment	- सामांजस्य	Model	- प्रारूप
Intrigrated	- एकीकृत	Remedial	- परिभाषा
Agency	- संस्था	Social worker	-सामाजिक कार्यकर्ता

8.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डनहम, आर्थर, ऐडमिनिस्ट्रेशन आव सोशल एजेन्सीज, सोशल वर्क इयर बुक, ऐसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, 1947, पृ0 15।
2. शास्त्री, राजाराम, समाज कार्य, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1970, पृ0 146।

3. किडनी, जान सी0, ऐडमिनिस्ट्रेशन आव सोशल एजेंसीज, सोशल वर्क इयर बुक, ऐसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क 1955, पृ0 76।

4. फीडलैन्डर, डब्ल्यू0ए0, इंट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, प्रेन्टिस हाल आव इण्डिया, नई दिल्ली, 1963, पृ0 215।

5. फिलिप ऐन्ड, मैरियम, इडा सी0, द कन्ट्रीब्यूशन आव रिसर्च टु सोशल वर्क, अमेरिकन एसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क, 1948, पृ0 46

6 फ्रीडलैन्डर, डब्ल्यू0 ए0, इन्ट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, प्रेन्टिस हाल आव इण्डिया, नई दिल्ली, 1963, पृ0 219।

7. प्रे, केनेथ, सोशल वर्क ऐन्ड सोशल ऐक्शन, नैशनल कान्फरेंस आव सोशल वर्क, प्रोसीडिंग्स 1945, पृ0 346।

8. शास्त्री, राजाराम, समाज कार्य, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1970, पृ0 194।

इकाई–9

सामूहिक समाज सेवाकार्य में अभिलेखन एवं पर्यवेक्षण
Recording and Supervision in Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 परिचय
9.2 सामूहिक समाज सेवाकार्य में अभिलेखन
9.3 प्रक्रिया अभिलेख (process record)
9.4 सामूहिक समाज कार्य में मून्यांकन (Evaluation in Social Group Work)
9.5 सामूहिक समाज कार्य पर्यवेक्षण
9.6 नेतृत्व
9.7 प्रभुत्व तथा नेतृत्व
9.8 सार संक्षेप
9.9 अभ्यास प्रश्न
9.10 पारिभाषिक शब्दावली
9.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

- इस अध्याय को पढ़ने के बाद आपः–सामूहिक समाज सेवाकार्य में अभिलेखन की उपयोगिता को समझ सकेगें।
- अभिलेखन के सिद्वान्तो को जान सकेगें।
- सामूहिक समाज कार्य में मूल्यांकन का वर्णन कर सकेगें।
- सामूहिक समाज कार्य पर्यवेक्षण को समझ सकेगें।
- प्रभुत्व तथा नेतृत्व में अन्तर कर सकेगें।
- नेता के कार्य को जान सकेगें।

9.1 परिचय

कार्यकर्ता प्राथमिक रूप से अपने लिये और समूह के साथ अपने सम्बन्ध में निरन्तर प्रयोग के लिये लिखता है। समूह के साथ कार्यकर्ता के सम्बन्धों और उसकी भूमिका में हो रहे विकास की प्रक्रिया को अभिलेख द्वारा ही समझा जा सकता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण (in-service training) और समाज कार्य की व्यावसायिक शिक्षा के लिए अध्यापन सामग्री (teaching material) अच्छी तरह लिखे गये अभिलेखों से ही मिलती है। सामूहिक अभिलेख अध्ययन, (study) अनुसंधान (research) और प्रयोग (experiment) के लिये अनिवार्य होते हैं। कार्यकर्ता और पर्यवेक्षक के मध्य सम्बन्ध पर्यवेक्षण कहलाता है। इस प्रक्रिया में पर्यवेक्षक को संस्था के क्रियाकलापों, सामाजिक परिस्थितियों, संस्था के उद्देश्यों एवं कार्यों इत्यादि की जानकारी होती है और वह इस जानकारी के आधार पर कार्यकर्ता की पर्यवेक्षण कार्य में सहायता करता है जिसके लिए उसकी संस्था में नियुक्ति हुई है।

9.2 सामूहिक समाज सेवाकार्य में अभिलेखन(Recording in social group work)

सामूहिक कार्यकर्ता के उत्तरदायित्वों में से प्रतिवेदन एवं अभिलेखों को तैयार करना और लिखना एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। इन प्रतिवेदनों और अभिलेखों की विशेष विषय वस्तु (content) और शैली में संस्था की नीतियों के अनुसार भिन्नता हो सकती है परन्तु इनके प्रकार समान होते हैं। व्यक्तियों और समूहों के निबन्धन (registration) भर्ती, उपस्थिति (attendence) के विषय में सूचनाएँ (data) लिखने के लिये निबन्धन कार्ड या रजिस्टर का प्रयोग किया जाता है।

कार्यकर्ता भी समूहों के क्रियाकलापों पर आधारित कार्यक्रमों के प्रतिवेदन रख सकते हैं। समुदाय सम्बन्धी अध्ययन द्वारा इकट्ठा की गयी सूचनाओं को भी अभिलिखित किया जाता है। इसके अतिरिक्त बैठक या सभा के कार्यवृत्त (minutes) को भी कार्यवृत्त पुस्तक (minutes book) में अभिलिखित किया जाता है। इसका प्रयोग समूह अपने कार्यों की समीक्षा के लिये योजनाएँ बनाने और अनुवर्ती (follow-up) कार्यों के लिये करता है।

दूसरे प्रकार का अभिलेख जो कार्यकर्ता रखते हैं वह है समूह में विकसित हो रही सामूहिक समाज कार्य प्रक्रिया का कालानुक्रमिक वर्णनात्मक अभिलेख (chronological narrative record)। इस प्रकार के अभिलेख में समूह की बैठक का पूरा विवरण लिखा जाता है। इसी को एक प्रक्रिया अभिलेख (process record) कहते हैं क्योंकि इसमें प्राथमिक रूप से सदस्यों के समूह के क्रियाकलापों में भाग लेने की मात्रा और उनकी अन्तः क्रियाओं का उल्लेख होता है जिससे यह पता चलता है कि समूह के कार्यों में प्रत्येक सदस्य की क्या भूमिका रही है। बहुत सी संस्थाओं में इस प्रकार के प्रक्रिया अभिलेख नहीं

रखे जाते जबकि सामूहिक समाज कार्य में व्यक्ति और समूह के विकास की दृष्टि से अभिलेख रखा जाना आवश्यक होता है।

9.2.1 वर्णनात्मक अभिलेखों का महत्व एवं उद्देयश्य

विल्सन और राइलैण्ड के अनुसार प्रतिवेदन और अभिलेख प्रत्येक समाज कार्यकर्ता के उत्तरदायित्व का एक भाग होता है। अभिलेख के लिखने और उसका विश्लेषण करके ही कार्यकर्ता सामूहिक समाज कार्य में अपनी निपुणता को दर्शाता है क्योंकि वह उसे समूह में सदस्यों को भली–भांति समझने में सहायता देते हैं। अभिलेखन के दौरान वह समूह की बैठक को फिर से अनुभव करता है सदस्यों के व्यवहार के अर्थों को समझता है, अपनी भूमिका का स्पष्टीकरण करता है, और सम्पूर्ण समूह की गति को समझता है। अभिलेख से ही वे समूह के सदस्यों और कार्यकर्ता के रूप में अपने स्वयं में हो रहे विकास के परिणामों को सामने रखते हैं। अभिलेख पर्यवेक्षी (supervisory) कान्फ्रेन्स को विषयवस्तु प्रदान करते हैं। ये अभिलेख भविष्य में कार्यक्रमों के नियोजन में सहायता देते हैं। ये अभिलेख संस्था का स्थायी एवं निरन्तर अभिलेख बनते हैं जो संस्था के कार्यों एवं नियोजन के एक उपकरण बनते हैं। आने वाले कार्यकर्ता के लिये ये अभिलेख सूचनाओं और प्रबोध का स्रोत बनते हैं। ये अभिलेख जनता के समक्ष संस्था द्वारा किये जा रहे कार्यों का अर्थनिरूपण करते हैं।

वर्णनात्मक अभिलेखों की प्रमुख महत्ता कार्यकर्ता की दृष्टि से यह मानी जाती है कि ये उसे समूह के साथ अपनी भूमिका को और अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायता देते हैं अर्थात् समूह को दिये जाने वाले अनुभव की गुणता (quality) में वृद्धि करना इस अभिलेख का मुख्य उद्देश्य होता है।

9.3 प्रक्रिया अभिलेख (process record)

कार्यकर्ता प्राथमिक रूप से अपने लिये और समूह के साथ अपने सम्बन्ध में निरन्तर प्रयोग के लिये लिखता है। समूह के साथ कार्यकर्ता के सम्बन्धों और उसकी भूमिका में हो रहे विकास की वर्णनात्मक अभिलेख द्वारा ही समझा जा सकता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण (in-service training) और समाज कार्य की व्यावसायिक शिक्षा के लिए अध्यापन सामग्री (teaching material) अच्छी तरह लिखे गये वर्णनात्मक अभिलेखों से ही मिलती है। सामूहिक अभिलेख अध्ययन, (study) अनुसंधान (research) और प्रयोग (experiment) के लिये अनिवार्य होते हैं।

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि अच्छी तरह लिखे गये वर्णनात्मक अभिलेख के बहुत से उद्देश्य होते हैं जैसे समूह का ज्ञान, मूल्यांकन (evaluation), पर्यवेक्षण (supervision), भविष्य के कार्यक्रम नियोजन (future programme planning), संस्था के कार्यों को सम्पन्न करना (fulfillment of agency functions), सामूहिक अन्तःक्रियाओं और परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान और प्रबोध (knowledge and understanding of group interactions and Inter-relationships)।

समूह के कार्यकर्ता के सम्बन्धों और भूमिका का ज्ञान (knowledge of worker-group relations and his role), नये कार्यकर्ता के मार्गदर्शन में सहायता (help in guidance of new worker), समाज कार्य की शिक्षा में सहायता (help in social work education), अनुसंधान में सहायता (help in research), मूल्यांकन और पर्यवेक्षण में सहायता (help in evaluation and supervision), सदस्यों द्वारा क्रियाकलापों में भाग लेने के स्तर का ज्ञान (knowledge of the level of participation by members in group

activities), समूह के सदस्यों की इच्छाओं एवं अभिरूचियों को समझना (understanding of group members needs and interests), सेवाओं में सुधार (improvement of services) आदि।

सामूहिक समाज कार्य अभिलेखों के किये जाने में कार्यकर्ता को जिन कारकों पर एकाग्रता रखनी चाहिए वे हैं– समूह की स्थिति में व्यक्तियों के मिलकर कार्य करने पर (individuals) व्यक्तियों द्वारा उनकी सहभागिता से प्रदर्शित आपसी सम्बन्धों पर (relationships) समूह के अन्दर और समूहों के बीच अन्तः क्रिया पर (interaction) और सहायता की भूमिका का सम्पादन करते हुए कार्यकर्ता पर (worker) अर्थात् इस एकाग्रता का केन्द्र कौन, (समूह के सदस्य) क्या (कार्य जो वह मिलकर करते हैं), कैसे (जिस तरीके से वह साथ मिलकर कार्य करते हैं और क्यों (कार्यों में सफलता के कारण) who? what? how? and why?

9.3.1 वर्णनात्मक अभिलेख में विषयवस्तु (Content of narrative records)

वर्णनात्मक अभिलेख का लिखा जाना सामूहिक समाज कार्य में कार्यकर्ता के कार्यों का एक भाग है। जब कार्यकर्ता को सामूहिक समाज कार्य के सिद्धान्तों, ज्ञान और बोध की अच्छी अन्तर्दृष्टि होती है तभी उसके द्वारा लिखे जाने वाले अभिलेखों में इन सबका उल्लेख मिलता है। ट्रेकर ने एक अच्छे अभिलेख में निम्नलिखित बातों का होना अनिवार्य बताया है।

(1) समूह के विषय पर परिचयात्मक सूचनाएँ (identifying information of the group) अर्थात्, इसका नाम, तिथि, समय, स्थान, बैठक का स्थान, उपस्थित एवं अनुपस्थित सदस्यों के नाम।

(2) व्यक्तियों के नाम सहित विवरण–अर्थात् वे क्या करते हैं, क्या कहते हैं, समूह में अन्य सदस्यों के साथ कैसे सम्बन्ध रखते है, उनके क्रियाकलापों में भाग लेने का अनुक्रम (sequence) सदस्यों का योगदान (contribution) उनके द्वारा सहभागिता की संवेगात्मक गुणता जो उनके व्यवहार द्वारा प्रदर्शित होती है।

(3) कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाकलापों, सकारात्मक एवं नकारात्मक अनुभवों और समूह के विकास के विभिन्न पक्षों का चित्रण।

(4) समूह के कार्यकर्ता के सम्बन्धों और भूमिका के सम्पादन का विवरण।

(5) समूह की बैठक के अन्त में इस बैठक में होने वाले सम्पूर्ण कार्य का मूल्यांकन।

(6) समूह के साथ नियोजित या अनौपचारिक बैठक के पूर्व, बाद में और बैठक के बीच में होने वाली सभी बातों का विवरण।

9.3.2 अभिलेखन के सिद्धान्त (Principles of Recording)

लिन्डसे (Lindsay) ने अभिलेखन के इन पांच सिद्धान्तों का उल्लेख किया : (1) लचीलापन का सिद्धान्त (The Principle of Flexibility) जिसके अर्थ हैं कि अभिलेख को संस्था के उद्देश्य के अनुकूल लिखा जाना चाहिए क्योंकि सामूहिक समाज कार्य और संस्था के उद्देश्य एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।

(2) चयन का सिद्धान्त (The Principle of Selection) जिसका अर्थ है कि कार्यकर्ता सभी बातों को अभिलिखित नहीं करता बल्कि व्यक्तियों और समूहों के विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण सामग्री का चयन करके अभिलेख में सम्मिलित करता है।

(3) सुपाठ्यता का सिद्धान्त (The Principle of Readability) जो इस विचार पर आधारित है कि प्रकार और शैली महत्वूपर्ण होते हैं और सभी लिखित सामग्री में व्याख्यान की स्पष्टता अनिवार्य होती है।

(4) गोपनीयता का सिद्वान्त (The Principle of Condidentiality) जिसका अर्थ है कि अभिलेख एक व्यावसायिक प्रलेख या दस्तावेज होता है और इसी कारण इसकी विषयवस्तु को व्यावसायिक नैतिकता के अनुसार सुरक्षित रखा जाना चाहिये, और (5) कार्यकर्ता द्वारा स्वीकृत का सिद्वान्त (The Principle of Worker Acceptance) जिसका अर्थ है कि कार्यकर्ता को अभिलेख लिखने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करना चाहिये।

कार्यकर्ता को अपने अभिलेखों की फिर से समीक्षा करके उस पर आधारित एक विश्लेषण और उसका सारांश तैयार करना चाहिये जो उसके लिये काफी उपयोगी हो सकता है।

विल्सन और राइलैण्ड ने अभिलेख की विषय वस्तु को अभिलिखित करने का यह क्रम बताया है।

(1) उपस्थित सदस्यों के नाम,
(2) अनुपस्थित सदस्यों के नाम,
(3) पिछली बैठक से लेकर अब तक के सदस्यों से सम्पर्क का विवरण जिसमें घरेलू मुलाकात, वैयक्तिक साक्षात्कार या आकस्मिक मुलाकात सम्मिलित है,
(4) समूह के अधिवेशन या बैठक की प्रक्रिया का अभिलेख। इसमें कौन पहले आया, कौन किसके साथ आया, किस सदस्य ने किसके साथ क्या किया, किस सदस्य ने क्या कहा, निर्णय कैसे लिया गया।, कार्यकर्ता ने क्या किया और सदस्यों को किस प्रकार इसका प्रत्युत्तर दिया, आदि सम्मिलित है,
(5) इस अधिवेशन या बैठक का विश्लेषण जिसमें सामूहिक अन्तर्क्रियाओं, उपसमूहों का गठन, परिवर्तन या स्थिरता, सामूहिक संघर्ष और इसके कारण, इन संघर्षों के विभिन्न पक्षों की व्याख्या और कार्यकर्ता द्वारा उन सदस्यों के व्यवहार का सारांश जो उसके सामने कठिनाई लाता हो, कार्यक्रम की विषय वस्तु पर कार्यकर्ता के विचार, कार्यकर्ता की सहायता भूमिका की समीक्षा, आदि सम्मिलित है,
(6) समूह के अगले अधिवेशन या बैठक की तैयारी की योजना।

9.4 सामूहिक समाज कार्य में मूल्यांकन (Evaluation in Social Group Work)

समस्त समाज कार्य अभ्यास में मूल्यांकन विधिवत् किया जाता है। इसके लिये अनुसंधान की प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है या मूल्यांकन साधारण विवरणात्मक प्रकृति का हो सकता है जिनमें सेवार्थी की संतुष्टि एवं संस्था के उद्देश्यों की संतुष्टि सामुदायिक प्रत्याशाओं के संदर्भ में देखी जा सकती है। मूल्यांकन समाज कार्य की किसी भी प्रणाली की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान किया जा सकता है या एक कार्य के पूरे हो जाने पर समीक्षा के रूप में किया जा सकता है।

ट्रेकर के अनुसार मूल्यांकन सामूहिक समाज कार्य का वह भाग है जिसमें कार्यकर्ता संस्था के कार्यों और उद्देश्यों के सम्बन्ध में सामूहिक अनुभवों की गुणता को नापने का प्रयास करता है। यह मूल्यांकन वैयक्तिक विकास, कार्यक्रम की विषयवस्तु या कार्यकर्ता के निष्पादन (performance) पर केन्द्रित हो सकता है क्योंकि यह सब वे पक्ष हैं जो समूह की उपलब्धियों को प्रभावित करते हैं।

मूल्यांकन के लिये व्यक्तिगत सदस्यों के विकास के विस्तृत प्रमाणों को इकट्ठा करना पड़ता है। इन प्रमाणों का अर्थनिरूपण और एकीकरण करना पड़ता है। इसी प्रकार समूह और कार्यकर्ता के मूल्यांकन में भी इस प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। मूल्यांकन को अधिक मूल्यवान बनाने के लिये इसे निरन्तर करते रहना अच्छा होता है न कि कभी–कभी करना। मूल्यांकन का आरम्भ व्यक्तियों और समूहों के विशिष्ट उद्देश्यों का प्रतिपादन करने से ही हो जाता है। इसके बाद दूसरा चरण (step) समायोजन और विकास के अवसर के लिये सामूहिक अनुभवों का प्रदान करना है। इसके बाद कार्यकर्ता व्यक्तियों के व्यवहार का पूरा अभिलेख रखता है और उनके प्रत्युत्तरों का अध्ययन करता है।

इस प्रकार मूल्यांकन से व्यक्तियों और समूहों के उद्देश्यों में आशोधन किया जाता है। यदि प्रमाण यह बतायें कि वर्तमान कार्यक्रम समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है तो उसे चलते रहने दिया जाता है। परन्तु यदि यह पता चले कि दिये जाने वाले अनुभवों की गुणवत्ता का विकास करने के लिये सामूहिक स्थिति को बदलना आवश्यक है तो उसे बदल दिया जाता है। मूल्यांकन की महत्ता इसलिये और अधिक बढ़ जाती है क्योंकि केवल इसी के माध्यम से यह चलता है कि कहाँ तक उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही है। बिना निरन्तर मूल्यांकन के उद्देश्य अप्रचलित (out-moded) हो जाते हैं, कार्यक्रम स्थिर (static) बन जाते हैं, और समूह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल हो जाते हैं।

प्रत्येक कार्यकर्ता और संस्था का यह मूलभूत दायित्व हो जाता है कि वह मूल्यांकन को सामने रखकर अपने अभ्यास के विषय में पुनः चिन्तन करके उसे पुनः संगठित करें। इसके अतिरिक्त मूल्यांकन इसलिये भी महत्ता रखता है क्योंकि इसके माध्यम से उद्देश्यों की प्राप्ति का ज्ञान, और नये उद्देश्यों के निर्माण में सहायता मिलती है, समूह के साथ कार्य करने के परिणामों का पता चलता है, सामूहिक समाज कार्य प्रणाली की विभिन्न प्रविधियों की उपयुक्ता का ज्ञान होता है, और व्यवसाय का विकास होता है।

ट्रेकर ने सामूहिक समाज कार्य के मूल्यांकन को निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया कहकर एक चित्र के माध्यम से इस प्रक्रिया में निम्नलिखित कार्यों का उल्लेख किया है :–

(1) संस्था के उद्देश्यों के संदर्भ में व्यक्तियों और समूहों के लिये उद्देश्यों का प्रतिपादन या निर्माण करना।

(2) व्यक्ति और समूह के विकास व उन्नति को निश्चित करने के लिए मानदण्ड को पहचानना या उसका ज्ञान रखना।

(3) विकास एवं परिवर्तन लाने के लिये कार्यक्रम सम्बन्धी अनुभवों का प्राविधान करना।

(4) व्यक्ति एवं समूह के व्यवहार का पूरा अभिलेख रखना।

(5) विकास और उन्नति के मानदण्ड का प्रयोग करके अभिलखों का विश्लेषण करना।

(6) यह निश्चित करने के लिये कि क्या उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है विश्लेषणात्मक आँकड़ों या सूचनाओं का अर्थनिरूपण करना।

(7) कार्यक्रम की विषयवस्तु और प्रणाली की समीक्षा या पुनरावलोकन (review) करना।

(8) उद्देश्यों में आशोधन करना तथा मूल्यांकन को निरंतर बनाये रखना।

इस प्रकार सामूहिक समाज कार्य अभ्यास के अन्तर्गत जितने भी कार्य किये जाते हैं, उद्देश्यों के संदर्भ में उन सबका मूल्यांकन होता रहता है। इस मूल्यांकन में सामूहिक समाज कार्य की क्रियाओं, कार्यक्रमों, दशाओं, स्थितियों और व्यक्तियों, समूहों, कार्यकर्ताओं एवं संस्थाओं के सभी पक्षों का मूल्यांकन सम्मिलित होता है। इस मूल्यांकन के ये पक्ष हैं: कार्यक्रम का संचालन, पारस्परिक स्वीकृति, सदस्यों एवं कार्यकर्ता द्वारा भाग लेने के समान अवसरों की उपलब्धि, समूह एवं सदस्यों में आत्म–विश्वास, आत्म–निर्णय, आत्म–निर्देशन का विकास, कार्यक्रम के नियोजन और संचालन की क्षमता, वैयक्तिक, वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्तरदायित्व का विकास, आदि। कार्यकर्ता की भूमिका, उसका व्यवहार और संस्था की भूमिका और इसके सभी कर्मचारियों के व्यवहार के संदर्भ में मूल्यांकन किया जा सकता है।

बर्नस्टीन (Bernstein) ने सामूहिक समाज कार्य में मूल्यांकन के लिए एक सारिणी को विकसित किया हैः इस सारिणी के तीन प्रकार बताये हैं :

9.4.1 (1) समूह मूल्यांकन सारिणी (Group Evaluation Chart)

जिसमें विभिन्न सामूहिक मानदण्डों का श्रेणीकरण (gradation) चार स्तरों पर किया है– पश्चगमन (retrogression), या प्रतिगमन (regression), स्थिर (static), मामूली उन्नति (slight progress) और अधिक उन्नति (great progress)। सामूहिक मानदण्डों में यह कारक रखे हैं: उपस्थिति, समूह गठन, समूह स्तर, कार्यक्षेत्र में विस्तार, सामाजिक उत्तरदायित्व (परस्पर, संस्था के प्रति, समुदाय के प्रति), मूल्यांकन रूचियाँ, संघर्षों का निवारण, नेतृत्व एवं सहभागिता, सहकारिक, नियोजन, सामूहिक विचार (group thinking) समूह शक्ति तथा मनोबल (group loyality and morale) परस्पर अन्तरों की स्वीकृति, नेतृत्व की आवश्यकता में कमी।

9.4.2 (2) व्यक्तिगत मूल्यांकन सारिणी (Individual Evaluation Chart)

जिसमें व्यक्ति के मानदण्डों का भी समूह की भांति ही श्रेणीकरण किया जाता है। व्यक्ति में मानदण्ड में ये कारक रखे हैं : उपस्थिति, नवीन निपुणताएँ तथा रूचियां, नवीन ज्ञान, विस्तृत शक्ति, सहभागिता का क्षेत्र एवं दर, नेतृत्व, पूर्वाग्रहों या पक्षपातों (prejudice) में कमी, समूह में स्थान, कुसमायोजन के लक्ष्य, स्वास्थ्य (health) विकास, व्यावसायिक (vocational) विकास, शैक्षिक विकास।

9.4.3 (3)सदस्यों का समूह में योगदान सारिणी (Members Group Contribution Chart)

जिसके माध्यम से समूह के विकास में सदस्य के योगदान का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक बैठक के बाद इसका प्रयोग किया जाता है। इस सारिणी के दो पक्ष हैं और प्रत्येक पक्ष में पांच पांच अंक दिखाये गये हैं : ये दो पक्ष हैं– (1) रचनात्मक योगदान, (2) विध्वंसात्मक योगदान।

9.5 सामूहिक समाज कार्य पर्यवेक्षण

समाज कार्य में 'सहायता' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसे प्रत्येक स्तर पर इसमें प्रयोग किया जाता है। समाज की सहायता का तात्पर्य सेवार्थी को व्यक्तित्व विकास के अवसर प्रदान करना है जिससे कि वह समाज में उचित सामंजस्य कर सके। समाज कार्य अपने कार्यकर्ताओं को कुशल एवं व्यावसायिक बनाता है जिससे कि वे प्रभावपूर्ण तरीके से पर्यवेक्षण करते हुए समस्याओं का समाधान कर सकें। कार्यकर्ता पर्यवेक्षण के द्वारा समूह सदस्यों के ज्ञान एवं अनुभव में वृद्धि करता है।

9.5.1 पर्यवेक्षण की परिभाषाएँ

पर्यवेक्षण में निम्नलिखित तत्व विद्यमान होते हैं :

(अ) संस्था के शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में उत्तरदायित्व;

(ब) पर्यवेक्षण का कार्य अभिकरण के साथ सम्पर्क में होना; तथा

(स) दर्शन, अवधारणा तथा समाज कार्य के उद्देश्य।

उपरिवर्णित तत्व समूह समाज कार्य पर्यवेक्षण में विद्यमान रहते हैं। वर्यवेक्षण की परिभाषा देने में उपर्युक्त तत्वों की सलिप्तता स्पष्ट होती है साथ ही साथ अभिकरण प्रशासन द्वारा समय–समय पर सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

आर.पी. वरजीवा के अनुसार, ''पर्यवेक्षण को शैक्षिक क्रियाकलाप के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जब व्यक्ति अपने विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता के आधार पर लोगों को प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व वहन करता है।''

एल.एन. अस्टिन के अनुसार, ''पर्यवेक्षण का तात्पर्य उत्तरदायित्व के साथ क्रियाकलापों को देखना एवं नियन्त्रित करना है।''

विल्सन एवं राइलैण्ड के अनुसार, ''कार्यकर्ता और पर्यवेक्षक के मध्य सम्बन्ध पर्यवेक्षण कहलाता है।'' इस प्रक्रिया में पर्यवेक्षक को संस्था के क्रियाकलापों, सामाजिक परिस्थितियों, संस्था के उद्देश्यों एवं कार्यों इत्यादि की जानकारी होती है और वह इस जानकारी के आधार पर कार्यकर्ता की पर्यवेक्षण कार्य में सहायता करता है जिसके लिए उसकी संस्था में नियुक्ति हुई है।

उपरिवर्णित विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामूहिक समाज कार्य में पर्यवेक्षण का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें कार्यकर्ता द्वारा सामूहिक क्रियाकलापों का प्रत्यक्ष ऑकलन किया जाता है और आवश्यक दशाओं का पर्यवेक्षण भी किया जाता है।

पर्यवेक्षण अपने ज्ञान एवं निपुणताओं के आधार पर समाज कार्यकर्ता को उसकी भूमिका के कुशल निष्पादन एवं उद्देश्य प्राप्ति में मानसिक रूप से सुदृढ़ बनाता है।

9.5.2 पर्यवेक्षक के कार्य

समूह समाज कार्य में पर्यवेक्षक के निम्नलिखित कार्य होते हैं :–

1. समाज कार्यकर्ता में विशेषज्ञता का समावेश करना।
2. ज्ञान एवं निपुणताओं को कार्यकर्ता में बढ़ाना।
3. कार्यकर्ता की उसकी भूमिका निष्पादन में सहायता करना।
4. सिद्धान्तों एवं निपुणताओं के कुशलतम उपयोग हेतु प्रोत्साहित करना।
5. संस्था के उद्देश्यों के प्रति जागरूक करना।
6. कार्यकर्ता को उसके समूह में स्वयं के प्रयोग हेतु निर्देशित करना।
7. समूह की उन्नति एवं विकास के लिए कार्यकर्ता को लचीलेपन की अवधारणा से अवगत कराना।
8. कार्यकर्ता की समस्याओं का समाधान करना।
9. कार्यकर्ता को उसकी योग्यताओं एवं सीमाओं का बोध कराना।
10. नये अनुभव प्राप्त करने के लिए निर्देश देना।
11. समुदाय, समूह एवं संस्था के संसाधनों के विषय में जानकारी प्रदान करना।

9.5.3 समूह समाज कार्य में पर्यवेक्षण के अंगभूत

समूह समाज कार्य के अन्तर्गत पर्यवेक्षण की महत्ता इस तथ्य से स्पष्ट परिलक्षित होती है कि यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समूह कार्यकर्ता संस्था के निहित उद्देश्यों, कार्यों एवं दिशा निर्देशों के अनुरूप समूह की आन्तरिक एवं वाह्य स्थितियों का स्वस्थ ऑकलन करता है। इस दृष्टि से पर्यवेक्षण प्रक्रिया के अंगभूत हैं :

1) कार्यकर्ता
2) समूह

3) संस्था

9.6 ''नेतृत्व''

प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता होती है धर्म–प्रधान समाजों में धर्मगुरू इस कार्य को करते हैं। सामन्तवादी समाज में, सामन्त तथा भू–स्वामी नेतृत्व का कार्य करते हैं। किन्तु लोकतांत्रिक समाज में नेता आम जनता के बीच से विकसित होते हैं।

नेतृत्व एक सार्वभौमिक घटना है। सामाजिक जीवन के साथ–साथ किसी न किसी प्रकार के नेतृत्व का भी अस्तित्व रहा है। सामाजिक मनोविज्ञान में नेतृत्व का अध्ययन महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक विकास–क्रम की दृष्टि से भी सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी प्रकार के नेतृत्व का अस्तित्व रहा है। किन्तु नेतृत्व है क्या, इसे स्पष्ट करने के लिए हमें सर्व प्रथम नेता की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक होगा।

नेता का अर्थ

सामान्य बोल–चाल में किसी राजनीतिक (Political) व्यक्ति को नेता कहा जाता है। लेकिन सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत नेता का अर्थ केवल किसी राजनीतिक व्यक्ति तक ही सीमित नहीं है, वरन् इसका अभिप्राय एक ऐसे व्यक्ति से है जिसका किसी परिस्थिति में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रभाव होता है।

स्प्रोट के मतानुसार, ''कोई भी व्यक्ति जो दूसरों के लिए आदर्श है, बहुधा नेता कहलाता है।'' नेता से दूसरों को प्रभावित करने और उनके व्यवहार का निर्देश करने की शक्ति होती है। नेता सामाजिक क्रियाओं को नवीन दिशा की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। इससे स्पष्ट है कि नेता का अभिप्राय केवल राजनीतिक व्यक्ति से नहीं है, बल्कि नेता सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाये जाते हैं जो अन्य लोगों को प्रभावित करते हैं, और लोगों द्वारा उनका अनुकरण किया जाता है।

नेतृत्व की परिभाषा

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष किसी न किसी प्रकार के नेता द्वारा निर्देशित होता है। नेतृत्व में प्रभुत्व या प्रबलता का समावेश होता है। मनुष्य सदा से किसी न किसी प्रकार के नेतृत्व में जीवन व्यतीत करता आया है। 'नेतृत्व' के स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अवलोकन आवश्यक है।

(1) लेपियर तथा फ्रैन्सवर्थ– ''नेतृत्व एक ऐसा व्यवहार है जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को उससे कहीं अधिक प्रभावित है, जितना कि उनका व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।

"Leadership is a behaviour that affects the behaviour of other, people more than their behaviour affects that of the leader" -Lapiere and Fransworth

(2) पिगर्स के मतानुसार– ''नेतृत्व एक ऐसी अवधारणा है जिसे व्यक्तित्व तथा वातावरण के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाता है ताकि उस स्थिति का वर्णन किया जा सके जिसमें व्यक्तित्व द्वारा समान उद्देश्य को पाने के लिए दूसरों का नियन्त्रण तथा निर्देशन किया जाता है।''

"Leadership is a Concept applied to the personality environment relation to describe the situation who a personality is so placed is the environment that his will feelings and in insight direct and control others is persuit of a comman cause".

- Pigors

(3) **मैकाइवर तथा पेज–** ''नेतृत्व से हमारा तात्पर्य व्यक्तियों को प्रोत्साहित या निर्देशित करने वाली योग्यता से है जो पद के अलावा व्यक्तिगत गुणों पर आधारित है।''

"By leadership we mean the capacity to persuade or to direct men, that comes from personal qualities apart from office". - MacIaver and Fage

इस विवेचन से स्पष्ट है कि नेतृत्व व्यवहार की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा स्वयं नेता की अपेक्षा अन्य व्यक्ति अधिक प्रभावित होते हैं। नेतृत्व सदैव किसी समुदाय या समूह में होता है। इसके लिए लोगों की कुछ समान आवश्यकतायें तथा समस्याओं का होना भी आवश्यक है। ऐसी परिस्थिति में जो व्यक्ति उन समस्याओं को हल करने या आवश्यकताओं को पूरा करने की अधिक क्षमता रखता हो, वह नेता का रूप धारण कर लेता है। नेतृत्व में किसी व्यक्ति की विशेषता मात्र का समावेश नहीं है। इसमें परिस्थिति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। किस समूह में कौन नेता बनेगा और उसके नेतृत्व की क्या विशेषताएँ होगी, यह समूह की परिस्थिति पर निर्भर रहता है।

9.7 प्रभुत्व तथा नेतृत्व

नेतृत्व की अवधारणा के साथ प्रभुत्व की अवधारणा का ही समावेश होता है। अतः नेतृत्व के साथ–साथ प्रभुत्व की अवधारणा को स्पष्ट करना भी आवश्यक है। किम्बल यंग के अनुसार, ''हम प्रभुत्व को एक ऐसे कार्य या प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो दूसरे की मनोवृत्ति या प्रतिक्रिया को प्रभावित करती है।''

प्रभुत्व के अनेक अंश नेतृत्व में विद्यमान रहते हैं। बिना प्रभुत्व के नेतृत्व संभव नहीं होता। समाज में जो शक्तिशाली होता है, उसका दूसरों के ऊपर प्रभुत्व होता है। अतः कमजोर सदस्य सदैव शक्तिशाली के प्रभुत्व को स्वीकार करता है। प्रभुत्व का यह नेतृत्व में भी पाया जाता है। प्रभुत्व की भावना का विकास जिस प्रकार परिवार के वातावरण से होता है, उसी प्रकार नेतृत्व की भावना का विकास भी परिवार से आरम्भ होता है। नेतृत्व जिस प्रकार दूसरों को प्रभावित करता है उसी प्रकार प्रभुत्व द्वारा भी दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित किया जाता है। स्प्रोट के अनुसार, नेतृत्व की अवधारणा अनुयायियों के सम्बन्ध में सम्पत्ति प्रकाशित करती है। प्रभुत्व में उन व्यक्तियों के ऊपर एक दबाव होता है जो कि प्रभुत्व को स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार प्रभुत्व और नेतृत्व एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किम्बल यंग का मत है कि ''बिना अधीनता के कोई भी प्रभुत्व नहीं, प्रचलित सम्भाषण में बिना अनुयायियों के कोई नेता नहीं होता।''

नेताओं के आधर पर नेतृत्व को अनेक वर्गों में विभक्त किया जाता है। इनसे निम्नलिखित वर्गीकरण विशेष उल्लेखनीय हैं।

(क) मार्टिन कानवे द्वारा नेतृत्व का वर्गीकरण

मार्टिन कानवे नेताओं की चार कोटियों का उल्लेख किया है, जो निम्न प्रकार हैः– उन्हें तीन प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं– (1) नियोजन, (2) संगठन एवं (3) प्रोत्साहन।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नेता होने के लिए व्यक्ति में कुछ शारीरिक तथा मानसिक गुणों का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त नेतृत्व के लिए परिस्थितियाँ भी काफी महत्वपूर्ण हैं। परिस्थितियों के बदलने से नेतृत्व भी एक नेता के हाथ से दूसरे नेता के साथ चला जाता है। परिस्थितियाँ यह निश्चित करती हैं कि समाज में किस प्रकार नेतृत्व की आवश्यकता है। इस प्रकार नेतृत्व एक सापेक्षिक प्रत्यय (Relative Concept) है जिसके निर्धारण के हेतु समूह परिस्थिति तथा नेता के गुण आदि सभी का योगदान होता है।

9.7.1 नेतृत्व की उत्पत्ति और विकास

नेतृत्व की उत्पत्ति अनेक कारकों पर आधारित है। इसके लिए अनेक विशेषताओं की आवश्यकता होती है। नेता के लिए साहस तथा विभिन्न समस्याओं को हल करने की योग्यता होनी आवश्यक है। इस कारण, ब्राउन आदि विद्वानों के अनुसार नेता में योग्यता और शक्ति का होना आवश्यक है। इस विचारधारा के अनुसार, नेता की प्रतिभा ईश्वरीय देन होती है। इस कारण नेता जन्मजात होते हैं। इसके विपरीत, जैकिन्स तथा केरल के अनुसार, नेतृत्व के निर्माण के लिए परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं। समाज में जब कभी समस्यात्मक या अनियंत्रित परिस्थितियाँ होती हैं तो नेताओं की उत्पत्ति होती हैं।

मनोविश्लेषणवादियों का मत

मनोविश्लेषणवादी विचारकों के अनुसार, नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए इच्छा, कामलोलुपता, विफलता, धनलोलुपता, मर्यादा की लालसा, दमन, परिशोधन, घृणा, हीन भावना, युक्ताभास तथा पारिवारिक अनुभव महत्वपूर्ण हैं। मनोविश्लेषणवादी विचारक काम–इच्छाओं के दमन तथा मनोरचनाओं के विकास को, नेतृत्व के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं।

मनोविश्लेषणवादी विचारकों के अनुसार कामेच्छा का दमन तथा मनोरचनाओं का विकास नेतृत्व की उत्पत्ति का मूल कारण है। कामेच्छा का उर्ध्वीकरण (Sublimation) नेतृत्व के रूप में परिणत हो जाता है। दूसरे शब्दों में कामेच्छा की शक्ति का नेतृत्व की शक्ति में रूपान्तरण (Transformation) हो जाता है। इस सम्बन्ध में सिगमण्ड फ्रायड ने ल्यूनाडो डीर्विसी (Leonardo Devincy) का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसके अच्छे कार्यों का मूल कारण कामेच्छा का उर्ध्वीकरण (Sublimation of Sex) है। इसी प्रकार लेसविल ने अनेक नेताओं का अध्ययन किया और यह पाया कि पारिवारिक कटु अनुभव–हीन भावना, कामेच्छा का दमन, दोष–भावना, अधिकार लोलुपता, इत्यादि नेतृत्व की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है।

इसी प्रकार एरिक फ्राम महोदय ने हिटलर के व्यक्तिगत जीवन का विश्लेषण किया और यह पाया कि विफलता नेतृत्व की उत्पत्ति का मूल कारण है। फ्राम के अनुसार पीड़ातोम्बिक (Sadistic) तथा पीड़ानन्द (Masochiotic) प्रवृत्तियों के विकास से सत्तावादी नेतृत्व की उत्पत्ति होती है। कौक्स तथा एण्डरसन द्वारा किये गये प्रयोग भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। कौक्स ने यह अध्ययन किया कि व्यवसाय, शिक्षा तथा परिवार का नेतृत्व की उत्पत्ति में क्या प्रभाव पड़ता है। कौक्स ने पाया कि उसके अध्ययन में सम्मिलित नेताओं में से केवल पाँच प्रतिशत नेता ऐसे हैं जो निम्न और अर्द्धशिक्षित परिवारों में पैदा हुए थे। शेष लगभग उच्च परिवारों से उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार एण्डरसन ने बच्चों में नेतृत्व की प्रवृत्ति का अध्ययन किया और यह पाया कि जिन घरों में आधिपत्य की भावना होती है वहाँ बच्चों में नेतृत्व की भावना अधिक पाई जाती है।

बोगार्डस के अनुसार नेतृत्व की उत्पत्ति

नेतृत्व की उत्पत्ति के बारे में बोगार्डस ने निम्नलिखित कारकों का उल्लेख किया है–

(1) वंशानुक्रम

नेतृत्व के लिए जन्तजात गुणों का होना भी आवश्यक है। न्याय परिस्थितियों के बावजूद भी नेतृत्व के गुण प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से नहीं पाये जाते हैं। गाल्टन के अनुसार व्यक्ति की प्रतिभा जन्मजात होती है। इसे समाज मे रहकर अर्जित नहीं किया जा सकता।

(2) सामाजिक उत्तेजनाएँ

नेतृत्व के विकास के लिए सामाजिक उत्तेजनाओं का होना भी आवश्यक है। इन उत्तेजनाओं से नेतृत्व के विकास का अवसर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न समाजों की परिस्थितियाँ एक दूसरे से भिन्न होती हैं। अतः परिस्थितियों के अनुसार भी नेतृत्व का विकास होता है।

(3) व्यक्तित्व (Personality)

नेतृत्व के लिए व्यक्तित्व भी एक पूर्ण कारक है। इसमें व्यक्ति की शक्ति, चरित्र, बुद्धि तथा शारीरिक आकर्षण आदि का समावेश होता है । ये सभी कारक नेतृत्व के विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नेतृत्व के विकास के लिए अनेक कारकों का समावेश होता है। संस्कृति, सामाजिक आदर्श, सामाजिक मान्यताएँ तथा समाज की तत्कालीन परिस्थितियाँ नेतृत्व के गुणों को विकसित होने में मदद करती है। इसके विपरीत समानुक्रम के रूप में व्यक्ति कुछ विशेष गुणों को विरासत में प्राप्त करता है। इन सभी कारकों के सहयोग से समाज में नेतृत्व का विकास होता है। अनेक मनोवैज्ञानिक तत्व के गुणों को जन्मजात मानते हैं। उनके अनुसार सामाजिक परिस्थितियाँ नेतृत्व गुणों का विकास नहीं करती, बल्कि उन गुणों के विकास को प्रोत्साहित करती हैं। नेतृत्व के विकास में सामाजिक तथा जन्मजात कारक समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

9.7.2 नेता के कार्य

समाज में नेता द्वारा अनेक कार्य सम्पन्न होते है। इनकी चर्चा निम्न प्रकार कर सकते हैं–

(1) सामाजिक निदेशन

नेता अपनी विशेषताओं द्वारा दूसरों को प्रभावित करता है। उसमें समस्याओं को हल करने के लिए बुद्धि और शक्ति होती है। अतः समाज का निदेशन करता है।

सामाजिक नियन्त्रण की दृष्टि से नेतृत्व का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस नेतृत्व के स्पष्टीकरण के लिए नेता तथा उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों की विवेचना आवश्यक है। नेता का अभिप्राय एक ऐसे व्यक्ति से है, जिसमें दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता हो और सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए बुद्धि तथा योग्यता हो। इस प्रकार नेता में दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता होती है।

(2) सामाजिक नियन्त्रण

नेता के गुणों को सामाजिक नियन्त्रण की दृष्टि से बड़ा महत्व है। अपनी योग्यता तथा प्रभाव द्वारा अन्य व्यक्तियों के व्यवहार, आचरण तथा क्रियाओं का नियन्त्रण करता है। वह समाज की क्रियाओं को एक विशेष दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसके अतिरिक्त, समाज की परम्पराओं तथा लोकरीतियों को बनाये रखने की दृष्टि से भी नेता का स्थान महत्वपूर्ण है। इसी कारण सामाजिक आदर्शों और नैतिकता की रक्षा के लिए प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार के नेतृत्व का अस्तित्व रहता है।

(3) सामाजिक परिवर्तन

नेता द्वारा जहाँ एक ओर सामाजिक नियन्त्रण में सहायता मिलती है वहाँ दूसरी ओर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्र करने में भी मदद् मिलती है। संक्रमणकालीन स्थितियों में जब समाज एक स्तर से दूसरे स्तर की ओर बढ़ रहा हो तब नेतृत्व का होना आवश्यक है। सामाजिक जीवन ज्यो–ज्यों जटिल होता जाता है, तो उसके साथ ही सामूहिक हित भी बढ़ते रहते हैं।

(4) मार्ग दर्शन

समाज को धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आदि प्रत्येक क्षेत्र के लिए नेता की आवश्यकता पड़ती है।, ऐसे अवसर पर नेता द्वारा समूह के लोगों का मार्ग–प्रदर्शन किया जाता है। इसी कारण मनुष्य आदिकाल से किसी न किसी प्रकार के नेतृत्व में जीवन व्यतीत करता आया है।

9.8 सार संक्षेप

सामूहिक समाज कार्य अभिलेखों के किये जाने में कार्यकर्ता को जिन कारकों पर एकाग्रता रखनी चाहिए वे हैं– समूह की स्थिति में व्यक्तियों के मिलकर कार्य करने पर (individuals) व्यक्तियों द्वारा उनकी सहभागिता से प्रदर्शित आपसी सम्बन्धों पर (relationships) समूह के अन्दर और समूहों के बीच अन्तः क्रिया पर (interaction) और सहायता की भूमिका का सम्पादन करते हुए कार्यकर्ता पर (worker) अर्थात् इस एकाग्रता का केन्द्र कौन, (समूह के सदस्य) क्या (कार्य जो वह मिलकर करते हैं), कैसे (जिस तरीके से वह साथ मिलकर कार्य करते हैं और क्यों (कार्यों में सफलता के कारण) who? what? how? and why?

जिससे सामूहिक समाज कार्य की निपुणताओं द्वारा समूह अध्ययन करना सम्भव होता है। समाज कार्य अपने कार्यकर्ताओं को कुशल एवं व्यावसायिक बनाता है जिससे कि वे प्रभावपूर्ण तरीके से पर्यवेक्षण करते हुए समस्याओं का समाधान कर सकें। कार्यकर्ता पर्यवेक्षण के द्वारा समूह सदस्यों के ज्ञान एवं अनुभव में वृद्धि करता है।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. सामूहिक समाज कार्य में वर्णनात्मक अभिलेखों के महत्व एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए?
2. वर्णनात्मक अभिलेखों में विषयवस्तुओं की चर्चा कीजिए?
3. सामूहिक समाज कार्य में मूल्यांकन की क्या प्रक्रिया है?
4. सामूहिक समाज कार्य में नेतृत्व की क्या भूमिका है ?
5. नेतृत्व की उत्पत्ति एवं विकास की चर्चा कीजिए ?
6. समाज में नेता की भूमिका का वर्णन कीजिए ?

9.10 पारिभाषिक शब्दावली

अभिलेखन – Recording
मूल्यांकन – Evaluation
पर्यवेक्षण – Supervision
प्रक्रिया अभिलेख – process record
वर्णनात्मक अभिलेख में विषयवस्तु – Content of narrative records
अभिलेखन के सिद्वान्त –Principles of Recording
सामूहिक समाज कार्य में मून्यांकन – Evaluation in Social Group Work
समूह मूल्यांकन सारिणी –Group Evaluation Chart
व्यक्तिगत मूल्यांकन सारिणी –Individual Evaluation Chart
नेतृत्व – Leadership

वर्गीकरण	–	Classification
नेता	–	Leader

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
2. Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
3. Harford, M.- Groups in Social Work.
4. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
8. Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
11. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य
12. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य

इकाई–10

सामाजिक समूह कार्य में समूह
Group in Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 परिचय
10.2 समूह निर्माण
10.3 समूह के प्रकार
10.4 कार्यकर्ता के कार्य
10.5 समूह निर्माण की विशेषताएं
10.6 आवश्यकता
10.7 महत्व
10.8 नियोजन
10.9 कार्यक्रम
10.10 समूह विकास का स्तर
10.11 सार संक्षेप
10.12 अभ्यास प्रश्न
10.13 शब्दावली
10.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

- समूह निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेगें।
- समूह के प्रकार की व्याख्या कर सकेगें।
- कार्यकर्ता के कार्यों को समझ सकेगें।
- समूह निर्माण की विशेषताओं को जान सकेगें।
- आवश्यकता को समझ सकेगें।
- महत्व को समझ सकेगें।
- नियोजन को समझ सकेगें।
- कार्यक्रम को समझ सकेगें।
- समूह विकास का स्तर को समझ सकेगें।

10.1 परिचय

लगातार निर्धनता के फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्ग में ऐसी मानसिकता घर कर लेती है कि वह अपना विकास कर सकने में स्वयं सक्षम नहीं हैं और दूसरों पर आश्रित हैं। उनकी इस दशा के कारण वे उत्पादक संस्थानों से पूर्णतः वंचित हो गए है। सम्पन्न वर्गों पर उनकी निर्भरता को और अधिक प्रबल करने में संस्थागत प्रयासों का भी दोष रहा है जिन्होंने कभी गरीबों की क्षमता को नहीं स्वीकारा। उन पर ऊपर से बनाई गई योजनायें थोपी गई जिसके फलस्वरूप नीति निर्धारकों एवं क्रियान्वयकों तथा गरीबों के मध्य लाभदाता तथा प्राप्तकर्ता का सम्बन्ध विकसित हो गया है। गरीब वर्ग प्रत्येक समस्या के लिए सरकार की तरफ उन्मुख हो जाता है और एक तरह का 'डिपैन्डैन्सी सिन्ड्रोम' पैदा हो जाता है अर्थात वे सदैव ही अपने को आश्रित समझते हैं।

स्वयं सहायता समूह

स्वयं सहायता समूह इस पर निर्भर करता है कि गरीबों को संगठित करके तथा उसे स्वयं गरीबी उन्मूलन के प्रयास करने हेतु प्रेरित किया जाये। स्वयं सहायता समूह एक समान सोच, पृष्ठभूमि तथा उद्देश्य वाले सदस्यों के छोटे समूह/संगठन हैं जो अपने सामूहिक क्षमताओं से अपनी समूह समस्याओं के निदान के लिए प्रयत्नशील होते हैं। यह समूह सामाजिक आर्थिक सकारात्मक परिवर्तन तथा सशक्तिकरण के मंच हैं जिनके माध्यम से असंगठित गरीब वर्ग संगठित होकर अपने सामाजिक–आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त करते हैं।

चूँकि समाज में अत्यधिक श्रमशक्ति प्राथमिक सेक्टर व सेवा क्षेत्र में संलग्न रहती है, एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है इसलिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उनका संगठन कैसा हो, क्या आकार हो तथा उसके सामने क्या उद्देश्य है। यह आवश्यक है कि उनके अपने 'एकरूपी' छोटे–छोटे समूह हों जिन्हें वह स्वयं सम्भाल सकें तथा उनका कुशल प्रबन्ध कर सकें।

यह बात पुनः ध्यान देने योग्य है कि समूह का आकार व स्वरूप का निर्धारण पूर्णतः इस बात पर निर्भर करता है कि गरीब अपने समूह का बिना दूसरे पर निर्भर किए हुए प्रबन्धन कर सके व अपने सामूहिक प्रयासों को उत्पादोन्मुखी बना सके। अनुभव बताते है कि समूह में 15–20 सदस्यों का आकार आसानी से संगठित रखा जा सकता है और उन्हें औपचारिक पंजीयन आदि की आवश्यकता भी नहीं होती समूह के स्वरूप निर्धारण के लिए भी 'एकरूपता' की अवधारणा प्रमुख है अर्थात् सदस्यों की समान पृष्ठभूमि, सामान समस्याएं तथा समान आर्थिक व सामाजिक स्तर।

समान आर्थिक स्तर समान पृष्ठभूमि एवं समान समस्याएं सदस्यों को एक साथ उठने बैठने में तो मदद करती ही हैं साथ ही उनमें सर्वमान्य निर्णय लेने की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहित करती है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से किए गए प्रयासों में यह पाया जाता है कि समान सदस्यों वाले समूहों में सदस्यों की अधिकाधिक भागीदारी थी एवं सदस्यों द्वारा क्रियाकलापों के प्रति स्वामित्व की भावना अधिक थी। जहाँ गरीबों आर्थिक निर्धनता उनकी सबसे बड़ी समस्या पाई गई है वहीं सामाजिक एकता उनकी सबसे बड़ी विशेषता। एकता की धरोहर के आधार पर ही वह समाज के अन्य वर्गों से व्यवहार व सौदेबाजी करने में सक्षम पाये गये।

स्वयं सहायता समूहों को भी उनके सदस्यों को सर्वमान्य नियमों तथा उपनियमों के द्वारा संचालित किया जाता है तथा एकता को बढ़ावा देने के लिए बहुसंख्यक के स्थान पर सर्वसम्मिति से

निर्णय लिए जाते हैं। लगभग एक दशक के सफल अनुभवों के आधार पर स्वयं सहायता समूहों की विभिन्न विशेषताएं उभर कर सामने आईं हैं वे निम्नवत हैं।

(1) स्वयं सहायता समूह समान पृष्ठभूमि वाले सदस्यों का एक समान उद्देश्य के लिए गठित समूह है जो समूह में एकरूपता, आर्थिक, सामाजिक, जातिगत, क्षेत्रगत अथवा समान समस्या के फलस्वरूप हो सकती है।

(2) समूह का आकार 15–20 सदस्यों का होता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि समूह में कुशल प्रबन्धन की क्या सम्भावना विद्यमान है अर्थात समूह किस आकार में संगठित रह सकता है।

(3) समूह के अपने नियम उपनियम होते हैं जो कि सदस्यों के द्वारा सर्वसम्मति से निर्धारित किये जाते है।

(4) यद्यपि औपचारिक समूह के नाते लिखित प्रपत्रों का होना आवश्यक नहीं है परन्तु समूह को अन्य संगठनों से भी व्यवहार करना पड़ता है अतएव कार्यवाहियों एवं हिसाब–किताब को पुस्तकों में अंकित किया जाता है।

(5) समूह अपने नियमों के अनुरूप अपने प्रतिनिधियों का चयन करता है जो कि समूह की ओर से विभिन्न प्रतिनिधित्व करते है।

(6) चूंकि समूह गरीब वर्ग के सदस्यों का होता है जो कि सदियों से असंगठित रहे हैं तथा उनमें आर्थिक क्रियाकलापों का ज्ञान अत्यन्त सीमित है अतएव साथ उठने बैठने के लिए प्रेरित करने हेतु तथा आर्थिक लेन देन हेतु प्रशिक्षित करने के लिए बचत क्रियाकलाप आवश्यक रूप से प्रोत्साहित किया जाता है।

(7) आपसी समझ को मजबूत करने तथा एकता को प्रबल करने के लिए आपसी ऋण/आन्तरिक ऋण भी स्वयं सहायता समूहों की पहचान बनकर उभरा है।

(8) समूह द्वारा बैंक से सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं एवं बैंक में अपने खाते के संचालन के साथ–साथ ऋण सुविधा भी प्राप्त की जाती है।

(9) समूह अपने सदस्यों के आर्थिक उन्नतीकरण के लिए उत्पादन ऋण प्रदान करता है साथ ही सामूहिक रूप से आर्थिक क्रियाकलापों का सम्पादन करता है जिसमें प्रत्येक सदस्य को उसकी क्षमता अनुसार कार्य प्राप्त हो जाता है।

(10) समूह आर्थिक क्रियाकलापों के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं के निवारण में सहायक सिद्व हुए हैं अपने सदस्यों के हितों में सामुदायिक सम्पत्तियों का निर्माण उनका रखरखाव करना तथा लोकहितकारी कार्य करना भी इनकी विशेषता रही है।

(11) स्वयं सहायता समूह आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन का एक मंच बनकर उभरे हैं जिनके माध्यम से जागरूकता लाकर सदस्यों की क्षमता का पर्याप्त विकास कर विभिन्न सामाजिक व आर्थिक परियोजनाओं को सफल किया जाता है।

समूह विकास चक्र (ग्रुप डेवलपमेन्ट साइकिल)

गरीबों में निर्भरता की भावना सामान्यतः प्रबल होती है जिसके फलस्वरूप उनमें स्वयं सहायता को प्रोत्साहित करना एक दुष्कर कार्य है परन्तु असम्भव नहीं। सदियों से समाज के एक वर्ग द्वारा शोषित किए जाने के कारण इनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। महिलाओं के साथ समूह गठन में एक और बाधा है उनकी झिझक परन्तु सावधानीपूर्वक उनका विश्वास जीतते हुए उन्हें स्वयं सहायता के लिए प्रोत्साहित करना तथा समूह के रूप में गठित करना चाहिए। यह सबसे महत्वपूर्ण है कि प्रेरक व गरीबों के बीच एक संवाद विकसित हो जिसके माध्यम से उन्हें जागरूक बनाया जायें। समूह में समानता हो इसके लिए प्रारम्भ से ही ध्यान देने की आवश्यकता होती है। लोगों को प्रेरित करते समय ही समानता तथा एकरूपता के विषय में स्पष्ट रूप से बताया जाना आवश्यक है। केवल प्रोत्साहित व्यक्तियों को ही उनकी स्वेच्छा से ही समूह गठित करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रारम्भिक दौर में उचित वातावरण विकसित कर विश्वास जीतने की क्रियाएँ की जाती हैं एवं प्रेरित व्यक्तियों के छोटे तथा समान/एकरूपी समूह विकसित किए जाते हैं।

संगठित होने के लिए आवश्यक है कि संगठन के अपने कुछ नियम हो एवं उन नियमों के अनुसार संगठन का संचालन हों। समूह गठन के समय ही नियम सदस्यों द्वारा अपनी स्वेच्छा से निर्धारित किये जाते है जिनमें प्रमुख है अधिकतम व न्यूनतम सदस्य संख्या, सदस्य की योग्यता व सदस्य शुल्क, समूह का उद्देश्य, बचत न करने पर दण्ड, ऋण के नियम व दण्ड राशि आदि। इस प्रकार समूह का आकार व स्वरूप निर्धारित हो जाता है।

समूह सदस्यों में क्या क्षमताएँ हैं? उनका अभिज्ञात कैसे हो एवं किस प्रकार उनका विकास हो? इसके लिए सर्वप्रथम उनमें एकता समझ तथा नेतृत्व क्षमता विकसित की जाती है समूह में नियमित बैठक हो और बैठक में सभी समस्याओं पर विस्तृत व बेझिझक चर्चा हो इसके लिए आवश्यक है कि समूह के पास बैठक के लिए कोई नियमित क्रियाकलाप हों। नियमित बचत एवं आपसी आन्तरिक ऋण इसका बेहतर माध्यम है। जिसके द्वारा सदस्यों में नियमित बैठक की आदत विकसित हो जाती है। इसलिए समूह में ऋण बचत क्रियाकलाप आवश्यक रूप से प्रोत्साहित किये जाते हैं जिनके माध्यम से आर्थिक व्यवहारों के विभिन्न पहलुओं को समझा जाता है। इस प्रकार प्रारम्भिक काल में इन क्रियाकलापों के माध्यम से नियमित बैठक, नियमित बचत, ऋण क्रियाकलाप तथा सामूहिक निर्णय को प्रोत्साहित किया जाता है।

शैशवकाल अर्थात समूह गठन व प्रारम्भिक काल पूर्ण होने के उपरान्त द्वितीय चरण में समूह तैयार हो चुका होता है कि वह बाहरी दुनिया से लेन देन प्रारम्भ कर सकें तथा अपने सदस्यों में क्षमता व विश्वास विकसित करे ताकि वह सही तरीके से लेन देन कर सके। चूँकि समूह में ऋण बचत क्रियाकलाप प्रारम्भ किए जाते हैं अतएव बैंक एक बेहतर संस्था है जो समूह को प्रारम्भिक लेन देन के लिए तैयार कर सकती है।

समूह अपना सम्बन्ध बैंक में खाता खोलकर पूँजी विकसित करता है तथा समय–समय पर आवश्यकता के अनुरूप ऋण लेकर व्यवहार करता है। वह अपने सदस्यों को भी उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण उपलब्ध कराता है। इसी अवधि में समूह के सदस्यों की क्षमताओं को भी चिन्हित किया जाता है। आर्थिक कार्यक्रमों को अपनाकर समूह अपने सदस्यों को रोजगारपरक कार्यों से जोड़ता है। सामाजिक क्रियाकलापों, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सफाई आदि के माध्यम से सदस्यों की पहुँच इन सेवाओं व सुविधाओं तक सुनिश्चित करता है और इस प्रकार कार्यक्रमों क्रियान्वकों व लाभार्थियों के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

समूह के पूर्ण विकास की अवस्था लगभग तीन साल मानी जाती है जिस अवधि में वह स्वआश्रित हो पाता है अर्थात अपने सदस्यों को सहयोग पहुँचाने में स्वयं सक्षम हो जाता है इस अवधि तक समूह को विभिन्न मार्गदर्शकों की आवश्यकता अवश्य होती है परन्तु लगभग तीन साल की अवधि में समूहों के अपने विकसित सम्पर्कों के फलस्वरूप समूहों में आपसी लेनदेन प्रारम्भ हो जाते हैं। यह वह स्थित होती है जबकि समूहों का संगठन सामाजिक व आर्थिक विकास का भाग बन जाता है एवं अन्य नये समूहों के विकास के लिए उनका अपना संगठन स्वयं सक्षम होता है।

स्वयं सहायता समूह के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

1. गठन व निर्माण अवस्था
2. विकास अवस्था
3. स्वाश्रयी अवस्था

गठन व निर्माण अवस्था

गठन व निर्माण की अवस्था में समूह में अनुकूल डायनामिक्स विकसित होती है और समूह अपनी एकता को सुदृढ़ करता है जिसके अनुरूप व्यवहार सम्पादित होते हैं जैसे आन्तरिक बचत, आन्तरिक समस्याओं का निपटारा आदि।

विकास अवस्था

विकास की अवस्था में वाह्य जगत से सम्बन्ध स्थापित करता है और सदस्यों की क्षमता निर्माण व विकास के लिए कार्य करता है इसी अवधि में समूह सदस्यों के हितों के लिए सामुदायिक परियोजनाओं को मूर्त रूप देता है। समूह अपने संगठन जैसे संकुल व संघ विकसित करता है और सामाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण की ओर अग्रसित होता है

स्वाश्रयी अवस्था

समूह के विकास का तीसरा चरण है स्वाश्रयिता। जब स्वयं सक्षम होकर परियोजनाओं को स्वाश्रयी बनाता है और अपने सदस्यों के विकास की दिशा स्वयं निर्धारित करता है समूह इस अवस्था को प्राप्त करने के उपरान्त आत्मनिर्भर बनकर औपचारिक संगठन बन जाते है।

स्वयं सहायता समूह विकास की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों जिन पर पहले ही संक्षिप्त चर्चा की गई कि अवधि में समूह को किसी न किसी मार्गदर्शक/उत्प्रेरक की आवश्यकता होती है निरन्तर गरीबी के फलस्वरूप निर्धन वर्ग में विद्यमान विकास की सम्भावना को पहचानने की शक्ति क्षीण होती है एवं उनका विश्वास अत्यन्त अस्थिर होता है उत्प्रेरक की भूमिका है कि वह निर्धनों में विश्वास जगाकर उन्हें संगठित कर दें एवं उनमें विद्यमान सम्भावनाओं को विकास के साथ जोड़ दे और समूह व विकास के बीच एक माध्यम बन सके। उत्प्रेरक की जिम्मेदारी समूह की क्षमता विकास में सहायक की है और वह भी एक निश्चित समय तक ही। उसके उपरान्त समूह को जिम्मेदारी स्वयं उठानी होंगी, उत्प्रेरक को सहायक की भूमिका के साथ–साथ सही मार्गदर्शक की भी भूमिका भी निभानी होती है।

उसे समूह का प्रत्येक कदम पर एहसास कराना चाहिए कि सदस्यों के विकास की जिम्मेदारी उनकी स्वयं की है। उसका कार्य समूह को विकास की प्रमुख धारा से जोड़ना है परन्तु स्वयं को आश्रित

कदापि नहीं बनाना है समूह द्वारा स्वाश्रयिता प्राप्त करने के उपरान्त समूह स्वयं औपचारिक संगठन के रूप में विकसित हो जाते हैं एवं क्षेत्र में स्वयं सहायता के माध्यम से विकास के वाहक हैं।

स्वयं सहायता समूह जिनमें आवश्यक रूप से ऋण बचत क्रियाकलाप प्रोत्साहित किये जाते हैं। गरीबों की आवश्यकतानुसार सूक्ष्म ऋण पहुँचाने का एक उपयुक्त माध्यम है। किये गये प्रयासों व अध्ययनों से यह सिद्ध पाया गया है कि यद्यपि गरीबों के पास ऋण को जमानत/रहन स्वरूप देने को कुछ नहीं होता परन्तु उनमें ऋण अनादायगी कभी नहीं करते महिला स्वयं सहायता समूहों के अनुभव तो अत्यन्त विस्मयकारी रहे हैं और उनमें शत प्रतिशत ऋण वसूली पायी गयी है महिलाओं को समाज के प्रति अपेक्षाकृत अत्यधिक जिम्मेदारी व संवेदनशील पाया गया है और देखा गया है कि आपसी एकता के फलस्वरूप समूह में यदि कोई सदस्य ऋण अदा करने में समर्थ नहीं है तो भी और सदस्यों की सहायता व समझ–बूझ से बैंक को ऋण अदायगी समय से की गई। सूक्ष्म ऋण को गरीबों तक पहुँचाने में तथा गरीबों को साहूकारी व्यवस्था के शोषक चंगुल से बचाने में स्वयं सहायता समूहों की एक विशेष योगदान है इसके माध्यम से सदस्य अपनी अल्प अर्जित बचत से एक दूसरे की ऋण की आवश्यकता को पूरी करते हैं उन रोजमर्रा की ऋण आवश्यकताओं में शामिल होता है भोजन कपड़ा, व्यवसाय, बीमारी का इलाज, शादी ब्याह त्योहार व पर्व आदि की जरूरतों के लिए ऋण। ऐसी जरूरतों को अपनी अल्प बचत से पूरा करने के परिणामतः आपसी समझ व सद्भाव में वृद्धि होती है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से आपसी सूझबूझ व विश्वास के फलस्वरूप किये गये ऋण व्यवहारों की अदायगी तो शतप्रतिशत पाई ही गई है साथ ही उनमें बढ़ी जागरूकता के फलस्वरूप ऋण का बेहतर उपयोग पाया गया है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उनमें संसाधनों के बेहतर उपयोग की क्षमता भी विकसित होती है, साथ ही आपसी तालमेल के कारण यदि कोई भी कठिनाई आती है तो सदस्य मिलकर उसका सामाधान निकाल लेते है और समय पर ऋण अदायगी सुनिश्चित करते है स्वयं सहायता समूह सूक्ष्म ऋण का एक माध्यम बनकर उभरा है जिनके माध्यम से गरीब से गरीब सदस्य की प्रत्येक ऋण जरूरत घरेलू तथा उत्पादक दोनों ही पूरी हो जाती है गरीब वर्ग के पास जमानती तौर पर देने के लिए कुछ नहीं होता जिसके अभाव में वह ऋण प्राप्त नहीं करते है। समूह के माध्यम से वह अपनी पारदर्शी आपसी तालमेल की छवि की जमानत के आधार पर संस्थागत स्रोत से ऋण प्राप्त करता है। संस्थागत ऋण ढ़ाचा विशाल होने के कारण भी यह प्रत्येक सदस्य को सूक्ष्म क्षण उपलब्ध नहीं करा सकता क्योकिं प्रति व्यक्ति आय सम्पादन के कारण लागत में वृद्धि होती हैं। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आसानी से अधिकांश लोगों तक ऋण पहुँचाकर लाभान्वित किया जा सकता है और इससे प्रति व्यवहार लागत में कमी आई है। इस प्रकार सूक्ष्म ऋण के लिए स्वयं सहायता समूह उपयोगी वाहक बनकर उभरे हैं।

उपयोगिता

- गरीब विशेषकर महिलायें समूह के माध्यम से अपनी समस्याओं के निदान के लिए सामूहिक प्रयास कर सकती हैं व समाधान पा सकती हैं। पाया गया है कि गरीबों व महिलाओं में यह समूह अत्यन्त सफल रहे हैं।
- ऐसी सामूहिक समस्याएं, जिनका अन्यथा हल अत्यन्त मुश्किल है, समूह के माध्यम से आसनी से सुलझायी जा सकती है।

- आपसी समझ में बढ़ोत्तरी के फलस्वरूप बड़ी से बड़ी सामूहिक समस्या का सर्वमान्य सामाधान समूहों के माध्यम से सम्भव हो पाया है।
- गरीबों की क्षमता को समूह के माध्यम से पहचाना जा सकता है तथा उसे विकसित किया जा सकता है।
- समूह के माध्यम से गरीबों के पास उपलब्ध अल्प संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव है जिसका लाभ प्रत्येक सदस्य तक पहुँचाता है।
- समूह के माध्यम से ही व्यापक स्तर पर रोजगार गरीबों को उपलब्ध कराये जा सकते हैं।
- समूह के माध्यम से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लाभ निर्धनतम लोगों तक पहुँचाये जा सकते हैं ऐसे प्रयासों की निरन्तरता बनाई जा सकती है।
- समूह के माध्यम से सामाजिक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है तथा इसे कम लागत में करके इसमें अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित कराई जा सकती है।

सूक्ष्म ऋण

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि सूक्ष्म ऋण (माइक्रोफाइनेन्स) एक व्यापक अवधारणा है। जिसमें विभिन्न प्रकार की वित्तीय तथा गैर वित्तीय सेवाएँ सम्मिलित है। इनमें कौशल विकास एवं उच्चीकरण उद्यमिता विकास आदि को भी शामिल किया जा सकता है, जिनके द्वारा निर्धन वर्ग को इस योग्य बनाया जा सकता है कि वे गरीबी की समस्या के ऊपर काबू पा सकें। माइक्रोफाइनेन्स गरीबी उन्मूलन हेतु एक नए चिन्तन अथवा विचारधारा के रूप में उभर कर आया है जिसके माध्यम से निर्धन व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं का आर्थिक तथा सामाजिक सशक्तिकरण सम्पादित किया जा सकता है। माइक्रोफाइनेन्स का क्रियान्वयन ढ़ाँचा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

गरीबी उन्मूलन हेतु स्वतः रोजगार का जीवनक्षम या व्यवहार्य की स्थापना तथा उक्त उद्यम की पूंजी/ऋण तक पहुँच न होने से कठिनाइयां अथवा बाधाएं।निर्धन व्यक्ति न्यून्ततम आमदनी होने के बावजूद बचत करने की क्षमता रखते हैं।

इस प्रकार माइक्रोफाइनेन्स को एक ऐसा संस्थागत ढ़ाँचा कहा जा सकता है। जिसके माध्यम से ऐसे छोटे–छोटे समूहों द्वारा छोटे–2 कर्जे तथा अन्य अनुपूरक सहायता जैसे प्रशिक्षण तथा अन्य सम्बन्धित सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं जिसमें ऐसे लोग जिनके पास संसाधन अथवा कौशल दोनों का अभाव होता है, आर्थिक कार्यकलाप प्राप्त कर सकें।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो ज्ञात होगा कि माइक्रोफाइनेन्स का जन्म जर्मनी में सहकारी आन्दोलन के साथ 1944 में हुआ। उस समय जर्मनी के साथ सहकारिता आधारित ऋण व्यवस्था प्राप्त हुई। इसी प्रकार भारत में ऋण समितियां अधिनियम 1904 में लागू होने के साथ ही माइक्रोफाइनेन्स की शुरूआत मानी जा सकती है।

भारत में निर्बल वर्ग के लोगों की ऋण आवश्यकताओं के विषय में पहली बार आल इण्डिया क्रेडिट रिव्यू कमेटी 1999 के गठन के माध्यम से ध्यान आकर्षित किया गया। इस कमेटी द्वारा वह बल

पूर्वक कहा गया है कि ऋण की उपलब्धता छोटे किसान को सहज बनाई जाए और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्माल एण्ड मार्जिनल फारमर्स डेवलपमेन्ट एजेन्सी के गठन की सिफारिश की गई। चौथी पंचवर्षीय योजना में 45 जिलों में एस. एफ. डी. की स्थापना की गई है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में विशेषकर लघु और सीमान्त कृषकों कृषि श्रमिकों कारीगरों तथा छोटे उद्यमियों, व्यापार उद्योग तथा अन्य उत्पादक कार्यों के प्रोत्साहन के लिए अवस्थापना तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना है। समाज के निर्बल वर्गों पर फोकस तथा कम लागत वाली ऋण व्यवस्था के कारण इन्हें ग्रामीण बैंक के नाम से भी जाना जाता है तथा इन्हें गरीब आदमी का बैंक कहा जाता है।

विभिन्न गरीबी उन्मूलन तथा कल्याण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पूरे विश्व का अनुभव यह दर्शाता है कि इन कार्यक्रमों की सफलता की कुँजी समुदाय आधारित संस्थाओं की इन कार्यों में भागीदारी है इसीलिए ऋण वितरण तथा उसकी वसूली की प्रणाली में जनता की सहभागिता तथा इस प्रणाली का ऋण लेने वालों से स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से अन्तर्सम्बन्ध की स्थापना अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसके माध्यम से निर्धनों की ऋण समर्थन अथवा सहायता को एक सम्पूर्ण व्यवस्था के रूप में पूरे विश्व में माना जाता है। राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) स्वयं सहायता समूहों की अवधारणा तैयार करने तथा उससे क्रियान्वित करने में पथ प्रदर्शक रहा है। उसके द्वारा 1662 में स्वयं सहायता समूह व ग्रामीण बैंकों की लिंकेज का कार्य प्रारम्भ किया गया है और तब से ग्रामीण निर्धनों की औपचारिक बैंकों तक पहुंचने का कार्य गति पकड़ता रहा है। और पिछले दशकों में निर्धनों द्वारा ऋण प्राप्त करने वालों तथा बैंकों द्वारा इस सेवा के विस्तार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। भारत सरकार के 2000–01 के बजट में पारित प्रस्ताव के अनुपालन में नाबार्ड द्वारा रू. 900.00 करोड़ का माइक्रोफोन्स डेवलपमेन्ट फण्ड की स्थापना भी की गई। जिसके कोष की प्रारम्भिक अवस्था में रू. 80.00 करोड़ की धनराशि जमा की गई। इसमें रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा नाबार्ड की बराबर–2 की हिस्सेदारी है तथा शेष धनराशि व्यवसायिक बैंकों द्वारा जमा की जायेगी। जब यह धनराशि 500 करोड़ कर दी गयी है। इस कोष का उपयोग एवं स्वयं सहायता समूहों तथा बैंकों के बीच लिन्केज स्थापित करने का कार्य का विस्तार करने तथा आय अभिनत प्रयोगों हेतु किया जा रहा है। जिनके उद्देश्य निम्न प्रकार से है।

ग्रामीण निर्धनों विशेषकर महिलाएं जो औपचारिक बैकों से आवश्यक सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ रहे है के लिए वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराया जाये।

स्वयं सहायता समूहों को आगे उधार देने तथा उनकी ग्राम स्तर पर अन्य माइक्रोफाइनेन्स संस्थाओं के लिए धन उपलब्ध करना।

स्वयं सहायता समूहों तथा बैंको के लिन्केज कार्यक्रम के विस्तार के कार्य को समर्थन देना।

माइक्रोफाइनेन्स संस्थाओं की प्रणाली के लिए पर्यवेक्षक तथा नियंत्रण प्रणाली के विकास में आवश्यकतानुसार समर्थन प्रदान करना।

यह उल्लेखनीय है कि नाबार्ड द्वारा पहल करने के फलस्वरूप 1992 में 255 स्वयं सहायता समूहों की तुलना में 2009–02 में 4.62 लाख स्वयं सहायता समूहों को बैंकों से लिंक कराया जा चुका है। अब मार्च 2009 तय यह संख्या 22.4 लाख हो गई मार्च 2002 तक नाबार्ड द्वारा 365–730 करोड़ रूपये पुर्नवित्त में दिया जा चुका है। भारत सरकार द्वारा माइक्रोफाइनेन्स बिल 2006 लाया गया है। इसके पास होने के बाद स्वयं सहायता समूह की अतीत वृद्धि हुई है।

नाबार्ड इसे ऋण कार्यक्रम के रूप में नहीं लेता है बल्कि इसे वह एक अभिनव कार्य मानता है जिसके माध्यम से स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों का समग्र सशक्तिकरण सम्भव है। नाबार्ड का 2008 तक 90 करोड़ स्वयं सहायता समूहों को बैंक से लिंक करने का लक्ष्य था उसके द्वारा इन योजनाओं के हुए आर्थिक प्रभाव का समय–समय पर मूल्यांकन भी किया जा रहा है। और इन अध्ययनों से अभी तक बहुत ही उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं। इस कार्यक्रम की सफलता इसी बात से स्पष्ट है कि स्वयं सहायता समूहों के प्रोत्साहन कार्य में संलग्न एन.जी.ओ. की संख्या 798 से बढ़कर 2000–09 में 9030 हो गई।

रिवाल्विंग फण्ड के रूप में N.G.O. स्वयं सहायता समूह फेडरेशन तथा क्रेडिट यूनियनों को सहायता भी उपलब्ध कराई जाती है। इसी प्रकार माइक्रोफाइनेन्स के कार्य में लगी संस्थाओं की क्षमता वृद्धि में भी नाबार्ड सहायता करता है। नाबार्ड की भावी रणनीति में निम्न बातें शामिल हैं :–

- इस कार्यक्रम में उन क्षेत्रों में जहाँ अभी तक अवधारणा का विस्तार नहीं हुआ है नयी संस्थाओं सहयोगियों में जागरूकता पैदा करना तथा उनके लिए प्रशिक्षण आयोजित करना।
- स्वयं सहायता समूहों को शिक्षा स्वास्थ्य आदि सामाजिक सेवाओं से सम्बद्ध करने में सहायता करना।
- निष्कर्ष के तौर यह कहना उपयुक्त होगा कि सरकार द्वारा गरीबी उन्मूलन के प्रयासों में हुई नवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से अधिक तेजी लाई गई और इस समस्या पर सीधे प्रहार करने का निर्णय लिया गया है। नवीं पंचवर्षीय योजना से पूर्व व्यक्तिगत स्तर पर लाभ पहुँचाने का प्रयास किया गया।
- व्यक्ति आधारित इन कार्यक्रमों में क्रियान्वयन के अनुभव से सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह उभर कर आया कि निर्धन वर्ग के लोगों के असंगठित होने के कारण लाभार्थी सरकारी योजनाओं का समुचित लाभ नही उठा पाए हैं।
- महिलाओं के विकास हेतु सरकार देश में पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही सजग रही है और प्रत्येक कार्यक्रम में उनके लिए आरक्षण रखा गया किन्तु इन कार्यक्रमों का आधार भी व्यक्ति ही था।
- ग्रामीण महिलाओं के नितान्त असंगठित होने के कारण उनमें पुरूषों की अपेक्षा अधिक संख्या रही।

उक्त पृष्ठभूमि में स्वयं सहायता समूह की अवधारणा एक प्रकार से रामबाण के रूप में उभरी और इससे नियोजन प्रक्रिया में क्रान्तिकारी परिर्वतन आया है। अब साधन विहीन महिलाएं स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से अपनी स्वयं की क्षमता बढ़ा सकेंगी तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा होगा। एक प्रकार से महिला सशक्तीकरण की यह पहली सीढ़ी है। स्वयं सहायता समूहों ने आपसी अन्तर्सम्बन्ध है और यह समस्तरीय (हॉरिजन्टल) तथा स्तरीय वर्टिकल दोनों प्रकार के हैं। इन समूहों के संघों की महत्वपूर्ण भूमिका है और इनके माध्यम से यह सरकारी तथा वित्तीय संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित कर सकते है और उनका पूरा लाभ उठा सकते है।

स्वयं सहायता समूहों की जागरूकता सदस्यों में आपसी मेलजोल, एक दूसरे की सहायता करना तथा बाहरी समुदाय से तालमेल बनाए रखने पर निर्भर करती है। अतः चाहे वह कोई वित्तीय परियोजना हो अथवा स्वयं सहायता समूहों की अपनी निरन्तरता हो इनके मूल में जनसहभागिता की भावना का विकास है।

स्वयं सहायता समूह की शुरूआत भारत ने MYRADA से 1985 में हुई है। 1986–1987 में कुछ 300 स्वयं सहायता समूह थे जो MYRADA के अन्तर्गत कार्य कर रहे थे इनके प्रमुख कार्य ऋण से सम्बन्धित थे। 1885 जब स्वयं सहायता समूह की शुरूआत 2000–01 जब इनको भारत के वार्षिक योजना में सम्मिलित किया गया NABARD ने कई प्रमुख बदलाव किये हैं। स्वयं सहायता समूह का विकास को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. 1987–1992 तक

इस चरण में NABARD ने NGO को सहायता दी जो कि स्वयं सहायता समूहों की विकास के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। 1987 में NABARD ने 10 लाख की सहायता दी MYRADA को स्वयं सहायता समूहों के विकास के लिए। इनकी सफलता को देखते हुए, भारतीय रिर्जव बैंक ने स्वयं सहायता समूहों की एक वैकल्पिक ऋण प्रारूप के रूप में मान्यता दी। 1992 में NABARD ने कुछ दिशा–निर्देश जारी कर सारे बैंकों को अनुमति प्रदान की, कि वह स्वयं सहायता समूहों को आसान ऋण उपलब्ध करा सकें।

तमिलनाडु महिला सशक्तिकरण परियोजना जो कि तमिलनाडु महिला विकास निगम द्वारा क्रियान्वित था, देश का पहला सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम था। द्वितीय चरण 1992 से–अब तक कार्यक्रम की शुरूआत दो वर्ष के एक पायलेट योजना से हुई जिसका मुख्य उद्देश्य 500 स्वयं सहायता समूहों को जोड़ना था। स्वयं सहायता समूहों तथा बैंकों का सम्बन्ध शुरूआती स्तर पर कुछ कम रहा, लेकिन 1999 के बाद बैंकों की कार्यशैली में परिवर्तन के समय ही बैंक–समूह सम्बन्ध और सुदृढ़ होते गए। भारतीय रिर्जब बैंक, तथा कुछ प्रदेशों के बैंक– जैसे तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में स्वयं सेवी संगठन की मदद से स्वयं सहायता समूहों का विकास तीव्र गति से हुआ ।

नाबार्ड के अनुसार 2005 में तकरीबन 16 लाख स्वयं सहायता समूह–बैंकों से सम्बन्धित थे। मार्च, 2005 तक 16184556 स्वयं सहायता समूह, जिनमें 24 मिलियन परिवार 1 करोड़ 20 लाख लोग जुड़े हैं, विश्व की सबसे बड़ी सूक्ष्म ऋण व्यवस्था बन गई है। अभी भी बहुत से ऐसे स्वयं सहायता समूह हैं जो बैंकों के पास ऋण के लिए नहीं पहुँचे, जो अपनी जमा पूँजी या स्वयं सेवी संगठन द्वारा मिली सहायता से ही कुशलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। कुछ स्वयं सहायता समूह अभी अपनी शैशावस्था में हैं और नाबार्ड द्वारा रखी गई मान्यताओं को पूरा नहीं करते।

स्वयं सहायता समूह की अवधारणा इसी पर निर्भर करती है कि गरीबों को संगठित करके तथा उन्हें स्वयं गरीबी उन्मूलन के लिए प्रयास करने हेतु प्रेरित किया जाए। स्वयं सहायता समूह एक समान सोच पृष्ठभूमि तथा उद्देश्य वाले सदस्यों के छोटे समूह/संगठन हैं। जो अपनी सामूहिक क्षमताओं से अपनी समस्याओं के निदान के लिए प्रयत्नशील होते हैं। यह समूह सामाजिक–आर्थिक सकारात्मक परिवर्तन तथा सशक्तीकरण के मंत्र हैं, जिनके माध्यम से अंसगठित गरीब वर्ग संगठित होकर अपने सामाजिक आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त करते हैं। चूँकि विकासशील अविकसित समाज में अत्यधिक श्रमशक्ति प्राथमिक सेक्टर (कृषि व अन्य सम्बन्धित कार्य) व सेवा क्षेत्र में संलग्न रहती है एवं

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, इसलिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उनका संगठन कैसा हो? क्या आकार हो? तथा उसके सामने क्या उद्देश्य है?

यह आवश्यक है कि उनके अपने 'एकरूपी' छोटे–छोटे समूह हों जिन्हें वह स्वयं सम्भाल सकें तथा उनका कुशल प्रबन्धन कर सकें। यह बात पुनः ध्यान देने योग्य है कि समूह का आकार व स्वरूप का निर्धारण पूर्णतः इस बात पर निर्भर करता है कि गरीब अपने समूह का बिना दूसरों पर निर्भर किए हुए प्रबन्धन कर सकें व अपने सामूहिक प्रयासों को उत्पादनोंमुखी बना सकें।

एक राष्ट्र विकास के पक्ष पर अग्रसर तभी रह सकता है जब नागरिक विकास की प्रक्रिया में अपनी जिम्मेदारी को समझे, जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए उपब्ध संसाधनों का उपयोग करे तथा कार्यक्रमों से अपनेपन एवं जवाबदेही की भावना से जुड़े इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए समूह पद्वति को एक रणनीति के रूप में अपनाया जाने लगा है और इसके परिणाम भी स्पष्ट रूप नजर आने लगे हैं।

स्वयं सहायता समूह एक लोक–केन्द्रित विकास की प्रक्रिया का आधार है योजनाएं चाहे शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण क्षेत्र सभी में स्वयं सहायता समूह की अवधारणा को अपनाया जा रहा है। शहरी निर्धन बस्तियों में विद्यमान सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में महिलाओं को एक समूह के रूप में संगठित करना तथा सामुदायिक प्रयास हेतु प्रेरित करना एक जटिल तथा धैर्य का काम है। स्वयं सहायत समूहों का गठन तथा उनको समुदायिक संगठन के रूप में ही सम्भव है।

समूह पद्धति का अर्थ एक समुदाय केन्द्रित व्यवस्था व सामूहिक मंच से है जो लोगों को सामूहिक रूप से अपनी आवश्यकताओं पर सोचने तथा अपनी क्षमताओं को सामूहिक रूप से प्रयोग करते हुए उन आवश्यकताओं को पूरा करने के सहायक होता है इसके अतिरिक्त समूह पद्धति से समुदाय स्तर पर विभन्न विभागों द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का जुड़ाव भी प्रभावी ढंग से स्थापित होने के अवसर उपलब्ध होते हैं।

स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिला विकास आन्दोलन को देश के विभिन्न भागों में एवं देश के बाहर प्रस्तुत किया गया ताकि महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन करते हुए अनेकों चतुर्धिक विकास हो सके। सन 1980 का शुरूआत में इस आन्दोलन का प्रारम्भ हमारे पड़ोसी राष्ट्र बांग्लादेश में प्रयोग के रूप में ड़ा0 मुहम्मद युनुस के कर कमलों द्वारा किया गया।

भूमिहीन तथा सीमान्त एवं मागने वाली महिलाओं को इसमें शामिल करते हुए लघु ऋण पर आधारित करते शुरूआत की जिसने बाद में एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया और एक नये दृष्टिकोण का सुत्रपात्र हुआ। जिसके द्वारा निर्धन तथा गैर–लाभान्वित महिलाओं कों लघु बचत एवं समाज क्रियाओं के लिए प्रेरित किया जा सके। इसी दृष्टिकोण को भारत सरकार द्वारा एक व्यक्ति विभिन्न कार्यक्रम के रूप में देश के विभिन्न भागों में लागू किया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य स्वंय सहायता समूह को निर्मित करते हुए महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाना है।

समूह की अवधारणा

समूह व्यक्ति तथा समुदाय को सामाजिक–आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्त करने की प्रक्रिया है। समूह व्यक्तियों अथवा समुदाय के बीच विकसित किया गया एक आधार मंच है जो सामूहिक

क्रियाओं एवं प्रयासों को जन्म देता है। इस आधार पर एक विकास प्रक्रिया की शुरूआत होती है जिससे वैयक्तिक, परिवार एवं समुदाय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के उपयोग के अवसर उपलब्ध होते हैं।

सामान्य रूप से समूह के दो स्वरूप देखने को मिलते हैं प्रथम स्वरूप वह है जिसमें लोग अपनी तत्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मिलजुल कर प्रयास करते हैं जैसे बस्तियों में किए जाने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम; स्वच्छता एवं सफाई से संबंधित कार्य इत्यादि। इस प्रकार संगठन निर्माण हेतु आवश्यकता स्वंय उत्पन्न होती इनमें लम्बे समय तक सामूहिक प्रयासों को जारी रखने हेतु आवश्यक व्यवस्था एवं प्रक्रियाओं का अभाव होता है।

समूह का दूसरा स्वरूप वह जिसके संदर्भ मे यहाँ पर चर्चा की जा रही है। इस स्वरूप के अर्न्तगत समूह को एक स्थाई रणनीति एवं पद्वति के रूप मे विकसित किया जाता है इसका उद्देश्य तत्कालिक एवं दीर्घकालिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इस प्रकार समूहों का उद्भव एवं एक प्रक्रिया के रूप में होता है। यह तात्कालिक एवं दीर्घकालिक दोनों प्रकार की समस्याओं एवं मुद्दों का हल करने हेतु गठित होते हैं।

स्वयं सहायता समूह के प्रारूप

भारत में विभिन्न प्रकार के स्वयं सहायता समूह के प्रारूप को अभ्यास में लिया जा रहा है।

(अ) स्वंय सहायता समूह – बैंक सम्बन्धित प्रारूप

इस प्रारूप में, समूहों का निर्माण विभिन्न संस्थाओं द्वारा किया जाता है ''स्वंय सहायता प्रोत्साहन संस्था'' के नाम से भी जाना जाता है। यह संस्थायें गैर सकारी संगठन; स्वैच्छिक संघ, सरकारी संस्थाएं, पंचायतीराज संस्थाएं तथा सहकारी समितियां आदि हो सकती हैं। इसके अन्तर्गत वित्तीय आदान–प्रदान निम्न प्रकार से होते हैं :–

1. गैर सरकारी /स्वैच्छिक संस्था के हस्तक्षेप के बिना वित्तीय लेन–देन

इसके अन्तर्गत संस्था के सहयोग के बगैर वित्तीय आदान–प्रदान होता है।

2. गैर सरकारी/स्वैच्छिक संस्था के हस्तेक्षेप के वित्तीय लेन–देन

इसके अन्तर्गत संस्था के सहयोग से वित्तीय आदान–प्रदान होता है।

(ब) व्यष्टि(माइक्रो) वित्तीय संस्थाएं /एन.जी.ओ. स्वयं सहायता समूह–

इस प्रारूप के अन्तर्गत गैर सरकारी संस्थाएं, स्वैच्छिक संस्थाएं, माइक्रो वित्तीय संस्थाएं इत्यादि द्वारा बैंकिंग व्यवस्था या विकासात्मक वित्तीय संस्थाओं यथा नाबार्ड; सिडबी से व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से ऋण प्राप्त करके स्वयं सहायता समूह की क्रियाओं का संचालन किया जाता है। इस पारूप को निम्नवत चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

(स) गैर–सरकारी संस्थाएं/व्यष्टि (माइक्रो) वित्तीय संस्थाओं संघ स्वयं सहायता समूह

इस प्रारूप के अन्तर्गत स्वयं सहायता समूह संघों की सहायता से आमतौर पर बचत और साख से सम्बन्धित वित्तीय सेवायें प्राप्त करता हैं।

(द) ग्रामीण प्रारूप

इस प्रारूप के अन्तर्गत वित्तीय सहायता यथा ऋण उत्पादकता के लिए सीधे व्यष्टि वित्तीय संस्थाओं/गैर सरकारी संस्थाओं से सीधे छोटे समूह के सदस्यों (जिसमें 5 या 7 सदस्य होते हैं) को समूह की सुदृढता के लिए प्रदान किया जाता है।

(य) सहकारिता प्रारूप

इस प्रारूप का विकास सहकारी विकास संघ द्वारा किया गया है इस प्रारूप को ''साख संघ'' के नाम से भी जानते हैं। इस प्रारूप की विशेषता यह है कि सर्वप्रथम समूह के सदस्यों को बचत करने के लिए प्रेरित किया जाता है ।

स्वयं सहायता समूह से प्राप्त लाभ

- इसके द्वारा महिलायें सशक्त होती हैं।
- यह एक लागत रहित सहायता प्रदान करने वाली सेवा है।
- उसके द्वारा सामाजिक आलम्बन में वृद्धि होती है।
- यह एक अद्वितीय समस्या समाधान अभिगम है।
- इसके द्वारा आत्म चेतनता में वृद्धि होती है।
- समूह हस्तक्षेप द्वारा सम्प्रेरणा में वृद्धि होती है।
- परिवार के रूप में स्वयं सहायता समूह मदद करता है।
- यह सूचना का प्रमुख स्रोत है।
- एकता तथा दृढता द्वारा अनुभव का आदान–प्रदान होता हैं।

स्वयं सहायता समूह द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक विकास

स्वयं सहायता समूह मिलकर अपने विकास हेतु स्वयं आवश्यक संसाधनों तथा क्षमताओं को विकसित करने की रणनीति है। इसमे व्यक्ति आत्म निर्भर होकर अपना विकास कर सकता है एवं सुरक्षित महससू कर सकता है। स्वयं सहायता समूह विभिन्न व्यक्तियों की विचारधाराओं तथा क्षमताओं का संगठन है। यह संगठन व्यक्तियों को अपनी निजी तथा सामूहिक आवश्यकताओं को एक समूह की परिधि में पूरा करने के अवसर प्रदान करती है। अनेक कार्य एवं समस्यायें ऐसी होती हैं जो कि किसी एक व्यक्ति द्वारा अपने प्रयासों से हल करना दुष्कर होता है। विशेषतः गरीब वर्ग के व्यक्ति जिनका संसाधनों पर स्वामित्व अथवा पहुंच सीमित होती है;के लिए व्यक्तिगत प्रयासों से अपना जीवन स्तर सुधारने का कार्य अत्यन्त दुष्कर होता है। अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि इस प्रकार के जरूरतमंद व्यक्ति मिलकर आसानी से अपने विकास एवं जीवन स्तर में सुधार हेतु आवश्यक संसाधन तथा क्षमतायें प्राप्त कर सकते हैं।

Table No. - 1

A Typical SHG Model Household Resources

- Physical Capital (Limited
- Human Capita

Promoters

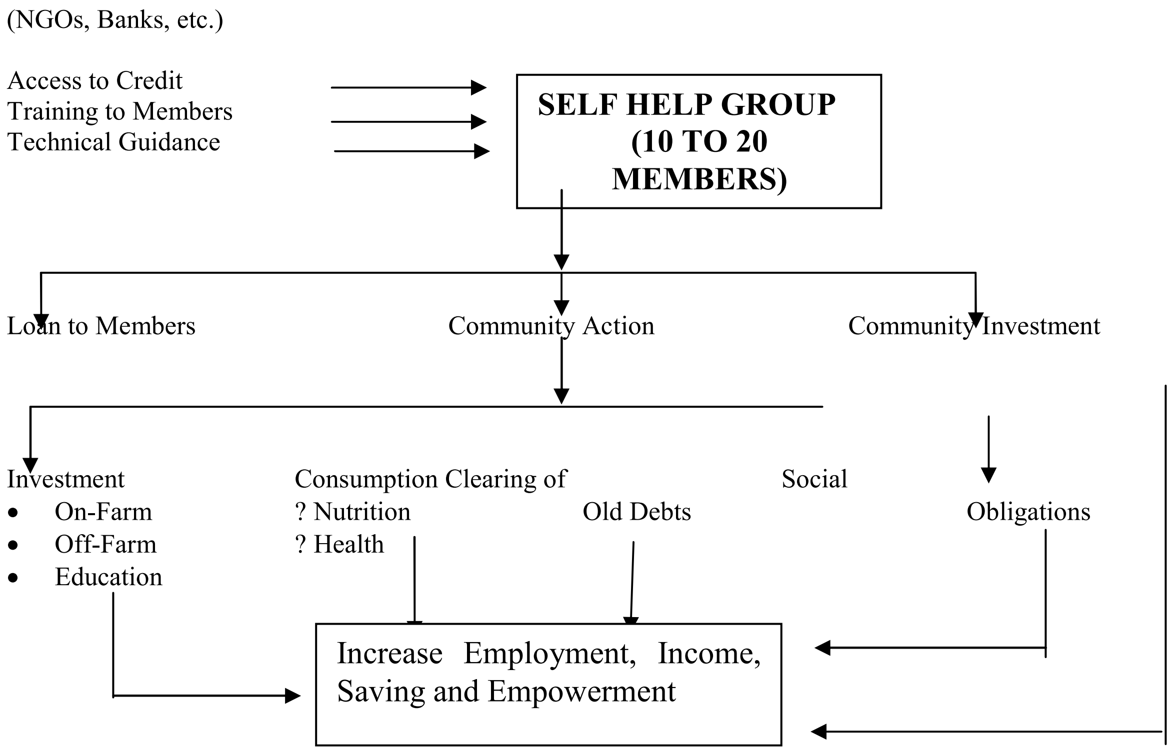

1950 के दशक में पूरे विश्व को तीन भागों में विभाजित किया गया था, विकासशील देश, विकसित देश एवं अविकसित देश। शुरूआती दौर मे विकास की यह परिकल्पना की गई कि विकासशील देशों एवं अविकसित देशो में कौशल एवं तकनीकी ज्ञान की कमी है, जिसको विकसित देशों द्वारा उपलब्ध कराये जाने पर यह देश भी विकसित हो जायेंगे। इसके अलावा इस बात पर जोर दिया जाता था कि विकास के लिए केवल तकनीकी ज्ञान ही आवश्यक है और विदेशों से तकनीकी ज्ञान लेकर विकासशील एवं अविकसित देश तरक्की कर सकते हैं। किन्तु जैसे–जैसे समय बीतता गया, अनुभवों द्वारा यह तथ्य प्रकाश में आया कि यह अवधारणा बिल्कुल ही गलत थी और स्थानीय ज्ञान, स्थानीय संसाधनों एवं स्थानीय कौशल को नजरअंदाज किया जा रहा था जिसके कारण समाज में विकास को आत्मसात नहीं किया जा रहा था।

विकास पर किये तमाम शोधों से यह तथ्य निकल कर आया कि विकास का स्वामित्व, स्थानीय समाज क`पास हा`तभी सफल विकास संभव हो सकता है। आज सारे विश्व में सामाजिक वैज्ञानिकों में सहमति है कि विकास के लिए तकनीकी ज्ञान नही बल्कि मानव संसाधन अहम भूमिका निभाते है।

मनुष्य के अस्तित्व का स्वरूप सामाजिक है। मानव समाज के आरम्भ से ही मनुष्य हर कार्य के लिए किसी न किसी पर निर्भर रहता है और जब दो व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और अन्तर्क्रिया से एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गतिशील होते हैं तो समूह का निर्माण होता है।

आज विकास का केन्द्र बिन्दु ज्ञान नहीं बल्कि ‘मानव’ है। आज विकास में स्थानीय समाज की आवश्यकताओं को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। विकास की किसी परियोजना की सफलता के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि स्थानीय समाज की भागीदारी सुनिश्चित की जाये एवं स्थानीय समाज की आवश्यकताओं को सहभागी आंकलन द्वारा चिन्हित किया जाये। स्थानीय समाज की

आवश्यकताअें को चिन्हित करने के पश्चात उनकी आवश्यकताओं की प्राथमिकताऐं निर्धारित की जाती हैं।

गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाला समाज के निर्धनतम वर्ग के जीवन स्तर में सुधार लाने की दिशा में आरम्भ में जो प्रयास किये गये वह इस सोच पर आधारित थे कि कि केवल संसाधनों की उपलब्धता से ही विकास हो जायेगा किन्तु धीरे–धीरे अनुभवों से यह तथ्य प्रकाश में आया कि टिकाऊ विकास के लिए यह आवश्यक है कि लोगो में 'क्षमता वृद्धि' की जाये जिससे उनमें आत्मनिर्भरता की भावना पैदा हो। इसलिए समाज के विकास के लिए "स्वंय सहायता समूह" की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है, और फिर हमारे सामने उदय हुआ आशा की किरणों का पुँज, जिसमें हम देखते हैं "स्वंय सहायता समूह" के प्रकाश को। जो उन व्यक्तियों का समूह है जो अपनी सहायता आप करने को तत्पर है, जिनमें आत्म–सम्मान होता है, जिन्हें दया के पात्र बनना स्वीकार नहीं है। इस समूह के सदस्य अपने–अपने प्रयासों से अपनी आवश्यकताओं कीपूर्ति ही नही करना चाहते है बल्कि अपने विकास के क्षेत्र में भी दूसरों पर आश्रित न होकर स्वावलम्बी बनाना चाहते है।

निर्धन व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से बहुत कमजोर होता है किन्तु एक संगठन में आने के बाद उसमें एक सुरक्षा की भावना का संचार हो जाता है और समूहों के द्वारा सामूहिक निर्णय एवं सामूहिक प्रयास किया जाता है जिससे समूह में ही नहीं बल्कि समूह के प्रत्येक सदस्य का सशक्तीकरण एवं क्षमता वृद्धि होती है। संगठित होकर समूह द्वारा समाज में व्याप्त असमानताओं, विसंगतियों को दूर किया जा सकता है। इसके अलावा समूह के रूप में उनकी ऋण प्राप्त करने की क्षमता का भी विकास होता है ।समूह में रहने से प्रत्येक सदस्य मे बचत आदि वित्तीय क्रियाकलापों में अनुशासन आ जाता है। अगर कोई सदस्य ऋण लेता है तो उसके ऊपर सामाजिक दबाव रहता है कि वह ऋण की अदायगी निश्चित समय सारिणी के अनुसार करे। इसके अलावा समूह के संचालन, बचत, ऋण आदि वित्तीय क्रियाकलापों का संचालन समूह द्वारा ही किया जाता है जिसके कारण उनमें आत्मनिर्भरता की भावना का उदय होता है ।

स्वा– मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.समाज कार्य हस्तक्षेप के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सुधारने में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का वर्णन कीजिए?

2. स्वयं सहायता समूह के दो प्रमुख भागों का विवरणात्मक अध्ययन कीजिए?

स्वंय सहायता समूह की अवधारणा

समाज का एक बड़ा वर्ग है जो गरीब है, अशिक्षित है, जिसमें जागरूकता का अभाव है, असंगठित है, तथा संसाधनों पर नियंत्रण नहीं है। आरम्भ से ही इसी वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए योजनाएं चलाई जा रही हैं। अशिक्षा, कमजोर सेहत और सामाजिक दुराब से गरीबों की समस्याएं हमेशा बढ़ती हैं। उनके पास एक ही पूंजी होती है और वह होता है उनका श्रम। अभी तक उनके लिए आशा की कोई किरण नही थी, परन्तु गत कुछ वर्षों से 'स्वंय सहायता समूह" कार्यक्रम के रूप में एक ऐसी कार्य योजना की शुरूआत की है जिससे यह निश्चित है कि लाखों लोगो के भाग्य मे नया सूर्योदय अवश्य होगा।

स्वंय सहायता समूह ऐसे सदस्यों का एक समूह है, जिनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति लगभग एक जैसी होती है। यह लोग अपनी इच्छा से एक समूह में संगठित होकर, सामूहिक निर्णय के द्वारा

समूह के कार्यकलाप जैसे बचत, ऋण प्रदान करना, व्यवसाय करना आदि के लिए दिशा निर्देश एवं नियम बनाते हैं। समूह का समस्त प्रबन्धन समूह के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है। समूह की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समूह के सदस्यों में निश्चित किये गये उद्देश्यों के प्रति कटिबद्धता हो।

समूह व्यक्तियों को एक मंच देता है, जिसमें एक समान स्तर पर एवं समान आय वाले व्यक्ति इकट्ठा होते हैं और अपने समूह के बारे में स्वंय निर्णय लेते हैं, समस्या पहचानते हैं, साथ ही समाधान भी करते हैं। आपस के मतभेदों को सुलझाते हुए समूह का सारा कार्य स्वयं संचालित होता है जिससे धीरे–धीरे समूह में अपनेपन की भावना का उदय होता है। समूह के सदस्य जब आपसी अनुभवों को बांटकर उनका विश्लेषण करते है तो समूह की सदस्यों में एक नई सोच उत्पन्न होती है। वास्तव में समूह सीखने के लिए सबसे सशक्त माध्यम है।

समूह के सदस्य जब कार्यो को करते है और अपनी भूमिकाओं को निभाते है तो उनके अन्दर एक आत्मविश्वास पैदा होता है कि हम भी बिना किसी बाहरी सहारे के आने कार्यो को कर सकते है, हमारे अन्दर भी असीमित क्षमताएं हैं और यही विश्वास परिवर्तन का आधार बनता है ।

स्वंय सहायता समूह की आवश्यकता

- जैसे बूंद–बूंद से घड़ा भरता है, वैसे ही सभी सदस्यों की थोड़ी–थोड़ी बचत इकट्ठी होकर बड़ी राशि बन जाती है।
- बचत ही विकास का पहला कदम है।
- नियमित बचत द्वारा सदस्यों के आर्थिक स्तर में सुधार व सहयोग की भावना, आपसी विश्वास तथा स्वावलंबन मे वृद्धि।
- छोटे ऋण का, समूह को आसानी से प्राप्त होना। ऋण किसी भी कार्य के लिए हो सकता है बैंक से ऋण मिलने में आसानी।
- आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के निराकरण में समूह द्वारा मार्गदर्शन।
- आंतरिक ऋण से प्राप्त ब्याज का लाभ सभी सदस्यों को।
- छोटे रोजगार संबंधी जानकारी एवं मार्गदर्शन।
- विशेषज्ञों/सरकारी विभागों से साक्षरता, परिवार नियोजन तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी समूह के रूप में प्राप्त करना।
- समूह से सहयोग की भावना, आपसी विश्वास, क्षमता तथा आत्मनिर्भरता का विकास।
- स्वंय के सर्वागीण विकास के साथ–साथ सहभागिता द्वारा समाज का भी विकास।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. स्वयं सहायता समूह की क्या अवधारणा है?
2. स्वयं सहायता समूह के विभिन्न प्रारूपों का विवरण दीजिए?

समूह का गठन एवं विकास

सहभागी आंकलन एवं लक्ष्य समूह में जागरूकता पैदा करने के पश्चात समूह गठन की प्रक्रिया का आरम्भ होता है। समूह के रूप में संगठित होने के पश्चात आवश्यक होता है कि गतिविधियों एवं

कार्यक्रमों को नियोजित किया जाय। समूह की गतिविधियों में सफलता मिलने पर इकटठे होकर कार्य करने की प्रवृत्ति को बल मिलता है और समूह के सदस्यों में आत्मविश्वास जाग्रत होता है। लक्ष्य समूह गठित होने के पश्चात आवश्यक है कि समूह की नियमित बैठकें हों और इन बैठकों में समूह के उद्देश्यों, नियमों आदि को सदस्यों को स्पष्ट किया जाये। यह भी आवश्यक है कि समूह की जागरूकता बढ़ाने के लिए सरकारी योजनाओं, कानून, स्वास्थ्य आदि की जानकारी भी लपलब्ध कराई जाये।

समूह की आवश्यकता

किसी भी समुदाय में निरन्तर विकास की आवश्यकता बनी रहती है अतः यह आवश्यक है कि समुदाय के विकास एवं सामुदाय की समस्याओं के समाधान हेतु सभी अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझकर सामूहिक होकर सहभागिता निभायें। समूह एक ऐसा आधार है, जो व्यक्ति के प्रयासों, रूचियों एवं आवश्यकताओं को सामूहिक प्रक्रिया के रूप में संगठित एवं संचालित करता है। समूह की आवश्यकताओं पर निम्न बिन्दु प्रकाश डालते हैं।

(1) समूह के माध्यम स प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता एवं ज्ञान और अनुभव का समुचित उपयोग होता है।

(2) समूह संगठन एक छोटे प्रकार की कार्यशाला है, जिसमें सीखने और समझने की प्रक्रिया से आत्मनिर्भरता एवं क्षमताऐं विकसित होती हैं।

(3) समूह में प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार अपना योगदान करता है। जिस प्रकार एक एक ईट मिलकर एक भवन का निर्माण करता है उसी प्रकार समूह में व्यक्ति अपने विकास हेतु जुड़कर समुदाय को विकास के मार्ग पर अग्रसर करता है।

(4) समूह में कार्य करने से समय, धन और शक्ति तीनों की बचत होती है ।

(5) समूह में कार्य करने से व्यक्तियों में आत्मविश्वास एवं जोश की भावना विकसित होती है।

स्वंय सहायता समूह में बचत का महत्व

स्वंय सहायता समूह में बचत एक महत्वपूर्ण पक्ष है। समुदाय में सदस्यों के बचत करने से समुदाय की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है, साथ ही सदस्यों में सामूहिक भावना का विकास भी होता है। बचत समूह के सदस्यों को परस्पर जोड़ने का कार्य भी करती है। समूह के सदस्यों की छोटी–छोटी बचत जुड़कर एक बड़ी धनराशि के कोष का निर्माण होता है, जिससे समूह में आर्थिक सुरक्षा का अनुभव किया जाता है और सदस्यों में आत्मविश्वास और उत्साह का संचार होता है। जब समूह के सदस्यों की नियमित बचतों से उनकी अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति होती है तो सदस्यों को विश्वास सामूहिक प्रक्रियाओं की ओर अधिक हो जाता है और समूह को स्थायित्व प्राप्त होता है। जिस समूह में बचत की प्रक्रिया जितनी अधिक होती है वह समूह उतना अधिक आत्मनिर्भर और स्थायी होगा क्योंकि वह समूह अपने सदस्यों की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम होते हैं।

सदस्यों की निर्धारित दर से की गई सामूहिक बचत द्वारा विकास कार्यो हेतु जो आवश्यक पूँजी विकसित होती है वह निजी बचत से संभव नही है। उदाहरण के लिए किसी समूह में 10 सदस्य रू0 100/– प्रतिमाह की बचत करते हैं तो एक वर्ष में रू0 12,000/– की धनराशि की बचत कर ली जायेगी। जबकि कोई भी सदस्य व्यक्तिगत रूप से वर्ष भर में इतनी बचत नहीं कर पायेगा। इसके साथ एकत्र हुई पूँजी को आवश्यकतानुसार ब्याज निर्धारित कर ऋण देकर ब्याज लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है जो सदस्यों का किये गये बचत पर लाभांश होगा।

समूह गठन की प्रक्रिया

किसी भी समूह का गठन विभिन्न व्यक्तियों द्वारा निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। विभिन्न विचारधारा एवं क्षमता वाले व्यक्तियों को जोड़ने की प्रक्रिया ही समूह गठन की प्रक्रिया होती है। अतः यह आवश्यक है कि समूह के गठन से पूर्व समूह के सदस्यों के मध्य विस्तार से सभी मुद्दों पर विचार विमर्श होना चाहिए, जिससे समूह के गठन एवं संचालन हेतु एकमत से निर्णय लिया जा सके। यहाँ यह भी अवगत कराना समीचीन होगा कि जल्दबाजी में अथवा स्वार्थो से प्रेरित होकर किये गये समूह का गठन सफल नही होते है और जल्द ही ऐसे समूह टूट कर बिखर जाते हैं।

समूह गठन की प्रक्रिया विभिन्न चरणों में योजनाबद्ध तरीके से विस्तृत विचार विमर्श के बाद किया जाना चाहिए। समूह गठन की प्रक्रिया के समय कुछ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान देना आवश्यक है:–

समूह गठन हेतु व्यक्तियों अथवा वर्गों का चिन्हांकन

समुदाय में सभी प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। कुछ अधिक सम्पन्न होते हैं, कुछ आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं, कुछ शिक्षित होते हैं तो कुछ आशिक्षित भी होते हैं, कुछ अनुभवी एवं प्रौढ़ होते हैं तो कुछ नवयुवक होते हैं। अतः समूह गठन की प्रक्रिया के आरम्भ से ही यह प्रयास किया जाना चाहिए कि समूह गठन की प्रक्रिया में समान क्षमता, समान विचारधारा एवं आर्थिक एवं मानसिक रूप से समान व्यक्तियों को समूह के सदस्य के लिए चिन्हांकित किया जाये क्योंकि समान समस्याओं एवं मुद्दों वाले व्यक्ति आसानी से संगठित हो जाते हैं एवं उनका संगठन सफल एवं स्थायी होता है। इसलिए उचित होगा कि समान विचारधारा, सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि एवं उद्देश्यों वाले व्यक्तियों को ही समूह में सम्मिलित किया जाये।

समूह गठन एवं सदस्यता प्राप्ति

(1) सदस्यों की संख्या
(2) सदस्यता हेतु मापदंड
(3) सदस्यता शुल्क का निर्धारण
(4) सदस्यता समाप्ति की परिस्थितियाँ
(5) सदस्यों के कर्तव्य एवं अधिकार
(6) समूह के पदाधिकारियों का चयन
(7) पदाधिकारियों के अधिकार एवं कर्तव्य
(8) पदाधिकारियों का कार्यकाल
(9) पदाधिकारियों को पदच्युत करने की परिस्थितियाँ
(10) समूह की बैठक हेतु स्थान एवं समय का निर्धारण

समूह गठन का प्रस्ताव

समुदाय में जन जागरण अभियान के पश्चात चिन्हांकित किये गये सदस्यों को एक बैठक का आयोजन कर समूह गठन के आशय का एक प्रस्ताव बनाया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव में समूह में सम्मिलित किये जाने वाले सदस्य, समूह के उद्देश्य, क्रियाकलाप एवं नियमावली पर चर्चा होनी चाहिए। यह प्रस्ताव इस बात का प्रतीक होगा कि सभी व्यक्ति स्वेच्छा से सामूहिक होकर, समुदाय की उन्नति

के लिए कार्य करने को तैयार हैं। इस प्रस्ताव मे खाता खोलने हेतु बैंक का चयन भी किया जाना चाहिए।

समूह प्रबन्धन

स्वंय सहायता समूह के गठन का उद्देश्य समूह के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है जिसके लिए बहुत ही आवश्यक है कि समूह के कार्य–कलाप एवं गतिविधियों का संचालन सामूहिक रूप से नियमित किया जाना चाहिए। इस प्रकार किसी भी समूह का क्रिया–कलाप एवं गतिविधियों का नियमित संचालन ही समूह प्रबन्धन कहलाता है। समूह प्रबन्धन के अन्तर्गत समूह के सदस्य अपने क्षमता एवं संसाधनों से समूह क्रियाकलापों एवं गतिविधियों के लिए प्रबन्ध करते हैं, जिससे समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होता है।

समूह प्रबन्धन के आधारभूत तत्व

किसी भी समूह की सफलता समूह के प्रबन्धन पर निर्भर करती है समूह के प्रबन्धन के लिए कुछ आधारभूत तत्व होते है जो समूह की क्रियाकलापों में गतिशील लाने में सहायक ही नहीं होते हैं वरन् समूह को स्थायित्व भी प्रदान करते हैं।

पारदर्शिता

किसी भी समूह के सफल प्रबन्धन के लिए यह बहुत आवश्यक होता है कि समूह के क्रियाकलापों में पारदर्शिता अपनाई जाये। जैसे समूह की आर्थिक स्थिति, समूह की व्यवस्था, साझाकोष का संचालन आदि कई महत्वपूर्ण कार्य होते है जिनमें पारदर्शिता रहती है तो समूह के सदस्यों के मध्य किसी अनावश्यक संदेह या शंका की संभावना नहीं रहती है।

समानता

यद्यपि किसी भी समूह में अलग–अलग सोच, क्षमता, अनुभव, वर्ग, के व्यक्ति समूह के सदस्य होते है परन्तु उनके मध्य आपस में समानता का व्यवहार किया जाना चाहिए। इस प्रकार समानता का व्यवहार रखे जाने से समूह के सदस्य समूह के हित में समान योगदान देने के तत्पर हो सकते है। इसके साथ इस बात की भी संभावना नही रहती है कि सूह का अमुक सदस्य अधिक प्रभावशाली है और उसे अधिक क्रियाशील होना चाहिए या कोई सदस्य अधिक लाभ प्राप्त कर रहा है। समूह के संचालन के अन्तर्गत कार्यों के वितरण एवं दायित्वों का निर्वहन लगभग समान रहना चाहिए।

अपनत्व की भावना

किसी भी समूह के प्रबन्धन में समूह सभी सदस्य अपनी–अपनी योग्यता एवं क्षमता अनुसार अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि समूह के सदस्यों के मध्य आपस में अपनत्व की भावना होनी चाहिए। इस प्रकार अपनत्व की भावना होने से समूह के सदस्य आपस में एक दूसरे से अधिक से अधिक सहयोग ले सकते हैं अथवा दे सकते हैं।

एकता

मात्र किसी भी समूह का गठन करना ही महत्वपूर्ण नही होता है बल्कि समूह का सफल प्रबन्धन महत्वपूर्ण होता है जिस पर समूह का अस्तित्व निर्भर होता है। अतः समूह के सफल प्रबन्धन के लिए समूह की सदस्यों की बीच एकता होनी चाहिए। यदि समूह के सदस्यों के मध्य आपस में एकता नही

होगी तो वे एकजुट होकर समूह के संचालन/क्रियान्वयन में हिस्सा नही ले सकते है और समूह को प्राप्त होने वाले फलदायी परिणामों को प्रभावित कर सकते है।

समूह प्रबन्धन की आवश्यकता

समूह का गठन समुदाय के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। समुदाय का उद्देश्य, समूह के सदस्यों का भी उद्देश्य होता है यद्यपि समूह के सदस्यों की सोच, विचारधारा, अनुभव, अपेक्षायें प्रायः आपस में मिलते नही हैं। परन्तु समूह में सम्मिलित होने के पश्चात यह बहुत ही आवश्यक हो जाता है कि सभी सदस्य एकजुट होकर समूह के संचालन एवं समूह के क्रियान्वयन हेतु अपने उत्तरदायित्व को निभायें। समूह के कार्यों का प्रबन्धन सुचारू रूप से न होने पर सदस्यों में अपने कार्य एवं उत्तरदायित्व को लेकर टकराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिससे समूह कमजोर हो सकता है।

लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया एवं नेतृत्व विकास

समूह की बैठक के दौरान समूह के क्रियान्वयन हेत निर्णय हेतु लोकतांत्रिक प्रक्रिया का ध्यान रख जाना चाहिए अर्थात् समूह के निर्णय सर्वसम्मति से होना चाहिए। यह भी हो सकता है कि कुछ लोगो में वैचारिक मतभेद हो परन्तु उन मतभेदों को आपसी विमर्श द्वारा दूर किया जाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस प्रकार समूह मे नेतृत्व का विकास की संभावना बलवती होती है। यदि समूह के निर्णय पदाधिकारियों द्वारा अथवा प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं तो अन्य सदस्यों के मन में क्षोभ उत्पन्न हो सकता है जो समूह के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। अतः समूह के समस्त कार्य सदस्यों को विश्वास में लेकर सर्वसम्मति से लोकतांत्रिक प्रक्रिया अपना कर सम्पादित किया जाना चाहिए।

सार संक्षेप

समुदाय के विकास कार्य हेतु अथवा किसी समस्या के समाधान हेतु अनेक व्यक्तियों द्वारा मिलकर संगठित होकर निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयास किया जाता है। इस प्रकार निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अनेक व्यक्तियों के संगठन को समूह कहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के समुदाय में प्रायः जन सहभागिता दो स्वरूपों में परिलक्षित होती है। प्रथम स्वरूप वह है जो समुदाय में किसी समस्या के समाधान हेतु अथवा सांस्कृतिक उत्सव हेतु तात्कालिक आवश्यकतानुसार समूह का गठन किया जाता है। इस प्रकार के समूह अल्पकालिक होते हैं।

दूसरा स्वरूप समुदाय के विकास कार्यों को करने के लिए समूह का गठन किया जाता है। इस तरह के समूह भविष्य में आने वाली समस्याओं के निदान हेतु जिम्मेदारियों एवं नियमों को ध्यान में रखकार गठित किये जाते हैं। इस प्रकार के समूह तात्कालिक एवं दीर्घकालिक समस्याओं को हल करने वाले होते है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्वयं सहायता समह के गठन की क्या प्रक्रिया है?
2. समूह गठन की अवधारणा एवं आवश्यकता का विवरण दीजिए?
3. समाज में आर्थिक सम्पन्नता लाने में स्वयं सहायता समूहों की क्या भूमिका है?

4. स्वयं सहायता समूहों से आप क्या समझते हैं इसके विभिन्न प्रारूपों का संक्षेप पूर्वक वर्णन कीजिए?
5. ग्रामीण ऋण व्यवस्था तथा महिलाओं की स्थिति को सुधारने में स्वयं सहायता समूह की भूमिका का वर्णन कीजिए?
6. स्वयं सहायता समूह के गठन की प्राक्रिया तथा गठन की आवश्यकता का वर्णन कीजिए?

पारिभाषिक शब्दावली

Introduction	- परिचय	Flaxible	- लोचदार
Democratic	- जनतन्तंत्रीय	Utilization	- उपयोग
Evaluation	- मूल्यांकन	Progressive	- प्रगतिशील
Individualizatioin	- वैयक्तीकरण	Relation	- सम्बन्ध
Planing	- नियोजन	Clorification	- स्पस्टता

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
2.Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
3.Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
4. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
8. Harford, M.- Groups in Social Work.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य
11. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
12. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य

अध्याय – 11

सामाजिक समूह कार्य में टीम बिल्डिंग
Team Building in Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 परिचय
11.2 सामूहिक समाज कार्य में टीम बिल्डिंग
11.3 सामूहिक विकास के स्तर
11.4 कार्यकर्ता द्वारा परिस्थितजन्य नेतृत्व
11.5 सार संक्षेप
11.6 अभ्यास प्रश्न
11.7 पारिभाषिक शब्दावली
11.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आपः–

- सामूहिक समाज कार्य में टीम बिल्डिंग की अवधारणा को समझ सकेगें।
- सामूहिक विकास के स्तरों की व्याख्या कर सकेगें।
- कार्यकर्ता द्वारा परिस्थितजन्य नेतृत्व की कुशलताओं को सीख सकेगें।

11.1 परिचय

सामूहिक समाज कार्य–प्रणाली समूह के माध्यम से सेवार्थियों को सेवा प्रदान करती है। सामूहिक समाज कार्यकर्ता तथा संस्था दोनों के लिए समूह एक आवश्यक साधन तथा यंत्र होता है जिसको उपयोग में लाकर वे अपने–अपने उदेद्श्यों को प्राप्त करते हैं। सामाजिक संस्था के अन्तर्गत अनेक समूह होते हैं जो सामूहिक समाज कार्य–प्रणाली का उपयोग अपनी कार्य–पद्धति में करते है। कार्यकर्ता के लिए इन समूहों का ज्ञान आवश्यक होता है। कुछ समूह तो स्थायी रूप से संस्था के अंग होते हैं तथा कुछ अस्थायी रूप से संगठित किये जाते हैं। कुछ समूह आकार में काफी छोटे होते हैं, उनकी सदस्य संस्था सात–आठ या बारह होती है, तथा दूसरे आकार में बड़े होते हैं, उनके सदस्यों की संख्या पचास तक भी होती है। कुछ समूह बहुत संगठित होते है, उनके तौर तरीके तथा नियम निश्चित होते हैं तथा दूसरे इतने संगठित नहीं होते तथा उनका संगठन औपचारिकता पर ज्यादा निर्भर करता है। कुछ समूहों के कार्यक्रम बिल्कुल निश्चित होते है तथा कुछ समूहों में अधिकांश कार्यक्रम सामान्य होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सभी प्रकार के समूह सामूहिक समाज कार्य के समूह है?

11.2 सामूहिक समाज कार्य में टीम बिल्डिंग

सामूहिक समाज कार्य–प्रणाली का विकास करने वालों ने सामूहिक समाज कार्य को एक विशेष प्रकार के समूह के साथ, जिसका आकार छोटा, घनिष्ठ संबंध तथा जिसमें एक उम्र व योग्यता के सदस्य होते हैं, कार्य करना बताया है। उनका यह विचार इस तथ्य पर आधारित है कि लघु, घनिष्ठ, परिचयपूर्ण तथा मित्रभाव पर आधारित समूह व्यक्तित्व'–विकास में अधिक प्रभावकारी होते हैं। यह कथन सत्य है, परन्तु केवल लघु समूह ही ऐसा समूह नहीं है जिसके साथ सामूहिक समाज कार्य–प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है।

सामाजिक संस्थाओं में उन समूहों के साथ सामूहिक समाज कार्य के तरीके का उपयोग किया जा सकता है जो व्यक्तियों की मान्य आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए संगठित किये जाते है और वे इस प्रकार से संगठित होते है जिससे उनके सदस्य अपने उत्तरदायित्व को अधिकाधिक स्वीकार करते हैं तथा उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए मानसिक, सांवेगिक तथा शारीरिक रूप से तत्पर होते है। सामूहिक समाज कार्य केवल समूह की विशेषताओं पर ही निर्भर नहीं होता है, कार्यकर्ता तथा संस्था भी आवश्यक कारक है।

प्रारंभिक अवस्था में समूह के लिए संगठन बहुत ही सरल तथा औपचारिक होना चाहिए। समूह की संरचना सदस्यों की आवश्यकताओं तथा रूचियों पर आधारित होनी चाहिए तभी वे समूह के साथ अपनापन महसूस करेंगे तथा कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम समझेंगे। धीरे–धीरे संगठन जटिल होता जायेगा तथा सामूहिक समाज कार्य–प्रणाली का उपयोग बढ़ता जायेगा।

कार्यकर्ता प्रारंभिक अवस्था में समूह–सदस्यों को केवल मनोवैज्ञानिक आधार पर समूह को समझने में सहायता करता है। मुख्य रूप से यदि संस्था तथा कार्यकर्ताओं का उद्देश्य समूह को आत्म–कार्यात्मक बनने में सहायता करना है तो सामूहिक समाज कार्य–प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

11.3 सामूहिक विकास के स्तर

समूह एक गतिशील इकाई है। इसमें निरन्तर होते रहते हैं। कार्यकर्ता समूह–सदस्यों की इच्छाओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करता है जिससे वे उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करते हैं। अतः समूह कई स्तरों से गुजरता है। कार्यकर्ता समूह के साथ वर्तमान विकास के स्तर से कार्य प्रारम्भ करता है तथा समूह की इच्छाओं व योग्यताओं के मधुर संबंधों के साथ तीव्र

गति से आगे बढ़ता है। इस सिद्धान्त के आधार पर अब यह प्रश्न उठता है कि हम किस प्रकार समझें कि समूह विकास के किस स्तर पर कार्य कर रहा है? हम किस प्रकार जानें कि वर्तमान समय में समूह क्या कार्य करने के लिए उपयुक्त है? हम किस प्रकार समझे कि समूह आगे बढ़ने के लिए तैयार है? कार्यकर्ता के लिए ये प्रश्न महत्वपूर्ण है?

अनुभवी सामूहिक समाज कार्यकर्ता समूह–विकास के उन कई स्तरों को नामांकित कर सकता है जिससे सामूहिक कार्य–समूह गुजरता है। प्रारंभिक अवस्था में समूह अधिकांशतः व्यक्तियों को एकत्रित होने के गुणों का प्रदर्शन करता है, न कि समूह जैसे गुण का प्रदर्शन। अतः इस स्तर को 'पूर्व समूह' स्थिति या स्तर कह सकते हैं। यद्यपि इसका यह प्रमाण है कि ये व्यक्ति कुछ समय में समूह की विशेषताओं को ग्रहण कर लेंगे लेकिन इस स्तर पर सामूहिक चेतना (Group Consiciousness) बहुत ही निम्न होती है। व

यक्ति अपनी–अपनी बातों में रूचि लेते हैं। परन्तु कार्यकर्ता उन सदस्यों या व्यक्तियों में एक इच्छा (Wish) को उत्पन्न करता है और यही समूह होने की प्रथम विशेषता है। जैसे–जैसे एक उद्देश्य, एक इच्छा या एक आवश्यकता की उत्पत्ति होती है वैसे–वैसे सामूहिक भावना बढ़ती जाती है। बाद के स्तरों में समूह घनिष्ठ सामूहिक भावना उत्पन्न करता है। यह सामूहिक भावना समूह की दशाओं पर निर्भर होती है। जिन स्थितियों तथा परिस्थितियों में समूह कार्य करता है उसी में सामूहिक भावनाएँ फूलती–फलती है।

एक निश्चित अवधि के पश्चात् अधिकांश समूह धीरे–धीरे विघटित हो जाते हैं। कार्यकर्ता यदि समूह के साथ स्वस्थ तरीके से कार्य करना चाहता है तो उसको इन स्तरों का अध्ययन निरन्तर करते रहना चाहिए। समूह के जीवन में कार्यकर्ता एक आवश्यक अंग है। वह चेतन या अचेतन स्तर पर समूह–विकास के स्तरों का निर्णय करता रहता है, अतः उसको आवश्यक रूप से इन स्तरों का ज्ञान होना आवश्यक होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कार्यकर्ता के पास कौन से ऐसे यंत्र या साधन है जिनके द्वारा वह समूह–विकास के स्तरों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है या किन विधियों से समूह–विकास के स्तरों का सही निर्णय कर सकता है। इसका केवल एक ही तरीका है समूह–सदस्यों के व्यावहारिक प्रत्युत्तर। सदस्यों के सामूहिक तथा वैयक्तिक रूप से व्यावहारिक प्रत्युत्तरों को जानकर कार्यकर्ता इस बात का ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि समूह किस स्तर से गुजर रहा है अथवा उसका वर्तमान स्तर क्या है? समूह–विकास के स्तर की विभिन्नता के अनुसार सामूहिक समाज कार्यकर्ता की भूमिका भी भिन्न–भिन्न होती है। कार्यक्रम भी स्तर के अनुसार आयोजित किए जाते हैं तथा अनुभवों में वृद्धि होती है।

कार्यकर्ता को समूह की प्रारंभिक अवस्था में या पूर्व–स्थिति में व्यक्तियों के व्यावहारिक प्रत्युत्तर (Behaviour response) किस प्रकार के होते हैं, यह जानना चाहिए। यद्यपि समूहों में विभिन्नता होती है फिर भी सभी समूहों में कुछ व्यक्ति तो अपना पूर्व–व्यवहार करते ही हैं। प्रारंभिक अवस्था में भाग लेने–वाले की प्रवृत्ति में कमी होती है। सदस्यों में अधिक उत्साह नहीं होता है।

कार्यक्रमों तथा उद्देश्यों में अनिश्चितता होती है। हो सकता है कि सदस्य एक दूसरे का नाम भी न जानते हों। वास्तव में समूह को पता नहीं होता है उससे कौन–कौन लोग संबंधित हैं। नये समूह निरन्तर अपनी रूचि को पाने का प्रयास संस्था के माध्यम से या कार्यकर्ता के माध्यम से करते रहते हैं। वे उद्देश्य को बहुत ही जल्दी प्राप्त करना चाहते हैं।

अतः प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रश्न करते रहते हैं। वे आशा कर सकते है कि कार्यकर्ता समूह के समस्त कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करें, या दूसरी तरफ समूह–सदस्य कार्यकर्ता को समूह के साथ कार्य करने की कम से कम अनुमति दें। प्रारंभिक अवस्था में यह भी संभव है कि समूह–सदस्य असुरक्षा तथा नैराश्य भावना का प्रदर्शन करें क्योंकि उनका इस प्रकार का प्रथम अनुभव होता है।

वे उद्देश्यों की प्राप्ति तथा कार्यक्रम के संचालन मे संदेह कर सकते हैं। इस स्तर पर सम्पूर्ण समूह पर एक या दो सदस्य अपना आधिपत्य रखते हैं तथा अन्य सदस्य निष्क्रिय रूप से कार्य करते हैं। कभी–कभी समूह में छोटे समूह बन जाते है और वे स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहते हैं। व्यक्ति के रूप में सदस्य एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा रखते हैं।

इस स्तर पर कार्यकर्ता की क्या भूमिका होती है तथा उसका संबंध इस स्तर से क्या है, कार्यकर्ता को इसे समझना चाहिए। कार्यकर्ता सबसे पहले इस बात का प्रयत्न करता है कि सदस्य उत्तर देने में कोई हिचकिचाहट न महसूस करें। वे स्वतंत्रतापूर्वक उत्तर देने में अवश्य समर्थ हों। जिस कार्य के लिए समूह एकत्रित हुआ है उसमें सभी सदस्य अपनापन महसूस करें। हो सकता है कि समूह सदस्य एक दूसरे का ज्ञान प्राप्त करने क लिए कार्यकर्ता की सहायता चाहते हों। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता उनकी सहायता परस्पर घनिष्ठ होने में करता है।

कार्यकर्ता अपने से पूछता है कि समूह–सदस्य क्यों एकत्रित होते हैं तथा उनका उद्देश्य क्या हैं और वे समूह के निर्माण की कितनी योग्यता एवं क्षमता रखते हैं अथवा नहीं रखते हैं। उनमें समूह–निर्माण की कितनी रूचि है तथा वे क्या करना चाहते हैं, इत्यादि बातें कार्यकर्ता को जाननी चाहिए। कार्यकर्ता समूह–क्षमताओं को बताना है तथा सीमाओं से अवगत कराता है। उन कार्यक्रमों से भी अवगत कराता है जो समूह–उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगे चलकर आवश्यक होते हैं।

प्रश्न है, समूह की उपरिलिखित स्थिति में कार्यक्रम किस प्रकार के हो जिससे सदस्यों में रूचि बढ़े तथा सामूहिक भावना का विकास हो। संगीत, खेल, ड्रामा तथा इसी प्रकार के कार्यक्रम लाभदायक होते हैं तथा सामूहिक भावना के विकास में सहायता करते हैं। इस स्तर पर कार्यक्रम–निर्धारण का उत्तरदायित्व मुख्यतः कार्यकर्ता का होता है, क्योंकि समूह का कोई निश्चित स्वरूप नहीं रहता। वह केवल लघु क्रियाओं को सम्पन्न करता है जिसमें अधिक से अधिक सदस्य भाग लेते हैं तथा भाग लेने की दर में भी अधिकता होती है।

कार्यकर्ता समूह की सहायता संस्था से अवगत होने में करता है। वह समूह को साधनों एवं स्रोतों से अवगत कराता है। समूह संस्था के उद्देश्यों तथा स्वयं के उद्देश्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। सदस्य एक दूसरे से अपने–अपने अनुभव के विषय में बातचीत करते हैं तथा सम्पर्क बढ़ाते हैं। इस प्रकार कार्यकर्ता समूह की एक रूचि का पता लगाता है और भविष्य के लिए निर्देशन का पथ निर्धारित करता है जिसे समूह स्वीकार करता है।

जब व्यक्ति कई बार एक साथ एकत्रित हो लेते हैं, साधारण कार्यक्रमों में भाग ले लेते हैं तो सामूहिक विकास के लक्षण स्पष्ट दिखायी देने लगते हैं। विकास के स्तर, जिनसे समूह गुजरता है, सदैव परिवर्तनकारी होते हैं। प्रत्येक विकास–स्तर दूसरे स्तरों से विभिन्न तरीकों से अन्तः सम्बन्धित होता है। अतः जब मनोवैज्ञानिक रूप से समूह के सदस्य बनते हैं तब उसका निर्धारण करना कठिन होता है। यह स्थिति बिल्कुल स्पष्ट नहीं होती। साधारणतया सामूहिक विकास के लक्षण निम्नलिखित होते हैं :–

(1) सदस्य अधिकाधिक कार्यक्रम में भाग लेते हैं।

(2) रूचि प्रदर्शित करते हैं।

(3) एक निश्चित स्थान पर तथा निश्चित समय पर मिलते हैं तथा निर्णय लेते हैं।
(4) औपचारिक संगठन का विकास करते हैं तथा समूह के कार्य का उत्तर–दायित्व ग्रहण करते हैं।

इसके पश्चात् वे समूह को अपना समूह कहने लगते हैं। बातचीत में अपने समूह का उदाहरण देते तथा अपनत्व महसूस करते हैं। चिंता कम हो जाती है तथा सदस्य एक दूसरे के सम्पर्क में आने में अधिक अच्छाई महसूस करते हैं। उन्हें सम्बन्ध–स्थापन में सुख मिलता है तथा अहं की संतुष्टि होती है। कार्यकर्त्ता से भी वे आसानी से सम्बन्ध बना लेते हैं। वे समूह का विशेष नाम रखने का प्रयास करते हैं जिससे परिचय आसानी से दिया जा सकता है। सम्पूर्ण समूह में सदस्यों के प्रत्युत्तर अधिक उत्साही होते हैं तथा वे अधिक भाग लेने लगते हैं। उनके भाग लेने का क्षेत्र बढ़ जाता है। कुछ व्यक्ति नेतृत्व का उत्तरदायित्व ग्रहण करने लगते हैं तथा अन्य ऐसे गुणों को प्रदर्शित करते हैं जिनका उपयोग समूह–विकास के लिए किया जा सकता है। समूह अधिक जटिल कार्यक्रम चाहने लगता है तथा अपने सम्बन्धों का विस्तार संस्था के अन्य समूहों तक भी करता है। समूह के विकास के इस स्तर पर कार्यकर्त्ता की भूमिका भिन्न हो जाती है।

कार्यकर्त्ता यह जानने के लिए सजग रहता है कि समूह में क्या घटित हो रहा है और वह सदस्यों को उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। अधिक गति से विकास पर वह रोक लगाता है क्योंकि उसका विश्वास होता है कि समूह जिस कार्य को करने के लिए सबल है वह उससे अधिक कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है।

अधिक तीव्र गति में समूह नियंत्रित नहीं कर सकता है। इस अवस्था में अधिक लम्बी अवधि के कार्यक्रम कार्यकर्त्ता आयोजित करता है तथा संगठन में जटिलता के लिए प्रोत्साहित करता है। अर्थात् कार्यक्रम में जटिलता आनी प्रारंभ हो जाती है। इस समय समूह की प्रारंभिक सफलता देखी जा सकती है। यह सफलता भविष्य की सफलता के लिए आवश्यक होती है।

कार्यकर्त्ता मुख्य रूप से समूह से उत्पन्न होने वाले नेतृत्व का अध्ययन करता है तथा उचित नेतृत्व के विकास में सहायता करता है। वह उस समय बाहर से व्यक्तियों का निरीक्षण भी करता रहता है तथा उनकी सामूहित कार्यों में रूचि बढ़ाने के लिए प्रयत्न करता है। यहां पर एक बात विशेष महत्व की है कि समूह बहुत कम निरन्तर विकास करता रहता है या कार्यकर्त्ताओं को बिना किसी बाधा के आगे बढ़ाता है। उसका एक समय असफलता या बाधा का अवश्य होता है जिसमें उसकी क्रियाएं अवरूद्ध हो जाती हैं।

कार्यकर्त्ता ऐसे समय का मुख्य रूप से अध्ययन करता है तथा लम्बी अवधि के कार्यक्रम में विशेष रूप से ध्यान रखता है। कभी–कभी समूह सदस्य उद्देश्य प्राप्त करने की स्थिति में पहुँच जाते हैं तथा वे आराम चाहने लगते हैं। बिना आराम के आगे कार्य करना नहीं चाहते हैं। इस बात का ज्ञान कार्यकर्त्ता के लिए आवश्यक होता है।

विकास का तीसरा स्तर वह है जब समूह स्थायित्व तथा परिपक्वता के गुण प्रदर्शित करता है। अधिक से अधिक संख्या में सदस्य क्रियाओं में उपस्थित रहते हैं। वे उद्देश्य प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करते हैं तथा कार्य का आकार अधिक से अधिक विस्तृत होता है। सदस्यों की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुसार अधिक से अधिक भागीकरण होता है अर्थात् सदस्य अपनी इच्छा से पूरी क्षमता से समूह–क्रियाओं में भाग लेते हैं। समूह दूसरे समूहों से परिचय प्राप्त करना चाहता है तथा अन्य समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करता है। इस अवस्था में फिर कार्यकर्त्ता की भूमिका परिवर्तित हो जाती है। अधिकांश उत्तरदायित्व समूह स्वयं ग्रहण करता है। समूह अपने उद्देश्यों का निर्धारण तथा कार्यक्रमों का विकास करता है जिसके परिणामस्वरूप उद्देश्य प्राप्ति के लक्षण आते जाते हैं।

कार्यकर्ता सदैव सहायता के लिए तैयार रहता है। जब समूह आगे बढ़ने के लिए तैयार होता है तो कार्यकर्त्ता उनको अपने अनुभव एवं ज्ञान द्वारा विभिन्न स्थितियों से अवगत कराता है तथा अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करने की सलाह देता है। जब सदस्य अपनी अक्षमताओं को दूर करने तथा कार्य में सुधार लाने के लिए इच्छा प्रकट करते हैं तब वे विकास के उच्च स्तर पर पहुँच जाते हैं। जो कार्यक्रम अब तक समूह केन्द्रित होते थे वे संस्था तथा समुदाय केन्द्रित होने लगते हैं तथा समूह में विशेषीकरण उत्पन्न हो जाता है।

यहाँ पर कार्यकर्ता संस्था तथा समुदाय के स्रोतों से सम्बन्धित ज्ञान का उपयोग करता है वह समूह में व्याख्याकार का कार्य करता है। वह समूह का मूल्यांकन भी करता है क्योंकि समूह में कार्यक्षमता उत्पन्न हो जाती है।

संतोषजनक अनुभव के पश्चात् एक स्थिति ऐसी आती है जब समूह में विघटन उत्पन्न हो जाता है जिसको कार्यकर्त्ता भी देख सकता है। समूह अपना कार्य समाप्त करना चाहता है, उपस्थिति कम होती जाती है, सदस्य सदस्यता छोड़ने लगते हैं तथा दूसरे समूहों से सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं। यह समय कार्यकर्ता के लिए बहुत सोचने विचारने का होता है। यदि वह स्वाभाविक विघटन को गलत ढंग से समझा गया या कार्यकर्ता इसको अपनी असफलता समझ बैठा या उसने समूह की असफलता को समझा तो विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वह वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सकता है।

ऐसा हुआ तो समूह तथा कार्यकर्ता दोनों अपने को अपराधी महसूस करेंगे तथा एक दूसरे के प्रति अथवा संस्था के प्रति उग्र हो जायेंगे। अतः कार्यकर्ता को सही रूप में देखना चाहिए कि परिवर्तन के समय समूहों में क्या घटित हो रहा है तथा सामूहिक जीवन में क्या अनुभव हो पाया है।

सारांश में हम कह सकते हैं कि समूह विकास के 6 स्तर होते हैं :

(1) प्रारंभिक स्थिति में प्रथम बार व्यक्ति एक साथ एकत्रित होते हैं।
(2) दूसरी अवस्था में सदस्यों में कुछ सामूहिक भावना का विकास होता है, संगठन का रूप निश्चित होता है तथा कार्यक्रम निश्चित होकर प्रारंभ किये जाते हैं।
(3) शर्तों एवं नियमों का विकास होता है, उद्देश्य विकसित होते हैं तथा घनिष्ठता बढ़ती है।
(4) घनिष्ठ सामूहिक भावना का विकास होता है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।
(5) रुचियों में कमी आ जाती है तथा सामूहिक भावना में भी कमी आती है।
(6) अन्त में समाप्त का स्तर आता है और समूह को विघटित कर दिया जाता है।

11.4.1 मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना

प्रारम्भ में सामूहिक समाज कार्य मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं से संबंधित था। वे ही क्रियाएँ न्यायोचित समझी जाती थीं जिनसे समूह की आर्थिक समस्या का समाधान होता था परन्तु धीरे–धीरे अनुभव किया जाने लगा कि अन्य आवश्यकताएँ भी महत्वपूर्ण हैं और उनकी पूर्ति भी उतनी ही आवश्यक है, जैसे प्रेम की आवश्यकता (Need of Love), सुरक्षित महसूस करने की आवश्यकता (Need of feeling security) तथा प्रसन्नता प्राप्त करने की आवश्यकता (To have enjoyment) आदि।

सामूहिक कार्य का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में उस समय हुआ जब सामाजिक सुधार (Social reform) पर जोर दिया गया तथा श्रमिकों में जागृति उत्पन्न हुई। यह स्वीकार किया गया कि लोगों के लिए आर्थिक सहायता के अतिरिक्त अन्य प्रकार की सेवाएँ भी आवश्यक हैं। अतः यंग मेन क्रिश्चियन ऐसोसिएशन, यंग वीमेन क्रिश्चियन ऐसोसिएशन, गर्ल्स स्काउट (Y.M.C.A., Y.W.C.A., Girls Scout) इत्यादि की स्थापना हुई।

11.4.2 एकान्तता की समस्या का समाधान करना

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य एकान्त में रहना पसंद नहीं करता। परन्तु वह इस प्रकार रहना तभी पसंद करता है जब उसमें यह विश्वास हो कि वह सभी के द्वारा स्वीकृत है। परन्तु अधिकांश व्यक्ति एकान्त पसंद नहीं करते, यहाँ तक कि पशु पक्षी भी समूह में रहते हैं। आज की परिस्थिति में जहाँ नगरीकरण इतना बढ़ रहा है, एकाकी जीवन एक समस्या बन गया है। कभी–कभी मनुष्य की बुरी आदतें भी बन जाती हैं। सामूहिक समाज कार्यकर्ता समूह के माध्यम से इस समस्या का समाधान करता है।

11.4.3 व्यक्ति को महत्व देना

प्रत्येक मनुष्य की यह आन्तरिक इच्छा रहती है कि उसका कुछ महत्व हो और वह भी समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करें। इच्छा की पूर्ति समूह में रहकर तथा संबंधों के स्थापित होने पर ही संभव है। यह समस्या वृद्धावस्था में और भी जटिल हो जाती है। बच्चों के साथ भी यह समस्या रहती है। परिवार में उचित स्थान न पाने से बच्चे असामाजिक व्यवहार करने लगते हैं। सामूहिक समाज कार्य द्वारा बच्चों की विरोधी शक्तियों, शंका और डर आदि की भावनाओं को स्पष्ट किया जाता है और इसके माध्यम से रचनात्मक भावनाओं का विकास किया जाता है। प्रत्येक सदस्य का कार्य अलग–अलग होता है। व्यक्ति में आत्मविश्वास की भावना जाग्रत होती है।

11.4.4 स्वीकृति प्रदान करना

प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसे समूह में समाज में स्वीकृत किया जाये, उसे उचित स्थान मिले और कार्य करने के लिए उचित अवसर देकर समाज उसे स्वीकार करे। जब समाज और समूह किसी व्यक्ति को स्वीकृति प्रदान नहीं करते तो वह अपना मानसिक संतुलन खो देता है जिससे वह समाज–विरोधी गतिविधियों का शिकार हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह समाज की मान–मर्यादा, कानून इत्यादि की परवाह किए बिना अपनी इच्छा–पूर्ति के लिए अवैध और अनुचित ढंग अपनाता है। वह अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है।

डा0 नाथन ऐकर्मेन तथा मेरी जोहोडा (Dr. Nathan Ackerman and Maree Johoda) ने मनोविश्लेषण तथा अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि रोगियों में आत्मसम्मान की कमी होती है और वे एकान्तता से पीड़ित होते हैं। वे स्वयं अपने को अस्वीकृत करते और दूसरों से रूष्ट होते हैं।

सामूहिक समाज कार्य में व्यक्ति को उचित स्थान प्रदान किया जाता है। समूह में संबंध स्थापित होते हैं और समूह के सदस्य परस्पर एक दूसरे को इसका आवश्यक अंग समझते हैं। इसीलिए उन रोगियों को समूह से अधिक लाभ होता है जो मानसिक समस्याओं से ग्रस्त होते हैं।

11.4.5 आत्मविश्वास का विकास करना

व्यक्ति में आत्मविश्वास का होना परम आवश्यक है। इसके बिना न तो स्वयं कोई कार्य कर सकता और न जोखिम उठाने के लिए तैयार हो सकता है। सामूहिक समाज कार्य द्वारा व्यक्तियों में इस गुण का विकास किया जाता है। जब समूह के प्रत्येक सदस्य को अलग–अलग कार्य प्रदान किया जाता है तो उसे पूर्ण करने की क्षमता उसमें स्वतः विकसित होने लगती है और आत्मविश्वास पैदा होने लगता है। यह केवल अनुभव के द्वारा होता है।

11.4.6 आत्म–निर्भरता विकसित करना

आत्म–निर्भरता भी व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। जब तक वह स्वयं अपना कार्य नहीं कर सकेगा या उसके सम्पन्न होने के बारे में कोई निर्णय नहीं ले सकेगा तब तक वह अपना विकास

नहीं कर सकता। सामूहिक कार्य में व्यक्ति को इस शक्ति के विकास के लिए उचित अवसर प्राप्त होता है। उसे अपना कार्य पाने से लेकर इसकी पूर्ति का निर्णय होने तक पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। समूह के लिए वह अपनी शक्तियों का खुलकर प्रयोग कर सकता और उनका विकास कर सकता है।

11.4.7 सामंजस्य स्थापित करना

व्यक्ति समूह में रहता है तथा उसी की इच्छानुसार कार्य करता है। अतः समाज के साथ सामंजस्य का होना नितान्त आवश्यक होता है। सामूहिक अनुभव के द्वारा व्यक्ति को सामंजस्य स्थापित करने की कुशलता प्राप्त होती है। सामूहिक कार्य द्वारा कार्यकर्ता व्यक्ति की उन कमियों का पता लगाता है, जिसके कारण वह सामंजस्य स्थापित करने में विफल होता है। ये कारण निम्न हो सकते हैं :–

1. व्यक्ति में बहुत अधिक शासन करने की इच्छा होती है।
2. व्यक्ति का निष्क्रिय होना तथा अपनी स्थिति को अस्वीकार करना।
3. दूसरे पर निर्भर होने की प्रवृत्ति।
4. अपने उत्तरदायित्व को पूरा न कर पाना।
5. प्रत्युत्तर का नकारात्मक होना।
6. दूसरों की सत्ता को स्वीकार न करना।
7. केवल अपने लिए ही साधनों का प्रयोग करना।
8. काल्पनिक लोक में विचरण करना।

सामूहिक समाज कार्य द्वारा व्यक्ति की इन कमियों को दूर कर सामान्य गुणों का विकास किया जाता है। सामूहिक समाज कार्यकर्ता समूह के अनुभव एवं कार्यक्रमों द्वारा व्यक्ति का समूह के साथ सामंजस्य स्थापित करता है और इस प्रकार व्यक्ति समाज में सामंजस्य स्थापित करने में सफल होता है।

11.4.8 निर्भरता को स्वीकार करना

व्यक्ति में कभी–कभी विशेष परिस्थितियों के कारण स्थायी निर्भरता आ जाती है। वह समाज पर निर्भर रहकर ही अपना जीवन–यापन करता है। अपंग हो जाना, अंधा हो जाना इत्यादि ऐसी परिस्थितियाँ हैं। इन परिस्थितियों में व्यक्ति बहुत अधिक परेशान हो जाता है जिससे वह अपनी जिन्दगी को अभिशाप समझने लगता है।

सामूहिक समाज कार्य के माध्यम से कार्यकर्ता उसमें ऐसी शक्तियों को उत्पन्न करता है जिससे वह कमी को स्वीकार करने में सफल होता है। वह समूह में व्यक्तियों को स्थान देकर उनमें ऐसी भावनाओं का विकास करता है जिससे वे शेष जिन्दगी को सुखमय बना सकें। सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति में नवीन चेतना का विकास होता है और जिन्दगी में नई आशाएँ बँधती हैं।

11.4.9 समग्र का भाग होने की इच्छा की पूर्ति करना

व्यक्ति की सदैव यह इच्छा रहती है कि वह समाज का एक आवश्यक अंग बन सके और उसकी क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले सके। सामूहिक समाज कार्य–अनुभव द्वारा वह इस समग्र का भाग पहले बनता है जिसका कि वह यह रूप है और धीरे–धीरे उसकी महत्ता प्राप्त करने की इच्छा की पूर्ति होती है।

11.4.10 सामाजिक संबंधों को दृढ़ एवं मधुर बनाना

समाज संबंधों का जाल है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से बँधा हुआ है। इसी संबंध के आधार पर समाज के कार्यों का संचालन होता है। परन्तु कभी–कभी सम्बन्ध इतने बिगड़ जाते हैं कि बहुत अप्रिय घटनाएँ तक घटित हो जाती हैं, आन्दोलन होते हैं और क्रान्ति तक हो जाती है। सामूहिक समाज कार्य के द्वारा व्यक्तियों के असंतोष के कारण का पता लगाकर उनके बीच उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों को दूर कर संबंध दृढ़ एवं मधुर बनाए जाते हैं।

11.4.11 मनोसामाजिक समस्याओं को दूर करना

सामूहिक समाज कार्य का प्रयोग मानसिक रोगियों के साथ भी किया जाता है। समूह में केवल वे ही सदस्य भाग लेते हैं जो मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित होते हैं, लोगो में मिल नही सकते तथा विमुख रहते हैं। सामूहिक समाज कार्यकर्ता उनमें मैत्रीपूर्ण सद्भावना का विकास करता है। परस्पर निर्भर क्रियाओं में रोगी अपने को सुरक्षित महसूस करता है। जब वह यह देखता है कि उससे भी अधिक लोग पीड़ित है तो उसे कुछ संतोष मिलता है। वह यह अनुभव करता है कि उसकी कठिनाइयाँ उसकी असफलताओं के कारण ही नहीं है। रोगी में ऐसी भावना उत्पन्न हो जाने पर उसमें समूह से संबंध स्थापित करने की इच्छा जागृत होती है तथा चिन्ताएँ कम होती हैं। उसमें तत्परता का विकास होता है और समस्याओं का बोझ हल्का हो जाता है।

11.4.12 प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करना

प्रजातंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जन–जीवन इससे कितना प्रभावित है। समानता, समान अवसर, स्वतंत्रता तथा उन्नति के समान अवसर प्रजातंत्र के मूलभूत सिद्धांत है। सामूहिक समाज कार्य में इन सभी सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है। समूह में सदस्यों को भाग लेने के समान अवसर मिलते है। स्वयं को निर्णय लेने का अधिकार भी होता है। कार्यक्रम को सम्पन्न करने की विधि की भी स्वतंत्रता होती है। विकास का मार्ग केवल समूह–कार्यकर्ता द्वारा निर्देशित होता है।

11.4.13 मनोरंजन प्रदान करना

सामूहिक समाज कार्य का शुभारम्भ मनोरंजक कार्यों से ही हुआ। लोग एक समूह के रूप में क्लब में एकत्र हुए और मनोरंजन के लिए उन्होंने विभिन्न कार्यों का आयोजन किया। सामूहिक समाज कार्य द्वारा आज बच्चों, युवकों एवं वृद्धों को मनोरंजन भी प्रदान किया जाता है जो स्वस्थ विकास एवं उन्नति के लिए परमावश्यक है ।

11.4.14 व्यक्तित्व का विकास करना

व्यक्तित्व पर पर्यावरण एवं वंशानुक्रमण दोनों का प्रभाव पड़ता है। जीवन के प्रारंभिक समय में वंशानुक्रमण का प्रभाव अधिक पड़ता है परन्तु बाद में पर्यावरण ही व्यक्तित्व के विकास में अपना प्रभाव डालता है। सामूहिक समाज कार्य का मूल उद्देश्य व्यक्ति के लिए अवसर प्रदान करना होता है जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वोत्तम (सम्भव) विकास हो सके।

11.5 सार संक्षेप

आज बड़े–बड़े शहरों में लोग एक दूसरे को बिलकुल नहीं जानते और न कोई संबंध रखते हैं। सामूहिक समाज कार्यकर्ता लोगों को समूह के रूप में एकत्रित करता है और उनमें किसी विशेष रूचि के कारण

संबंध स्थापित करता है। इस प्रकार उस एकाकीपन की समस्या का समाधान हो जाता है जो मनुष्य के लिए बहुत ही दुखदायी है। समूह में लोग पारस्परिक संबंध स्थापित करते हैं जिससे सुरक्षा की भावना का विकास होता है तथा एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना बढ़ती है।

11.6 अभ्यास प्रश्न

1. सामंजस्य स्थापन में आने वाली कठिनाइयों की चर्चा कीजिये ?
2. सामूहिक समाज कार्य में टीम बिल्डिंग की क्या भूमिका है ?
3. सामूहिक विकास के विभिन्न स्तरों की विवेचना कीजिए ?
4. सामूहिक समाज कार्यकर्ता द्वारा परिस्थितजन्य नेतृत्व की विवेचना कीजिए ?
5. मनोसामाजिक समस्याओं को दूर करने के उपायों पर चर्च कीजिये ?

11.7 पारिभाषिक शब्दावली

पर्यावरण : पास परोस, प्राथमिक तथा द्वितीयक संस्थायें

पारिस्थितिकी : परिवार, समूह, समुदाय तथा संस्थाओं से व्यक्ति की अन्तःक्रियात्मक स्थिति।

सिस्टम्स : सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक ढाचॉ, सामाजिक तंत्र।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
2.Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
3.Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
4. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
8. Harford, M.- Groups in Social Work.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य
11. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
12. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य

इकाई–12

सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था की भूमिका

Role of Agency in Social Group Work

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 परिचय
12.3 सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था की भूमिका
12.4 सामूहिक कार्य प्रणाली
12.5 सामाजिक संस्थाओं के प्रकार
12.6 सामाजिक सामूहिक कार्य संस्था की मुख्य विशेषताएं
12.7 संस्था के अंग
12.8 संस्था के कार्य
12.9 संस्था के अधिशासीय कार्य
12.10 कर्मचारियों से सम्बन्धित सेवाएं
12.11 सार संक्षेप
12.12 अभ्यास प्रश्न
संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था की भूमिका को समझ सकेगें।
- सामूहिक कार्य प्रणाली को समझ सकेगें।
- सामाजिक संस्थाओं के प्रकारों की व्याख्या कर सकेगें।
- सामाजिक सामूहिक कार्य संस्था की मुख्य विशेषताओं को लिख सकेगें।
- संस्था के अंगों की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- संस्था के कार्यों की व्याख्या कर सकेगें।
- संस्था के अधिशासीय कार्यों को समझ सकेगें।
- कर्मचारियों से सम्बन्धित सेवाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

12.2 परिचय

व्यक्तियों के लिए सामाजिक संस्थाएं यन्त्र का कार्य करती है। इनके द्वारा वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते है। तथा विकास की ओर बढ़ते है। ये संस्थायें व्यक्तियों व समूहों की कुछ सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित की जाती है तथा उनका प्रतिनिधित्व करती है। वे आवश्यकताएं सामाजिक दशाओं के परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। साधारणतया सामाजिक संस्था एक अलाभकारी संस्था होती है जो लोगों की सेवा के लिए उनकी सहायता एवं मान्यता से कार्य करती है। इसका उददेश्य कुछ मुख्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। संस्था की आवश्यकता समाज के अधिकांश व्यक्ति महसूस करते है। यह संस्था समाज कार्य व्यवसाय की निपुणताओं का उपयोग करती है। जो आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है।

12.3 सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था की भूमिका

सामाजिक सामूहिक कार्य के तीन प्रमुख अंग है – 1. कार्यकर्ता 2. समूह एवं 3. सामाजिक संस्था। इन तीनों अंगो का मुख्य उददेश्य लगभग समान है क्योंकि वे एक दूसरे पर आश्रित है। सामाजिक संस्था द्वारा ही कार्यकर्ता समूह को सेवा प्रदान करता है। अतः उसके उददेश्य एवं समूह के उददेश्य

संस्था की प्रकृति पर निर्भर होते है। कार्यकर्ता को जिस सीमा तक संस्था के विषय में ज्ञान होता है। वह अपनी सेवाओं को समूह के साथ उसी सीमा तक सम्पन्न करता है। समाज कार्य दर्शन– संस्था, कार्यकर्ता एवं समूह को प्रभावित करता है। चूंकि कार्यकर्ता संस्था का कर्मचारी होता है। अतः वह सामाजिक साामूहिक कार्य की निपुणताओं का उपयोग संस्था प्रतिनिधि के रूप में करता है। समुदाय में उसकी सेवाओं को आवश्यक माना जाता है तथा संस्था उन सेवाओं को प्रदान करने का साधन मानी जाती है।

सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास सामाजिक संस्थाओं द्वारा ही हुआ है अतः सामाजिक सामूहिक कार्य सामाजिक कल्याणकारी संस्थाओं में उपयोग में लाया जाता है। इन संस्थाओं के स्वरूप अलग–अलग हो सकते है, परन्तु उददेश्य लगभग समान होते है; उदाहरण के लिए चरित्र निर्माण कार्य, सामूहिक कार्य, खाली समय का कार्य, मनोरंजनात्मक तथा शिक्षणात्मक कार्य एवं युवकों सम्बन्धी सेवाएं। इन क्षेत्रों से सम्बन्धित संस्थाएं सामाजिक सामूहिक कार्य प्रणाली का उपयोग करती है। इन संस्थाओं के अतिरिक्त अब नयी–नयी संस्थाएं सामाजिक सामूहिक कार्य का उपयोग अपने व्यवहार में करने लगी है, जिनमें चिकित्सालय ,दवाखाना, बालरक्षा संस्था, राज्य सुरक्षा गृह, सुधारात्मक भवन, विकास योजना, मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम, पारिवारिक जीवन शिक्षा संस्थाएं कुछ प्रमुख है। सामाजिक व्यवस्थापन गृह सामुदायिक केन्द्र बालक –बालिकाओं के क्लब ब्याय स्काउट्स, गर्ल स्काउट्स वाई0एम0सी0ए0 तथा वाई0डब्लू0सी0ए0 आदि ऐसी संस्थाएं है जो सामाजिक सामूहिक कार्य प्रक्रिया का उपयोग करती है। श्रम कल्याण केन्द्र बाल संस्थाएं विद्यालय इत्यादि भी सामूहिक कार्य प्रणाली का उपयोग करने लगे है।

समाज कार्य प्रणालियों के विकास के लिए यह सत्य है कि पहले सेवाओं की आवश्यकता महसूस हुई इसके पश्चात इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संस्थाओं का निर्माण हुआ। जब वे कार्य करने लगी तो इनकी कार्य पद्धति का अध्ययन किया गया तथा जो पद्धति उददेश्यों की पूर्ति के लिए अनुकूल एवं वांछनीय हुई उसके उपयोग पर बल दिया गया। सामूहिक कार्य पद्धति सबसे अधिक अनुकूल सिद्ध हुई। इस प्रकार सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास हुआ। सामाजिक सामूहिक कार्य की उत्पत्ति चूंकि ऐच्छिक सामाजिक संस्थाओं में हुई अतः लोग सोचते है कि उसकी उपयोगिता केवल संस्थाओं तक ही सीमित है। इसकी उत्पत्ति वाली संस्थाएं प्रारम्भ में बच्चों तथा किशोंरो के विकास के लिए प्रयत्नशील थी अतः यह भी समझा जाता है कि सामाजिक सामूहिक कार्य बच्चों तथा किशोरों के लिए ही उपयुक्त है, युवकों के लिए नहीं। इसके अतिरिक्त चूंकि सामाजिक संस्थाओं का मुख्य उददेश्य मनोरंजन प्रदान करना है। अतः कुछ लोग सामूहिक कार्य को मनोरंजन का साधन समझते है वास्तव में सामाजिक कार्य एक मूल्यवान तरीका है जो ऐच्छिक तथा अनैच्छिक संस्थाओं के लिए, सभी आयु के सदस्यों के समूहों के लिए तथा न केवल मनोरंजन के लिए वरन् सभी कार्यों के लिए उपयुक्त है।

12.4 सामूहिक कार्य प्रणाली

सामूहिक कार्य प्रणाली व्यक्तियों समूहों के साथ कार्य करने का एक तरीका है। इसको समूहों तथा व्यक्तियों के सम्बन्धों के साथ कार्य करने की एक प्रणाली के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह मौलिक रूप से सामूहिक प्रक्रिया के सिद्धान्तों पर आधारित है, अर्थात् इसका आधार व्यक्तियों की अन्तःक्रिया है जों सामूहिक स्थिति में उत्पन्न होती है। सामूहिक कार्यकर्ता वास्तव में सामूहिक अन्तःक्रिया से सम्बन्धित होता है तथा इसके अतिरिक्त उस प्रभाव से भी जो सदस्यों व समूहों पर पड़ता है। वह न केवल उन सम्बन्धों को देखता है वरन् उनको निर्देशित करने का भी प्रयत्न करता है। वह समूह के सदस्यों की अन्तःक्रिया का निर्देशन चेतन रूप से करता है जो सामूहिक प्रक्रिया को सामूहिक कार्य प्रक्रिया में बदलती है। सामूहिक कार्य प्रक्रिया के लिए तीन बातें आवश्यक है :–

1. व्यक्तियों का समूह मित्रता के बन्धन से बंधा होता है, वे नियमित रूप से एक समय में एक साथ मिलते है तथा घनिष्ठ सम्बन्ध रखते है जिससे प्रत्येक समूह का सदस्य एक दूसरे को प्रभावित करता एवं प्रभावित होता है। इस प्रकार का समूह तुलनात्मक रूप से छोटा होता है।
2. ऐसा कार्यकर्ता, जो समूह का सदस्य नहीं है परन्तु इसकी क्रियाओं में भाग लेता है तथा निकट का सम्बन्ध रखता है अपने प्रभाव समूह पर डालने में दक्ष एवं निपुण होता है।
3. कार्यकर्ता का अन्तःक्रिया पर प्रभाव तथा निर्देशन प्रजातांत्रिक लक्ष्यों पर आधारित होता है।

क्लब, कक्षाएं, वर्कशाप, वार्तालाप समूह, बोर्ड तथा समितियां ऐसे संगठन है, जहां पर सामूहिक कार्य प्रक्रिया का उपयोग मुख्य रूप से होता है। क्लब मीटिंग, वार्तालाप, खेलकूद, ड्रामा, संगीत, नृत्य आदि इसके साधन है।

संस्था के कार्य की विशेषता कार्यकर्ता के मानव व्यवहार के ज्ञान तथा समूह सदस्यों की अन्तःक्रिया को प्रभावित करनेवाली शक्ति पर निर्भर करती है। उसकी निपुणता भी महत्वपूर्ण होती है। वह जिस प्रकार से सदस्यों को स्वतन्त्र रूप से सामूहिक क्रिया में भाग लेने का अवसर देता है, सामूहिक प्रक्रिया का निर्देशन करता है एवं उन पर अपने अधिकार का उपयोग करता है, इत्यादि बातों पर संस्था के कार्य तथा गुण निर्भर होते है। कार्यकर्ता समुदाय के मूल्यों के अनुसार समूह कार्य के स्तर को निर्धारित करता है। यदि मूल्य स्तर निम्न होते हैं तो वह भागीकरण के निपुण निर्देशन द्वारा सामूहिक चेतना का विकास करता है तथा निम्न स्तर के मूल्यों के स्थान पर उच्च मूल्यों का धीरे–धीरे स्थापना करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण समुदाय लाभान्वित होता रहता है। वह इन क्रियाओं का समूह चयन के माध्यम से करता है। वह सुझावों तथा निर्देशनों द्वारा रूचिकर क्रियाओं से समुदाय को अनुभव कराता है जिससे नये मूल्य विकसित होते है।

12.5 सामाजिक संस्थाओं के प्रकार

सामाजिक संस्थाओं को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :–

1. वे संस्थाएं जिनका उददेश्य सेवार्थियों को वैयक्तिक तरीके से अथवा समूहों द्वारा सेवा प्रदान करना होता है। इस प्रकार के अर्न्तगत समाज कल्याण विभाग, परिवार एवं बाल कल्याण, दत्तक संस्थाएं वाई0डब्लू0सी0ए0 ,वाई0एम0सी0ए0, गर्ल स्काउट्स तथा बाल स्काउट्स आते है।
2. वे संस्थाएं जो सामाजिक सामूहिक कार्य सेवाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार के सेवाएं भी प्रदान करते है। इनमें रेड क्रास सोसायटी, व्यवस्था गृह , उत्तर रक्षा केन्द्र, मनोरंजन गृह तथा अन्य सम्बन्धित संस्थाएं आती है।
3. इसके अर्न्तगत वे संस्थाएं आती है जो उपचारात्मक कार्य करती है, जैसे अस्पताल, क्लीनिक, स्कूल, न्यायालय, बाल न्यायालय, प्रोबेशन एण्ड पैरोल आफिस, व्यावसायिक पुर्नवास सेवाएं इत्यादि।
4. इस प्रकार के अन्तर्गत उन संस्थाओं का वर्णन किया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से लोगों को सेवाएं नहीं प्रदान करतीं परन्तु अन्य सामाजिक संस्थाओं की सहायता करती हैं, जैसे सामुदायिक कल्याण परिषद्, समाज कल्याण, सामुदायिक ट्रस्ट इत्यादि।

सामाजिक संस्थाओं के प्रकार के आधार पर उनके अलग–अलग कार्य एवं उददेश्य होते है। कुछ संस्थाएं कुछ विशेष आयु वाले सेवार्थियों को सेवा प्रदान करती है, जैसी बच्चों की संस्थाएं तथा कुछ लिंग के आधार पर सेवायें करती है। जो संस्थाएं खाली समय की सेवाएं प्रदान करती है उनकी क्रियाएं लगभग समान होती हैं परन्तु उन क्रियाओं का प्रयोग एक जैसे तरीके से नहीं करतीं। कुछ संस्थाएं एक

विशेष क्रिया पर जोर देती है। उनका उददेश्य क्रियाओं का इस प्रकार से संगठन करना होता है जिससे भाग लेने वालों को आनन्द मिल सके तथा हतोत्साह, तनाव और मनोवैज्ञानिक असन्तोष को दूर किया जा सके एवं शारीरिक विकास सम्भव हो। ऐसा करने का उददेश्य यह होता है कि इनमें भाग लेने वाले सामाजिक मनोवृत्ति का विकास करते है तथा सामूहिकता व सहकारिता की शक्ति एवं भावना का विकास होता है।

कुछ संस्थाएं आत्मनिर्भरता, नागरिकता, सहकारिता आदि गुणों पर विशेष बल देती है। बालक बालिकाओं में इन गुणों के विकास के लिए अनेक कार्यक्रमों का नियोजन करती है। वे उनके उददेश्यों के पीछे यह सिद्धान्त होता है कि ये गुण शक्ति के लिए आवश्यक होते है। तथा उनका विकास संस्था का कार्यक्रमों में भाग लेकर होता है। बच्चों को सामूहिक क्रियाओं के संचालन तथा नियोजन में साथ–साथ अवसर प्रदान किया जाता है। उनका निर्देशन, व्यक्तिगत,सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए किया जाता है। सामूहिक कार्य इन संस्थाओं में सामूहिक नियोजन तथा क्रियाओं के संचालन में सहयोग पर अधिक महत्व देता है। सामूहिक क्रिया पर ध्यान रखा जाता है। अन्य प्रकार की संस्थाएं सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित होती है। वे अपने सदस्यों को सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती है। ये संस्थाएं अधिकतर युवकों से सम्बन्धित होती है।

सामजिक सामूहिक कार्यप्रणाली को उपयोग में लाने के लिए संस्था को यह देखना होता है कि वह किस प्रकार के कार्य करने को जा रही है तथा यह विश्वास करती है कि सामाजिक सामूहिक कार्य पद्धति उन कार्यो को पूरा करने में सहायक सिद्ध होती है। वे संस्थाएं, जो प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखती है, सामाजिक सामूहिक कार्य प्रणाली का उपयोग अपनी कार्य पद्धति में कर सकती है।

अधिनायक तंत्रवादी संस्थाएं, चाहें वे ऐच्छिक हों या सरकारी, कभी भी सामाजिक सामूहिक कार्य प्रणाली का उपयोग करने में समर्थ नहीं हो सकतीं क्योंकि उनमें कार्य करने के समान अवसरों तथा व्यक्तिगत व सामूहिक स्वतंत्रता का अभाव होता है। सामाजिक सामूहिक कार्य संस्थाओं की कुछ मुख्य विशेषताएं होती है जिनका वर्णन हम यहां कर रहे है।

12.6 सामाजिक सामूहिक कार्य संस्था की मुख्य विशेषताएं

यद्यपि यह सही है कि सामाजिक सामूहिक कार्य संस्थाएं अलग अलग उददेश्यों के लिए संगठित की जाती है अतः उनकी विशेषताएं भी भिन्न भिन्न होती है, परन्तु सभी संस्थाओं में कुछ समानताएं भी होती हैं जो निम्न है :–

1. सामाजिक संस्थाओं का उददेश्य समाज के निर्माण में व्यक्तियों तथा सामाजिक विकास को साधन के रूप में प्रयुक्त करना होता है जिससे प्रजातांत्रिक समाज का निर्माण सम्भव हो सके। यद्यपि इन संस्थाओं की मनोवृत्ति व्यक्तियों की विकासात्मक सहायता में भिन्न भिन्न हो सकती है, जैसे कुछ संस्थाएं नागरिक भागीकरण पर बल देती है तथा कुछ सामाजीकरण व सहकारिता पर, कुछ संस्थाओं का स्वरूप धार्मिक होता है तथा कुछ का विकासात्मक, परन्तु इन सभी संस्थाओं का केन्द्र बिन्दु सामुदायिक जीवन के लिए व्यक्ति और उसका विकास होता है।
2. सामाजिक संस्थाएं उन व्यक्तियों के साथ कार्य करती है जो स्वतः अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छा के कारण ऐच्छिक रूप से भाग लेते है। उनका संस्था से सम्बन्ध स्थापित करने का उद्देश्य उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होता है। परन्तु यहां पर एक बात ध्यान देने की है कि सामाजिक सामूहिक कार्य संस्थाएं किसी व्यक्ति को अपने कार्यक्रम में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं करती। उनको केवल उददेश्यों, कार्यक्रमों अथवा लाभों से अवगत करा देती है। व्यक्ति यदि उचित समझता है और उसके अहम की सन्तुष्टि होती है। तो वह भाग लेता है

अन्यथा नहीं। भाग लेने की दर तथा स्थिति में अन्तर होता है कुछ लोग अस्थायी रूप से संस्था के सदस्य बनते है तथा कुछ स्थायी रूप से भाग लेते है, लेकिन संस्था की सेवा बिना दबाव या बाध्यता के प्रदान की जाती है।

3. सामाजिक संस्थाएं व्यक्तियों के लिए समूहों द्वारा कार्य करती है अर्थात् समूह द्वारा ही व्यक्ति सेवा प्राप्त करते है। समूह ही वह साधन है जिसके माध्यम से संस्था अपने कार्यों को व्यक्तियों तक पहुंचती है। सेवा की मुख्य इकाई समूह होता है वह व्यक्तियों के लिए संस्था से सम्पर्क करने का प्राथमिक साधन है। समूहों में भी अन्तर होता है। उनके उददेश्य, संगठन, तरीके तथा केन्द्र बिन्दु भिन्न भिन्न हो सकते है परन्तु प्रत्येक संस्था सामूहिक भागीकरण पर विशेष जोर देती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि संस्थाओं का दर्शन व्यक्ति विकास को सामूहिक अनुभव द्वारा प्राप्त करता है अर्थात् संस्था का विश्वास है कि व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सामाजिक एवं सामूहिक अनुभवों पर निर्भर होता है।
4. सामाजिक संस्थाएं समूह के साथ अनौपचारिक तरीके से काम करती है। समूह सदस्यों तथा सामूहिक कार्यकर्ता के मध्य सम्बन्ध धीरे–धीरे स्थापित होते है। चूंकि ऐच्छिकता की प्रधानता होती है अतः ये सम्बन्ध उददेश्यपूर्ण होते हैं और धीरे–धीरे इनमें प्रगाढ़ता आती है तथा उददेश्य पूर्ति के लिए आवश्यक कारण बन जाते है। आपसी सम्बन्ध के द्वारा ही समूह अपनी क्रियाओं को सदस्यों तक पहुंचाते है तथा उन्हें लाभान्वित करते है। यह सदस्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि समूह के साथ किस सीमा तक सम्बन्ध स्थापित करे। चूंकि इससे स्वयं उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है अतः वे इन सम्बन्धों में घनिष्ठता लाते रहते है।
5. सामाजिक दशाएं समूहों की सेवाएं समयान्तर पर प्रदान करती है अर्थाय ये सेवायें खाली समय की सेवायें होती है। व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन के कार्य से निवृत्त होकर इनमें भाग लेता है। सामाजिक सामूहिक कार्य अधिकांशतः उस समय किया जाता है जब व्यक्ति आर्थिक तथा अन्य क्रियाओं से निवृत्त होता है। अतः इस प्रकार की सेवाएं मनोरंजनात्मक सेवाएं समझी जाती है, यद्यपि इनका अर्थ व्यक्तियों के लिए भिन्न भिन्न होता है।
6. सामाजिक संस्थाओं में दो प्रकार के अधिकारी होते है– एक तो वे जो संस्था के वेतन भोगी होते है तथा दूसरे वे ऐच्छिक कार्यकर्ता होते है। यद्यपि प्रत्येक संस्था कुछ सीमा तक ऐच्छिक प्रयत्नों पर निर्भर होती है परन्तु सामाजिक सामूहिक कार्य की संस्थाएं मुख्य रूप से ऐच्छिक प्रयत्नों पर बल देती है।
7. इन संस्थाओं में व्यक्तिगत सहयोगिक तथा संयुक्त प्रयत्न पर बल दिया जाता है।
8. सामाजिक संस्थाएं वैसे तो वर्तमान उपयोग के लिए सेवाएं प्रदान करती तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करती है लेकिन दीर्घकालीन उददेश्य, भविष्य निर्माण करना होता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य संस्था की मुख्य विशेषताओं को, संचरना के उद्यम के लिए ढ़ांचे के रूप में परिभाषित कर सकते है परन्तु यह परिभाषा सीमित है। क्योंकि संरचना स्वयं सम्बन्धों तथा कार्यों का साधन है, अर्थात् इसके माध्यम से क्रियाएं सम्पन्न होती है। अतः संस्था की संरचना एक साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति तथा समूह प्रभावात्मक रूप से एक साथ कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किये जाते है। यह वह प्रकिया है जिसके द्वारा समूह एक दूसरे से संचालित होते है तथा सम्पूर्ण कार्यात्मक अवयव बनते है।

12.7 उपयोगी संरचना की विशेषताएं

1. संस्था की संरचना आवश्यकता से अधिक विस्तृत न हो तथा उसमें जटिलता भी न हो।
2. संरचना इस प्रकार से की जाये जिससे समय, व्यय, आदि में कमी हो।
3. संस्था के कार्य का प्रभाव उचित हो, तरीकों में समरूपता हो तथा सेवाओं में नियमन हो।
4. व्यक्तियों तथा समूहों के उत्तरदायित्व स्पष्ट हो जिससे वे र्निबाध रूप से जान सके कि वे क्या करने के लिए वहां पर है तथा उनका अपना कार्य दूसरे के कार्यों से किस प्रकार सम्बन्धित है।
5. जिस क्षेत्र में संस्था कार्य कर रही है उससे सम्बन्धित समूह एवं समुदायों में उददेशयपूर्ण सम्बन्ध हो।
6. कार्य के अनुसार संस्था के विभागों का बंटवारा हो।
7. संचार किया ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर हो तथा संस्था अन्तःक्रिया को उत्तेजित करें।
8. संस्था के नीति निर्धारण में समूह भाग लें।
9. सदस्यों में सहयोग तथा एकीकरण का विकास अवश्य हो।
10. संरचना में आवश्यकता पड़ने पर हेर फेर किया जा सके अर्थात् वह लचीली हो।
11. संरचा सदस्यों के मनोबल को ऊँचा करें तथा इनको संतोष प्रदान करें।

12.8 संस्था के अंग

संस्था के चार मुख्य अंग है :– 1. बोर्ड समूह 2. कर्मचारी समूह 3. सेवार्थी समूह और 4. सामूदायिक समूह।

मोटे तौर पर इनका संगठन निम्नांकित है :–

1. **बोर्ड समूह**
    - अधिकारी समिति।
    - वित्त समिति।
    - कार्यक्रम समिति।
    - जनसम्पर्क समिति।
    - भवन समिति।
    - व्यावसायिक सलाहकार समिति।
    - वैयक्तिक कार्य समिति।
    - सामूहिक कार्यसमिति।
    - स्वास्थ्य समिति।
2. **कर्मचारी समूह**
    - पूरे समूह के व्यावसायिक कर्मचारीगण –
        - वैयक्तिक सेवा कार्य से सम्बन्धित कर्मचारी।
        - सामूहिक कार्य से सम्बन्धित कर्मचारी।
    - ऐच्छिक कार्यकर्ता –
        - सामूहिक कार्य के ऐच्छिक कार्यकर्ता।
        - ऐच्छिक चिकित्सक।

- लिपिक कर्मचारी।
- मेन्टीनेन्स कर्मचारी।

3. **सेवार्थी समूह**
    - वैयक्तिक सेवा चाहने वाले सेवार्थी।
    - सामूहिक कार्य सेवा चाहने वाले सेवार्थी।
4. **सामूदायिक समूह** – यह वह समूह है जिसके लिए संस्था का संगठन किया जाता है, जैसे अस्पताल में रोगी समूह, जेल में अपराधी समूह इत्यादि।

12.8 संस्था के कार्य

इससे पहले कि कार्यकर्ता अपने कार्य को समझे कि वह समूह के साथ क्या करने जा रहा है, उसको यह अवश्य समझना चाहिए कि सम्बन्धित संस्था क्या करने का प्रयत्न कर रही है। समूह, कार्यकर्ता तथा संस्था सम्पूर्ण कार्य के अंग होते है। अतः तीनों में अन्तःसम्बन्ध होना आवश्यक होता है। 'कार्य' की शब्दकोषीय परिभाषा 'किसी खोज की वास्तविक तथा उचित क्रिया' के रूप में की जा सकती है। जब संस्थाएं अपना कार्य निर्धारित करती है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि वे अपनी सेवाओं का स्पष्टीकरण कर रही हैं तथा वर्णित उददेश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है।

कार्य के निम्नलिखित तत्व है :–

1. उददेश्य, 2. कार्यक्रम, 3. नीति, 4. तरीका, 5. क्षेत्र।

सामूहिक कार्यकर्ता के लिए संस्था के कार्य वे सकारात्मक क्षेत्र है जिनका उपयोग वह समूहों के साथ अपने कार्य में करता है। इससे उसको कार्य का स्पष्ट ज्ञान होता है। तथा अन्य अवयवों और इकाइयों की जानकारी होती है। समूह सदस्यों तथा कार्यकर्ता में भग्नाशा की स्थिति उत्पन्न नहीं होती हैं। परिणामों का मूल्यांकन ठीक प्रकार से होता है। लेकिन संस्था के कार्य गतिशील अवश्य होने चाहिए; जैसे जैसे सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन हो, उसी प्रकार संस्था के कार्यों में भी परिवर्तन हो। अन्यथा संस्था समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकेगी और फलतः उसकी ख्याति में कमी होगी। ऐच्छिक कार्यकर्ता अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेगें तथा शनैः शनैः संस्था का स्वारूप विघटित हो जायेगा। अतः संस्था को नियमानुसार परिवर्तन करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए।

संस्था के अर्न्तगत समूह फलते फूलते एवं बढ़ते है। उन पर संस्था का पूरा प्रभाव रहता है। वह समूहों को इस प्रकार से प्रभावित एवं निर्देशित करती है जिसे वे अपने ऊपर किसी प्रकार का बोझ एवं दबाव नहीं मानते है। संस्था समूह को निम्न सेवाएं प्रदान करती है :–

1. समूहों को उददेश्य के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान प्रदान करती है। संस्था का मुख्य कार्य समूहों को इस तथ्य से अवगत कराना होता है कि वे क्यों संगठित किये गये है तथा किस दिशा में कार्य के लिए प्रयत्नशील होंगे। स्पष्ट उददेश्यों का ज्ञान होना न केवल समूहों के लिए लाभप्रद होता है बल्कि इससे संस्था को भी सहायता मिलती है।
2. संस्था समूहों को प्रदान करती है। समूह अपने उददेश्यों की प्राप्ति अनेक माध्यमों से करते है। ड्रामा,खेलकूद,वार्तालाप कक्षाएं व्यावसायिक प्रशिक्षण इत्यादि अनेक माध्यम होते है। कार्यप्रणाली की उपलब्धि के लिए अनेक यन्त्रों की आवश्यकता होती है। संस्था कार्यक्रम से सम्बन्धित सामग्री का प्रबन्ध करती है जिससे समूहों की सुविधा होती है। इसके अतिरिक्त संस्था कार्यक्रमों का भी

निर्धारण करती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि संस्था समूहों को इस बात से अवगत कराती है कि कार्यक्रम का स्वरूप किस प्रकार का हो सकता है। तथा सेवार्थियों के लिए वह कैसे लाभप्रद होगा। वह उच्च स्तर के कार्यक्रमों के निर्धारण की सलाह देती है जो समूह, समुदाय तथा समाज के लिए मूल्यवान होते है।

3. संस्था के लिए समुदाय का सर्मथन तथा स्वीकृति प्रदान करती है। समूह की मान्यता के लिए समुदाय की स्वीकृति आवश्यक होती है। जब तक किसी सेवा के लिए समुदाय तैयार नहीं होगा उसका प्रारम्भ ही नहीं किया जा सकता। इसमें अतिरिक्त स्तर को मूल्यवान बनाने के लिए भी समर्थन आवश्यक होता है।
4. संस्था उन कार्यक्रमों की सेवा प्रदान करती है जो समूहों की सहायता करने के लिए तैयार होते है क्योंकि उनके बिना व्यावसायिक सेवा असम्भव है। सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता संस्था का कर्मचारी होता है। वह व्यावसायिक ज्ञान, निपुणता सिद्धान्त प्रविधि आदि का उपयोग समूह के साथ करता है। समूह के लिए कार्यकर्ता का होना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि समूह जिन उददेश्यों को प्राप्त करना चाहता है उनको प्राप्त करने में केवल व्यावसायिक कार्यकर्ता ही सहायता कर सकता है।
5. संस्था समूह को जीवन के मूल्य , विश्वास तथा दर्शन समझाती है जिसका ज्ञान दीर्घ अनुभव के पश्चात् होता है। इसका तात्पर्य यह है कि सामूहिक कार्य को सम्पन्न करने में किन किन मूल्यों को ध्यान में रखना होगा, उसका दर्शन क्या होगा तथा किन विश्वासों पर कार्य होगा। ये सभी आवश्यक तत्व मानवतावादी विचारों पर आधारित होते है।
6. संस्था नियंत्रित पर्यावरण सम्बन्धी स्थिति प्रदान करती है जिसमें समूहों को कार्य करने का सुअवसर प्राप्त होता है।
7. यह वह तरीका प्रदान करती है जिसका पूर्व परीक्षण हो चुका होता है इस प्रकार समूह संगठनात्मक गलतियों से बचा रहता है।

12.9 संस्था के अधिशासीय कार्य

1. संस्था के परिभाषा ज्ञान, अनुभव तथा संस्था के महत्व को समझने में सहायता प्रदान करती है तथा समूहों के उददेश्यों से अपने उददेश्यों की पारस्परिकता बनाये रखती है।
2. विभिन्न समूहों के कार्यों में सम्बन्ध स्थापित करती है।
3. दीर्घकालीन तथा वर्तमान उददेश्यों में सन्तुलन बनाये रखती है।
4. समूहों की आवश्यक दशाओं को समझने तथा स्थापन में सहायता करती है।
5. साधनों सुविधाओं, अधिकारियों कर्मचारियों तथा कार्यात्मक दशाओं का निर्देशन करती है।
6. स्रोतों का पता लगाती है।
7. कार्य करने के तरीके निश्चित करती है।
8. सहयोगिक, सहसम्बन्धित तथा व्यावहारिक प्रयत्नों को प्रोत्साहन देती है।
9. उत्तरदायित्व के सम्बन्ध स्थापित करती है।

12.10 कर्मचारियों से सम्बन्धित सेवाएं

1. संस्था का कार्य कर्मचारियों में सहसम्बन्ध उत्पन्न करना होता है।
2. प्रत्येक संस्था में उच्च–निम्न कर्मचारियों में वर्गीकरण होता है। उसके महत्व, स्थान तथा उत्तरदायित्व में अन्तर होता है। अतः सभी कर्मचारियों का समान स्तर नहीं होता। इसलिए उनमें

प्रायः मतभेद हो जाता है। संस्था का कार्य है कि वह इन भावनाओं में कमी लाये तथा कार्य को समान महत्व दे।

3. संस्था,कर्मचारियों ने सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करती है क्योंकि अक्सर सामान्य कर्मचारियों तथा विशेषज्ञ कर्मचारियों में असामंजस्य उपस्थित होने का खतरा रहता है।
4. ऐच्छिक रूप से उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए अपनत्व की भावना उत्पन्न करती है।
5. अधिकारियों तथा कर्मचारियों में काफी अन्तर होता है। वे एक दूसरे से बहुत कम परिचित होते है। अतः संस्था का उददेश्य इस अन्तर को कम करना होता है।
6. संस्था सामूहिक प्रयत्नों पर जोर देती है।

कार्यकर्ता को संस्था के विषय में निम्न जानकारी आवश्यक होती है :–

कार्यकर्ता जिस संस्था में कार्य करता है उसकी स्थिति के विषय में उसे पूर्ण अवगत होना चाहिए। समूह के साथ अपना कार्य प्रारम्भ करने से पहले कार्यकर्ता को संस्था की वे आवश्यक बातें जाननी एवं समझनी चाहिए जो उसके कार्य के लिए आवश्यक है। यह संस्था का उत्तरदायित्व है कि प्रशासकीय व्यवस्था एवं अधीक्षण द्वारा कार्यकर्ता को आवश्यक ज्ञान उपलब्ध कराती रहें :–

1. कार्यकर्ता को संस्था के उददेश्यों एवं कार्यों के विषय में अवगत होना चाहिए। वह संस्था के साथ कार्य करने के लिए अवश्य तत्पर हो, उसकी परिवर्तनशील प्रकृति से अवगत हो तथा अपने को उसी प्रकार परिवर्तित करने के लिए समर्थ हो।
2. संस्था जिस क्षेत्र में कार्य कर रही है, कार्यकर्ता उससे भंली भांति अवगत हो। वह क्षेत्र की विशेषताओं का ज्ञान रखता हो। रूचियों, आवश्यकताओं, भौगोलिक स्थिति तथा मनोसामाजिक व आर्थिक कारकों का ज्ञान वह अवश्य रखता हो।
3. संस्था समूहों की जिस तरीके से सहायता करती है, कार्यकर्ता को उसका ज्ञान होना चाहिए। उसको संस्था के उददेश्यपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान हो। समूह से जिस प्रकार संस्था सम्पर्क स्थापित करती है, उसका ज्ञान होना चाहिए। संस्था की शर्तों से कार्यकर्ता को अवगत होना चाहिए।
4. कार्यकर्ता को आन्तरिक कार्यवाही सम्बन्धी नीतियों से अवगत होना चाहिए। उसको शुल्क, कार्य के घंटे, नियम, भाग लेने की सुविधाएं तथा अन्य समूहों से सम्बन्ध की दशाएं अभिलेखों को प्रकृति, कार्य सम्बन्धी अधिनियम इत्यादि बातें जानना आवश्यक होता है।
5. संस्था के अन्य कार्यकर्ताओं से अपने सम्बन्धों को समझने में पूर्ण समर्थ हो। जिस प्रकार के अधीक्षण की आवश्यकता हो उनको वह जानता हो।
6. कार्यकर्ता में समूह सदस्यों को सहायता करने की निपुणता हो जिससे वह समूह के साथ उददेश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हो।
7. जिस प्रकार तथा जिन दशाओं में समूह का मूल्यांकन होता है उसको वह प्रारम्भ से ही जानता हो तथा संस्था से सम्बन्धित अपने कार्यों का उसे बोध हो।

12.11 सार संक्षेप

जब हम सामाजिक संस्था को सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखते है तो उसका पूर्ण स्वरूप देखना अनिवार्य होता है क्योंकि इस प्रत्येक भाग एक दूसरे से सम्बन्धित होता है तथा वे अन्तर आश्रित होते है। संस्थाओं में ऐसे अनेक व्यक्ति तथा समूह होते है। जिनका सामान्य उद्देश्य होता है और वे उनको प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। प्रत्येक की पृष्ठभूमि तथा योगदान भिन्न भिन्न होता है। प्रत्येक सदस्य एक कार्य के लिए उत्तरदायी होता है। उनमें संचार की प्रकिया सदैव चलती रहती है तथा अन्तःक्रिया

का संचार होता है। इस निरन्तर संचार तथा अन्तःक्रिया सम्पूर्ण की विशेषताएं उसके योग से भिन्न होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि समूह की विशेषताएं अलग अलग व्यक्तियों की विशेषतओं के योग से भिन्न होती है। नई नई भावनाएं, धारणाएं, तथा प्रभाव उत्पन्न होते है। संस्था के उददेश्य सामाजिक समूहों के द्वारा पूरे किये जाते है, अतः समूह निर्माण में संस्था एक अनिवार्य भूमिका अदा करती है। उसके कार्य संस्था की संरचना व उददेश्यों पर पूर्णरूपण निर्भर होते है।

अभ्यास प्रश्न

1.सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था की भूमिका को समझाइये ?
2.सामूहिक कार्य प्रणाली को संस्था के संदर्भ में समझाइये ?
3.सामाजिक संस्थाओं के प्रकारों की व्याख्या कीजिये ?
4.सामाजिक सामूहिक कार्य संस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ?
5.संस्था के अंगों की व्याख्या कीजिये ?
6.संस्था के कार्यों की व्याख्या कीजिये ?
7.संस्था के अधिशासीय कार्यों पर टिप्पणी कीजिये ?
8.कर्मचारियों से सम्बन्धित सेवाओं के विषय में जानकारी दीजिये ?

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Pepell, G.P. & Rathman, B.- Social Work with Groups
2.Trecker, H.B.- Social Group Work. Principles and Practice Newyork Association Press.
3.Toselane, R.W.- An Introduction to Group Work Practice.
4. Wilson, G. & Ryland, G.- Social Group Work Practice.
5. Samuel T. Gladding - Group Work, A Community Speciality.
6. Ronald W. Toseland & Robert F. Rivar: An Introduction to Group Work Practice, Manachuseths: Allyn & Baion.
7. Balgopal, P. and Vanil T. - Groups in Social Work: An Ecological Perspective, Newyork: Macmillan.
8. Harford, M.- Groups in Social Work.
9. Konopka, G.- Social Group Work: A Helping Process (3rd) Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
10. सिंह, ए.एन. एवं सिंह, ए.पी.– समाज कार्य
11. Mishra, P.D. & Mishra Bina- Social Group Work Theory and Practice.
12. मिश्रा, प्रयागदीन– सामाजिक सामूहिक कार्य

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष **संयोजक**

कुलपति निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

1.प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

2.प्रोफ़ेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

१. प्रोफे. डी0 के0 सिंह उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
२. डॉ० आर0 वी0 सिंह , बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
३. डॉ० मनीष राय , बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
४. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

आई० एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-95-6

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष :

Published by: **उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल**-263139

……………………………………………………………

सर्वाधिकार सुरक्षित |इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसीअन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MSW-08

समाज कल्याण प्रशासन एवं विधान
Social Welfare Administration & Legislation

खण्ड – 1

इकाई 1 समाज कल्याण प्रशासन :एक परिचय पृष्ठ – 1–19
Social Welfare Administration: an Introduction

इकाई 2 समाज कल्याण प्रशासन : अवधारणा एवं प्रकृति पृष्ठ –20–42
Social Welfare Administration: Nature & Concept

इकाई 3 समाज कल्याण प्रशासन का प्रबंधन पृष्ठ – 43–57
Management of Social Welfare Administration

खण्ड – 2

इकाई 4 समाज कल्याण प्रशासन के प्रमुख अवयव पृष्ठ – 58–86
Components of Social Welfare Administration

इकाई 5 सामाजिक नीति पृष्ठ –87–109
Social Policy

इकाई 6 सामाजिक विधान एवं सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका पृष्ठ –110–133
Social Legislation and Role of Social Worker

इकाई 7 नीति निर्माण पृष्ठ –134–168
Policy Making

खण्ड – 3

इकाई 8 परियोजना प्रबन्धन पृष्ठ – 169–176
Project Management

इकाई 9 कार्मिक नीतियाँ एवं मानव संसाधन विकास पृष्ठ –177–212
Personnel Policies and Human Resource Development

इकाई 10 समाज कल्याण एवं विकास में स्वयं सेवी संस्थाओं/संगठनों की भूमिका पृष्ठ –213–235
Role of NGOs/Organizations in Social Welfare and Development

खण्ड – 4

इकाई –11 सामाजिक विधान एवं भारतीय संविधान पृष्ठ – 236–254
Indian Constitution and Social Legislation

इकाई–12 सामाजिक न्याय : भूमिका व इसके लाभ विषय पृष्ठ–255–269
Social Justice: Role and Scope

इकाई 13 महिलाओं एवं बच्चों से सम्बन्धित विधान पृष्ठ–270–283
Legislations Pertaining to Women and Children

इकाई –14 सुरक्षा से सम्बन्धित सामाजिक विधान पृष्ठ– 284–302
Social Legislation pertaining to Security

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

1.प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी,महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी
2.प्रोफ़ेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल
2. डॉ० राजेश कुशवाहा ,डॉ० भीम राव अम्बेडकर वि० वि० ,आगरा

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

आई० एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-60-4

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष :

Published by: उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल-263139

....

सर्वाधिकार सुरक्षित |इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

इकाई–1

समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास अवधारणा

1.4 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का विश्वव्यापी एवं राष्ट्रीय परिदृश्य

1.5 मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की प्रासंगिकता

1.6 सार संक्षेप

1.7 परिभाषिक शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभ्यास हेतु प्रश्न

1.1 परिचय

व्यक्ति के अस्तित्व के बिना समाज की कल्पना व्यर्थ है। जहां समाज ने व्यक्ति को मानवीय अस्तित्व प्रदान किया है वहीं समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं ने भी समय–समय पर जन्म लिया है। मनुष्य की इन समस्याओं पर नियंत्रण पाने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इन्हीं सामाजिक समस्याओं के निदान की एक श्रखंला के रूप में समाज कार्य का जन्म हुआ है। इस प्रकार से समाज कार्य व्यवसाय का मुख्य ध्येय प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक अनुकूलन के मार्ग में आने वाली सामाजिक एवं मनोसामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान प्रस्तुत करना है।

''The Dictionary of Sociology defines field work as social survey or process of collecting primary data from a population distributed geographically.'' **इंडियन कांफ्रेंस आफ सोशल वर्क के अनुसार,**''समाज कार्य मानवतावादी दर्शन वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित व्यक्तियों अथवा समूहों अथवा समुदायों को एक सुखी एवं सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करने हेतु एक कल्याणकारी क्रिया है। इस प्रकार से समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का तात्पर्य आत्मसहायता करने हेतु लोगों की सहायता करने के वैज्ञानिक ढंग के प्रयोग द्वारा व्यक्ति, समूह, समुदाय और संगठन की आवश्यकताओं को प्रभावित करने हेतु विभिन्न संसाधनों को जुटाने की एक कला है।''

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास को परिभाषित कर सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की अवधारणा को समझ सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास के इतिहास की व्याख्या कर सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास के विश्वव्यापी एवं राष्ट्रीय परिदृश्य को समझ सकेगें।
- मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की प्रासंगिकता को समझ सकेगें।

1.3 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की अवधारणा

समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास द्वारा कार्यकर्ता अपने वैज्ञानिक ज्ञान प्राविधिक निपुणताओं एवं मानवतावादी दर्शन का प्रयोग करते हुये मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों को वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक स्तर पर सहायता प्रदान करने की एक क्रिया है जो उनकी इन समस्याओं को पहचान में, उन पर ध्यान केन्द्रित करने, उनके कारणों को जानने तथा उनका स्वतः समाधान करने की क्षमता को विकसित करती है तथा सामाजिक व्यवस्था की गड़बड़ियों को दूर करते हुये इसमें वांछित परिवर्तन लाती है। ताकि व्यक्ति की सामाजिक क्रिया प्रभावपूर्ण हो सके, उसका समायोजन संतोषजनक हो सके और उसे सुख एवं शान्ति का अनुभव हो सके और सामाजिक व्यवस्था में पाये जाने वाली कुरीतियों एवं प्रगति को अवरूद्ध करने वाली संस्थागत संरचनाओं को उखाड़ फेंकते हुये सभी को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के समीचीन अवसर प्रदान किये जा सकें और सामाजिक संघर्षों को कम करते हुये एकीकरण को प्रोत्साहित किया जा सके।

समाज कार्य में क्षेत्र कार्य की पृष्ठभूमि को समझने के लिये समाज कार्य दर्शन को समझना अति आवश्यक है क्योंकि सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं को समझे बिना क्षेत्र कार्य की वास्तविकता को समझना मुश्किल है। दर्शन सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा व्यक्ति, समाज आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। समाज कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूलाधार ही मानवतावादी है, लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धान्तों तथा तथ्यों पर आाधरित है। समाज कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन कल्याण के लिए करता है।

लियोनार्ड के अनुसार दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्यात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है। आदर्शात्मक रूप के अतिरिक्त यह मुनष्य मनुष्य के बीच तथा मुनश्य व सम्पूर्ण जगत के बीच सम्बन्धों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है। मानव विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा। समाज कार्य मानव जीवन को अधिक सुखमय तथा प्रकार्यात्मक बनाने का संकल्प रखता हव। अतः बट्रिम का मत है कि समाज कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है। परन्तु यह संकल्प तभी

पूरा हो सकता है जब समाज कार्य उन विश्वासों पर आधारित हो जो सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसी संदर्भ में समाज कार्य दर्शन का वर्णन किया जा रहा है जिसमें समाज कार्य के प्रत्ययों, मनोवृत्तियों तथा मूल्यों का निरूपण किया जायेगा। यह आपको क्षेत्र में कार्य करने और समाज के दर्शन को समझने के योग्य बनाता है।

1.समाज कार्य के मूल प्रत्यय

समाज कार्य के निम्नलिखित प्रत्यय महत्वपूर्ण हैं।

1. व्यक्ति का प्रत्यय

जान्सन का मत है कि समाज कार्य व्यक्ति के अन्तर्निहित महत्व, सत्यनिष्ठा तथा गरिमा के प्रति आस्था रखता है। इस प्रत्यय को ध्यान में रखकर कार्यकर्ता सम्बन्ध स्थापित करता है तथा समस्या समाधान करने का प्रयास करता है। कार्यकर्ता यह विश्वास भी रखता है कि व्यक्ति समग्रता में प्रतिक्रिया करता है तथा उसकी बाहय एवं आन्तरिक परिस्थितियां भिन्न भिन्न होती हैं। अतः उनका व्यवहार भी भिन्न भिन्न होता है। उसके वैयक्तिक मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं और वह संपूर्ण पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया करता है। उसको अपना निर्णय लेने का अधिकार होता है। समाज कार्य में इन्हीं बिन्दुओं को महत्वपूर्ण माना जाता है तथा ये ही समाज कार्यकर्ताओं द्वारा किए जाने वाले कार्य का मार्ग निर्देशन करते हैं।

2. व्यवहार का प्रत्यय

व्यवहार का तात्पर्य व्यक्ति के वाहय पर्यावरण के प्रति किये गये प्रत्युत्तर से है। व्यक्ति पर्यावरण के साथ समायोजन करने के लिए प्रत्युत्तर करता है। प्रत्येक क्षण व्यक्ति को आन्तरिक तथा वाहय प्रेरक, आवश्यकताएं तथा सामाजिक पर्यावरण प्रभावित करते हैं जिसके कारण उस पर दबाव पड़ता है। फलतः उसे तनाव व चिंता की अनुभूति होती है। इस चिंता को कम करने के लिए तथा तनाव को हटाने के लिए व्यक्ति जो कार्य करता है उसे व्यक्ति का व्यवहार कहा जाता है। इस प्रकार व्यवहार के अन्तर्गत एक समय में व्यक्ति द्वारा किये गये समस्त संवेग, विचार, दृष्टिकोण तथा कार्य आते हैं। मानव व्यवहार अनेक सिद्धान्तों पर आधारित है जिनमें निम्न प्रमुख हैं।

1. सभी प्रकार का व्यवहार अर्थपूर्ण होता है।
2. व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति उसके व्यवहार को प्रभावित करती है।
3. अतीत में प्राप्त किये गये अनुभव व्यवहार को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
4. सामाजिक पृष्ठभूमि व्यवहार के ढंग को प्रभावित करती है।
5. वंश परम्परा की विशेषताओं का व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।
6. व्यवहार चेतन व अचेतन दोनों प्रकार का होता है।
7. वर्ततान दशाओं का व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।

8. भावी आशाओं का भी व्यवहार में महत्वपूर्ण स्थान है।
9. सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का व्यवहार व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है।
10. नवीन तथ्यों की जानकारी के पश्चात व्यवहार बदलता भी रहता है।

समाज कार्यकर्ता व्यवहार के इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही अपनी भूमिका संपादित करता है।

3. समस्या का प्रत्यय (Concept of problem)

जब एक व्यक्ति पहले से सीखी हुई आदतों, सम्प्रेरणाओं तथा नियमों की सहायता से उद्देश्य पर पहुंच नहीं पाता है, तब समस्या की स्थिति उतपन्न होती है। समस्या उस सयम भी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति एक उद्देश्य तो रखता है परन्तु यह नहीं जानता है कि उस उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाये। समस्या किसी एक या एक से अधिक आवश्यकता से सम्बन्धित होती है जो व्यक्ति के जीवन में व्यवधान एवं कष्ट उत्पन्नक करती है। समस्या किसी दबाव शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक के रूप में भी हो सकती है जो सामाजिक भूमिका पूरी करने में बाधा उत्पन्न करती है। समस्या के अनेकानेक रूप होते हैं तथा इसकी प्रकृति गत्यात्मक होती है। यह सदैव श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रतिक्रिया करती है। कोई भी समस्या जिससे व्यक्ति ग्रसित होता है वस्तुगत वाहय तथा विषयगत आन्तरिक दोनों प्रकार से महत्वपूर्ण होती है। समस्या के वाहय तथा आन्तरिक तत्व ने केवल एक साथ घटित होते हैं बल्कि इनमें से कोई भी एक दूसरे का कारण हो सकता है। समस्या की प्रकृति कैसी भी हो लेकिन सेवार्थी की प्रतिक्रियाओं का प्रभाव समस्या समाधान पर अवश्य पड़ता है।

समाज कार्यकर्ता में समस्या समाधान के लिए निम्न योग्यताएं होनी आवश्यक होती हैं।

1. समस्या के तथ्यों का पूर्ण ज्ञान
2. समस्या के सभी तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान
3. तत्वों को व्यवस्थित करने की योग्यता तथा विकास की गति का ज्ञान
4. परिस्थिति का उच्च प्रत्यक्षीकरण
5. पूर्व अनुभवों का उचित उपयोग
6. सम्प्रेरणाओं की जटिलता तथा इनके प्रकार का ज्ञान

समाज कार्य का दृढ़ विश्वास है कि समस्या सभी व्यक्तियों को किसी न

किसी रूप में प्रभावित करती है।। परनतु जो व्यक्ति समाधान कर लेता है वह सेवार्थी नहीं बनता। अतः समाधान करने की क्षमता का विकास व्यक्ति में सन्निहित है।

4. सम्बन्ध का प्रत्यय (Concept of relationship)

सम्बन्ध एक प्रत्यय है जो मौखिक अथवा लिखित वार्तालापों में प्रकट होता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति लघुकालीन, दीर्घकालीन, स्थायी अथवा अस्थायी सामान्य अभिरूचियों एवं भावनाओं के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। सामाजिक एवं सांवेगिक होने के नाते मनुष्य दूसरों के साथ सम्बन्धों, उनकी वृद्धि एवं

विकास को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही उसका सम्पूर्ण समायोजन भी उसकी परिधि क्षेत्र में आ जाता है। बीस्टेक ने सम्बन्ध के इन तत्वों का उल्लेख किया है। भावनाओं का उद्देश्यपूर्ण प्रगटन, नियंत्रित सांवेगिक भागीकरण, स्वीकृति, वैयक्तीकरण, अनिर्णायक मनोवृत्ति, आत्म निश्चयीकरण तथा गोपनीयता।

5. भूमिका का प्रत्यय (Concept of role)

सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में व्यक्ति अपनी आयु, लिंग, जाति, प्रजाति एवं व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर जिस स्थिति को प्राप्त करता है उसे उसकी प्रस्थिति कहा जाता है और प्रस्थिति के संदर्भ में सामाजिक परम्परा, प्रथा, नियम एवं कानून के अनुसार कार्य करने होते हैं, वह उसकी भूमिका होती है। लिंटन का मत है कि प्रत्येक स्थिति का एक क्रियापक्ष होता है, इस क्रिया पक्ष को ही भूमिका कहते हैं। अपनी स्थिति का औचित्य सिद्ध करने के लिए व्यक्ति को कुछ करना होता है, उसी को भूमिका कहा जाता है। जब व्यक्ति की प्रेरणायें एवं क्षमतायें उसकी अपेक्षित भूमिका के अनुकूल नहीं होती हैं तो उसका अनुकूलन नहीं हो पाता है और उसे वाहय सहायता की आवश्यकता होती है।

6. अहं का प्रत्यय (Concept of ego)

अहं मस्तिष्क का वह भाग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखता है। व्यक्ति में ऐसी अनेक मूल प्रवृत्तियां होती हैं जो सन्तुष्ट होने के लिए चेतन में आने का प्रयत्न करती हैं, परन्तु अहं ऐसा करने से रोकता है क्योंकि उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है। अहं की शक्ति की असफलता की अवस्था में व्यक्ति अतार्किक एवं अचेतन सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग अहं की सुरक्षा के लिए करता है। इस प्रकार की युक्तियों द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को तार्किक बनाता है और समाज द्वारा अस्वीकृत उत्प्रेरकों को सही मानता है। वह अहं की रक्षा के लिए प्रक्षेपण, प्रतिगमन, अस्वीकृति, स्थानापन्न, प्रतिक्रिया, निर्माण आदि युक्तियों का प्रयोग संचेन रूप से करता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी के समाज द्वारा स्वीकृत अनुकूलन के ढंगों तथा अतार्किक सुरक्षात्मक उपायों द्वारा अनुकूलन में अन्तर स्पष्ट करता है। वह सेवार्थी की अहं शक्ति का मूल्यांकन करता है तथा वर्तमान स्थितियों का सेवार्थी की दृष्टि से मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता अहं की कार्यप्रणाली तथा कार्यात्मकता के अध्ययन तथा निदान द्वारा सेवार्थी की शक्ति, विचार पद्धति, प्रत्यक्षीकरण, मनोवृत्ति आदि की जानकारी प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर उसे चिकित्सा प्रक्रिया निश्चित करने में सुविधा होती है।

7. अनुकूलन का प्रत्यय (Concept of adaptation)

व्यक्ति को दो कारणों से तनावपूर्ण स्थिति का अनुभव होता है।

1. पहले अपनाए गए तथा अभ्यस्त ढंगों के द्वारा परिवर्तित स्थिति की मांगों से सम्बन्धित भूमिकाओं का प्रतिपादन न हो पाना।
2. व्यक्तिगत सम्प्रेरणाओं एवं क्षमताओं में परिवर्तन होने की स्थिति में पहले की भूमिकाओं को पूरा करने में व्यक्तिगत असन्तुलन होना।

3. व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति से तीन प्रकार से अनुकूलन करता है।
   1) प्रयोग में लाए गए तथा पूर्व निश्चित ढंगों के उपयोग द्वारा।
   2) कल्पना की उड़ान द्वारा।
   3) उदासीनता, मानसिक उन्मुखता, प्रत्याहार, अगतिमानता अथवा अतिसक्रियता द्वारा।
4. व्यक्ति सबसे पहले अपनी समस्या का समाधान अपने पहले प्रयोग में लाए गए ढंगों एवं प्रयुक्त प्रविधियों द्वारा करने का प्रयत्न करता है। यदि इस प्रकार समस्या का समाधान नहीं होता है तो वह या तो संघर्ष करता है या अपने को उस स्थिति के अनुकूल बना लेता है अथवा उस स्थिति से दूर होने का प्रयत्न करता है। यदि ये तरीके भी असफल हो जाते हैं तो वह समस्या के प्रति उदासीन होकर मानसिक रोगी बन जाता है।
5. समाज कार्य सेवार्थी की अनुकूलन करने की प्रविधियों की शक्तियों, क्षमताओं, प्रभावों आदि को महत्व देता है। सेवार्थी में अनुकूलन करने की क्षमता सामाजिक पर्यावरण से समायोजन करने की स्थिति को प्रभावित करती है। वह यह निश्चित करता है कि सेवार्थी तनावूपर्ण स्थिति को किस प्रकार सुलझाने का प्रयत्न करता है तथा अपने प्रयत्नों को किस सीमा तक परिवर्तित करता है, और उसकी कठिनाई एवं समस्या को कितनी जल्दी दूर किया जा सकता है। कार्यकर्ता यह जान लेने के पश्चात दो प्रकार का प्रयत्न करता है , वह या तो व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों को सम्बल प्रदान करते हुये अनुकूलन सम्भव बनाता है या फिर सामाजिक परिस्थिति में ही परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

समाज कार्य के मौलिक मूल्य (Basic values of social work)

समाज कार्य का उद्देश्य मानव कल्याण करना है। यह कल्याण कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब वह सामाजिक मूल्यों को अपनी क्रियाविधि में समाहित करे, क्योंकि मूल्य ऐसे सामाजिक प्रतिमान, लक्ष्य तथा आदर्श होते हैं जिनके आधार पर सामाजिक परिस्थितियों तथा व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन किया जा सकता है। मूल्यों के आधार पर ही मनुष्य के सामाजिक जीवन शैली का निर्धारण होता है तथा अन्तः क्रियायें सम्भव होती हैं। जान्सन के अनुसार मूल्यों को एक सांस्कृतिक या केवल वैयक्तिक धारणा या मानक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा वस्तुओं की एक–दूसरे के सन्दर्भ में तुलना की जाती है, उन्हें स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है, उन्हें सापेक्ष रूप से अपेक्षित या उपेक्षित, अधिक या कम, बुद्धिमत्तापूर्ण या मूर्खतापूर्ण अधिक या कम सही मान जाता है। मुकर्जी के मत में मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छायें तथा लक्ष्य हैं जिनका अभ्यन्तीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो विषयात्मक प्रतिष्ठा, उद्देश्य एवं आकांक्षायें बन जाते हैं। कॉस के अनुसार मूल्य को किसी वस्तु, अवधारणा, सिद्धान्त, क्रिया अथवा परिस्थिति के विषय में किसी व्यक्ति, समूह या समुदाय के बौद्धिक एवं संवेगात्मक निर्णय के रूप में देखा जा सकता है।

प्रत्येक व्यवसाय में जो मानव व्यवहार से सम्बन्धित है कुछ न कुछ मूल्य अवश्य होते हैं और इन मूल्यों के आधार पर ही वह व्यवसाय अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। सामाजिक मूल्यों का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि वे सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखते हैं, व्यवहारों में एकता लाते हैं, जीवन के मनोवैज्ञानिक आधार निश्चित करते हैं, निश्चित व्यवहार प्रदान करते हैं, भूमिका का निर्धारण करते हैं तथा सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के मूल्यांकन को सम्भव बनाते हैं।

समाज कार्य के मूल्य

कॉस ने समाज कार्य के 10 प्राथमिक मूल्यों का उल्लेख किया है

1. मनुष्य की महत्ता तथा गरिमा
2. मानव प्रकृति में पूर्ण मानवीय विकास की क्षमता
3. मतभेदों के लिए सहनशीलता
4. मौलिक मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि
5. स्वाधीनता में विश्वास
6. आत्म निर्देशन
7. अनिर्णायक प्रवृत्ति
8. रचनात्मक सामाजिक सहयोग
9. कार्य का महत्व तथा रिक्त समय का रचनात्मक उपयोग
10. मनुष्य एवं प्रकृति द्वारा उत्पन्न किए गए खतरों से अपने अस्तित्व की रक्षा

कोनोप्का(**Konopka**) ने समाज कार्य के 2 प्राथमिक मूल्यों का उल्लेख किया है :

1) प्रत्येक व्यक्ति का आदर तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के पूर्ण विकास का अधिकार।

2) व्यक्तियों की पारस्परिक निर्भरता तथा एक–दूसरे के प्रति अपनी योग्यता के अनुसार उत्तरदायित्व।

संयुक्त राष्ट ने समाज कार्य के निम्न दार्शनिक एवं नैतिक मूल्यों एवं मान्यताओं का उल्लेख किया है।

1. किसी व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि स्थिति, जाति, धर्म, राजनैतिक विचारधारा तथा व्यवहार को ध्यान में रखे बिना उसके महत्व, मूल्य या योग्यता को मान्यता प्रदान करना तथा मानव प्रतिष्ठा एवं आत्म–सम्मान को प्रोत्साहित करना।
2. व्यक्तियों, वर्गों एवं समुदाय के विभिन्न मतों का आदर करने के साथ–साथ जन कल्याण के साथ उनका सामन्जस्य स्थापित करना।
3. आत्म–सम्मान एवं उत्तरदायित्व पूरा करने की योग्यता बढ़ाने की दृष्टि से स्वावलम्बन को प्रोत्साहित करना।
4. व्यक्तियों, वर्गों अथवा समुदायों की विशेष परिस्थितियों में संतोषमय जीवन निर्वाह करने हेतु समुचित अवसरों में वृद्धि करना।

हर्बट बिस्नो **(Herbert bisno)** ने समाज कार्य के दर्शन का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने समाज कार्य दर्शन को 4 क्षेत्रों में विभाजित किया है: व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में, समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों के आपसी संदर्भ में, समाज कार्य की प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में, सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में।

1. व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में

1) व्यक्ति अपने अस्तित्व के कारण ही मूल्यवान है।
2) मानवीय पीड़ा अवांछनीय है अतः इसको दूर किया जान चाहिए अन्यथा जहां तक संभव हो कम किया जाना चाहिए।
3) समस्त मानव व्यवहार जैविकीय अवयव तथा उसके पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया का परिणाम है।
4) मनुष्य सम्भवतः विवेकपूर्ण कार्य नहीं करता है।
5) जन्म के समय मनुष्य अनैतिक तथा असामाजिक होता है।
6) मानव आवश्यकताएं वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की होती हैं।
7) मनुष्यों में महत्वपूर्ण अंतर होते हैं। अतः उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए।
8) मानव सम्प्रेरणा जटिल एवं अस्पष्ट होती है।
9) व्यक्ति के प्रारम्भिक विकास में पारिवारिक सम्बन्धों का प्राथमिक महत्व होता है।
10) सीखने की प्रक्रिया में अनुभव एक आवश्यक पहलू है।

2. समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों के संदर्भ में

1) समाज कार्य हस्तक्षेप न करने की नीति तथा सबसे अधिक उपयुक्त के जीवित रहने के सिद्धांत को नहीं मानता है।
2) यह आवश्यक नहीं है कि धनी तथा शक्तिशाली व्यक्ति ही योग्य हों तथा निर्धन एवं दुर्बल व्यक्ति अयोग्य हों।
3) सामाजीकृत व्यक्तिवाद विषम व्यक्तिवाद की अपेक्षा अच्छा है।
4) सदस्यों के कल्याण का मुख्य उत्तरदायित्व समुदाय पर होता है। सामाजिक सेवाओं पर समुदाय के सभी वर्गों का समान अधिकार है। समुदाय का उत्तरदायित्व है कि वह बिना भेदभाव के अपने सभी सदस्यों की कठिनाइयों का निराकरण करे।
5) केन्द्रीय सरकार का यह उत्तरदायित्व है िकवह स्वास्थय, आवास, पूर्ण रोजगार, शिक्षा तथा अन्य विविध प्रकार से जन कल्याण एवं सामाजिक बीमा योजना सम्बन्धी कार्यक्रमों को लागू करे।
6) जन सहायता आवश्यकता की अवधारणा पर आधारित होनी चाहिए।
7) संगठित श्रम का सामुदायिक जीवन में सक्रिय योगदान होता है तथा उसकी शक्ति को विध्वंसात्मक न मानकर रचनात्मक मानना चाहिए।

8) सम्पूर्ण समानता एवं पारस्परिक सम्मान के आधार पर सभी प्रजातियों एवं प्रजातीय समूहों में सम्पूर्ण सहयोग होना चाहिए।

9) स्वतंत्रता एवं सुरक्षा में कोई पारस्परिक विरोध नहीं है।

समाज कार्य की प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में

1) समाज कार्य का दृष्टिकोण द्विमुखी है। एक ओर समाज कार्य व्यक्तियों को संस्थागत समाज के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायता देता है तो दूसरी ओर वह इस संस्थागत समाज के आवश्यक क्षेत्रों में परिवर्तन लाने का भी प्रयास करता है।

2) मानव व्यवहार के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति को ही आवश्यक साधन माना जाता है।

3) सामान्यतया एक सक्षम व्यक्ति अपने हितों का सबसे अच्छा निर्णायक होता है। उसे स्वयं निर्णय लेना चाहिए तथा समस्या का निराकरण करना चाहिए।

4) व्यवहार में सुधार एवं सामाजिक विकास के लिए वातावरण के परिवर्तन एवं अन्तदृष्टि के विकास पर विश्वास रखता है न कि आदेश, निर्णय अथवा प्रबोधन में

5) समाज कार्य जनतंत्र को एक प्रणाली के रूप में मानता है।

सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में

1) हमारी संस्कृति में गम्भीर राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कुसमायोजन है।

2) क्रमिक विकास द्वारा किया गया सुधार हमारे समाज के लिए प्रासंगिक एवं वांछनीय है।

3) सामाजिक नियोजन आवश्यक है।

इतिहास का विस्तृत वर्णन आपने समाज कार्य के प्रथम सत्र में ज्ञात किया हैं आप जान गये होगें कि समाज कार्य शिक्षा में प्रशिक्षण का प्रारम्भ दान संगठन के रूप में अमरीका में 1898 में प्रारम्भ हुआ। यह संगठन नये प्रशिक्षुओं हेतु प्रशिक्षण का प्रबंध करता था। इस प्रशिक्षण की प्रकृति निश्चित रूप से परीक्षणात्मक होती थी। यह सिर्फ पांच सप्ताहों का एक प्रशिक्षण कार्यक्रम था जो नये प्रशिक्षुओं को प्रदान किया जाता था। समाज कार्य व्यवसाय में क्षेत्र कार्य अभ्यास को प्रारम्भ करने का श्रेय मेरी रिचमंड को जाता है। जिन्होंने वैयक्तिक समाज कार्य के माध्यम से क्षेत्र कार्य अभ्यास की प्रासंगिकता को समझाया। क्षेत्र कार्य अभ्यास का मुख्य ध्येय समाज कार्य की उन विधाओं का क्षेत्र में अभ्यास करने की कला का विकास करना है जिनके माध्यम से समाज कार्य की व्यावसायिक विधियों का क्षेत्र में प्रयोग कर व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा संगठन को सहायता प्रदान की जाती है।

क्षेत्र कार्य हेतु कार्यकर्ता को कुछ तैयारी करनी होती है जिसका वर्णन निम्नवत है–

1. एजेन्सी(संस्था) की विस्तृत जानकारी एवं इतिहास को जानना।
2. एजेन्सी(संस्था) में क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षक,कर्मचारियों व उपभोगताओं से सम्बन्ध स्थापित करना।

3. एजेन्सी (संस्था) में अपनी भूमिका एवं स्थिति का पता लगाना तथा उसे स्वीकार करना।
4. संस्था और समाज कार्य कार्यक्रम से सम्बन्धित कर्मचारियों से परिचित होना तथा संस्था में अपने कार्य को समझना।
5. संस्था में कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाली भूमिकाओं एवं कार्यों को समझना।
6. संस्था में कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों की रूपरेखा तैयार करना एवं निश्चित समय सारिणी बनाना ताकि अतिरिक्त भार से बचा जा सके।
7. समाज कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों से सम्बन्धित निपुणताओं की पूर्ण जानकारी होना।
8. व्यक्तिगत शिक्षण शैलियों एवं उसके द्वारा संपादित की जाने वाली भूमिकाओं का निर्धारण करना।
9. संस्था में अपनी भूमिकाओं का निर्धारण होना।
10. व्यावसायिक (पेशेवर) सामाजिक कार्यकर्ता की मर्यादाओं का पालन करना।

एक समाज कार्यकर्ता का पहला कदम उसका व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता बनने का निर्णय लिया जाना है क्योंकि व्यावसायिक समूह से जुड़ना एक लंबी प्रक्रिया है और क्षेत्र कार्य अभ्यास इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है। यह कोई अंतिम उद्देश्य नहीं है बल्कि सामाजिक कार्यकर्ता में समाज कार्य व्यवसाय के कौशलों को निखारने एवं ज्ञान के व्यापक होने के साथ–साथ परिवर्तित होने की कला का विकास भी किया जाना है। समाज कार्य व्यवसाय में क्षेत्र अभ्यास कार्यकर्ता के समाज कार्य व्यवसाय के साथ तादात्म स्थापित करने एवं व्यक्तिगत और व्यावसायिक सीमाएं स्थापित करने में सहायक होता है। क्षेत्र कार्य विविध परिवर्तनों, विभिन्न भूमिकाओं समूह, कार्यकर्ता, समुदाय, संगठनकर्ता, विद्यार्थी एवं पर्यवेक्षक आदि की भूमिकाओं का निर्धारण करने एवं तनावों से समायोजन करने का एक अवसर प्रदान करता है।

1.5 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का विश्वव्यापी एवं राष्ट्रीय परिदृश्य

सन् 2004 में,अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कार्यकर्ता संघ (IFSW) और अंत अन्तर्राष्ट्रीय समाज कार्य स्कूल संघ (IASSW) ने समाज कार्य व्यवसाय की शिक्षा व प्रशिक्षण के लिये अपने विश्वव्यापी मानदंड (मानक) प्रकाशित किए (सी0यू0पाल और जोन्स,2005)।इस विस्तृत और सुविचारित रूप से निर्मित दस्तावेज के हिस्से के रूप में,लेखकों ने क्षेत्र शिक्षा के लिये विशिष्ट सिफारिशें तैयार कीं।इनमें वे सिफारिशें सम्मिलत हैं जिनको प्राप्त करने की आकांक्षा कार्यक्रमों में सुसंगत रूप से होनी चाहिये :

1- विद्यार्थी व्यावसायिक अभ्यास के लिये तैयार हो सकें यह सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त अवधि वाली ऐसी क्षेत्र शिक्षा जिसमें कार्यों की जटिलता तथा सीखने के पर्याप्त अवसर हों।
2- स्कूल और एजेंसी /क्षेत्र नियोजन व्यावस्था के बीच योजनाबद्व समन्वय और संपर्क।
3- क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षकों या प्रशिक्षको के लिये अभिविन्यास का प्रावधान।

4- किसी भी देश के समाज कार्य व्यवसाय के विकास स्तर द्वारा निर्धारित योग्यता के अनुसार योग्यता प्राप्त और अनुभवी क्षेत्र पर्यवेक्षकों या प्रशिक्षकों की नियुक्ति और क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षकों या प्रशिक्षकों के लिये अभिविन्यास का प्रावधान।

5- पाठयचर्या विकास में क्षेत्र प्रशिक्षकों को समाविष्ट करने और सहभागी बनाने का प्रावधान।

6- क्षेत्र शिक्षा और विद्यार्थी के क्षेत्र कार्य निष्पादन के मूल्यांकन संबंधी निर्णय लेने में शैक्षिक संस्था और एजेंसी और सेवा प्रयोक्ताओं के बीच साझेदारी।

7- क्षेत्र कार्य प्रशिक्षकों या पर्यवेक्षकों को एक क्षेत्र निर्देश नियमावली उपलब्ध कराना जिसमें इसके क्षेत्र कार्य मानदडों, क्रियाविधियों, निर्धारण मानदण्ड/कसौटी और अपेक्षाओं के ब्यौरे हों।

8- यह सुनिश्चित करना कि कार्यक्रम के क्षेत्र कार्य घटक की जरूरतों की पूर्ती के लिये समुचित और पर्याप्त संसाधन उपलब्ध करायें जायें।(2005 : 220)

भारत में विद्यार्थी,सामाजिक कार्यकर्ताओं के समक्ष समस्यायें

भारत में विद्यार्थियों और व्यावसायिकों को भारत या विदेशी मूल के साहित्य का अत्यधिक अभाव है अतः उन्हें साहित्य उपलब्ध नहीं है। भले ही भारत समाज कार्य की अधिकांश जानकारी पश्चिम से ग्रहीत की गई है लेकिन उसे उस सिद्वांत को भारत सीधे लागू करना कठिन है क्योंकि भारत विभिन्न संस्कृतियों पर आधारित है। योग्य एवं पढे लिखे कई सामाजिक कार्यकर्ताओं को कई कारणों से पश्चिम विश्वविद्यालय और पश्चिम में नौकरियॉ आकृष्ट करती हैं।सामान्यता लोगों की यह सोच होती है कि इंजीनियरिंग,चिकित्सा,कानून या व्यापार (जो व्यवसाय लोगों को अत्यधिक प्रतिष्ठित लगते है)में प्रवेश न मिल पाने के कारण उन्हें समाज कार्य व्यवसाय में आना पड़ा है ऐसे में अपने व्यवसाय पर गर्व कर पाना सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये अत्यिधक कठिन होता है। एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य को सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा जाता उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है ।

समाजिक कार्यकर्ताओं के निम्न वेतनमान और इस व्यवसाय के प्रति व्यापक जन समर्थन का अभाव ही इंग्लैण्ड ,अमेरिका और आस्ट्रेलिया में ''प्रतिभा पलायन'' का कारण बना है। सामाजिक कार्यकर्ताओं का विदेश जाने का अन्य कारण है उनका वहॉ उच्च अध्ययन केइ इ लिये जाना। जब उन्हें ज्ञात होता है कि सिद्वान्त में उन्होंने जिन नैतिक मानकों का अध्ययन किया था वह वास्तविक रूप में उन्हें अभ्यास में या अमल में नहीं लाया गया तो वे हतोत्साहित हो जाते हैं। ऐसा समाज कार्य अनुसंधान में विशेष रूप से देखा गया है।

भारत में स्नात्कोत्तर कार्यक्रमों के प्रथम वर्ष में सामान्य पाठयक्रम अंतर्वस्तु पढायी जाती है ताकि वे विभिन्न परिस्थितियों से निपटने,भिन्न–भिन्न भूमिकाओं को निभाने तथा समाज कार्य की सम्पूर्ण विधियों को अपनाने के योग्य होना चाहिये । शिक्षा के दूसरे वर्ष में विद्यार्थी अपनी विशेषताओं का क्षेत्र चुनता है। जिससे वे अपनी पसन्द के क्षेत्र में कार्य कर कौशल प्राप्त कर सके ।

भारत में ऐसा देखा गया है कि अंत विषयक दृष्टिकोण चिकित्सा या मनोचिकित्सीय सुविधा में सबसे अच्छा काम कर रहा है। वहाॅ सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका सुनिश्चित होती है चाहे वह रोगी के परिवार के काम करने की हो,सामुदायिक संसाधनों या रोगियों को अभिवृत्तियों या भावनाओं से संबंधित हो। सामाजिक कार्यकर्ता को महसूस होता है कि दल के साथ काम कर रहा है और रोगी के कल्याण के लिये सौहार्द के साथ–साथ सहयोग कर रहा विभिन्न परिवेशों में इस प्रकार दलगत कार्य का अनुभव वहीं हो सकता है जहाॅ समाज कार्य टीम का एक हिस्सा हो। तालमेल,संपर्क,सुनने और टीम में कार्य करने के कौशल इस प्रकिया में सहायक होते हैं।

भारत में उपचार की अपेक्षा रोकथाम बेहतर है क्योंकि मौजूदा कानूनों को लागू करना इतना आसान नहीं है।भारत में कानून प्रणाली उन लोगों के लिये काम करती है जिसके पास धन है। कई अपराधों की रिपोर्ट यह सोच कर नहीं की जाती कि उच्च वर्ग अपनी निर्दोषयता को सिद्व कर सकता है। कानून प्रवर्तक अपनी नौकरी पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के डर से अपना कर्त्तव्य करने से घबराते हैं जबकि अपराधकर्ता संपन्न और उच्च वर्ग का है।

समाजिक कार्यकर्ता में आधारभूत सामान्य बुनियाद होना और जहाॅ समुचित हो वहाॅ विशिष्ट तकनीकों का प्रयोग करना महत्वपूर्ण है। एक Generalist सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न संस्कृतियों के प्रति संवेदनशील होगा और विविध कौशल करने योग्य होगा।सामाजिक कार्यकर्ता को परिवार के साथ सांस्कृतिक जरूरतों के प्रति अतिसंवेदनशील के साथ भी काम करना होगा। एक Generalist सामाजिक कार्य व्यक्तिगत स्तर पर भी कार्य करता है।

1.6 मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की प्रासंगिकता

समाजिक कार्य शिक्षा में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के रूप में वैकल्पिक शिक्षा नीति ने सामाजिक कार्य शिक्षा को समाज शिक्षा प्रणाली के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण विकासों में स्थान दिया है। यू.के, यू.एस.ए, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में बड़ी संख्या में शिक्षण संस्थान दूरस्थ शिक्षा के द्वारा बी.एस.डब्ल्यू, एम.एस.डब्ल्यू की डिग्री प्रदान कर रहे हैं। व्यापक विश्लेषण के बाद पुर्नसमीक्षा करने वाले लेखकों ने निष्कर्ष निकाला है कि 'सामाजिक कार्य दूरस्थ शिक्षा पाठयकमों और कार्यकमों में पाठयकम और कार्यकम के परिणामों की तुलना पारम्परिक नियमित कक्षा कार्यक्रमों से प्राप्त परिणामों से की जाती है' (मैसी एवं सयोगी, 2001पृष्ठ संख्या, 72)।

क्षेत्र आधारित शिक्षा/ अधिगम का प्रावधान सबसे महत्वपूर्ण सरोकारों में से एक है। यद्यपि इसने विशेष रूप से भारत में सामाजिक कार्य शिक्षा की दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को मान्यता प्राप्त कराने में काफी देर कर दी है। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) में समाज कार्य विद्यापीठ ने समाज कल्याण क्षेत्र में

बड़ी संख्या में कार्य कर रहे अप्रशिक्षित कर्मचारियों के प्रशिक्षण की आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए वैकल्पिक शिक्षण कार्यक्रम को आरम्भ करने की आवश्यकता को पहचाना है।

सामाजिक कार्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य कुशल और प्रभावी पेशेवर तैयार करना है। जो कि प्रभावित व्यक्ति की जटिल आवश्यकताओं को, विविध जन और निजी मानव सेवा व्यवस्था को पूरा कर सके। समाज कार्य शिक्षा, व्यावसायिक कौशलों और मूल्यों की शिक्षा के साथ वैज्ञानिक जांच को सम्मिलित करता है। समाज कार्य में प्रशिक्षण कार्य करने वाले को अनेक समाज कार्य व्यवहार की कार्यप्रणालियों के उपयोग द्वारा अनेक भूमिकाओं को निभाने में सक्षम बनाता है।

समाज कार्य शिक्षा प्रणाली में अनेक प्रमुख परिवर्तन देखे गये हैं। ये परिवर्तन दो प्रमुख कारणों से हुये हैं।

1— हस्तक्षेप के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक देखभाल और सामाजिक विकास कार्यक्रमों को संचालन के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित पेशेवर की आवश्यकता को स्वीकारा गया है। इसका अर्थ है कि सामाजिक कार्य शिक्षा प्रणाली को न सिर्फ वरिष्ठ और पर्यवेक्षण के स्तर के कार्यों के लिए सामाजिक कार्य करने वाले तैयार करने हैं, बल्कि ऐसे कार्यकर्ता भी तैयार करने हैं जो संवेदनशीलता और सहानूभूति के साथ व्यापक भौगोलिक क्षेत्रों में जमीनी स्तर पर कार्य कर सकें।

2— सामाजिक कार्य शिक्षा में संभ्रान्त और शहरी रूझान की आलोचना बढ़ती जा रही है। फील्ड में कार्य करने वाले विशेष रूप से भारतीय सामाजिक कार्यकर्ता ये दावा करते हैं कि स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त विद्यार्थियों की आकांक्षाएं जमीनी स्तर पर समाज कार्य व्यवहार की वास्तविकताओं से मेल नहीं खाती। जहां उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है साथ ही परास्नातक शिक्षित समाज कार्य पेशेवरों को स्वयं अपने बीच के और ग्रामीण दूरस्थ क्षेत्रों में स्थित लोगों के बीच के सामाजिक और सांस्कृतिक अन्तराल को खत्म करने में कठिनाई होती है।

साथ ही उच्चतर शिक्षा की विद्यमान प्रणालियां सामाजिक, भौगोलिक अथवा आर्थिक रूप से वंचित स्थितियों वाले व्यक्तियों की अधिक पहुंच नहीं होती है। कुछ दशकों में उपर्युक्त विकासों पर प्रतिक्रिया के लिए अनेक पहल की गयी है।

दूरस्थ शिक्षा प्रणालियों में प्रायोगिक क्षेत्र कार्य

सामाजिक कार्य शिक्षा में करके सीखने के घटक को फील्ड वर्क, फील्ड आधारित अधिगम जैसे विविध नाम दिये जाते हैं। इन सभी में एक समान घटक विद्यार्थियों की फील्ड आधारित नियुक्ति, इन नियुक्तियों पर नियोजित असाइनमेंट किये जाते हैं, किये गये कार्य की रिकार्डिंग की जाती है, फील्ड में अनुभवों का परिलक्षण और मूल्यांकन, और निर्धारित क्रमिक अधिगम प्राप्त करने के लिए परिवेक्षणीय मार्ग निर्देशन का उपयोग किया जाता है। इसे' व्यावसायिक अधिगम' बनाने के लिए प्रायोगिक कार्य कक्षा पाठयक्रम विषयवस्तु, सिद्धांत पर आधारित होता है। और इसे अति चापित नैतिक कोड के दायरे में ही किया जाता है।

ऐतिहासिक रूप से भारत में सामाजिक कार्य शिक्षा में पश्चिमी माडल को अपनाया जाता है। और ये लगभग पूरी तरह से पश्चिमी साहित्य पर निर्भर करता है। विद्यार्थियों की भाषा, संस्कृति और सामाजिक, आर्थिक स्तर और वे व्यक्ति जिनके लिए उन्हें कार्य करना था में निरन्तर विविधता होती जा रही है। यही नहीं, चूंकि शिक्षण संस्थान मुख्य रूप से शहरी क्षेत्र में स्थित हैं अतः सूदूर क्षेत्रों में स्थित विद्यार्थी उच्चतर शिक्षा की सेवाओं तक पहुंचने में असमर्थ हैं। दूरस्थ शिक्षा प्राप्त करने वाले और कैम्पस विद्यार्थी के बीच में प्रमुख अंतर यह है कि अनेक दूरस्थ शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी अंशकालिक विद्यार्थी हैं और इसीलिए उनमें अपने पाठयक्रमों को पूर्णकालिक पारम्परिक प्रणाली की अपेक्षा अधिक वर्षों में करने की प्रवृत्ति होती है। दूसरे दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की क्षमतांए मिश्रित प्रकार की होती हैं। सामाजिक कार्य पाठयक्रमों को दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के तहत पंजीकृत विद्यार्थी स्वाभावित रूप से शिक्षा और कार्य अनुभव के विभिन्न प्रकार के स्तरों को प्रस्तुत करते हैं। ये विभिन्न क्षेत्रों के होते हैं, विभिन्न भाषाएं बोलते हैं और विविध सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आते हैं। दूरस्थ शिक्षा पद्धति के अन्दर सामाजिक कार्य में फील्ड अथवा क्षेत्र प्रायोगिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाना वास्तव में चुनौतीपूर्ण कार्य है। पारम्परिक प्रणाली से थोड़ी समानता रखते हुये सामाजिक कार्य शिक्षण संस्थान दूरस्थ शिक्षा पद्धति में भी क्षेत्र आधारित अधिगम व शिक्षा के सभी महत्वपूर्ण घटकों को फील्ड वर्क कार्यक्रमों की संरचना में उसी प्रकार समावेशित कर देते हैं।

1.7 सार संक्षेप

क्षेत्र कार्य नियोजन में व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता के लिये क्षेत्र कार्य से सम्बन्धित व्यक्तिगत शक्तियों,कमजोरियों और भावनाओं को समझना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि यह कार्यकर्ता को सहायता एवं बाधा दोनों पहुचॉ सकता है। इस प्रकार से क्षेत्रकार्य में यह जानना अति आवश्यक होता है कि आप क्षेत्र नियोजन से एवं पर्यवेक्षक से क्या अपेक्षा रखते है और उससे क्या सीखना चाहते है। इसमें कुछ ऐसे क्षेत्र भी हो सकते है जो आपके लिए नये हो और कुछ ऐसे भी जिनके विषय में आप अनुमान लगा सकते है। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थी को हमेशा तैयार रहना चाहिये।

1.8 परिभाषिक शब्दावली

Person	व्यक्ति	Mother institutions	दाता संस्थायें
Family	परिवार	Non-Government Organizations	गैर सरकारी संगठन
Community	समुदाय	Environmental Manipulation	स्थिति पर्यावरण

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार, डॉ0 रूपेश, क्षेत्र कार्य, असिस्टेन्स फार स्ट्रेन्थनिगं इन्फ्रास्ट्रेक्चर ऑफ हयूमिनीटिज एण्ड सोसल सांइसेज, समाज कार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 4, 5, 60—83.
2. समाज कार्य का इतिहास एवं विकास, मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, लर्निंग मटेरियल, रूचि प्रिन्टर्स भोपाल, वर्ष 2003, पेज 89—101.
3. समाज कार्य प्रैक्टिकम : सिहंगाावलोकन,इदिंरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय समाज कार्य विद्यापीठ।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की अवधारणा को समझाइये।
2. समाज कार्य के मूल प्रत्यय क्या हैं।
3. समाज कार्य अभ्यास में मौलिक मूल्यों का महत्व क्या है
4. समाज कार्य को समझने के लिये इसके दर्शन को समझना क्यों आवश्यक है।

इकाई – दो

समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास, भूमिकायें एवं अपेक्षायें

इकाई का रूपरेखा

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास

2.4 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में भूमिकायें एवं अपेक्षायें

2.5 समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की भूमिकायें एवं अपेक्षायें

2.6 समाज कार्य व संस्था सम्बन्धी सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल

2.7 सार संक्षेप

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.10 सन्दर्भ सूची

2.1 परिचय

प्रथम वर्ष के छात्रों को विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं और सामुदायिक परिप्रेक्ष्य में उनसे सम्बन्धित संस्था में नियुक्ति के पूर्व तत्कालिक क्षेत्र कार्य हेतु पूरे शैक्षिक सत्र में एक निश्चित अवधि के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य समाज कार्य के विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न प्रकार के संस्थाओं, विभिन्न तकनीकियों के प्रयोग, पद्धतियां, व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं परिवर्तन से परिचित कराना है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न की जानकारी प्राप्त कर सकेगें:–

- समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास के बारे में जान सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में भूमिकायें एव ंअपेक्षाओं के बारे में लिख सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की भूमिकायें एव ंअपेक्षायें क्या होती है। के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- समाज कार्य व संस्था सम्बन्धी सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल के बारे में लिख सकेगें।

2.3 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास

सामान्यत: समाज कार्य विद्यालय/विश्वविद्यालय अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों को पाठयक्रम के अनुसार आयोजित करते हैं एवं विभिन्न संस्थाओं का कार्यक्रम बनाते है। यद्यपि भ्रमण कार्यक्रम की प्रक्रिया एवं पद्धति विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अलग–अलग होती है। भ्रमण कार्यक्रम के अन्तर्गत सामान्यत: अभिमुखी कार्यक्रमों का आयोजन अभिकरण के छात्रों के क्षेत्र कार्य के लिए नियुक्ति से पूर्व किया जाता है और सामान्यत: कार्यक्रम प्रथम सत्र में ही पूर्ण कर लिये जाते हैं।

चूकि उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय समाज कार्य की शिक्षा स्नातकोत्तर स्तर पर प्रदान कर रही है जिसमें विभिन्न पर्यवेक्षक अपने उत्तरदायित्वों के अनुसार समाज कार्य के विद्यार्थियों को निर्देशित करेगें कि वे अभिमुखी कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्थाओं का चयन कर स्वयं इनके बारे में जानकारी प्राप्त कर लें। अभिमुखी व्याख्या हेतु अग्रलिखित प्रतिदर्श दिये जा रहे है। जो कि समाज कार्य के प्रथम वर्ष के छात्रों द्वारा अभिमुखी भ्रमण के बाद भरे जायेगें। इस प्रपत्र का प्रारूप

2.3.1 अभिमुखीकरण व्याख्या प्रतिदर्श

सामान्य

1. संस्था का नाम :
2. प्रशिक्षार्थी का नाम :
3. भ्रमण संख्या एवं व्याख्या संख्या :
4. दिन एवं दिनांक :
5. संकाय पर्यवेक्षक :

6. संस्था पर्यवेक्षक :

परिचय

एम.एस. डब्लू भाग–1 का अभिमुखीकरण भ्रमण दिनांक .... को .... बजे आयोजिक किया गया।

अभिमुखीकरण भ्रमण समाज कार्य शिक्षण में एकीभूत समाज कार्य प्रशिक्षण का अभिन्न अंग है। यह सामाजिक संस्थाओं को उनकी प्रकृति, संरचना, उद्देश्यों, लक्ष्यों, क्रिया विधियों कार्य–कलानों एवं कार्य पद्धतियों, कार्य संस्कृति एवं समाज कार्यो में समाज कार्य तकनीकियों के उपयोग को समझने के लिए किया गया परिचयात्मक एवं अवलोकनात्मक भ्रमण है।

प्रस्तावित संस्था का दौरा करने के पूर्व पर्यवेक्षक श्री/श्रीमती .... ने कर्ता का मार्ग दर्शन किया। इस पृष्ठभूमि के साथ श्री/श्रीमती .... के पास भेजा गया। संस्था पर्यवेक्षक ने कर्ता का स्वागत किया। उसके बाद कर्ता ने उनको स्वयं का परिचय दिया। तद्पश्चात संस्था पर्यवेक्षक ने संस्था के कार्यो की जानकारी दी। कर्ता ने विभिन्न विभागों का भी भ्रमण किया एवं उन्हें तथा उनकी क्रिया विधि को देखा। सम्बन्धित व्यक्तियों एवं अपने अवलोकन से एकत्रित की गई सूचनायें उनका मूल्यांकन करने हेतु अग्रलिखित रूप से प्रस्तुत है।

संस्था की स्थिति

संस्था .... (भौगोलिक स्थिति) में स्थित है।

संस्था की पृष्ठभूमि

.... वर्ष .... में स्थापित की गई। श्री .... इस संस्था के सदस्य है। थे। इस संस्था की . ... राज्य में .... शाखाएं हैं। मुख्यालय .... में स्थित है। यह .... के अन्तर्गत पंजीकृत है और इसकी पंजीकरण संख्या .... है। वास्तविक कार्य कलाप वर्ष .... में प्रारम्भ हुए। श्री .... अध्यक्ष/सभापति है।

निदेशक मंडल

1. .... अध्यक्ष/सभापति
2. .... सहअध्यक्ष/सहसभापति
3. .... सचिव
4. .... संयुक्त सचिव
5. .... कोषाध्यक्ष
6. .... निदेशक
7. .... सहनिदेशक
8. .... सहनिदेशक

संगठनात्मक ढांचा

कर्मचारी/पदनाम, कार्य विवरण आदि

संस्था के उद्देश्य

संस्था का उद्देश्य है :

1.

2.

3.

4.

5.

पूंजी विनियोग

निधियों की व्यवस्था विभिन्न स्रोतों जैसे समुदाय/न्याय/शासन/विदेशी निधि/व्यक्तिगत ऋण, से की गई है। इस संस्था को स्थापित करने के लिए कुल पूंजी विनियोग की आवश्यकता है। वर्तमान पूंजीगत द्वारा .... रु0 का है। संस्था .... के लिए .... से अनुदान भी प्राप्त करती है।

क्रिया कलाप/कार्यक्रम/उत्पादन

(विस्तार में वर्णन) समाज कार्य पद्धतियों का उपयोग

2.3.2 समाज कार्य पद्धतियों का उपयोग

(वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, सामुदायिक संगठन, सामाजिक कल्याण प्रशासक, सामाजिक कार्य शोध, सामाजिक कार्य)

संस्था का योगदान (संक्षिप्त में विवरण दें)

अतिरिक्त सूचनाएं

सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका (संक्षेप में वर्णन)

टिप्पणी

हस्ताक्षर **हस्ताक्षर**

पर्यवेक्षक **छात्र**

समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक सेवा कार्य तथा सामुदायिक सेवा कार्य प्रमुख है। समाज कार्य छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे इन प्रविधियों का प्रयोग करने से पहले समाज कार्य की विभिन्न प्रणालियों का गहन अध्ययन कर सुक्ष्म जानकारी एकत्रित करें। उसके बाद इन प्रणालियों का प्रयोग करें। उपयुक्त प्रणालियों को अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अलग–अलग दर्शाया गया है। तथा उनके प्रारूप दिये गये है। इन्हीं प्रारूपों के

अनुसार छात्र/छात्राओं को चाहिए कि वे अपना क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षक की निगरानी में पूर्ण करे। वैयक्तिक सेवा कार्य हेतु प्रारूप अग्रलिखित है।

सामान्य वैयक्तिक कार्य की आख्या

1. छात्र का नाम
2. विश्वविद्यालय का नाम
3. वर्ष एवं बैच संख्या
4. कक्षा एवं अनुक्रमांक
5. वैयक्तिक कार्य के लिए अध्ययन किया गया साहित्य
6. एकत्रित सूचना की प्रकृति
7. सामान्य क्षेत्र कार्य में प्रयोग की गई पद्धतियां
8. पर्यवेक्षक एवं अभिकरण पर्यवेक्षकों द्वारा दिया गया मार्गदर्शन एवं सहयोग
9. वैयक्तिक कार्य प्रयोग में लायी गई सामान्य क्षेत्र कार्य ज्ञान की उपयोगिता
10. सामान्य क्षेत्र कार्य में आयी समस्याएं एवं कठिनाइयां
11. सामान्य क्षेत्र कार्य सम्बन्धित विचार एवं सुझाव

हस्ताक्षर **हस्ताक्षर**

पर्यवेक्षक **छात्र**

केशशीट का प्रारूप

1. सेवार्थी का नाम
2. पता
3. आयु
4. लिंग
5. शिक्षा
6. धर्म एवं उपजाति
7. रूचि
8. आदतें
9. समस्या की प्रकृति
10. वैयक्तिक की पृष्ठभूमि
11. अभिकरण में प्रवेश
12. अभिकरण प्रतिवेदन
13. शिक्षा, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, दृष्टिकोण एवं सोच आदि के सन्दर्भ में अभिभावकों की पृष्ठभूमि

14. परिवार की सामान्य पृष्ठभूमि

हस्ताक्षर

(अभिकरण अधीक्षक)

वैयक्तिक प्रपत्र के गहन अध्ययन से छात्रों को वैयक्तिक की प्रकृति के बारे में ज्ञान हो जाएगा जोकि आगे की पूंछताछ का आधार होगा इस सामान्य पृष्ठभूमि के साथ वैयक्तिक कार्य की व्यवसायिक अध्ययन की शुरूआत होती है।

कार्य समाप्ति आख्या का आदर्श प्रतिरूप

---

1. छात्र का नाम
2. विश्वविद्यालय का नाम
3. बैच संख्या
4. रोल नं.
5. सेवार्थी का नाम एवं पता
6. सेवार्थी की संक्षिप्त पृष्ठभूमि
7. समस्या की प्रकृति
8. संक्षिप्त में वैयक्तिक कार्य का अध्ययन एवं व्यवहार
9. मामले को हल करने में सफलता या असफलता, धारण सहित
10. अभिकरण की आख्या
11. राय एवं सुझाव

दिन :

दिनांक :

स्थान :

हस्ताक्षर **हस्ताक्षर**

(अभिकरण पर्यवेक्षक) **(छात्र)**

स्व–मूल्यांकन

यह कहा जाता है कि स्व मूल्यांकन सर्वश्रेष्ठ मूल्यांकन है। छात्रों को अपने फील्ड में अपने द्वारा सीखे गए एवं वैयक्तिक कार्य प्रशिक्षण पूर्ण करने में किए गए प्रयासों के आधार पर अपनी उपलब्धि का स्वयं मूल्यांकन करना चाहिए। मूल्यांकन ईमानदारी से करना चाहिए और उसकी प्रतिवेदन सम्बन्धित पर्यवेक्षक को मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रपत्र का प्रारूप निम्नवत है :

स्व–मूल्यांकन प्रतिवेदन

---

1. छात्र का नाम

2. विश्वविद्यालय का नाम
3. बैच संख्या
4. रोल नं.
5. पर्यवेक्षक का नाम
6. अभिकरण पर्यवेक्षक का नाम
7. Placement की अवधि
8. अभिकरण की प्रकृति के बारे में सामान्य अध्ययन
9. निबटान किए गए वैयक्तिकों की संख्या
10. सामाजिक कार्यदक्षता तथा वैयक्तिकों को निपटाने में प्रयोग किए गए तरीके
11. वैयक्तिकों को हल करने के नवीन विचारों का उपयोग
12. क्षेत्र में उपलब्धि
13. पर्यवेक्षक एवं अभिकरण पर्यवेक्षकों से प्राप्त मार्गदर्शन के सम्बन्ध में विचार
14. अध्ययन के लिए नियत प्रशासनिक कार्य

स्थान हस्ताक्षर

दिनांक (छात्र)

2.3.3 अभिलेखन : वैयक्तिक कार्य डायरी

सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में प्रथम वर्ष के छात्रों में डायरी लिखने की कला का अभाव होता है और जब केस वर्क डायरी लिखने की बात आती है तो वे भ्रमित हो जाती है। उनकी पारस्परिक लेखन शैली केवल भ्रमणों की संख्या समय और उनके भ्रमण एवं लौटने के बारे में एक दो वाक्यों तक सीमित रह जाती है। वास्तव में छात्रों को डायरी लिखते समय हर बार औपचारिकताओं का वर्णन नहीं करना चाहिए बल्कि किए गए कार्य के बारे में संक्षेप में लिखना चाहिए। केसवर्क डायरी एवं जर्नल में लिखने के सम्बन्ध में वे अध्याय 1 का संदर्भ ग्रहण कर सकते हैं जिससे उन्हें डायरी लेखन की पद्धति समझने में सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए कुछ आदर्श प्रतिरूप नीचे दिए गए है :

केसवर्क डायरी के उदाहरण

1.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

क्षेत्र में पहला भ्रमण एक परिचयात्मक भ्रमण था। अतः मैने व मेरे साथियों ने अभिकरण पर्यवेक्षकों को अपना परिचय दिया। अभिकरण पर्यवेक्षकों ने भी स्वयं का परिचय दिया और अपनी व्यक्तिगत शैक्षिक एवं सेवा पृष्ठभूमि तथा उनके अभिकरण में प्रवेश के बारे में संक्षिप्त में सामान्य सूचनाएं प्रदान की। यह परिचय एक मित्रतापूर्ण ढंग से हुआ परन्तु इससे हमें अधिकारियों के साथ शिष्टाचार एवं शिष्ट व्यवहार के बारे में जानकारी मिली इसके बाद अभिकरण में भेजे गए सभी क्षेत्र कार्य छात्र कार्यालय के अन्दर गए और अन्य कार्यालय कर्मचारियों से परिचित हुए।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

2.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

अभिकरण पर्यवेक्षक ने मुझे अभिकरण के कर्मचारियों से अभिकरण की प्रकृति एवं संरचना के बारे में सामान्य सूचनाएं एकत्रित करने का आदेश दिया। तदनुसार में कार्यालय के सभी सम्बन्धित कर्मचारियों से मिला और अभिकरण की स्थापना, मंजीकरण संख्या, न्यासियों, संविधान, उद्देश्य एवं प्राप्त लक्ष्यों के बारे में सूचनाएं प्राप्त की।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

3.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

आज मुझे अभिकरण की कार्य प्रणाली देखने को कहा गया। अतः मैं कार्यालय में बैठा एवं तौर–तरीकों, शिष्टाचार बोलने की शैली उपयोग में आने वाली भाषा, व्यवहारिक विष्ज्ञय वस्तुओं और कार्यालय में किए जाने वाले कार्यो की प्रकृति का उवलोकन किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

4.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

अभिकरण में चार भ्रमणों में सामान्य जानकारी प्राप्त करने के बाद मुझसे कुछ मामलों की फाइलों का अध्ययन करने के लिए कहा गया। निर्देशानुसार मैंने कुछ केस फाइलों का अध्ययन किया और उनके विषय वस्तु मसौदों, भाषा, प्रस्तुतीकरण, प्रक्रिया, सेवार्थी की समस्याओं की प्रकृति और अभिकरण पर्यवेक्षक द्वारा उनके निपटाने के तरीकों को समझा। इससे मुझे वैयक्तिक कार्य के बारे में एक सामान्य जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिली।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

5.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

मामलों के निपटाने के तौर–तरीकों को समझने के लिए मुझे अगले 3–4 भ्रमणों में वैयक्तिक कार्य व्यवहार का अवलोकन करने के लिए कहा गया। तद्नुसार, मैं अभिकरण पर्यवेक्षक के सामने बैठा और मैंने उनके तौर तरीकों तथा सामाजिक कार्यकर्ता की दक्षता का अवलोकन किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

6.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

प्रारम्भिक जानकारी से मुझे वैयक्तिक कार्य व्यवहार का अन्दाज हो गया। अतः मैंने पर्यवेक्षक से अपने को एक साधारण मामला आबंटित करने का अनुरोध किया मैने आत्म विश्वास पर विचार करते हुए मुझे एक मामला अध्ययन एवं प्रयोग के लिए दे दिया गया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

7

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

केस फाइल एवं अभिकरण पर्यवेक्षक से आधारभूत सूचना प्राप्त करने के बाद मैंने सेवार्थी का साक्षात्कार लेने का निश्चय किया ताकि उसकी सहायता के लिए तथा उजागर किए जा सकें। तद्नुसार मैंने आज सेवार्थी का साक्षात्कार लिया एवं उससे वैवाहिक विवाद के बारे में कुछ सूचनाएं एकत्रित की।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

समूहों के साथ कार्य

परिचय

प्रथम वर्ष छात्रों को विभिन्न स्वैच्छिक या स्वयंसेवी संगठनों में व्यावहारिक समूह कार्य हेतु नियुक्त किया जाता है जहाँ वे व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में समूह कार्य की तकनीकियाँ सीखते हैं एवं अभिकरण सदस्यों तथा सम्बन्धित अभिकरणों को सेवा प्रदान करते हैं। यह प्रशिक्षण सह सेवा समूह के सदस्यों, अभिकरणों तथा समाज कार्य विद्यालय के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। तथापि न तो अभिकरणों और न ही विद्यालय इन सेवाओं के उद्देश्यपूर्ण प्रयोग के प्रति गंभीर होती है। अतः प्रकरण कार्य की तुलना में इन प्रशिक्षण के प्रति लापरवाही बरती जाती है। अतः कभी–कभी प्रशिक्षु छात्र समूह कार्य प्रशिक्षण के बारे में गलत विचार रखते हैं। अधिकतर विभिन्न खेलों के आयोजन के समूह कार्य मान लिया जाता है। ऐसा मुख्यतः छात्रों एवं पर्यावेक्षकों में रूचि के अभाव, व्यावहारिक पाठ्य क्रमों तथा हस्तपुस्तिका की अनुपलब्धता, अभिकरण में समय–समायोजन की समस्या आदि के कारण होता है। फिर भी छात्रों को वर्ष दर वर्ष अभिकरणों में समूह कार्य प्रशिक्षध के लिए स्थापित या नियुक्त किया जाता है और इस उपाधि प्राप्त करने के एक औपचारिकता

के रूप में पूर्ण किया जाता है। इसके कारण होने वाली हानि का निर्धारण करने के प्रति कोई रूचि नहीं रहती है; और इसकी किसे होती है। प्रशिक्षण का लागत–विश्लेषण भी नहीं किया जाता है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित समाज कार्य विद्यालयों में समूह कार्य प्रशिक्षण की स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा व्यवसायिक एवं उपयोगिता की दृष्टि से महत्व को देखते हुए एक विशिष्ट व्यावहारिक (प्रायोगिक) पाठ्यक्रम के अनुसार अपना समूह क्षेत्रीय कार्य करना चाहिए।

समूह कार्य कार्यक्रम का नमूना रेखाचित्र

1. समूह का निर्माण
2. समूह के सदस्यों का परिचय
   - a. **व्यक्तिगत आंकड़े** – उनकी आयु, शिक्षा, जाति, धर्म, रूचियों, आवर्ती, उपलब्धियों, प्रगति एवं कमियों के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्रित करना।
   - b. **परिवारिक आंकड़े** – पारिवारिक पृष्ठभूमि परिवार के आकार, अविभावकों का पेंशा, शिक्षा, आय, संसाधनों, सुविधाओं, पारिवारिक कठिनाइयां एवं समस्यायें, और प्रकरण कार्य हेतु ऐसी अन्य सूचनायें प्राप्त करना।
3. **खेलों का संचालन** – आन्तरिक एवं वाह्य खेलों कि कबड्डी, खो–खो, लंगड़ी, कैरम, शतरंज एवं ऐसे अन्य खेलों का संचालन तथा वस्तुओं तथा सामग्रियों की तैयारी।
4. **संस्कार कार्यक्रमों पर प्रवचन** – लघु कथाओं, गीतों, नुक्कड़ नाटकों, कविताओं, मुहावरें एवं लोकोक्तियों आदि का आयोजन जो कि समूह के सदस्यों के समाजीकरण, विकास एवं संस्कारों के सवर्धन में सहायता प्रदान करते हैं।
5. **सामान्य अध्ययन परीक्षा संचारित करना** : निबन्ध प्रतियोगिता, वाकपटुता प्रतियोगिता, हस्तलेखन प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता, शब्दावली विकास के खेल, पुरूस्कार वितरण समारोह आदि का आयोजन करना।
6. **राष्ट्रीय पर्वो को मनाना** – स्वतन्त्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, ईद, होली, दीपावली, आदि पर्वो का आयोजन।
7. **महान विभूतियों की जयंतियों को मनाना** – विनोवा भावे जयंती, महात्मा गांधी जयंती, लाल बहादुर शास्त्री जयंती, जवाहर लाल नेहरू जयंती, जय प्रकाश नारायण जयंती, सुभाष चन्द्र बोंस जयंती, डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर जयंती, शहीद भगत सिंह जयंती आदि।
8. **सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन** – गीत नृत्य, नकल उतारना, अंताक्षरी, पिकनिक आदि का आयोजन।
9. **अविभावक बैठकों का आयोजन** – अविभावकों को अपने बच्चों की कमियाँ, रूचियों, अच्छाइयों, आदतों, सामाजिक–मनोवैज्ञानिक समस्याओं तथा विकास प्रक्रिया में उनके उत्तरदायित्व आदि के सम्बन्ध में जानकारी देने के उद्देश्य से बैठक आयोजित करना।

10. **मार्गदर्शन एवं सलाहकार सेवाएं** – शिक्षा, पढ़ने, लिखने, गंदी आदतों के जीवन पर दुष्प्रभाव, सिनेमा एवं टेलीविजन के दुष्परिणाम, सामाजिक नियमों, सांस्कृतिक मूल्यों एवं विश्वासों के महत्व के बारे में मार्गदर्शन।
11. **समापन समारोह** – व्याख्यान, समूह के सदस्यों के साथ अपना अनुभव बांटना, समूह फोटोग्राफ, समूह की गतिविधियों में भाग लेने एवं योगदान देने के लिए पुरस्कार देना एवं समूह के लिए विदाई समारोह आयोजित करना।
12. **निकास साक्षात्कार** – समूह के सदस्यों पर प्रभाव समूह की उपयोगिता एवं सुधार के सम्बन्ध में सदस्यों के विचार एवं सुझाव।

समूह कार्य का अभिलेखन

समूह कार्य छात्रों को कार्यक्रमों एवं समूह के सदस्यों की प्रतिक्रिया को डायरियों, जर्नलों एवं आख्याओं में अभिलिखित करना चाहिए। यह अभिलेखन निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए आवश्यक है :

1. परीक्षा में समूह कार्यकर्ताओं की उपलब्धियों के मूल्यांकन के लिए।
2. समूह के सदस्यों के भाग लेने के प्रमाण के रूप में।
3. उनके दृष्टिकोण एवं विचारों में हुए परिवर्तनों की पहचान के लिए।
4. समूह कार्य के माध्यम से व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में समूह कार्य अभ्यास के उपयोग का मूल्यांकन।
5. संस्था में अभिलेख रखने के लिए।
6. समाज कार्य साहित्य के पुस्तकालय का विकास करने के लिए।

व्यवस्थित अभिलेखन विशेष रूप से ग्रामीण छात्रों के लिए कठिन प्रतीत होता है। अतः यहाँ संदर्भ एवं सीखने के लिए कुछ आदर्श लेखन प्रारूप दिए जा रहे हैं।

समूह कार्य डायरी

समूह कार्यकर्ताओं या प्रशिक्षित छात्रों को डायरी लिखने का प्रयोजन या उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। समूह कार्य डायरी में अभिलेखन समूह के सदस्यों की गतिविधियां एवं प्रतिक्रियाओं के निष्कर्षो/निर्णयों पर आधारित होना चाहिए। यह संक्षिप्त एवं बिन्दुवार होना चाहिए। तथापि, प्रतिक्रियाओं के बारे में अवलोकनों/निष्कर्षो को सदैव रूप से ऑफिस करना चाहिए क्योंकि सूक्ष्मतम वर्णन की सदैव याद रखना अत्यन्त कठिन होता है एवं भविष्य में समूह कार्यकर्ता जर्नल लिखते समय या समूह से व्यवहार करते समय महत्वपूर्ण निष्कर्षो को भूल सकते हैं। इस सम्बन्ध में आदर्श लेखनों का संदर्भ ग्रहण किया जा सकता है :

प्रारूप – 1

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

सदस्य कागज की कुछ वस्तुऐं बनाने में रूचि रखते थे। अतः उन्हें यह सामान बनाने की अनुमति प्रदान की गई। सभी लोगों के साथ विचार–विमर्श करने एवं विचारों का आदान–प्रदान करने के बाद समूह के सदस्यों ने पतंग, गुड़िया, वाहन, पशु, चिड़िया आदि बनाई। उनमें टीम भावना एवं एकता का विकास हुआ जिसकी सहायता से उनमें स्वरूप संबंध एवं समूह भावना स्थापित हुई।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 2

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

आज समूह के सदस्य समूह कार्यकर्ताओं से कहानियां सुनना चाहते थे अतः उनके मनोरंजन एवं उनकी सच्चाई का संदेश देने एवं उसका महत्व बताने के लिए लकड़हारे की लघु कथा सुनाई गई। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सत्य का पालन करना चाहिए। कहानी के माध्यम से दिए गए संदेश को सीखकर समूह क सदस्य प्रसन्न हुए।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 3

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

परिवर्तन हेतु छात्रों ने – पिकनिक विषय पर विचार–विमर्श करना चाहा। इस बारे में प्रत्येक बोल रहा था, सिवाय एक व्यक्ति के जो कि न तो अपने विचार व्यक्त कर रहा था और न ही कोई रूचि दिखा रहा था। यह समूह को बताया गया। उसके मौन का कारण जानने के लिए एवं गोपनीयता रखने के उद्देश्य से

उसे उस स्थान से बुलाया गया। उसने अपनी समस्या बताई। उसकी समस्या हल करने के लिए उसे सलाह देना आवश्यक समझा गया। इसके बाद पिकनिक के लिए एक तिथि भी निश्चित की गई।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 4

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

आज समूह के सदस्य महात्मा गांधी द्वारा स्वच्छकार समुदाय के लिए किए गए कार्य के बारे में जानने के लिए रूचि रखते थे। अतः इस क्षेत्र में उनके कार्य एवं योगदान पर एक व्याख्यान दिया गया। समूह के सदस्यों ने प्रश्न पूछे और विस्तार से विचार–विमर्श किया गया तथा इस विषय पर एक निबन्ध लिखने का निश्चय किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

समुदाय के साथ कार्य

सामुदायिक संगठन में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण की एक पुरानी पद्धति है। भारत में समाज कार्य के विद्यालयों ने इसे 1960 तथा 1980 में प्रारम्भ किया। अब तक दूरस्थ क्षेत्रों में यह अभी भी उपेक्षित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि कुछ विद्यालयों में इसका प्रशिक्षण दिया जा रहा है वहाँ इसे विशिष्ट प्रयोगात्मक पाठ्यक्रम को सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया है। अधिकांश छात्र सामुदायिक संरचना में कार्य कर रहे है तथा पर्यवेक्षकों के मार्गदर्शन व पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अपना प्रशिक्षण भी प्राप्त कर रहे हैं। इस क्षेत्र के कुछ विशेषज्ञों ने सामुदायिक संगठन के आदर्श प्रतिमान विकसित किये है।

क्षेत्र कार्य की कार्य पद्धति

हमारे देश के दूरस्थ क्षेत्रों में समाज कार्य के विद्यालयों में समाज कार्य के वातावरण में वैज्ञानिक अभ्यास का विकास ठीक से नही हो पाया है। यहाँ पर किसी प्रकार की विवरणिका या कार्यपद्धित नही है जिसका अनुसरण किया जा सके। यद्यपि पर्यवेक्षक मौखिक मार्गदर्शन के द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हें और छात्र समुदायाओं में क्षेत्र कार्य को ठीक प्रकार नहीं कर पा रहे हैं। इसको ध्यान में रखते हुए क्षेत्रकार्य

की कार्यपद्धति की व्यवहारिक बाधाओं का विस्तार से विचार–विमर्श किया गया है। क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण व समुदाय विकास के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित निर्देशों के आधार पर उचित समुदाय का चयन किया जा सकेगा –

1. समुदाय छात्रों तथा विद्यालय दोनों के लिए भौतिक रूप से सुगम होना चाहिए।
2. आवश्यक मूलभूत सुविधाओं का उपलब्ध होना चाहिए।
3. किसी व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता या समाज कार्य विद्यालय द्वारा चिन्हित समुदाय होना चाहिए जहाँ समाज कल्याण सेवाओं की आवश्यकता हो।
4. समुदाय के लोगों में सेवाओं के प्रति रूचि, उत्साह व जोश होना चाहिए।
5. समुदाय के लोगों को अपने विकास के लिए स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए तैयार होना चाहिए।
6. वे अपनी आवश्यकताओं को विद्यालय या संगठन में स्वतंत्र रूप से विचार देने चाहिए।

समुदाय का चयन

विद्यालय में उपलब्ध सूचना एवं सामान्य दिशा निर्देशों के आधार पर एक उपयुक्त समुदाय का चयन करना चाहिए। यह चयन समुदाय की आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए एवं यह चयन जरूरतमंद व्यक्तियों की सेवा प्रदान करने के लिए होना चाहिए। सदस्यों एवं छात्रों को समुदाय के भौगोलिक क्षेत्र के बारे में एक सामान्य जानकारी प्राप्त करने के लिए भ्रमण करना चाहिए ताकि इस समुदाय की उपयुक्तता के बारे में उचित निर्णय लिया जा सके। तत्पश्चात् प्रशिक्षण एवं विकास के लिए समुदाय का अन्तिम चयन करना चाहिए।

सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित आंकड़े

छात्रों को चयनित समुदाय का भ्रमण फील्ड कार्य हेतु निर्धारित किए गये दिनों पर करना चाहिए। प्रारम्भ में, समुदाय के विभिन्न जातीय एवं धार्मिक समूहों की सामाजिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करने के लिए छात्रों की पूरी टीम (दल) की समाज के नेताओं एवं प्रमुख व्यक्तियों से घुलना–मिलना चाहिए तथा मेलजोल बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार की सूचना या जानकारी आगे के कार्यक्रमों की योजना बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। सूचना एकत्रित करने के लिए तैयार किए गए सूचना पत्र का उपयोग अभिलेखन करने एवं उचित परिचय हेतु किया जा सकता है।

समुदाय का सूचना पत्र

1. समुदाय का नाम :
2. समुदाय का प्रकार : ग्रामीण / शहरी / उपनगरीय / मलिन बस्ती
3. समुदाय की स्थिति :
4. कुल आबादी :

5. घरों की संख्या :
6. आय के मुख्य स्रोत :
7. सामाजिक संगठनों की संख्या :
8. समुदाय की प्रमुख भाषा :
9. मुख्य समस्याऐं एवं आवश्यकताएं :
10. साफ–सफाई की दशा :
11. वाह्य कार्य परियोजना के मुख्य क्षेत्र :
12. क्षेत्र कार्य परियोजना का शीर्षक :
13. परियोजना की अवधि :
14. क्षेत्र कार्य प्रशिक्षुओं के नाम :
15. पर्यवेक्षकों के नाम :
16. बैच संख्या :

डायरी लेखन

समाज कार्य के ग्रामीण क्षेत्रों में छात्र डायरी लेखन में समस्या का सामना करते है। वे डायरी लेखन में भ्रमणों की संख्या, समय, पर्यवेक्षकों एवं सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ बैठकों का वर्णन करते हैं। डायरी लेखन में इन औपचारिकताओं से बचना चाहिए एवं डायरी में प्रशिक्षु छात्रों को अपने द्वारा किए गए कार्य के बारे में संक्षेप में लिखना चाहिए।

सामुदायिक कार्य की नमूना डायरी

प्रारूप – 1

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

चयनित समुदाय के लोगों की समस्याओं की पहचान के लिए (जानने के लिए) मैनें एवं सह–कार्यकर्ताओं ने समुदाय के नेतृत्व के साथ विस्तार से विचार–विमर्श किया एवं यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी मूल समस्या महिलाओं को रोजगार या कार्य उपलब्ध कराना है जिससे कि वे अपने परिवारों का पालन–पोषण कर सकें। तथापि, विस्तृत सूचना एकत्र करने के लिए अगले सप्ताह महिलाओं से सीधे बातचीत करने का निश्चय किया गया।

हस्ताक्षर हस्ताक्षर हस्ताक्षर

(अभिकरण पर्यवेक्षक) (पर्यवेक्षक) (छात्र)

प्रारूप – 2
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

जैसा कि विगत सप्ताह निश्चय किया गया था मैने मेरे सह–कार्यकताओं ने समुदाय में निवास कर रही महिलाओं के साथ विचार–विमर्श किया एवं यह पुष्टि की कि रोजगार उनकी प्राथमिक आवश्यकता थी। इस समस्या के समाधान हेतु कार्य योजना बनाने के लिए हमने आपस में विचार–विमर्श किया तथा यह निश्चय किया गया कि अगले सप्ताह इस सम्बन्ध में अपने संकाय सदस्यों से बातचीत की जाए।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 3
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

अपने निर्णय अनुसार हम लोगों ने अपने पर्यवेक्षकों के साथ विचार–विमर्श किया तथा सम्बन्धित व्यक्तियों से विस्तृत विचार–विमर्श करने के लिए उनके विचार एवं सुझाव जानने के लिए एवं लोकतांत्रिक पद्धति से निर्णय लेने के लिए एक बैठक का आयोजन किया बैठक का दिनांक, समय एवं स्थान निश्चित किया गया तथा लोगों की इस निर्णय की सूचना देने का निश्चय किया गया। इसके लिए एक कार्य सूची भी तैयार की गई।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 4
भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

हम अपने द्वारा आयोजित बैठक में समय से पहुंच गए। हमारी सहायता के लिए समुदाय के युवक जल्दी आ गए थे। सभी प्रमुख महिला एवं पुरूषों ने बैठक में भाग लिया। हमारी बैठक के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया अत्यन्त उत्साहवर्धक थी। हमारे पर्यवेक्षकों ने बैठक में एक लघु स्याही उत्पादन इकाई लगाने का निश्चय किया गया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 5

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

समुदाय के लोगों के साथ पिछली बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार हमने प्रस्तावित परियोजना की प्रक्रिया एवं उपलब्ध सुविधाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए औद्योगिक विकास निगम के कार्यालय का भ्रमण करने का निश्चय किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

छात्रों हेतु निर्देश

समाज कार्य में वैयक्तिक सेवा कार्य, समूह सेवा कार्य तथा सामुदायिक सेवा कार्य के अभ्यास हेतु अग्रलिखित शीर्षक दिये जा रहे हैं। जिनको वे ऐशाइनमेन्ट के रूप में पूर्ण कर अपने पर्यवेक्षक से मूल्यांकित कराकर क्षेत्रीय क्रियाकलाप को पूर्ण कर सकते हैं।

1. **सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य से सम्बन्धित शीर्षक**

a) किसी संस्था में भर्ती हुये मादक द्रव्य सेवार्थी की वैयक्तिक इतिहास का अध्ययन तथा निदान एवं मूल्यांकन करना।

b) किसी सीजोफ्रेनिक सेवार्थी का वैयक्तिक इतिहास लिखते हुए निदान एवं उपचार प्रदान करना।

c) किसी ऐसे व्यक्ति का वैयक्तिक इतिहास लेना जो गम्भीर दुर्घटना का शिकार हुआ हो।

d) किसी ऐसे सेवार्थी हेतु पुर्नवास के लिए प्रयास करना जो मादक द्रव्यों का सेवन करता हो।

e) किसी ऐसे सेवार्थी हेतु परामर्श की व्यवस्था करना जो अवशाद ग्रस्त हो।

2. **सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य से सम्बन्धित शीर्षक**

a) किसी ऐसे सामाजिक संस्था में गूगें–बहरें बच्चों को शिक्षा प्रदान करना।

b) किसी ऐसे ग्राम में जहां पर महिलाओं की स्थिति दयनीय है उनको स्वयं सहायता समूह बनाने में सहायता प्रदान करना तथा उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृण बनाना।

c) किसी विद्यालय के बच्चों हेतु पिकनिक कार्यक्रम का आयोजन करना।

d) किसी ग्राम के प्रौढ़ सदस्यों हेतु प्रौढ़ शिक्षा का आयोजन करना।

e) किसी विद्यालय के बच्चों में प्रतियोगिता आयोजित करना।

3. **सामुदायिक सेवा कार्य से सम्बन्धित शीर्षक**

a) किसी ग्राम में नाली की समस्या को दूर करने में सहायता प्रदान करना।

b) ग्राम के निवासियों में शिक्षा की महत्ता से सम्बन्धित जागरूकता फैलाना।

c) किसी ग्राम में स्वच्छता सम्बन्धित जागरूकता फैलाना।

d) सामुदायिक के लोगों के बीच पोलियो ड्राप पिलाने हेतु जागरूकता फैलाना।

e) किसी ग्राम के लोगों के बीच स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता फैलाना।

परियोजना मार्ग दर्शन

समाज कार्य विद्यार्थियों में शोध दक्षता उत्पन्न करने हेतु उन्हें परियोजना शोध करना एक आवश्यक क्रियाकलाप है। जिसमें एक शीर्षक का चुनाव कर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करना होता है। शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम एक शोध संक्षिप्तिका का निर्माण करना होता है। शोध संक्षिप्तिका तैयार करने हेतु अग्रलिखित बिन्दु दिये जा रहे है –

1. **शीर्षक का चुनाव** – सर्वप्रथम शोध परियोजना बनाने हेतु एक शोध शीर्षक का चुनाव करना चाहिए जो समसामयिक समस्याओं से सम्बन्धित हो। जैसे ''शिक्षा एवं आर्थिक रूप से लाभ पूर्ण कार्यो द्वारा गली के बच्चों का सशक्तीकरण''।
2. **उपकल्पना का निर्माण** – शोध परियोजना हेतु समस्या के आधार पर उपकल्पना का निर्माण करना चाहिए। जैसे ''गली के बच्चों में भी छुपी हुई प्रतिभाएं होती है यदि उनको उचित माहौल मिले तो समाज में अपना योगदान दे सकते हैं''।
3. **अध्ययन की उपयुक्तता** – अध्ययन का शीर्षक क्यो चुना गया तथा इसकी उपयोगिता क्या है के बारे में स्पष्ट ब्यौरा प्रस्तुत करना चाहिए।
4. **अध्ययन के उद्देश्य** – अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए।

5. **अध्ययन हेतु प्रयोग प्रविधि** – प्रस्तुत शोध अध्ययन में कौन–कौन सी शोध प्रविधियों का प्रयोग करेगें का स्पष्ट वर्णन होना चाहिए।

i. **शोध प्ररचना** – शोध प्रविधि में कौन सी शोध प्ररचना का प्रयोग करेगें। उसके बारे में चर्चा करना चाहिए एवं परिभाषा देनी चाहिए।

ii. **शोध निदर्शन** – शोध प्रविधि में कौन सी शोध निदर्शन का प्रयोग करेगें। उसके बारे में चर्चा करना चाहिए एवं परिभाषा देनी चाहिए।

6. **तथ्य एकत्रित करने की तकनीक** – शोध अध्ययन में तथ्य एकत्रित करने हेतु दो विधियों का प्रयोग करते हैं।

i. **प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने की विधि** – प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने हेतु कई विधियों का प्रयोग करते हैं। जिनमें कुछ अग्रलिखित है –

1. अवलोकन 2. प्रश्नावली 3. अनुसूची 4. साक्षात्कार 5. वैयक्तिक अध्ययन

उपरोक्त सभी विधियों की व्याख्या एवं परिभाषा देते हुए शोध अध्ययन में कैसे प्रयोग करेगें का स्पष्ट वर्णन करना चाहिए।

ii. **द्वितीय तथ्य एकत्रित करने की विधि** – द्वितीय तथ्य वे तथ्य होते है जो विभिन्न किताबों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों इत्यादि एकत्रित किये जाते है इनका स्पष्ट निरूपण होना चाहिए।

7. **सारिणीकरण, तथ्य विश्लेषण व्याख्या एवं प्रतिवेदन** – शोध संक्षिप्तिका में स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहिए कि शोध अध्ययन में किस प्रकार की सारिणी का प्रयोग करेगें तथ्यों का कैसे विश्लेषण करेगें उनकी व्याख्या कैसे करेगें तथा उनका प्रतिवेदन करेगें।

8. **शोध अध्ययन का अध्यायीकरण** – इस शीर्षक के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध में कौन–कौन से अध्याय होगें तथा उन अध्यायों में कौन–कौन से तथ्य होगें का वर्णन करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत शोध संक्षिप्तिका तैयार कर पर्यवेक्षक को प्रस्तुत करना चाहिए तथा पर्यवेक्षक के अनुमोदन के पश्चात अपना शोध कार्य शुरू करना चाहिए।

शोध प्रबन्ध लिखने हेतु प्रारूप –

शोध प्रबन्ध लिखने के लिए सबसे पहले आवश्यक होता है कि अध्यायीकरण के अनुसार प्रतिवेदन किया जाए। इस प्रकार शोध प्रबन्ध तैयार करने हेतु अग्रलिखित शीर्षक दिये जा रहे है–

1. **प्रस्तावना** – इसमें शोध अध्ययन शीर्षक से सम्बन्धित तथ्यों को विस्तृत रूप से लिखना चाहिए तथा जो साहित्य जहां से लिये गये है उनका भी सन्दर्भ सूची में वर्णन करना चाहिए।

2. **शोध अध्ययन की उपयुक्तता, उद्देश्य** – इसमें शोध अध्ययन की उपयुक्तता तथा उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहिए।

3. **साहित्य का पुनरावलोकन** – शोध अध्ययन का प्रतिवेदन करने में साहित्य पुनरावलोकन का महत्वपूर्ण स्थान है अतः शोध अध्ययन प्रतिवेदन में पूर्व में हुए अध्ययनों का वर्णन सांख्यिकीय तथ्यों के साथ करना चाहिए।
4. **शोध प्रविधि** – शोध अध्ययन प्रतिवेदन में विस्तृत रूप से शोध प्रविधि का वर्णन करना चाहिए। जिसमें शोध प्रारचना, शोध निदर्शन तथा तथ्यों के एकत्रीकरण के बारे में भी वर्णन करना चाहिए।
5. **उत्तरदाताओं का पार्श्वचित्र** – इस अध्याय में शोध से सम्बन्धित तथ्यों के आधार पर उत्तरदाताओं का पार्श्वचित्र देना चाहिए जिसमें चित्रों, ग्राफों का भी प्रयोग किया जा सकता है।
6. **उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति** – इस अध्याय में उत्तरदाताओं से सम्बन्धित उन सभी तथ्यों का वर्णन करना चाहिए जो उनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित हो।
7. **उत्तरदाताओं की समस्यायें एवं उनके सुझाव** – इस अध्याय में उत्तरदाताओं की समस्याओं का वर्णन करना चाहिए तथा उनके सुझावों को भी स्थान देना चाहिए।
8. **निष्कर्ष** – इसके अन्तर्गत शोध अध्ययन में महत्वपूर्ण तथ्यों को दिया जाना चाहिए जिससे शोध अध्ययन की एक संक्षिप्त रूपरेंखा प्रस्तुत हो जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- शोध प्रबन्ध में जो भी तथ्य द्वितीयक स्रोतों से लिये जाते है उनका विवरण सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में देना चाहिए जो अग्रलिखित प्रारूप के अनुसार होने चाहिए।
- लेखक का नाम, किताब का नाम, प्रकाशक संस्था का नाम, वर्ष.........., पृष्ठ संख्या।

2.3 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में भूमिकायें एवं अपेक्षायें

भूमिकाऐं और सह संबंधित अपेक्षायें प्रत्येक सामाजिक कर्तव्य से सहमुक्त रहती है, सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिकाओं की वृत्तिक व्यवहार की अपेक्षित पद्धति रहती है। भूमिकाओं द्वारा कतिपय व्यवहार सौंपा जाता है और विशिष्ट परिस्थितियों का समुचित प्रत्युत्तर विहित किया जाता है। ये आपसी संबंधित घटक से प्रत्येक की भूमिका निर्मित होती है। एक भूमिका की धारणा, या कि कैसे व्यक्ति कार्य करता है, व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना चाहिए जब वे किसी विशिष्ट स्थिति में पहुंचते है और भूमिका निर्वहन या व्यक्ति कैसे वस्तुतः कार्य करता है (गोल्ड स्टेन, 1973)। दूसरे शब्दों में भूमिकाओं के मनोवैज्ञानिक घटक होते हैं जिसमें दृष्टिकोण और भावनाऐं सम्मिलित हैं। सामाजिक घटक जिसमें व्यवहार और दूसरों की अपेक्षाऐं सम्मिलित हैं व्यवहार्थ घटक।

सामाजिक कार्य भूमिकायें व्यवसायिक गतिविधियों के लिए निदेशन उपलब्ध कराते हैं। भूमिकाओं द्वारा व्यवसाईयों और ग्राहकों के बीच संव्यवहार की प्रकृति परिभाषित की जाती है। भूमिकाओं द्वारा व्यवसायिक

साथियों के बीच संव्यवहार की प्रकृति भी परिभाषित होती है। सामाजिक कार्य भूमिकाऐं और उनसे सहबद्ध अपेक्षाऐं, लक्ष्यों को प्राप्त करने के सामान्य मार्गो (माध्यमों) को सुझाती है।

अनेक लेखकों जैसे (मेक फीटर, 1971), टियर और मैक फीटर 1970, 1982 पिनकस और मिन्हान (1973) जानसन, एल0सी0 (1995) ने सामाजिक कार्य भूमिकाओं को परिभाषित किया है। सामाजिक कार्य भूमिका की इस प्रस्तुति ने प्रत्येक भूमिका में अंतर्निहित जानकारी के आदान–प्रदान को उच्चारित किया है। इस प्रकार ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता का काम इन सामाजिक कार्य भूमिकाओं पर ग्राहक समूह के प्रकार के परिप्रेक्ष्य में बल देता है।

अपेक्षाऐं और काम, सामाजिक कार्य भूमिकाओं को सक्रिय करते हैं। एक रणनीति ऐसी योजना होती है जो कार्यवाही को योजनाबद्ध बनाती है, ब्लू प्रिंट उपलब्ध कराती है। अपेक्षाओं में योजना और कार्यवाही के आयाम समाविष्ट रहते हैं। जैसे ही कोई रणनीति कार्यवाही बनती है वैसे ही व्यक्ति में एक उपलब्ध कराते हैं या जानकारियों का आदान प्रदान करते हैं।

तालिका 1. सामाजिक क्षेत्र कार्य भूमिकाएं

उपभोक्ता

कार्यपरामर्श	व्यक्ति और परिवार	औपचारिक समूह और संगठन कर्ता	समुदाय और समाज	सामाजिक कार्य व्यवसाय
संसाधन	इनेबलर	समन्वयक / मध्यस्थ	योजनाकार	सहयोगी / मानीटर
प्रबंधन	ब्रोकर	प्रशिक्षक	कार्यकर्ता	विश्लेषक
शिक्षा	अधिवक्ता			
	शिक्षक			

स्रोत – इन्फारमेशन मण्डल फॉर जर्नलिस्ट सोशलवर्क प्रैक्टिस

तालिका 2. सामाजिक क्षेत्र कार्य भूमिकाएं

उपभोक्ता

कार्य परामर्श	व्यक्ति और परिवार	औपचारिक समूह और संगठन	समुदाय और समाज	सामाजिक कार्य व्यावसायिक
संसाधन	समाधान ढूंढना	संगठनात्मक विकास	शोध और योजना	सामुदायिक सेवा
शिक्षा	केंस प्रबन्धन	नेट वर्किंग	सामाजिक कार्यवाही	ज्ञान विकास
	सूचना प्रसंस्करण	व्यावसायिक प्रशिक्षण	सामुदायिक शिक्षा	

स्रोत – माडल फार जर्नलिस्ट सोशलवर्क प्रेक्टिस (पृष्ठ 2) (बी0सी0ट्रेसी और बी डुबोस)

सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिकाओं और अपेक्षाओं से शुरुआत और उसके पश्चात् कार्रवाई की योजना का अवधारण की अपेक्षा, परिस्थिति की प्रकृति द्वारा भूमिकाओं और अपेक्षाओं को व्यवसायिओं की पद्धति की अपेक्षाओं को उद्जानित करना चाहिए। सामाल्य सामाजिक कार्यकर्ता समस्त पद्धति स्तर पर मध्यस्था के परिप्रेक्ष्य में परिस्थितियों को विरपित करते हैं इस पहुंच से अनेक संभावनाएं मिलती है। सामाजिक कार्य कर्तव्यों और उनसे भूमिकाओं को स्पष्ट करने के लिए इस शेष अध्याय में प्रत्येक भूमिका को परिभाषित किया गया है।

परामर्श

परामर्श, व्यावसायिक गतिविधियों को निर्दिष्ट करता है जिसके द्वारा सामाजिक कार्यकर्ता और ग्राहक, ग्राहक के मुद्दों को स्पष्ट करते हुए विकल्पों को खोजते हुए और कार्य योजना विकसित करते हुए प्रारम्भ करते हैं परामर्श ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता की विशेषता पर निर्भर रहता है। सामाजिक कार्यकर्ता के पास औपचारिक रूप से अर्जित ज्ञान, मूल्य और दक्षता रहती है और ग्राहक के पास उसके व्यक्तित्व, संगठनात्मक और सामुदायिक जीवन अनुभव पर आधारित ज्ञान, मूल्य और दक्षता रहती है।

ग्राहक के साथ सहयोगी कार्य के इस दिगविन्यास को अपनाने में सशक्तीकरण आधारित सामाजिक कार्यकर्ता की ग्राहक–कार्यकर्ता के बारे में पारम्परिक धारणा में अंतर्निहित प्रतिकूलता का अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये, मेलूशियों (1979) ने ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता के प्रत्यक्षान की उसकी तुलना में पाया कि ''जबकि कार्यकर्ता ग्राहक की ओर देखते है और ग्राहक स्वयं को एक सक्रिय अवयव समझता है तथा स्वायत्त कार्यकरण, परिवर्तन और वृद्धि के लिए स्वयं को सक्षम समझता है।

हेपवर्थ,रुनी और लार्सन के अनुसार ''यद्यपि, सामाजिक कार्यकर्ता विश्वास करते है कि मनुष्य के पास उसकी क्षमताओं को विकसित करने का अधिकार और अवसर होता है, रोग विज्ञान पर उनकी प्रवृत्ति केन्द्रित करने का प्रभाव होता है। मात्र इस उपदर्शन से सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक को नकारात्मक रुप से मानता है'' ग्राहक स्व–सम्मान और आत्मविश्वास को नुकसान पहुंचा सकते हैं। यदि ग्राहक को स्वयं को सक्षम सामाजिक कार्यकर्ता के रुप में समझा जाना हो तो सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा उन्हें ऐसा ही मानना चाहिए।

भूमिकाओं और परामर्श से जुड़ी अपेक्षाओं द्वारा ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता, ग्राहक के साथ व्यक्तिगत, पारिवारिक संगठनात्मक या सामाजिक समस्याओं को संबोंधित करते हैं। सूक्ष्म स्तर ग्राहक के साथ–व्यक्ति, परिवार और छोटे समूह–समर्थकारी भूमिका परामर्श अपेक्षाओं को नियमित करती है जो कि परिवर्तन लाती है। मध्यम स्तर पर, सरलीकर्ता, संगठनात्मक विकास पर फोकस करते हैं। सामाजिक

योजनाकारकी मेक्रो पद्धति भूमिका में सूक्ष्म स्तर परिवर्तन प्रारंभ करने की शोध और योजना समाविष्ट रहती है। अंत में, सामाजिक कार्यवृत्ति की पद्धति के साथ सहपाठी/मानीटर भूमिका से सहयोग प्राप्त होता है।

सूक्ष्म स्तर (माइक्रो लेबल) : समर्थकारी की भूमिका

समर्थकारी भूमिका में, व्यवसायी, सामाजिक कार्यकरण में चुनौतियों को हल करने के लिए माइक्रोलेबल ग्राहक के साथ कार्य करता है। परामर्थी अपेक्षा समर्थकारी भूमिका के पूरक हो जाती है।

समर्थकारी के समान, सामाजिक कार्यकर्ता व्यवसायी, व्यक्तिगत सामाजिक कार्यकरण के उन्नयन के लिए व्यक्ति, परिवार और छोटे समूह ग्राहक प्रणाली के साथ कार्य करते हैं। अपेक्षओं के परामर्थ से ग्राहक की समस्या की खोज बनती है। सामाजिक कार्यकर्ता और ग्राहक परिष्कृत व्यवहार, संबंधों की परिवर्थित होती पद्धति और सामाजिक तथा भौतिक परिवेश में कारकों को उपांतरित करते हुए परिवर्तन सृजित करते हैं। समर्थकारी की भूमिका, व्यक्तियों की सहायता करने के व्यावसायिक उद्देश्यों के साथ स्थिर रहती है।

सशक्तीकरण अनुकूलित सामाजिक कार्यकर्ता, ग्राहक की शक्ति को मान्य करते हुए कार्य प्रारंभ करते है तब परिवर्तन के लिए ग्राहक की क्षमता को बनाते है।

कार्ल राजर्स (1961) ने वर्णित किया है कि व्यवसायी, ग्राहक की उसके प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक स्थितियां उपलब्ध कराने जीवन की चुनौतियों से निपटने के अनुक्रम में विभिन्न पहल का उपयोग करते हैं। परिवर्तन की शर्त व्यक्ति के भीतर और इसकी सामाजिक पद्धतियों के साथ उनके संव्यवहार में निहित रहती है।

मध्य स्तरः सरलीकर्ता की भूमिका

सरलीकर्ता भूमिका, औपचारिक समूहों, संगठना या नौकरशाही संरचना के साथ कार्य वर्णित करती है जो इन बहु व्यक्ति पद्धतियों में प्रभावी कार्यकरण को प्रौननत करते है। संगठनात्मक विकास अपेक्षायें इस भूमिका को विस्तारित करती है।

सरलीकर्ता भूमिका, मध्य स्तर ग्राहक प्रणाली के साथ कार्य करती है – जैसे ग्रन्थाकार समूह या संगठन– जो उन सामाजिक कार्यकरण में वृद्धि करते है। जब ग्रन्थाकार समूह या संगठन उन समस्याओं की पहचान करते है जिन्हें वे उनकी आंतरिक प्रक्रियाओं, संरचना या कृत्यों के साथ रखे हुए है। तब वे सामाजिक कार्यकर्ता के साथ परामर्श कर सकते है। उनका प्रारंभिक काम पारस्परिक अपेक्षाओं को और दृष्टिकोण को स्पष्ट करना होता है। सरलीकर्ता के रुप में, सामाजिक कार्यकर्ता दूसरे ग्रुप सदस्यों के मददगार व्यवहार को आदर्श उपयोगी व्यवहार की मदद कर सकते हैं। समुचित प्रश्न पूछ सकते है या समूह के बारे में समुचित टिप्पणी और भावनाएं उपलब्ध कराते है। वे दूसरे समूह सदस्यों को समूह प्रक्रिया और कार्यकरण के बारे में जानकारी की शिक्षा दे सकते है। (सानसन एल0सी01995) योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात सहभागियों को परिवर्तनों और एकीकृत लाभों को स्थिर करने की आवश्यकता है।

संगठनात्मक विकास के दूसरे पहलू के रूप में, सामाजिक कार्यकर्ता, संगठनात्मक नीति को आकार देने में एक मुख्य भूमिका निभाते है (मार्टिन 1990)। प्रश्नों के उत्तर जैसे ''क्या हम निर्धारित लक्ष्य जनसंख्या तक पहुंच रहे हैं ? ''क्या सेवाऐं प्रभावी रूप से और दक्षता से प्रदान की गई हैं ? और क्या मानीटरिंग और मूल्यांकन उपाय सफलता को माप रहे हैं ? वस्तुतः किसी नीति का अंतिम परीक्षण किसी कार्यक्रम में इसके वास्तविक क्रियान्वयन में और उपभोक्ताओं के जीवन पर उसके प्रभाव में होता है।

सामाजिक कार्यकर्ता, औपचारिक संगठनों के साथ उनके कार्य में सरलीकर्ता की भूमिका का उपयोग भी करते हैं। पुनः इस कार्य का लक्ष्य व्यक्तिगत परिवर्तन के बजाय संगठनात्मक है। उदाहरण के लिए, एक बड़े औद्योगिक संयंत्र में प्रबंधन टीम मद्यपान, अनुपस्थिति और दूसरे व्यक्तिगत मुद्दों से चिंतित थी जिसके परिणामस्वरूप निम्न प्रेरणा और कम होती उत्पादकता के रूप में निकल रही थी। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता जोन्स मोन्टेगों की सेवाऐं प्राप्त करते हें जो कारबार और उद्योग में विशेषज्ञ है। श्रमिकों और प्रबंधन से जानकारी एकत्र करने के पश्चात जोन्स एक कर्मचारी सहायता कार्यक्रम की अनुशंसा करते है। नव गठित श्रम प्रबंधन परिषद को विचारण के लिए कर्मचारी सहायता कार्यक्रम के अनेक विकल्प प्रस्तुत करते हैं। जोन्स के कार्य से सरलीकर्ता भूमिका की संगठनात्मक विकास अपेक्षा पारिलक्षित होती है।
सामाजिक कार्य व्यवसायी, संगठनात्मक योजना, संसूचना की अतः संगठनात्मक पद्धति विनिश्चय करने की प्रक्रिया और प्रशासनिक संरचना को उन्नत करने के लिए मध्य स्तर ग्राहक प्रणाली के साथ सहयोगात्मक रूप से कार्य करता है।

मेक्रो लेबल : योजनाकार भूमिका

लक्ष्य निर्धारित करने के लिए योजनाकार की भूमिका धारण करने के लिए सामुदायिक सामाजिक संरचना के साथ कार्यकरण से नीतियां विकसित होती है और कार्यक्रम प्रारंभ होते है। योजनाकार की भूमिका के साथ सहबद्ध अपेक्षाओं में शोध और योजना भी सम्मिलित है। सामाजिक योजनाकार, सामुदायिक समस्याओं को हल करने के लिए योजना बनाने और स्वास्थ्य तथा मानव सेवाऐं उपलब्ध कराने में समुदायों की सहायता करते हैं। ब्री–लेण्ड, कोस्टिन और आर्थटन (1987) के अनुसार योजनाकारों और संगठनकर्ताओं को समाज, समुदाय, समाजशास्त्र सामाजिक समस्याओं, सामुदायिक मनोविज्ञान, सामाजिक योजना और सामाजिक नीति के ताने बाने को समझने की आवश्यकता है। योजना और शोध के क्षेत्र में विशेषज्ञ ज्ञान और दक्षता को उपयोग में लाने के लिए व्यवसाई को सामुदायिक आवश्यकताओं पर ध्यान देने और सामुदायिक संसाधनों का विकास करने के लिए सामुदायिक नेताओं और सामाजिक सेवाकारियों को सम्मिलित करना होगा।

सामाजिक आयोजक गतिविधियों में सम्मिलित हैं, सेवाओं का समन्वयन, कार्यक्रमों का विकास, नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन और सामाजिक कल्याण सुधार का पक्ष–पोषण। सामाजिक आयोजक शोध तकनीक का उपयोग करते है जैसे आवश्यकताओं का निर्धारण, सेवाओं की सूची, सामुदायिक पार्श्वदृष्य,

परिवेशीय अवलोकन और सामाजिक समस्याओं पर उनकी समझ को आगे बढ़ाने और सम्भावित समाधान खोजन के लिए मैदानी शोध। सामाजिक आयोजक योजना की प्रक्रिया के दौरान एक निष्पक्ष क्षमता में सेवा देते हैं। वे एक बुद्धिसंगत कार्रवाई प्रस्तावित करने के लिए शोध और विश्लेषण का उपयोग करते हैं। सामाजिक योजना के लिए भविष्य के प्रति स्वप्न दृष्टा स्थिति निर्धारण अपेक्षित होता है। स्वप्न दृष्टा दृष्टिकोण से प्रेरणा प्राप्त होती है। जबकि परिवेशीय कारकों, वास्तविक ज्ञान और चुनौतियों से परिवर्तन के पैरामीटर्स परिभाषित होते हैं। योजना को सुदृढ़ बनाने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहकों (मेक्रो लेबल क्लाइन्ट) के साथ संसाधन क्षमताओं और परिवेशीय चुनौतियों का निर्धारण करते हैं। चित्र में योजना प्रक्रिया में योजना गतिविधियां वृद्धि होते हुए कदमों द्वारा प्रारंभ की जा सकती है या सर्वत्र योजनावद्ध द्वारा व्यापक परिवर्तनों को प्राप्त किया जा सकता है।

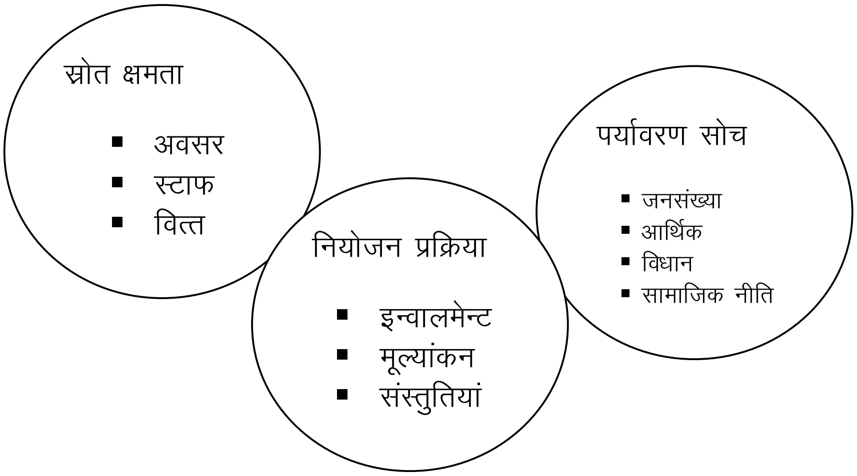

वृत्ति (व्यावसायिक पद्धथ्त) – सहयोगी और प्रबोधक (मानीटर) भूमिकाऐं :

व्यावसायिक वार्तालाप से सहपाठी और प्रबोधक भूमिका के लिए परदृष्य उपलब्ध रहता है। इन भूमिकाओं के माध्यम से व्यवसायी सामाजिक कार्य व्यवसाय की निष्ठा बनाएं रखता है। नैतिक मानकों को ऊंचा रखता है और सहयोगियों को सहायता प्रस्तुत करता है। सहयोगी की भूमिका सामाजिक कार्य व्यवसाय के सदस्यों में साझेदारी, पारस्परिक सम्मान और सहयोग का वातावरण मानती है। दूसरे व्यवसायों के साथ कार्यकरण संबंध स्थापित करने और राष्ट्रीय वृत्तिक (व्यावसायिक) संगठनों में सदस्यता बनाएं रखने जैसे एन0ए0एस0डब्लू0 (1996) और सी0एम0डब्लू0ई0 और स्थानीय समूह, सहयोगी की भूमिका को अभिव्यक्त करते हैं।

प्रभावी सामाजिक कार्य पद्धति के लिए दूसरे वृत्तिकों के साथ सहयोगात्मक संबंध स्थापित कर आवश्यकताओं सहयोगी गुणवत्ता सुनिश्चित करने और वृत्तिक मानकों को बनाए रखने के लिए समकक्ष व्यक्ति की व्यावसायिक प्रक्रिया को मानीटर करते है। एन0ए0एस0डब्लू0 (1996) के मानक सामाजिक कार्य

व्यवसाय की गतिविधियों की मानीटरिंग करने में सामाजिक कार्य व्यवसायी की वचनबद्धताओं और उत्तरदायित्वों को रेखांकित करते है। मानीटरिंग में सलाह देना, जानकारी देना, मानीटरिंग सम्मिलित है। व्यवसाय के उत्संस्करण द्वारा सामाजिक कार्यकर्ता व्यावसायिक मूल्यों, मानको, और सामाजिक कार्य की नैतिकता के साथ पहचान करते है। उत्संस्करण व्यवसायिकों सामाजिक कार्य व्यवसाय की संस्कृति के अनुकूल कर देता है जिसमें इसकी भाषा, माप पद्धतियों, उत्तरदायित्व और बाध्यता सम्मिलित है इसमें शिक्षा, प्रक्रिया, अनुभव और वृत्तिक विकास की प्रक्रिया समाविष्ट है।

संसाधन प्रबंधन

प्रायः ग्राहक उन संसाधनों तक पहुचने में सामाकि कार्य सेवाऐं चाहता है जो उनके व्यक्तिगत संसाधनों या सामाजिक सहायता की उनके अनौपचारिक नेटवर्क में नही पाये जाते है। इसलिये अक्सर, सामाजिक कार्यकर्ता संसाधनों तक पहुंच के लिये ग्राहक की सहायता करते हैं, सेवा प्रदान करने में सहयोग प्रदान करते हैं और नई नीतियां तथा कार्यक्रम प्रारंभ करते हैं। ये विभिन्न प्रकार की गतिविधियां संसाधन, प्रबंध, के सामाजिक कार्य कर्त्तव्य को प्रदर्शित करते हैं।

2.4 समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की भूमिकायें एवं अपेक्षायें

समाजकार्य क्षेत्राभ्यास में प्रशिक्षण संस्थायें बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन करती है। जिससे समाजकार्य प्रशिक्षणार्थियों के विकास में सहायता प्राप्त होती है। देखा जाय तो समाज कार्य के सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप प्रशिक्षण संस्थायें ही प्रदान करती है। प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिकाऐं अग्रलिखित हैं –

1. व्यवसायिक निपुणताओं का विकास वास्तविक सीखने के तथा प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर ज्ञान प्रदान करना।
2. सूक्ष्म स्तर पर समस्याओं का समाधान करने की निपुणताओं का विकास करना।
3. सिद्धान्त तथा अभ्यास के एकीकरण का विकास करना।
4. ऐसी निपुणताओं का विकास करना जो प्रशिक्षण के निर्धारित स्तर को प्राप्त करने के लिए आवश्यक होती है।
5. ऐसी उद्देश्यपूर्ण व्यवसायिक अभिरूचियों का विकास करना जो आंशिक तथा पूर्ण न्यायिक मनोवृत्तियों से सम्बन्धित होती है।
6. व्यवसायिक मूल्यों तथा वचनवद्धता का विकास करना जिसमें मानव प्रतिष्ठा का सम्मान व अधिकारों की सहभागिता के लिए उत्तरदायित्व होते हैं।
7. दूसरों के व्यवसायिक विचारों की जागरूकता का विकास करना।
8. ऐसा उद्देश्यपूर्ण शिक्षण का अनुभव जो मार्गदर्शन के द्वारा जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में ज्ञान, निपुर्णताओं तथा मनोवृत्तियों का व्यासायिक विकास करता है।
9. ज्ञान, निपुणताओं तथा मनोवृत्तियों के प्रति व्यवसायिक मनोवृत्तियों का विकास करता है।

10. आवश्कयताओं की पूर्ति तथा सहायता के लिए समाजकार्य की पद्धतियों से अर्जित की गयी निपुणताओं का विकास करना। जैसे – सहभागिता, अवलोकन, अंतःक्रियाएं, संचार आदि।
11. अध्ययन में सिद्धांत एवम् अभ्यास के सहसम्बन्ध की क्षमता का विकास तथा वृद्धि करना।

समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की अपेक्षायें

समाजकार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थानों से अपेक्षायें यह रहती है कि वे समाज कार्य विद्यार्थियों को उचित माहौल प्रदान कर उनके समग्र विकास में सहायता प्रदान करे। जिससे वे समाज में अग्रणी भूमिका का निर्वाहन कर सके। समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थानों से अग्रलिखित अपेक्षायें की जा सकती है –

1. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थायें समाज कार्य विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक रूप से सीखे गये विषयों को पूर्णरूपेण व्यावहारिक रूप में अपनाने में सहायता प्रदान करे।
2. चूंकि समाज कार्य समाज के बीच में रह कर किया जाने वाला कार्य है। अतः समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को समाज को दृष्टिगत रखते हुए प्रशिक्षण प्रदान करे।
3. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य विद्यार्थियों को अभिलेखन क्षमता, परामर्श क्षमता, निदान क्षमता का विकास सुनियोजित तरीके से प्रदान करे।
4. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य के सैद्धान्तिक पहलुओं को व्यौहारिक पहलु के रूप में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करे।
5. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को एक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करे जिससे समाज कार्य कि विद्यार्थी अपने वृत्ति का उपायोजन कर सके।

2.5 समाज कार्य व संस्था सम्बन्धी सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल

सामाजिक कार्यकर्ता वृत्ति के निरपेक्ष मूल्य को व्यवहार के सिद्धातों में परिवर्तित करता है तत्पश्चात् वे इन सिद्धांतों को विशिष्ट परिस्थितियों में एकाग्र कार्यवाई में अनुदित करता है। मूल्यों से सामाजिक कार्यकर्ता के चिंतन के मार्ग को आकार मिलता है और वह सिद्धांतों के माध्यम से उसकी कार्यवाही को निदेशित करता है (विस्टेक, 1957, गोल्ड स्टेन 1973, सिपोरीन 1975, लेवी 1976, पर्लमेन पिकार्ड 1988, हैपवर्थ, रूनी और लार्जन 1997, काम्पटन और गेलवे 1994, मोरल और शेफर 1908)। इनमें स्वीकारता, वैयक्तिता भावनाओं की प्रयोजनयुक्त अभिव्यक्ति, गैर निर्णयात्मक व्यवहार, उद्देश्य परकता, नियंत्रित भावनात्मक संलग्नता, स्वअवधारणा, संसाधनों तक पहुंच, गोपनीयता और जबावदेही। जब सामाजिक कार्यकर्ता इन सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणित करने में असफल रहता है तो वह ग्राहक को प्रताड़ित करता है। तालिका में इन मूल्यों और सिद्धांतों को दर्शाया है।

तालिका – सामाजिक कार्य मूल्य के प्रभाव और कार्रवाई सिद्धांत

Empowerment			Victimization	
Potential Effect	Positive Manifestation	Social Work Values and Principles	Barriers	Potential Effect Affirm
Affirm personhood	Affirm individuality appreciate diversity	Uphold uniqueness and worth	Stereotyping denigration labeling	Importance self-fulfilling prophery
Efficacy competence partnership	Develop alternatives Delineate roles	Promote Self-determination	Control advice manipulation paternalism	Incompetence failure to change dependency
Openness lowered defences	Strength perspective active listening empathy	Communicate nonjudgementally and with acceptance	Blame pity and sympathy focus on deticits	Defensiveness Helpessness
Affirm rationality	Gaining perspective	Attain objectively	Overdentification coldness distancing	Bias Distortion
Trust	Respecting privacy	Ensure confidentiality	Inappropriate communication	Breach of confidence Mistrust
Increased opportunities	Building linkages developing policies and programs coordination of services	Provide access to resources	Red tape rules and regulations discrimination	Sterigma lack of opportunities

स्वीकृति

ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जो सेवार्थियों को स्वीकार करते है। मानवीयरूप से उनके साथ व्यवहार करते है तथा उनकी प्रतिष्ठा को बनाए रखते है। सामाजिक कार्यकर्ता सही चिंता द्वारा स्वीकृति अभिव्यक्त

करते है एकाग्रचित रूप से श्रवण करते हुए, दूसरों के दृष्टिकोण को अभिस्वीकृत करते हुए और पारस्परिक सम्मान का वातावरण सृजित करते हुए। स्वीकृति से अभिव्यक्त होता है कि सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक के दृष्टिकोण को समझता है और उनके दृष्टिकोण का स्वागत करता है। स्वीकृति से ग्राहक की शक्ति और मान्यता की अभिवृत्ति का सुझाव प्राप्त होता है।

वैयक्तिकता

सभी लोग अद्वितीय होते है तथा उनमें सुभिन्न क्षमताएं होती है जब सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक की वैयक्तिकता की पुष्टि करता है तब वे उनके दुर्लभ गुणों और व्यक्तिगत अन्तर को मान्यता देते है तथा प्रशंसित करते है। वे ग्राहक को एक व्यक्ति के रूप में मानते है। ऐसे सामाजिक कर्ता जो ग्राहक को व्यक्तिनिष्ठ बनाता है उसे प्रतिकूलता और द्वैषता से मुक्त करता है, किसी लेबल को लगाने और रूढ़िबद्ध करने की अवहेलना करता है विभिन्नता की क्षमता को मान्यता प्रदान करता है वे इस बात को प्रदर्शित करते है कि ग्राहक के पास ''व्यक्तिगत होने और न केवल मनुष्य के रूप में व्यवहार करवाने बल्कि व्यक्तिगत अन्तर के साथ मनुष्य होने का'' अधिकार है।

भावनाओं की प्रयोजनयुक्त अभिव्यक्ति

भावनाएं मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग होती है और जनता द्वारा भावनाओं की श्रृंखलाओं को अनुभव किया जाता है। ग्राहकों को उनकी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने के अवसरों को आवश्यकता होती है। (बिस्टैक–1957) यद्यपि, यह बुद्धिमानी नही है कि ग्राहक की भावनाओं के साथ प्रोत्साहित किया जाए या अनियंत्रित रूप से क्रोध या नकारात्मक भावनाओं से जोड़ दिया जाए, सामाजिक कार्यकर्ता के लिये आवश्यक होता है कि वह ग्राहक को इस बात के लिये निदेशित करे कि वह अपनी भावनाओं को प्रयोजनयुक्त तरीके से अभिव्यक्त करे। सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन भावनाओं को उभारना पड़ता है जो इन तथ्यों को रेखांकित करती है। ध्यानपूर्वक श्रवण करना, सुसंगत प्रश्न पूछना और सहिष्णुता प्रदर्शित करना और अनिर्णययात्मकता द्वारा सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक को तथ्यों और भावनाओं दोनों को बांटने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।

गैर निर्णयात्मक रूझान

गैर निर्णयात्मक रुझान से प्रभावी संबंध विकसित होते हैं। यह इस आधार वाक्य से कि समस्त मनुष्य प्रतिष्ठा और मूल्य रखते है, गैर निर्णयात्मक रुझान से प्रभावी संबंध विकसित होते हैं। इस आधार वाक्य से कि समस्त मनुष्य प्रतिष्ठा और मूल्य रखते हैं, गैर निर्णयात्मक रुझान बनता है, गैर निर्णयात्मकता में स्वीकृति की उपधारणा रहती है।

प्रायः सेवार्थी ऐसी स्थिति में होते है जहां उन्हें स्वयं का और परिस्थितियों की सूक्ष्मता से परीक्षण करना चाहिए। इसके लिए कुछ ऐसी जोखिम उठाने की अपेक्षा रहती है जिसके लिए उनका तैयार रहना

सम्भाव्य नहीं है जबकि उन्हें यह अनुभव हो रहा है कि उन्हें निर्णीत किया जा रहा है। (कीथ–लुकास–1972)। गैर निर्णयात्मक सामाजिक कार्य में दोषता या निर्दोषता या समस्या या आवश्यकता के कारणत्व के लिए सेवार्थी उत्तरदायित्व की मात्रा अपवर्जित रहती है किन्तु रुझान स्तर या ग्राहक के कृत्य के बारे में मूल्यांकित निर्णय करना सम्मिलित रहता है।

गैर–निर्णयात्मक रूझान, समस्त सामाजिक कार्य प्रक्रियाओं पर लागू होता है। यद्यपि, कतिपय परिस्थितियों में जैसे वह अवसर जब सेवार्थी निरूत्साहित या लांछित अनुभव करता है, सेवार्थी को विशेषरूप से भावनात्मक गैर निर्णयात्मकता की अपेक्षा रहती है। जब सेवार्थी की स्वयं के लांछन और निर्णय की भावना बढ़ जाती है तब दूसरों के निर्वचन की सम्भाव्यता है। उदाहरण के लिए अपने बच्चों से झगड़े को हल करने का कौशल चाहने वाला पति–पत्नि का एक युग्म सम्भवतः उनके प्रति कार्यकर्ता के रूझान के बारे में परिचित रहेगा।

उद्देश्यपरकता

उद्देश्यपरकता का अभ्यासी सिद्धांत या बिना पूर्वाग्रह परिस्थितियों का परीक्षण करना, गैर निर्णयात्मकता से नजदीकी से संबंधित है। उद्देश्य परक होने में व्यवसायी, सेवार्थी के साथ उसके संबंध में व्यक्तिगत भावनाओं और पूर्वाग्रहों को प्रवेशित करने में टालता है। एक उच्च व्यक्तिगत या गहारण निर्णय, ग्राहक और उनकी परिस्थितियों को निर्धारण करने में व्यवसायी को प्रभावित करता है। व्यवसायी का शैक्षणिक अनुभव, सामाजिक दुनिया की समझ, जीवन के अनुभव, विश्वास और मूल्य आदि सभी उनकी उद्देश्यपरकता को प्रभावित करते हैं।

नियंत्रित भावनात्मक संलग्नता

ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जो सेवार्थी के साथ उनकी भावनात्मक संलग्नता को नियंत्रित करते है मानव व्यवहार की उनकी समझ से परिदृश्य हासिल करते है। सामाजिक कार्यवृत्ति के सामान्य प्रयोजन से संबंधों के लिए निदेश चाहता है और संवेदनता के साथ सेवार्थी की भावनाओं का प्रत्युत्तर देता है। अनियंत्रित भावनात्मक प्रतिक्रिया सेवार्थी में आवरण की कमी से सेवार्थी के दृष्टिकोण अति परिचयता तक क्रमबद्ध रहती है।

ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जिनमें आवरण की कमी होती है सेवार्थी से स्वयं को अलग कर लेते है और सेवार्थी और उसकी परिस्थिति की देखभाल करने में असफल रहते है। शांत विषय परम सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ एक विषय के रूप में व्यवहार करते है– अध्ययन, चालाकी से काम निकालने हेतु व्यक्तियों के परिवर्तन करने के लिए (क्रीम लुकास 1972) विलगता से अक्सर सेवार्थी कार्य को परिपक्व हुए पूर्व ही को छोड़ने को मजबूर हो जाता है। यह सेवार्थी के लिए संकेत भी है कि कार्यकर्ता में चिन्ता का अभाव है और इससे सेवार्थी की भावनाओं में निराशा, मूल्यहीनता और क्रोध की वृद्धि हो सकती हे।

प्रभावी सामाजिक कार्यकर्ता, स्वीकार्य सेवार्थी और अनुचित व्यवहार के बीच संतुलन बनाए रखता है। तदनुभूति ''कल्पना को पसंद करने का कार्य'' है, जो कि लक्ष्यों की ओर कार्य करने और परिवर्तन के लिए योजना बनाने के लिए सेवार्थी को सशक्त करती है।

स्व–अवधारणा

स्व–अवधारणा के सिद्धान्त के साथ सामाजिक कार्यकर्ता, सेवार्थी की उसकी स्वयं की पसंद और विनिश्चयों को करने में स्वतंत्रता को मान्य करते हैं। स्व–अवधारणा अभिस्वीकृत करती है कि स्वन्नत वृद्धि स्वयं के भीतर से अभिव्यक्त होती है या होलिस (1967) का कहना हैं कि ''भीतर से वृद्धि कारित होने के लिए चिंतन से स्वतंत्रता पसंद से स्वतंत्रता, निन्दा से स्वतंत्रता तथा बुद्धिमानी से कार्य करना। समझने की शक्ति और किसी की समझ पर कार्य करना अनुभव से ही आता है।

स्व–अवधारणा से अभिप्रेत है उत्पीड़ित या चालाकी से प्रभावित न होना (एग्रान्सन 1981) दूसरे रूप से कहे तो स्व–अवधारणा से अभिप्रेत है पसंद करने की स्वतंत्रता। पसंद विकल्पों पर निर्भर रहती है। स्व–अवधारणा की सीमाएं होती है, यद्यपि, विस्टेक (1957) के अनुसार, विधिक प्रतिबंध, ऐजेन्सी नियम, मानक, पात्रता अपेक्षाएं और विनिश्चय करने की ग्राहक की योग्यता पसंदों की श्रेणी को सीमित करती है।

संसाधनों तक पहुंच

संसाधनों तक पहुंच बनाना किसी भी विकासोन्मुखी समाधान की पूर्व शर्त है। सीमित संसाधन समाधान के विकल्पों को कम कर देते हैं और बिना पसंद के व्यक्ति विकल्पों में से चयन नही कर सकता है। समस्त व्यक्ति, चुनौतियों का सामना करने और उनकी क्षमता की अनुभूति करने के लिए संसाधनों पर निर्भर रहते है।

नैतिकता की संहिता एन0ए0एस0डब्ल्यू0 (1996) संसाधनों का पक्षपोषण करने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता की बाध्यता को विहित करने में बहुत स्पष्ट है। संहिता सामाजिक कार्यकर्ता से विनय करता है कि वह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक के पास वांछित संसाधन, सेवाएं और अवसर हो। ऐसे व्यक्तियों के लिए चयन और अवसरों का विस्तार हो जो दबे कुचलें और अलाभप्रद है, और सामाजिक स्थिति में उन्नयन हो तथा विधायी सुधारों के पक्ष पोषण द्वारा सामाजिक न्याय प्रौन्नत हो।

गोपनीयता

गोपनीयता या एकांतता के अधिकार से अभिप्रेत है कि ग्राहक द्वारा जानकारी को प्रकट करने की सहमति अभिव्यक्त करना चाहिए जैसे कि उनकी पहचान, वृत्तिकों के साथ उनका वार्तालाप, उनके या इतिहास के बारे में वृत्तिक राय चूंकि ग्राहक अक्सर सामाजिक कार्यकर्ता के साथ संवेदनशील व्यक्तिगत विषयों का आदान प्रदान करता है इसलिए विश्वास जो कि किसी भी प्रभावी कार्यकरण संबंध का मुख्य तत्व होता है विकसित करने के लिए गोपनीयता या गुप्तता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है।

जबाबदेही

नीतिशास्त्र की संहिता व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं को उनके व्यक्तिगत और व्यवसायिक आचार विचार के लिए जबाबदेह बनाता है। जबाबदेही से अभिप्रेत है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं को इसे प्रक्रिया और तकनीक में सक्षम होना चाहिए। इसका यह अर्थ हुआ कि सामाजिक कार्यकर्ता, विभेदकारी और अमानवीय प्रथाओं का प्रतितोष करने में अपनी वचनबद्धता को गम्भीरता से लें और निश्चित व्यावसायिक निष्ठा के साथ कार्य करे तथा स्वस्थ प्रथा और शोध शिष्टाचार को क्रियान्वित करें। जबाबदेही का विस्तार सामाजिक कार्यकर्ता के सेवार्थी के प्रति नैतिक दायित्व तक रहता है।

सामाजिक कार्य दक्षता (कौशल)

ओ हेगन ने दक्षता को अलग ढंग से परिभाषित करते हुए कहा कि 'दक्षता (कौशल) से अभिप्रेत है योग्यता, चतुराई, विशेषता, ज्ञान या किसी बात की समझ के साथ संयोजन में व्यावहारिक ज्ञान यद्यपि, यह परिभाषित करना कठिन है कि सामाजिक कार्य दक्षता किससे गठित होती है क्योंकि यह दूसरे शब्दों के साथ आपस में परिवर्तित करते हुए उपयोग में लाई जाती है। इससे भ्रम पैदा हो सकता है किन्तु तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए इसे समझा जा सकता है।

यहां दक्षता द्योतक है, ज्ञान, विशेषज्ञाता, निर्णय और अनुभव का जो सामने उपस्थित हुई परिस्थिति के भीतर या कारवाई के अनुक्रम में या हस्तक्षेप के दौरान उदाहरण के लिए इसमें सम्मिलित है प्रथा स्थापित करने की पसंद के संबंध में एक ठोस निर्णय और एक विशिष्ट परिवेश के भीतर कार्य करना कितना उत्तम होगा। इसमें दक्षता के स्तर के बारे में निर्णय करना भी सम्मिलित हो सकता है जो कार्य के लिए अपेक्षित होता है और किसी कार्य में या कार्रवाई के अनुक्रम में विशेषकर प्रारंभ में, मध्य में या अंत में किस प्रक्रिया पर महत्व देता है। इस निर्णय करने की प्रक्रिया के एक भाग में प्रभावी रूप से पर्यवेक्षण करना और अतिरिक्त परामर्श करना प्रशिक्षण और सहायता भी सम्मिलित है।

दक्षता (कौशल) का स्तर

अपेक्षित दक्षता का स्तर की श्रेणी निम्न हो सकती है –

- बुनियादी दक्षताऐं – उन बुनियादी दक्षताओं से संबंधित होती है जो अधिकांश सामाजिक कार्य मध्यस्थता जैसे तदनुभूति, संबंध या सम्पर्क स्थापित करने में अपेक्षित होते हैं।
- मध्यवर्ती दक्षता – ये दक्षताएं और अधिक कठिन परिस्थितियों जैसे सेवा उपयोगकर्ता के साथ कार्य करना जिन्हें संलग्न करना आसान नहीं होता है या प्रतिकूल नहीं दिखते है, से संबंधित होती है।
- विकसित और विशेषज्ञ दक्षताएं – ये दक्षताएं ऐसी परिस्थितियों में कार्य करने से संबंधित होती है जिनके लिए विशेषज्ञ ज्ञान अपेक्षित होता है जैसे कि परामर्श या परिवार पद्धति में प्रशिक्षण ऐसी समस्याओं के साथ कार्य करने में समर्थ होना जो बहु फलक है और संघर्ष विद्वेव या उच्च स्तर के तनाव में दुर्दमनीय है।

2.6 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य अभ्यास के विषय में अभिविन्यास के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है। जिसमें बताया गया है कि संस्थाओं के बारे में कौन–कौन सी जानकारियां प्राप्त करे तथा उनके क्रियाकलापों के बारे में भी जानकारी कैसे प्राप्त करे। इससे सम्बन्धित प्रारूप पत्र दिये गये है। अभिविन्यास से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक सेवा कार्य तथा सामुदायिक सेवा कार्य की डायरी कैसे बनाये के भी प्रारूप पत्र उल्लेखित किये गये है। इसी इकाई में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में भूमिकायें एव अपेक्षाओं से सम्बन्धित तथ्यों का वर्णन किया गया है। समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिकायें एव अपेक्षाओं के बारे में भी एक विस्तृत अभिलेख प्रस्तुत किया गया है। इकाई के अंक में समाज कार्य व संस्था सम्बन्धित सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल के बारे में भी प्रकाश डाला गया है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

Resource	संसाधन	Recomendation	संस्तुतियां
Enabler	सामर्थ दाता	Objectivity	विषयिकता
Formal	औपचारिक	Lack of Evaluation	मूल्यांकन की कमी
Coordinator	समन्वयक	Red Tappism	लालफीताशाही
Plannar	योजनाकार	Barriers	रूकावटें
Carrier	वृत्ति	Self Determination	स्व–निर्धारण
Vision	दृष्टि	Acceptance	स्वीकृति
Assessment	मूल्यांकन	Opportunities	अवसर

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की दिशा में अभिविन्यास से आप क्या समझते हैं ?
2. किसी एक संस्था के बारे में अवलोकन कर प्रतिवेदन प्रस्तुत कीजिए।
3. सामूहिक सेवा का प्रयोग करते हुए किसी समुदाय में स्वयं सहायता समूह का गठन कर उसकी प्रक्रिया के बारे में लिखिए।
4. सामुदायिक सेवा कार्य का प्रयोग करते हुए किसी समुदाय के नाली की व्यवस्था सुदृण करने हेतु समुदाय के लोगों में जागरूकता सम्बन्धी अभियान चलाये तथा उसकी क्रिया विधि का अभिलेखन करे।

सन्दर्भ सूची

- कुमार, डॉ0 रूपेश, क्षेत्र कार्य, असिस्टेन्स फार स्ट्रेन्थनिगं इन्फ्रास्ट्रेक्चर ऑफ हयूमिनीटिज एण्ड सोशल सांइसेज, समाज कार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 4, 5, 60–83.

➢ समाज कार्य का इतिहास एवं विकास, मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, लर्निंग मटेरियल, रूचि प्रिन्टर्स भोपाल, वर्ष 2003, पेज 89—101.

इकाई – 3

समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियां

इकाई का रूपरेखा

3.0 इकाई का उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियां

3.3 समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू

3.4 पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्य

3.5 दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षण

3.6 सार संक्षेप

3.7 परिभाषिक शब्दाबली

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभ्यास हेतु प्रश्न

3.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप :–

- समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियों की व्याख्या कर सकेगें।
- समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलूओं को वर्णित कर सकेगें।
- पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्यों का वर्णन कर सकेगें।
- दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षण का क्षेत्र स्तर पर उपयोग कर सकेगें।

3.1 परिचय

समाज कार्य विषय में पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य वास्तविक परिस्थितियों में छात्रों को सीखने के लिए सुसाध्य, गतिशील, सुविधाजनक तथा दृढ़ बनाना होता है। यह भी कहा जा सकता है कि समाज कार्य पर्यवेक्षण दो पक्षों की एक शैक्षिक भागीदारी है जिसमें एक पक्ष संकाय पर्यवेक्षक और दूसरा पक्ष छात्र होता है। पर्यवेक्षकों में मानवीय समझ, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अधिक परिपक्व, अनुभवी तथा ज्ञानी होते है वही पर छात्रों को एक व्यवसायिक समाज कार्यकर्ता बनाने के लिए आपेक्षिक ज्ञान, व्यवसायिक निपुणताओं तथा तकनीकियों को प्राप्त कर उनकी पद्धतियों से सिद्धान्त व अभ्यास को निश्चित करते हैं।

3.2 समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियां

समाज कार्य के विशेष सन्दर्भ में पारस्परिक एवं शाब्दिक अवधारणाओं में पर्यवेक्षण का विशेष स्थान है। समाज कार्य में पर्यवेक्षण का सम्बन्ध एक सहायक प्रणाली के रूप में है, जिसमें पर्यवेक्षक छात्रों को कार्य सौंपता है जिससे उनकी योग्यताओं और क्षमताओं का विकास होता है। 'पर्यवेक्षण' शब्द को समाज कार्य विषय के अन्तर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक कार्यशाला 'समाज कार्य शिक्षा में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण' में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है –

'पर्यवेक्षण एक शैक्षिक, प्रशासनिक व सहायता करने की प्रक्रिया है जो पर्यवेक्षक की आवश्यकताओं तथा शैक्षिक कार्यक्रम के उद्देश्यों से ज्ञान व मनोवृत्तियों पर आधारित है, व्यवसायिक निपुणताओं को योग्य बनाना शिक्षण तथा पर्यवेक्षण कार्य को मार्गदर्शित कर उनका विकास करने से सम्बन्धित है।'

'पर्यवेक्षण रचनात्मक तथा सशक्त दोनों प्रकार की प्रक्रिया है और यह पर्यवेक्षक को क्षेत्रीय कार्य को छात्रों को सिखाने के लिए ज्ञान, मनोवृत्तियों निपुणताओं और मार्गदर्शन के परिप्रेक्ष्य में अपना निवेश करने का कार्य करता है।'

समाज कार्य में क्षेत्रकार्य पर्यवेक्षण की दो अवधारणाएं हैं –

1. संकाय सदस्य द्वारा पर्यवेक्षण
2. अभिकरण पर्यवेक्षक द्वारा पर्यवेक्षण

संकाय सदस्य छात्रों को समाज कार्य की तकनीक, अवधारणाऐं, सिद्धान्त, दर्शन, प्रणालियां तथा पद्धतियों को समाज कार्य के सिद्धान्तों को मूल्यों के आधार पर अभ्यास करने का मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। जिससे छात्र इस सिद्धांतों और अवधारणों को स्पष्ट रूप से समझ कर व्यवसायिक सेवाओं के द्वारा सहायता करने का कार्य कर सकें।

अभिकरण पर्यवेक्षक छात्रों को समाज कार्य की पद्धतियों, निपुणताओं, ज्ञान व प्रणालियों की दक्षता का मार्गदर्शन करते है जिससे वे इन तकनिकियों का उपयोग वास्तविक क्षेत्रों में आपेक्षित कल्याण सेवाएं, पीड़ित, निर्धन, असहाय व जरूरतमंदों की सहायता के लिए प्रदान कर सकें।

व्यवसायिक निपुणताओं को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित दो अति आवश्यक घटक है –

1. संकाय पर्यवेक्षक
2. अभिकरण पर्यवेक्षक

पूर्व की अवधारणाओं में सिद्धान्त व अभ्यास एक सहायक रूप से क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण में थे परन्तु बाद में कार्य के परिप्रेक्ष्य में प्रयोगात्मक मार्गदर्शन, प्रासंगिक प्रयोगात्मक कार्य तथा कार्य का पर्यवेक्षण के रूप में परिवर्तित हो गया है।

दूसरे शब्दों में समाज कार्य में पर्यवेक्षण शब्द 'एक ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया है जो एक व्यक्ति या पर्यवेक्षक को अधिक रूप से जानकर तथा वैयक्तिक संरचना द्वारा सक्षम गुण प्रदान कर, व्यवसायिक रूप से

छात्रों को विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक उपकरणों जिनमें पर्यवेक्षीय निर्देश, पर्यवेक्षीय अतःक्रियायें, सम्बन्ध व्यवसायिक निपुणताओं व तकनीकियों से वैयक्तिक और सामूहिक गोष्ठियों से प्रशिक्षित करता है।'

समाज कार्य में क्षेत्रकार्य पर्यवेक्षण का उद्देश्य क्षेत्रकार्य पाठ्यक्रम का विकास करना, सिद्धान्त एवं अभ्यास का एकीकरण करना, तथा एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिसमें छात्र समाज कार्य सिद्धान्त व दर्शन के व्यवहारिक पक्षों को सीख सकें। यह प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा आदर्शो पर निर्भर करता हैं जहां पर उत्तरदायित्वों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इसी कारण समाज कार्य पर्यवेक्षण के निम्नलिखित कार्य समायोजित किए गए हैं –

1. यह एक चेतन सामान्य उद्देश्य है जो छात्रों को उनके इच्छित लक्ष्य प्रदान कर व्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित समाज कार्यकर्ता बनने में सहायता करता है।
2. यह व्यक्तियों के कल्याण तथा सामाजिक सेवाओं के मूल्यों के प्रति सामान्य रूचि प्रदान करता है।
3. अनुभवी व्यक्तियों के समक्ष व्यवसायिक सम्बन्ध के साथ परिक्षित निपुणतायें एवं उद्देश्य जिस छात्र पहचान सकें।
4. पर्यवेक्षकों तथा छात्रों के मध्य अपनी–अपनी भूमिकाओं व उत्तरदायित्वों के प्रति एक पारस्परिक समझदारी व अनुबंध होता है।
5. कार्य को 'कब व क्यों' के आधार पर परिस्थितियों एवं कार्य प्रणालियों का स्पष्टीकरण होता है।
6. एक पारस्परिक संचार जो पर्यवेक्षकों तथा छात्रों के सीखने के संभव स्रोतों को चिन्हित करता है।
7. पर्यवेक्षक में विनोदी स्वभाव, अपने साथियों के प्रति स्नेह तथा छात्रों को व्यवहारिक क्षेत्र की वास्तविकता को समझने की योग्यता होती है।

क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप

संकाय पर्यवेक्षक का प्राथमिक उत्तरदायित्व छात्रों को उनके अपने–अपने क्षेत्रों में सैद्धान्तिक शिक्षा तथा अभ्यास के प्रति रूचि प्रदान करना है। इन प्राथमिक उत्तरदायित्वों को प्राप्त करने के लिए समय–समय पर व्यवसाय, क्षेत्रीय अभिकरण व छात्रों पर आधारित संशोधित क्षेत्र पाठ्यक्रम की संरचना के निर्माण में रूचि लेना है। विकसित क्षेत्र कार्य, व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम के साथ संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को एक ऐसा वातावरण बनाने में सहायता करता है जिसमें व्यवहारिक परिस्थितियों में सिद्धान्त व अभ्यास का एकीकरण हो। पर्यवेक्षक विशेष प्रकार की अवधारणाओं, भावनाओं और मनोवृत्तियों का प्रशिक्षण देता है जिससे वह तीन मुख्य शिक्षण, प्रशासन तथा सहायता की भूमिकाओं का निर्वाहन करता है। क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण के अग्रलिखित प्रारूप है –

1. अभिमुखीकरण प्रारूप

इस प्रकार के क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण में छात्रों को क्षेत्रकार्य कार्यक्रमों, समाज कार्य क्षेत्र की प्रक्रियाओं, समाज कार्य के क्षेत्र का सामान्य उद्देश्य तथा छात्रों की सामान्य अपेक्षाओं के बारे में व्याख्या प्रदान करना।

2. परिचय प्रशिक्षण प्रारूप

इस प्रारूप के अन्तर्गत संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को अभिकरण या क्षेत्र से परिचय करवाता है। इसके साथ ही वह सेवार्थी प्रणाली में छात्रों की भूमिका तथा सेवार्थी प्रणाली की प्रकृति के बारे में भी बताता है। पर्यवेक्षक छात्रों को विभिन्न स्तर पर व्यवसायिक सम्बन्ध स्थापित करने का मार्ग दर्शन प्रदान करता है और अभिकरण पर्यवेक्षक के साथ व्यवसायिक सम्बन्ध बनाकर अभिकरण के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करता है। पर्यवेक्षक छात्रों को प्रतिवेदन तैयार कराने में मार्गदर्शन कराता है।

3. प्रयोगात्मक क्रियान्वयन प्रारूप

प्रयोगात्मक क्रियान्वयन प्रारूप में संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को आवश्यकताओं की पहचान करना, संसाधनों में प्रबन्ध का क्रमिक विकास करना, संकायों को दूर करना, अनुभवों को बांटना, जागरूकता का विकास करने में सहायता करता है।

4. क्षेत्र कार्य मूल्यांकन प्रारूप

मूल्यांकन प्रारूप के अन्तर्गत संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को अपने अनुभवों के आधार पर मूल्यांकन की विधियों का प्रतिपादन करना तथा उन्हें मूल्यांकन की प्रणाली तथा प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है।

क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण की पद्धतियां

क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण अपने प्रणाली पर आधारित तथा सम्बन्धित है जो पर्यवेक्षक की कार्य पद्धति में शुरू से अंत तक फैली हुई है। जो कार्यक्रम के आरंभ से लेकर प्रशिक्षण के अंत तक होती है। पर्यवेक्षक छात्रों में निपुणताओं को सफलतापूर्वक विकास करने में प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार के उठाये गये कदम तथा पद्धतियां समाज कार्य में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होती है। क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण में निम्नलिखित पद्धतियों का मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है –

1. अध्यापक तथा छात्रों का वैयक्तिक विचार विमर्श ।
2. अध्यापक तथा छात्रों का समूह सम्मेलन।
3. छात्रों की क्षेत्र कार्य विचार गोष्ठी।
4. मौके पर पर्यवेक्षकों द्वारा दिये गये निर्देश।

5.3 समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू

समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक पहलू

समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक पहलू का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है वास्तव में किसी भी संस्था के प्रशासनिक पहलू के बिना लक्ष्यों की पूर्ति नही की जा सकती। क्योंकि प्रशासन किसी भी संस्था का एक अभिन्न अंग होता है। इस हेतु संस्था में प्रशासनिक पहूलियों की देख रेख हेतु यह आवश्यक है कि पर्यवेक्षक अपनी भूमिकाओं का निर्वहान करते हुये समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का प्रशासन देखें तथा समाज कार्य विद्यार्थियों को मार्ग दर्शन करे। प्रशासनिक पहलू के अग्रलिखित बिन्दू है –

1. संस्थानों के अधिकारियों/कर्मचारियों के साथ अत:क्रिया

समाज कार्य पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे जिन संस्थानों में समाज कार्य विद्यार्थियों को भेजते हैं उस संस्थान के अधिकारियों/कर्मचारियों के साथ अत:क्रिया करते रहे जिससे वे समाज कार्य विद्यार्थियों के उपलब्धि तथा सीखने की प्रक्रिया को जान सके। यदि किसी भी संस्थान को समाज कार्य विद्यार्थियों के प्रशिक्षण से कोई समस्या उत्पन्न हो रही है तो उस दशा में पर्यवेक्षक उपयुक्त कदम उठाये तथा समस्या को दूर करें। यदि किसी समाजकारी विद्यार्थी के कारण कोई समस्या उत्पन्न होती है तो पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे समाजकार्य के प्रशिक्षार्थी से बात कर समस्या को दूर करें।

किसी भी संस्था में प्रशिक्षण हेतु भेजे गए विद्यार्थियों की अनुपस्थिति असहयोग तथा कोई विवाद होने की दशा में पर्यवेक्षकों को चाहिए कि उचित कदम उठाकर इन सभी समस्याओं को दूर करें। यदि कोई शिक्षार्थी विघटनकारी ब्यौहार प्रस्तुत करता है तो उसे उचित परामर्श एवं चेतावनी देकर उसके व्यवहार में एक परिवर्तन लाये। इस प्रकार संस्था के साथ निश्चित अत:क्रिया समाज कार्य अभ्यर्थियों के विकास एवं उनके द्वारा किये जा रहे क्रियाकलापों की प्रति पुष्टि समय–समय पर पर्यवेक्षकों को मिलती रहती है।

2. पर्यवेक्षकों के लिए कार्य

कोई भी समाज कार्य अभ्यर्थी जब दूरस्थ शिक्षा में नामांकन लेता है तो उसका प्रथम उद्देश्य व्यवसायिक कार्यकर्ता बनना होता है। अत: पर्यवेक्षकों को जब भी कोई योजना बनानी हो तो समाज कार्य अभ्यर्थी के पूर्व इतिहास को देखते हुए योजना बनानी चाहिए क्योंकि कुछ अभ्यर्थी कही सेवारत होते है और कुछ अविवाहित होते है। जबकि वे दूर से परामर्श सत्र और समूह सेमिनार में भाग लेने आते है। इन स्थितियों के अनुसार ही कार्य योजना बनानी चाहिए जो कि सफल हो सके।

3. आन्तरिक गोष्ठी

स्माज कार्य पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे प्रशासनिक पहलू के अन्तर्गत समय–समय पर समाज कार्य अभ्यर्थियों के साथ आन्तरिक गोष्ठी पर उनकी समस्याओं पर विचार करे तथा उनके द्वारा चिन्हित समस्याओं को दूर करें।

4. वैयक्तिक संगोष्ठी

समाज कार्य पर्यवेक्षकों को प्रशासनिक पहलू के अन्तर्गत वैयक्तिक संगोष्ठी का भी आचरण करना चाहिए तथा समय–समय पर समाज कार्य अभ्यर्थी की वैयक्तिक समस्याओं से सम्बन्धित पहलुओं पर विचार कर उन्हें दूर करने का विचार करना चाहिए।

5. भविष्य योजना

समाज कार्य पर्यवेक्षकों को प्रशासनिक पहलू के अन्तर्गत समाज कार्य अभ्यर्थी से भविष्य के क्रिया कलाप हेतु योजनाओं के बारे में पूछना चाहिए। तथा उन्हीं से क्रियाकलापों की रूपरेखा तैयार करवानी चाहिए।

समाज कार्य पर्यवेक्षण में पर्यावरणीय पहलू

समाज कार्य पर्यवेक्षण में पर्यावरणीय पहलू का स्थान महत्वपूर्ण है। चूंकि किसी भी संस्थान का विकास उसके पर्यावरण पर निर्भर करता है। यदि संस्थान का पर्यावरण अच्छा एवं सुग्राह्य है तो समाज कार्य अभ्यर्थियों को सीखने में आसानी होती है। समाज कार्य अभ्यास में संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि समाज कार्य के सभी प्रविधियों का व्यवहारिक ज्ञान इन्हीं संस्थाओं द्वारा प्रदान किया जाता है। अतः समाज कार्य पर्यवेक्षक को चाहिए कि वे समाज कार्य अभ्यर्थियों को किसी भी संस्थान में भेजने से पहले उस संस्था के पर्यावरणीय पहलू को जांच ले यदि संस्था का पर्यावरण अच्छा हो तो ही समाज कार्य अभ्यर्थियों को प्रशिक्षण हेतु भेजे।

3.4 पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्य

सहायक प्रकार्य एक द्वितीयक भूमि के रूप में होता है। लेकिन यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रकार है। मनोवैज्ञानिक आवलम्बन क्षेत्र कार्य के प्रारम्भिक दिनों में समाज कार्य अभ्यर्थियों हेतु बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। चूंकि समाज कार्य अभ्यर्थी समाज कार्य अभ्यास में अभी नये–नये प्रवेश करते है। तो उनके लिये संस्थाओं की क्रियाकला, संस्थाओं के प्रशासन, संस्थाओं के उद्देश्य इत्यादि बहुत ही उलझन में डाल देते है। दूसरी तरफ अपने क्षेत्र कार्य अभ्यास हेतु वे चिन्तित हो जाते है। इसी समय पर्यवेक्षण में समाज कार्य अभ्यर्थियों के लिये सहायक प्रकार की आवश्यकता होती है और यह सहायक प्रकार्य पर्यवेक्षकों द्वारा अभ्यर्थियों को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रदान किया जाता है जिसमें अभ्यर्थियों को यह बताया जाता है कि किसी भी क्षेत्र कार्य करने से पूर्व उसकी कार्य योजना अवश्य बनाये तथा पूरी योजना बनाकर कार्य करे जिससे कि उनके द्वारा चिनहित कार्य आसानी से हो जायेगें। सहायक प्रकार में पर्यवेक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य अभ्यर्थियों के लिये एक पथ प्रदर्शक तथा एक मूल्यांकन कर्ता के रूप में प्रस्तुत हो। चूंकि समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास ने समाज कार्य अभ्यर्थियों हेतु नया होता है। अतः पर्यवेक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य अभ्यास के सभी पहलुयों की उचित व्याख्या कर समाज कार्य अभ्यर्थियों के सामने प्रस्तुत करें। समाज कार्य पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे अग्रलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखे –

- समाज कार्य अभ्यर्थियों के वैयक्तिक मुद्दों पर विशेष ध्यान न दें।
- गोष्ठी का आयोजन सार्वजनिक स्थानों अथवा घरों पर न करें – चूंकि समाज कार्य अभ्यास पर्यवेक्षक द्वारा पर्यवेक्षण किया जाता है। तो उससे अपेक्षा की जाती है कि गोष्ठी का आयोजन अध्ययन केन्द्रों पर ही करें।
- बिना तैयारी के कोई गोष्ठी का आयोजन न करें।

3.5 दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षण

दूरस्थ शिक्षा आज के परिप्रेक्ष्य में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। ऐसा इसलिए कि समाज के वे लोग जो किन्ही कारण वश शिक्षा ग्रहण नहीं कर पा रहे तथा विभिन्न व्यवसायिक कार्यो में

संलग्न है। वे लोग दूरस्थ शिक्षा पद्धति का लाभ उठाकर विभिन्न विषयों का ज्ञान अर्जित कर रहे है तथा साथ ही साथ अपना कार्य भी कर रहे है। समाज कार्य में दूरस्थ शिक्षा पद्वति एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम है। क्योंकि समाज कार्य अभ्यर्थियों को समाज में कार्य करने हेतु एक उचित अवसर प्रदान करती है। अतः समाज कार्य दूरस्थ शिक्षा पद्वति में यह आवश्यक है कि क्षेत्र कार्य अभ्यास का उचित रूप से पर्यवेक्षण किया जाए। वास्तव में समाज कार्य के क्षेत्र कार्य अभ्यास के अग्रलिखित उद्देश्य है –

1. छात्रों को विभिन्न क्षेत्र की वास्तविक परिस्थितियों में समाज कार्य तकनीकियों के अध्ययन का अवसर देना तथा व्यवसायिक शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करना है।
2. समाज कार्य के भिन्न क्षेत्रों में समाज कार्य के दर्शन तथा सिद्धान्तों के शिक्षण के व्यवहारिक पक्षों के सीखने की प्रक्रिया को गतिमान तथा व्यवस्थित करना है।
3. समाज कार्य अभ्यास में निपुणताओं, तकनीकियों तथा सीखने के लक्ष्य को प्राप्ति करने के लिए सिद्धान्तों एवं दर्शन का व्यवहारिक उपयोग को सुसाध्य बनाना है।
4. छात्रों में व्यवहारिक ज्ञान के गुणों में वृद्धि करना है जिससे वे विभिन्न स्थितियों में मानवीय व्यवहार की कला का विकास कर सकें।
5. छात्रों को व्यवसायिक निपुणताओं को प्राप्त करने तथा उनमें सामाजिक मनोवृत्तियों का विकास करने में सहायता प्रदान करना।
6. छात्रों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके गुणों और अवगुणों के आंकलन करने मे सहायता करना।
7. छात्रों को प्रभावकारी समाज कार्य अभ्यास में सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य के विकास में सहायता करना।
8. छात्रों को समाज कार्य व्यवसाय के प्रति उनकी रूचियों के विकास में सहायता करनां
9. छात्रों को समाज कार्य के क्षेत्र में अपनी जीविका का निर्माण तथा उन्हें भली–भांति व्यवहारिक ज्ञान को प्राप्त करने में सहायता करना।
10. क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण के विशिष्ट उद्देश्य क्षेत्र कार्य कार्यक्रमों को समायोजित करते है तथा विभिन्न पर्यवेक्षीय कार्यो के माध्यम से क्षेत्र कार्य प्रक्रिया को ठीक प्रकार से बना कर रखने का कार्य करते हैं।

वास्तव में समाज कार्य के क्षेत्राभ्यास का पर्यवेक्षण दूरस्थ शिक्षा में बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि समाज कार्य अभ्यर्थी संस्थागत छात्र के रूप में नही होते है और वे हमेशा पर्यवेक्षकों के पास भी नही आ पाते है। अतः समाज कार्य के क्षेत्र अभ्यास हेतु निम्नलिखित बिन्दु पर्यवेक्षकों हेतु दृष्टिव्य है –

1. अभिमुखीकरण विजिट का आयोजन कर क्षेत्र कार्य अभ्यर्थियों से प्रतिवेदन लिखवाना एवं उचित सलाह देना।
2. स्थानन प्रक्रिया के तहत समाज कार्य के अभ्यर्थियों को स्थानित कर संस्था के अधिकारियों से मिलवाना तथा संस्था की क्रिया विधियों का अभ्यर्थियों द्वारा अभिलेखन करा कर डायरी बनवाना।

3. संस्था सेवार्थी सम्बन्धों को मृदु बनाने हेतु अभ्यर्थियों को उचित सलाह देना तथा समाज कार्य के सैद्धान्तिक पहलुओं को अमल में लाने के लिए प्रेरित करना।
4. अन्य कार्य हेतु उत्तरदायित्वों को अभ्यर्थियों को प्रदान करना– समाज कार्य अभ्यर्थियों को समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास तथा सैद्धान्तिक अभ्यास हेतु कार्यो का वितरण करना चाहिए तथा उनके द्वारा किये गये कार्यो का मूल्यांकन कर उचित निर्देश देकर उन्हें विश्वविद्यालय को प्रेषित करना चाहिए।
5. प्रशासनिक कार्य सौपना – दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत पर्यवेक्षण में समाज कार्य अभ्यर्थियों के लिये प्रशासनिक कार्य सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री एकत्र करने हेतु पर्यवेक्षक को चाहिए कि अभ्यर्थियों से तथ्यएकत्रित करवायें व उन्हें अभिलिखित करवायें।

दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य अभ्यास के लिये पर्यवेक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अग्रलिखित कार्यो का सम्पादन उत्तरदायित्व पूर्वक वहन करेगें –

अधीक्षकीय परामर्श

अधीक्षकीय परामर्श एक प्रकार की संरचना है जिसमें दोनों पक्ष विद्यमान रहते है – अधीक्षक तथा कार्यकर्ता। अधीक्षण के माध्यम से अधीक्षकीय परामर्श कार्यकर्ता को कान्फरेन्स का अर्थ समझाता है। जैसे–जैसे अधीक्षकीय प्रक्रिया आगे बढ़ती है, अधीक्षक उसका अर्थ कार्यकर्ता को बताता जाता है। कान्फ्रेन्स के माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ कार्य करने की प्रविधियों को सीखता है तथा वैयक्तिक सेवा कार्य के सिद्धान्तों एवं ढंगों को अपने व्यवहार में लाता है। वह कान्फ्रेन्स में अधीक्षक के सम्मुख अपनी कठिनाइयों, परेशानियों एवं समस्याओं को प्रस्तुत करता है। अधीक्षक उन पर गहनता से विचार करता है और वह कार्यकर्ता की सहायता यथा स्थान करता है। वह कार्यकर्ता के ज्ञान व निपुणता के आधार पर पहले वार्तालाप करता है तथा मौखिक क्रियाओं द्वारा ज्ञान व निपुणता का विकास करने का प्रयत्न करता है।

अधीक्षण द्वारा कार्यकर्ता विद्यार्थियों को सिखाता है कि उसे किस प्रकार का व्यवहार सेवार्थी के साथ करना चाहिए तथा किन–किन पहलुओं पर अपना ध्यान आकृष्ट करना चाहिए।

अधीक्षक का प्रारम्भिक चरण

प्रारम्भिक चरण का प्रारम्भ पहली कान्फरेन्स से शुरू होता है। सुपरबाइजर संस्था की जानकारी देता है, उसके कार्यो, उद्‌देश्यों, सुविधाओं आदि के विषय में बताता है। सुपरबाइजर विद्यार्थी द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है तथा अपने उत्तर से पूर्ण आश्वस्त करता है। विद्यार्थी को कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना बहुत कठिन प्रतीत होता है और चिन्ता घेर लेती है। कुछ प्रश्नों को वह इसी चिन्ता के कारण पूछता भी नहीं है। सुपरबाइजर इन प्रश्नों का भी उत्तर देता है तथा हर स्थिति से अवगत कराने का प्रयास करता है जैसे किस प्रकार आप जाकर संस्था में अधीक्षक से मिलेंगे अपनी भूमिका बतायेंगे, किस प्रकार संस्था का इतिहास जानेंगे इत्यादि।

अधीक्षण नये कार्यकर्ता के लिए

सुपरवाइजर जो इस पद पर नियुक्त होता है उसको सुपरविजन का कार्य प्रारम्भ में कठिन सा लगता है। उसके मन में चिन्ता बनी रहती है कि यह किस प्रकार विद्यार्थी को सुपरवाइजर करेगा। उसकी अपनी

क्षमता तथा योग्यता पर भी शंका होती है तथा अनुभव की कमी के कारण व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना कठिन अनुभव होता है। अतः नये कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है उसे वैयक्तिक सेवा कार्य का पूर्ण सैद्धांतिक ज्ञान हो तथा व्यावहारिक उपयोगिता का अनुभव हो। वैयक्तिक कार्य उसे समाज कार्य के विषय में महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी अवश्य हो। दूसरी विशेषता उसमें पढ़ाने की रूचि होनी चाहिए। बहुत से कार्यकर्ता व्यावहारिक कार्य अच्छी प्रकार से करने में समर्थ होते है परन्तु पढ़ाने को उचित ढंग से नहीं कर पाते हैं। वे अपने ज्ञान को दूसरे तक पहुंचाने में उचित साधन का उपयोग नहीं कर पाते हैं। अपनी बात को समझा नहीं पाते है। इससे सीखने वाले को निराशा होती है। उसकी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी बात को समझा सके, विद्यार्थी की रूचि के अनुसार विषय का चुनाव कर सके, नये विचारों को समझने योग्य बना सके, विद्यार्थियों को अपनी शैली के अनुसार योग्यता विकसित करने में सहायता कर सके एवं उन्हें उत्साहित कर सके।

कार्यकर्ता को वैयक्तिक सेवा कार्य का ज्ञान प्रदान करना

वैयक्तिक सेवा कार्य का ज्ञान अधीक्षण के लिए प्रति आवश्यक है। सुपरवाइजर इस ज्ञान का विकास दैनिक अनुभव से करता है। वह इस ज्ञान का उपयोग अपने कार्यो में करता है। एक विद्यार्थी के लिए अथवा एक नये कार्यकर्ता के लिए वैयक्तिक सेवा कार्य के सभी पक्षों या कुछ अंशों का ज्ञान प्रदान करना आवश्यक होता है। अनुभव कार्यकर्ता केवल विशिष्ट समस्याओं के विषय में ज्ञान चाहता है। संस्था के प्रशासन के लिए भी वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता होती है। परन्तु यह ज्ञान स्वयं का होना चाहिए। सुपरवाइजर वैयक्तिक सेवा कार्य का उपयोग कार्यकर्ता द्वारा करता है। अतः उसका उत्तरदायित्व है कि वह कार्यकर्ता में वैयक्तिक सेवा कार्य ज्ञान का विकास करें जिससे वह अपना उत्तरदायित्व निभा सके। परन्तु सुपरवाइजर को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह स्वयं सेवार्थी की सहायता कार्यकर्ता के माध्यम से न करने लगे। यह कठिन कार्य होता है क्योंकि वैयक्तिक कार्यकर्ता के रूप में वह सेवार्थी की सहायता करता है परन्तु सुपरवाइजर के रूप में वह कार्यकर्ता की सहायता करता है परन्तु सहायता का विषय सेवार्थी ही होता है। वह अभिलेखों के माध्यम से स्वयं अनुमान लगाता है कि सेवार्थी की किस प्रकार से उत्तम सहायता मिल सकती है। लेकिन सुपरवाइजर एक भिन्न व्यक्ति होता है। उसकी अपनी विशेषताएं एवं गुण होते है। वह कार्यकर्ता को पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। अन्तिम उत्तरदायित्व कर्ता का ही होता है कि वह इस ज्ञान को जैसे चाहे उपयोग करे।

सम्बन्ध का उपयोग

सम्बन्ध के माध्यम से ही सुपरवाइजर अपनी निपुणताओं को विकसित करता है और सम्बन्ध को ही अपने सुपरविजन कार्य में उपयोग करता है। सम्बन्ध के माध्यम से ही कार्यकर्ता में निपुणताओं का विकास करता है। उसके कार्यकर्ता से सम्बन्ध सेवार्थी के सम्बन्ध से भिन्न होते है। लेकिन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लगभग उन्हीं निपुणताओं का उपयोग होता है। सेवार्थी से सम्बन्ध व्यावसायिक तथा उपचारात्मक होता है। कार्यकर्ता से भी सम्बन्ध व्यावसायिक होता है। कार्यकर्ता तथा सुपरवाइजर सम्बन्ध के द्वारा कुछ उत्तरदायित्वों को पूरा करते है। परन्तु वे अपनी अपनी भूमिकाओं के प्रति सजग रहते है। सुपरवाइजर के लिए सम्बन्ध का अर्थ कार्यकर्ता को प्रोत्साहन प्रदान करना जिससे अपने उत्तरदायित्व पूरा कर सके। प्रारम्भ से ही कार्यकर्ता को सेवार्थी की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी माना जाता है। सुपरवाइजर सम्बन्ध का उपयोग

कार्यकर्ता को अपनी भूमिका पूरी करने में करता है। शक्ति भी सम्बन्ध का एक तत्व है, एक तत्व सहायता करता है तथा एक तत्व पारस्परिक आदर एवं सेवार्थी से सम्बन्ध है। सम्बन्ध का कौन सा तत्व उपयोग में लाया जायेगा कार्यकर्ता की आवश्यकता तथा व्यक्तित्व पर निर्भर होता है। संस्था की संरचना तथा उद्देश्य भी सम्बन्ध के रूप को निश्चित करते हैं।

समस्या समाधान प्रक्रिया का उपयोग

सुपरवाइजर अपनी कार्य विधि में पर्लमैन द्वारा निर्मित प्रारूप समस्या समाधान का उपयोग करता है। वह थोड़ा बहुत परिवर्तन करके चारों 'पी' का उपयोग करता है। व्यक्ति कार्यकर्ता होता है। अन्य कार्यो के अतिरिक्त सुपरवाइजर का कार्य अधीक्षण करना मुख्य कार्य है। उसे सेवार्थी की ही भांति कार्यकर्ता के विषय में भी ज्ञान प्राप्त करना होता है। वह कार्यकर्ता के तरीकों, विधियों तथा शक्तियों से अवगत होता है। वह व्यवहार के कारणों का भी पता लगाता है। सुपरवाइजर समस्याओं को समाधान करना कार्यकर्ता को सिखाता है। उने अनेक अन्य समस्याओं का सामना करना होता है। वह इन सभी समस्याओं में वही प्रक्रिया अपनाता है जैसे समस्या का निरूपण, मूल्यांकन तथा अपनी समझ से समाधान का प्रयास।

निदान का अधीक्षण में उपयोग

जब निदान का उपयोग अधीक्षण में किया जाता है तो वैयक्तिक कर्ता सुपरवाइजर की भूमिका में होता है। निदान में सम्प्रेरणा, क्षमता तथा अवसर में तीन महत्वपूर्ण कारक होते है। जब कार्यकर्ता को सुपरवाइज किया जाता है तो उसका उद्देश्य उसे कार्य पूरा करने के लिए प्रेरित करना तथा व्यावसायिक विकास करना है। वह उसकी क्षमता का अन्दाजा लगाता है तथा सेवार्थी की भी स्थिति से अवगत होता है। अन्त में वह उन अवसरों की खोज करता है जिनसे कार्यकर्ता के व्यावसायिक ज्ञान में वृद्धि की जा सकती हैं।

प्रथम साक्षात्कार की तैयारी

पहली कान्फ्रेन्स में सुपरवाइजर तथा विद्यार्थी दोनों एक दूसरे की क्षमताओं व योग्यताओं को समझने का प्रयास करते है तथा सम्बन्ध की आधार शिला रखते है। सुपरवाइजर विद्यार्थी के व्यक्तित्व से परिचित होता है। उसकी रूचियों, कार्य के ढंगों, क्षमताओं, समझने की योग्यता, कार्य में रूचि आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। विद्यार्थी भी सुपरवाइजर की विशेषताओं से परिचित होता है।

संस्था में स्यानन

विद्यार्थी संस्था जाने से पहले विशेष ज्ञान चाहता है। वह संस्था में जाकर किस प्रकार वैयक्तिक कार्य को व्यवहार में लायेगा जानने का प्रयत्न करता है। वह संस्था की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक तथा व्यावसायिक स्थिति का ज्ञान चाहता है। उसको यह ज्ञान सुपरवाइजर द्वारा दिया जाता है। संस्था की संरचना, कार्य, उपलबध सेवाऐ, स्रोत आदि बताता है। साक्षात्कार की विधि का वर्णन करता है। सम्बन्धों को किस प्रकार स्थापित करते हैं तथा उसमें प्रगाढ़ता लाते हैं सुपरवाइजर बताता है। अभिलेखन की भी जानकारी देता है। विद्यार्थी संस्था की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करता है। अधीक्षकीय कान्फ्रेन्स के द्वारा यह ज्ञान विद्यार्थी को प्रदान किया जाता है।

सुपरवाइजर तथा विद्यार्थी की भूमिकाओं की स्पष्टता

प्रारम्भिक चरण में सुपरवाइजर के अनेक कार्य होते हैं। यद्यपि समय तथा स्थिति के अनुसार इनमें भिन्नता भी होती है। उसका प्रमुख कार्य विद्यार्थी में आवश्यक योग्यता एवं ज्ञान विकसित करना जिससे वह संस्था में कार्य कर सके। वह अपनी भूमिका भी स्पष्ट करता है।

अभिलेखन का प्रारम्भ

प्रक्रियात्मक अभिलेखन सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में महत्वपूर्ण होते है। विद्यार्थी से ऐसे ही अभिलेखों को तैयार करने के लिए कहा जाता है। इसमें केस का इतिहास विस्तृत रूप में लिखा जाता है तथा साक्षात्कार के प्रवाह का रूप भी देखने को मिलता है। यह सुपरवाइजर के लिए महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे उसे विद्यार्थी द्वारा केस का साक्षात्कार की तस्वीर सामने आती है। साथ ही साथ विद्यार्थी को भी कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता मिलती है। सुपरवाइजर इन्हीं अभिलेखों की सहायता से विद्यार्थी की सहायता करता है। वह अभिलेख का विषय बताता है तथा निर्देशन देता है। परन्तु विद्यार्थी को पहले अभिलेख में पूरी स्वतन्त्रता होती है िकवह जिस प्रकार चाहे लिखे परन्तु केस की तस्वीर स्पष्ट होनी चाहिए। यदि शैली उचित नही होती है तो अन्य केसों में निर्देशन दे दिया जाता है, सुधार के तरीके बता दिये जाते है। सुपरवाइजर पहले केस में विद्यार्थी को स्वयं कमेन्ट लिखने के लिए कहता है तथा भविष्य के नियोजन की बातचीत करता है। अभिलेखों की संरचना में लचीलापन होता है परन्तु विद्यार्थी को इससे कार्य का तात्पर्य अवश्य स्पष्ट होता है। सुपरवाइजर अभिलेखन का समय भी निर्धारित करता है।

अधीक्षण का विकास

औपचारिक तथा संरचित अधीक्षण का प्रारम्भ प्रशासकीय कार्यो के रूप में हुआ। अधीक्षक का कार्य कर्मचारियों के कार्यो को देखना तथा उन पर दृष्टि रखना सम्मिलित था जिससे संस्था का कार्य सुचारू रूप से हो सके। अधीक्षक को प्रत्येक कर्मचारी के कार्य सम्पादन, उनके कार्य भार, कानूनों तथा नियमों के पालन पर दृष्टि रखने का कार्य सौंपा गया। समस्याएं उत्पन्न करने वाले कर्मचारियों में सुधार लाने का कार्य भी दिया गया। कुछ समय पश्चात् वैयक्तिक रूप से व्यक्ति के विषय में अध्ययन, निदान तथा उपचार का भी कार्य भार उसे सौंपा गया। यहीं से उसने शिक्षण एवं व्यावसायिक पद्धति के विकास के लिए विकास कार्य करना प्रारम्भ किया। सन् 1920 से अधीक्षक के उत्तरदायित्वों को प्रशासनिक के साथ ही साथ शैक्षिक भी समझा जाने लगा। इन्हीं दिनों समाज कार्य का विकास हुआ और समाज कार्य में फील्ड वर्क को एक आवश्कय अंग समझा गया।

3.6 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य पर्यवेक्षण के बारे में प्रकाश डाला गया है साथ ही साथ पर्यवेक्षण के प्रारूपों और पद्धतियों के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू महत्वपूर्ण होते हैं। अतः इस इकाई में समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू को अलग–अलग बिन्दुओं के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। इसी इकाई में पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्यो के बारे में चर्चा की गयी तथा उन सभी सहायक कार्यो में प्रकाश डाला गया है। इकाई के

अन्त में दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र का अभ्यास पर्यवेक्षण के बारे में लिखा गया है तथा बताया गया है कि दूरस्थ शिक्षा पद्धति में समाज कार्य पर्यवेक्षक अभ्यर्थियों से क्षेत्र कार्य अभ्यास कैसे करवाये।

3.7 परिभाषिक शब्दाबली

Supervision	पर्यवेक्षण	Support	आवलम्बन
Model	प्रारूप	Development of Supervision	अधीक्षण का विकास
Methods	पद्धतियां	Supervisory Support	पर्यवेक्षणीय आलम्बन
Administrative Supervision	प्रशासनिक पर्यवेक्षण	Counselling	परामर्श
Environmental	पर्यावरणीय	Team Work	मिल जुलकर कार्य करना
Supportive Function	स्हायक प्रकार्य	Recording	अभिलेखन
Placement	स्थानन	Diagnosis	थ्नदान
Psychological	मनोवैज्ञानिक	Initial	प्रारम्भिक

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार, डॉ0 रूपेश, क्षेत्रकार्य, समाज कार्य विभाग, में विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत मानविकी एवं समाज विज्ञानों के अवस्थापना से सम्बन्धित तथ्य, वर्ष 2004, पेज 04–09.
2. मिश्र, डॉ0 प्रयाग दीन, सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, वर्ष 1997, पेज 412–418.

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य पर्यवेक्षण से आप क्या समझते हैं ?
2. समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूपों की चर्चा कीजिए ?
3. समाज कार्य पर्यवेक्षण की पद्धतियां कौन–कौन सी है ?
4. समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक पहलू पर एक लेख लिखिए ?
5. समाज कार्य पर्यवेक्षण में पर्यावरणीय पहलू से आप क्या समझते हैं ?

इकाई – 4

समाज कार्य क्षेत्र कार्य अभ्यास में व्यक्ति, परिवार, समुदाय व संगठन

इकाई का रूपरेखा

4.0 इकाई का उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति

4.2.1 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में परिवार

4.2.2 समाज कार्य अभ्यास में समुदाय

4.2.3 समाज कार्य अभ्यास में संगठन

4.3 चिकित्सा

4.3.1 मनोचिकित्सा

4.3.2 बाल देखभाल

4.4 शिक्षा एवं अनुसंधान

4.5 सुधारात्मक सेवायें

4.6 निगमित क्षेत्र

4.6.1 दाता संस्थायें

4.6.2 गैर सरकारी संगठन

4.7 सार संक्षेप

4.8 परिभाषिक शब्दाबली

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभ्यास हेतु प्रश्न

4.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित के बारे में ज्ञान प्राप्त करेगें –

1. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति क्या होता है तथा उससे सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा कार्य किस तरह एकत्रित किया जाता है।
2. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में परिवार क्या होता है तथा समाज कार्य के किस प्रविधि द्वारा परिवार की समस्यायें दूर की जाती है।
3. समाज कार्य अभ्यास में समुदाय क्या होता है तथा समुदाय का अध्ययन कैसे किया जाता है।

4. समाज कार्य अभ्यास में संगठन क्या होता है तथा संगठन से संबन्धित तथ्य कैसे एकत्रित किये जाते हैं।
5. चिकित्सा क्या होती है?
6. मनोचिकित्सा में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
7. बाल देखभाल से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
8. शिक्षा एवं अनुसंधान से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में लिख सकेगें।
9. सुधारात्मक सेवाओं के बारे में जान सकेगें।
10. निगमित क्षेत्र के बारे में लिख सकेगें।
11. दाता संस्थाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
12. गैर सरकारी संगठन के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

4.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति, परिवार, समुदाय व संगठन के बारे में जानकारी दी गई है। जो अलग–अलग बिन्दुओं के माध्यम से है। जिनका वर्णन हम विभिन्न शीर्षकों के माध्यम से करेगें।

4.2 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति

जो व्यक्ति मनोसामाजिक तथा सांवेगिक सहायता के लिए संस्था में आता है वह व्यक्ति चाहे पुरूष हो, स्त्री हो अथवा बालक हो, सेवार्थी कहा जाता है। यद्यपि सामाजिक संस्था में जाने वाला सेवार्थी अन्य व्यक्तियों के समान ही होता है। उसकी भाषा तथा संस्कृति प्रायः अन्य आने वाले व्यक्तियों (सेवार्थियों) के समान होती है परन्तु कुछ भिन्नताएं भी होती है। भिन्नताएं उस समय परिलक्षित होती है जब हम सेवार्थी को एक व्यक्ति के रूप में देखने का प्रयत्न करते हैं। उसका व्यक्तित्व भिन्न होता है, उसके सांवेगिक तथा मानसिक गुण भिन्न होते है। परन्तु प्रत्येक स्थिति में वह पूर्ण अन्तःक्रिया करता है। समस्या उसकी चाहे सामाजिक हो, मनोवैज्ञानिक हो अथवा सांवेगिक हो वह प्रत्येक स्थिति में शारीरिक मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक विशेषताओं के साथ प्रतिक्रिया करता है। शारीरिक, भौतिक, सामाजिक, अनुभव प्रत्यक्षीकरण, आकांक्षाऐं, इच्छाऐं आदि संयुक्त होकर व्यक्ति को प्रभावित करती है। यह शारीरिक मनोवैज्ञानिक–सामाजिक विगत वर्तमान तथा भविष्य का चक्र व्यक्ति के साथ सभी स्थितियों में रहता है और इसके प्रभाव से पृथक नहीं हो सकता है।

वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी के सम्बन्ध में जो जानकारी चाहता है उसका सम्बन्ध उसकी समस्या से अधिक होता है। वह उन तथ्यों की खोज करता है जिनसे समस्या समझने, उसके निदान करने तथा समाधान करने में सहायता मिलती है। समस्या की प्रकृति ही निश्चित करती है कि किस प्रकार से ज्ञान की,

कार्यकर्ता को आवश्यकता है तथा किस प्रकार सेवार्थी सामाजिक अनुकूलन पुनः प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

वैयक्तिक अध्ययन

1. **समस्या का गहन अध्ययन** : अध्ययन का केन्द्र एक समस्या होती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता उस समस्या से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन करता है। उसके स्रोत का पता लगाता है, प्रभावकारी कारकों का अवलोकन करता है, समस्या के स्वरूप का निर्धारण करता है तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है।
2. **व्यक्तिपरक पहलुओं का अध्ययन** : सेवार्थी की भावनाओं, धारणाओं तथा व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। व्यक्ति की समस्त विशेषताओं का अध्ययन वैयक्तिक कार्य में आवश्यक समझा जाता है।
3. **वैयक्तिक मान्यता** : वैयक्तिक अध्ययन में कार्यकर्ता सामान्यीकरण सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करता है। वह प्रत्येक व्यक्ति की समस्या व परिस्थिति को अनोखा देखता है तथा उसी सन्दर्भ में अध्ययन भी करता है।
4. **सर्वांगीण अध्ययन** : सेवार्थी के किसी एक पहलू का अध्ययन कर पूर्ण स्थिति का अध्ययन किया जाता है। वैयक्तिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, सांवेगिक, विकासात्मक आदि सभी विशेषताओं का अध्ययन सम्मिलित होता है।

वैयक्तिक अध्ययन में सूचना के स्रोत : वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सूचना प्राप्ति के निम्नलिखित स्रोत है :

1. **सेवार्थी स्वयं** : सेवार्थी का साक्षात्कार किया जाता है जिससे समस्या तथा अन्य महत्वपूर्ण कारकों का ज्ञान होता है। सेवाथी से जीवन सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।
2. **व्यक्तिगत प्रलेख** : इसके अन्तर्गत आत्म कथाएं एवं डायरीज आती है। इनसे व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी विविध घटनाओं, अनुभव, विश्वास, धारणा, दृष्टिकोण, परिस्थिति आदि के विषय में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। दैनन्दिनी द्वारा अनेक अस्पष्ट तथ्य स्पष्ट हो जाते है। आत्म कथाओं से भी व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा सामाजिक सम्पर्क से सम्बन्धित सूचना प्राप्त होती है। इसके अन्दर व्यक्ति का आत्म चित्रण रहता है तथा सच्चे आंकड़े प्राप्त होते हैं। मानसिक क्रिया कलापों का भी विवरण इनसे मिलता है साथ ही साथ सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप का ज्ञान होता है, अज्ञात रहस्य प्रकट होते हैं तथा घटना विशेष को समझने में सहायता मिलती है।
3. **जीवन इतिहास** : व्यक्ति का पूर्ण अध्ययन जीवन इतिहास द्वारा सम्भव है क्योंकि इसमें व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का तत्व सम्मिलित होता है। जीवन इतिहास से व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि, जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाएं, दिशा निर्धारित करने वाले कारक, व्यक्ति की क्रियाएं तथा प्रतिक्रियाएं परिवर्तित परिस्थितियां तथा उनका प्रभाव, वर्तमान स्थिति तथा भावी जीवन लक्ष्य एवं धारणाएं, भावनाएं ज्ञात होती है।

4. **अतिरिक्त स्रोत** : पुस्तकें, लेख, पत्रिकाएं, अनुसंधान आदि वैयक्तिक अध्ययन के अन्य स्रोत है जिनके द्वारा उपयोगी सूचना प्राप्त की जाती है तथा अध्ययन में सुविधा मिलती है।

वैयक्तिक अध्ययन की विषयवस्तु –

वैयक्तिक अध्ययन निम्न तथ्यों का किया जाता हैः

1. **परिचयात्मक आंकड़े** : इसके अन्तर्गत सेवार्थी का नाम, आयु, लिंग, जाति, धर्म, व्यवसाय, आय, शिक्षा का स्तर, वैवाहिक जीवन आधार की स्थिति, रहने की दशाएं आदि सम्मिलित करते हैं।
2. **समस्या का स्पष्ट चित्रण** : समस्या क्या है, समस्या का रूप क्या है, समस्या से सम्बन्धित क्या क्या शिकायतं एवं परेशानियां है, सेवार्थी संस्था में क्यों आया है तथा क्या चाहता है, समस्या किस प्रकार प्रारम्भ हुई, समस्या उत्पन्न करने वाली कौन–कौन सी दशाएं थीं, कौन–कौन से कारण वर्तमान समय में समस्या से सम्बन्धित है, व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक तथा सांवेगिक स्थिति पर समस्या का क्या प्रभाव पड़ा है, समस्या के कारण सेवार्थी की दैनिकचर्या में क्या–क्या परिवर्तन हुए है, शारीरिक दोष एवं व्याधियां किस प्रकार की है तथा उनका समस्या से कितना सम्बन्ध हैं। सेवार्थी का स्वास्थ्य एवं स्नायुविक प्रक्रिया कितनी प्रभावित हुई है उसकी नींद पर क्या असर पड़ा है आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं।
3. **उपचार** : सेवार्थी समस्या को लेकर कहाँ कहाँ तथा किस किस के पास गया है, किस प्रकार की सहायता प्राप्त की है, समस्या पर सहायता का क्या पड़ा है, सेवार्थी ने सहायता को किस रूप में स्वीकार किया है, उसका इसके प्रति क्या मूल्यांकन रहा है, सेवार्थी अपने पूर्व अनुभवों को वर्तमान सहायता के सन्दर्भ में किस प्रकार प्रत्युत्तर कर रहा है, उसने सहायता प्रदान करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्ध किस प्रकार के स्थापित किये, अभी तक कितना समय सहायता के लिए सेवार्थी ने व्यतीत किया है वर्तमान समय में सेवार्थी का दृष्टिकोण क्या है, आदि का अध्ययन करते हैं।
4. **भावनायें तथा विचार** : सेवार्थी का समस्या के प्रति दृष्टिकोण, समस्या का सेवार्थी द्वारा विश्लेषण, सेवार्थी द्वारा बताये गये समस्या के कारण, समस्या का सेवार्थी से सम्बन्ध, सेवार्थी की क्षमताओं एवं कमियों का अध्ययन करते हैं।
5. **विकासात्मक स्थिति का अध्ययन** : सेवार्थी की माँ की गर्भावस्था में शारीरिक एवं सांवेगिक दशाएं, महत्त्वपूर्ण घटनाएं, जन्म क्रम में अव्यवस्था अथवा समस्या, माँ में शारीरिक दोष अथवा व्याधि आदि का अध्ययन करते है। सेवार्थी के बचपन की कोई महत्वपूर्ण घटना, बीमारी रोग, भयानक सपने, निद्रागमन, व्यावहारिक दोष, चारित्रिक दोष, मानसिक अक्षमताएं आदि का अध्ययन करते है। स्कूल में सेवार्थी के व्यवहार का अध्ययन करते हैं। पढ़ने में रूचि, सक्रियता, खेल में भागीकरण, अध्यापकों से सम्बन्ध आदर्श का रूप विद्यार्थियों से सम्बन्ध, महत्वपूर्ण घटनायें आदि का वैयक्तिक अध्ययन का अंग होती है।

6. **पारिवारिक इतिहास** : परिवार का प्रकार, परिवार की सदस्य संख्या, सेवार्थी का भाई बहनों में स्थान, माता–पिता, भाई–बहन, पत्नी आदि की आयु, शिक्षा, व्यवसाय, शारीरिक तथा मानसिक स्तर आदि का अध्ययन करते हैं। सेवार्थी का माता–पिता से सम्बन्ध, माता–पिता का व्यक्तित्व, माता–पिता का आपस में सम्बन्ध, परिवार मं अनुशासन के तरीके, परिवार का प्रभावकारी व्यक्ति तथा उसका व्यक्तित्व का अध्ययन करते है। घर की आर्थिक स्थिति, सांवेगिक दशाएं, मद्यपान आदि को जानने का प्रयत्न करते है। परिवार की सामाजिक दशाएं भी अध्ययन का विषय है।
7. **वैवाहिक इतिहास** : विवाह की अवस्था, विवाह का प्रकार, पति पत्नी में लैंगिक सम्बन्ध तथा उसके प्रति सेवार्थी का दृष्टिकोण, लैंगिक बाधाएं तथा समस्यायें आदि का अध्ययन करते हैं। बच्चों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करते हैं।
8. **व्यावसायिक इतिहास** : वैयक्तिक अध्ययन में हम सेवार्थी के व्यावसायिक इतिहास को जानने का प्रयत्न करते हैं उसके पद तथा कार्य की प्रकृति, कार्य करने की अवधि, व्यावसायिक कमियां, कार्य छोड़ने का कारण, सहयोगी कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध, मालिक से सम्बन्ध, वर्तमान सेवा स्थान की स्थिति, सम्बन्ध की प्रकृति तथा दृष्टिकोण कार्य की दशायें आदि का अध्ययन करते हैं।
9. **व्यक्तित्व की विशेषतायें** : सेवार्थी के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करते हैं।
10. सेवार्थी के चेहरे का हाव भाव, शारीरिक लय, बातचीत का ढंग, बातचीत में तारतम्यता, चिन्ता का स्तर, भग्नाशा की आशा, विचारों में तारतम्यता, अन्तदृष्टि तथा निर्णय शक्ति का अध्ययन करते है।
11. **समस्या का निदान** : उपलब्ध तथ्यों का मूल्यांकन करते हैं। मूल्यांकन के आधार पर समस्या का रूप निश्चित करते हैं, समस्या के मुख्य कारक को निश्चित करते हैं तथा उपचार के उपायों की खोज करते हैं।
12. **उपचार** : निदान के उपरान्त समस्या के उपचार का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में वैयक्तिक अध्ययन का महत्व

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समाज कार्य की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा एक व्यक्ति की सहायता की जाती है जिससे वह अपनी समस्याओं को सुलझा सके तथा भविष्य में इस समस्या से ग्रसित न हो। उसे आत्म निर्भर बनाने का प्रयत्न किया जाता है अतः सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पूर्ण व्यक्तित्व जानना आवश्यक होता है तभी उसमें निहित शक्ति एवं क्षमता को उभार कर सक्रिय रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। वैयक्तिक अध्ययन से व्यक्ति की सम्पूर्ण स्थिति का चित्रण होता है, उसकी सम्पूर्ण दशाओं का ज्ञान होता है, परिस्थितियों के प्रभावों का पता चलता है। इन सूचनाओं के आधार पर ही वैयक्तिक कार्यकर्ता उपचार एवं सहायता कार्य करने में सफल होता है।

4.2.1 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में परिवार

परिवार शब्द अंग्रेजी भाषा के फेमिली शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। फेमिली शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फेमलस नामक शब्द से हुई है। फेमलस शब्द का तात्पर्य नौकर से है। परन्तु परिवार के अन्तर्गत केवल नौकर को ही नहीं सम्मिलित किया जाता है। इसका अर्थ समय के अनुसार बदलता रहा है। वास्तविक लैटिन शब्द फमिलियस के अन्तर्गत माता–पिता, बच्चे तथा नौकर तथा गुलाम तक सम्मिलित किये जाते थे। पश्चिमी समाजशास्त्री परिवार के अंतर्गत लघु समूह सदस्यता को स्वीकार करते हैं। इसके अन्तर्गत वे माता–पिता तथा अविवाहित बच्चे सम्मिलित करते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से परिवार के अन्तर्गत माता–पिता, भाई–बहन, चाचा–चाची, पुत्र–पुत्री, भतीजे–भतीजी, बहु आदि सम्मिलित रहते है तथा वे पारस्परिक प्रेम–भावना से बंधे होते है। भौतिक दृष्टि से भारतवर्ष में सयुक्त परिवार तथा पश्चिमी देशों में वैयक्तिक परिवार पाया जाता है। परन्तु सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि में दोनों प्रकार के परिवारों में कोई विशेष भिन्नता नहीं होती है तथा दोनों को एक ही रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

परिवार उस समूह को कहते है जो लिंग सम्बन्ध पर आधारित है और जो इतना छोटा तथा स्थायी है कि उसमें बच्चों की उत्पत्ति और उनका पालन–पोषण हो सकता है।

वर्जेस तथा लाके के अनुसार : परिवार विवाह, रक्त या गोद लेने के सम्बन्धों से जकड़े हुए व्यक्तियों का एक समूह है जो एक गार्हस्थ को बनाते हैं और पति–पत्नी, माता–पिता, लड़के और लड़की और भाई और बहन के अपने–अपने सामाजिक कार्यो के रूप में एक–दूसरे से अन्तःसन्देशों को करते हैं और एक सामान्य संस्कृति को बनाते हैं तथा उसकी रक्षा करते हैं।

परिवार के कार्य

व्यक्ति की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए ही परिवार इकाई का विकास हुआ है। अतः इसका सर्वप्रथम कार्य व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करना है। इस सन्दर्भ में परिवार के कार्यो को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं।

जैविकीय कार्य

जैविकीय कार्यो के अन्तर्गत परिवार निम्न कार्य करता है।

1. यौन इच्छा की पूर्ति
2. संतानोत्पत्ति का कार्य
3. प्रजाति का विकास
4. बच्चों का पालन–पोषण
5. शारीरिक रक्षा
6. भोजन का प्रबन्ध
7. वस्त्रों का प्रबन्ध
8. रहने का प्रबन्ध

आर्थिक कार्य

1. श्रम विभाजन
2. आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र
3. उत्तराधिकार
4. सम्पत्ति का प्रबन्ध

सामाजिक कार्य

1. व्यक्ति का सामाजिक विकास करना
2. बालक के व्यक्तित्व का विकास करना
3. सामाजीकरण में सहायता करना
4. स्थिति का निर्धारण करना
5. सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरिक करना
6. सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना
7. जीवन साथी का चयन करना

मनोवैज्ञानिक कार्य

1. मानसिक सुरक्षा प्रदान करना
2. सांवेगिक सुरक्षा प्रदान करना
3. प्राथमिक सम्बन्धों की स्थापना करना
4. सुख दुख में भागीदार होना
5. शैक्षणिक कार्य
6. सांस्कृतिक कार्य
7. धार्मिक कार्य
8. सामाजिक नियंत्रण का कार्य

मनोरंजनात्मक कार्य

परिवार की रचना के प्रारम्भ से ही इसका कार्य सदस्यों को मनोरंजन प्रदान करना रहा है। बच्चों का मनोरंजन विशेष रूप से घर पर ही होता है। बच्चों की सुखद तथा स्वास्थ्यप्रद पर्यावरण परिवार में ही प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत वे अपनी शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक आदि विशेषताओं का विकास करते है। युवकों तथा वृद्धों को भी परिवार मनोरंजन प्रदान करता है। परिश्रम से थका हुआ व्यक्ति जब शाम को घर वापस आता है तो वह अपने को अपनी पत्नी तथा बच्चों के बीच पाकर आनन्द का अनुभव करता है उसमें नवीन शक्ति का संचार होता है तथा अपनी सभी चिन्ताओं को वह भूल जाता है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर अनेक उत्सव तथा त्यौहार होते रहते हैं जो मनोरंजन का भी कार्य करते हैं।

राजनैतिक कार्य

परिवार एक प्रशासकीय इकाई भी है। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों को आज्ञा देता है और सभी सदस्य उसका पालन करते है। इसी प्रकार यह क्रम नीचे तक चलता रहता है। अर्थात् स्थिति के अनुसार व्यक्ति अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का उपयोग करता है। परिवार में यदि किसी प्रकार के झगड़े उत्पन्न होते है तो परिवार का मुखिया उनको निपटाता है तथा समझौता करा देता है।

मूल्यांकन : निम्न आधारों पर मूल्यांकन सम्भव होता हैं :

1. **विषयवस्तु** : परिवार का परिचय, परिवार सदस्य संख्या, प्रत्येक सदस्य की आयु, सम्बन्ध, कार्य, शिक्षा, आर्थिक, स्तर, धार्मिक रूचि आदि। वर्तमान समस्या, शिकायत, प्रार्थना, प्रार्थना पत्र देने का कारण, समस्या की प्रकृति, समस्या किससे सम्बन्धित है, कब से समस्या है, परिवार के सदस्यों की समस्या के प्रति क्या प्रतिक्रियाएं हैं, समान तथा विभेदी विषय कौन–कौन से हैं आदि।
2. **पारिवारिक संरचना तथा प्रतिक्रियाएं** :

1) उम्र तथा भूमिका के आधार पर उत्तरदायित्व का बंटवारा दिन प्रतिदिन के कार्यो को पूरा करने के पारिवारिक तरीके।

2) अभिज्ञान के तरीके तथा भूमिका निर्वाह, भूमिका के आधार पर परिवार सम्बन्ध।

3) उद्देश्यीय सम्बन्धों की प्रकृति तथा उसका स्तर सदस्य किस प्रकार एक दूसरे की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं, सन्तोष प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, सदस्यों को कहाँ तक वैयक्तिक रूचि पूरी करने की छूट है, आयु के आधार पर कितनी निर्भरता, अलगाव तथा आत्म निर्भरता है।

4) परिवार की भावनाओं को किस प्रकार समझा जाता है, भावनाओं को स्पष्टीकरण की क्या प्रकृति है, कितनी सहनशीलता है, नियन्त्रण कितना है, आत्मीयता, उग्रता, लैंगिकता, चिन्ता, प्रतिगमन, धार्मिक रीति–रिवाजों आदि का क्या रूप है। सदस्यों को प्रत्येक क्षेत्र में कितनी स्वतंत्रता है, वे कितना नियन्त्रण स्वीकार करते हैं आदि।

5) वास्तविकता प्रत्यक्षीकरण की कितनी क्षमता है, आत्म के अवलोकन की क्या क्षमता है, कितना प्रत्यक्षीकरण त्रुटिपूर्ण है, दूसरों की समस्या के प्रति क्या प्रत्यक्षीकरण हैं, परिवार में मनोसुरक्षात्मक यन्त्रों का कहाँ तक उपयोग होता है, अवरोध कौन–कौन से हैं आदि।

6) **संघर्ष तथा समाधान के तरीके** : परिवार में निर्णय प्रक्रिया, तनाव दूर करने के तरीके, समस्या समाधान के तरीके, विचारों की भिन्नता वाले विषय।

7) **परिवार के मूल्य** : सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रभाव, नैतिक धार्मिक दृष्टिकोण का स्थान तथा उनके हस्तान्तरण के तरीके, सामाजिक आकांक्षाएं तथा इच्छाएं, परिवार का समाज में स्थान।

8) **संचार के तरीके** : सांस्कृतिक प्रभाव, मौखिक एवं अमौखिक संचार प्रक्रिया की शैली, संचार का प्रभाव तथा उद्देश्य, समाचार का द्विस्तर, स्वीकृति तथा अस्वीकृति के क्षेत्र, भाषा का उपयोग तथा उसकी स्पष्टता।

3. **पारिवारिक इतिहास** : समस्या से सम्बन्धित आवश्यक आंकड़े जैसे – वैवाहिक जीवन का इतिहास, बाल विकास, महत्वपूर्ण घटनाएं, परिवार में भूमिका का परिवर्तन, बीमारियां, हानि आदि सामाजिक अनुकूलन तथा सामाजिक आवश्यकताएं।

4. **सदस्यों का इतिहास** : व्यवहार, लक्षण, स्वास्थ्य, अनुकूलन, परिवार में कठिनाइयां आदि।

5. **समस्या समाधान करने के लिए उपलब्ध शक्ति** : प्रत्येक सदस्य में समस्या से लड़ने की शक्ति तथा संक्रामकता, वैयक्तिक रूचि तथा योग्यता, समस्या पर कार्य करने की इच्छा, वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति भय, चिन्ता, परिवार में घनिष्ठता तथा अलगाव की इच्छा तथा प्रकृति आदि।

वैयक्तिक कार्यकर्ता उपरोक्त निर्देशन तालिका का उपयोग करता है। विषयवस्तु, प्रक्रिया, पारिवारिक संरचना आदि का ज्ञान होने पर उपचार योजना बनती है, उद्देश्य निर्धारित होते हैं तथा विशिष्ट कार्य प्रणाली बनायी जाती है। इससे निम्न प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है :

1. वर्तमान समस्या का केन्द्र बिंदु क्या है, यह अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में स्थिर है, पूरे परिवार से सम्बन्धित है या किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित है, परिवार से बाहर इसका कोई सम्बन्ध है।
2. परिवार के स्थायित्व में क्या–क्या बाधाएं है तथा स्थायित्व क्यों नही बनाया जा सकता है।
3. उपचारात्मक प्रक्रिया में कितना सहयोग मिलने की आशा है, किस व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से चिकित्सा प्रक्रिया में लगाना है आदि।
4. किन–किन विधियों तथा प्रविधियों का उपयोग लघु दीर्घकालीन उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करना है। उदाहरण के लिए दीर्घकालीन उद्देश्य वैवाहिक जोड़ें का उपचार कार्य करना है परन्तु जब तक सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे तब तक परिवार इसको मान्यता नहीं प्रदान करेगा। उद्देश्य कुछ भी हो, कार्यकर्ता तथा परिवार दोनों की स्वीकृति आवश्यक है।

4.2.2 समाज कार्य अभ्यास में समुदाय

सामुदाय संगठन में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण की एक पुरानी पद्धश्त है। भारत में समाज कार्य के विद्यालयों ने इसे 1960 तथा 1980 में प्रारम्भ किया। अब तक दूरस्थ क्षेत्रों में यह अभी भी उपेक्षित है। यह बात ध्यान देने योग्य है। कि कुछ विद्यालयों में इसका प्रशिक्षण दिया जा रहा है वहाँ इसे विशिष्ट प्रयोगात्मक पाठ्यक्रम को सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया है। अधिकांश छात्र सामुदायिक संरचना में कार्य कर रहे है तथा संकाय पर्यवेक्षकों के मार्गदर्शन व पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अपना प्रशिक्षण भी प्राप्त कर रहे है। इस क्षेत्र के कुछ विशेषज्ञों ने सामुदायिक संगठन के आदर्श प्रतिमान विकसित किये है। परन्तु ग्रामीण छात्र इसे समझने में

असमर्थ है। इसलिये इसके अन्तर्गत अनुभवी तथा अवलोकन के आधार पर सामुदायिक संरचना में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण की कार्य प्रणाली पद्धतियां और अभ्यास को उल्लेख किया गया है।

सामुदायिक वातावरण में स्थापन की आवश्यकता

सामुदायिक वातावरण में छात्रों का स्थापन समय की आवश्यकता है। यह समुदाय की आवश्यकताओं के आधार पर समन्वित क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण को समाज कार्य की प्रशिक्षिण शिक्षा में लागू करके उसका विकास करती है यह बहुत आवश्यक है क्योंकि छात्र स्वयं नीतियों के आकार के निर्माण में सम्मिलित होने के साथ इसका क्रियान्वयन करते हैं। छात्रों को अभिकरण की संरचना में स्थापना के समय ऐसे अवसर प्रदान किये जाते है। उसके अतिरिक्त चयनित समुदाय में जरूरतमंदों को किसी भी स्थिति में व्यवसायिक कल्याण सेवाएं दी जा सकती है। जिससे छात्रों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए एक वृहत तथा खुला अवसर प्रदान किया जा सके और इसके साथ ये छात्र समाज में सद्भावना, पहचान तथा यश बढ़ा सकें। कई बार देखा गया है कि कई स्वयंसेवी संगठनों ने ऐस स्थानों की आवश्यकताओं को पहचान कर उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयास किया है। प्रायः ये संगठन आवश्यकताओं को पहचान कर उनका समाधान करने में सफल नही होते क्योंकि संसाधन तथा क्षेत्र सीमित होते है। समाज कार्य के प्रशिक्षण में सामान्यतः सहायता करने के स्रोत का प्राप्त करने तथा चिन्हित करने के लिए आवश्यक ज्ञान होता है। इस प्रकार के स्थापना से समुदायों को बहुत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं।

सामुदायिक संगठन में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण के उद्देश्य

सामुदायिक संगठन में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य है :

1. छात्रों को समाज कार्य की सभी पद्धतियों के अभ्यास का अवसर प्रदान करना। जैसे – क्षेत्रकार्य वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक अनुसंधान तथा सामाजिक क्रिया।
2. छात्रों को समुदाय के सदस्यों के जीवन को समझने के योग्य बनाना तथा उनके विचारों, मनोवृत्तियों क्षमताओं दृष्टिकोण तथा सामान्य एवं विशिष्ट समस्याओं व आवश्यकताओं को समझना।
3. छात्रों को संकाय पर्यवेक्षकों के मार्गदर्शन तथा नियंत्रण के अन्तर्गत नीतियों के निर्माण व क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करने का प्रशिक्षण देना।
4. छात्रों को समुदाय के लोगों के साथ अन्तःक्रिया की कला को सीखना तिा उनकी आवश्यकताओं और समस्याओं को अपने से सम्बद्ध करना।
5. छात्रों को व्यक्ति समूह और समुदाय के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर प्रदान करना।
6. छात्रों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं और परिस्थितियों को सीखने व समझने का अवसर प्रदान करना।

7. छात्रों को सरकार की सहायता के बिना सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को स्वयं की स्वतंत्र अभिकरण में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण के योग्य बनाना।
8. असहयोगी सामाजिक अभिकरणों, अप्रशिक्षित व अरूचिकर अभिकरण पर्यवेक्षकों को अन देखा करना।
9. छात्रों को समुदायों में व्यवसायिक सेवाओं के विकास व चयनित ग्रामीण व नगरीय समुदायों में स्वरोजगार हेतु स्वयंसेवी संगठनों की स्थापना के लिए प्रोत्साहित करना।

सामुदायिक संगठन में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण की पद्धतियाँ

सामुदायिक संगठन में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण के अध्ययन के लिए उद्देश्यों के साथ प्रशिक्षण की पद्धतियों का अध्ययन भी आवश्यक है, जिससे समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इसमें क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण की निम्नलिखित पद्धतियां प्रयुक्त होती है। –

1. समुदाय में कार्यवावही के पहले सैद्धान्तिक तैयारी।
2. सिद्धान्त का वैज्ञानिक विश्लेषण।
3. संकाय पर्यवेक्षकों के साथ व्यवसायिक विचार–विमर्श।
4. व्यक्तियों, विशेषज्ञों, विद्वानों तथा जन–साधारण से सम्बन्धित कार्यकर्ताओं से व्यवसायिक अंतःक्रिया।
5. समुदाय के संगठनों के कार्यकलापों में सहभागिता।
6. समुदाय के अन्तर्गत कार्य करना और समाज कार्य का अभ्यास करना।

सामुदायिक संगठन के सिद्धान्तों, दर्शनों तथा मूलतत्वों का प्रयोग क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण में किया जाता है छात्र सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के निर्माण के अभाव में क्षेत्रकार्य का अभ्यास असम्भव हो जाता है। इसलिए उन्हें सामुदायिक संगठन के अर्न्तगत कार्य करने के लिए सिद्धान्तों को अत्यधिक सावधानी से समझना चाहिए। इसके पश्चात् उन्हें सिद्धान्त के आलोचनात्मक पक्षों के विश्लेषण पर ध्यान देना चाहिए। सामान्य तर्क तथा अध्ययन की सहायता से वास्तविक अनुभूति व सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इस आधारभूत तैयारी के साथ छात्र अपने संकाय पर्यवेक्षक के साथ विचार–विमर्श कर सकते हैं। विशेषज्ञों के साथ किए गए विचार–विमर्श आधारभूत ज्ञान का बढ़ाते हैं और अवधारणात्मक स्पष्टता प्राप्त करते हैं। इस अवधारणात्मक स्पष्टता से व्यवहारिक पक्षों को आसानी से सीखने के मार्ग और अधिक प्रशस्त होते हैं। इसके पश्चात छात्रों को समुदाय में जा कर लोगों के जीवन का अवलोकन तथा उनके साथ अन्तःक्रिया करनी चाहिए। इससे वे अपने व्यवहारिक ज्ञान को बढ़ा तथा अपने दृष्टिकोण को आधार प्रदान कर सकते है। छात्र समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अध्ययन के पश्चात् समाज कार्य की तकनीकियों की सहायता से समुदाय की सहायता कर सकते हैं।

क्षेत्र कार्य की कार्य पद्धति

हमारे देश के दूरस्थ क्षेत्रों में समाज कार्य के विद्यालयों में समाज कार्य के वातावरण में वैज्ञानिक अभ्यास का विकास ठीक से नही हो पाया है। यहाँ पर किसी प्रकार की विवरणिका या कार्यपद्धति नही है

जिसका अनुसरण किया जा सके। यद्यपि संकाय पर्यवेक्षक मौखिक मार्गदर्शन के द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं और छात्र समुदायों में क्षेत्र कार्य को ठीक प्रकार नही कर पा रहें है। इसको ध्यान में रखते हुए क्षेत्रकार्य की कार्यपद्धति की व्यवहारिक बाधाओं का विस्तार से विचार–विमर्श किया गया है। क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण व समुदाय विकास के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित निर्देशों के आधार पर उचित समुदाय का चयन किया जा सकेगा –

1. समुदाय छात्रों तथा विद्यालय दोनों के लिए भौतिक रूप से सुगम होना चाहिए।
2. आवश्यक मूलभूत सुविधाओं का उपलब्ध होना चाहिए।
3. किसी व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता या समाज कार्य विद्यालय द्वारा चिन्हित समुदाय होना चाहिए जहाँ समाज कल्याण सेवाओं की आवश्यकता हो।
4. समुदाय के लोगों में सेवाओं के प्रति रूचि, उत्साह व जोश होना चाहिए।
5. समुदाय के लोगों को अपने विकास के लिए स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए तैयार होना चाहिए।
6. वे अपनी आवश्यकताओं को विद्यालय या संगठन में स्वतंत्र रूप से विचार देने चाहिए।

समुदाय का चयन

विद्यालय में उपलब्ध सूचना एवं सामान्य दिशा निर्देशों के आधार पर एक उपयुक्त समुदाय का चयन करना चाहिए। यह चयन समुदाय की आवश्कयताओं पर आधारित होना चाहिए एवं यह चयन जरूरतमंद व्यक्तियों की सेवा प्रदान करने के लिए होना चाहिए। संकाय सदस्यों एवं छात्रों को समुदाय के भौगोलिक क्षेत्र के बारे में एक सामान्य जानकारी प्राप्त करने के लिए भ्रमण करना चाहिए ताकि इस समुदाय की उपयुक्तता के बारे में उचित निर्णय लिया जा सके। तत्पश्चात् प्रशिक्षण एवं विकास के लिए समुदाय का अन्तिम चयन करना चाहिए।

सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित आंकड़े

छात्रों को चयनित समुदाय का भ्रमण फील्ड कार्य हेतु निर्धारित किए गये दिनों पर करना चाहिए। प्रारम्भ में, समुदाय के विभिन्न जातीय एवं धार्मिक समूहों की सामाजिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करने के लिए छात्रों की पूरी टीम (दल) को समाज के नेताओं एवं प्रमुख व्यक्तियों से घुलना–मिलना चाहिए तथा मेलजोल बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार की सूचना या जानकारी आगे के कार्यक्रमों की योजना बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। सूचना एकत्रित करने के लिए तैयार किए गए सूचना पत्र का उपयोग अभिलेखन करने एवं उचित परिचय हेतु किया जा सकता है।

समुदाय का सूचना पत्र

1. समुदाय का नाम :
2. समुदाय का प्रकार :

3. समुदाय की स्थिति :
4. कुल आबादी :
5. घरों की संख्या :
6. आय के मुख्य स्रोत :
7. सामाजिक संगठनों की संख्या :
8. समुदाय की प्रमुख भाषा :
9. मुख्य समस्याऐं एवं आवश्यकताऐं :
10. साफ–सफाई की दशा :
11. वाहय कार्य परियोजना के मुख्य क्षेत्र :
12. क्षेत्र कार्य परियोजना का शीर्षक :
13. परियोजना की अवधि :
14. क्षेत्र कार्य प्रशिक्षुओं के नाम :
15. संकाय पर्यवेक्षकों के नाम :
16. बैच संख्या :

सामाजिक सर्वेक्षण

समुदाय की सामान्य पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी से छात्रों को समुदाय की वर्तमान दशा के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। तथापि, अग्रिम प्रक्रिया हेतु लोगों की सामाजिक–आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक है। इसके लिए संकाय पर्यवेक्षकों के आधीन एक सूक्ष्म सर्वेक्षण क्रिया जाना चाहिए। इस सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्रित प्रारम्भिक आंकड़ों का विश्लेषण किया जाना चाहिए तथा सन्दर्भ कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के आयोजन एवं क्रियान्वयन हेतु एक साधारण परियोजना प्रतिवेदन बनानी चाहिए। इससे छात्रों को किसी समुदाय में वैज्ञानिक आधार पर कार्य प्रारम्भ करने के लिए प्रथम अवसर प्राप्त होगा।

लोगों की आवश्कताओं की पहचान

सैद्धान्तिक तैयारी एक सर्वेक्षण एवं समुदाय के अवलोकन से छात्रों को समुदाय का सार समझने में सहायता मिलेगी एवं उसके आधार पर वे सार्थक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। एक बार सम्बन्ध स्थापित हो जाने के पश्चात् छात्रों को अधिक से अधिक लोगों से सम्पर्क करना चाहिए ताकि उनकी वास्तविक आवश्कयताओं, रूचियों, मानसिक तैयारियों तथा साधन उपलब्ध कराने की तत्परता के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके। समुदाय के नेताओं के साथ परस्पर व्यवसायिक सम्पर्क से समुदाय की वास्तविक आवश्यकताओं की पहचान करने में सहायता प्राप्त होगी। इन आवश्कयताओं का भविष्य में सन्दर्भ के लिए अभिलेखन किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए तैयार किए गए निम्नलिखित प्रारूप का उपयोग करना चाहिए।

वरीयता पर आधारित महसूस की गई आवश्यकताऐं

क्रम संख्या	महसूस की गई आवश्यकताऐं	आवश्यकताओं की अवधि	लाभार्थी कौन होगें	लागत क्या होगी	लागत लाभ क्या होगें	सम्भावित उपलब्ध स्रोत

नेताओं या मुखियाओं के साथ बैठक

समुदाय के विभिन्न नेता या मुखिया पृथक आधारों, पृथक समस्याओं/मुद्दों पर पृथक–पृथक राजनैतिक दर्शनों के तहत कार्य कर रहे होंगे, परन्तु उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे नेताओं की एक सामान्य मंच पर बैठक करना आवश्यक है। यह तभी संभव हो सकता है जबकि इन नेताओं की कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में पर्याप्त एवं विश्वसनीय आंकड़े एकत्रित किए जायें। तत्पश्चात् इन आंकड़ों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा, अन्यथा उनकों विश्वस्त करना (विश्वास में लेना) संभव नहीं होगा। इन नेताओं से सम्बन्धित आंकड़ों को जाति, वर्ण, रंग तथा राजनैत्रिक समबद्धता के भेदभाव के बिना निम्नलिखित प्रारूप में एकत्रित किया जा सकता है।

स्थानीय नेताओं/नेतृत्व के बारे में विवरण

क्रम संख्या	नाम एवं पता	क्या हैं – राजनीतिज्ञ/ सामाजिक कार्यकर्ता/युवा नेता	सेवा की प्रकृति/सहायता जिसकी समाज उनसे अपेक्षा कर सकता है

नेताओं से सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। छात्रों द्वारा एक छोटी से गलती या लापरवाही से एक विषम समस्या पैदा हो सकती है, जो कि सामाजिक कार्य प्रशिक्षण–सह–व्यवहार प्रक्रिया में रूकावट या रोड़ा बन सकती है। अतः इन विभूतियों से जिनमें से अधिकतर अत्यधिक अभिमानी होते हैं, से कुशलतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उनकों सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के उद्देश्य से की जा रही है बैठक में भाग लेने के लिए विश्वास में लेना चाहिए। छात्रों को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु उनके

सतत् प्रयासों, कर्तव्यनिष्ठा एवं सामाजिक कार्य दर्शन में उनके विश्वास के कारण उनकों इन समस्याओं के निदान प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। बैठक व्यवस्थित ढंग से आयोजित की जानी चाहिए एवं समुदाय की तात्कालिक आवश्यकताओं एवं समस्याओं पर एक सामान्य मंच पर इस प्रकार विचार–विमर्श किया जाना चाहिए कि नेताओं की भिन्न विचारधारायें होने के बाबजूद भी सर्वसम्मत निर्णय लिए जा सकें। इस प्रकार की बैठकें प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती हैं, तथा छात्रों में संवाद दक्षता एवं प्रशासनिक गुणों का विकास करती है।

व्यवसायिक व्यक्तिगत सहायता

व्यक्तिगत प्रकरणों की पहचान के बाद छात्रों को प्रकरण कार्य करने के लिए संकाय पर्यवेक्षकों द्वारा मार्गदर्शन एवं सलाह उपलब्ध करानी चाहिए। एक खुला समुदाय होने के नाते छात्रों को अपनी दक्षता पद्धित एवं व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने की प्रक्रिया के प्रयोग में स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। यहाँ उस प्रकार के कोई बन्धन नहीं होते हैं, जैसे कि स्वैच्छिक संगठनों में होते है। वह प्रकरण शीट की तैयारी से लेकर मूल्यांकन आख्या तक समस्त कार्य स्वयं कर सकते हैं। इस प्रकार समुदाय में प्रकरण कार्य प्रशिक्षण एवं व्यवसायिक सेवा प्रदान की जाती है।

व्यवसायिक समूह सहायता

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है क्योंकि वह अपना अधिकतर समय समूहों में व्यतीत करता है। समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे कि मित्र मण्डल, युवा संगठन, स्कूल इत्यादि। प्रशिक्षुओं को अपने सर्वतोन्मुखी विकास के लिए इन सभी समूहों से सम्पर्क करना चाहिए। प्रारम्भ में उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु सतत् प्रयासों, कला एवं मनुष्यों से व्यवहार करने की कला से उन्हें सफलता प्राप्त होगी। समूहों के निर्माण के उपरान्त प्रशिक्षु छात्रों को अपने पूर्ण विकास के लिए समूह कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए तथा समूह में से वैयक्तिक कार्य के लिए व्यक्तिगत प्रकरणों की भी पहचान करनी चाहिए। समुदाय में सामूहिक कार्य की अभ्यास बिना किसी दबाव, बन्धन एवं नीति के आधीन व्यवस्थित रूप से करनी चाहिए जैसा कि संस्थाओं में किया जाता है। छात्र स्वयं स्वतन्त्र रूप से नीतियों का निर्माण कर सकते हैं एवं स्वयं द्वारा स्वतंत्र रूप से तैयार की गई प्रक्रियाओं एवं पद्धतियों का अनुसरण कर सकते हैं, तथापि संकाय पर्यवेक्षकों के साथ विचार–विमर्श अपरिहार्य है।

4.2.3 समाज कार्य अभ्यास में संगठन

गंवों में स्वयं सेवकों द्वारा स्थापित सामाजिक संस्थाओं की सामाजिक संस्थाओं जैसे तरूण मण्डलों, महिला मण्डलों, क्रीड़ा, क्लबों, बाल मार्गदर्शन क्लीनिकों, सांस्कृतिक केन्द्रों, न्यासों, संघों आदि का भ्रमण करना चाहिए तथा उनकी विधिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, प्रबन्धन, प्रशासन, वाह्य कार्यक्रमों, लाभार्थियों, प्रतिभागियों, कठिनाइयों एवं लोगों एवं समुदायों पर उनके विस्तृत प्रभाव आदि के बारे में सूचनाएं एकत्रित करनी चाहिए।

यह सूचना विचार–विमर्श अवलोकन एवं साहित्य के माध्यम से एकत्र की जा सकती है, जिसका विश्लेषण किया जा सकता है एवं विभिन्न सामाजिक संस्थाओं और उनके कार्यो के बारे में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इससे उनके प्रयासों एवं आवश्यकताओं पर प्रकाश पड़ेगा।

इन प्राथमिक सूचनाओं के आधार पर छात्रों एवं संकाय सदस्यों को इन संस्थाओं के पदाधिकारियों की बैठक आछूत करनी चाहिए एवं उनके तथा युवकों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाना चाहिए। यह कार्यक्रम वर्तमान संस्थाओं की संचालन पद्धति एवं नवीन संस्थाओं की स्थापना के सम्बन्ध में होना चाहिए। युवा स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं एवं भाग न लेने वाले युवाओं को नवीन संस्थाओं की स्थापना की पद्धति एवं प्रक्रियाओं, निधि एकत्र करने, नवीन संस्थाओं की स्थापना करने एवं उनका संचालन करने का प्रशिक्षण देना अनिवार्य है, क्योंकि उनकी इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान तक पहुंच नहीं होती है। इस प्रकार के पेशेवर प्रशिक्षण से उन्हें राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा तैयार किए गए विभिन्न ग्रामीण परियोजनाओं के क्रियान्वयन में सहायता प्राप्त होगी।

इसके अतिरिक्त उनकों भारतीय एवं विदेशी निधि प्रदान करने वाली संस्थाओं की एक सूची भी प्रदान करनी चाहिए ताकि वे अपनी परियोजनाओं की निधि सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने, उनका समाधान करने एवं उनका क्रियान्वयन करने में समर्थ हो सकें। उनकी सहभागिता प्रोत्साहित करने हेतु एक सूक्ष्म निधि–एकत्रण कार्यक्रम संचालित किया जा सकता है, जिससे कि छात्रों को शिक्षा मिलेगी और ग्रामीणों को भी लाभ प्राप्त होगा। संकाय सदस्यों द्वारा उनके हर कदम पर मार्ग दर्शन प्रदान करना चाहिए। उनके प्रारम्भिक प्रायोगिक मार्गदर्शन के लिए निम्नांकित पुस्तकों का संदर्भ ग्रहण किया जा सकता है –

- सोसाइटीज रजिस्ट्रेश्ज़न एक्ट, 1860
- पब्लिक ट्रस्ट एक्ट, 1652
- काउंसिल फॉर एडवांसमेंट ऑफ पीपुल्स एक्शन एण्ड रूरल डेवलपमेन्ट
- सरकारी योजनाऐं
- प्रोफेशनल सोशल वर्कर : एक सखा प्रकाशन

4.3 चिकित्सा

चिकित्सा का अर्थ

साधारण बोलचाल की भाषा में चिकित्सा का तात्पर्य शारीरिक व्याधियों के रोमुक्त होने से समझा जाता है। परन्तु औषधिशास्त्र में भी रोग से मुक्ति नही मिलती है केवल रोग को कुछ समय के लिए नियन्त्रण में कर लिया जाता है लेकिन पुनरावृत्ति की सम्भावना बनी रहती है। इस सम्भावना में कमी, भोजन, आराम तथा अनुकूल स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों द्वारा कम किया जा सकता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में भी कुछ विशिष्ट रोगों को दूर किया जा सकता है (एक बच्चे के लिए बुरे होम के स्थान पर नया अच्छा होम खोजा जा सकता है) परिवर्तनों को कम किया जा सकता है (अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति मनोवृत्तियों में

परिवर्तन लाया जा सकता है), बिगड़ती हुई स्थिति को रोका जा सकता है (वर्तमान क्रिया में परिपूरक तथा आलम्बन द्वारा), और भी इसी प्रकार। लेकिन व्यक्ति की व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्थिरता उस वृहद समुदाय की सुरक्षा पर निर्भर होती है जिसका वह स्वयं एक भाग होता है। इसके अतिरिक्त जीवन की घटनाओं के लिए भी उसी पर निर्भर होता है। यही कारण दे कि वैयक्तिक सेवाकार्य में सामाजिक कल्याण से सम्बन्ध होता है। अतः रोगमुक्त का प्रत्यय नहीं पाया जाता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में उन क्षमताओं को व्यवस्थित तथा कार्यान्वित करते है जिनसे अनुकूलन प्राप्त होता है तथा उन साधनों, अवसरों एवं शक्तियों को प्रदान करते हैं जिनके द्वारा कोई व्यक्ति सामाजिक समायोजन प्राप्त करता है।

चिकित्सा का उद्देश्य

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में चिकित्सा के प्रायः निम्न उद्देश्य होते हैं :

1. सामाजिक क्षीणता को रोकना।
2. सेवार्थी की शक्तियों को सुरक्षित रखना।
3. सामाजिक कार्यो का पुनर्स्थापन करना।
4. सेवार्थी के जीवन अनुभवों को अधिक से अधिक सफल एवं संतोषप्रद बनाना।
5. मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति करना।
6. सेवार्थी के विकास एवं उन्नति के लिए अवसरों को उपलब्ध करना।
7. आत्म–निर्देशन एवं सामाजिक योगदान की क्षमता को बढ़ाना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्न प्रयत्नों की आवश्यकता होती है :

1. व्यक्ति की परिस्थिति में परिवर्तन अथवा सुधार करने के लिए आर्थिक सहायता अथवा पर्यावरण में परिवर्तन करना।
2. परिस्थिति परिवर्तन अथवा प्रत्यक्ष साक्षात्कार चिकित्सा द्वारा उसी सामाजिक परिस्थिति में रहते हुए व्यक्ति के व्यवहार तथा मनोवृति में परिवर्तन लाना।

वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता का मूलतः उद्देश्य सेवार्थी की कठिनाइयों को दूर करना तथा व्यक्ति परिस्थिति व्यवस्था की अकार्यात्मकता में कमी करना या इसको सकारात्मक रूप में रखकर सेवार्थी की सुविधा, संतोष एवं आत्म–अनुभूति में वृद्धि करना है। इसके लिए अहं तथा व्यक्ति–परिस्थिति व्यवस्था की कार्यात्मकता की अनुकूलन निपुणताओं में वृद्धि की आवश्यकता हो सकती है। व्यक्ति या परिस्थिति या प्रायः दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता हो सकती है।

वैयक्तिक सेवाकार्य चिकित्सा की विशेषताऐं

हैमिल्टन ने वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है :

1. **चेतन एवं नियन्त्रित कर्ता सेवार्थी सम्बन्ध का प्रयोग** : इसके द्वारा वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी के परिवर्तन लाता है एवं उन क्षमताओं एवं गुणों का विकसित करता है जो समायोजन की शक्ति को उत्पन्न करते हैं।
2. **साक्षात्कार प्रक्रिया में निपुणता** : कार्यकर्ता साक्षात्कार के माध्यम से मनोसामाजिक तथ्यों का एकत्रीकरण करके उपचार योजना बनता है। इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग अधिक किया जाता है।
3. **सामाजिक साधनों का ज्ञान और उनके प्रयोग में निपुणता** : प्रायः सेवार्थी की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक समस्याएं भी होती है। अतः उचित समायोजन प्राप्त करने के लिए दोनों प्रकार की सेवाओं की आवश्यकता होती है। कार्यकर्ता सामाजिक साधनों द्वारा सेवार्थी की मांगों को पूरा करता है।
4. **संस्था की नीतियों, सेवाओं एवं अन्तसंख्या सहयोग की व्याख्या करने तथा उपयोग करने की निपुणता** : संस्था ही वह केन्द्र होता है जहां पर सेवार्थी को सहायता प्रदान की जाती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता को इसके विषय में ज्ञान होना आवश्यक होता है। वह संस्था में उपलब्ध साधनों का भी उचित प्रयोग करने में निपुण होता है।
5. **चिकित्सा पर संस्कृति का प्रभाव** : सेवार्थी की इच्छा, मनोवृति, धारणा, मूल्य आदि को ध्यान में रखकर चिकित्सा योजना का निर्माण किया जाता है।
6. **समुदाय के अवसरों तथा रूढ़ियों का चिकित्सा पर प्रभाव** : चिकित्सा योजना में इस बात का ध्यान रखा जााता है कि समुदाय की रूढ़ियां क्या है तथा कौन–कौन से अवसर ऐसे है जिनको सेवार्थी के समायोजन कार्य में लगाया जा सकता है।
7. **चिकित्सा पर वैयक्तिक कार्यकर्ता तथा सहभागी साथियों की निपुणता एवं प्रतिभा का प्रभाव** : वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की समस्या को समाधान करने का प्रयत्न किया जाता है अतः उसकी तथा उसके साथियों की योग्यता एवं प्रतिभा का वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा में विशेष महत्व होता है।

वैयक्तिक कार्यकर्ता की भूमिका

चिकित्सा प्रक्रिया में वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्नलिखित भूमिकाएं अदा करता है :

1. **प्रदानकर्ता** : वह सेवार्थी द्वारा इच्छित सेवाओं को प्रदान करता है।
2. **स्थिति प्रदर्शक** : वह स्रोतों की खोज करता है।
3. **प्राख्याकार** : समस्या से सम्बन्धित कारकों की प्राख्या करता है।
4. **मध्यस्थ** : सेवार्थी को भावनाओं के व्यक्तीकरण में मध्यस्थता का कार्य करता है।
5. **परिवर्तन** : वह सेवार्थी के पर्यावरण में परिवर्तन करता है।

4.3.1 मनोचिकित्सा

मनोवैज्ञानिक विधियों से व्यक्तित्व की अवस्थाओं की चिकित्सा करना ही मनोचिकित्सा है। मनोचिकित्सा का मुख्य उद्देश्य सेवार्थी एवं उसके पर्यावरण के बीच का उचित समायोजन स्थापित करना है। मनोचिकित्सा द्वारा सेवार्थी को एक सामान्य व्यक्ति बनाने, समस्याओं को सुलझाने, विकारों को दूर करने, उसे सामाजिक समायोजन के योग्य बनाने एवं सुरक्षा की भावना का विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। सेवार्थी में दमित इच्छाएं होती है जिनको वह समझने में अपने को असमर्थ पाता है। मनोचिकित्सा द्वारा सेवार्थी को पूर्व चेतन प्रत्ययों, मूल प्रवृतियों तथा प्रभावों जिनका सामना करने तथा प्रतिदमित करने में भी असमर्थ रहा है, अभिज्ञान प्राप्त होता है।

सामान्यतया मनोचिकित्सा का उद्देश्य परिपक्वता दक्षता तथा आत्म–कार्यान्वयन की दिशा में व्यक्तित्व का विकास करना है। इस सामान्य कार्य में निम्नलिखित में से एक या अनेक विशिष्ट उद्देश्य निहित है :

1. समस्या तथा व्यवहार के सन्दर्भ में अन्तदृष्टि में वृद्धि करना।
2. आत्म ज्ञान कराना।
3. मानसिक संघर्ष के कारणों का समाधान करना।
4. अवांछनीय आदतों तथा प्रतिक्रिया तरीकों में परिवर्तन लाना।

मनोचिकित्सा तथा वैयक्तिक सेवा कार्य में अन्तर

वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी की समस्या का समाधान मनोचिकित्सा के विभिन्न तरीकों द्वारा किया जाता है। सेवार्थी का संस्था से सम्बन्ध केवल चिकित्सा के कारण ही होता है। और वैयक्तिक कार्य चिकित्सा द्वारा सेवार्थी की आन्तरिक एवं बाह्म परिस्थितियों में परिवर्तन लाया जाता है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा मनोविकार सम्बन्धी ज्ञान का विशेष महत्व होता है। इसके विपरीत वैयक्तिक सेवा कार्य की सेवाएं विस्तृत क्षेत्र एवं अधिक रखती है। दूसरे शब्दों में वैयक्तिक सेवा कार्य एक प्रकार की मनोचिकित्सा है जिसमें विशेष योग्यता, दक्षता, विभेदात्मक, उद्देश्य, तथा विशेष कार्य पद्धति होती है। वास्तव में वैयक्तिक सेवा कार्य में मनोचिकित्सीय सिद्धान्तों को एक विशिष्ट प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। अतः इन दोनों में काफी समानता है।

1. वैयक्तिक सेवा कार्य तथा मनोचिकित्सा दोनों ही व्यक्ति की सहायता सांवेगिक तनाव तथा कष्ट की स्थिति में करते हैं।
2. साक्षात्कार की निपुणताएं दोनों के लिए आवश्यक है।
3. दोनों प्रकार के कार्यकर्ताओं में रोगी को आराम पहुंचाने तथा रोगी को समस्या स्पष्ट करने की निपुणता होती है।
4. दोनों में विश्वास उत्पन्न करने की योग्यता एवं क्षमता होती है।

5. दोनों ही व्यक्ति की व्यक्तिकता तथा स्थिति का आदर करते हैं।
6. दोनों ही रोगी को आत्म–विश्वास करने का अवसर प्रदान करते है।
7. दोनों ही अपने–अपने व्यवसाय से सहायता प्रक्रिया से सम्बन्धित अधिकार प्राप्त करते हैं।
8. दोनों ही सांवेगिक तथा अचेतन प्रक्रियाओं की मनोवृतियों तथा व्यवहार को प्रभावित में महत्वपूर्ण समझते है।
9. दोनों ही क्षेत्रों में समस्या का चुनाव, विषय वस्तु का अवलोकन, अन्तर्मनोवैज्ञानिक अवरोधों की शक्ति, सीमाओं का ध्यान रखा जाता है।
10. दोनों कार्यकर्ता तथा चिकित्सक तत्कालीन तीव्र चिन्ता को समाधान करने के लिए सांवेगिक सहायता पहुंचाते है। दोनों ही सेवार्थी के प्रति सहिष्णुता प्रदर्शित करते हैं।
11. दोनों के स्थानान्तरण का महत्व होता है।

4.3.2 बाल देखभाल

सामजिक विघटन की जितनी भी समस्यायें आधुनिक औद्योगिक नगरीय सभाओं को घेरे हुये हैं उनमें बाल तथा किशोर अपराध की समस्या एक गम्भीर विचारणीय प्रश्न है। अपराधी बालक प्रायः निम्न कृत्यों में से किसी एक या एक से अधिक क्रियाओं में भाग लेता है :

1. कानून तथा अध्यादेश का उल्लंघन।
2. स्वभाव से अनुपस्थित होना।
3. जानबूझकर चोरों, अपराधियों तथा अनैतिक व्यक्तियों के साथ मेलजोल रखना।
4. माता–पिता तथा अभिभावकों के नियन्त्रण में न होना।
5. अपराध की दशाओं में बड़ा होना।
6. ऐसा आचरण करना जिससे स्वयं या दूसरों को नुकसान या चोट पहुंचे।
7. बिना किसी आवश्यक कार्य तथा माता–पिता की अनुमति के घर से बाहर रहना।
8. अनैतिक तथा अशिष्ट व्यवहार करना।
9. स्वभावतः गंदी भाषा का प्रयोग करना तथा गाली–गलौज करना।
10. जानबूझकर बदनाम घरों में जाना।
11. जुआ के अड्डों पर जाना।
12. आदतन स्टेशन का रेल पटरी के आस–पास रहना।
13. चलती गाड़ी से कूदना।
14. उन जगहों पर जाना जहां खराब तथा मादक दृव्य पिये जाते हैं।
15. रात में सड़कों तथा गलियों में घूमना।
16. स्कूल या अन्य स्थान पर अनैतिक आचरण करना।

17. अवैधानिक व्यवसाय करना।
18. सिगरेट, तम्बाकू तथा खराब व मादक दृव्य पीना।
19. यौन अनियमितताओं में रत होना।
20. भिक्षावृति करना।

बाल अपराध समस्या के नियन्त्रण के दो पक्ष है :

1) बाल अपराधियों का सुधार जिससे वह अपने आगे के जीवन में अपराधी प्रवृतियों को त्याग सके और वयस्क अपराधों न बने तथा
2) उन बालकों का उचित निर्देशात्मक नियन्त्रण जिससे व्यवहारिक सामंजस्य की समस्यों तथा चारित्रिक दोषों का जन्म हो रहा है तथा जो पूर्व बाल अपराध की अवस्था से गुजर रहे हैं।

सामूहिक कार्यकर्ता अपराध उत्पन्न करने वाली सामूहिक दशाओं में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। अपराध या बाल अपराध जैसी विषम समस्याओं का नियन्त्रण उस समय तक समाप्त नहीं है जब तक कि उन समुदायों की आर्थिक जीवन दशा नहीं सुधरेगी जिसमें बाल अपराध की समस्यायें स्वतः पनपती है। अतः इन समुदायों के लिए आर्थिक सुरक्षा के कार्यक्रम आयोजित करना, उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा गरीबी, अशिक्षा व आवास की समस्या का समाधान करना, सामूहिक कार्यकर्ता का कार्य हो जाता है। समुदाय के प्रबुद्वजनों का एक ऐसा संगठन तैयार करता जो अपराधी व्यक्यिों पर अपना प्रभाव दिखायें व बालकों को उनके पास न जाने हैं। इस कार्य में वह स्कूलों, धार्मिक संस्थाओं, कल्याणकारी सेवाओं आदि की सहायता लेता है। वह बाल अपराधियों को मनोचिकित्सकीय सेवायें भी प्रदान करता है। वह मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करता है क्योंकि मनोरंजन के अभाव में ही असामाजिक तथा अपराधिक प्रवृतियों का विकास होता है। सामूहिक कार्यकर्ता मनोरंजन की संस्थाओं, कार्यो, खेलों के मैदानों, क्लबों आदि की व्यवस्था करता है। उसके द्वारा बालकों की मनोरंजन विधियों को चरित्र निर्माणक बनाया जा सकता है। सामूहिक कार्यकर्ता पारिवारिक कल्याण सेवा केन्द्रों की स्थापना करता है तथा बाल एवं युवा कल्याण सेवाओं का विस्तार करता है। अपराधी प्रवृत्ति रखने वाले बालकों का लेखा तथा उनके सुधार के लिए उचित कार्यक्रमों का आयोजन करता है। सामूहिक कार्यो के माध्यम से उनके जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है तथा वे प्रयत्न करता है जिससे उनमें वैयक्तिक क्षमतायें बढ़ती है तथा आत्मनिर्भरता आती है।

4.4 शिक्षा एवं अनुसंधान

शिक्षा एंव अनुसंधान एक दूसरे के पूरक है जबकि देखा जाय तो शिक्षा प्राप्त करने हेतु व्यक्ति प्रयासरत रहता है। लेकिन शिक्षा प्राप्त करने से पहले अभ्यास का होना आवश्यक है। क्योंकि जब व्यक्ति अभ्यास करता है तो अभ्यास अनुभव में परिवर्तित हो जाता है और वही अनुभव व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि

करता है। जब व्यक्ति के अन्तर्गत ज्ञान की वृद्धि होती है तो वह विभिन्न क्षेत्रों में शोध करने का प्रयास करता है जबकि वह शोध के सिद्धान्तों के बारे में अनभिज्ञ होता है लेकिन व्यक्ति जब प्रयास करता है तो वह कई बार असफल भी होता है। यह असफलता उसे पुनः शोध करने पर मजबूर कर देता है। चूंकि व्यक्ति की सीखने की क्षमता उसके अनुभवों पर आधारित होती है। इस हेतु व्यक्ति अभ्यास और त्रुटि के सिद्धान्त पर कार्य करते हुये बार–बार प्रयास करता है और अन्ततोगत्वा वह सफल हो जाता है और जिस क्षेत्र में अनुसंधान कर रहा होता है उस क्षेत्र में एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है और वही सिद्धान्त व्यक्तियों के ज्ञान बढ़ाने हेतु शिक्षा के माध्यम से लोगों तक पहुचाया जाता है। शिक्षा एवं अनुसंधान के प्रक्रिया में जे0 डोबलिन एक प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें उन्होनें बताया कि व्यक्ति के शिक्षा प्राप्त करने में अभ्यास का महत्वपूर्ण स्थान है और यही अभ्यास उसे शिक्षा प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। जब व्यक्ति शिक्षित हो जाता है तो वह नए सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए अपने ज्ञान का प्रयोग कर अनुसंधान करता है। जे0 डोबलिन द्वारा प्रस्तुत प्रारूप अग्रलिखित है।

ज्ञान निर्माण

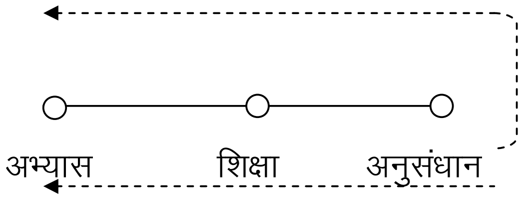

ज्ञान का प्रयोग

4.5 सुधारात्मक सेवायें

अनेक अनुसंधानों तथा अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अपराधी को केवल दण्ड देकर उसकी मनोवृत्ति एवं व्यवहार में परिवर्तन नहीं ला सकते हैं। प्रतिकारात्मक, प्रतिशोधात्मक, भयात्मक प्रकार की विधियाँ अपराधी दशा को सुधारने में नकारात्मक प्रकार की भूमिका निभाती है। अपराधी को ऐसे अवसर प्राप्त हों, जिससे वह अपना व्यवहार परिवर्तित कर सके। ऐसे कार्यो की आवश्यकता कारागारों में है। सुधारात्मक दर्शन के अनुसार दण्ड का आधार या लक्ष्य अपराधों को दण्ड देना न होकर अपराधी की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना है, जिससे कारागार से वापस जाने पर समाज के सामाजिक एवं वैधानिक नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने की मनोवृत्ति तथा एक उत्तरदायी नागरिक की तरह रहने की कला का विकास कर सके। समाज कार्य के दर्शन का प्रभाव दण्डशास्त्र पर पड़ा और अपराधी कार्य की असमंजन, विस्थापन, विचलन, मानसिक विकार आदि का चिन्ह माना जाने लगा है।

दण्डशास्त्र के नवीन दृष्टिकोण के अनुसार अपराधों का मुख्य कारण समाज की सामाजिक, आर्थिक दोषपूर्ण संरचना है। अतः अपराधी को दण्ड देना अवांछित तथा अमानवीय एवं अनैतिक है। सामूहिक कार्य

का दृढ़ विश्वास है कि सामुहिक व्यक्ति में एक निहित आत्म–सम्मान की भावना एवं सुधार की क्षमता होती है। यदि उसे सहायता पहुंचायी जाय तो वह अपनी समस्याओं का निस्तार मार्ग ढूंढ सकता है।
सुधार कार्यकर्ताओं की टोली में निम्न भूमिकायें पूरी करता है :

1. अपराधियों के विषय में जांच–पड़ताल करके सुधारवादी कार्यक्रम निश्चित एवं प्रस्तुत करने में सहायता करना।
2. सामूहिक कार्य के माध्यम से इस प्रकार से पर्यवेक्षण करना जिससे वह आत्मनियंत्रण सीखे।
3. सामाजिक तथा वैयक्तिक मजबूरियों को दूर करने में सहायता करना तथा इनमें व्यवहार को सामाजिक आदर्शो के अनुरूप बनाना।
4. इस प्रकार में सहायता करना जिससे वे कानूनी तथा प्रशासनिक नियमों का पालन अपने हित को ध्यान में रखकर कर सकें।
5. उन संवातियों को परामर्श देना तथा मार्गदर्शन करना की कारागार में पहली बार आये है।
6. मानसिक कुंठाओं, आहत भावनाओं तथा विक्षिप्त मनोदशाओं को दूर करने में सहायता करना तथा उन्हें संस्था के अन्य संवासियों, अधिकारियों तथा कार्य–पद्धतियों के समरूप व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना। कारागारों में नियुक्त कल्याण अधिकारियों के कार्यो का दर्शन निम्न प्रकार से किया गया है :
   - **i)** नये संवासियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करना।
   - **ii)** कारागार के कार्यक्रम अवगत कराना।
   - **iii)** अपने जीवन की नवीनदशा तथा संस्था में ठीक से रहने के मार्ग बताना।
   - **iv)** संस्थागत समस्याओं को दूर करने के मार्ग ढूंढना।
   - **v)** संवासियों को संस्था की समस्याओं को दूर करने में प्रोत्साहित करना।
   - **vi)** उन्हें अपने परिवार के साथ सम्बन्ध बनाये रखने में हर सम्भव सहायता करना।
   - **vii)** परिवार के सदस्यों की भी सहायता करना।
   - **viii)** बंदी को आत्मनिर्भर, कानून पालनकर्ता तथा उत्तरदायी नागरिक बनाने का प्रयत्न करना।
   - **ix)** कारागार अधिकारियों के साथ बैठकर बंदी के उपचार के कार्यक्रम उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में बनाने पर बल देगा।
   - **x)** कारागार प्रशासन तथा बंदी के बीच कड़ी का काम करना।

4.6 निगमित क्षेत्र

1994 से पूर्व निगमित क्षेत्र समिति की रचना ऐसे क्षेत्रों के लिए की जाती थी, जहां नगरपालिका स्थापित करने के लिए निर्धारित आवश्यक शर्तो को पूरा नहीं किया जा सकता परन्तु वह क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था। कहीं–कहीं नये विकासशील नगर या कस्बों के लिए भी यह समिति गठित की जाती

थी। इस प्रकार की समिति की स्थापना की सूचना राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित राज्य पत्र में अधिसूचित कर दी जाती थी, अतः इसे निगमित क्षेत्र समिति के नाम से पुकारा जाता था। इस पर नगरपालिका अधिनियम की जो धारा लागू होती थी वह भी राज्य पत्र में ज्ञापित की जाती थी। राज्य सरकार निगमित क्षेत्र समिति को आवश्यकता पढ़ने पर किसी अन्य अधिनियम में निहित शक्तियां भी दे सकती थी।

स्पष्ट है कि निगमित क्षेत्र समिति को वे सभी शक्तियां प्राप्त होती थी, जो किसी नगरपालिका को प्राप्त है। निगमित क्षेत्र समिति का अध्यक्ष एवं इसके सभी सदस्य राज्य सरकार द्वारा मनोनित किये जाते थे। यह पूर्णरूपेण मनोनीत संस्था थी आज भी भारत में निगमित क्षेत्र है। 1972 में इनकी संख्या 164 थी, यह संख्या 1990 में बढ़कर 202 हो गयी। निगमित क्षेत्र समितियां बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल में विद्यमान है।

4.6.1 दाता संस्थायें

कष्ट, अकाल, बाढ़, भूकम्प, आग, ज्वालामुखी–विस्फोट आदि बड़ी–बड़भ् विपत्तियों के अवसर पर एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र की सहायता करना ही अज्ञात काल से चला आया है परन्तु विस्तृत अर्थो में समाज–कल्याण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय कार्य कर आरम्भ पहले–पहल उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य काल में हुआ जबकि दान की सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने अपने पारस्परिक अनुभवों से लाभ उठाने और उससे समाज सेवा के क्षेत्र में प्रभावशाली उपायों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का संगठन करना आरम्भ किया। इन सम्मेलनों की बैठकें यूरोप के विभिन्न नगरों में हुई और वे विभिन्न सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित थीं, यह उनके निम्नलिखित शीर्षकों से प्रकट होता है –

अन्तर्राष्ट्रीय दान, सुधार तथा हितैषी–कांग्रेस, पेनीटेन्शियरी कांग्रेस, अन्तर्राष्ट्रीय दण्ड तथा कारागार कांग्रेस, अन्तर्राष्ट्रीय सरकारी तथा गैरसरकारी सहायता प्रदायिनी कांग्रेस, और मुक्ति प्राप्त बन्दियों की रक्षा करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस, समाज कल्याण से सम्बन्धित, सबसे पहला विशाल सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास था। जिनमें बहुत देश के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन की धाराओं ने यह निश्चित किया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय समिति के निर्देशन में घायल सिपाहियों की मानवौचित चिकित्सा तथा सेवा करने के सिद्धान्त निर्धारित किये जाए और औद्यालय को ले जानी गाड़ियों, घायलों की सेवा करने वाले डाक्टरों तथा नर्सो को निरपेक्ष मानकर उनका सम्मान किया जाए।

इस प्रकार समाज कल्याण के क्षेत्र में जो भी संस्थायें लोगों के कल्याण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करती है उन्हें दाता संस्थायें कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय तथा भारतीय सन्दर्भ में लोगों के कल्याण हेतु बहुत सी ऐसी दाता संस्थायें है जो विभिन्न प्रकार की स्वैच्छिक संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं तथा गैर सरकारी संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करती है। कुछ दाता संस्थाओं के अग्रलिखित है :

1. संयुक्त राष्ट्र शिशु फण्ड, 2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, 3. विश्व स्वास्थ्य संगठन, 4. भोजन तथा कृषि संगठन, 5. संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठना। 6. आक्सफैम इण्डिया, 7. हेल्पेज इण्डिया, 8. एक्सन ऐड, 9, समाज कल्याण बोर्ड, भारत सरकार, 10. ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार

4.6.2 गैर सरकारी संगठन

भारत में सामाजिक सेवाओं, परोपकारी गतिविधियों की एक महान परम्परा रही है। प्राचीन समय की भारतीय लोकोपकारी और संस्कृति में धर्म के रूप में व्यक्ति में निहित लोकोपकार की सहजवृत्ति के अलावा पूर्त और स्वैच्छिक संस्थाऐं भी, गरीबों, निराश्रितों, पद–दलितों, अशक्तों और समाज के कमजोर वर्गो की सहायता के लिए पिछले दो दशकों में अस्तित्व में आई है सामाजिक कल्याण गतिविधियों जैसे गरीब की सहायता करने, साक्षरता फैलाने आदि में संलग्न स्वैच्छिक संगठनों की ब्रिटिश समय से भारत में उपलब्धियों का एक अच्छा रिकार्ड है। इस शताब्दी के प्रारंभिक भाग में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी के आन्दोलन की जड़ें सामाजिक पुनर्निमाण, स्व–सहायता, गरीबों में सबसे गरीब, अछूत को ऊँचा उठाने के आदर्शो से जुड़ी थी।

गैर सरकारी संगठन की परिभाषा

गैर सरकारी संगठनों को विभिन्न लेखकों द्वारा परिभाषित किया गया है। नीचे कुछ परिभाषाएं दी गई है जिनके माध्यम से हम गैर सरकारी संगठन का अर्थ और उसकी अवधारणा को समझ सकते हैं।

लार्ड बेवरिज स्वैच्छिक कार्य और गैर सरकारी संगठन के बारे में लिखता है कि एक पीढ़ी पूर्व एक स्वैच्छिक कार्यकर्ता वह हुआ करता था जो एक अच्छे हेतुक के लिए असंदत्त सेवाएं देता था और वह समूह जो अच्छे हेतुक के लिए बना था, स्वैच्छिक संगठन के रूप में जाना जाने लगा। समूह का नाम उनके कार्यकर्ताओं के उत्कृष्ट गुणों से बना जिन पर यह निर्भर था। इसके अतिरिक्त उन्होनें स्वैच्छिक संगठनों की निम्नानुसार परिभाषाएं दी हैं –

1. उचित रूप से कहा जाय तो गैर सरकारी संगठन ऐसा संगठन होता है जो, चाहे उसके कार्यकर्ताओं को भुगतान किया जाता हो या न किया जाता हो, बिना बाहरी नियंत्रण के उसके स्वेयं के सदस्यों द्वारा प्रारंभ और शासित किया जाता हो।
2. मेरी मोरी और मोडेलाईन रुफ द्वारा दी गई परिभाषाएं भी इसी प्रकार की है अंतर मात्र इतना है कि मोडेलाईन रुफ ने इसमें यह जोड़ा है कि इन गैर सरकारी संगठनों को कम से कम भागित रुप से गैर सरकारी संसाधनों से सहायता प्राप्त करने पर निर्भर रहना चाहिये।
3. एक गैर सरकारी संगठन व्यक्तियों का ऐसा समूह है जिन्होनें संगठित कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक सेवाएं या ग्रामीण विकास करने के लिये एक विधिक निर्मित निकाय के रूप में स्वयं को संगठित किया है। यह सरकार की अपेक्षा नागरिकों के संगम द्वारा नियंत्रित और जबावदेह होता है, यद्यपि प्राथमिक रूप से समुदाय से योगदान द्वारा वित्त पोषित होता है।

गैरसरकारी संगठनों की भूमिका

यद्यपि अनेक समस्याओं के बावजूद भारत में गैरसरकारी संगठनों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण, युवा विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। गैरसरकारी संगठनों को उनके मानवीय स्पर्श, समर्पण, जनता से सीधा संवाद आदि के रुप में जाना जाता है। किन्तु व्यवसायवाद और सरकारी घुसपैठ से इनके सदगुणों में कुछ कमी आई है। सरकारी सहायता के प्राप्त होने के साथ ही कार्यालयीन कागजी औपचारिकताओं को पूर्ण करने के उत्तरदायित्व से मूलहेतुक से ध्यान विचलित हुआ है। बुरी खबर यह है कि संश्रय के कारण कुछ गैरसरकारी संगठन पूर्णतः राजनैतिक हो गए हैं जो जनता और उनकी मूल भावना के प्रतिकूल है।

सतवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज (1985–90) में गैरसरकारी संगठन की भूमिका को दर्शित किया है। इनसे अपेक्षा की गई हैं कि –

1. सरकारी प्रयत्नों को जोड़ा जाए जिससे ग्रामीण गरीबों को विकल्प और चयन प्राप्त हो सकें।
2. ग्राम स्तर पर जनता पर नजर रखें।
3. एक उदाहरण प्रस्तुत करें। स्वैच्छिक ऐजेन्सियां साधारण, नवाचार, नमनीय, और कम खर्चीले साधनों को अपनाएं जो जनता के सीमित स्रोतों की पहुंच के भीतर हों।
4. सेवा प्रदान करने की पद्धति को ग्रामीण स्तर पर सक्रिय करें।
5. जानकारियों का प्रचार–प्रसार करें।
6. समुदाय को जहां तक सम्भव हो, आत्मनिर्भर बनाऐं।
7. यह दर्शाऐं कि कैसे ग्रामीण और देशज संसाधनों का उपयोग किया जा सकता है। मानव संसाधन ग्रामीण कौशल और स्थानीय ज्ञान का किस रुप में उपयोग किया जा सकता है।
8. प्रौद्योगिकी का विस्तार कर इसे ग्रामीण गरीबों के लिए सरल रूप में प्रस्तुत करें।
9. जमीनी कार्यकर्ताओं के संवर्ग को प्रशिक्षित करें।
10. समुदाय के भीतर से ही वित्तीय संसाधनों को एकत्रित करें।
11. गरीबों को संगठित करें और इन सेवाओं के प्रति उनमें जागरुकता उत्पन्न करें।

सातवीं पंचवर्षीय योजना ने ग्रामीण विकास में गैरसरकारी संगठन महत्व को स्वीकार करते हुए प्रथम बार 150 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता आबंटित की है। भारत सरकार भी अनेक माध्यमों से इन क्षेत्रों में उत्साहजनक कार्य कर रही है।

4.7 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई चार में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति, परिवार, समुदाय व संगठन के बारे में अलग–अलग ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है इसी इकाई में चिकित्सा क्या है, मनोचिकित्सा और बाल देखभाल के बारे में भी प्रकाश डाला गया है। शिक्षा एवं अनुसंधान के बारे में भी ब्यौरा दिया गया है तथा सुधारात्मक सेवायें क्या होती है। तथा समाज कार्य सेवा का इसमें कैसे प्रयोग किया जा सकता है के बारे में लिखा गया है। इकाई के अन्त में निगमित क्षेत्र, प्रातः संस्थायें और गैर सरकारी संगठनों के बारे में भी अलग–अलग रूप में विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

4.8 परिभाषिक शब्दाबली

Person	व्यक्ति	Mother institutions	दाता संस्थायें
Family	परिवार	Non-Government organisations	गैर सरकारी संगठन
Community	समुदाय	Environmental Manipulation	स्थिति पर्यावरण
Organisation	संगठन	Personal Situation	व्यक्ति परिस्थिति
Therapy	चिकित्सा	Provider	प्रदानकर्ता
Psycho-therapy	मनोचिकित्सा	Locator	स्थिति प्रदर्शक
Child care	बाल देखभाल	Interpretor	प्राख्याकार
Education	शिक्षा	Mediator	मध्यस्थ
Research	अनुसंधान	Modifier	परिवर्तक
Correctional services	सुधारात्मक सेवायें	Repressed	प्रतिदमित
Notified area	निगमित क्षेत्र	Transference	स्थानान्तरण

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, डॉ0 प्रयाग दीन, सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, वर्ष 1997, पेज 269–271, 402–406, 412.414.
2. कुमार, डॉ0 रुपेश, क्षेत्रकार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य विभाग में विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत मानवकीय एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित मेटेरियल, वर्ष 2004, पेज 79–83, 106–114, 169–170.
3. मदन, डॉ0 जी0 आर0, समाज कार्य, विवेक प्रकाशन दिल्ली, वर्ष 2006, पेज 308–315, 339–341.
4. मिश्र, डॉ0 प्रयाग दीन, सामाजिक सामूहिक कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, वर्ष 2005, पेज 85–88.

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य अभ्यास में संगठन क्या है ?
2. चिकित्सा क्या हैं ?
3. बाल देखभाल से आप क्या समझते हैं ?
4. शिक्षा एवं अनुसंधान से क्या तात्पर्य है ?
5. सुधारात्मक सेवायें क्या होती है ?
6- निगमित क्षेत्र से क्या समझते हैं ?

MSW-10

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

सामाजिक विकास एवं समाज कार्य

Social Development & Social Work

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. : 05946-286001

टोल फ्री नं. : 18001804025

ई-मेल :info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष | संयोजक

कुलपति | निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी

प्रोफेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

इकाई लेखन

१. प्रोफेसर जे० के० तिवारी,बनारस हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी
२. प्रोफ़ेसर ए० के० भारती ,लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ
३. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

Copy right **_ISBN no. 978-93-84433-96-3_**

"Paper used: Agro-based Environment Friendly"

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिये बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय हल्द्वानी,नैनीताल-263139 से प्राप्त की जा सकती है।

निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

MSW-11

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया

Community Organization & Social Action

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी
फोन नं. : 05946-286001
टोल फ्री नं. : 18001804025
ई-मेल :info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

संयोजक
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी

प्रोफेसर राज कुमार सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

इकाई लेखन

१. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल|
२. डॉ० राजेश कुशवाहा,डॉ० बी० आर० आंबेडकर वि० वि० ,आगरा ,यू० पी० |
३. डॉ० विनोद पांडे,तीर्थंकर विश्वविद्यालय यू० पी०|

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

Copy right **_ISBN no. 978-93-84433-97-0_**

"Paper used: Agro-based Environment Friendly"

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिये बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय हल्द्वानी,नैनीताल-263139 से प्राप्त की जा सकती है।

निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

MSW-12

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

एन० जी० ओ० प्रबंधन

NGOs Management

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. : 05946-286001

टोल फ्री नं. : 18001804025

ई-मेल :info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष | संयोजक

कुलपति | निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी

प्रोफेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

इकाई लेखन

१. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल
२. डॉ० ऋचा चौधरी ,डॉ० भीम राव अम्बेडकर कॉलेज ,(दिल्ली विश्वविद्यालय),दिल्ली
३. डॉ० रविन्द्र सिंह , डॉ० भीम राव अम्बेडकर कॉलेज ,(दिल्ली विश्वविद्यालय),दिल्ली

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

Copy right

ISBN no. 978-93-84433-98-7

“Paper used: Agro-based Environment Friendly”

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिये बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय हल्द्वानी,नैनीताल-263139 से प्राप्त की जा सकती है।

निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति

संयोजक
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

1.प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी,महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी
2.प्रोफ़ेसर राज कुमार सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखन

1. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल
2. डॉ० राजेश कुशवाहा ,डॉ० भीम राव अम्बेडकर वि० वि० ,आगरा

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक समाज कार्य, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,नैनीताल

आईo एस० बी० एन० नं०: 978-93-84433-60-4

कॉपी राइट : उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष :

Published by: उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,नैनीताल-263139

....

सर्वाधिकार सुरक्षित |इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है |

इकाई–1

समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास अवधारणा

1.4 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का विश्वव्यापी एवं राष्ट्रीय परिदृश्य

1.5 मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की प्रासंगिकता

1.6 सार संक्षेप

1.7 परिभाषिक शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभ्यास हेतु प्रश्न

1.1 परिचय

व्यक्ति के अस्तित्व के बिना समाज की कल्पना व्यर्थ है। जहां समाज ने व्यक्ति को मानवीय अस्तित्व प्रदान किया है वहीं समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं ने भी समय–समय पर जन्म लिया है। मनुष्य की इन समस्याओं पर नियंत्रण पाने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इन्हीं सामाजिक समस्याओं के निदान की एक श्रखंला के रूप में समाज कार्य का जन्म हुआ है। इस प्रकार से समाज कार्य व्यवसाय का मुख्य ध्येय प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक अनुकूलन के मार्ग में आने वाली सामाजिक एवं मनोसामाजिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान प्रस्तुत करना है।

''The Dictionary of Sociology defines field work as social survey or process of collecting primary data from a population distributed geographically.'' **इंडियन कांफ्रेंस आफ सोशल वर्क के अनुसार,**''समाज कार्य मानवतावादी दर्शन वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं पर आधारित व्यक्तियों अथवा समूहों अथवा समुदायों को एक सुखी एवं सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करने हेतु एक कल्याणकारी क्रिया है। इस प्रकार से समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का तात्पर्य आत्मसहायता करने हेतु लोगों की सहायता करने के वैज्ञानिक ढंग के प्रयोग द्वारा व्यक्ति, समूह, समुदाय और संगठन की आवश्यकताओं को प्रभावित करने हेतु विभिन्न संसाधनों को जुटाने की एक कला है।''

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :–

- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास को परिभाषित कर सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की अवधारणा को समझ सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास के इतिहास की व्याख्या कर सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास के विश्वव्यापी एवं राष्ट्रीय परिदृश्य को समझ सकेगें।
- मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की प्रासंगिकता को समझ सकेगें।

1.3 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की अवधारणा

समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास द्वारा कार्यकर्ता अपने वैज्ञानिक ज्ञान प्राविधिक निपुणताओं एवं मानवतावादी दर्शन का प्रयोग करते हुये मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों को वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक स्तर पर सहायता प्रदान करने की एक क्रिया है जो उनकी इन समस्याओं को पहचान में, उन पर ध्यान केन्द्रित करने, उनके कारणों को जानने तथा उनका स्वतः समाधान करने की क्षमता को विकसित करती है तथा सामाजिक व्यवस्था की गड़बड़ियों को दूर करते हुये इसमें वांछित परिवर्तन लाती है। ताकि व्यक्ति की सामाजिक क्रिया प्रभावपूर्ण हो सके, उसका समायोजन संतोषजनक हो सके और उसे सुख एवं शान्ति का अनुभव हो सके और सामाजिक व्यवस्था में पाये जाने वाली कुरीतियों एवं प्रगति को अवरूद्ध करने वाली संस्थागत संरचनाओं को उखाड़ फेंकते हुये सभी को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के समीचीन अवसर प्रदान किये जा सकें और सामाजिक संघर्षों को कम करते हुये एकीकरण को प्रोत्साहित किया जा सके।

समाज कार्य में क्षेत्र कार्य की पृष्ठभूमि को समझने के लिये समाज कार्य दर्शन को समझना अति आवश्यक है क्योंकि सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं को समझे बिना क्षेत्र कार्य की वास्तविकता को समझना मुश्किल है। दर्शन सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा व्यक्ति, समाज आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक संबंधों के सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। समाज कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूलाधार ही मानवतावादी है, लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धान्तों तथा तथ्यों पर आधरित है। समाज कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन कल्याण के लिए करता है।

लियोनार्ड के अनुसार दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्यात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है। आदर्शात्मक रूप के अतिरिक्त यह मुनष्य मनुष्य के बीच तथा मुनश्य व सम्पूर्ण जगत के बीच सम्बन्धों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है। मानव विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा। समाज कार्य मानव जीवन को अधिक सुखमय तथा प्रकार्यात्मक बनाने का संकल्प रखता हव। अतः बट्रिम का मत है कि समाज कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है। परन्तु यह संकल्प तभी

पूरा हो सकता है जब समाज कार्य उन विश्वासों पर आधारित हो जो सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसी संदर्भ में समाज कार्य दर्शन का वर्णन किया जा रहा है जिसमें समाज कार्य के प्रत्ययों, मनोवृत्तियों तथा मूल्यों का निरूपण किया जायेगा। यह आपको क्षेत्र में कार्य करने और समाज के दर्शन को समझने के योग्य बनाता है।

1.समाज कार्य के मूल प्रत्यय

समाज कार्य के निम्नलिखित प्रत्यय महत्वपूर्ण हैं।

1. व्यक्ति का प्रत्यय

जान्सन का मत है कि समाज कार्य व्यक्ति के अन्तर्निहित महत्व, सत्यनिष्ठा तथा गरिमा के प्रति आस्था रखता है। इस प्रत्यय को ध्यान में रखकर कार्यकर्ता सम्बन्ध स्थापित करता है तथा समस्या समाधान करने का प्रयास करता है। कार्यकर्ता यह विश्वास भी रखता है कि व्यक्ति समग्रता में प्रतिक्रिया करता है तथा उसकी बाहय एवं आन्तरिक परिस्थितियां भिन्न भिन्न होती हैं। अतः उनका व्यवहार भी भिन्न भिन्न होता है। उसके वैयक्तिक मूल्य महत्वपूर्ण होते हैं और वह संपूर्ण पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया करता है। उसको अपना निर्णय लेने का अधिकार होता है। समाज कार्य में इन्हीं बिन्दुओं को महत्वपूर्ण माना जाता है तथा ये ही समाज कार्यकर्ताओं द्वारा किए जाने वाले कार्य का मार्ग निर्देशन करते हैं।

2. व्यवहार का प्रत्यय

व्यवहार का तात्पर्य व्यक्ति के वाहय पर्यावरण के प्रति किये गये प्रत्युत्तर से है। व्यक्ति पर्यावरण के साथ समायोजन करने के लिए प्रत्युत्तर करता है। प्रत्येक क्षण व्यक्ति को आन्तरिक तथा वाहय प्रेरक, आवश्यकताएं तथा सामाजिक पर्यावरण प्रभावित करते हैं जिसके कारण उस पर दबाव पड़ता है। फलतः उसे तनाव व चिंता की अनुभूति होती है। इस चिंता को कम करने के लिए तथा तनाव को हटाने के लिए व्यक्ति जो कार्य करता है उसे व्यक्ति का व्यवहार कहा जाता है। इस प्रकार व्यवहार के अन्तर्गत एक समय में व्यक्ति द्वारा किये गये समस्त संवेग, विचार, दृष्टिकोण तथा कार्य आते हैं। मानव व्यवहार अनेक सिद्धान्तों पर आधारित है जिनमें निम्न प्रमुख हैं।

1. सभी प्रकार का व्यवहार अर्थपूर्ण होता है।
2. व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति उसके व्यवहार को प्रभावित करती है।
3. अतीत में प्राप्त किये गये अनुभव व्यवहार को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
4. सामाजिक पृष्ठभूमि व्यवहार के ढंग को प्रभावित करती है।
5. वंश परम्परा की विशेषताओं का व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।
6. व्यवहार चेतन व अचेतन दोनों प्रकार का होता है।
7. वर्ततान दशाओं का व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है।

8. भावी आशाओं का भी व्यवहार में महत्वपूर्ण स्थान है।
9. सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों का व्यवहार व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है।
10. नवीन तथ्यों की जानकारी के पश्चात व्यवहार बदलता भी रहता है।

समाज कार्यकर्ता व्यवहार के इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही अपनी भूमिका संपादित करता है।

3. समस्या का प्रत्यय (Concept of problem)

जब एक व्यक्ति पहले से सीखी हुई आदतों, सम्प्रेरणाओं तथा नियमों की सहायता से उद्देश्य पर पहुंच नहीं पाता है, तब समस्या की स्थिति उतपन्न होती है। समस्या उस सयम भी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति एक उद्देश्य तो रखता है परन्तु यह नहीं जानता है कि उस उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाये। समस्या किसी एक या एक से अधिक आवश्यकता से सम्बन्धित होती है जो व्यक्ति के जीवन में व्यवधान एवं कष्ट उत्पन्नक करती है। समस्या किसी दबाव शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक के रूप में भी हो सकती है जो सामाजिक भूमिका पूरी करने में बाधा उत्पन्न करती है। समस्या के अनेकानेक रूप होते हैं तथा इसकी प्रकृति गत्यात्मक होती है। यह सदैव श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रतिक्रिया करती है। कोई भी समस्या जिससे व्यक्ति ग्रसित होता है वस्तुगत वाहय तथा विषयगत आन्तरिक दोनों प्रकार से महत्वपूर्ण होती है। समस्या के वाहय तथा आन्तरिक तत्व ने केवल एक साथ घटित होते हैं बल्कि इनमें से कोई भी एक दूसरे का कारण हो सकता है। समस्या की प्रकृति कैसी भी हो लेकिन सेवार्थी की प्रतिक्रियाओं का प्रभाव समस्या समाधान पर अवश्य पड़ता है।

समाज कार्यकर्ता में समस्या समाधान के लिए निम्न योग्यताएं होनी आवश्यक होती हैं।

1. समस्या के तथ्यों का पूर्ण ज्ञान
2. समस्या के सभी तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान
3. तत्वों को व्यवस्थित करने की योग्यता तथा विकास की गति का ज्ञान
4. परिस्थिति का उच्च प्रत्यक्षीकरण
5. पूर्व अनुभवों का उचित उपयोग
6. सम्प्रेरणाओं की जटिलता तथा इनके प्रकार का ज्ञान

समाज कार्य का दृढ़ विश्वास है कि समस्या सभी व्यक्तियों को किसी न
किसी रूप में प्रभावित करती है।। परनतु जो व्यक्ति समाधान कर लेता है वह सेवार्थी नहीं बनता। अतः समाधान करने की क्षमता का विकास व्यक्ति में सन्निहित है।

4. सम्बन्ध का प्रत्यय (Concept of relationship)

सम्बन्ध एक प्रत्यय है जो मौखिक अथवा लिखित वार्तालापों में प्रकट होता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति लघुकालीन, दीर्घकालीन, स्थायी अथवा अस्थायी सामान्य अभिरूचियों एवं भावनाओं के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। सामाजिक एवं सांवेगिक होने के नाते मनुष्य दूसरों के साथ सम्बन्धों, उनकी वृद्धि एवं

विकास को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही उसका सम्पूर्ण समायोजन भी उसकी परिधि क्षेत्र में आ जाता है। बीस्टेक ने सम्बन्ध के इन तत्वों का उल्लेख किया है। भावनाओं का उद्देश्यपूर्ण प्रगटन, नियंत्रित सांवेगिक भागीकरण, स्वीकृति, वैयक्तीकरण, अनिर्णायक मनोवृत्ति, आत्म निश्चयीकरण तथा गोपनीयता।

5. भूमिका का प्रत्यय (Concept of role)

सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में व्यक्ति अपनी आयु, लिंग, जाति, प्रजाति एवं व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर जिस स्थिति को प्राप्त करता है उसे उसकी प्रस्थिति कहा जाता है और प्रस्थिति के संदर्भ में सामाजिक परम्परा, प्रथा, नियम एवं कानून के अनुसार कार्य करने होते हैं, वह उसकी भूमिका होती है। लिंटन का मत है कि प्रत्येक स्थिति का एक क्रियापक्ष होता है, इस क्रिया पक्ष को ही भूमिका कहते हैं। अपनी स्थिति का औचित्य सिद्ध करने के लिए व्यक्ति को कुछ करना होता है, उसी को भूमिका कहा जाता है। जब व्यक्ति की प्रेरणायें एवं क्षमतायें उसकी अपेक्षित भूमिका के अनुकूल नहीं होती हैं तो उसका अनुकूलन नहीं हो पाता है और उसे वाहय सहायता की आवश्यकता होती है।

6. अहं का प्रत्यय (Concept of ego)

अहं मस्तिष्क का वह भाग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखता है। व्यक्ति में ऐसी अनेक मूल प्रवृत्तियां होती हैं जो सन्तुष्ट होने के लिए चेतन में आने का प्रयत्न करती हैं, परन्तु अहं ऐसा करने से रोकता है क्योंकि उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है। अहं की शक्ति की असफलता की अवस्था में व्यक्ति अतार्किक एवं अचेतन सुरक्षात्मक उपायों का प्रयोग अहं की सुरक्षा के लिए करता है। इस प्रकार की युक्तियों द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को तार्किक बनाता है और समाज द्वारा अस्वीकृत उत्प्रेरकों को सही मानता है। वह अहं की रक्षा के लिए प्रक्षेपण, प्रतिगमन, अस्वीकृति, स्थानापन्न, प्रतिक्रिया, निर्माण आदि युक्तियों का प्रयोग संचेन रूप से करता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी के समाज द्वारा स्वीकृत अनुकूलन के ढंगों तथा अतार्किक सुरक्षात्मक उपायों द्वारा अनुकूलन में अन्तर स्पष्ट करता है। वह सेवार्थी की अहं शक्ति का मूल्यांकन करता है तथा वर्तमान स्थितियों का सेवार्थी की दृष्टि से मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता अहं की कार्यप्रणाली तथा कार्यात्मकता के अध्ययन तथा निदान द्वारा सेवार्थी की शक्ति, विचार पद्धति, प्रत्यक्षीकरण, मनोवृत्ति आदि की जानकारी प्राप्त करता है। इस ज्ञान के आधार पर उसे चिकित्सा प्रक्रिया निश्चित करने में सुविधा होती है।

7. अनुकूलन का प्रत्यय (Concept of adaptation)

व्यक्ति को दो कारणों से तनावपूर्ण स्थिति का अनुभव होता है।

1. पहले अपनाए गए तथा अभ्यस्त ढंगों के द्वारा परिवर्तित स्थिति की मांगों से सम्बन्धित भूमिकाओं का प्रतिपादन न हो पाना।
2. व्यक्तिगत सम्प्रेरणाओं एवं क्षमताओं में परिवर्तन होने की स्थिति में पहले की भूमिकाओं को पूरा करने में व्यक्तिगत असन्तुलन होना।

3. व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति से तीन प्रकार से अनुकूलन करता है।
   1) प्रयोग में लाए गए तथा पूर्व निश्चित ढंगों के उपयोग द्वारा।
   2) कल्पना की उड़ान द्वारा।
   3) उदासीनता, मानसिक उन्मुखता, प्रत्याहार, अगतिमानता अथवा अतिसक्रियता द्वारा।
4. व्यक्ति सबसे पहले अपनी समस्या का समाधान अपने पहले प्रयोग में लाए गए ढंगों एवं प्रयुक्त प्रविधियों द्वारा करने का प्रयत्न करता है। यदि इस प्रकार समस्या का समाधान नहीं होता है तो वह या तो संघर्ष करता है या अपने को उस स्थिति के अनुकूल बना लेता है अथवा उस स्थिति से दूर होने का प्रयत्न करता है। यदि ये तरीके भी असफल हो जाते हैं तो वह समस्या के प्रति उदासीन होकर मानसिक रोगी बन जाता है।
5. समाज कार्य सेवार्थी की अनुकूलन करने की प्रविधियों की शक्तियों, क्षमताओं, प्रभावों आदि को महत्व देता है। सेवार्थी में अनुकूलन करने की क्षमता सामाजिक पर्यावरण से समायोजन करने की स्थिति को प्रभावित करती है। वह यह निश्चित करता है कि सेवार्थी तनावूपर्ण स्थिति को किस प्रकार सुलझाने का प्रयत्न करता है तथा अपने प्रयत्नों को किस सीमा तक परिवर्तित करता है, और उसकी कठिनाई एवं समस्या को कितनी जल्दी दूर किया जा सकता है। कार्यकर्ता यह जान लेने के पश्चात दो प्रकार का प्रयत्न करता है , वह या तो व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों को सम्बल प्रदान करते हुये अनुकूलन सम्भव बनाता है या फिर सामाजिक परिस्थिति में ही परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

समाज कार्य के मौलिक मूल्य (Basic values of social work)

समाज कार्य का उद्देश्य मानव कल्याण करना है। यह कल्याण कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब वह सामाजिक मूल्यों को अपनी क्रियाविधि में समाहित करे, क्योंकि मूल्य ऐसे सामाजिक प्रतिमान, लक्ष्य तथा आदर्श होते हैं जिनके आधार पर सामाजिक परिस्थितियों तथा व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन किया जा सकता है। मूल्यों के आधार पर ही मनुष्य के सामाजिक जीवन शैली का निर्धारण होता है तथा अन्तः क्रियायें सम्भव होती हैं। जान्सन के अनुसार मूल्यों को एक सांस्कृतिक या केवल वैयक्तिक धारणा या मानक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा वस्तुओं की एक–दूसरे के सन्दर्भ में तुलना की जाती है, उन्हें स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है, उन्हें सापेक्ष रूप से अपेक्षित या उपेक्षित, अधिक या कम, बुद्धिमत्तापूर्ण या मूर्खतापूर्ण अधिक या कम सही मान जाता है। मुकर्जी के मत में मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छायें तथा लक्ष्य हैं जिनका अभ्यन्तीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो विषयात्मक प्रतिष्ठा, उद्देश्य एवं आकांक्षायें बन जाते हैं। कॉस के अनुसार मूल्य को किसी वस्तु, अवधारणा, सिद्धान्त, क्रिया अथवा परिस्थिति के विषय में किसी व्यक्ति, समूह या समुदाय के बौद्धिक एवं संवेगात्मक निर्णय के रूप में देखा जा सकता है।

प्रत्येक व्यवसाय में जो मानव व्यवहार से सम्बन्धित है कुछ न कुछ मूल्य अवश्य होते हैं और इन मूल्यों के आधार पर ही वह व्यवसाय अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। सामाजिक मूल्यों का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि वे सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखते हैं, व्यवहारों में एकता लाते हैं, जीवन के मनोवैज्ञानिक आधार निश्चित करते हैं, निश्चित व्यवहार प्रदान करते हैं, भूमिका का निर्धारण करते हैं तथा सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के मूल्यांकन को सम्भव बनाते हैं।

समाज कार्य के मूल्य

कॉस ने समाज कार्य के 10 प्राथमिक मूल्यों का उल्लेख किया है

1. मनुष्य की महत्ता तथा गरिमा
2. मानव प्रकृति में पूर्ण मानवीय विकास की क्षमता
3. मतभेदों के लिए सहनशीलता
4. मौलिक मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि
5. स्वाधीनता में विश्वास
6. आत्म निर्देशन
7. अनिर्णायक प्रवृत्ति
8. रचनात्मक सामाजिक सहयोग
9. कार्य का महत्व तथा रिक्त समय का रचनात्मक उपयोग
10. मनुष्य एवं प्रकृति द्वारा उत्पन्न किए गए खतरों से अपने अस्तित्व की रक्षा

कोनोप्का**(Konopka)** ने समाज कार्य के 2 प्राथमिक मूल्यों का उल्लेख किया है :

1) प्रत्येक व्यक्ति का आदर तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के पूर्ण विकास का अधिकार।

2) व्यक्तियों की पारस्परिक निर्भरता तथा एक–दूसरे के प्रति अपनी योग्यता के अनुसार उत्तरदायित्व।

संयुक्त राष्ट ने समाज कार्य के निम्न दार्शनिक एवं नैतिक मूल्यों एवं मान्यताओं का उल्लेख किया है।

1. किसी व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि स्थिति, जाति, धर्म, राजनैतिक विचारधारा तथा व्यवहार को ध्यान में रखे बिना उसके महत्व, मूल्य या योग्यता को मान्यता प्रदान करना तथा मानव प्रतिष्ठा एवं आत्म–सम्मान को प्रोत्साहित करना।
2. व्यक्तियों, वर्गों एवं समुदाय के विभिन्न मतों का आदर करने के साथ–साथ जन कल्याण के साथ उनका सामन्जस्य स्थापित करना।
3. आत्म–सम्मान एवं उत्तरदायित्व पूरा करने की योग्यता बढ़ाने की दृष्टि से स्वावलम्बन को प्रोत्साहित करना।
4. व्यक्तियों, वर्गों अथवा समुदायों की विशेष परिस्थितियों में संतोषमय जीवन निर्वाह करने हेतु समुचित अवसरों में वृद्धि करना।

हर्बट बिस्नो **(Herbert bisno)** ने समाज कार्य के दर्शन का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने समाज कार्य दर्शन को 4 क्षेत्रों में विभाजित किया है: व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में, समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों के आपसी संदर्भ में, समाज कार्य की प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में, सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में।

1. व्यक्ति की प्रकृति के संदर्भ में

1) व्यक्ति अपने अस्तित्व के कारण ही मूल्यवान है।

2) मानवीय पीड़ा अवांछनीय है अतः इसको दूर किया जान चाहिए अन्यथा जहां तक संभव हो कम किया जाना चाहिए।

3) समस्त मानव व्यवहार जैविकीय अवयव तथा उसके पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया का परिणाम है।

4) मनुष्य सम्भवतः विवेकपूर्ण कार्य नहीं करता है।

5) जन्म के समय मनुष्य अनैतिक तथा असामाजिक होता है।

6) मानव आवश्यकताएं वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की होती हैं।

7) मनुष्यों में महत्वपूर्ण अंतर होते हैं। अतः उन्हें अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए।

8) मानव सम्प्रेरणा जटिल एवं अस्पष्ट होती है।

9) व्यक्ति के प्रारम्भिक विकास में पारिवारिक सम्बन्धों का प्राथमिक महत्व होता है।

10) सीखने की प्रक्रिया में अनुभव एक आवश्यक पहलू है।

2. समूहों, व्यक्तियों एवं समूहों और व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों के संदर्भ में

1) समाज कार्य हस्तक्षेप न करने की नीति तथा सबसे अधिक उपयुक्त के जीवित रहने के सिद्धांत को नहीं मानता है।

2) यह आवश्यक नहीं है कि धनी तथा शक्तिशाली व्यक्ति ही योग्य हों तथा निर्धन एवं दुर्बल व्यक्ति अयोग्य हों।

3) सामाजीकृत व्यक्तिवाद विषम व्यक्तिवाद की अपेक्षा अच्छा है।

4) सदस्यों के कल्याण का मुख्य उत्तरदायित्व समुदाय पर होता है। सामाजिक सेवाओं पर समुदाय के सभी वर्गों का समान अधिकार है। समुदाय का उत्तरदायित्व है कि वह बिना भेदभाव के अपने सभी सदस्यों की कठिनाइयों का निराकरण करे।

5) केन्द्रीय सरकार का यह उत्तरदायित्व है किवह स्वास्थय, आवास, पूर्ण रोजगार, शिक्षा तथा अन्य विविध प्रकार से जन कल्याण एवं सामाजिक बीमा योजना सम्बन्धी कार्यक्रमों को लागू करे।

6) जन सहायता आवश्यकता की अवधारणा पर आधारित होनी चाहिए।

7) संगठित श्रम का सामुदायिक जीवन में सक्रिय योगदान होता है तथा उसकी शक्ति को विध्वंसात्मक न मानकर रचनात्मक मानना चाहिए।

8) सम्पूर्ण समानता एवं पारस्परिक सम्मान के आधार पर सभी प्रजातियों एवं प्रजातीय समूहों में सम्पूर्ण सहयोग होना चाहिए।

9) स्वतंत्रता एवं सुरक्षा में कोई पारस्परिक विरोध नहीं है।

समाज कार्य की प्रणालियों एवं कार्यों के संदर्भ में

1) समाज कार्य का दृष्टिकोण द्विमुखी है। एक ओर समाज कार्य व्यक्तियों को संस्थागत समाज के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायता देता है तो दूसरी ओर वह इस संस्थागत समाज के आवश्यक क्षेत्रों में परिवर्तन लाने का भी प्रयास करता है।

2) मानव व्यवहार के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक पद्धति को ही आवश्यक साधन माना जाता है।

3) सामान्यतया एक सक्षम व्यक्ति अपने हितों का सबसे अच्छा निर्णायक होता है। उसे स्वयं निर्णय लेना चाहिए तथा समस्या का निराकरण करना चाहिए।

4) व्यवहार में सुधार एवं सामाजिक विकास के लिए वातावरण के परिवर्तन एवं अन्तदृष्टि के विकास पर विश्वास रखता है न कि आदेश, निर्णय अथवा प्रबोधन में

5) समाज कार्य जनतंत्र को एक प्रणाली के रूप में मानता है।

सामाजिक कुसमायोजन एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में

1) हमारी संस्कृति में गम्भीर राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कुसमायोजन है।

2) क्रमिक विकास द्वारा किया गया सुधार हमारे समाज के लिए प्रासंगिक एवं वांछनीय है।

3) सामाजिक नियोजन आवश्यक है।

इतिहास का विस्तृत वर्णन आपने समाज कार्य के प्रथम सत्र में ज्ञात किया हैं आप जान गये होगें कि समाज कार्य शिक्षा में प्रशिक्षण का प्रारम्भ दान संगठन के रूप में अमरीका में 1898 में प्रारम्भ हुआ। यह संगठन नये प्रशिक्षुओं हेतु प्रशिक्षण का प्रबंध करता था। इस प्रशिक्षण की प्रकृति निश्चित रूप से परीक्षणात्मक होती थी। यह सिर्फ पांच सप्ताहों का एक प्रशिक्षण कार्यक्रम था जो नये प्रशिक्षुओं को प्रदान किया जाता था। समाज कार्य व्यवसाय में क्षेत्र कार्य अभ्यास को प्रारम्भ करने का श्रेय मेरी रिचमंड को जाता है। जिन्होंने वैयक्तिक समाज कार्य के माध्यम से क्षेत्र कार्य अभ्यास की प्रासंगिकता को समझाया। क्षेत्र कार्य अभ्यास का मुख्य ध्येय समाज कार्य की उन विधाओं का क्षेत्र में अभ्यास करने की कला का विकास करना है जिनके माध्यम से समाज कार्य की व्यावसायिक विधियों का क्षेत्र में प्रयोग कर व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा संगठन को सहायता प्रदान की जाती है।

क्षेत्र कार्य हेतु कार्यकर्ता को कुछ तैयारी करनी होती है जिसका वर्णन निम्नवत है–

1. एजेन्सी(संस्था) की विस्तृत जानकारी एवं इतिहास को जानना।
2. एजेन्सी(संस्था) में क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षक,कर्मचारियों व उपभोगताओं से सम्बन्ध स्थापित करना।

3. एजेन्सी (संस्था) में अपनी भूमिका एवं स्थिति का पता लगाना तथा उसे स्वीकार करना।
4. संस्था और समाज कार्य कार्यक्रम से सम्बन्धित कर्मचारियों से परिचित होना तथा संस्था में अपने कार्य को समझना।
5. संस्था में कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाली भूमिकाओं एवं कार्यों को समझना।
6. संस्था में कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों की रूपरेखा तैयार करना एवं निश्चित समय सारिणी बनाना ताकि अतिरिक्त भार से बचा जा सके।
7. समाज कार्यकर्ता द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों से सम्बन्धित निपुणताओं की पूर्ण जानकारी होना।
8. व्यक्तिगत शिक्षण शैलियों एवं उसके द्वारा संपादित की जाने वाली भूमिकाओं का निर्धारण करना।
9. संस्था में अपनी भूमिकाओं का निर्धारण होना।
10. व्यावसायिक (पेशेवर) सामाजिक कार्यकर्ता की मर्यादाओं का पालन करना।

एक समाज कार्यकर्ता का पहला कदम उसका व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता बनने का निर्णय लिया जाना है क्योंकि व्यावसायिक समूह से जुड़ना एक लंबी प्रक्रिया है और क्षेत्र कार्य अभ्यास इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है। यह कोई अंतिम उद्देश्य नहीं है बल्कि सामाजिक कार्यकर्ता में समाज कार्य व्यवसाय के कौशलों को निखारने एवं ज्ञान के व्यापक होने के साथ–साथ परिवर्तित होने की कला का विकास भी किया जाना है। समाज कार्य व्यवसाय में क्षेत्र अभ्यास कार्यकर्ता के समाज कार्य व्यवसाय के साथ तादात्म स्थापित करने एवं व्यक्तिगत और व्यावसायिक सीमाएं स्थापित करने में सहायक होता है। क्षेत्र कार्य विविध परिवर्तनों, विभिन्न भूमिकाओं समूह, कार्यकर्ता, समुदाय, संगठनकर्ता, विद्यार्थी एवं पर्येवक्षेक आदि की भूमिकाओं का निर्धारण करने एवं तनावों से समायोजन करने का एक अवसर प्रदान करता है।

1.5 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का विश्वव्यापी एवं राष्ट्रीय परिदृश्य

सन् 2004 में,अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कार्यकर्ता संघ (IFSW) और अंत अन्तर्राष्ट्रीय समाज कार्य स्कूल संघ (IASSW) ने समाज कार्य व्यवसाय की शिक्षा व प्रशिक्षण के लिये अपने विश्वव्यापी मानदंड (मानक) प्रकाशित किए (सी0यू0पाल और जोन्स,2005)।इस विस्तृत और सुविचारित रूप से निर्मित दस्तावेज के हिस्से के रूप में,लेखकों ने क्षेत्र शिक्षा के लिये विशिष्ट सिफारिशें तैयार कीं।इनमें वे सिफारिशें सम्मिलत हैं जिनको प्राप्त करने की आकांक्षा कार्यक्रमों में सुसंगत रूप से होनी चाहिये :

1- विद्यार्थी व्यावसायिक अभ्यास के लिये तैयार हो सकें यह सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त अवधि वाली ऐसी क्षेत्र शिक्षा जिसमें कार्यों की जटिलता तथा सीखने के पर्याप्त अवसर हों।
2- स्कूल और एजेंसी /क्षेत्र नियोजन व्यावस्था के बीच योजनाबद्व समन्वय और संपर्क।
3- क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षकों या प्रशिक्षको के लिये अभिविन्यास का प्रावधान।

4- किसी भी देश के समाज कार्य व्यवसाय के विकास स्तर द्वारा निर्धारित योग्यता के अनुसार योग्यता प्राप्त और अनुभवी क्षेत्र पर्यवेक्षकों या प्रशिक्षकों की नियुक्ति और क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षकों या प्रशिक्षकों के लिये अभिविन्यास का प्रावधान।

5- पाठयचर्या विकास में क्षेत्र प्रशिक्षकों को समाविष्ट करने और सहभागी बनाने का प्रावधान।

6- क्षेत्र शिक्षा और विद्यार्थी के क्षेत्र कार्य निष्पादन के मूल्यांकन संबंधी निर्णय लेने में शैक्षिक संस्था और एजेंसी और सेवा प्रयोक्ताओं के बीच साझेदारी।

7- क्षेत्र कार्य प्रशिक्षकों या पर्यवेक्षकों को एक क्षेत्र निर्देश नियमावली उपलब्ध कराना जिसमें इसके क्षेत्र कार्य मानदडों, क्रियाविधियों, निर्धारण मानदण्ड/कसौटी और अपेक्षाओं के ब्यौरे हों।

8- यह सुनिश्चित करना कि कार्यक्रम के क्षेत्र कार्य घटक की जरूरतों की पूर्ती के लिये समुचित और पर्याप्त संसाधन उपलब्ध करायें जायें।(2005 : 220)

भारत में विद्यार्थी,सामाजिक कार्यकर्ताओं के समक्ष समस्यायें

भारत में विद्यार्थियों और व्यावसायिकों को भारत या विदेशी मूल के साहित्य का अत्यधिक अभाव है अतः उन्हें साहित्य उपलब्ध नहीं है। भले ही भारत समाज कार्य की अधिकांश जानकारी पश्चिम से ग्रहीत की गई है लेकिन उसे उस सिद्वांत को भारत सीधे लागू करना कठिन है क्योंकि भारत विभिन्न संस्कृतियों पर आधारित है। योग्य एवं पढे लिखे कई सामाजिक कार्यकर्ताओं को कई कारणों से पश्चिम विश्वविद्यालय और पश्चिम में नौकरियॉ आकृष्ट करती हैं।सामान्यता लोगों की यह सोच होती है कि इंजीनियरिंग,चिकित्सा,कानून या व्यापार (जो व्यवसाय लोगों को अत्यधिक प्रतिष्ठित लगते है)में प्रवेश न मिल पाने के कारण उन्हें समाज कार्य व्यवसाय में आना पड़ा है ऐसे में अपने व्यवसाय पर गर्व कर पाना सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये अत्यिधक कठिन होता है। एक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य को सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा जाता उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है ।

समाजिक कार्यकर्ताओं के निम्न वेतनमान और इस व्यवसाय के प्रति व्यापक जन समर्थन का अभाव ही इंग्लैण्ड ,अमेरिका और आस्ट्रेलिया में ''प्रतिभा पलायन'' का कारण बना है। सामाजिक कार्यकर्ताओं का विदेश जाने का अन्य कारण है उनका वहॉ उच्च अध्ययन केइ इ लिये जाना। जब उन्हें ज्ञात होता है कि सिद्वान्त में उन्होंने जिन नैतिक मानकों का अध्ययन किया था वह वास्तविक रू में उन्हें अभ्यास में या अमल में नहीं लाया गया तो वे हतोत्साहित हो जाते हैं। ऐसा समाज कार्य अनुसंधान में विशेष रूप से देखा गया है।

भारत में स्नात्कोत्तर कार्यक्रमों के प्रथम वर्ष में सामान्य पाठयक्रम अंतर्वस्तु पढायी जाती है ताकि वे विभिन्न परिस्थितियों से निपटने,भिन्न–भिन्न भूमिकाओं को निभाने तथा समाज कार्य की सम्पूर्ण विधियों को अपनाने के योग्य होना चाहिये । शिक्षा के दूसरे वर्ष में विद्यार्थी अपनी विशेषताओं का क्षेत्र चुनता है। जिससे वे अपनी पसन्द के क्षेत्र में कार्य कर कौशल प्राप्त कर सके ।

भारत में ऐसा देखा गया है कि अंत विषयक दृष्टिकोण चिकित्सा या मनोचिकित्सीय सुविधा में सबसे अच्छा काम कर रहा है। वहाँ सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका सुनिश्चित होती है चाहे वह रोगी के परिवार के काम करने की हो,सामुदायिक संसाधनों या रोगियों को अभिवृत्तियों या भावनाओं से संबंधित हो। सामाजिक कार्यकर्ता को महसूस होता है कि दल के साथ काम कर रहा है और रोगी के कल्याण के लिये सौहार्द के साथ–साथ सहयोग कर रहा विभिन्न परिवेशों में इस प्रकार दलगत कार्य का अनुभव वहीं हो सकता है जहाँ समाज कार्य टीम का एक हिस्सा हो। तालमेल,संपर्क,सुनने और टीम में कार्य करने के कौशल इस प्रक्रिया में सहायक होते हैं।

भारत में उपचार की अपेक्षा रोकथाम बेहतर है क्योंकि मौजूदा कानूनों को लागू करना इतना आसान नहीं है।भारत में कानून प्रणाली उन लोगों के लिये काम करती है जिसके पास धन है। कई अपराधों की रिपोर्ट यह सोच कर नहीं की जाती कि उच्च वर्ग अपनी निर्दोषयता को सिद्व कर सकता है। कानून प्रवर्तक अपनी नौकरी पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के डर से अपना कर्त्तव्य करने से घबराते हैं जबकि अपराधकर्ता संपन्न और उच्च वर्ग का है।

समाजिक कार्यकर्ता में आधारभूत सामान्य बुनियाद होना और जहाँ समुचित हो वहाँ विशिष्ट तकनीकों का प्रयोग करना महत्वपूर्ण है। एक Generalist सामाजिक कार्यकर्ता विभिन्न संस्कृतियों के प्रति संवेदनशील होगा और विविध कौशल करने योग्य होगा।सामाजिक कार्यकर्ता को परिवार के साथ सांस्कृतिक जरूरतों के प्रति अतिसंवेदनशील के साथ भी काम करना होगा। एक Generalist सामाजिक कार्य व्यक्तिगत स्तर पर भी कार्य करता है।

1.6 मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की प्रासंगिकता

समाजिक कार्य शिक्षा में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के रूप में वैकल्पिक शिक्षा नीति ने सामाजिक कार्य शिक्षा को समाज शिक्षा प्रणाली के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण विकासों में स्थान दिया है। यू.के, यू.एस.ए, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में बड़ी संख्या में शिक्षण संस्थान दूरस्थ शिक्षा के द्वारा बी.एस.डब्ल्यू, एम.एस.डब्ल्यू की डिग्री प्रदान कर रहे हैं। व्यापक विश्लेषण के बाद पुर्नसमीक्षा करने वाले लेखकों ने निष्कर्ष निकाला है कि 'सामाजिक कार्य दूरस्थ शिक्षा पाठयक्रमों और कार्यक्रमों में पाठयक्रम और कार्यक्रम के परिणामों की तुलना पारम्परिक नियमित कक्षा कार्यक्रमों से प्राप्त परिणामों से की जाती है' (मैसी एवं सयोगी, 2001पृष्ठ संख्या, 72)।

क्षेत्र आधारित शिक्षा/ अधिगम का प्रावधान सबसे महत्वपूर्ण सरोकारों में से एक है। यद्यपि इसने विशेष रूप से भारत में सामाजिक कार्य शिक्षा की दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को मान्यता प्राप्त कराने में काफी देर कर दी है। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) में समाज कार्य विद्यापीठ ने समाज कल्याण क्षेत्र में

बड़ी संख्या में कार्य कर रहे अप्रशिक्षित कर्मचारियों के प्रशिक्षण की आवश्यकताओं को संबोधित करने के लिए वैकल्पिक शिक्षण कार्यक्रम को आरम्भ करने की आवश्यकता को पहचाना है।

सामाजिक कार्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य कुशल और प्रभावी पेशेवर तैयार करना है। जो कि प्रभावित व्यक्ति की जटिल आवश्यकताओं को, विविध जन और निजी मानव सेवा व्यवस्था को पूरा कर सके। समाज कार्य शिक्षा, व्यावसायिक कौशलों और मूल्यों की शिक्षा के साथ वैज्ञानिक जांच को सम्मिलित करता है। समाज कार्य में प्रशिक्षण कार्य करने वाले को अनेक समाज कार्य व्यवहार की कार्यप्रणालियों के उपयोग द्वारा अनेक भूमिकाओं को निभाने में सक्षम बनाता है।

समाज कार्य शिक्षा प्रणाली में अनेक प्रमुख परिवर्तन देखे गये हैं। ये परिवर्तन दो प्रमुख कारणों से हुये हैं।

1– हस्तक्षेप के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक देखभाल और सामाजिक विकास कार्यक्रमों को संचालन के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित पेशेवर की आवश्यकता को स्वीकारा गया है। इसका अर्थ है कि सामाजिक कार्य शिक्षा प्रणाली को न सिर्फ वरिष्ठ और पर्यवेक्षण के स्तर के कार्यों के लिए सामाजिक कार्य करने वाले तैयार करने हैं, बल्कि ऐसे कार्यकर्ता भी तैयार करने हैं जो संवेदनशीलता और सहानूभूति के साथ व्यापक भौगोलिक क्षेत्रों में जमीनी स्तर पर कार्य कर सकें।

2– सामाजिक कार्य शिक्षा में संभ्रान्त और शहरी रूझान की आलोचना बढ़ती जा रही है। फील्ड में कार्य करने वाले विशेष रूप से भारतीय सामाजिक कार्यकर्ता ये दावा करते हैं कि स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त विद्यार्थियों की आकांक्षाएं जमीनी स्तर पर समाज कार्य व्यवहार की वास्तविकताओं से मेल नहीं खाती। जहां उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है साथ ही परास्नातक शिक्षित समाज कार्य पेशेवरों को स्वयं अपने बीच के और ग्रामीण दूरस्थ क्षेत्रों में स्थित लोगों के बीच के सामाजिक और सांस्कृतिक अन्तराल को खत्म करने में कठिनाई होती है।

साथ ही उच्चतर शिक्षा की विद्यमान प्रणालियां सामाजिक, भौगोलिक अथवा आर्थिक रूप से वंचित स्थितियों वाले व्यक्तियों की अधिक पहुंच नहीं होती है। कुछ दशकों में उपर्युक्त विकासों पर प्रतिक्रिया के लिए अनेक पहल की गयी है।

दूरस्थ शिक्षा प्रणालियों में प्रायोगिक क्षेत्र कार्य

सामाजिक कार्य शिक्षा में करके सीखने के घटक को फील्ड वर्क, फील्ड आधारित अधिगम जैसे विविध नाम दिये जाते हैं। इन सभी में एक समान घटक विद्यार्थियों की फील्ड आधारित नियुक्ति, इन नियुक्तियों पर नियोजित असाइनमेंट किये जाते हैं, किये गये कार्य की रिकार्डिंग की जाती है, फील्ड में अनुभवों का परिलक्षण और मूल्यांकन, और निर्धारित क्रमिक अधिगम प्राप्त करने के लिए परिवेक्षणीय मार्ग निर्देशन का उपयोग किया जाता है। इसे' व्यावसायिक अधिगम' बनाने के लिए प्रायोगिक कार्य कक्षा पाठयक्रम विषयवस्तु, सिद्धांत पर आधारित होता है। और इसे अति चापित नैतिक कोड के दायरे में ही किया जाता है।

ऐतिहासिक रूप से भारत में सामाजिक कार्य शिक्षा में पश्चिमी माडल को अपनाया जाता है। और ये लगभग पूरी तरह से पश्चिमी साहित्य पर निर्भर करता है। विद्यार्थियों की भाषा, संस्कृति और सामाजिक, आर्थिक स्तर और वे व्यक्ति जिनके लिए उन्हें कार्य करना था में निरन्तर विविधता होती जा रही है। यही नहीं, चूंकि शिक्षण संस्थान मुख्य रूप से शहरी क्षेत्र में स्थित हैं अतः सूदूर क्षेत्रों में स्थित विद्यार्थी उच्चतर शिक्षा की सेवाओं तक पहुंचने में असमर्थ हैं। दूरस्थ शिक्षा प्राप्त करने वाले और कैम्पस विद्यार्थी के बीच में प्रमुख अंतर यह है कि अनेक दूरस्थ शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी अंशकालिक विद्यार्थी हैं और इसीलिए उनमें अपने पाठयक्रमों को पूर्णकालिक पारम्परिक प्रणाली की अपेक्षा अधिक वर्षों में करने की प्रवृत्ति होती है। दूसरे दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की क्षमतांए मिश्रित प्रकार की होती हैं। सामाजिक कार्य पाठयक्रमों को दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के तहत पंजीकृत विद्यार्थी स्वाभावित रूप से शिक्षा और कार्य अनुभव के विभिन्न प्रकार के स्तरों को प्रस्तुत करते हैं। ये विभिन्न क्षेत्रों के होते हैं, विभिन्न भाषाएं बोलते हैं और विविध सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आते हैं। दूरस्थ शिक्षा पद्धति के अन्दर सामाजिक कार्य में फील्ड अथवा क्षेत्र प्रायोगिक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाना वास्तव में चुनौतीपूर्ण कार्य है। पारम्परिक प्रणाली से थोड़ी समानता रखते हुये सामाजिक कार्य शिक्षण संस्थान दूरस्थ शिक्षा पद्धति में भी क्षेत्र आधारित अधिगम व शिक्षा के सभी महत्वपूर्ण घटकों को फील्ड वर्क कार्यक्रमों की संरचना में उसी प्रकार समावेशित कर देते हैं।

1.7 सार संक्षेप

क्षेत्र कार्य नियोजन में व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता के लिये क्षेत्र कार्य से सम्बन्धित व्यक्तिगत शक्तियों,कमजोरियों और भावनाओं को समझना बहुत आवश्यक होता है क्योंकि यह कार्यकर्ता को सहायता एवं बाधा दोनों पहुचॉ सकता है। इस प्रकार से क्षेत्रकार्य में यह जानना अति आवश्यक होता है कि आप क्षेत्र नियोजन से एवं पर्यवेक्षक से क्या अपेक्षा रखते है और उससे क्या सीखना चाहते है। इसमें कुछ ऐसे क्षेत्र भी हो सकते है जो आपके लिए नये हो और कुछ ऐसे भी जिनके विषय में आप अनुमान लगा सकते है। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थी को हमेशा तैयार रहना चाहिये।

1.8 परिभाषिक शब्दावली

Person	व्यक्ति	Mother institutions	दाता संस्थायें
Family	परिवार	Non-Government Organizations	गैर सरकारी संगठन
Community	समुदाय	Environmental Manipulation	स्थिति पर्यावरण

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार, डॉ0 रूपेश, क्षेत्र कार्य, असिस्टेन्स फार स्ट्रेन्थनिगं इन्फ्रास्ट्रेक्चर ऑफ हयूमिनीटिज एण्ड सोसल सांइसेज, समाज कार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 4, 5, 60—83.
2. समाज कार्य का इतिहास एवं विकास, मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, लर्निंग मटेरियल, रूचि प्रिन्टर्स भोपाल, वर्ष 2003, पेज 89—101.
3. समाज कार्य प्रैक्टिकम : सिहंगाावलोकन,इदिंरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय समाज कार्य विद्यापीठ।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की अवधारणा को समझाइये।
2. समाज कार्य के मूल प्रत्यय क्या हैं।
3. समाज कार्य अभ्यास में मौलिक मूल्यों का महत्व क्या है
4. समाज कार्य को समझने के लिये इसके दर्शन को समझना क्यों आवश्यक है।

इकाई – दो

समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास, भूमिकायें एवं अपेक्षायें

इकाई का रूपरेखा

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास

2.4 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में भूमिकायें एवं अपेक्षायें

2.5 समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की भूमिकायें एवं अपेक्षायें

2.6 समाज कार्य व संस्था सम्बन्धी सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल

2.7 सार संक्षेप

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.10 सन्दर्भ सूची

2.1 परिचय

प्रथम वर्ष के छात्रों को विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं और सामुदायिक परिप्रेक्ष्य में उनसे सम्बन्धित संस्था में नियुक्ति के पूर्व तत्कालिक क्षेत्र कार्य हेतु पूरे शैक्षिक सत्र में एक निश्चित अवधि के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य समाज कार्य के विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न प्रकार के संस्थाओं, विभिन्न तकनीकियों के प्रयोग, पद्धतियां, व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं परिवर्तन से परिचित कराना है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न की जानकारी प्राप्त कर सकेगें:–

- समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास के बारे में जान सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में भूमिकायें एव अपेक्षाओं के बारे में लिख सकेगें।
- समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की भूमिकायें एव अपेक्षायें क्या होती है। के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- समाज कार्य व संस्था सम्बन्धी सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल के बारे में लिख सकेगें।

2.3 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यास

सामान्यत: समाज कार्य विद्यालय/विश्वविद्यालय अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों को पाठयक्रम के अनुसार आयोजित करते हैं एवं विभिन्न संस्थाओं का कार्यक्रम बनाते है। यद्यपि भ्रमण कार्यक्रम की प्रक्रिया एवं पद्धति विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अलग–अलग होती है। भ्रमण कार्यक्रम के अन्तर्गत सामान्यत: अभिमुखी कार्यक्रमों का आयोजन अभिकरण के छात्रों के क्षेत्र कार्य के लिए नियुक्ति से पूर्व किया जाता है और सामान्यत: कार्यक्रम प्रथम सत्र में ही पूर्ण कर लिये जाते हैं।

चूकि उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय समाज कार्य की शिक्षा स्नातकोत्तर स्तर पर प्रदान कर रही है जिसमें विभिन्न पर्यवेक्षक अपने उत्तरदायित्वों के अनुसार समाज कार्य के विद्यार्थियों को निर्देशित करेगें कि वे अभिमुखी कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्थाओं का चयन कर स्वयं इनके बारे में जानकारी प्राप्त कर लें। अभिमुखी व्याख्या हेतु अग्रलिखित प्रतिदर्श दिये जा रहे है। जो कि समाज कार्य के प्रथम वर्ष के छात्रों द्वारा अभिमुखी भ्रमण के बाद भरे जायेगें। इस प्रपत्र का प्रारूप

2.3.1 अभिमुखीकरण व्याख्या प्रतिदर्श

सामान्य

1. संस्था का नाम :
2. प्रशिक्षार्थी का नाम :
3. भ्रमण संख्या एवं व्याख्या संख्या :
4. दिन एवं दिनांक :
5. संकाय पर्यवेक्षक :

6. संस्था पर्यवेक्षक :

परिचय

एम.एस. डब्लू भाग–1 का अभिमुखीकरण भ्रमण दिनांक .... को .... बजे आयोजिक किया गया।

अभिमुखीकरण भ्रमण समाज कार्य शिक्षण में एकीभूत समाज कार्य प्रशिक्षण का अभिन्न अंग है। यह सामाजिक संस्थाओं को उनकी प्रकृति, संरचना, उद्देश्यों, लक्ष्यों, क्रिया विधियों कार्य–कलानों एवं कार्य पद्धतियों, कार्य संस्कृति एवं समाज कार्यो में समाज कार्य तकनीकियों के उपयोग को समझने के लिए किया गया परिचयात्मक एवं अवलोकनात्मक भ्रमण है।

प्रस्तावित संस्था का दौरा करने के पूर्व पर्यवेक्षक श्री/श्रीमती .... ने कर्ता का मार्ग दर्शन किया। इस पृष्ठभूमि के साथ श्री/श्रीमती .... के पास भेजा गया। संस्था पर्यवेक्षक ने कर्ता का स्वागत किया। उसके बाद कर्ता ने उनको स्वयं का परिचय दिया। तद्पश्चात संस्था पर्यवेक्षक ने संस्था के कार्यो की जानकारी दी। कर्ता ने विभिन्न विभागों का भी भ्रमण किया एवं उन्हें तथा उनकी क्रिया विधि को देखा। सम्बन्धित व्यक्तियों एवं अपने अवलोकन से एकत्रित की गई सूचनायें उनका मूल्यांकन करने हेतु अग्रलिखित रूप से प्रस्तुत है।

संस्था की स्थिति

संस्था .... (भौगोलिक स्थिति) में स्थित है।

संस्था की पृष्ठभूमि

.... वर्ष .... में स्थापित की गई। श्री .... इस संस्था के सदस्य है। थे। इस संस्था की . ... राज्य में .... शाखाएं हैं। मुख्यालय .... में स्थित है। यह .... के अन्तर्गत पंजीकृत है और इसकी पंजीकरण संख्या .... है। वास्तविक कार्य कलाप वर्ष .... में प्रारम्भ हुए। श्री .... अध्यक्ष/सभापति है।

निदेशक मंडल

1. .... अध्यक्ष/सभापति
2. .... सहअध्यक्ष/सहसभापति
3. .... सचिव
4. .... संयुक्त सचिव
5. .... कोषाध्यक्ष
6. .... निदेशक
7. .... सहनिदेशक
8. .... सहनिदेशक

संगठनात्मक ढांचा

कर्मचारी/पदनाम, कार्य विवरण आदि

संस्था के उद्देश्य

संस्था का उद्देश्य है :

1.

2.

3.

4.

5.

पूंजी विनियोग

निधियों की व्यवस्था विभिन्न स्रोतों जैसे समुदाय/न्याय/शासन/विदेशी निधि/व्यक्तिगत ऋण, से की गई है। इस संस्था को स्थापित करने के लिए कुल पूंजी विनियोग की आवश्यकता है। वर्तमान पूंजीगत द्वारा .... रु0 का है। संस्था .... के लिए .... से अनुदान भी प्राप्त करती है।

क्रिया कलाप/कार्यक्रम/उत्पादन

(विस्तार में वर्णन) समाज कार्य पद्धतियों का उपयोग

2.3.2 समाज कार्य पद्धतियों का उपयोग

(वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, सामुदायिक संगठन, सामाजिक कल्याण प्रशासक, सामाजिक कार्य शोध, सामाजिक कार्य)

संस्था का योगदान (संक्षिप्त में विवरण दें)

अतिरिक्त सूचनाएं

सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका (संक्षेप में वर्णन)

टिप्पणी

हस्ताक्षर **हस्ताक्षर**

पर्यवेक्षक **छात्र**

समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक सेवा कार्य तथा सामुदायिक सेवा कार्य प्रमुख है। समाज कार्य छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे इन प्रविधियों का प्रयोग करने से पहले समाज कार्य की विभिन्न प्रणालियों का गहन अध्ययन कर सुक्ष्म जानकारी एकत्रित करें। उसके बाद इन प्रणालियों का प्रयोग करें। उपयुक्त प्रणालियों को अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अलग–अलग दर्शाया गया है। तथा उनके प्रारूप दिये गये है। इन्हीं प्रारूपों के

अनुसार छात्र/छात्राओं को चाहिए कि वे अपना क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षक की निगरानी में पूर्ण करे। वैयक्तिक सेवा कार्य हेतु प्रारूप अग्रलिखित है।

सामान्य वैयक्तिक कार्य की आख्या

1. छात्र का नाम
2. विश्वविद्यालय का नाम
3. वर्ष एवं बैच संख्या
4. कक्षा एवं अनुक्रमांक
5. वैयक्तिक कार्य के लिए अध्ययन किया गया साहित्य
6. एकत्रित सूचना की प्रकृति
7. सामान्य क्षेत्र कार्य में प्रयोग की गई पद्धतियां
8. पर्यवेक्षक एवं अभिकरण पर्यवेक्षकों द्वारा दिया गया मार्गदर्शन एवं सहयोग
9. वैयक्तिक कार्य प्रयोग में लायी गई सामान्य क्षेत्र कार्य ज्ञान की उपयोगिता
10. सामान्य क्षेत्र कार्य में आयी समस्याएं एवं कठिनाइयां
11. सामान्य क्षेत्र कार्य सम्बन्धित विचार एवं सुझाव

हस्ताक्षर **हस्ताक्षर**

पर्यवेक्षक **छात्र**

केशशीट का प्रारूप

1. सेवार्थी का नाम
2. पता
3. आयु
4. लिंग
5. शिक्षा
6. धर्म एवं उपजाति
7. रूचि
8. आदतें
9. समस्या की प्रकृति
10. वैयक्तिक की पृष्ठभूमि
11. अभिकरण में प्रवेश
12. अभिकरण प्रतिवेदन
13. शिक्षा, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, दृष्टिकोण एवं सोच आदि के सन्दर्भ में अभिभावकों की पृष्ठभूमि

14. परिवार की सामान्य पृष्ठभूमि

हस्ताक्षर

(अभिकरण अधीक्षक)

वैयक्तिक प्रपत्र के गहन अध्ययन से छात्रों को वैयक्तिक की प्रकृति के बारे में ज्ञान हो जाएगा जोकि आगे की पूंछताछ का आधार होगा इस सामान्य पृष्ठभूमि के साथ वैयक्तिक कार्य की व्यवसायिक अध्ययन की शुरूआत होती है।

कार्य समाप्ति आख्या का आदर्श प्रतिरूप

1. छात्र का नाम
2. विश्वविद्यालय का नाम
3. बैच संख्या
4. रोल नं.
5. सेवार्थी का नाम एवं पता
6. सेवार्थी की संक्षिप्त पृष्ठभूमि
7. समस्या की प्रकृति
8. संक्षिप्त में वैयक्तिक कार्य का अध्ययन एवं व्यवहार
9. मामले को हल करने में सफलता या असफलता, धारण सहित
10. अभिकरण की आख्या
11. राय एवं सुझाव

दिन :

दिनांक :

स्थान :

हस्ताक्षर **हस्ताक्षर**

(अभिकरण पर्यवेक्षक) **(छात्र)**

स्व–मूल्यांकन

यह कहा जाता है कि स्व मूल्यांकन सर्वश्रेष्ठ मूल्यांकन है। छात्रों को अपने फील्ड में अपने द्वारा सीखे गए एवं वैयक्तिक कार्य प्रशिक्षण पूर्ण करने में किए गए प्रयासों के आधार पर अपनी उपलब्धि का स्वयं मूल्यांकन करना चाहिए। मूल्यांकन ईमानदारी से करना चाहिए और उसकी प्रतिवेदन सम्बन्धित पर्यवेक्षक को मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रपत्र का प्रारूप निम्नवत है :

स्व–मूल्यांकन प्रतिवेदन

1. छात्र का नाम

2. विश्वविद्यालय का नाम
3. बैच संख्या
4. रोल नं.
5. पर्यवेक्षक का नाम
6. अभिकरण पर्यवेक्षक का नाम
7. Placement की अवधि
8. अभिकरण की प्रकृति के बारे में सामान्य अध्ययन
9. निबटान किए गए वैयक्तिकों की संख्या
10. सामाजिक कार्यदक्षता तथा वैयक्तिकों को निपटाने में प्रयोग किए गए तरीके
11. वैयक्तिकों को हल करने के नवीन विचारों का उपयोग
12. क्षेत्र में उपलब्धि
13. पर्यवेक्षक एवं अभिकरण पर्यवेक्षकों से प्राप्त मार्गदर्शन के सम्बन्ध में विचार
14. अध्ययन के लिए नियत प्रशासनिक कार्य

स्थान	हस्ताक्षर
दिनांक	(छात्र)

2.3.3 अभिलेखन : वैयक्तिक कार्य डायरी

सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में प्रथम वर्ष के छात्रों में डायरी लिखने की कला का अभाव होता है और जब केस वर्क डायरी लिखने की बात आती है तो वे भ्रमित हो जाती है। उनकी पारस्परिक लेखन शैली केवल भ्रमणों की संख्या समय और उनके भ्रमण एवं लौटने के बारे में एक दो वाक्यों तक सीमित रह जाती है। वास्तव में छात्रों को डायरी लिखते समय हर बार औपचारिकताओं का वर्णन नहीं करना चाहिए बल्कि किए गए कार्य के बारे में संक्षेप में लिखना चाहिए। केसवर्क डायरी एवं जर्नल में लिखने के सम्बन्ध में वे अध्याय 1 का संदर्भ ग्रहण कर सकते हैं जिससे उन्हें डायरी लेखन की पद्धति समझने में सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए कुछ आदर्श प्रतिरूप नीचे दिए गए है :

केसवर्क डायरी के उदाहरण

1.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

क्षेत्र में पहला भ्रमण एक परिचयात्मक भ्रमण था। अतः मैने व मेरे साथियों ने अभिकरण पर्यवेक्षकों को अपना परिचय दिया। अभिकरण पर्यवेक्षकों ने भी स्वयं का परिचय दिया और अपनी व्यक्तिगत शैक्षिक एवं सेवा पृष्ठभूमि तथा उनके अभिकरण में प्रवेश के बारे में संक्षिप्त में सामान्य सूचनाएं प्रदान की। यह परिचय एक मित्रतापूर्ण ढंग से हुआ परन्तु इससे हमें अधिकारियों के साथ शिष्टाचार एवं शिष्ट व्यवहार के बारे में जानकारी मिली इसके बाद अभिकरण में भेजे गए सभी क्षेत्र कार्य छात्र कार्यालय के अन्दर गए और अन्य कार्यालय कर्मचारियों से परिचित हुए।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

2.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

अभिकरण पर्यवेक्षक ने मुझे अभिकरण के कर्मचारियों से अभिकरण की प्रकृति एवं संरचना के बारे में सामान्य सूचनाएं एकत्रित करने का आदेश दिया। तदनुसार में कार्यालय के सभी सम्बन्धित कर्मचारियों से मिला और अभिकरण की स्थापना, मंजीकरण संख्या, न्यासियों, संविधान, उद्देश्य एवं प्राप्त लक्ष्यों के बारे में सूचनाएं प्राप्त की।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

3.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

आज मुझे अभिकरण की कार्य प्रणाली देखने को कहा गया। अतः मैं कार्यालय में बैठा एवं तौर–तरीकों, शिष्टाचार बोलने की शैली उपयोग में आने वाली भाषा, व्यवहारिक विष्ज्ञय वस्तुओं और कार्यालय में किए जाने वाले कार्यो की प्रकृति का उवलोकन किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

4.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

अभिकरण में चार भ्रमणों में सामान्य जानकारी प्राप्त करने के बाद मुझसे कुछ मामलों की फाइलों का अध्ययन करने के लिए कहा गया। निर्देशानुसार मैंने कुछ केस फाइलों का अध्ययन किया और उनके विषय वस्तु मसौदों, भाषा, प्रस्तुतीकरण, प्रक्रिया, सेवार्थी की समस्याओं की प्रकृति और अभिकरण पर्यवेक्षक द्वारा उनके निपटाने के तरीकों को समझा। इससे मुझे वैयक्तिक कार्य के बारे में एक सामान्य जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिली।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

5.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

मामलों के निपटाने के तौर–तरीकों को समझने के लिए मुझे अगले 3–4 भ्रमणों में वैयक्तिक कार्य व्यवहार का अवलोकन करने के लिए कहा गया। तद्नुसार, मैं अभिकरण पर्यवेक्षक के सामने बैठा और मैंने उनके तौर तरीकों तथा सामाजिक कार्यकर्ता की दक्षता का अवलोकन किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

6.
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

प्रारम्भिक जानकारी से मुझे वैयक्तिक कार्य व्यवहार का अन्दाज हो गया। अतः मैंने पर्यवेक्षक से अपने को एक साधारण मामला आबंटित करने का अनुरोध किया मैने आत्म विश्वास पर विचार करते हुए मुझे एक मामला अध्ययन एवं प्रयोग के लिए दे दिया गया। हस्ताक्षर (अभिकरण पर्यवेक्षक) हस्ताक्षर (पर्यवेक्षक) हस्ताक्षर (छात्र)

7 भ्रमण संख्या : दिन : दिनांक : केस फाइल एवं अभिकरण पर्यवेक्षक से आधारभूत सूचना प्राप्त करने के बाद मैंने सेवार्थी का साक्षात्कार लेने का निश्चय किया ताकि उसकी सहायता के लिए तथा उजागर किए जा सकें। तद्नुसार मैंने आज सेवार्थी का साक्षात्कार लिया एवं उससे वैवाहिक विवाद के बारे में कुछ सूचनाएं एकत्रित की। हस्ताक्षर (अभिकरण पर्यवेक्षक) हस्ताक्षर (पर्यवेक्षक) हस्ताक्षर (छात्र)

समूहों के साथ कार्य

परिचय

प्रथम वर्ष छात्रों को विभिन्न स्वैच्छिक या स्वयंसेवी संगठनों में व्यावहारिक समूह कार्य हेतु नियुक्त किया जाता है जहाँ वे व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में समूह कार्य की तकनीकियाँ सीखते हैं एवं अभिकरण सदस्यों तथा सम्बन्धित अभिकरणों को सेवा प्रदान करते हैं। यह प्रशिक्षण सह सेवा समूह के सदस्यों, अभिकरणों तथा समाज कार्य विद्यालय के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। तथापि न तो अभिकरणों और न ही विद्यालय इन सेवाओं के उद्देश्यपूर्ण प्रयोग के प्रति गंभीर होती है। अतः प्रकरण कार्य की तुलना में इन प्रशिक्षण के प्रति लापरवाही बरती जाती है। अतः कभी–कभी प्रशिक्षु छात्र समूह कार्य प्रशिक्षण के बारे में गलत विचार रखते हैं। अधिकतर विभिन्न खेलों के आयोजन के समूह कार्य मान लिया जाता है। ऐसा मुख्यतः छात्रों एवं पर्यावेक्षकों में रूचि के अभाव, व्यावहारिक पाठ्य क्रमों तथा हस्तपुस्तिका की अनुपलब्धता, अभिकरण में समय–समायोजन की समस्या आदि के कारण होता है। फिर भी छात्रों को वर्ष दर वर्ष अभिकरणों में समूह कार्य प्रशिक्षध के लिए स्थापित या नियुक्त किया जाता है और इस उपाधि प्राप्त करने के एक औपचारिकता

के रूप में पूर्ण किया जाता है। इसके कारण होने वाली हानि का निर्धारण करने के प्रति कोई रूचि नहीं रहती है; और इसकी किसे होती है। प्रशिक्षण का लागत–विश्लेषण भी नहीं किया जाता है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित समाज कार्य विद्यालयों में समूह कार्य प्रशिक्षण की स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा व्यवसायिक एवं उपयोगिता की दृष्टि से महत्व को देखते हुए एक विशिष्ट व्यावहारिक (प्रायोगिक) पाठ्यक्रम के अनुसार अपना समूह क्षेत्रीय कार्य करना चाहिए।

समूह कार्य कार्यक्रम का नमूना रेखाचित्र

1. समूह का निर्माण
2. समूह के सदस्यों का परिचय
   a. **व्यक्तिगत आंकड़े** – उनकी आयु, शिक्षा, जाति, धर्म, रूचियों, आवर्ती, उपलब्धियों, प्रगति एवं कमियों के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्रित करना।
   b. **परिवारिक आंकड़े** – पारिवारिक पृष्ठभूमि परिवार के आकार, अविभावकों का पेंशा, शिक्षा, आय, संसाधनों, सुविधाओं, पारिवारिक कठिनाइयां एवं समस्यायें, और प्रकरण कार्य हेतु ऐसी अन्य सूचनायें प्राप्त करना।
3. **खेलों का संचालन** – आन्तरिक एवं वाह्य खेलों कि कबड्डी, खो–खो, लंगड़ी, कैरम, शतरंज एवं ऐसे अन्य खेलों का संचालन तथा वस्तुओं तथा सामग्रियों की तैयारी।
4. **संस्कार कार्यक्रमों पर प्रवचन** – लघु कथाओं, गीतों, नुक्कड़ नाटकों, कविताओं, मुहावरें एवं लोकोक्तियों आदि का आयोजन जो कि समूह के सदस्यों के समाजीकरण, विकास एवं संस्कारों के सवर्धन में सहायता प्रदान करते हैं।
5. **सामान्य अध्ययन परीक्षा संचारित करना** : निबन्ध प्रतियोगिता, वाकपटुता प्रतियोगिता, हस्तलेखन प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता, शब्दावली विकास के खेल, पुरूस्कार वितरण समारोह आदि का आयोजन करना।
6. **राष्ट्रीय पर्वो को मनाना** – स्वतन्त्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, ईद, होली, दीपावली, आदि पर्वो का आयोजन।
7. **महान विभूतियों की जयंतियों को मनाना** – विनोवा भावे जयंती, महात्मा गांधी जयंती, लाल बहादुर शास्त्री जयंती, जवाहर लाल नेहरू जयंती, जय प्रकाश नारायण जयंती, सुभाष चन्द्र बोंस जयंती, डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर जयंती, शहीद भगत सिंह जयंती आदि।
8. **सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन** – गीत नृत्य, नकल उतारना, अंताक्षरी, पिकनिक आदि का आयोजन।
9. **अविभावक बैठकों का आयोजन** – अविभावकों को अपने बच्चों की कमियाँ, रूचियों, अच्छाइयों, आदतों, सामाजिक–मनोवैज्ञानिक समस्याओं तथा विकास प्रक्रिया में उनके उत्तरदायित्व आदि के सम्बन्ध में जानकारी देने के उद्देश्य से बैठक आयोजित करना।

10. **मार्गदर्शन एवं सलाहकार सेवाएं** – शिक्षा, पढ़ने, लिखने, गंदी आदतों के जीवन पर दुष्प्रभाव, सिनेमा एवं टेलीविजन के दुष्परिणाम, सामाजिक नियमों, सांस्कृतिक मूल्यों एवं विश्वासों के महत्व के बारे में मार्गदर्शन।
11. **समापन समारोह** – व्याख्यान, समूह के सदस्यों के साथ अपना अनुभव बांटना, समूह फोटोग्राफ, समूह की गतिविधियों में भाग लेने एवं योगदान देने के लिए पुरस्कार देना एवं समूह के लिए विदाई समारोह आयोजित करना।
12. **निकास साक्षात्कार** – समूह के सदस्यों पर प्रभाव समूह की उपयोगिता एवं सुधार के सम्बन्ध में सदस्यों के विचार एवं सुझाव।

समूह कार्य का अभिलेखन

समूह कार्य छात्रों को कार्यक्रमों एवं समूह के सदस्यों की प्रतिक्रिया को डायरियों, जर्नलों एवं आख्याओं में अभिलिखित करना चाहिए। यह अभिलेखन निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए आवश्यक है :

1. परीक्षा में समूह कार्यकर्ताओं की उपलब्धियों के मूल्यांकन के लिए।
2. समूह के सदस्यों के भाग लेने के प्रमाण के रूप में।
3. उनके दृष्टिकोण एवं विचारों में हुए परिवर्तनों की पहचान के लिए।
4. समूह कार्य के माध्यम से व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में समूह कार्य अभ्यास के उपयोग का मूल्यांकन।
5. संस्था में अभिलेख रखने के लिए।
6. समाज कार्य साहित्य के पुस्तकालय का विकास करने के लिए।

व्यवस्थित अभिलेखन विशेष रूप से ग्रामीण छात्रों के लिए कठिन प्रतीत होता है। अतः यहाँ संदर्भ एवं सीखने के लिए कुछ आदर्श लेखन प्रारूप दिए जा रहे हैं।

समूह कार्य डायरी

समूह कार्यकर्ताओं या प्रशिक्षित छात्रों को डायरी लिखने का प्रयोजन या उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। समूह कार्य डायरी में अभिलेखन समूह के सदस्यों की गतिविधियां एवं प्रतिक्रियाओं के निष्कर्षो/निर्णयों पर आधारित होना चाहिए। यह संक्षिप्त एवं बिन्दुवार होना चाहिए। तथापि, प्रतिक्रियाओं के बारे में अवलोकनों/निष्कर्षो को सदैव रूप से ऑफिस करना चाहिए क्योंकि सूक्ष्मतम वर्णन की सदैव याद रखना अत्यन्त कठिन होता है एवं भविष्य में समूह कार्यकर्ता जर्नल लिखते समय या समूह से व्यवहार करते समय महत्वपूर्ण निष्कर्षो को भूल सकते हैं। इस सम्बन्ध में आदर्श लेखनों का संदर्भ ग्रहण किया जा सकता है :

प्रारूप – 1

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

सदस्य कागज की कुछ वस्तुऐं बनाने में रूचि रखते थे। अतः उन्हें यह सामान बनाने की अनुमति प्रदान की गई। सभी लोगों के साथ विचार–विमर्श करने एवं विचारों का आदान–प्रदान करने के बाद समूह के सदस्यों ने पतंग, गुड़िया, वाहन, पशु, चिड़िया आदि बनाई। उनमें टीम भावना एवं एकता का विकास हुआ जिसकी सहायता से उनमें स्वरूप संबंध एवं समूह भावना स्थापित हुई।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 2

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

आज समूह के सदस्य समूह कार्यकर्ताओं से कहानियां सुनना चाहते थे अतः उनके मनोरंजन एवं उनकी सच्चाई का संदेश देने एवं उसका महत्व बताने के लिए लकड़हारे की लघु कथा सुनाई गई। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सत्य का पालन करना चाहिए। कहानी के माध्यम से दिए गए संदेश को सीखकर समूह क सदस्य प्रसन्न हुए।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 3

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

परिवर्तन हेतु छात्रों ने – पिकनिक विषय पर विचार–विमर्श करना चाहा। इस बारे में प्रत्येक बोल रहा था, सिवाय एक व्यक्ति के जो कि न तो अपने विचार व्यक्त कर रहा था और न ही कोई रूचि दिखा रहा था। यह समूह को बताया गया। उसके मौन का कारण जानने के लिए एवं गोपनीयता रखने के उद्देश्य से

उसे उस स्थान से बुलाया गया। उसने अपनी समस्या बताई। उसकी समस्या हल करने के लिए उसे सलाह देना आवश्यक समझा गया। इसके बाद पिकनिक के लिए एक तिथि भी निश्चित की गई।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 4
भ्रमण संख्या :
दिन :
दिनांक :

आज समूह के सदस्य महात्मा गांधी द्वारा स्वच्छकार समुदाय के लिए किए गए कार्य के बारे में जानने के लिए रूचि रखते थे। अतः इस क्षेत्र में उनके कार्य एवं योगदान पर एक व्याख्यान दिया गया। समूह के सदस्यों ने प्रश्न पूछे और विस्तार से विचार–विमर्श किया गया तथा इस विषय पर एक निबन्ध लिखने का निश्चय किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

समुदाय के साथ कार्य

सामुदायिक संगठन में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण की एक पुरानी पद्धति है। भारत में समाज कार्य के विद्यालयों ने इसे 1960 तथा 1980 में प्रारम्भ किया। अब तक दूरस्थ क्षेत्रों में यह अभी भी उपेक्षित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि कुछ विद्यालयों में इसका प्रशिक्षण दिया जा रहा है वहाँ इसे विशिष्ट प्रयोगात्मक पाठ्यक्रम को सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया है। अधिकांश छात्र सामुदायिक संरचना में कार्य कर रहे है तथा पर्यवेक्षकों के मार्गदर्शन व पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अपना प्रशिक्षण भी प्राप्त कर रहे हैं। इस क्षेत्र के कुछ विशेषज्ञों ने सामुदायिक संगठन के आदर्श प्रतिमान विकसित किये है।

क्षेत्र कार्य की कार्य पद्धति

हमारे देश के दूरस्थ क्षेत्रों में समाज कार्य के विद्यालयों में समाज कार्य के वातावरण में वैज्ञानिक अभ्यास का विकास ठीक से नही हो पाया है। यहाँ पर किसी प्रकार की विवरणिका या कार्यपद्धित नही है जिसका अनुसरण किया जा सके। यद्यपि पर्यवेक्षक मौखिक मार्गदर्शन के द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हें और छात्र समुदायाओं में क्षेत्र कार्य को ठीक प्रकार नहीं कर पा रहे हैं। इसको ध्यान में रखते हुए क्षेत्रकार्य

की कार्यपद्धति की व्यवहारिक बाधाओं का विस्तार से विचार–विमर्श किया गया है। क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण व समुदाय विकास के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित निर्देशों के आधार पर उचित समुदाय का चयन किया जा सकेगा –

1. समुदाय छात्रों तथा विद्यालय दोनों के लिए भौतिक रूप से सुगम होना चाहिए।
2. आवश्यक मूलभूत सुविधाओं का उपलब्ध होना चाहिए।
3. किसी व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता या समाज कार्य विद्यालय द्वारा चिन्हित समुदाय होना चाहिए जहाँ समाज कल्याण सेवाओं की आवश्यकता हो।
4. समुदाय के लोगों में सेवाओं के प्रति रूचि, उत्साह व जोश होना चाहिए।
5. समुदाय के लोगों को अपने विकास के लिए स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए तैयार होना चाहिए।
6. वे अपनी आवश्यकताओं को विद्यालय या संगठन में स्वतंत्र रूप से विचार देने चाहिए।

समुदाय का चयन

विद्यालय में उपलब्ध सूचना एवं सामान्य दिशा निर्देशों के आधार पर एक उपयुक्त समुदाय का चयन करना चाहिए। यह चयन समुदाय की आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए एवं यह चयन जरूरतमंद व्यक्तियों की सेवा प्रदान करने के लिए होना चाहिए। सदस्यों एवं छात्रों को समुदाय के भौगोलिक क्षेत्र के बारे में एक सामान्य जानकारी प्राप्त करने के लिए भ्रमण करना चाहिए ताकि इस समुदाय की उपयुक्तता के बारे में उचित निर्णय लिया जा सके। तत्पश्चात् प्रशिक्षण एवं विकास के लिए समुदाय का अन्तिम चयन करना चाहिए।

सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित आंकड़े

छात्रों को चयनित समुदाय का भ्रमण फील्ड कार्य हेतु निर्धारित किए गये दिनों पर करना चाहिए। प्रारम्भ में, समुदाय के विभिन्न जातीय एवं धार्मिक समूहों की सामाजिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करने के लिए छात्रों की पूरी टीम (दल) की समाज के नेताओं एवं प्रमुख व्यक्तियों से घुलना–मिलना चाहिए तथा मेलजोल बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार की सूचना या जानकारी आगे के कार्यक्रमों की योजना बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। सूचना एकत्रित करने के लिए तैयार किए गए सूचना पत्र का उपयोग अभिलेखन करने एवं उचित परिचय हेतु किया जा सकता है।

समुदाय का सूचना पत्र

1. समुदाय का नाम :
2. समुदाय का प्रकार : ग्रामीण / शहरी / उपनगरीय / मलिन बस्ती
3. समुदाय की स्थिति :
4. कुल आबादी :

5. घरों की संख्या :
6. आय के मुख्य स्रोत :
7. सामाजिक संगठनों की संख्या :
8. समुदाय की प्रमुख भाषा :
9. मुख्य समस्याऐं एवं आवश्यकताएं :
10. साफ–सफाई की दशा :
11. वाह्य कार्य परियोजना के मुख्य क्षेत्र :
12. क्षेत्र कार्य परियोजना का शीर्षक :
13. परियोजना की अवधि :
14. क्षेत्र कार्य प्रशिक्षुओं के नाम :
15. पर्यवेक्षकों के नाम :
16. बैच संख्या :

डायरी लेखन

समाज कार्य के ग्रामीण क्षेत्रों में छात्र डायरी लेखन में समस्या का सामना करते है। वे डायरी लेखन में भ्रमणों की संख्या, समय, पर्यवेक्षकों एवं सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ बैठकों का वर्णन करते हैं। डायरी लेखन में इन औपचारिकताओं से बचना चाहिए एवं डायरी में प्रशिक्षु छात्रों को अपने द्वारा किए गए कार्य के बारे में संक्षेप में लिखना चाहिए।

सामुदायिक कार्य की नमूना डायरी

प्रारूप – 1

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

चयनित समुदाय के लोगों की समस्याओं की पहचान के लिए (जानने के लिए) मैनें एवं सह–कार्यकर्ताओं ने समुदाय के नेतृत्व के साथ विस्तार से विचार–विमर्श किया एवं यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी मूल समस्या महिलाओं को रोजगार या कार्य उपलब्ध कराना है जिससे कि वे अपने परिवारों का पालन–पोषण कर सकें। तथापि, विस्तृत सूचना एकत्र करने के लिए अगले सप्ताह महिलाओं से सीधे बातचीत करने का निश्चय किया गया।

हस्ताक्षर हस्ताक्षर हस्ताक्षर

(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 2

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

जैसा कि विगत सप्ताह निश्चय किया गया था मैने मेरे सह–कार्यकताओं ने समुदाय में निवास कर रही महिलाओं के साथ विचार–विमर्श किया एवं यह पुष्टि की कि रोजगार उनकी प्राथमिक आवश्यकता थी। इस समस्या के समाधान हेतु कार्य योजना बनाने के लिए हमने आपस में विचार–विमर्श किया तथा यह निश्चय किया गया कि अगले सप्ताह इस सम्बन्ध में अपने संकाय सदस्यों से बातचीत की जाए।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 3

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

अपने निर्णय अनुसार हम लोगों ने अपने पर्यवेक्षकों के साथ विचार–विमर्श किया तथा सम्बन्धित व्यक्तियों से विस्तृत विचार–विमर्श करने के लिए उनके विचार एवं सुझाव जानने के लिए एवं लोकतांत्रिक पद्धति से निर्णय लेने के लिए एक बैठक का आयोजन किया बैठक का दिनांक, समय एवं स्थान निश्चित किया गया तथा लोगों की इस निर्णय की सूचना देने का निश्चय किया गया। इसके लिए एक कार्य सूची भी तैयार की गई।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 4

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

हम अपने द्वारा आयोजित बैठक में समय से पहुंच गए। हमारी सहायता के लिए समुदाय के युवक जल्दी आ गए थे। सभी प्रमुख महिला एवं पुरूषों ने बैठक में भाग लिया। हमारी बैठक के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया अत्यन्त उत्साहवर्धक थी। हमारे पर्यवेक्षकों ने बैठक में एक लघु स्याही उत्पादन इकाई लगाने का निश्चय किया गया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

प्रारूप – 5

भ्रमण संख्या :

दिन :

दिनांक :

समुदाय के लोगों के साथ पिछली बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार हमने प्रस्तावित परियोजना की प्रक्रिया एवं उपलब्ध सुविधाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए औद्योगिक विकास निगम के कार्यालय का भ्रमण करने का निश्चय किया।

हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर
(अभिकरण पर्यवेक्षक)	(पर्यवेक्षक)	(छात्र)

छात्रों हेतु निर्देश

समाज कार्य में वैयक्तिक सेवा कार्य, समूह सेवा कार्य तथा सामुदायिक सेवा कार्य के अभ्यास हेतु अग्रलिखित शीर्षक दिये जा रहे हैं। जिनको वे ऐशाइनमेन्ट के रूप में पूर्ण कर अपने पर्यवेक्षक से मूल्यांकित कराकर क्षेत्रीय क्रियाकलाप को पूर्ण कर सकते हैं।

1. **सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य से सम्बन्धित शीर्षक**

a) किसी संस्था में भर्ती हुये मादक द्रव्य सेवार्थी की वैयक्तिक इतिहास का अध्ययन तथा निदान एवं मूल्यांकन करना।

b) किसी सीजोफ्रेनिक सेवार्थी का वैयक्तिक इतिहास लिखते हुए निदान एवं उपचार प्रदान करना।

c) किसी ऐसे व्यक्ति का वैयक्तिक इतिहास लेना जो गम्भीर दुर्घटना का शिकार हुआ हो।

d) किसी ऐसे सेवार्थी हेतु पुर्नवास के लिए प्रयास करना जो मादक द्रव्यों का सेवन करता हो।

e) किसी ऐसे सेवार्थी हेतु परामर्श की व्यवस्था करना जो अवशाद ग्रस्त हो।

2. सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य से सम्बन्धित शीर्षक

a) किसी ऐसे सामाजिक संस्था में गूगें–बहरें बच्चों को शिक्षा प्रदान करना।

b) किसी ऐसे ग्राम में जहां पर महिलाओं की स्थिति दयनीय है उनको स्वयं सहायता समूह बनाने में सहायता प्रदान करना तथा उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृण बनाना।

c) किसी विद्यालय के बच्चों हेतु पिकनिक कार्यक्रम का आयोजन करना।

d) किसी ग्राम के प्रौढ़ सदस्यों हेतु प्रौढ़ शिक्षा का आयोजन करना।

e) किसी विद्यालय के बच्चों में प्रतियोगिता आयोजित करना।

3. सामुदायिक सेवा कार्य से सम्बन्धित शीर्षक

a) किसी ग्राम में नाली की समस्या को दूर करने में सहायता प्रदान करना।

b) ग्राम के निवासियों में शिक्षा की महत्ता से सम्बन्धित जागरूकता फैलाना।

c) किसी ग्राम में स्वच्छता सम्बन्धित जागरूकता फैलाना।

d) सामुदायिक के लोगों के बीच पोलियो ड्राप पिलाने हेतु जागरूकता फैलाना।

e) किसी ग्राम के लोगों के बीच स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता फैलाना।

परियोजना मार्ग दर्शन

समाज कार्य विद्यार्थियों में शोध दक्षता उत्पन्न करने हेतु उन्हें परियोजना शोध करना एक आवश्यक क्रियाकलाप है। जिसमें एक शीर्षक का चुनाव कर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करना होता है। शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम एक शोध संक्षिप्तिका का निर्माण करना होता है। शोध संक्षिप्तिका तैयार करने हेतु अग्रलिखित बिन्दु दिये जा रहे है –

1. **शीर्षक का चुनाव** – सर्वप्रथम शोध परियोजना बनाने हेतु एक शोध शीर्षक का चुनाव करना चाहिए जो समसामयिक समस्याओं से सम्बन्धित हो। जैसे ''शिक्षा एवं आर्थिक रूप से लाभ पूर्ण कार्यो द्वारा गली के बच्चों का सशक्तीकरण''।
2. **उपकल्पना का निर्माण** – शोध परियोजना हेतु समस्या के आधार पर उपकल्पना का निर्माण करना चाहिए। जैसे ''गली के बच्चों में भी छुपी हुई प्रतिभाएं होती है यदि उनको उचित माहौल मिले तो समाज में अपना योगदान दे सकते हैं''।
3. **अध्ययन की उपयुक्तता** – अध्ययन का शीर्षक क्यो चुना गया तथा इसकी उपयोगिता क्या है के बारे में स्पष्ट ब्यौरा प्रस्तुत करना चाहिए।
4. **अध्ययन के उद्देश्य** – अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए।

5. **अध्ययन हेतु प्रयोग प्रविधि** – प्रस्तुत शोध अध्ययन में कौन–कौन सी शोध प्रविधियों का प्रयोग करेगें का स्पष्ट वर्णन होना चाहिए।

i. **शोध प्ररचना** – शोध प्रविधि में कौन सी शोध प्ररचना का प्रयोग करेगें। उसके बारे में चर्चा करना चाहिए एवं परिभाषा देनी चाहिए।

ii. **शोध निदर्शन** – शोध प्रविधि में कौन सी शोध निदर्शन का प्रयोग करेगें। उसके बारे में चर्चा करना चाहिए एवं परिभाषा देनी चाहिए।

6. **तथ्य एकत्रित करने की तकनीक** – शोध अध्ययन में तथ्य एकत्रित करने हेतु दो विधियों का प्रयोग करते हैं।

i. **प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने की विधि** – प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने हेतु कई विधियों का प्रयोग करते हैं। जिनमें कुछ अग्रलिखित है –

1. अवलोकन 2. प्रश्नावली 3. अनुसूची 4. साक्षात्कार 5. वैयक्तिक अध्ययन

उपरोक्त सभी विधियों की व्याख्या एवं परिभाषा देते हुए शोध अध्ययन में कैसे प्रयोग करेगें का स्पष्ट वर्णन करना चाहिए।

ii. **द्वितीय तथ्य एकत्रित करने की विधि** – द्वितीय तथ्य वे तथ्य होते है जो विभिन्न किताबों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों इत्यादि एकत्रित किये जाते है इनका स्पष्ट निरूपण होना चाहिए।

7. **सारिणीकरण, तथ्य विश्लेषण व्याख्या एवं प्रतिवेदन** – शोध संक्षिप्तिका में स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहिए कि शोध अध्ययन में किस प्रकार की सारिणी का प्रयोग करेगें तथ्यों का कैसे विश्लेषण करेगें उनकी व्याख्या कैसे करेगें तथा उनका प्रतिवेदन करेगें।

8. **शोध अध्ययन का अध्यायीकरण** – इस शीर्षक के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध में कौन–कौन से अध्याय होगें तथा उन अध्यायों में कौन–कौन से तथ्य होगें का वर्णन करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत शोध संक्षिप्तिका तैयार कर पर्यवेक्षक को प्रस्तुत करना चाहिए तथा पर्यवेक्षक के अनुमोदन के पश्चात अपना शोध कार्य शुरू करना चाहिए।

शोध प्रबन्ध लिखने हेतु प्रारूप –

शोध प्रबन्ध लिखने के लिए सबसे पहले आवश्यक होता है कि अध्यायीकरण के अनुसार प्रतिवेदन किया जाए। इस प्रकार शोध प्रबन्ध तैयार करने हेतु अग्रलिखित शीर्षक दिये जा रहे है–

1. **प्रस्तावना** – इसमें शोध अध्ययन शीर्षक से सम्बन्धित तथ्यों को विस्तृत रूप से लिखना चाहिए तथा जो साहित्य जहां से लिये गये है उनका भी सन्दर्भ सूची में वर्णन करना चाहिए।

2. **शोध अध्ययन की उपयुक्तता, उद्देश्य** – इसमें शोध अध्ययन की उपयुक्तता तथा उद्देश्यों का स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहिए।

3. **साहित्य का पुनरावलोकन** – शोध अध्ययन का प्रतिवेदन करने में साहित्य पुनरावलोकन का महत्वपूर्ण स्थान है अतः शोध अध्ययन प्रतिवेदन में पूर्व में हुए अध्ययनों का वर्णन सांख्यिकीय तथ्यों के साथ करना चाहिए।
4. **शोध प्रविधि** – शोध अध्ययन प्रतिवेदन में विस्तृत रूप से शोध प्रविधि का वर्णन करना चाहिए। जिसमें शोध प्रचना, शोध निदर्शन तथा तथ्यों के एकत्रीकरण के बारे में भी वर्णन करना चाहिए।
5. **उत्तरदाताओं का पार्श्वचित्र** – इस अध्याय में शोध से सम्बन्धित तथ्यों के आधार पर उत्तरदाताओं का पार्श्वचित्र देना चाहिए जिसमें चित्रों, ग्राफों का भी प्रयोग किया जा सकता है।
6. **उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति** – इस अध्याय में उत्तरदाताओं से सम्बन्धित उन सभी तथ्यों का वर्णन करना चाहिए जो उनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित हो।
7. **उत्तरदाताओं की समस्यायें एवं उनके सुझाव** – इस अध्याय में उत्तरदाताओं की समस्याओं का वर्णन करना चाहिए तथा उनके सुझावों को भी स्थान देना चाहिए।
8. **निष्कर्ष** – इसके अन्तर्गत शोध अध्ययन में महत्वपूर्ण तथ्यों को दिया जाना चाहिए जिससे शोध अध्ययन की एक संक्षिप्त रूपरेंखा प्रस्तुत हो जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- शोध प्रबन्ध में जो भी तथ्य द्वितीयक स्रोतों से लिये जाते है उनका विवरण सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में देना चाहिए जो अग्रलिखित प्रारूप के अनुसार होने चाहिए।
- लेखक का नाम, किताब का नाम, प्रकाशक संस्था का नाम, वर्ष.........., पृष्ठ संख्या।

2.3 समाज कार्य क्षेत्र की दिशा में भूमिकायें एवं अपेक्षायें

भूमिकाऐं और सह संबंधित अपेक्षायें प्रत्येक सामाजिक कर्तव्य से सहमुक्त रहती है, सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिकाओं की वृत्तिक व्यवहार की अपेक्षित पद्धति रहती है। भूमिकाओं द्वारा कतिपय व्यवहार सौंपा जाता है और विशिष्ट परिस्थितियों का समुचित प्रत्युत्तर विहित किया जाता है। ये आपसी संबंधित घटक से प्रत्येक की भूमिका निर्मित होती है। एक भूमिका की धारणा, या कि कैसे व्यक्ति कार्य करता है, व्यक्ति को कैसा व्यवहार करना चाहिए जब वे किसी विशिष्ट स्थिति में पहुंचते है और भूमिका निर्वहन या व्यक्ति कैसे वस्तुतः कार्य करता है (गोल्ड स्टेन, 1973)। दूसरे शब्दों में भूमिकाओं के मनोवैज्ञानिक घटक होते हैं जिसमें दृष्टिकोण और भावनाऐं सम्मिलित हैं। सामाजिक घटक जिसमें व्यवहार और दूसरों की अपेक्षाऐं सम्मिलित हैं व्यवहार्थ घटक।

सामाजिक कार्य भूमिकायें व्यवसायिक गतिविधियों के लिए निदेशन उपलब्ध कराते हैं। भूमिकाओं द्वारा व्यवसाईयों और ग्राहकों के बीच संव्यवहार की प्रकृति परिभाषित की जाती है। भूमिकाओं द्वारा व्यवसायिक

साथियों के बीच संव्यवहार की प्रकृति भी परिभाषित होती है। सामाजिक कार्य भूमिकाऐं और उनसे सहबद्ध अपेक्षाऐं, लक्ष्यों को प्राप्त करने के सामान्य मार्गों (माध्यमों) को सुझाती है।

अनेक लेखकों जैसे (मेक फीटर, 1971), टियर और मैक फीटर 1970, 1982 पिनकस और मिन्हान (1973) जानसन, एल0सी0 (1995) ने सामाजिक कार्य भूमिकाओं को परिभाषित किया है। सामाजिक कार्य भूमिका की इस प्रस्तुति ने प्रत्येक भूमिका में अंतर्निहित जानकारी के आदान–प्रदान को उच्चारित किया है। इस प्रकार ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता का काम इन सामाजिक कार्य भूमिकाओं पर ग्राहक समूह के प्रकार के परिप्रेक्ष्य में बल देता है।

अपेक्षाऐं और काम, सामाजिक कार्य भूमिकाओं को सक्रिय करते हैं। एक रणनीति ऐसी योजना होती है जो कार्यवाही को योजनाबद्ध बनाती है, ब्लू प्रिंट उपलब्ध कराती है। अपेक्षाओं में योजना और कार्यवाही के आयाम समाविष्ट रहते हैं। जैसे ही कोई रणनीति कार्यवाही बनती है वैसे ही व्यक्ति में एक उपलब्ध कराते हैं या जानकारियों का आदान प्रदान करते हैं।

तालिका 1. सामाजिक क्षेत्र कार्य भूमिकाएं

उपभोक्ता

कार्यपरामर्श संसाधन प्रबंधन शिक्षा	व्यक्ति और परिवार इनेबलर ब्रोकर अधिवक्ता शिक्षक	औपचारिक समूह और संगठन कर्ता समन्वयक/ मध्यस्थ प्रशिक्षक	समुदाय और समाज योजनाकार कार्यकर्ता	सामाजिक कार्य व्यवसाय सहयोगी/मानीटर विश्लेषक

स्रोत – इन्फारमेशन मण्डल फॉर जर्नलिस्ट सोशलवर्क प्रैक्टिस

तालिका 2. सामाजिक क्षेत्र कार्य भूमिकाएं

उपभोक्ता

कार्य परामर्श संसाधन शिक्षा	व्यक्ति और परिवार समाधान ढूंढना केंस प्रबन्धन सूचना प्रसंस्करण	औपचारिक समूह और संगठन संगठनात्मक विकास नेट वर्किंग व्यावसायिक प्रशिक्षण	समुदाय और समाज शोध और योजना सामाजिक कार्यवाही सामुदायिक शिक्षा	सामाजिक कार्य व्यावसायिक सामुदायिक सेवा ज्ञान विकास

स्रोत – माडल फार जर्नलिस्ट सोशलवर्क प्रेक्टिस (पृष्ठ 2) (बी0सी0ट्रेसी और बी डुबोस)

सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिकाओं और अपेक्षाओं से शुरुआत और उसके पश्चात् कार्रवाई की योजना का अवधारण की अपेक्षा, परिस्थिति की प्रकृति द्वारा भूमिकाओं और अपेक्षाओं को व्यवसायिओं की पद्धति की अपेक्षाओं को उद्जानित करना चाहिए। सामाल्य सामाजिक कार्यकर्ता समस्त पद्धति स्तर पर मध्यस्था के परिप्रेक्ष्य में परिस्थितियों को विरपित करते हैं इस पहुंच से अनेक संभावनाएं मिलती है। सामाजिक कार्य कर्तव्यों और उनसे भूमिकाओं को स्पष्ट करने के लिए इस शेष अध्याय में प्रत्येक भूमिका को परिभाषित किया गया है।

परामर्श

परामर्श, व्यावसायिक गतिविधियों को निर्दिष्ट करता है जिसके द्वारा सामाजिक कार्यकर्ता और ग्राहक, ग्राहक के मुद्दों को स्पष्ट करते हुए विकल्पों को खोजते हुए और कार्य योजना विकसित करते हुए प्रारम्भ करते हैं परामर्श ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता की विशेषता पर निर्भर रहता है। सामाजिक कार्यकर्ता के पास औपचारिक रूप से अर्जित ज्ञान, मूल्य और दक्षता रहती है और ग्राहक के पास उसके व्यक्तित्व, संगठनात्मक और सामुदायिक जीवन अनुभव पर आधारित ज्ञान, मूल्य और दक्षता रहती है।

ग्राहक के साथ सहयोगी कार्य के इस दिगविन्यास को अपनाने में सशक्तीकरण आधारित सामाजिक कार्यकर्ता की ग्राहक–कार्यकर्ता के बारे में पारम्परिक धारणा में अंतर्निहित प्रतिकूलता का अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये, मेलूशियों (1979) ने ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता के प्रत्यक्षान की उसकी तुलना में पाया कि ''जबकि कार्यकर्ता ग्राहक की ओर देखते है और ग्राहक स्वयं को एक सक्रिय अवयव समझता है तथा स्वायत्त कार्यकरण, परिवर्तन और वृद्धि के लिए स्वयं को सक्षम समझता है।

हेपवर्थ,रुनी और लार्सन के अनुसार ''यद्यपि, सामाजिक कार्यकर्ता विश्वास करते है कि मनुष्य के पास उसकी क्षमताओं को विकसित करने का अधिकार और अवसर होता है, रोग विज्ञान पर उनकी प्रवृत्ति केन्द्रित करने का प्रभाव होता है। मात्र इस उपदर्शन से सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक को नकारात्मक रुप से मानता है'' ग्राहक स्व–सम्मान और आत्मविश्वास को नुकसान पहुंचा सकते हैं। यदि ग्राहक को स्वयं को सक्षम सामाजिक कार्यकर्ता के रुप में समझा जाना हो तो सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा उन्हें ऐसा ही मानना चाहिए।

भूमिकाओं और परामर्श से जुड़ी अपेक्षाओं द्वारा ग्राहक और सामाजिक कार्यकर्ता, ग्राहक के साथ व्यक्तिगत, पारिवारिक संगठनात्मक या सामाजिक समस्याओं को संबोंधित करते हैं। सूक्ष्म स्तर ग्राहक के साथ–व्यक्ति, परिवार और छोटे समूह–समर्थकारी भूमिका परामर्श अपेक्षाओं को नियमित करती है जो कि परिवर्तन लाती है। मध्यम स्तर पर, सरलीकर्ता, संगठनात्मक विकास पर फोकस करते हैं। सामाजिक

योजनाकारकी मेक्रो पद्धति भूमिका में सूक्ष्म स्तर परिवर्तन प्रारंभ करने की शोध और योजना समाविष्ट रहती है। अंत में, सामाजिक कार्यवृत्ति की पद्धति के साथ सहपाठी/मानीटर भूमिका से सहयोग प्राप्त होता है।

सूक्ष्म स्तर (माइक्रो लेबल) : समर्थकारी की भूमिका

समर्थकारी भूमिका में, व्यवसायी, सामाजिक कार्यकरण में चुनौतियों को हल करने के लिए माइक्रोलेबल ग्राहक के साथ कार्य करता है। परामर्थी अपेक्षा समर्थकारी भूमिका के पूरक हो जाती है।

समर्थकारी के समान, सामाजिक कार्यकर्ता व्यवसायी, व्यक्तिगत सामाजिक कार्यकरण के उन्नयन के लिए व्यक्ति, परिवार और छोटे समूह ग्राहक प्रणाली के साथ कार्य करते हैं। अपेक्षाओं के परामर्थ से ग्राहक की समस्या की खोज बनती है। सामाजिक कार्यकर्ता और ग्राहक परिष्कृत व्यवहार, संबंधों की परिवर्थित होती पद्धति और सामाजिक तथा भौतिक परिवेश में कारकों को उपांतरित करते हुए परिवर्तन सृजित करते हैं। समर्थकारी की भूमिका, व्यक्तियों की सहायता करने के व्यावसायिक उद्देश्यों के साथ स्थिर रहती है।

सशक्तीकरण अनुकूलित सामाजिक कार्यकर्ता, ग्राहक की शक्ति को मान्य करते हुए कार्य प्रारंभ करते है तब परिवर्तन के लिए ग्राहक की क्षमता को बनाते है।

कार्ल राजर्स (1961) ने वर्णित किया है कि व्यवसायी, ग्राहक की उसके प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक स्थितियां उपलब्ध कराने जीवन की चुनौतियों से निपटने के अनुक्रम में विभिन्न पहल का उपयोग करते हैं। परिवर्तन की शर्त व्यक्ति के भीतर और इसकी सामाजिक पद्धतियों के साथ उनके संव्यवहार में निहित रहती है।

मध्य स्तर: सरलीकर्ता की भूमिका

सरलीकर्ता भूमिका, औपचारिक समूहों, संगठना या नौकरशाही संरचना के साथ कार्य वर्णित करती है जो इन बहु व्यक्ति पद्धतियों में प्रभावी कार्यकरण को प्रौननत करते है। संगठनात्मक विकास अपेक्षायें इस भूमिका को विस्तारित करती है।

सरलीकर्ता भूमिका, मध्य स्तर ग्राहक प्रणाली के साथ कार्य करती है – जैसे ग्रन्थाकार समूह या संगठन– जो उन सामाजिक कार्यकरण में वृद्धि करते है। जब ग्रन्थाकार समूह या संगठन उन समस्याओं की पहचान करते है जिन्हें वे उनकी आंतरिक प्रक्रियाओं, संरचना या कृत्यों के साथ रखे हुए है। तब वे सामाजिक कार्यकर्ता के साथ परामर्श कर सकते है। उनका प्रारंभिक काम पारस्परिक अपेक्षाओं को और दृष्टिकोण को स्पष्ट करना होता है। सरलीकर्ता के रुप में, सामाजिक कार्यकर्ता दूसरे ग्रुप सदस्यों के मददगार व्यवहार को आदर्श उपयोगी व्यवहार की मदद कर सकते हैं। समुचित प्रश्न पूछ सकते है या समूह के बारे में समुचित टिप्पणी और भावनाएं उपलब्ध कराते है। वे दूसरे समूह सदस्यों को समूह प्रक्रिया और कार्यकरण के बारे में जानकारी की शिक्षा दे सकते है। (सानसन एल0सी01995) योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात सहभागियों को परिवर्तनों और एकीकृत लाभों को स्थिर करने की आवश्यकता है।

संगठनात्मक विकास के दूसरे पहलू के रूप में, सामाजिक कार्यकर्ता, संगठनात्मक नीति को आकार देने में एक मुख्य भूमिका निभाते है (मार्टिन 1990)। प्रश्नों के उत्तर जैसे ''क्या हम निर्धारित लक्ष्य जनसंख्या तक पहुंच रहे हैं ? ''क्या सेवाऐं प्रभावी रूप से और दक्षता से प्रदान की गई हैं ? और क्या मानीटरिंग और मूल्यांकन उपाय सफलता को माप रहे हैं ? वस्तुतः किसी नीति का अंतिम परीक्षण किसी कार्यक्रम में इसके वास्तविक क्रियान्वयन में और उपभोक्ताओं के जीवन पर उसके प्रभाव में होता है।

सामाजिक कार्यकर्ता, औपचारिक संगठनों के साथ उनके कार्य में सरलीकर्ता की भूमिका का उपयोग भी करते हैं। पुनः इस कार्य का लक्ष्य व्यक्तिगत परिवर्तन के बजाय संगठनात्मक है। उदाहरण के लिए, एक बड़े औद्योगिक संयंत्र में प्रबंधन टीम मद्यपान, अनुपस्थिति और दूसरे व्यक्तिगत मुद्दों से चिंतित थी जिसके परिणामस्वरूप निम्न प्रेरणा और कम होती उत्पादकता के रूप में निकल रही थी। वे एक सामाजिक कार्यकर्ता जोन्स मोन्टेगों की सेवाऐं प्राप्त करते हें जो कारबार और उद्योग में विशेषज्ञ है। श्रमिकों और प्रबंधन से जानकारी एकत्र करने के पश्चात जोन्स एक कर्मचारी सहायता कार्यक्रम की अनुशंसा करते है। नव गठित श्रम प्रबंधन परिषद को विचारण के लिए कर्मचारी सहायता कार्यक्रम के अनेक विकल्प प्रस्तुत करते हैं। जोन्स के कार्य से सरलीकर्ता भूमिका की संगठनात्मक विकास अपेक्षा पारिलक्षित होती है।
सामाजिक कार्य व्यवसायी, संगठनात्मक योजना, संसूचना की अतः संगठनात्मक पद्धति विनिश्चय करने की प्रक्रिया और प्रशासनिक संरचना को उन्नत करने के लिए मध्य स्तर ग्राहक प्रणाली के साथ सहयोगात्मक रूप से कार्य करता है।

मेक्रो लेबल : योजनाकार भूमिका

लक्ष्य निर्धारित करने के लिए योजनाकार की भूमिका धारण करने के लिए सामुदायिक सामाजिक संरचना के साथ कार्यकरण से नीतियां विकसित होती है और कार्यक्रम प्रारंभ होते है। योजनाकार की भूमिका के साथ सहबद्ध अपेक्षाओं में शोध और योजना भी सम्मिलित है। सामाजिक योजनाकार, सामुदायिक समस्याओं को हल करने के लिए योजना बनाने और स्वास्थ्य तथा मानव सेवाऐं उपलब्ध कराने में समुदायों की सहायता करते हैं। ब्री–लेण्ड, कोस्टिन और आर्थटन (1987) के अनुसार योजनाकारों और संगठनकर्ताओं को समाज, समुदाय, समाजशास्त्र सामाजिक समस्याओं, सामुदायिक मनोविज्ञान, सामाजिक योजना और सामाजिक नीति के ताने बाने को समझने की आवश्यकता है। योजना और शोध के क्षेत्र में विशेषज्ञ ज्ञान और दक्षता को उपयोग में लाने के लिए व्यवसाई को सामुदायिक आवश्यकताओं पर ध्यान देने और सामुदायिक संसाधनों का विकास करने के लिए सामुदायिक नेताओं और सामाजिक सेवाकारियों को सम्मिलित करना होगा।

सामाजिक आयोजक गतिविधियों में सम्मिलित हैं, सेवाओं का समन्वयन, कार्यक्रमों का विकास, नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन और सामाजिक कल्याण सुधार का पक्ष–पोषण। सामाजिक आयोजक शोध तकनीक का उपयोग करते है जैसे आवश्यकताओं का निर्धारण, सेवाओं की सूची, सामुदायिक पार्श्वदृष्य,

परिवेशीय अवलोकन और सामाजिक समस्याओं पर उनकी समझ को आगे बढ़ाने और सम्भावित समाधान खोजन के लिए मैदानी शोध। सामाजिक आयोजक योजना की प्रक्रिया के दौरान एक निष्पक्ष क्षमता में सेवा देते हैं। वे एक बुद्धिसंगत कार्रवाई प्रस्तावित करने के लिए शोध और विश्लेषण का उपयोग करते हैं। सामाजिक योजना के लिए भविष्य के प्रति स्वप्न दृष्टा स्थिति निर्धारण अपेक्षित होता है। स्वप्न दृष्टा दृष्टिकोण से प्रेरणा प्राप्त होती है। जबकि परिवेशीय कारकों, वास्तविक ज्ञान और चुनौतियों से परिवर्तन के पैरामीटर्स परिभाषित होते हैं। योजना को सुदृढ़ बनाने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहकों (मेक्रो लेबल क्लाइन्ट) के साथ संसाधन क्षमताओं और परिवेशीय चुनौतियों का निर्धारण करते हैं। चित्र में योजना प्रक्रिया में योजना गतिविधियां वृद्धि होते हुए कदमों द्वारा प्रारंभ की जा सकती है या सर्वत्र योजनावद्ध द्वारा व्यापक परिवर्तनों को प्राप्त किया जा सकता है।

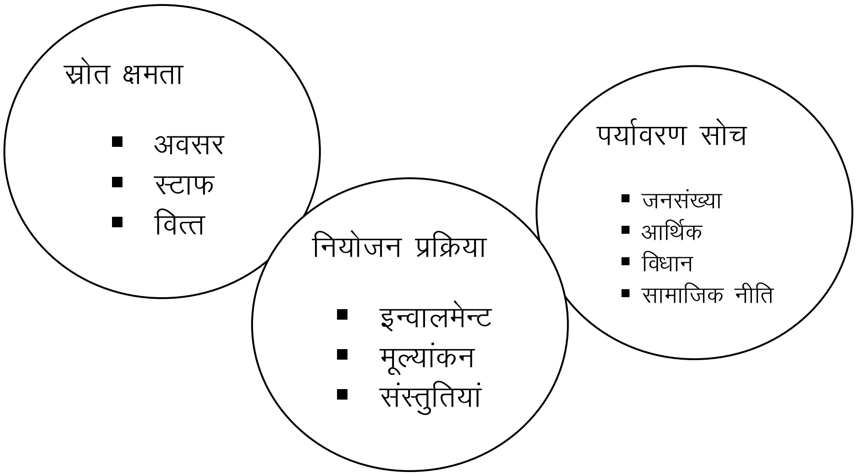

वृत्ति (व्यावसायिक पद्धथ्त) – सहयोगी और प्रबोधक (मानीटर) भूमिकाऐं :

व्यावसायिक वार्तालाप से सहपाठी और प्रबोधक भूमिका के लिए परदृष्य उपलब्ध रहता है। इन भूमिकाओं के माध्यम से व्यवसायी सामाजिक कार्य व्यवसाय की निष्ठा बनाएं रखता है। नैतिक मानकों को ऊंचा रखता है और सहयोगियों को सहायता प्रस्तुत करता है। सहयोगी की भूमिका सामाजिक कार्य व्यवसाय के सदस्यों में साझेदारी, पारस्परिक सम्मान और सहयोग का वातावरण मानती है। दूसरे व्यवसायों के साथ कार्यकरण संबंध स्थापित करने और राष्ट्रीय वृत्तिक (व्यावसायिक) संगठनों में सदस्यता बनाएं रखने जैसे एन0ए0एस0डब्लू0 (1996) और सी0एम0डब्लू0ई0 और स्थानीय समूह, सहयोगी की भूमिका को अभिव्यक्त करते हैं।

प्रभावी सामाजिक कार्य पद्धति के लिए दूसरे वृत्तिकों के साथ सहयोगात्मक संबंध स्थापित कर आवश्यकताओं सहयोगी गुणवत्ता सुनिश्चित करने और वृत्तिक मानकों को बनाए रखने के लिए समकक्ष व्यक्ति की व्यावसायिक प्रक्रिया को मानीटर करते है। एन0ए0एस0डब्लू0 (1996) के मानक सामाजिक कार्य

व्यवसाय की गतिविधियों की मानीटरिंग करने में सामाजिक कार्य व्यवसायी की वचनबद्धताओं और उत्तरदायित्वों को रेखांकित करते है। मानीटरिंग में सलाह देना, जानकारी देना, मानीटरिंग सम्मिलित है। व्यवसाय के उत्संस्करण द्वारा सामाजिक कार्यकर्ता व्यावसायिक मूल्यों, मानको, और सामाजिक कार्य की नैतिकता के साथ पहचान करते है। उत्संस्करण व्यवसायिकों सामाजिक कार्य व्यवसाय की संस्कृति के अनुकूल कर देता है जिसमें इसकी भाषा, माप पद्धतियों, उत्तरदायित्व और बाध्यता सम्मिलित है इसमें शिक्षा, प्रक्रिया, अनुभव और वृत्तिक विकास की प्रक्रिया समाविष्ट है।

संसाधन प्रबंधन

प्रायः ग्राहक उन संसाधनों तक पहुचने में सामाकि कार्य सेवाऐं चाहता है जो उनके व्यक्तिगत संसाधनों या सामाजिक सहायता की उनके अनौपचारिक नेटवर्क में नही पाये जाते है। इसलिये अक्सर, सामाजिक कार्यकर्ता संसाधनों तक पहुंच के लिये ग्राहक की सहायता करते हैं, सेवा प्रदान करने में सहयोग प्रदान करते हैं और नई नीतियां तथा कार्यक्रम प्रारंभ करते हैं। ये विभिन्न प्रकार की गतिविधियां संसाधन, प्रबंध, के सामाजिक कार्य कर्त्तव्य को प्रदर्शित करते हैं।

2.4 समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की भूमिकायें एवं अपेक्षायें

समाजकार्य क्षेत्राभ्यास में प्रशिक्षण संस्थायें बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन करती है। जिससे समाजकार्य प्रशिक्षणार्थियों के विकास में सहायता प्राप्त होती है। देखा जाय तो समाज कार्य के सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप प्रशिक्षण संस्थायें ही प्रदान करती है। प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिकाऐं अग्रलिखित हैं –

1. व्यवसायिक निपुणताओं का विकास वास्तविक सीखने के तथा प्रासंगिक तथ्यों के आधार पर ज्ञान प्रदान करना।
2. सूक्ष्म स्तर पर समस्याओं का समाधान करने की निपुणताओं का विकास करना।
3. सिद्धान्त तथा अभ्यास के एकीकरण का विकास करना।
4. ऐसी निपुणताओं का विकास करना जो प्रशिक्षण के निर्धारित स्तर को प्राप्त करने के लिए आवश्यक होती है।
5. ऐसी उद्देश्यपूर्ण व्यवसायिक अभिरूचियों का विकास करना जो आंशिक तथा पूर्ण न्यायिक मनोवृत्तियों से सम्बन्धित होती है।
6. व्यवसायिक मूल्यों तथा वचनवद्धता का विकास करना जिसमें मानव प्रतिष्ठा का सम्मान व अधिकारों की सहभागिता के लिए उत्तरदायित्व होते हैं।
7. दूसरों के व्यवसायिक विचारों की जागरूकता का विकास करना।
8. ऐसा उद्देश्यपूर्ण शिक्षण का अनुभव जो मार्गदर्शन के द्वारा जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में ज्ञान, निपुर्णताओं तथा मनोवृत्तियों का व्यासायिक विकास करता है।
9. ज्ञान, निपुणताओं तथा मनोवृत्त्यिों के प्रति व्यवसायिक मनोवृत्तियों का विकास करता है।

10. आवश्कयताओं की पूर्ति तथा सहायता के लिए समाजकार्य की पद्धतियों से अर्जित की गयी निपुणताओं का विकास करना। जैसे – सहभागिता, अवलोकन, अंतःक्रियाएं, संचार आदि।
11. अध्ययन में सिद्धांत एवम् अभ्यास के सहसम्बन्ध की क्षमता का विकास तथा वृद्धि करना।

समाज कार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थान की अपेक्षायें

समाजकार्य क्षेत्राभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थानों से अपेक्षायें यह रहती है कि वे समाज कार्य विद्यार्थियों को उचित माहौल प्रदान कर उनके समग्र विकास में सहायता प्रदान करे। जिससे वे समाज में अग्रणी भूमिका का निर्वाहन कर सके। समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थानों से अग्रलिखित अपेक्षायें की जा सकती है –

1. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थायें समाज कार्य विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक रूप से सीखे गये विषयों को पूर्णरूपेण व्यावहारिक रूप में अपनाने में सहायता प्रदान करे।
2. चूंकि समाज कार्य समाज के बीच में रह कर किया जाने वाला कार्य है। अतः समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को समाज को दृष्टिगत रखते हुए प्रशिक्षण प्रदान करे।
3. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य विद्यार्थियों को अभिलेखन क्षमता, परामर्श क्षमता, निदान क्षमता का विकास सुनियोजित तरीके से प्रदान करे।
4. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य के सैद्धान्तिक पहलुओं को व्यौहारिक पहलु के रूप में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करे।
5. समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को एक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करे जिससे समाज कार्य कि विद्यार्थी अपने वृत्ति का उपायोजन कर सके।

2.5 समाज कार्य व संस्था सम्बन्धी सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल

सामाजिक कार्यकर्ता वृत्ति के निरपेक्ष मूल्य को व्यवहार के सिद्धातों में परिवर्तित करता है तत्पश्चात् वे इन सिद्धांतों को विशिष्ट परिस्थितियों में एकाग्र कार्यवाई में अनुदित करता है। मूल्यों से सामाजिक कार्यकर्ता के चिंतन के मार्ग को आकार मिलता है और वह सिद्धांतों के माध्यम से उसकी कार्यवाही को निदेशित करता है (विस्टेक, 1957, गोल्ड स्टेन 1973, सिपोरीन 1975, लेवी 1976, पर्लमेन पिकार्ड 1988, हैपवर्थ, रूनी और लार्जन 1997, काम्पटन और गेलवे 1994, मोरल और शेफर 1908)। इनमें स्वीकारता, वैयक्तिता भावनाओं की प्रयोजनयुक्त अभिव्यक्ति, गैर निर्णयात्मक व्यवहार, उद्देश्य परकता, नियंत्रित भावनात्मक संलग्नता, स्वअवधारणा, संसाधनों तक पहुंच, गोपनीयता और जबावदेही। जब सामाजिक कार्यकर्ता इन सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणित करने में असफल रहता है तो वह ग्राहक को प्रताड़ित करता है। तालिका में इन मूल्यों और सिद्धांतों को दर्शाया है।

तालिका – सामाजिक कार्य मूल्य के प्रभाव और कार्रवाई सिद्धांत

Empowerment			Victimization	
Potential Effect	Positive Manifestation	Social Work Values and Principles	Barriers	Potential Effect Affirm
Affirm personhood	Affirm individuality appreciate diversity	Uphold uniqueness and worth	Stereotyping denigration labeling	Importance self-fulfilling prophery
Efficacy competence partnership	Develop alternatives Delineate roles	Promote Self-determination	Control advice manipulation paternalism	Incompetenc e failure to change dependency
Openness lowered defences	Strength perspective active listening empathy	Communicate nonjudgementall y and with acceptance	Blame pity and sympathy focus on deticits	Defensivenes s Helpessness
Affirm rationality	Gaining perspective	Attain objectively	Overdentificati on coldness distancing	Bias Distortion
Trust	Respecting privacy	Ensure confidentiality	Inappropriate communicatio n	Breach of confidence Mistrust
Increased opportunities	Building linkages developing policies and programs coordination of services	Provide access to resources	Red tape rules and regulations discrimination	Sterigma lack of opportunities

स्वीकृति

ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जो सेवार्थियों को स्वीकार करते है। मानवीयरूप से उनके साथ व्यवहार करते है तथा उनकी प्रतिष्ठा को बनाए रखते है। सामाजिक कार्यकर्ता सही चिंता द्वारा स्वीकृति अभिव्यक्त

करते है एकाग्रचित रूप से श्रवण करते हुए, दूसरों के दृष्टिकोण को अभिस्वीकृत करते हुए और पारस्परिक सम्मान का वातावरण सृजित करते हुए। स्वीकृति से अभिव्यक्त होता है कि सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक के दृष्टिकोण को समझता है और उनके दृष्टिकोण का स्वागत करता है। स्वीकृति से ग्राहक की शक्ति और मान्यता की अभिवृत्ति का सुझाव प्राप्त होता है।

वैयक्तिकता

सभी लोग अद्वितीय होते है तथा उनमें सुभिन्न क्षमताएं होती है जब सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक की वैयक्तिकता की पुष्टि करता है तब वे उनके दुर्लभ गुणों और व्यक्तिगत अन्तर को मान्यता देते है तथा प्रशंसित करते है। वे ग्राहक को एक व्यक्ति के रूप में मानते है। ऐसे सामाजिक कर्ता जो ग्राहक को व्यक्तिनिष्ठ बनाता है उसे प्रतिकूलता और द्वेषता से मुक्त करता है, किसी लेबल को लगाने और रूढ़िबद्ध करने की अवहेलना करता है विभिन्नता की क्षमता को मान्यता प्रदान करता है वे इस बात को प्रदर्शित करते है कि ग्राहक के पास ''व्यक्तिगत होने और न केवल मनुष्य के रूप में व्यवहार करवाने बल्कि व्यक्तिगत अन्तर के साथ मनुष्य होने का'' अधिकार है।

भावनाओं की प्रयोजनयुक्त अभिव्यक्ति

भावनाएं मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग होती है और जनता द्वारा भावनाओं की श्रृंखलाओं को अनुभव किया जाता है। ग्राहकों को उनकी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने के अवसरों को आवश्यकता होती है। (बिस्टैक–1957) यद्यपि, यह बुद्धिमानी नही है कि ग्राहक की भावनाओं के साथ प्रोत्साहित किया जाए या अनियंत्रित रूप से क्रोध या नकारात्मक भावनाओं से जोड़ दिया जाए, सामाजिक कार्यकर्ता के लिये आवश्यक होता है कि वह ग्राहक को इस बात के लिये निदेशित करे कि वह अपनी भावनाओं को प्रयोजनयुक्त तरीके से अभिव्यक्त करे। सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन भावनाओं को उभारना पड़ता है जो इन तथ्यों को रेखांकित करती है। ध्यानपूर्वक श्रवण करना, सुसंगत प्रश्न पूछना और सहिष्णुता प्रदर्शित करना और अनिर्णययात्मकता द्वारा सामाजिक कार्यकर्ता ग्राहक को तथ्यों और भावनाओं दोनों को बांटने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।

गैर निर्णयात्मक रूझान

गैर निर्णयात्मक रुझान से प्रभावी संबंध विकसित होते हैं। यह इस आधार वाक्य से कि समस्त मनुष्य प्रतिष्ठा और मूल्य रखते है, गैर निर्णयात्मक रुझान से प्रभावी संबंध विकसित होते हैं। इस आधार वाक्य से कि समस्त मनुष्य प्रतिष्ठा और मूल्य रखते हैं, गैर निर्णयात्मक रुझान बनता है, गैर निर्णयात्मकता में स्वीकृति की उपधारणा रहती है।

प्रायः सेवार्थी ऐसी स्थिति में होते है जहां उन्हें स्वयं का और परिस्थितियों की सूक्ष्मता से परीक्षण करना चाहिए। इसके लिए कुछ ऐसी जोखिम उठाने की अपेक्षा रहती है जिसके लिए उनका तैयार रहना

सम्भाव्य नहीं है जबकि उन्हें यह अनुभव हो रहा है कि उन्हें निर्णीत किया जा रहा है। (कीथ–लुकास–1972)। गैर निर्णयात्मक सामाजिक कार्य में दोषता या निर्दोषता या समस्या या आवश्यकता के कारणत्व के लिए सेवार्थी उत्तरदायित्व की मात्रा अपवर्जित रहती है किन्तु रुझान स्तर या ग्राहक के कृत्य के बारे में मूल्यांकित निर्णय करना सम्मिलित रहता है।

गैर–निर्णयात्मक रूझान, समस्त सामाजिक कार्य प्रक्रियाओं पर लागू होता है। यद्यपि, कतिपय परिस्थितियों में जैसे वह अवसर जब सेवार्थी निरूत्साहित या लांछित अनुभव करता है, सेवार्थी को विशेषरूप से भावनात्मक गैर निर्णयात्मकता की अपेक्षा रहती है। जब सेवार्थी की स्वयं के लांछन और निर्णय की भावना बढ़ जाती है तब दूसरों के निर्वचन की सम्भाव्यता है। उदाहरण के लिए अपने बच्चों से झगड़े को हल करने का कौशल चाहने वाला पति–पत्नि का एक युग्म सम्भवतः उनके प्रति कार्यकर्ता के रूझान के बारे में परिचित रहेगा।

उद्देश्यपरकता

उद्देश्यपरकता का अभ्यासी सिद्धांत या बिना पूर्वाग्रह परिस्थितियों का परीक्षण करना, गैर निर्णयात्मकता से नजदीकी से संबंधित है। उद्देश्य परक होने में व्यवसायी, सेवार्थी के साथ उसके संबंध में व्यक्तिगत भावनाओं और पूर्वाग्रहों को प्रवेशित करने में टालता है। एक उच्च व्यक्तिगत या गहारण निर्णय, ग्राहक और उनकी परिस्थितियों को निर्धारण करने में व्यवसायी को प्रभावित करता है। व्यवसायी का शैक्षणिक अनुभव, सामाजिक दुनिया की समझ, जीवन के अनुभव, विश्वास और मूल्य आदि सभी उनकी उद्देश्यपरकता को प्रभावित करते हैं।

नियंत्रित भावनात्मक संलग्नता

ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जो सेवार्थी के साथ उनकी भावनात्मक संलग्नता को नियंत्रित करते है मानव व्यवहार की उनकी समझ से परिदृश्य हासिल करते है। सामाजिक कार्यवृत्ति के सामान्य प्रयोजन से संबंधों के लिए निदेश चाहता है और संवेदनता के साथ सेवार्थी की भावनाओं का प्रत्युत्तर देता है। अनियंत्रित भावनात्मक प्रतिक्रिया सेवार्थी में आवरण की कमी से सेवार्थी के दृष्टिकोण अति परिचयता तक क्रमबद्ध रहती है।

ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता जिनमें आवरण की कमी होती है सेवार्थी से स्वयं को अलग कर लेते है और सेवार्थी और उसकी परिस्थिति की देखभाल करने में असफल रहते है। शांत विषय परम सामाजिक कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ एक विषय के रूप में व्यवहार करते है– अध्ययन, चालाकी से काम निकालने हेतु व्यक्तियों के परिवर्तन करने के लिए (क्रीम लुकास 1972) विलगता से अक्सर सेवार्थी कार्य को परिपक्व हुए पूर्व ही को छोड़ने को मजबूर हो जाता है। यह सेवार्थी के लिए संकेत भी है कि कार्यकर्ता में चिन्ता का अभाव है और इससे सेवार्थी की भावनाओं में निराशा, मूल्यहीनता और क्रोध की वृद्धि हो सकती हे।

प्रभावी सामाजिक कार्यकर्ता, स्वीकार्य सेवार्थी और अनुचित व्यवहार के बीच संतुलन बनाए रखता है। तदनुभूति ''कल्पना को पसंद करने का कार्य'' है, जो कि लक्ष्यों की ओर कार्य करने और परिवर्तन के लिए योजना बनाने के लिए सेवार्थी को सशक्त करती है।

स्व–अवधारणा

स्व–अवधारणा के सिद्धान्त के साथ सामाजिक कार्यकर्ता, सेवार्थी की उसकी स्वयं की पसंद और विनिश्चयों को करने में स्वतंत्रता को मान्य करते हैं। स्व–अवधारणा अभिस्वीकृत करती है कि स्वन्नत वृद्धि स्वयं के भीतर से अभिव्यक्त होती है या होलिस (1967) का कहना हैं कि ''भीतर से वृद्धि कारित होने के लिए चिंतन से स्वतंत्रता पसंद से स्वतंत्रता, निन्दा से स्वतंत्रता तथा बुद्धिमानी से कार्य करना। समझने की शक्ति और किसी की समझ पर कार्य करना अनुभव से ही आता है।

स्व–अवधारणा से अभिप्रेत है उत्पीड़ित या चालाकी से प्रभावित न होना (एग्रान्सन 1981) दूसरे रूप से कहे तो स्व–अवधारणा से अभिप्रेत है पसंद करने की स्वतंत्रता। पसंद विकल्पों पर निर्भर रहती है। स्व–अवधारणा की सीमाएं होती है, यद्यपि, विस्टेक (1957) के अनुसार, विधिक प्रतिबंध, ऐजेन्सी नियम, मानक, पात्रता अपेक्षाएं और विनिश्चय करने की ग्राहक की योग्यता पसंदों की श्रेणी को सीमित करती है।

संसाधनों तक पहुंच

संसाधनों तक पहुंच बनाना किसी भी विकासोन्मुखी समाधान की पूर्व शर्त है। सीमित संसाधन समाधान के विकल्पों को कम कर देते हैं और बिना पसंद के व्यक्ति विकल्पों में से चयन नही कर सकता है। समस्त व्यक्ति, चुनौतियों का सामना करने और उनकी क्षमता की अनुभूति करने के लिए संसाधनों पर निर्भर रहते है।

नैतिकता की संहिता एन0ए0एस0डब्ल्यू0 (1996) संसाधनों का पक्षपोषण करने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता की बाध्यता को विहित करने में बहुत स्पष्ट है। संहिता सामाजिक कार्यकर्ता से विनय करता है कि वह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक के पास वांछित संसाधन, सेवाएं और अवसर हो। ऐसे व्यक्तियों के लिए चयन और अवसरों का विस्तार हो जो दबे कुचलें और अलाभप्रद है, और सामाजिक स्थिति में उन्नयन हो तथा विधायी सुधारों के पक्ष पोषण द्वारा सामाजिक न्याय प्रौन्नत हो।

गोपनीयता

गोपनीयता या एकांतता के अधिकार से अभिप्रेत है कि ग्राहक द्वारा जानकारी को प्रकट करने की सहमति अभिव्यक्त करना चाहिए जैसे कि उनकी पहचान, वृत्तिकों के साथ उनका वार्तालाप, उनके या इतिहास के बारे में वृत्तिक राय चूंकि ग्राहक अक्सर सामाजिक कार्यकर्ता के साथ संवेदनशील व्यक्तिगत विषयों का आदान प्रदान करता है इसलिए विश्वास जो कि किसी भी प्रभावी कार्यकरण संबंध का मुख्य तत्व होता है विकसित करने के लिए गोपनीयता या गुप्तता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है।

जबाबदेही

नीतिशास्त्र की संहिता व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं को उनके व्यक्तिगत और व्यवसायिक आचार विचार के लिए जबाबदेह बनाता है। जबाबदेही से अभिप्रेत है कि सामाजिक कार्यकर्ताओं को इसे प्रक्रिया और तकनीक में सक्षम होना चाहिए। इसका यह अर्थ हुआ कि सामाजिक कार्यकर्ता, विभेदकारी और अमानवीय प्रथाओं का प्रतितोष करने में अपनी वचनबद्धता को गम्भीरता से लें और निश्चित व्यावसायिक निष्ठा के साथ कार्य करे तथा स्वस्थ प्रथा और शोध शिष्टाचार को क्रियान्वित करें। जबाबदेही का विस्तार सामाजिक कार्यकर्ता के सेवार्थी के प्रति नैतिक दायित्व तक रहता है।

सामाजिक कार्य दक्षता (कौशल)

ओ हेगन ने दक्षता को अलग ढंग से परिभाषित करते हुए कहा कि 'दक्षता (कौशल) से अभिप्रेत है योग्यता, चतुराई, विशेषता, ज्ञान या किसी बात की समझ के साथ संयोजन में व्यावहारिक ज्ञान यद्यपि, यह परिभाषित करना कठिन है कि सामाजिक कार्य दक्षता किससे गठित होती है क्योंकि यह दूसरे शब्दों के साथ आपस में परिवर्तित करते हुए उपयोग में लाई जाती है। इससे भ्रम पैदा हो सकता है किन्तु तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए इसे समझा जा सकता है।

यहां दक्षता द्योतक है, ज्ञान, विशेषज्ञाता, निर्णय और अनुभव का जो सामने उपस्थित हुई परिस्थिति के भीतर या कारवाई के अनुक्रम में या हस्तक्षेप के दौरान उदाहरण के लिए इसमें सम्मिलित है प्रथा स्थापित करने की पसंद के संबंध में एक ठोस निर्णय और एक विशिष्ट परिवेश के भीतर कार्य करना कितना उत्तम होगा। इसमें दक्षता के स्तर के बारे में निर्णय करना भी सम्मिलित हो सकता है जो कार्य के लिए अपेक्षित होता है और किसी कार्य में या कार्रवाई के अनुक्रम में विशेषकर प्रारंभ में, मध्य में या अंत में किस प्रक्रिया पर महत्व देता है। इस निर्णय करने की प्रक्रिया के एक भाग में प्रभावी रूप से पर्यवेक्षण करना और अतिरिक्त परामर्श करना प्रशिक्षण और सहायता भी सम्मिलित है।

दक्षता (कौशल) का स्तर

अपेक्षित दक्षता का स्तर की श्रेणी निम्न हो सकती है –

- बुनियादी दक्षताऐं – उन बुनियादी दक्षताओं से संबंधित होती है जो अधिकांश सामाजिक कार्य मध्यस्थता जैसे तदनुभूति, संबंध या सम्पर्क स्थापित करने में अपेक्षित होते हैं।
- मध्यवर्ती दक्षता – ये दक्षताएं और अधिक कठिन परिस्थितियों जैसे सेवा उपयोगकर्ता के साथ कार्य करना जिन्हें संलग्न करना आसान नहीं होता है या प्रतिकूल नहीं दिखते है, से संबंधित होती है।
- विकसित और विशेषज्ञ दक्षताएं – ये दक्षताएं ऐसी परिस्थितियों में कार्य करने से संबंधित होती है जिनके लिए विशेषज्ञ ज्ञान अपेक्षित होता है जैसे कि परामर्श या परिवार पद्धति में प्रशिक्षण ऐसी समस्याओं के साथ कार्य करने में समर्थ होना जो बहु फलक है और संघर्ष विद्वेव या उच्च स्तर के तनाव में दुर्दमनीय है।

2.6 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य अभ्यास के विषय में अभिविन्यास के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है। जिसमें बताया गया है कि संस्थाओं के बारे में कौन–कौन सी जानकारियां प्राप्त करे तथा उनके क्रियाकलापों के बारे में भी जानकारी कैसे प्राप्त करे। इससे सम्बन्धित प्रारूप पत्र दिये गये है। अभिविन्यास से सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक सेवा कार्य तथा सामुदायिक सेवा कार्य की डायरी कैसे बनाये के भी प्रारूप पत्र उल्लेखित किये गये है। इसी इकाई में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में भूमिकायें एव अपेक्षाओं से सम्बन्धित तथ्यों का वर्णन किया गया है। समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में समाज कार्य प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिकायें एव अपेक्षाओं के बारे में भी एक विस्तृत अभिलेख प्रस्तुत किया गया है। इकाई के अंक में समाज कार्य व संस्था सम्बन्धित सिद्धान्त, अपेक्षायें और कौशल के बारे में भी प्रकाश डाला गया है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

Resource	संसाधन	Recomendation	संस्तुतियां
Enabler	सामर्थ दाता	Objectivity	विषयिकता
Formal	औपचारिक	Lack of Evaluation	मूल्यांकन की कमी
Coordinator	समन्वयक	Red Tappism	लालफीताशाही
Plannar	योजनाकार	Barriers	रूकावटें
Carrier	वृत्ति	Self Determination	स्व–निर्धारण
Vision	दृष्टि	Acceptance	स्वीकृति
Assessment	मूल्यांकन	Opportunities	अवसर

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास की दिशा में अभिविन्यास से आप क्या समझते हैं ?
2. किसी एक संस्था के बारे में अवलोकन कर प्रतिवेदन प्रस्तुत कीजिए।
3. सामूहिक सेवा का प्रयोग करते हुए किसी समुदाय में स्वयं सहायता समूह का गठन कर उसकी प्रक्रिया के बारे में लिखिए।
4. सामुदायिक सेवा कार्य का प्रयोग करते हुए किसी समुदाय के नाली की व्यवस्था सुदृण करने हेतु समुदाय के लोगों में जागरूकता सम्बन्धी अभियान चलाये तथा उसकी क्रिया विधि का अभिलेखन करे।

सन्दर्भ सूची

- कुमार, डॉ0 रूपेश, क्षेत्र कार्य, असिस्टेन्स फार स्ट्रेन्थनिगं इन्फ्रास्ट्रेक्चर ऑफ हयूमिनीटिज एण्ड सोशल सांइसेज, समाज कार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 4, 5, 60–83.

➢ समाज कार्य का इतिहास एवं विकास, मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, लर्निंग मटेरियल, रूचि प्रिन्टर्स भोपाल, वर्ष 2003, पेज 89–101.

इकाई – 3

समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियां

इकाई का रूपरेखा

3.0 इकाई का उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियां

3.3 समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू

3.4 पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्य

3.5 दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षण

3.6 सार संक्षेप

3.7 परिभाषिक शब्दाबली

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभ्यास हेतु प्रश्न

3.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप :–

- समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियों की व्याख्या कर सकेगें।
- समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलूओं को वर्णित कर सकेगें।
- पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्यों का वर्णन कर सकेगें।
- दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षण का क्षेत्र स्तर पर उपयोग कर सकेगें।

3.1 परिचय

समाज कार्य विषय में पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य वास्तविक परिस्थितियों में छात्रों को सीखने के लिए सुसाध्य, गतिशील, सुविधाजनक तथा दृढ़ बनाना होता है। यह भी कहा जा सकता है कि समाज कार्य पर्यवेक्षण दो पक्षों की एक शैक्षिक भागीदारी है जिसमें एक पक्ष संकाय पर्यवेक्षक और दूसरा पक्ष छात्र होता है। पर्यवेक्षकों में मानवीय समझ, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अधिक परिपक्व, अनुभवी तथा ज्ञानी होते है वही पर छात्रों को एक व्यवसायिक समाज कार्यकर्ता बनाने के लिए आपेक्षिक ज्ञान, व्यवसायिक निपुणताओं तथा तकनीकियों को प्राप्त कर उनकी पद्धतियों से सिद्धान्त व अभ्यास को निश्चित करते हैं।

3.2 समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप और पद्धतियां

समाज कार्य के विशेष सन्दर्भ में पारस्परिक एवं शाब्दिक अवधारणाओं में पर्यवेक्षण का विशेष स्थान है। समाज कार्य में पर्यवेक्षण का सम्बन्ध एक सहायक प्रणाली के रूप में है, जिसमें पर्यवेक्षक छात्रों को कार्य सौंपता है जिससे उनकी योग्यताओं और क्षमताओं का विकास होता है। 'पर्यवेक्षण' शब्द को समाज कार्य विषय के अन्तर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक कार्यशाला 'समाज कार्य शिक्षा में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण' में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है –

'पर्यवेक्षण एक शैक्षिक, प्रशासनिक व सहायता करने की प्रक्रिया है जो पर्यवेक्षक की आवश्यकताओं तथा शैक्षिक कार्यक्रम के उद्देश्यों से ज्ञान व मनोवृत्तियों पर आधारित है, व्यवसायिक निपुणताओं को योग्य बनाना शिक्षण तथा पर्यवेक्षण कार्य को मार्गदर्शित कर उनका विकास करने से सम्बन्धित है।'

'पर्यवेक्षण रचनात्मक तथा सशक्त दोनों प्रकार की प्रक्रिया है और यह पर्यवेक्षक को क्षेत्रीय कार्य को छात्रों को सिखाने के लिए ज्ञान, मनोवृत्तियों निपुणताओं और मार्गदर्शन के परिप्रेक्ष्य में अपना निवेश करने का कार्य करता है।'

समाज कार्य में क्षेत्रकार्य पर्यवेक्षण की दो अवधारणाएं हैं –

1. संकाय सदस्य द्वारा पर्यवेक्षण
2. अभिकरण पर्यवेक्षक द्वारा पर्यवेक्षण

संकाय सदस्य छात्रों को समाज कार्य की तकनीक, अवधारणाऐं, सिद्धान्त, दर्शन, प्रणालियां तथा पद्धतियों को समाज कार्य के सिद्धान्तों को मूल्यों के आधार पर अभ्यास करने का मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। जिससे छात्र इस सिद्धांतों और अवधारणों को स्पष्ट रूप से समझ कर व्यवसायिक सेवाओं के द्वारा सहायता करने का कार्य कर सकें।

अभिकरण पर्यवेक्षक छात्रों को समाज कार्य की पद्धतियों, निपुणताओं, ज्ञान व प्रणालियों की दक्षता का मार्गदर्शन करते है जिससे वे इन तकनिकियों का उपयोग वास्तविक क्षेत्रों में आपेक्षित कल्याण सेवाएं, पीड़ित, निर्धन, असहाय व जरूरतमंदों की सहायता के लिए प्रदान कर सकें।

व्यवसायिक निपुणताओं को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित दो अति आवश्यक घटक है –

1. संकाय पर्यवेक्षक
2. अभिकरण पर्यवेक्षक

पूर्व की अवधारणाओं में सिद्धान्त व अभ्यास एक सहायक रूप से क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण में थे परन्तु बाद में कार्य के परिप्रेक्ष्य में प्रयोगात्मक मार्गदर्शन, प्रासंगिक प्रयोगात्मक कार्य तथा कार्य का पर्यवेक्षण के रूप में परिवर्तित हो गया है।

दूसरे शब्दों में समाज कार्य में पर्यवेक्षण शब्द 'एक ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया है जो एक व्यक्ति या पर्यवेक्षक को अधिक रूप से जानकर तथा वैयक्तिक संरचना द्वारा सक्षम गुण प्रदान कर, व्यवसायिक रूप से

छात्रों को विभिन्न प्रकार के शैक्षणिक उपकरणों जिनमें पर्यवेक्षीय निर्देश, पर्यवेक्षीय अतःक्रियायें, सम्बन्ध व्यवसायिक निपुणताओं व तकनीकियों से वैयक्तिक और सामूहिक गोष्ठियों से प्रशिक्षित करता है।'

समाज कार्य में क्षेत्रकार्य पर्यवेक्षण का उद्देश्य क्षेत्रकार्य पाठ्यक्रम का विकास करना, सिद्धान्त एवं अभ्यास का एकीकरण करना, तथा एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिसमें छात्र समाज कार्य सिद्धान्त व दर्शन के व्यवहारिक पक्षों को सीख सकें। यह प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा आदर्शो पर निर्भर करता हैं जहां पर उत्तरदायित्वों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इसी कारण समाज कार्य पर्यवेक्षण के निम्नलिखित कार्य समायोजित किए गए हैं –

1. यह एक चेतन सामान्य उद्देश्य है जो छात्रों को उनके इच्छित लक्ष्य प्रदान कर व्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित समाज कार्यकर्ता बनने में सहायता करता है।
2. यह व्यक्तियों के कल्याण तथा सामाजिक सेवाओं के मूल्यों के प्रति सामान्य रूचि प्रदान करता है।
3. अनुभवी व्यक्तियों के समक्ष व्यवसायिक सम्बन्ध के साथ परिक्षित निपुणतायें एवं उद्देश्य जिस छात्र पहचान सकें।
4. पर्यवेक्षकों तथा छात्रों के मध्य अपनी–अपनी भूमिकाओं व उत्तरदायित्वों के प्रति एक पारस्परिक समझदारी व अनुबंध होता है।
5. कार्य को 'कब व क्यों' के आधार पर परिस्थितियों एवं कार्य प्रणालियों का स्पष्टीकरण होता है।
6. एक पारस्परिक संचार जो पर्यवेक्षकों तथा छात्रों के सीखने के संभव स्रोतों को चिन्हित करता है।
7. पर्यवेक्षक में विनोदी स्वभाव, अपने साथियों के प्रति स्नेह तथा छात्रों को व्यवहारिक क्षेत्र की वास्तविकता को समझने की योग्यता होती है।

क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूप

संकाय पर्यवेक्षक का प्राथमिक उत्तरदायित्व छात्रों को उनके अपने–अपने क्षेत्रों में सैद्धान्तिक शिक्षा तथा अभ्यास के प्रति रूचि प्रदान करना है। इन प्राथमिक उत्तरदायित्वों को प्राप्त करने के लिए समय–समय पर व्यवसाय, क्षेत्रीय अभिकरण व छात्रों पर आधारित संशोधित क्षेत्र पाठ्यक्रम की संरचना के निर्माण में रूचि लेना है। विकसित क्षेत्र कार्य, व्यवहारिक तथा सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम के साथ संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को एक ऐसा वातावरण बनाने में सहायता करता है जिसमें व्यवहारिक परिस्थितियों में सिद्धान्त व अभ्यास का एकीकरण हो। पर्यवेक्षक विशेष प्रकार की अवधारणाओं, भावनाओं और मनोवृत्तियों का प्रशिक्षण देता है जिससे वह तीन मुख्य शिक्षण, प्रशासन तथा सहायता की भूमिकाओं का निर्वाहन करता है। क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण के अग्रलिखित प्रारूप है –

1. अभिमुखीकरण प्रारूप

इस प्रकार के क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण में छात्रों को क्षेत्रकार्य कार्यक्रमों, समाज कार्य क्षेत्र की प्रक्रियाओं, समाज कार्य के क्षेत्र का सामान्य उद्देश्य तथा छात्रों की सामान्य अपेक्षाओं के बारे में व्याख्या प्रदान करना।

2. परिचय प्रशिक्षण प्रारूप

इस प्रारूप के अन्तर्गत संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को अभिकरण या क्षेत्र से परिचय करवाता है। इसके साथ ही वह सेवार्थी प्रणाली में छात्रों की भूमिका तथा सेवार्थी प्रणाली की प्रकृति के बारे में भी बताता है। पर्यवेक्षक छात्रों को विभिन्न स्तर पर व्यवसायिक सम्बन्ध स्थापित करने का मार्ग दर्शन प्रदान करता है और अभिकरण पर्यवेक्षक के साथ व्यवसायिक सम्बन्ध बनाकर अभिकरण के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करता है। पर्यवेक्षक छात्रों को प्रतिवेदन तैयार कराने में मार्गदर्शन कराता है।

3. प्रयोगात्मक क्रियान्वयन प्रारूप

प्रयोगात्मक क्रियान्वयन प्रारूप में संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को आवश्यकताओं की पहचान करना, संसाधनों में प्रबन्ध का क्रमिक विकास करना, संकायों को दूर करना, अनुभवों को बांटना, जागरूकता का विकास करने में सहायता करता है।

4. क्षेत्र कार्य मूल्यांकन प्रारूप

मूल्यांकन प्रारूप के अन्तर्गत संकाय पर्यवेक्षक छात्रों को अपने अनुभवों के आधार पर मूल्यांकन की विधियों का प्रतिपादन करना तथा उन्हें मूल्यांकन की प्रणाली तथा प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है।

क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण की पद्धतियां

क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण अपने प्रणाली पर आधारित तथा सम्बन्धित है जो पर्यवेक्षक की कार्य पद्धति में शुरू से अंत तक फैली हुई है। जो कार्यक्रम के आरंभ से लेकर प्रशिक्षण के अंत तक होती है। पर्यवेक्षक छात्रों में निपुणताओं को सफलतापूर्वक विकास करने में प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार के उठाये गये कदम तथा पद्धतियां समाज कार्य में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होती है। क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण में निम्नलिखित पद्धतियों का मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है –

1. अध्यापक तथा छात्रों का वैयक्तिक विचार विमर्श ।
2. अध्यापक तथा छात्रों का समूह सम्मेलन।
3. छात्रों की क्षेत्र कार्य विचार गोष्ठी।
4. मौके पर पर्यवेक्षकों द्वारा दिये गये निर्देश।

5.3 समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू

समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक पहलू

समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक पहलू का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है वास्तव में किसी भी संस्था के प्रशासनिक पहलू के बिना लक्ष्यों की पूर्ति नही की जा सकती। क्योंकि प्रशासन किसी भी संस्था का एक अभिन्न अंग होता है। इस हेतु संस्था में प्रशासनिक पहूलियों की देख रेख हेतु यह आवश्यक है कि पर्यवेक्षक अपनी भूमिकाओं का निर्वहान करते हुये समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास का प्रशासन देखें तथा समाज कार्य विद्यार्थियों को मार्ग दर्शन करे। प्रशासनिक पहलू के अग्रलिखित बिन्दू है –

1. संस्थानों के अधिकारियों/कर्मचारियों के साथ अतःक्रिया

समाज कार्य पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे जिन संस्थानों में समाज कार्य विद्यार्थियों को भेजते हैं उस संस्थान के अधिकारियों/कर्मचारियों के साथ अतःक्रिया करते रहे जिससे वे समाज कार्य विद्यार्थियों के उपलब्धि तथा सीखने की प्रक्रिया को जान सके। यदि किसी भी संस्थान को समाज कार्य विद्यार्थियों के प्रशिक्षण से कोई समस्या उत्पन्न हो रही है तो उस दशा में पर्यवेक्षक उपयुक्त कदम उठाये तथा समस्या को दूर करें। यदि किसी समाजकारी विद्यार्थी के कारण कोई समस्या उत्पन्न होती है तो पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे समाजकार्य के प्रशिक्षार्थी से बात कर समस्या को दूर करें।

किसी भी संस्था में प्रशिक्षण हेतु भेजे गए विद्यार्थियों की अनुपस्थिति असहयोग तथा कोई विवाद होने की दशा में पर्यवेक्षकों को चाहिए कि उचित कदम उठाकर इन सभी समस्याओं को दूर करें। यदि कोई शिक्षार्थी विघटनकारी ब्यौहार प्रस्तुत करता है तो उसे उचित परामर्श एवं चेतावनी देकर उसके व्यवहार में एक परिवर्तन लाये। इस प्रकार संस्था के साथ निश्चित अतःक्रिया समाज कार्य अभ्यर्थियों के विकास एवं उनके द्वारा किये जा रहे क्रियाकलापों की प्रति पुष्टि समय–समय पर पर्यवेक्षकों को मिलती रहती है।

2. पर्यवेक्षकों के लिए कार्य

कोई भी समाज कार्य अभ्यर्थी जब दूरस्थ शिक्षा में नामांकन लेता है तो उसका प्रथम उद्देश्य व्यवसायिक कार्यकर्ता बनना होता है। अतः पर्यवेक्षकों को जब भी कोई योजना बनानी हो तो समाज कार्य अभ्यर्थी के पूर्व इतिहास को देखते हुए योजना बनानी चाहिए क्योंकि कुछ अभ्यर्थी कही सेवारत होते है और कुछ अविवाहित होते है। जबकि वे दूर से परामर्श सत्र और समूह सेमिनार में भाग लेने आते है। इन स्थितियों के अनुसार ही कार्य योजना बनानी चाहिए जो कि सफल हो सके।

3. आन्तरिक गोष्ठी

स्माज कार्य पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे प्रशासनिक पहलू के अन्तर्गत समय–समय पर समाज कार्य अभ्यर्थियों के साथ आन्तरिक गोष्ठी पर उनकी समस्याओं पर विचार करे तथा उनके द्वारा चिन्हित समस्याओं को दूर करें।

4. वैयक्तिक संगोष्ठी

समाज कार्य पर्यवेक्षकों को प्रशासनिक पहलू के अन्तर्गत वैयक्तिक संगोष्ठी का भी आचरण करना चाहिए तथा समय–समय पर समाज कार्य अभ्यर्थी की वैयक्तिक समस्याओं से सम्बन्धित पहलुओं पर विचार कर उन्हें दूर करने का विचार करना चाहिए।

5. भविष्य योजना

समाज कार्य पर्यवेक्षकों को प्रशासनिक पहलू के अन्तर्गत समाज कार्य अभ्यर्थी से भविष्य के क्रिया कलाप हेतु योजनाओं के बारे में पूछना चाहिए। तथा उन्हीं से क्रियाकलापों की रूपरेखा तैयार करवानी चाहिए।

समाज कार्य पर्यवेक्षण में पर्यावरणीय पहलू

समाज कार्य पर्यवेक्षण में पर्यावरणीय पहलू का स्थान महत्वपूर्ण है। चूंकि किसी भी संस्थान का विकास उसके पर्यावरण पर निर्भर करता है। यदि संस्थान का पर्यावरण अच्छा एवं सुग्राह्य है तो समाज कार्य अभ्यर्थियों को सीखने में आसानी होती है। समाज कार्य अभ्यास में संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि समाज कार्य के सभी प्रविधियों का व्यवहारिक ज्ञान इन्हीं संस्थाओं द्वारा प्रदान किया जाता है। अतः समाज कार्य पर्यवेक्षक को चाहिए कि वे समाज कार्य अभ्यर्थियों को किसी भी संस्थान में भेजने से पहले उस संस्था के पर्यावरणीय पहलू को जांच ले यदि संस्था का पर्यावरण अच्छा हो तो ही समाज कार्य अभ्यर्थियों को प्रशिक्षण हेतु भेजे।

3.4 पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्य

सहायक प्रकार्य एक द्वितीयक भूमि के रूप में होता है। लेकिन यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रकार है। मनोवैज्ञानिक आवलम्बन क्षेत्र कार्य के प्रारम्भिक दिनों में समाज कार्य अभ्यर्थियों हेतु बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। चूंकि समाज कार्य अभ्यर्थी समाज कार्य अभ्यास में अभी नये–नये प्रवेश करते है। तो उनके लिये संस्थाओं की क्रियाकला, संस्थाओं के प्रशासन, संस्थाओं के उद्देश्य इत्यादि बहुत ही उलझन में डाल देते है। दूसरी तरफ अपने क्षेत्र कार्य अभ्यास हेतु वे चिन्तित हो जाते है। इसी समय पर्यवेक्षण में समाज कार्य अभ्यर्थियों के लिये सहायक प्रकार की आवश्यकता होती है और यह सहायक प्रकार्य पर्यवेक्षकों द्वारा अभ्यर्थियों को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रदान किया जाता है जिसमें अभ्यर्थियों को यह बताया जाता है कि किसी भी क्षेत्र कार्य करने से पूर्व उसकी कार्य योजना अवश्य बनाये तथा पूरी योजना बनाकर कार्य करे जिससे कि उनके द्वारा चिनहित कार्य आसानी से हो जायेगें। सहायक प्रकार में पर्यवेक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य अभ्यर्थियों के लिये एक पथ प्रदर्शक तथा एक मूल्यांकन कर्ता के रूप में प्रस्तुत हो। चूंकि समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास ने समाज कार्य अभ्यर्थियों हेतु नया होता है। अतः पर्यवेक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज कार्य अभ्यास के सभी पहलुयों की उचित व्याख्या कर समाज कार्य अभ्यर्थियों के सामने प्रस्तुत करें। समाज कार्य पर्यवेक्षकों को चाहिए कि वे अग्रलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखे –

- समाज कार्य अभ्यर्थियों के वैयक्तिक मुद्‌दों पर विशेष ध्यान न दें।
- गोष्ठी का आयोजन सार्वजनिक स्थानों अथवा घरों पर न करें – चूंकि समाज कार्य अभ्यास पर्यवेक्षक द्वारा पर्यवेक्षण किया जाता है। तो उससे अपेक्षा की जाती है कि गोष्ठी का आयोजन अध्ययन केन्द्रों पर ही करें।
- बिना तैयारी के कोई गोष्ठी का आयोजन न करें।

3.5 दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र कार्य अभ्यास पर्यवेक्षण

दूरस्थ शिक्षा आज के परिप्रेक्ष्य में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। ऐसा इसलिए कि समाज के वे लोग जो किन्ही कारण वश शिक्षा ग्रहण नहीं कर पा रहे तथा विभिन्न व्यवसायिक कार्यो में

संलग्न है। वे लोग दूरस्थ शिक्षा पद्धति का लाभ उठाकर विभिन्न विषयों का ज्ञान अर्जित कर रहे है तथा साथ ही साथ अपना कार्य भी कर रहे है। समाज कार्य में दूरस्थ शिक्षा पद्वति एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम है। क्योंकि समाज कार्य अभ्यर्थियों को समाज में कार्य करने हेतु एक उचित अवसर प्रदान करती है। अतः समाज कार्य दूरस्थ शिक्षा पद्वति में यह आवश्यक है कि क्षेत्र कार्य अभ्यास का उचित रूप से पर्यवेक्षण किया जाए। वास्तव में समाज कार्य के क्षेत्र कार्य अभ्यास के अग्रलिखित उद्देश्य है –

1. छात्रों को विभिन्न क्षेत्र की वास्तविक परिस्थितियों में समाज कार्य तकनीकियों के अध्ययन का अवसर देना तथा व्यवसायिक शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करना है।
2. समाज कार्य के भिन्न क्षेत्रों में समाज कार्य के दर्शन तथा सिद्धान्तों के शिक्षण के व्यवहारिक पक्षों के सीखने की प्रक्रिया को गतिमान तथा व्यवस्थित करना है।
3. समाज कार्य अभ्यास में निपुणताओं, तकनीकियों तथा सीखने के लक्ष्य को प्राप्ति करने के लिए सिद्धान्तों एवं दर्शन का व्यवहारिक उपयोग को सुसाध्य बनाना है।
4. छात्रों में व्यवहारिक ज्ञान के गुणों में वृद्धि करना है जिससे वे विभिन्न स्थितियों में मानवीय व्यवहार की कला का विकास कर सकें।
5. छात्रों को व्यवसायिक निपुणताओं को प्राप्त करने तथा उनमें सामाजिक मनोवृत्तियों का विकास करने में सहायता प्रदान करना।
6. छात्रों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके गुणों और अवगुणों के आंकलन करने मे सहायता करना।
7. छात्रों को प्रभावकारी समाज कार्य अभ्यास में सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य के विकास में सहायता करना।
8. छात्रों को समाज कार्य व्यवसाय के प्रति उनकी रूचियों के विकास में सहायता करनां
9. छात्रों को समाज कार्य के क्षेत्र में अपनी जीविका का निर्माण तथा उन्हें भली–भांति व्यवहारिक ज्ञान को प्राप्त करने में सहायता करना।
10. क्षेत्र कार्य पर्यवेक्षण के विशिष्ट उद्देश्य क्षेत्र कार्य कार्यक्रमों को समायोजित करते है तथा विभिन्न पर्यवेक्षीय कार्यो के माध्यम से क्षेत्र कार्य प्रक्रिया को ठीक प्रकार से बना कर रखने का कार्य करते हैं।

वास्तव में समाज कार्य के क्षेत्राभ्यास का पर्यवेक्षण दूरस्थ शिक्षा में बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि समाज कार्य अभ्यर्थी संस्थागत छात्र के रूप में नही होते है और वे हमेशा पर्यवेक्षकों के पास भी नही आ पाते है। अतः समाज कार्य के क्षेत्र अभ्यास हेतु निम्नलिखित बिन्दु पर्यवेक्षकों हेतु दृष्टिव्य है –

1. अभिमुखीकरण विजिट का आयोजन कर क्षेत्र कार्य अभ्यर्थियों से प्रतिवेदन लिखवाना एवं उचित सलाह देना।
2. स्थानन प्रक्रिया के तहत समाज कार्य के अभ्यर्थियों को स्थानित कर संस्था के अधिकारियों से मिलवाना तथा संस्था की क्रिया विधियों का अभ्यर्थियों द्वारा अभिलेखन करा कर डायरी बनवाना।

3. संस्था सेवार्थी सम्बन्धों को मृदु बनाने हेतु अभ्यर्थियों को उचित सलाह देना तथा समाज कार्य के सैद्धान्तिक पहलुओं को अमल में लाने के लिए प्रेरित करना।
4. अन्य कार्य हेतु उत्तरदायित्वों को अभ्यर्थियों को प्रदान करना– समाज कार्य अभ्यर्थियों को समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास तथा सैद्धान्तिक अभ्यास हेतु कार्यो का वितरण करना चाहिए तथा उनके द्वारा किये गये कार्यो का मूल्यांकन कर उचित निर्देश देकर उन्हें विश्वविद्यालय को प्रेषित करना चाहिए।
5. प्रशासनिक कार्य सौपना – दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत पर्यवेक्षण में समाज कार्य अभ्यर्थियों के लिये प्रशासनिक कार्य सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री एकत्र करने हेतु पर्यवेक्षक को चाहिए कि अभ्यर्थियों से तथ्यएकत्रित करवायें व उन्हें अभिलिखित करवायें।

दूरस्थ शिक्षा में समाज कार्य अभ्यास के लिये पर्यवेक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अग्रलिखित कार्यो का सम्पादन उत्तरदायित्व पूर्वक वहन करेगें –

अधीक्षकीय परामर्श

अधीक्षकीय परामर्श एक प्रकार की संरचना है जिसमें दोनों पक्ष विद्यमान रहते है – अधीक्षक तथा कार्यकर्ता। अधीक्षण के माध्यम से अधीक्षकीय परामर्श कार्यकर्ता को कान्फरेन्स का अर्थ समझाता है। जैसे–जैसे अधीक्षकीय प्रक्रिया आगे बढ़ती है, अधीक्षक उसका अर्थ कार्यकर्ता को बताता जाता है। कान्फ्रेन्स के माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी के साथ कार्य करने की प्रविधियों को सीखता है तथा वैयक्तिक सेवा कार्य के सिद्धान्तों एवं ढंगों को अपने व्यवहार में लाता है। वह कान्फ्रेन्स में अधीक्षक के सम्मुख अपनी कठिनाइयों, परेशानियों एवं समस्याओं को प्रस्तुत करता है। अधीक्षक उन पर गहनता से विचार करता है और वह कार्यकर्ता की सहायता यथा स्थान करता है। वह कार्यकर्ता के ज्ञान व निपुणता के आधार पर पहले वार्तालाप करता है तथा मौखिक क्रियाओं द्वारा ज्ञान व निपुणता का विकास करने का प्रयत्न करता है।

अधीक्षण द्वारा कार्यकर्ता विद्यार्थियों को सिखाता है कि उसे किस प्रकार का व्यवहार सेवार्थी के साथ करना चाहिए तथा किन–किन पहलुओं पर अपना ध्यान आकृष्ट करना चाहिए।

अधीक्षक का प्रारम्भिक चरण

प्रारम्भिक चरण का प्रारम्भ पहली कान्फरेन्स से शुरू होता है। सुपरबाइजर संस्था की जानकारी देता है, उसके कार्यो, उद्देश्यों, सुविधाओं आदि के विषय में बताता है। सुपरबाइजर विद्यार्थी द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है तथा अपने उत्तर से पूर्ण आश्वस्त करता है। विद्यार्थी को कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना बहुत कठिन प्रतीत होता है और चिन्ता घेर लेती है। कुछ प्रश्नों को वह इसी चिन्ता के कारण पूछता भी नहीं है। सुपरबाइजर इन प्रश्नों का भी उत्तर देता है तथा हर स्थिति से अवगत कराने का प्रयास करता है जैसे किस प्रकार आप जाकर संस्था में अधीक्षक से मिलेंगे अपनी भूमिका बतायेंगे, किस प्रकार संस्था का इतिहास जानेंगे इत्यादि।

अधीक्षण नये कार्यकर्ता के लिए

सुपरवाइजर जो इस पद पर नियुक्त होता है उसको सुपरविजन का कार्य प्रारम्भ में कठिन सा लगता है। उसके मन में चिन्ता बनी रहती है कि यह किस प्रकार विद्यार्थी को सुपरवाइजर करेगा। उसकी अपनी

क्षमता तथा योग्यता पर भी शंका होती है तथा अनुभव की कमी के कारण व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना कठिन अनुभव होता है। अतः नये कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है उसे वैयक्तिक सेवा कार्य का पूर्ण सैद्धांतिक ज्ञान हो तथा व्यावहारिक उपयोगिता का अनुभव हो। वैयक्तिक कार्य उसे समाज कार्य के विषय में महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी अवश्य हो। दूसरी विशेषता उसमें पढ़ाने की रूचि होनी चाहिए। बहुत से कार्यकर्ता व्यावहारिक कार्य अच्छी प्रकार से करने में समर्थ होते है परन्तु पढ़ाने को उचित ढंग से नहीं कर पाते हैं। वे अपने ज्ञान को दूसरे तक पहुंचाने में उचित साधन का उपयोग नहीं कर पाते हैं। अपनी बात को समझा नहीं पाते है। इससे सीखने वाले को निराशा होती है। उसकी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी बात को समझा सके, विद्यार्थी की रूचि के अनुसार विषय का चुनाव कर सके, नये विचारों को समझने योग्य बना सके, विद्यार्थियों को अपनी शैली के अनुसार योग्यता विकसित करने में सहायता कर सके एवं उन्हें उत्साहित कर सके।

कार्यकर्ता को वैयक्तिक सेवा कार्य का ज्ञान प्रदान करना

वैयक्तिक सेवा कार्य का ज्ञान अधीक्षण के लिए प्रति आवश्यक है। सुपरवाइजर इस ज्ञान का विकास दैनिक अनुभव से करता है। वह इस ज्ञान का उपयोग अपने कार्यो में करता है। एक विद्यार्थी के लिए अथवा एक नये कार्यकर्ता के लिए वैयक्तिक सेवा कार्य के सभी पक्षों या कुछ अंशों का ज्ञान प्रदान करना आवश्यक होता है। अनुभव कार्यकर्ता केवल विशिष्ट समस्याओं के विषय में ज्ञान चाहता है। संस्था के प्रशासन के लिए भी वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता होती है। परन्तु यह ज्ञान स्वयं का होना चाहिए। सुपरवाइजर वैयक्तिक सेवा कार्य का उपयोग कार्यकर्ता द्वारा करता है। अतः उसका उत्तरदायित्व है कि वह कार्यकर्ता में वैयक्तिक सेवा कार्य ज्ञान का विकास करें जिससे वह अपना उत्तरदायित्व निभा सके। परन्तु सुपरवाइजर को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह स्वयं सेवार्थी की सहायता कार्यकर्ता के माध्यम से न करने लगे। यह कठिन कार्य होता है क्योंकि वैयक्तिक कार्यकर्ता के रूप में वह सेवार्थी की सहायता करता है परन्तु सुपरवाइजर के रूप में वह कार्यकर्ता की सहायता करता है परन्तु सहायता का विषय सेवार्थी ही होता है। वह अभिलेखों के माध्यम से स्वयं अनुमान लगाता है कि सेवार्थी की किस प्रकार से उत्तम सहायता मिल सकती है। लेकिन सुपरवाइजर एक भिन्न व्यक्ति होता है। उसकी अपनी विशेषताएं एवं गुण होते है। वह कार्यकर्ता को पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। अन्तिम उत्तरदायित्व कर्ता का ही होता है कि वह इस ज्ञान को जैसे चाहे उपयोग करे।

सम्बन्ध का उपयोग

सम्बन्ध के माध्यम से ही सुपरवाइजर अपनी निपुणताओं को विकसित करता है और सम्बन्ध को ही अपने सुपरविजन कार्य में उपयोग करता है। सम्बन्ध के माध्यम से ही कार्यकर्ता में निपुणताओं का विकास करता है। उसके कार्यकर्ता से सम्बन्ध सेवार्थी के सम्बन्ध से भिन्न होते है। लेकिन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लगभग उन्हीं निपुणताओं का उपयोग होता है। सेवार्थी से सम्बन्ध व्यावसायिक तथा उपचारात्मक होता है। कार्यकर्ता से भी सम्बन्ध व्यावसायिक होता है। कार्यकर्ता तथा सुपरवाइजर सम्बन्ध के द्वारा कुछ उत्तरदायित्वों को पूरा करते है। परन्तु वे अपनी अपनी भूमिकाओं के प्रति सजग रहते है। सुपरवाइजर के लिए सम्बन्ध का अर्थ कार्यकर्ता को प्रोत्साहन प्रदान करना जिससे अपने उत्तरदायित्व पूरा कर सके। प्रारम्भ से ही कार्यकर्ता को सेवार्थी की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी माना जाता है। सुपरवाइजर सम्बन्ध का उपयोग

कार्यकर्ता को अपनी भूमिका पूरी करने में करता है। शक्ति भी सम्बन्ध का एक तत्व है, एक तत्व सहायता करता है तथा एक तत्व पारस्परिक आदर एवं सेवार्थी से सम्बन्ध है। सम्बन्ध का कौन सा तत्व उपयोग में लाया जायेगा कार्यकर्ता की आवश्यकता तथा व्यक्तित्व पर निर्भर होता है। संस्था की संरचना तथा उद्देश्य भी सम्बन्ध के रूप को निश्चित करते हैं।

समस्या समाधान प्रक्रिया का उपयोग

सुपरवाइजर अपनी कार्य विधि में पर्लमैन द्वारा निर्मित प्रारूप समस्या समाधान का उपयोग करता है। वह थोड़ा बहुत परिवर्तन करके चारों 'पी' का उपयोग करता है। व्यक्ति कार्यकर्ता होता है। अन्य कार्यो के अतिरिक्त सुपरवाइजर का कार्य अधीक्षण करना मुख्य कार्य है। उसे सेवार्थी की ही भांति कार्यकर्ता के विषय में भी ज्ञान प्राप्त करना होता है। वह कार्यकर्ता के तरीकों, विधियों तथा शक्तियों से अवगत होता है। वह व्यवहार के कारणों का भी पता लगाता है। सुपरवाइजर समस्याओं को समाधान करना कार्यकर्ता को सिखाता है। उने अनेक अन्य समस्याओं का सामना करना होता है। वह इन सभी समस्याओं में वही प्रक्रिया अपनाता है जैसे समस्या का निरूपण, मूल्यांकन तथा अपनी समझ से समाधान का प्रयास।

निदान का अधीक्षण में उपयोग

जब निदान का उपयोग अधीक्षण में किया जाता है तो वैयक्तिक कर्ता सुपरवाइजर की भूमिका में होता है। निदान में सम्प्रेरणा, क्षमता तथा अवसर में तीन महत्वपूर्ण कारक होते है। जब कार्यकर्ता को सुपरवाइज किया जाता है तो उसका उद्देश्य उसे कार्य पूरा करने के लिए प्रेरित करना तथा व्यावसायिक विकास करना है। वह उसकी क्षमता का अन्दाजा लगाता है तथा सेवार्थी की भी स्थिति से अवगत होता है। अन्त में वह उन अवसरों की खोज करता है जिनसे कार्यकर्ता के व्यावसायिक ज्ञान में वृद्धि की जा सकती हैं।

प्रथम साक्षात्कार की तैयारी

पहली कान्फ्रेन्स में सुपरवाइजर तथा विद्यार्थी दोनों एक दूसरे की क्षमताओं व योग्यताओं को समझने का प्रयास करते है तथा सम्बन्ध की आधार शिला रखते है। सुपरवाइजर विद्यार्थी के व्यक्तित्व से परिचित होता है। उसकी रूचियों, कार्य के ढंगों, क्षमताओं, समझने की योग्यता, कार्य में रूचि आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। विद्यार्थी भी सुपरवाइजर की विशेषताओं से परिचित होता है।

संस्था में स्यानन

विद्यार्थी संस्था जाने से पहले विशेष ज्ञान चाहता है। वह संस्था में जाकर किस प्रकार वैयक्तिक कार्य को व्यवहार में लायेगा जानने का प्रयत्न करता है। वह संस्था की भौगोलिक स्थिति, सामाजिक तथा व्यावसायिक स्थिति का ज्ञान चाहता है। उसको यह ज्ञान सुपरवाइजर द्वारा दिया जाता है। संस्था की संरचना, कार्य, उपलबध सेवाऐ, स्रोत आदि बताता है। साक्षात्कार की विधि का वर्णन करता है। सम्बन्धों को किस प्रकार स्थापित करते हैं तथा उसमें प्रगाढ़ता लाते हैं सुपरवाइजर बताता है। अभिलेखन की भी जानकारी देता है। विद्यार्थी संस्था की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करता है। अधीक्षकीय कान्फ्रेन्स के द्वारा यह ज्ञान विद्यार्थी को प्रदान किया जाता है।

सुपरवाइजर तथा विद्यार्थी की भूमिकाओं की स्पष्टता

प्रारम्भिक चरण में सुपरवाइजर के अनेक कार्य होते हैं। यद्यपि समय तथा स्थिति के अनुसार इनमें भिन्नता भी होती है। उसका प्रमुख कार्य विद्यार्थी में आवश्यक योग्यता एवं ज्ञान विकसित करना जिससे वह संस्था में कार्य कर सके। वह अपनी भूमिका भी स्पष्ट करता है।

अभिलेखन का प्रारम्भ

प्रक्रियात्मक अभिलेखन सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में महत्वपूर्ण होते है। विद्यार्थी से ऐसे ही अभिलेखों को तैयार करने के लिए कहा जाता है। इसमें केस का इतिहास विस्तृत रूप में लिखा जाता है तथा साक्षात्कार के प्रवाह का रूप भी देखने को मिलता है। यह सुपरवाइजर के लिए महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे उसे विद्यार्थी द्वारा केस का साक्षात्कार की तस्वीर सामने आती है। साथ ही साथ विद्यार्थी को भी कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता मिलती है। सुपरवाइजर इन्हीं अभिलेखों की सहायता से विद्यार्थी की सहायता करता है। वह अभिलेख का विषय बताता है तथा निर्देशन देता है। परन्तु विद्यार्थी को पहले अभिलेख में पूरी स्वतन्त्रता होती है ि कवह जिस प्रकार चाहे लिखे परन्तु केस की तस्वीर स्पष्ट होनी चाहिए। यदि शैली उचित नही होती है तो अन्य केसों में निर्देशन दे दिया जाता है, सुधार के तरीके बता दिये जाते है। सुपरवाइजर पहले केस में विद्यार्थी को स्वयं कमेन्ट लिखने के लिए कहता है तथा भविष्य के नियोजन की बातचीत करता है। अभिलेखों की संरचना में लचीलापन होता है परन्तु विद्यार्थी को इससे कार्य का तात्पर्य अवश्य स्पष्ट होता है। सुपरवाइजर अभिलेखन का समय भी निर्धारित करता है।

अधीक्षण का विकास

औपचारिक तथा संरचित अधीक्षण का प्रारम्भ प्रशासकीय कार्यो के रूप में हुआ। अधीक्षक का कार्य कर्मचारियों के कार्यो को देखना तथा उन पर दृष्टि रखना सम्मिलित था जिससे संस्था का कार्य सुचारू रूप से हो सके। अधीक्षक को प्रत्येक कर्मचारी के कार्य सम्पादन, उनके कार्य भार, कानूनों तथा नियमों के पालन पर दृष्टि रखने का कार्य सौंपा गया। समस्याएं उत्पन्न करने वाले कर्मचारियों में सुधार लाने का कार्य भी दिया गया। कुछ समय पश्चात् वैयक्तिक रूप से व्यक्ति के विषय में अध्ययन, निदान तथा उपचार का भी कार्य भार उसे सौंपा गया। यहीं से उसने शिक्षण एवं व्यावसायिक पद्धति के विकास के लिए विकास कार्य करना प्रारम्भ किया। सन् 1920 से अधीक्षक के उत्तरदायित्वों को प्रशासनिक के साथ ही साथ शैक्षिक भी समझा जाने लगा। इन्हीं दिनों समाज कार्य का विकास हुआ और समाज कार्य में फील्ड वर्क को एक आवश्कय अंग समझा गया।

3.6 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य पर्यवेक्षण के बारे में प्रकाश डाला गया है साथ ही साथ पर्यवेक्षण के प्रारूपों और पद्धतियों के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू महत्वपूर्ण होते हैं। अतः इस इकाई में समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रशासनिक और पर्यावरणीय पहलू को अलग–अलग बिन्दुओं के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। इसी इकाई में पर्यवेक्षण में सहायक प्रकार्यो के बारे में चर्चा की गयी तथा उन सभी सहायक कार्यो में प्रकाश डाला गया है। इकाई के

अन्त में दूरस्थ शिक्षा पद्धति में क्षेत्र का अभ्यास पर्यवेक्षण के बारे में लिखा गया है तथा बताया गया है कि दूरस्थ शिक्षा पद्धति में समाज कार्य पर्यवेक्षक अभ्यर्थियों से क्षेत्र कार्य अभ्यास कैसे करवाये।

3.7 परिभाषिक शब्दाबली

Supervision	पर्यवेक्षण	Support	आवलम्बन
Model	प्रारूप	Development of Supervision	अधीक्षण का विकास
Methods	पद्धतियां	Supervisory Support	पर्यवेक्षणीय आलम्बन
Administrative Supervision	प्रशासनिक पर्यवेक्षण	Counselling	परामर्श
Environmental	पर्यावरणीय	Team Work	मिल जुलकर कार्य करना
Supportive Function	स्हायक प्रकार्य	Recording	अभिलेखन
Placement	स्थानन	Diagnosis	थ्नदान
Psychological	मनोवैज्ञानिक	Initial	प्रारम्भिक

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार, डॉ0 रूपेश, क्षेत्रकार्य, समाज कार्य विभाग, में विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत मानविकी एवं समाज विज्ञानों के अवस्थापना से सम्बन्धित तथ्य, वर्ष 2004, पेज 04–09.
2. मिश्र, डॉ0 प्रयाग दीन, सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, वर्ष 1997, पेज 412–418.

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य पर्यवेक्षण से आप क्या समझते हैं ?
2. समाज कार्य पर्यवेक्षण के प्रारूपों की चर्चा कीजिए ?
3. समाज कार्य पर्यवेक्षण की पद्धतियां कौन–कौन सी है ?
4. समाज कार्य पर्यवेक्षण में प्रशासनिक पहलू पर एक लेख लिखिए ?
5. समाज कार्य पर्यवेक्षण में पर्यावरणीय पहलू से आप क्या समझते हैं ?

इकाई – 4

समाज कार्य क्षेत्र कार्य अभ्यास में व्यक्ति, परिवार, समुदाय व संगठन

इकाई का रूपरेखा

4.0 इकाई का उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति

4.2.1 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में परिवार

4.2.2 समाज कार्य अभ्यास में समुदाय

4.2.3 समाज कार्य अभ्यास में संगठन

4.3 चिकित्सा

4.3.1 मनोचिकित्सा

4.3.2 बाल देखभाल

4.4 शिक्षा एवं अनुसंधान

4.5 सुधारात्मक सेवायें

4.6 निगमित क्षेत्र

4.6.1 दाता संस्थायें

4.6.2 गैर सरकारी संगठन

4.7 सार संक्षेप

4.8 परिभाषिक शब्दाबली

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभ्यास हेतु प्रश्न

4.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित के बारे में ज्ञान प्राप्त करेगें –

1. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति क्या होता है तथा उससे सम्बन्धित वैयक्तिक सेवा कार्य किस तरह एकत्रित किया जाता है।
2. समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में परिवार क्या होता है तथा समाज कार्य के किस प्रविधि द्वारा परिवार की समस्यायें दूर की जाती है।
3. समाज कार्य अभ्यास में समुदाय क्या होता है तथा समुदाय का अध्ययन कैसे किया जाता है।

4. समाज कार्य अभ्यास में संगठन क्या होता है तथा संगठन से संबन्धित तथ्य कैसे एकत्रित किये जाते हैं।
5. चिकित्सा क्या होती है?
6. मनोचिकित्सा में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
7. बाल देखभाल से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
8. शिक्षा एवं अनुसंधान से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में लिख सकेगें।
9. सुधारात्मक सेवाओं के बारे में जान सकेगें।
10. निगमित क्षेत्र के बारे में लिख सकेगें।
11. दाता संस्थाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
12. गैर सरकारी संगठन के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

4.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति, परिवार, समुदाय व संगठन के बारे में जानकारी दी गई है। जो अलग–अलग बिन्दुओं के माध्यम से है। जिनका वर्णन हम विभिन्न शीर्षकों के माध्यम से करेगें।

4.2 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति

जो व्यक्ति मनोसामाजिक तथा सांवेगिक सहायता के लिए संस्था में आता है वह व्यक्ति चाहे पुरूष हो, स्त्री हो अथवा बालक हो, सेवार्थी कहा जाता है। यद्यपि सामाजिक संस्था में जाने वाला सेवार्थी अन्य व्यक्तियों के समान ही होता है। उसकी भाषा तथा संस्कृति प्रायः अन्य आने वाले व्यक्तियों (सेवार्थियों) के समान होती है परन्तु कुछ भिन्नताएं भी होती है। भिन्नताएं उस समय परिलक्षित होती है जब हम सेवार्थी को एक व्यक्ति के रूप में देखने का प्रयत्न करते हैं। उसका व्यक्तित्व भिन्न होता है, उसके सांवेगिक तथा मानसिक गुण भिन्न होते है। परन्तु प्रत्येक स्थिति में वह पूर्ण अन्तःक्रिया करता है। समस्या उसकी चाहे सामाजिक हो, मनोवैज्ञानिक हो अथवा सांवेगिक हो वह प्रत्येक स्थिति में शारीरिक मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक विशेषताओं के साथ प्रतिक्रिया करता है। शारीरिक, भौतिक, सामाजिक, अनुभव प्रत्यक्षीकरण, आकांक्षाऐं, इच्छाऐं आदि संयुक्त होकर व्यक्ति को प्रभावित करती है। यह शारीरिक मनोवैज्ञानिक–सामाजिक विगत वर्तमान तथा भविष्य का चक्र व्यक्ति के साथ सभी स्थितियों में रहता है और इसके प्रभाव से पृथक नहीं हो सकता है।

वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी के सम्बन्ध में जो जानकारी चाहता है उसका सम्बन्ध उसकी समस्या से अधिक होता है। वह उन तथ्यों की खोज करता है जिनसे समस्या समझने, उसके निदान करने तथा समाधान करने में सहायता मिलती है। समस्या की प्रकृति ही निश्चित करती है कि किस प्रकार से ज्ञान की,

कार्यकर्ता को आवश्यकता है तथा किस प्रकार सेवार्थी सामाजिक अनुकूलन पुनः प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

वैयक्तिक अध्ययन

1. **समस्या का गहन अध्ययन** : अध्ययन का केन्द्र एक समस्या होती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता उस समस्या से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन करता है। उसके स्रोत का पता लगाता है, प्रभावकारी कारकों का अवलोकन करता है, समस्या के स्वरूप का निर्धारण करता है तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है।
2. **व्यक्तिपरक पहलुओं का अध्ययन** : सेवार्थी की भावनाओं, धारणाओं तथा व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। व्यक्ति की समस्त विशेषताओं का अध्ययन वैयक्तिक कार्य में आवश्यक समझा जाता है।
3. **वैयक्तिक मान्यता** : वैयक्तिक अध्ययन में कार्यकर्ता सामान्यीकरण सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करता है। वह प्रत्येक व्यक्ति की समस्या व परिस्थिति को अनोखा देखता है तथा उसी सन्दर्भ में अध्ययन भी करता है।
4. **सर्वांगीण अध्ययन** : सेवार्थी के किसी एक पहलू का अध्ययन कर पूर्ण स्थिति का अध्ययन किया जाता है। वैयक्तिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, सांवेगिक, विकासात्मक आदि सभी विशेषताओं का अध्ययन सम्मिलित होता है।

वैयक्तिक अध्ययन में सूचना के स्रोत : वैयक्तिक अध्ययन के अन्तर्गत सूचना प्राप्ति के निम्नलिखित स्रोत है :

1. **सेवार्थी स्वयं** : सेवार्थी का साक्षात्कार किया जाता है जिससे समस्या तथा अन्य महत्वपूर्ण कारकों का ज्ञान होता है। सेवाथी से जीवन सम्बन्धी विभिन्न घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।
2. **व्यक्तिगत प्रलेख** : इसके अन्तर्गत आत्म कथाएं एवं डायरीज आती है। इनसे व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी विविध घटनाओं, अनुभव, विश्वास, धारणा, दृष्टिकोण, परिस्थिति आदि के विषय में महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। दैनन्दिनी द्वारा अनेक अस्पष्ट तथ्य स्पष्ट हो जाते है। आत्म कथाओं से भी व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा सामाजिक सम्पर्क से सम्बन्धित सूचना प्राप्त होती है। इसके अन्दर व्यक्ति का आत्म चित्रण रहता है तथा सच्चे आंकड़े प्राप्त होते हैं। मानसिक क्रिया कलापों का भी विवरण इनसे मिलता है साथ ही साथ सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप का ज्ञान होता है, अज्ञात रहस्य प्रकट होते हैं तथा घटना विशेष को समझने में सहायता मिलती है।
3. **जीवन इतिहास** : व्यक्ति का पूर्ण अध्ययन जीवन इतिहास द्वारा सम्भव है क्योंकि इसमें व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का तत्व सम्मिलित होता है। जीवन इतिहास से व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि, जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाएं, दिशा निर्धारित करने वाले कारक, व्यक्ति की क्रियाएं तथा प्रतिक्रियाएं परिवर्तित परिस्थितियां तथा उनका प्रभाव, वर्तमान स्थिति तथा भावी जीवन लक्ष्य एवं धारणाएं, भावनाएं ज्ञात होती है।

4. **अतिरिक्त स्रोत** : पुस्तकें, लेख, पत्रिकाएं, अनुसंधान आदि वैयक्तिक अध्ययन के अन्य स्रोत है जिनके द्वारा उपयोगी सूचना प्राप्त की जाती है तथा अध्ययन में सुविधा मिलती है।

वैयक्तिक अध्ययन की विषयवस्तु –

वैयक्तिक अध्ययन निम्न तथ्यों का किया जाता है:

1. **परिचयात्मक आंकड़े** : इसके अन्तर्गत सेवार्थी का नाम, आयु, लिंग, जाति, धर्म, व्यवसाय, आय, शिक्षा का स्तर, वैवाहिक जीवन आधार की स्थिति, रहने की दशाएं आदि सम्मिलित करते हैं।
2. **समस्या का स्पष्ट चित्रण** : समस्या क्या है, समस्या का रूप क्या है, समस्या से सम्बन्धित क्या क्या शिकायतं एवं परेशानियां है, सेवार्थी संस्था में क्यों आया है तथा क्या चाहता है, समस्या किस प्रकार प्रारम्भ हुई, समस्या उत्पन्न करने वाली कौन–कौन सी दशाएं थीं, कौन–कौन से कारण वर्तमान समय में समस्या से सम्बन्धित है, व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक तथा सांवेगिक स्थिति पर समस्या का क्या प्रभाव पड़ा है, समस्या के कारण सेवार्थी की दैनिकचर्या में क्या–क्या परिवर्तन हुए है, शारीरिक दोष एवं व्याधियां किस प्रकार की है तथा उनका समस्या से कितना सम्बन्ध हैं। सेवार्थी का स्वास्थ्य एवं स्नायुविक प्रक्रिया कितनी प्रभावित हुई है उसकी नींद पर क्या असर पड़ा है आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं।
3. **उपचार** : सेवार्थी समस्या को लेकर कहाँ कहाँ तथा किस किस के पास गया है, किस प्रकार की सहायता प्राप्त की है, समस्या पर सहायता का क्या पड़ा है, सेवार्थी ने सहायता को किस रूप में स्वीकार किया है, उसका इसके प्रति क्या मूल्यांकन रहा है, सेवार्थी अपने पूर्व अनुभवों को वर्तमान सहायता के सन्दर्भ में किस प्रकार प्रत्युत्तर कर रहा है, उसने सहायता प्रदान करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्ध किस प्रकार के स्थापित किये, अभी तक कितना समय सहायता के लिए सेवार्थी ने व्यतीत किया है वर्तमान समय में सेवार्थी का दृष्टिकोण क्या है, आदि का अध्ययन करते हैं।
4. **भावनायें तथा विचार** : सेवार्थी का समस्या के प्रति दृष्टिकोण, समस्या का सेवार्थी द्वारा विश्लेषण, सेवार्थी द्वारा बताये गये समस्या के कारण, समस्या का सेवार्थी से सम्बन्ध, सेवार्थी की क्षमताओं एवं कमियों का अध्ययन करते हैं।
5. **विकासात्मक स्थिति का अध्ययन** : सेवार्थी की माँ की गर्भावस्था में शारीरिक एवं सांवेगिक दशाएं, महत्त्वपूर्ण घटनाएं, जन्म क्रम में अव्यवस्था अथवा समस्या, माँ में शारीरिक दोष अथवा व्याधि आदि का अध्ययन करते है। सेवार्थी के बचपन की कोई महत्वपूर्ण घटना, बीमारी रोग, भयानक सपने, निद्रागमन, व्यावहारिक दोष, चारित्रिक दोष, मानसिक अक्षमताएं आदि का अध्ययन करते है। स्कूल में सेवार्थी के व्यवहार का अध्ययन करते हैं। पढ़ने में रूचि, सक्रियता, खेल में भागीकरण, अध्यापकों से सम्बन्ध आदर्श का रूप विद्यार्थियों से सम्बन्ध, महत्वपूर्ण घटनायें आदि का वैयक्तिक अध्ययन का अंग होती है।

6. **पारिवारिक इतिहास** : परिवार का प्रकार, परिवार की सदस्य संख्या, सेवार्थी का भाई बहनों में स्थान, माता–पिता, भाई–बहन, पत्नी आदि की आयु, शिक्षा, व्यवसाय, शारीरिक तथा मानसिक स्तर आदि का अध्ययन करते हैं। सेवार्थी का माता–पिता से सम्बन्ध, माता–पिता का व्यक्तित्व, माता–पिता का आपस में सम्बन्ध, परिवार मं अनुशासन के तरीके, परिवार का प्रभावकारी व्यक्ति तथा उसका व्यक्तित्व का अध्ययन करते है। घर की आर्थिक स्थिति, सांवेगिक दशाएं, मद्यपान आदि को जानने का प्रयत्न करते है। परिवार की सामाजिक दशाएं भी अध्ययन का विषय है।
7. **वैवाहिक इतिहास** : विवाह की अवस्था, विवाह का प्रकार, पति पत्नी में लैंगिक सम्बन्ध तथा उसके प्रति सेवार्थी का दृष्टिकोण, लैंगिक बाधाएं तथा समस्यायें आदि का अध्ययन करते हैं। बच्चों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करते हैं।
8. **व्यावसायिक इतिहास** : वैयक्तिक अध्ययन में हम सेवार्थी के व्यावसायिक इतिहास को जानने का प्रयत्न करते हैं उसके पद तथा कार्य की प्रकृति, कार्य करने की अवधि, व्यावसायिक कमियां, कार्य छोड़ने का कारण, सहयोगी कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध, मालिक से सम्बन्ध, वर्तमान सेवा स्थान की स्थिति, सम्बन्ध की प्रकृति तथा दृष्टिकोण कार्य की दशायें आदि का अध्ययन करते हैं।
9. **व्यक्तित्व की विशेषतायें** : सेवार्थी के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन करते हैं।
10. सेवार्थी के चेहरे का हाव भाव, शारीरिक लय, बातचीत का ढंग, बातचीत में तारतम्यता, चिन्ता का स्तर, भग्नाशा की आशा, विचारों में तारतम्यता, अन्तदृष्टि तथा निर्णय शक्ति का अध्ययन करते है।
11. **समस्या का निदान** : उपलब्ध तथ्यों का मूल्यांकन करते हैं। मूल्यांकन के आधार पर समस्या का रूप निश्चित करते हैं, समस्या के मुख्य कारक को निश्चित करते हैं तथा उपचार के उपायों की खोज करते हैं।
12. **उपचार** : निदान के उपरान्त समस्या के उपचार का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

सामाजिक वैयक्तिक कार्य में वैयक्तिक अध्ययन का महत्व

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य समाज कार्य की एक महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा एक व्यक्ति की सहायता की जाती है जिससे वह अपनी समस्याओं को सुलझा सके तथा भविष्य में इस समस्या से ग्रसित न हो। उसे आत्म निर्भर बनाने का प्रयत्न किया जाता है अतः सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पूर्ण व्यक्तित्व जानना आवश्यक होता है तभी उसमें निहित शक्ति एवं क्षमता को उभार कर सक्रिय रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। वैयक्तिक अध्ययन से व्यक्ति की सम्पूर्ण स्थिति का चित्रण होता है, उसकी सम्पूर्ण दशाओं का ज्ञान होता है, परिस्थितियों के प्रभावों का पता चलता है। इन सूचनाओं के आधार पर ही वैयक्तिक कार्यकर्ता उपचार एवं सहायता कार्य करने में सफल होता है।

4.2.1 समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में परिवार

परिवार शब्द अंग्रेजी भाषा के फेमिली शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। फेमिली शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फेमलस नामक शब्द से हुई है। फेमलस शब्द का तात्पर्य नौकर से है। परन्तु परिवार के अन्तर्गत केवल नौकर को ही नहीं सम्मिलित किया जाता है। इसका अर्थ समय के अनुसार बदलता रहा है। वास्तविक लैटिन शब्द फमिलियस के अन्तर्गत माता–पिता, बच्चे तथा नौकर तथा गुलाम तक सम्मिलित किये जाते थे। पश्चिमी समाजशास्त्री परिवार के अंतर्गत लघु समूह सदस्यता को स्वीकार करते हैं। इसके अन्तर्गत वे माता–पिता तथा अविवाहित बच्चे सम्मिलित करते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से परिवार के अन्तर्गत माता–पिता, भाई–बहन, चाचा–चाची, पुत्र–पुत्री, भतीजे–भतीजी, बहु आदि सम्मिलित रहते है तथा वे पारस्परिक प्रेम–भावना से बंधे होते है। भौतिक दृष्टि से भारतवर्ष में सयुक्त परिवार तथा पश्चिमी देशों में वैयक्तिक परिवार पाया जाता है। परन्तु सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि में दोनों प्रकार के परिवारों में कोई विशेष भिन्नता नहीं होती है तथा दोनों को एक ही रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

परिवार उस समूह को कहते है जो लिंग सम्बन्ध पर आधारित है और जो इतना छोटा तथा स्थायी है कि उसमें बच्चों की उत्पत्ति और उनका पालन–पोषण हो सकता है।

वर्जेस तथा लाके के अनुसार : परिवार विवाह, रक्त या गोद लेने के सम्बन्धों से जकड़े हुए व्यक्तियों का एक समूह है जो एक गार्हस्थ को बनाते हैं और पति–पत्नी, माता–पिता, लड़के और लड़की और भाई और बहन के अपने–अपने सामाजिक कार्यो के रूप में एक–दूसरे से अन्तःसन्देशों को करते हैं और एक सामान्य संस्कृति को बनाते हैं तथा उसकी रक्षा करते हैं।

परिवार के कार्य

व्यक्ति की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए ही परिवार इकाई का विकास हुआ है। अतः इसका सर्वप्रथम कार्य व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करना है। इस सन्दर्भ में परिवार के कार्यो को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं।

जैविकीय कार्य

जैविकीय कार्यो के अन्तर्गत परिवार निम्न कार्य करता है।

1. यौन इच्छा की पूर्ति
2. संतानोत्पत्ति का कार्य
3. प्रजाति का विकास
4. बच्चों का पालन–पोषण
5. शारीरिक रक्षा
6. भोजन का प्रबन्ध
7. वस्त्रों का प्रबन्ध
8. रहने का प्रबन्ध

आर्थिक कार्य

1. श्रम विभाजन
2. आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र
3. उत्तराधिकार
4. सम्पत्ति का प्रबन्ध

सामाजिक कार्य

1. व्यक्ति का सामाजिक विकास करना
2. बालक के व्यक्तित्व का विकास करना
3. सामाजीकरण में सहायता करना
4. स्थिति का निर्धारण करना
5. सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरिक करना
6. सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना
7. जीवन साथी का चयन करना

मनोवैज्ञानिक कार्य

1. मानसिक सुरक्षा प्रदान करना
2. सांवेगिक सुरक्षा प्रदान करना
3. प्राथमिक सम्बन्धों की स्थापना करना
4. सुख दुख में भागीदार होना
5. शैक्षणिक कार्य
6. सांस्कृतिक कार्य
7. धार्मिक कार्य
8. सामाजिक नियंत्रण का कार्य

मनोरंजनात्मक कार्य

परिवार की रचना के प्रारम्भ से ही इसका कार्य सदस्यों को मनोरंजन प्रदान करना रहा है। बच्चों का मनोरंजन विशेष रूप से घर पर ही होता है। बच्चों की सुखद तथा स्वास्थ्यप्रद पर्यावरण परिवार में ही प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत वे अपनी शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक आदि विशेषताओं का विकास करते है। युवकों तथा वृद्धों को भी परिवार मनोरंजन प्रदान करता है। परिश्रम से थका हुआ व्यक्ति जब शाम को घर वापस आता है तो वह अपने को अपनी पत्नी तथा बच्चों के बीच पाकर आनन्द का अनुभव करता है उसमें नवीन शक्ति का संचार होता है तथा अपनी सभी चिन्ताओं को वह भूल जाता है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर अनेक उत्सव तथा त्यौहार होते रहते हैं जो मनोरंजन का भी कार्य करते हैं।

राजनैतिक कार्य

परिवार एक प्रशासकीय इकाई भी है। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों को आज्ञा देता है और सभी सदस्य उसका पालन करते है। इसी प्रकार यह क्रम नीचे तक चलता रहता है। अर्थात् स्थिति के अनुसार व्यक्ति अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का उपयोग करता है। परिवार में यदि किसी प्रकार के झगड़े उत्पन्न होते है तो परिवार का मुखिया उनको निपटाता है तथा समझौता करा देता है।

मूल्यांकन : निम्न आधारों पर मूल्यांकन सम्भव होता हैं :

1. **विषयवस्तु** : परिवार का परिचय, परिवार सदस्य संख्या, प्रत्येक सदस्य की आयु, सम्बन्ध, कार्य, शिक्षा, आर्थिक, स्तर, धार्मिक रूचि आदि। वर्तमान समस्या, शिकायत, प्रार्थना, प्रार्थना पत्र देने का कारण, समस्या की प्रकृति, समस्या किससे सम्बन्धित है, कब से समस्या है, परिवार के सदस्यों की समस्या के प्रति क्या प्रतिक्रियाएं हैं, समान तथा विभेदी विषय कौन–कौन से हैं आदि।
2. **पारिवारिक संरचना तथा प्रतिक्रियाएं** :

1) उम्र तथा भूमिका के आधार पर उत्तरदायित्व का बंटवारा दिन प्रतिदिन के कार्यो को पूरा करने के पारिवारिक तरीके।

2) अभिज्ञान के तरीके तथा भूमिका निर्वाह, भूमिका के आधार पर परिवार सम्बन्ध।

3) उद्देश्यीय सम्बन्धों की प्रकृति तथा उसका स्तर सदस्य किस प्रकार एक दूसरे की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं, सन्तोष प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, सदस्यों को कहाँ तक वैयक्तिक रूचि पूरी करने की छूट है, आयु के आधार पर कितनी निर्भरता, अलगाव तथा आत्म निर्भरता है।

4) परिवार की भावनाओं को किस प्रकार समझा जाता है, भावनाओं को स्पष्टीकरण की क्या प्रकृति है, कितनी सहनशीलता है, नियन्त्रण कितना है, आत्मीयता, उग्रता, लैंगिकता, चिन्ता, प्रतिगमन, धार्मिक रीति–रिवाजों आदि का क्या रूप है। सदस्यों को प्रत्येक क्षेत्र में कितनी स्वतंत्रता है, वे कितना नियन्त्रण स्वीकार करते हैं आदि।

5) वास्तविकता प्रत्यक्षीकरण की कितनी क्षमता है, आत्म के अवलोकन की क्या क्षमता है, कितना प्रत्यक्षीकरण त्रुटिपूर्ण है, दूसरों की समस्या के प्रति क्या प्रत्यक्षीकरण हैं, परिवार में मनोसुरक्षात्मक यन्त्रों का कहाँ तक उपयोग होता है, अवरोध कौन–कौन से हैं आदि।

6) **संघर्ष तथा समाधान के तरीके** : परिवार में निर्णय प्रक्रिया, तनाव दूर करने के तरीके, समस्या समाधान के तरीके, विचारों की भिन्नता वाले विषय।

7) **परिवार के मूल्य** : सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रभाव, नैतिक धार्मिक दृष्टिकोण का स्थान तथा उनके हस्तान्तरण के तरीके, सामाजिक आकांक्षाएं तथा इच्छाएं, परिवार का समाज में स्थान।

8) **संचार के तरीके** : सांस्कृतिक प्रभाव, मौखिक एवं अमौखिक संचार प्रक्रिया की शैली, संचार का प्रभाव तथा उद्‌देश्य, समाचार का द्विस्तर, स्वीकृति तथा अस्वीकृति के क्षेत्र, भाषा का उपयोग तथा उसकी स्पष्टता।

3. **पारिवारिक इतिहास** : समस्या से सम्बन्धित आवश्यक आंकड़े जैसे – वैवाहिक जीवन का इतिहास, बाल विकास, महत्वपूर्ण घटनाएं, परिवार में भूमिका का परिवर्तन, बीमारियां, हानि आदि सामाजिक अनुकूलन तथा सामाजिक आवश्यकताएं।

4. **सदस्यों का इतिहास** : व्यवहार, लक्षण, स्वास्थ्य, अनुकूलन, परिवार में कठिनाइयां आदि।

5. **समस्या समाधान करने के लिए उपलब्ध शक्ति** : प्रत्येक सदस्य में समस्या से लड़ने की शक्ति तथा संक्रामकता, वैयक्तिक रूचि तथा योग्यता, समस्या पर कार्य करने की इच्छा, वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति भय, चिन्ता, परिवार में घनिष्ठता तथा अलगाव की इच्छा तथा प्रकृति आदि।

वैयक्तिक कार्यकर्ता उपरोक्त निर्देशन तालिका का उपयोग करता है। विषयवस्तु, प्रक्रिया, पारिवारिक संरचना आदि का ज्ञान होने पर उपचार योजना बनती है, उद्‌देश्य निर्धारित होते हैं तथा विशिष्ट कार्य प्रणाली बनायी जाती है। इससे निम्न प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है :

1. वर्तमान समस्या का केन्द्र बिंदु क्या है, यह अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में स्थिर है, पूरे परिवार से सम्बन्धित है या किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित है, परिवार से बाहर इसका कोई सम्बन्ध है।
2. परिवार के स्थायित्व में क्या–क्या बाधाएं है तथा स्थायित्व क्यों नही बनाया जा सकता है।
3. उपचारात्मक प्रक्रिया में कितना सहयोग मिलने की आशा है, किस व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से चिकित्सा प्रक्रिया में लगाना है आदि।
4. किन–किन विधियों तथा प्रविधियों का उपयोग लघु दीर्घकालीन उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए करना है। उदाहरण के लिए दीर्घकालीन उद्‌देश्य वैवाहिक जोड़ें का उपचार कार्य करना है परन्तु जब तक सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे तब तक परिवार इसको मान्यता नहीं प्रदान करेगा। उद्‌देश्य कुछ भी हो, कार्यकर्ता तथा परिवार दोनों की स्वीकृति आवश्यक है।

4.2.2 समाज कार्य अभ्यास में समुदाय

सामुदाय संगठन में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण की एक पुरानी पद्धश्त है। भारत में समाज कार्य के विद्यालयों ने इसे 1960 तथा 1980 में प्रारम्भ किया। अब तक दूरस्थ क्षेत्रों में यह अभी भी उपेक्षित है। यह बात ध्यान देने योग्य है। कि कुछ विद्यालयों में इसका प्रशिक्षण दिया जा रहा है वहाँ इसे विशिष्ट प्रयोगात्मक पाठ्‌यक्रम को सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया है। अधिकांश छात्र सामुदायिक संरचना में कार्य कर रहे है तथा संकाय पर्यवेक्षकों के मार्गदर्शन व पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अपना प्रशिक्षण भी प्राप्त कर रहे है। इस क्षेत्र के कुछ विशेषज्ञों ने सामुदायिक संगठन के आदर्श प्रतिमान विकसित किये है। परन्तु ग्रामीण छात्र इसे समझने में

असमर्थ है। इसलिये इसके अन्तर्गत अनुभवी तथा अवलोकन के आधार पर सामुदायिक संरचना में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण की कार्य प्रणाली पद्धतियां और अभ्यास को उल्लेख किया गया है।

सामुदायिक वातावरण में स्थापन की आवश्यकता

सामुदायिक वातावरण में छात्रों का स्थापन समय की आवश्यकता है। यह समुदाय की आवश्यकताओं के आधार पर समन्वित क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण को समाज कार्य की प्रशिक्षिण शिक्षा में लागू करके उसका विकास करती है यह बहुत आवश्यक है क्योंकि छात्र स्वयं नीतियों के आकार के निर्माण में सम्मिलित होने के साथ इसका क्रियान्वयन करते हैं। छात्रों को अभिकरण की संरचना में स्थापना के समय ऐसे अवसर प्रदान किये जाते है। उसके अतिरिक्त चयनित समुदाय में जरूरतमंदों को किसी भी स्थिति में व्यवसायिक कल्याण सेवाएं दी जा सकती है। जिससे छात्रों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए एक वृहत तथा खुला अवसर प्रदान किया जा सके और इसके साथ ये छात्र समाज में सद्भावना, पहचान तथा यश बढ़ा सकें। कई बार देखा गया है कि कई स्वयंसेवी संगठनों ने ऐस स्थानों की आवश्यकताओं को पहचान कर उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयास किया है। प्रायः ये संगठन आवश्यकताओं को पहचान कर उनका समाधान करने में सफल नही होते क्योंकि संसाधन तथा क्षेत्र सीमित होते है। समाज कार्य के प्रशिक्षण में सामान्यतः सहायता करने के स्रोत का प्राप्त करने तथा चिन्हित करने के लिए आवश्यक ज्ञान होता है। इस प्रकार के स्थापना से समुदायों को बहुत अधिक लाभ प्राप्त होते हैं।

सामुदायिक संगठन में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण के उद्देश्य

सामुदायिक संगठन में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य है :

1. छात्रों को समाज कार्य की सभी पद्धतियों के अभ्यास का अवसर प्रदान करना। जैसे – क्षेत्रकार्य वैयक्तिक कार्य, समूह कार्य, सामुदायिक संगठन, समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक अनुसंधान तथा सामाजिक क्रिया।
2. छात्रों को समुदाय के सदस्यों के जीवन को समझने के योग्य बनाना तथा उनके विचारों, मनोवृत्तियों क्षमताओं दृष्टिकोण तथा सामान्य एवं विशिष्ट समस्याओं व आवश्यकताओं को समझना।
3. छात्रों को संकाय पर्यवेक्षकों के मार्गदर्शन तथा नियंत्रण के अन्तर्गत नीतियों के निर्माण व क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करने का प्रशिक्षण देना।
4. छात्रों को समुदाय के लोगों के साथ अन्तःक्रिया की कला को सीखना तथा उनकी आवश्यकताओं और समस्याओं को अपने से सम्बद्ध करना।
5. छात्रों को व्यक्ति समूह और समुदाय के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर प्रदान करना।
6. छात्रों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं और परिस्थितियों को सीखने व समझने का अवसर प्रदान करना।

7. छात्रों को सरकार की सहायता के बिना सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को स्वयं की स्वतंत्र अभिकरण में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण के योग्य बनाना।
8. असहयोगी सामाजिक अभिकरणों, अप्रशिक्षित व अरूचिकर अभिकरण पर्यवेक्षकों को अन देखा करना।
9. छात्रों को समुदायों में व्यवसायिक सेवाओं के विकास व चयनित ग्रामीण व नगरीय समुदायों में स्वरोजगार हेतु स्वयंसेवी संगठनों की स्थापना के लिए प्रोत्साहित करना।

सामुदायिक संगठन में क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण की पद्धतियाँ

सामुदायिक संगठन में क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण के अध्ययन के लिए उद्देश्यों के साथ प्रशिक्षण की पद्धतियों का अध्ययन भी आवश्यक है, जिससे समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इसमें क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण की निम्नलिखित पद्धतियां प्रयुक्त होती है। –

1. समुदाय में कार्यवावही के पहले सैद्धान्तिक तैयारी।
2. सिद्धान्त का वैज्ञानिक विश्लेषण।
3. संकाय पर्यवेक्षकों के साथ व्यवसायिक विचार–विमर्श।
4. व्यक्तियों, विशेषज्ञों, विद्वानों तथा जन–साधारण से सम्बन्धित कार्यकर्ताओं से व्यवसायिक अंतःक्रिया।
5. समुदाय के संगठनों के कार्यकलापों में सहभागिता।
6. समुदाय के अन्तर्गत कार्य करना और समाज कार्य का अभ्यास करना।

सामुदायिक संगठन के सिद्धान्तों, दर्शनों तथा मूलतत्वों का प्रयोग क्षेत्रकार्य प्रशिक्षण में किया जाता है छात्र सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के निर्माण के अभाव में क्षेत्रकार्य का अभ्यास असम्भव हो जाता है। इसलिए उन्हें सामुदायिक संगठन के अर्न्तगत कार्य करने के लिए सिद्धान्तों को अत्यधिक सावधानी से समझना चाहिए। इसके पश्चात् उन्हें सिद्धान्त के आलोचनात्मक पक्षों के विश्लेषण पर ध्यान देना चाहिए। सामान्य तर्क तथा अध्ययन की सहायता से वास्तविक अनुभूति व सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इस आधारभूत तैयारी के साथ छात्र अपने संकाय पर्यवेक्षक के साथ विचार–विमर्श कर सकते हैं। विशेषज्ञों के साथ किए गए विचार–विमर्श आधारभूत ज्ञान का बढ़ाते हैं और अवधारणात्मक स्पष्टता प्राप्त करते हैं। इस अवधारणात्मक स्पष्टता से व्यवहारिक पक्षों को आसानी से सीखने के मार्ग और अधिक प्रशस्त होते हैं। इसके पश्चात छात्रों को समुदाय में जा कर लोगों के जीवन का अवलोकन तथा उनके साथ अन्तःक्रिया करनी चाहिए। इससे वे अपने व्यवहारिक ज्ञान को बढ़ा तथा अपने दृष्टिकोण को आधार प्रदान कर सकते है। छात्र समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अध्ययन के पश्चात् समाज कार्य की तकनीकियों की सहायता से समुदाय की सहायता कर सकते हैं।

क्षेत्र कार्य की कार्य पद्धति

हमारे देश के दूरस्थ क्षेत्रों में समाज कार्य के विद्यालयों में समाज कार्य के वातावरण में वैज्ञानिक अभ्यास का विकास ठीक से नही हो पाया है। यहाँ पर किसी प्रकार की विवरणिका या कार्यपद्धति नही है

जिसका अनुसरण किया जा सके। यद्यपि संकाय पर्यवेक्षक मौखिक मार्गदर्शन के द्वारा प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं और छात्र समुदायों में क्षेत्र कार्य को ठीक प्रकार नही कर पा रहें है। इसको ध्यान में रखते हुए क्षेत्रकार्य की कार्यपद्धति की व्यवहारिक बाधाओं का विस्तार से विचार–विमर्श किया गया है। क्षेत्र कार्य प्रशिक्षण व समुदाय विकास के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित निर्देशों के आधार पर उचित समुदाय का चयन किया जा सकेगा –

1. समुदाय छात्रों तथा विद्यालय दोनों के लिए भौतिक रूप से सुगम होना चाहिए।
2. आवश्यक मूलभूत सुविधाओं का उपलब्ध होना चाहिए।
3. किसी व्यवसायिक सामाजिक कार्यकर्ता या समाज कार्य विद्यालय द्वारा चिन्हित समुदाय होना चाहिए जहाँ समाज कल्याण सेवाओं की आवश्यकता हो।
4. समुदाय के लोगों में सेवाओं के प्रति रूचि, उत्साह व जोश होना चाहिए।
5. समुदाय के लोगों को अपने विकास के लिए स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए तैयार होना चाहिए।
6. वे अपनी आवश्यकताओं को विद्यालय या संगठन में स्वतंत्र रूप से विचार देने चाहिए।

समुदाय का चयन

विद्यालय में उपलब्ध सूचना एवं सामान्य दिशा निर्देशों के आधार पर एक उपयुक्त समुदाय का चयन करना चाहिए। यह चयन समुदाय की आवश्कयताओं पर आधारित होना चाहिए एवं यह चयन जरूरतमंद व्यक्तियों की सेवा प्रदान करने के लिए होना चाहिए। संकाय सदस्यों एवं छात्रों को समुदाय के भौगोलिक क्षेत्र के बारे में एक सामान्य जानकारी प्राप्त करने के लिए भ्रमण करना चाहिए ताकि इस समुदाय की उपयुक्तता के बारे में उचित निर्णय लिया जा सके। तत्पश्चात् प्रशिक्षण एवं विकास के लिए समुदाय का अन्तिम चयन करना चाहिए।

सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित आंकड़े

छात्रों को चयनित समुदाय का भ्रमण फील्ड कार्य हेतु निर्धारित किए गये दिनों पर करना चाहिए। प्रारम्भ में, समुदाय के विभिन्न जातीय एवं धार्मिक समूहों की सामाजिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करने के लिए छात्रों की पूरी टीम (दल) को समाज के नेताओं एवं प्रमुख व्यक्तियों से घुलना–मिलना चाहिए तथा मेलजोल बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार की सूचना या जानकारी आगे के कार्यक्रमों की योजना बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। सूचना एकत्रित करने के लिए तैयार किए गए सूचना पत्र का उपयोग अभिलेखन करने एवं उचित परिचय हेतु किया जा सकता है।

समुदाय का सूचना पत्र

1. समुदाय का नाम :
2. समुदाय का प्रकार :

3. समुदाय की स्थिति :
4. कुल आबादी :
5. घरों की संख्या :
6. आय के मुख्य स्रोत :
7. सामाजिक संगठनों की संख्या :
8. समुदाय की प्रमुख भाषा :
9. मुख्य समस्याऐं एवं आवश्यकताऐं :
10. साफ–सफाई की दशा :
11. वाहय कार्य परियोजना के मुख्य क्षेत्र :
12. क्षेत्र कार्य परियोजना का शीर्षक :
13. परियोजना की अवधि :
14. क्षेत्र कार्य प्रशिक्षुओं के नाम :
15. संकाय पर्यवेक्षकों के नाम :
16. बैच संख्या :

सामाजिक सर्वेक्षण

समुदाय की सामान्य पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी से छात्रों को समुदाय की वर्तमान दशा के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। तथापि, अग्रिम प्रक्रिया हेतु लोगों की सामाजिक–आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक एवं सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक है। इसके लिए संकाय पर्यवेक्षकों के आधीन एक सूक्ष्म सर्वेक्षण क्रिया जाना चाहिए। इस सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्रित प्रारम्भिक आंकड़ों का विश्लेषण किया जाना चाहिए तथा सन्दर्भ कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के आयोजन एवं क्रियान्वयन हेतु एक साधारण परियोजना प्रतिवेदन बनानी चाहिए। इससे छात्रों को किसी समुदाय में वैज्ञानिक आधार पर कार्य प्रारम्भ करने के लिए प्रथम अवसर प्राप्त होगा।

लोगों की आवश्कताओं की पहचान

सैद्धान्तिक तैयारी एक सर्वेक्षण एवं समुदाय के अवलोकन से छात्रों को समुदाय का सार समझने में सहायता मिलेगी एवं उसके आधार पर वे सार्थक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। एक बार सम्बन्ध स्थापित हो जाने के पश्चात् छात्रों को अधिक से अधिक लोगों से सम्पर्क करना चाहिए ताकि उनकी वास्तविक आवश्कयताओं, रूचियों, मानसिक तैयारियों तथा साधन उपलब्ध कराने की तत्परता के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके। समुदाय के नेताओं के साथ परस्पर व्यवसायिक सम्पर्क से समुदाय की वास्तविक आवश्यकताओं की पहचान करने में सहायता प्राप्त होगी। इन आवश्कयताओं का भविष्य में सन्दर्भ के लिए अभिलेखन किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए तैयार किए गए निम्नलिखित प्रारूप का उपयोग करना चाहिए।

वरीयता पर आधारित महसूस की गई आवश्यकताऐं

क्रम संख्या	महसूस की गई आवश्यकताऐं	आवश्यकताओं की अवधि	लाभार्थी कौन होगें	लागत क्या होगी	लागत लाभ क्या होगें	सम्भावित उपलब्ध स्रोत

नेताओं या मुखियाओं के साथ बैठक

समुदाय के विभिन्न नेता या मुखिया पृथक आधारों, पृथक समस्याओं/मुद्दों पर पृथक–पृथक राजनैतिक दर्शनों के तहत कार्य कर रहे होंगे, परन्तु उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे नेताओं की एक सामान्य मंच पर बैठक करना आवश्यक है। यह तभी संभव हो सकता है जबकि इन नेताओं की कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में पर्याप्त एवं विश्वसनीय आंकड़े एकत्रित किए जायें। तत्पश्चात् इन आंकड़ों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा, अन्यथा उनकों विश्वस्त करना (विश्वास में लेना) संभव नहीं होगा। इन नेताओं से सम्बन्धित आंकड़ों को जाति, वर्ण, रंग तथा राजनैत्रिक समबद्धता के भेदभाव के बिना निम्नलिखित प्रारूप में एकत्रित किया जा सकता है।

स्थानीय नेताओं/नेतृत्व के बारे में विवरण

क्रम संख्या	नाम एवं पता	क्या हैं – राजनीतिज्ञ/ सामाजिक कार्यकर्ता/युवा नेता	सेवा की प्रकृति/सहायता जिसकी समाज उनसे अपेक्षा कर सकता है

नेताओं से सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। छात्रों द्वारा एक छोटी से गलती या लापरवाही से एक विषम समस्या पैदा हो सकती है, जो कि सामाजिक कार्य प्रशिक्षण–सह–व्यवहार प्रक्रिया में रूकावट या रोड़ा बन सकती है। अतः इन विभूतियों से जिनमें से अधिकतर अत्यधिक अभिमानी होते हैं, से कुशलतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उनकों सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के उद्देश्य से की जा रही है बैठक में भाग लेने के लिए विश्वास में लेना चाहिए। छात्रों को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु उनके

सतत् प्रयासों, कर्तव्यनिष्ठा एवं सामाजिक कार्य दर्शन में उनके विश्वास के कारण उनकों इन समस्याओं के निदान प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। बैठक व्यवस्थित ढंग से आयोजित की जानी चाहिए एवं समुदाय की तात्कालिक आवश्यकताओं एवं समस्याओं पर एक सामान्य मंच पर इस प्रकार विचार–विमर्श किया जाना चाहिए कि नेताओं की भिन्न विचारधारायें होने के बाबजूद भी सर्वसम्मत निर्णय लिए जा सकें। इस प्रकार की बैठकें प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती हैं, तथा छात्रों में संवाद दक्षता एवं प्रशासनिक गुणों का विकास करती है।

व्यवसायिक व्यक्तिगत सहायता

व्यक्तिगत प्रकरणों की पहचान के बाद छात्रों को प्रकरण कार्य करने के लिए संकाय पर्यवेक्षकों द्वारा मार्गदर्शन एवं सलाह उपलब्ध करानी चाहिए। एक खुला समुदाय होने के नाते छात्रों को अपनी दक्षता पद्धित एवं व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने की प्रक्रिया के प्रयोग में स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। यहाँ उस प्रकार के कोई बन्धन नहीं होते हैं, जैसे कि स्वैच्छिक संगठनों में होते है। वह प्रकरण शीट की तैयारी से लेकर मूल्यांकन आख्या तक समस्त कार्य स्वयं कर सकते हैं। इस प्रकार समुदाय में प्रकरण कार्य प्रशिक्षण एवं व्यवसायिक सेवा प्रदान की जाती है।

व्यवसायिक समूह सहायता

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है क्योंकि वह अपना अधिकतर समय समूहों में व्यतीत करता है। समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे कि मित्र मण्डल, युवा संगठन, स्कूल इत्यादि। प्रशिक्षुओं को अपने सर्वतोन्मुखी विकास के लिए इन सभी समूहों से सम्पर्क करना चाहिए। प्रारम्भ में उन्हें समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु सतत् प्रयासों, कला एवं मनुष्यों से व्यवहार करने की कला से उन्हें सफलता प्राप्त होगी। समूहों के निर्माण के उपरान्त प्रशिक्षु छात्रों को अपने पूर्ण विकास के लिए समूह कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए तथा समूह में से वैयक्तिक कार्य के लिए व्यक्तिगत प्रकरणों की भी पहचान करनी चाहिए। समुदाय में सामूहिक कार्य की अभ्यास बिना किसी दबाव, बन्धन एवं नीति के आधीन व्यवस्थित रूप से करनी चाहिए जैसा कि संस्थाओं में किया जाता है। छात्र स्वयं स्वतन्त्र रूप से नीतियों का निर्माण कर सकते हैं एवं स्वयं द्वारा स्वतंत्र रूप से तैयार की गई प्रक्रियाओं एवं पद्धतियों का अनुसरण कर सकते हैं, तथापि संकाय पर्यवेक्षकों के साथ विचार–विमर्श अपरिहार्य है।

4.2.3 समाज कार्य अभ्यास में संगठन

गंवों में स्वयं सेवकों द्वारा स्थापित सामाजिक संस्थाओं की सामाजिक संस्थाओं जैसे तरूण मण्डलों, महिला मण्डलों, क्रीड़ा, क्लबों, बाल मार्गदर्शन क्लीनिकों, सांस्कृतिक केन्द्रों, न्यासों, संघों आदि का भ्रमण करना चाहिए तथा उनकी विधिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, प्रबन्धन, प्रशासन, वाह्य कार्यक्रमों, लाभार्थियों, प्रतिभागियों, कठिनाइयों एवं लोगों एवं समुदायों पर उनके विस्तृत प्रभाव आदि के बारे में सूचनाएं एकत्रित करनी चाहिए।

यह सूचना विचार–विमर्श अवलोकन एवं साहित्य के माध्यम से एकत्र की जा सकती है, जिसका विश्लेषण किया जा सकता है एवं विभिन्न सामाजिक संस्थाओं और उनके कार्यो के बारे में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इससे उनके प्रयासों एवं आवश्यकताओं पर प्रकाश पड़ेगा।

इन प्राथमिक सूचनाओं के आधार पर छात्रों एवं संकाय सदस्यों को इन संस्थाओं के पदाधिकारियों की बैठक आछूत करनी चाहिए एवं उनके तथा युवकों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाना चाहिए। यह कार्यक्रम वर्तमान संस्थाओं की संचालन पद्धति एवं नवीन संस्थाओं की स्थापना के सम्बन्ध में होना चाहिए। युवा स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं एवं भाग न लेने वाले युवाओं को नवीन संस्थाओं की स्थापना की पद्धति एवं प्रक्रियाओं, निधि एकत्र करने, नवीन संस्थाओं की स्थापना करने एवं उनका संचालन करने का प्रशिक्षण देना अनिवार्य है, क्योंकि उनकी इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान तक पहुंच नहीं होती है। इस प्रकार के पेशेवर प्रशिक्षण से उन्हें राज्य एवं केन्द्र सरकारों द्वारा तैयार किए गए विभिन्न ग्रामीण परियोजनाओं के क्रियान्वयन में सहायता प्राप्त होगी।

इसके अतिरिक्त उनकों भारतीय एवं विदेशी निधि प्रदान करने वाली संस्थाओं की एक सूची भी प्रदान करनी चाहिए ताकि वे अपनी परियोजनाओं की निधि सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने, उनका समाधान करने एवं उनका क्रियान्वयन करने में समर्थ हो सकें। उनकी सहभागिता प्रोत्साहित करने हेतु एक सूक्ष्म निधि–एकत्रण कार्यक्रम संचालित किया जा सकता है, जिससे कि छात्रों को शिक्षा मिलेगी और ग्रामीणों को भी लाभ प्राप्त होगा। संकाय सदस्यों द्वारा उनके हर कदम पर मार्ग दर्शन प्रदान करना चाहिए। उनके प्रारम्भिक प्रायोगिक मार्गदर्शन के लिए निम्नांकित पुस्तकों का संदर्भ ग्रहण किया जा सकता है –

- सोसाइटीज रजिस्ट्रेश्इन एक्ट, 1860
- पब्लिक ट्रस्ट एक्ट, 1652
- काउंसिल फॉर एडवांसमेंट ऑफ पीपुल्स एक्शन एण्ड रूरल डेवलपमेन्ट
- सरकारी योजनाऐं
- प्रोफेशनल सोशल वर्कर : एक सखा प्रकाशन

4.3 चिकित्सा

चिकित्सा का अर्थ

साधारण बोलचाल की भाषा में चिकित्सा का तात्पर्य शारीरिक व्याधियों के रोमुक्त होने से समझा जाता है। परन्तु औषधिशास्त्र में भी रोग से मुक्ति नही मिलती है केवल रोग को कुछ समय के लिए नियन्त्रण में कर लिया जाता है लेकिन पुनरावृत्ति की सम्भावना बनी रहती है। इस सम्भावना में कमी, भोजन, आराम तथा अनुकूल स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों द्वारा कम किया जा सकता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में भी कुछ विशिष्ट रोगों को दूर किया जा सकता है (एक बच्चे के लिए बुरे होम के स्थान पर नया अच्छा होम खोजा जा सकता है) परिवर्तनों को कम किया जा सकता है (अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति मनोवृत्तियों में

परिवर्तन लाया जा सकता है), बिगड़ती हुई स्थिति को रोका जा सकता है (वर्तमान क्रिया में परिपूरक तथा आलम्बन द्वारा), और भी इसी प्रकार। लेकिन व्यक्ति की व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्थिरता उस वृहद समुदाय की सुरक्षा पर निर्भर होती है जिसका वह स्वयं एक भाग होता है। इसके अतिरिक्त जीवन की घटनाओं के लिए भी उसी पर निर्भर होता है। यही कारण दे कि वैयक्तिक सेवाकार्य में सामाजिक कल्याण से सम्बन्ध होता है। अतः रोगमुक्त का प्रत्यय नहीं पाया जाता है। वैयक्तिक सेवा कार्य में उन क्षमताओं को व्यवस्थित तथा कार्यान्वित करते है जिनसे अनुकूलन प्राप्त होता है तथा उन साधनों, अवसरों एवं शक्तियों को प्रदान करते हैं जिनके द्वारा कोई व्यक्ति सामाजिक समायोजन प्राप्त करता है।

चिकित्सा का उद्देश्य

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में चिकित्सा के प्रायः निम्न उद्देश्य होते हैं :

1. सामाजिक क्षीणता को रोकना।
2. सेवार्थी की शक्तियों को सुरक्षित रखना।
3. सामाजिक कार्यो का पुनर्स्थापन करना।
4. सेवार्थी के जीवन अनुभवों को अधिक से अधिक सफल एवं संतोषप्रद बनाना।
5. मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति करना।
6. सेवार्थी के विकास एवं उन्नति के लिए अवसरों को उपलब्ध करना।
7. आत्म–निर्देशन एवं सामाजिक योगदान की क्षमता को बढ़ाना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्न प्रयत्नों की आवश्यकता होती है :

1. व्यक्ति की परिस्थिति में परिवर्तन अथवा सुधार करने के लिए आर्थिक सहायता अथवा पर्यावरण में परिवर्तन करना।
2. परिस्थिति परिवर्तन अथवा प्रत्यक्ष साक्षात्कार चिकित्सा द्वारा उसी सामाजिक परिस्थिति में रहते हुए व्यक्ति के व्यवहार तथा मनोवृति में परिवर्तन लाना।

वैयक्तिक सेवा कार्यकर्ता का मूलतः उद्देश्य सेवार्थी की कठिनाइयों को दूर करना तथा व्यक्ति परिस्थिति व्यवस्था की अकार्यात्मकता में कमी करना या इसको सकारात्मक रूप में रखकर सेवार्थी की सुविधा, संतोष एवं आत्म–अनुभूति में वृद्धि करना है। इसके लिए अहं तथा व्यक्ति–परिस्थिति व्यवस्था की कार्यात्मकता की अनुकूलन निपुणताओं में वृद्धि की आवश्यकता हो सकती है। व्यक्ति या परिस्थिति या प्रायः दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता हो सकती है।

वैयक्तिक सेवाकार्य चिकित्सा की विशेषताऐं

हैमिल्टन ने वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है :

1. **चेतन एवं नियन्त्रित कर्ता सेवार्थी सम्बन्ध का प्रयोग** : इसके द्वारा वैयक्तिक कार्यकर्ता सेवार्थी के परिवर्तन लाता है एवं उन क्षमताओं एवं गुणों का विकसित करता है जो समायोजन की शक्ति को उत्पन्न करते हैं।
2. **साक्षात्कार प्रक्रिया में निपुणता** : कार्यकर्ता साक्षात्कार के माध्यम से मनोसामाजिक तथ्यों का एकत्रीकरण करके उपचार योजना बनता है। इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग अधिक किया जाता है।
3. **सामाजिक साधनों का ज्ञान और उनके प्रयोग में निपुणता** : प्रायः सेवार्थी की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक समस्याएं भी होती है। अतः उचित समायोजन प्राप्त करने के लिए दोनों प्रकार की सेवाओं की आवश्यकता होती है। कार्यकर्ता सामाजिक साधनों द्वारा सेवार्थी की मांगों को पूरा करता है।
4. **संस्था की नीतियों, सेवाओं एवं अन्तसंख्या सहयोग की व्याख्या करने तथा उपयोग करने की निपुणता** : संस्था ही वह केन्द्र होता है जहां पर सेवार्थी को सहायता प्रदान की जाती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता को इसके विषय में ज्ञान होना आवश्यक होता है। वह संस्था में उपलब्ध साधनों का भी उचित प्रयोग करने में निपुण होता है।
5. **चिकित्सा पर संस्कृति का प्रभाव** : सेवार्थी की इच्छा, मनोवृति, धारणा, मूल्य आदि को ध्यान में रखकर चिकित्सा योजना का निर्माण किया जाता है।
6. **समुदाय के अवसरों तथा रूढ़ियों का चिकित्सा पर प्रभाव** : चिकित्सा योजना में इस बात का ध्यान रखा जााता है कि समुदाय की रूढ़ियां क्या है तथा कौन–कौन से अवसर ऐसे है जिनको सेवार्थी के समायोजन कार्य में लगाया जा सकता है।
7. **चिकित्सा पर वैयक्तिक कार्यकर्ता तथा सहभागी साथियों की निपुणता एवं प्रतिभा का प्रभाव** : वैयक्तिक कार्यकर्ता द्वारा सेवार्थी की समस्या को समाधान करने का प्रयत्न किया जाता है अतः उसकी तथा उसके साथियों की योग्यता एवं प्रतिभा का वैयक्तिक सेवा कार्य चिकित्सा में विशेष महत्व होता है।

वैयक्तिक कार्यकर्ता की भूमिका

चिकित्सा प्रक्रिया में वैयक्तिक कार्यकर्ता निम्नलिखित भूमिकाएं अदा करता है :

1. **प्रदानकर्ता** : वह सेवार्थी द्वारा इच्छित सेवाओं को प्रदान करता है।
2. **स्थिति प्रदर्शक** : वह स्रोतों की खोज करता है।
3. **प्राख्याकार** : समस्या से सम्बन्धित कारकों की प्राख्या करता है।
4. **मध्यस्थ** : सेवार्थी को भावनाओं के व्यक्तीकरण में मध्यस्थता का कार्य करता है।
5. **परिवर्तन** : वह सेवार्थी के पर्यावरण में परिवर्तन करता है।

4.3.1 मनोचिकित्सा

मनोवैज्ञानिक विधियों से व्यक्तित्व की अवस्थाओं की चिकित्सा करना ही मनोचिकित्सा है। मनोचिकित्सा का मुख्य उद्देश्य सेवार्थी एवं उसके पर्यावरण के बीच का उचित समायोजन स्थापित करना है। मनोचिकित्सा द्वारा सेवार्थी को एक सामान्य व्यक्ति बनाने, समस्याओं को सुलझाने, विकारों को दूर करने, उसे सामाजिक समायोजन के योग्य बनाने एवं सुरक्षा की भावना का विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। सेवार्थी में दमित इच्छाएं होती है जिनको वह समझने में अपने को असमर्थ पाता है। मनोचिकित्सा द्वारा सेवार्थी को पूर्व चेतन प्रत्ययों, मूल प्रवृतियों तथा प्रभावों जिनका सामना करने तथा प्रतिदमित करने में भी असमर्थ रहा है, अभिज्ञान प्राप्त होता है।

सामान्यतया मनोचिकित्सा का उद्देश्य परिपक्वता दक्षता तथा आत्म–कार्यान्वयन की दिशा में व्यक्तित्व का विकास करना है। इस सामान्य कार्य में निम्नलिखित में से एक या अनेक विशिष्ट उद्देश्य निहित है :

1. समस्या तथा व्यवहार के सन्दर्भ में अन्तदृष्टि में वृद्धि करना।
2. आत्म ज्ञान कराना।
3. मानसिक संघर्ष के कारणों का समाधान करना।
4. अवांछनीय आदतों तथा प्रतिक्रिया तरीकों में परिवर्तन लाना।

मनोचिकित्सा तथा वैयक्तिक सेवा कार्य में अन्तर

वैयक्तिक सेवाकार्य में सेवार्थी की समस्या का समाधान मनोचिकित्सा के विभिन्न तरीकों द्वारा किया जाता है। सेवार्थी का संस्था से सम्बन्ध केवल चिकित्सा के कारण ही होता है। और वैयक्तिक कार्य चिकित्सा द्वारा सेवार्थी की आन्तरिक एवं बाह्म परिस्थितियों में परिवर्तन लाया जाता है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा मनोविकार सम्बन्धी ज्ञान का विशेष महत्व होता है। इसके विपरीत वैयक्तिक सेवा कार्य की सेवाएं विस्तृत क्षेत्र एवं अधिक रखती है। दूसरे शब्दों में वैयक्तिक सेवा कार्य एक प्रकार की मनोचिकित्सा है जिसमें विशेष योग्यता, दक्षता, विभेदात्मक, उद्देश्य, तथा विशेष कार्य पद्धति होती है। वास्तव में वैयक्तिक सेवा कार्य में मनोचिकित्सीय सिद्धान्तों को एक विशिष्ट प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। अतः इन दोनों में काफी समानता है।

1. वैयक्तिक सेवा कार्य तथा मनोचिकित्सा दोनों ही व्यक्ति की सहायता सांवेगिक तनाव तथा कष्ट की स्थिति में करते हैं।
2. साक्षात्कार की निपुणताएं दोनों के लिए आवश्यक है।
3. दोनों प्रकार के कार्यकर्ताओं में रोगी को आराम पहुंचाने तथा रोगी को समस्या स्पष्ट करने की निपुणता होती है।
4. दोनों में विश्वास उत्पन्न करने की योग्यता एवं क्षमता होती है।

5. दोनों ही व्यक्ति की व्यक्तिकता तथा स्थिति का आदर करते हैं।
6. दोनों ही रोगी को आत्म–विश्वास करने का अवसर प्रदान करते है।
7. दोनों ही अपने–अपने व्यवसाय से सहायता प्रक्रिया से सम्बन्धित अधिकार प्राप्त करते हैं।
8. दोनों ही सांवेगिक तथा अचेतन प्रक्रियाओं की मनोवृतियों तथा व्यवहार को प्रभावित में महत्वपूर्ण समझते है।
9. दोनों ही क्षेत्रों में समस्या का चुनाव, विषय वस्तु का अवलोकन, अन्तर्मनोवैज्ञानिक अवरोधों की शक्ति, सीमाओं का ध्यान रखा जाता है।
10. दोनों कार्यकर्ता तथा चिकित्सक तत्कालीन तीव्र चिन्ता को समाधान करने के लिए सांवेगिक सहायता पहुंचाते है। दोनों ही सेवार्थी के प्रति सहिष्णुता प्रदर्शित करते हैं।
11. दोनों के स्थानान्तरण का महत्व होता है।

4.3.2 बाल देखभाल

सामजिक विघटन की जितनी भी समस्यायें आधुनिक औद्योगिक नगरीय सभाओं को घेरे हुये हैं उनमें बाल तथा किशोर अपराध की समस्या एक गम्भीर विचारणीय प्रश्न है। अपराधी बालक प्रायः निम्न कृत्यों में से किसी एक या एक से अधिक क्रियाओं में भाग लेता है :

1. कानून तथा अध्यादेश का उल्लंघन।
2. स्वभाव से अनुपस्थित होना।
3. जानबूझकर चोरों, अपराधियों तथा अनैतिक व्यक्तियों के साथ मेलजोल रखना।
4. माता–पिता तथा अभिभावकों के नियन्त्रण में न होना।
5. अपराध की दशाओं में बड़ा होना।
6. ऐसा आचरण करना जिससे स्वयं या दूसरों को नुकसान या चोट पहुंचे।
7. बिना किसी आवश्यक कार्य तथा माता–पिता की अनुमति के घर से बाहर रहना।
8. अनैतिक तथा अशिष्ट व्यवहार करना।
9. स्वभावतः गंदी भाषा का प्रयोग करना तथा गाली–गलौज करना।
10. जानबूझकर बदनाम घरों में जाना।
11. जुआ के अड्डों पर जाना।
12. आदतन स्टेशन का रेल पटरी के आस–पास रहना।
13. चलती गाड़ी से कूदना।
14. उन जगहों पर जाना जहां खराब तथा मादक दृव्य पिये जाते हैं।
15. रात में सड़कों तथा गलियों में घूमना।
16. स्कूल या अन्य स्थान पर अनैतिक आचरण करना।

17. अवैधानिक व्यवसाय करना।
18. सिगरेट, तम्बाकू तथा खराब व मादक दृव्य पीना।
19. यौन अनियमितताओं में रत होना।
20. भिक्षावृति करना।

बाल अपराध समस्या के नियन्त्रण के दो पक्ष है :

1) बाल अपराधियों का सुधार जिससे वह अपने आगे के जीवन में अपराधी प्रवृतियों को त्याग सके और वयस्क अपराधों न बने तथा
2) उन बालकों का उचित निर्देशात्मक नियन्त्रण जिससे व्यवहारिक सामंजस्य की समस्यों तथा चारित्रिक दोषों का जन्म हो रहा है तथा जो पूर्व बाल अपराध की अवस्था से गुजर रहे हैं।

सामूहिक कार्यकर्ता अपराध उत्पन्न करने वाली सामूहिक दशाओं में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। अपराध या बाल अपराध जैसी विषम समस्याओं का नियन्त्रण उस समय तक समाप्त नहीं है जब तक कि उन समुदायों की आर्थिक जीवन दशा नहीं सुधरेगी जिसमें बाल अपराध की समस्यायें स्वतः पनपती है। अतः इन समुदायों के लिए आर्थिक सुरक्षा के कार्यक्रम आयोजित करना, उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा गरीबी, अशिक्षा व आवास की समस्या का समाधान करना, सामूहिक कार्यकर्ता का कार्य हो जाता है। समुदाय के प्रबुद्वजनों का एक ऐसा संगठन तैयार करता जो अपराधी व्यक्यिों पर अपना प्रभाव दिखायें व बालकों को उनके पास न जाने हैं। इस कार्य में वह स्कूलों, धार्मिक संस्थाओं, कल्याणकारी सेवाओं आदि की सहायता लेता है। वह बाल अपराधियों को मनोचिकित्सकीय सेवायें भी प्रदान करता है। वह मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करता है क्योंकि मनोरंजन के अभाव में ही असामाजिक तथा अपराधिक प्रवृतियों का विकास होता है। सामूहिक कार्यकर्ता मनोरंजन की संस्थाओं, कार्यो, खेलों के मैदानों, क्लबों आदि की व्यवस्था करता है। उसके द्वारा बालकों की मनोरंजन विधियों को चरित्र निर्माणक बनाया जा सकता है। सामूहिक कार्यकर्ता पारिवारिक कल्याण सेवा केन्द्रों की स्थापना करता है तथा बाल एवं युवा कल्याण सेवाओं का विस्तार करता है। अपराधी प्रवृत्ति रखने वाले बालकों का लेखा तथा उनके सुधार के लिए उचित कार्यक्रमों का आयोजन करता है। सामूहिक कार्यो के माध्यम से उनके जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है तथा वे प्रयत्न करता है जिससे उनमें वैयक्तिक क्षमतायें बढ़ती है तथा आत्मनिर्भरता आती है।

4.4 शिक्षा एवं अनुसंधान

शिक्षा एंव अनुसंधान एक दूसरे के पूरक है जबकि देखा जाय तो शिक्षा प्राप्त करने हेतु व्यक्ति प्रयासरत रहता है। लेकिन शिक्षा प्राप्त करने से पहले अभ्यास का होना आवश्यक है। क्योंकि जब व्यक्ति अभ्यास करता है तो अभ्यास अनुभव में परिवर्तित हो जाता है और वही अनुभव व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि

करता है। जब व्यक्ति के अन्तर्गत ज्ञान की वृद्धि होती है तो वह विभिन्न क्षेत्रों में शोध करने का प्रयास करता है जबकि वह शोध के सिद्धान्तों के बारे में अनभिज्ञ होता है लेकिन व्यक्ति जब प्रयास करता है तो वह कई बार असफल भी होता है। यह असफलता उसे पुनः शोध करने पर मजबूर कर देता है। चूंकि व्यक्ति की सीखने की क्षमता उसके अनुभवों पर आधारित होती है। इस हेतु व्यक्ति अभ्यास और त्रुटि के सिद्धान्त पर कार्य करते हुये बार–बार प्रयास करता है और अन्ततोगत्वा वह सफल हो जाता है और जिस क्षेत्र में अनुसंधान कर रहा होता है उस क्षेत्र में एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है और वही सिद्धान्त व्यक्तियों के ज्ञान बढ़ाने हेतु शिक्षा के माध्यम से लोगों तक पहुचाया जाता है। शिक्षा एवं अनुसंधान के प्रक्रिया में जे0 डोबलिन एक प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें उन्होनें बताया कि व्यक्ति के शिक्षा प्राप्त करने में अभ्यास का महत्वपूर्ण स्थान है और यही अभ्यास उसे शिक्षा प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। जब व्यक्ति शिक्षित हो जाता है तो वह नए सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए अपने ज्ञान का प्रयोग कर अनुसंधान करता है। जे0 डोबलिन द्वारा प्रस्तुत प्रारूप अग्रलिखित है।

ज्ञान निर्माण

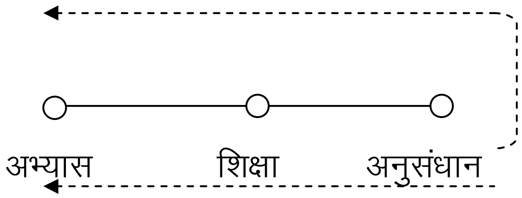

ज्ञान का प्रयोग

4.5 सुधारात्मक सेवायें

अनेक अनुसंधानों तथा अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अपराधी को केवल दण्ड देकर उसकी मनोवृत्ति एवं व्यवहार में परिवर्तन नहीं ला सकते हैं। प्रतिकारात्मक, प्रतिशोधात्मक, भयात्मक प्रकार की विधियाँ अपराधी दशा को सुधारने में नकारात्मक प्रकार की भूमिका निभाती है। अपराधी को ऐसे अवसर प्राप्त हों, जिससे वह अपना व्यवहार परिवर्तित कर सके। ऐसे कार्यो की आवश्यकता कारागारों में है। सुधारात्मक दर्शन के अनुसार दण्ड का आधार या लक्ष्य अपराधों को दण्ड देना न होकर अपराधी की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना है, जिससे कारागार से वापस जाने पर समाज के सामाजिक एवं वैधानिक नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने की मनोवृत्ति तथा एक उत्तरदायी नागरिक की तरह रहने की कला का विकास कर सके। समाज कार्य के दर्शन का प्रभाव दण्डशास्त्र पर पड़ा और अपराधी कार्य की असमंजन, विस्थापन, विचलन, मानसिक विकार आदि का चिन्ह माना जाने लगा है।

दण्डशास्त्र के नवीन दृष्टिकोण के अनुसार अपराधों का मुख्य कारण समाज की सामाजिक, आर्थिक दोषपूर्ण संरचना है। अतः अपराधी को दण्ड देना अवांछित तथा अमानवीय एवं अनैतिक है। सामूहिक कार्य

का दृढ़ विश्वास है कि सामुहिक व्यक्ति में एक निहित आत्म–सम्मान की भावना एवं सुधार की क्षमता होती है। यदि उसे सहायता पहुंचायी जाय तो वह अपनी समस्याओं का निस्तार मार्ग ढूंढ सकता है।
सुधार कार्यकर्ताओं की टोली में निम्न भूमिकायें पूरी करता है :

1. अपराधियों के विषय में जांच–पड़ताल करके सुधारवादी कार्यक्रम निश्चित एवं प्रस्तुत करने में सहायता करना।
2. सामूहिक कार्य के माध्यम से इस प्रकार से पर्यवेक्षण करना जिससे वह आत्मनियंत्रण सीखे।
3. सामाजिक तथा वैयक्तिक मजबूरियों को दूर करने में सहायता करना तथा इनमें व्यवहार को सामाजिक आदर्शो के अनुरूप बनाना।
4. इस प्रकार में सहायता करना जिससे वे कानूनी तथा प्रशासनिक नियमों का पालन अपने हित को ध्यान में रखकर कर सकें।
5. उन संवातियों को परामर्श देना तथा मार्गदर्शन करना की कारागार में पहली बार आये है।
6. मानसिक कुंठाओं, आहत भावनाओं तथा विक्षिप्त मनोदशाओं को दूर करने में सहायता करना तथा उन्हें संस्था के अन्य संवासियों, अधिकारियों तथा कार्य–पद्धतियों के समरूप व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना। कारागारों में नियुक्त कल्याण अधिकारियों के कार्यो का दर्शन निम्न प्रकार से किया गया है :

    i) नये संवासियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करना।
    ii) कारागार के कार्यक्रम अवगत कराना।
    iii) अपने जीवन की नवीनदशा तथा संस्था में ठीक से रहने के मार्ग बताना।
    iv) संस्थागत समस्याओं को दूर करने के मार्ग ढूंढना।
    v) संवासियों को संस्था की समस्याओं को दूर करने में प्रोत्साहित करना।
    vi) उन्हें अपने परिवार के साथ सम्बन्ध बनाये रखने में हर सम्भव सहायता करना।
    vii) परिवार के सदस्यों की भी सहायता करना।
    viii) बंदी को आत्मनिर्भर, कानून पालनकर्ता तथा उत्तरदायी नागरिक बनाने का प्रयत्न करना।
    ix) कारागार अधिकारियों के साथ बैठकर बंदी के उपचार के कार्यक्रम उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में बनाने पर बल देगा।
    x) कारागार प्रशासन तथा बंदी के बीच कड़ी का काम करना।

4.6 निगमित क्षेत्र

1994 से पूर्व निगमित क्षेत्र समिति की रचना ऐसे क्षेत्रों के लिए की जाती थी, जहां नगरपालिका स्थापित करने के लिए निर्धारित आवश्यक शर्तो को पूरा नहीं किया जा सकता परन्तु वह क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था। कहीं–कहीं नये विकासशील नगर या कस्बों के लिए भी यह समिति गठित की जाती

थी। इस प्रकार की समिति की स्थापना की सूचना राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित राज्य पत्र में अधिसूचित कर दी जाती थी, अतः इसे निगमित क्षेत्र समिति के नाम से पुकारा जाता था। इस पर नगरपालिका अधिनियम की जो धारा लागू होती थी वह भी राज्य पत्र में ज्ञापित की जाती थी। राज्य सरकार निगमित क्षेत्र समिति को आवश्यकता पढ़ने पर किसी अन्य अधिनियम में निहित शक्तियां भी दे सकती थी।

स्पष्ट है कि निगमित क्षेत्र समिति को वे सभी शक्तियां प्राप्त होती थी, जो किसी नगरपालिका को प्राप्त है। निगमित क्षेत्र समिति का अध्यक्ष एवं इसके सभी सदस्य राज्य सरकार द्वारा मनोनित किये जाते थे। यह पूर्णरूपेण मनोनीत संस्था थी आज भी भारत में निगमित क्षेत्र है। 1972 में इनकी संख्या 164 थी, यह संख्या 1990 में बढ़कर 202 हो गयी। निगमित क्षेत्र समितियां बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल में विद्यमान है।

4.6.1 दाता संस्थायें

कष्ट, अकाल, बाढ़, भूकम्प, आग, ज्वालामुखी–विस्फोट आदि बड़ी–बड़भ विपत्तियों के अवसर पर एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र की सहायता करना ही अज्ञात काल से चला आया है परन्तु विस्तृत अर्थो में समाज–कल्याण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय कार्य कर आरम्भ पहले–पहल उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य काल में हुआ जबकि दान की सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने अपने पारस्परिक अनुभवों से लाभ उठाने और उससे समाज सेवा के क्षेत्र में प्रभावशाली उपायों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का संगठन करना आरम्भ किया। इन सम्मेलनों की बैठकें यूरोप के विभिन्न नगरों में हुई और वे विभिन्न सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित थीं, यह उनके निम्नलिखित शीर्षकों से प्रकट होता है –

अन्तर्राष्ट्रीय दान, सुधार तथा हितैषी–कांग्रेस, पेनीटेन्शियरी कांग्रेस, अन्तर्राष्ट्रीय दण्ड तथा कारागार कांग्रेस, अन्तर्राष्ट्रीय सरकारी तथा गैरसरकारी सहायता प्रदायिनी कांग्रेस, और मुक्ति प्राप्त बन्दियों की रक्षा करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस, समाज कल्याण से सम्बन्धित, सबसे पहला विशाल सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास था। जिनमें बहुत देश के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन की धाराओं ने यह निश्चित किया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय समिति के निर्देशन में घायल सिपाहियों की मानवौचित चिकित्सा तथा सेवा करने के सिद्धान्त निर्धारित किये जाए और औद्यालय को ले जानी गाड़ियों, घायलों की सेवा करने वाले डाक्टरों तथा नर्सो को निरपेक्ष मानकर उनका सम्मान किया जाए।

इस प्रकार समाज कल्याण के क्षेत्र में जो भी संस्थायें लोगों के कल्याण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करती है उन्हें दाता संस्थायें कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय तथा भारतीय सन्दर्भ में लोगों के कल्याण हेतु बहुत सी ऐसी दाता संस्थायें है जो विभिन्न प्रकार की स्वैच्छिक संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं तथा गैर सरकारी संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करती है। कुछ दाता संस्थाओं के अग्रलिखित है :

1. संयुक्त राष्ट्र शिशु फण्ड, 2. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, 3. विश्व स्वास्थ्य संगठन, 4. भोजन तथा कृषि संगठन, 5. संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठना। 6. आक्सफैम इण्डिया, 7. हेल्पेज इण्डिया, 8. एक्सन ऐड, 9, समाज कल्याण बोर्ड, भारत सरकार, 10. ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार

4.6.2 गैर सरकारी संगठन

भारत में सामाजिक सेवाओं, परोपकारी गतिविधियों की एक महान परम्परा रही है। प्राचीन समय की भारतीय लोकोपकारी और संस्कृति में धर्म के रूप में व्यक्ति में निहित लोकोपकार की सहजवृत्ति के अलावा पूर्त और स्वैच्छिक संस्थाऐं भी, गरीबों, निराश्रितों, पद–दलितों, अशक्तों और समाज के कमजोर वर्गो की सहायता के लिए पिछले दो दशकों में अस्तित्व में आई है सामाजिक कल्याण गतिविधियों जैसे गरीब की सहायता करने, साक्षरता फैलाने आदि में संलग्न स्वैच्छिक संगठनों की ब्रिटिश समय से भारत में उपलब्धियों का एक अच्छा रिकार्ड है। इस शताब्दी के प्रारंभिक भाग में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी के आन्दोलन की जड़ें सामाजिक पुनर्निमाण, स्व–सहायता, गरीबों में सबसे गरीब, अछूत को ऊँचा उठाने के आदर्शो से जुड़ी थी।

गैर सरकारी संगठन की परिभाषा

गैर सरकारी संगठनों को विभिन्न लेखकों द्वारा परिभाषित किया गया है। नीचे कुछ परिभाषाएं दी गई है जिनके माध्यम से हम गैर सरकारी संगठन का अर्थ और उसकी अवधारणा को समझ सकते हैं।

लार्ड बेवरिज स्वैच्छिक कार्य और गैर सरकारी संगठन के बारे में लिखता है कि एक पीढ़ी पूर्व एक स्वैच्छिक कार्यकर्ता वह हुआ करता था जो एक अच्छे हेतुक के लिए असंदत्त सेवाएं देता था और वह समूह जो अच्छे हेतुक के लिए बना था, स्वैच्छिक संगठन के रूप में जाना जाने लगा। समूह का नाम उनके कार्यकर्ताओं के उत्कृष्ट गुणों से बना जिन पर यह निर्भर था। इसके अतिरिक्त उन्होनें स्वैच्छिक संगठनों की निम्नानुसार परिभाषाएं दी हैं –

1. उचित रूप से कहा जाय तो गैर सरकारी संगठन ऐसा संगठन होता है जो, चाहे उसके कार्यकर्ताओं को भुगतान किया जाता हो या न किया जाता हो, बिना बाहरी नियंत्रण के उसके स्वेयं के सदस्यों द्वारा प्रारंभ और शासित किया जाता हो।
2. मेरी मोरी और मोडेलाईन रुफ द्वारा दी गई परिभाषाएं भी इसी प्रकार की है अंतर मात्र इतना है कि मोडेलाईन रुफ ने इसमें यह जोड़ा है कि इन गैर सरकारी संगठनों को कम से कम भागित रुप से गैर सरकारी संसाधनों से सहायता प्राप्त करने पर निर्भर रहना चाहिये।
3. एक गैर सरकारी संगठन व्यक्तियों का ऐसा समूह है जिन्होनें संगठित कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक सेवाएं या ग्रामीण विकास करने के लिये एक विधिक निर्मित निकाय के रूप में स्वयं को संगठित किया है। यह सरकार की अपेक्षा नागरिकों के संगम द्वारा नियंत्रित और जबावदेह होता है, यद्यपि प्राथमिक रूप से समुदाय से योगदान द्वारा वित्त पोषित होता है।

गैरसरकारी संगठनों की भूमिका

यद्यपि अनेक समस्याओं के बावजूद भारत में गैरसरकारी संगठनों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण, युवा विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। गैरसरकारी संगठनों को उनके मानवीय स्पर्श, समर्पण, जनता से सीधा संवाद आदि के रुप में जाना जाता है। किन्तु व्यवसायवाद और सरकारी घुसपैठ से इनके सदगुणों में कुछ कमी आई है। सरकारी सहायता के प्राप्त होने के साथ ही कार्यालयीन कागजी औपचारिकताओं को पूर्ण करने के उत्तरदायित्व से मूलहेतुक से ध्यान विचलित हुआ है। बुरी खबर यह है कि संश्रय के कारण कुछ गैरसरकारी संगठन पूर्णतः राजनैतिक हो गए हैं जो जनता और उनकी मूल भावना के प्रतिकूल है।

सतवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज (1985–90) में गैरसरकारी संगठन की भूमिका को दर्शित किया है। इनसे अपेक्षा की गई हैं कि –

1. सरकारी प्रयत्नों को जोड़ा जाए जिससे ग्रामीण गरीबों को विकल्प और चयन प्राप्त हो सकें।
2. ग्राम स्तर पर जनता पर नजर रखें।
3. एक उदाहरण प्रस्तुत करें। स्वैच्छिक ऐजेन्सियां साधारण, नवाचार, नमनीय, और कम खर्चीले साधनों को अपनाएं जो जनता के सीमित स्रोतों की पहुंच के भीतर हों।
4. सेवा प्रदान करने की पद्धति को ग्रामीण स्तर पर सक्रिय करें।
5. जानकारियों का प्रचार–प्रसार करें।
6. समुदाय को जहां तक सम्भव हो, आत्मनिर्भर बनाऐं।
7. यह दर्शाऐं कि कैसे ग्रामीण और देशज संसाधनों का उपयोग किया जा सकता है। मानव संसाधन ग्रामीण कौशल और स्थानीय ज्ञान का किस रुप में उपयोग किया जा सकता है।
8. प्रौद्योगिकी का विस्तार कर इसे ग्रामीण गरीबों के लिए सरल रूप में प्रस्तुत करें।
9. जमीनी कार्यकर्ताओं के संवर्ग को प्रशिक्षित करें।
10. समुदाय के भीतर से ही वित्तीय संसाधनों को एकत्रित करें।
11. गरीबों को संगठित करें और इन सेवाओं के प्रति उनमें जागरुकता उत्पन्न करें।

सातवीं पंचवर्षीय योजना ने ग्रामीण विकास में गैरसरकारी संगठन महत्व को स्वीकार करते हुए प्रथम बार 150 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता आबंटित की है। भारत सरकार भी अनेक माध्यमों से इन क्षेत्रों में उत्साहजनक कार्य कर रही है।

4.7 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई चार में समाज कार्य क्षेत्र अभ्यास में व्यक्ति, परिवार, समुदाय व संगठन के बारे में अलग–अलग ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है इसी इकाई में चिकित्सा क्या है, मनोचिकित्सा और बाल देखभाल के बारे में भी प्रकाश डाला गया है। शिक्षा एवं अनुसंधान के बारे में भी ब्यौरा दिया गया है तथा सुधारात्मक सेवायें क्या होती है। तथा समाज कार्य सेवा का इसमें कैसे प्रयोग किया जा सकता है के बारे में लिखा गया है। इकाई के अन्त में निगमित क्षेत्र, प्रातः संस्थायें और गैर सरकारी संगठनों के बारे में भी अलग–अलग रूप में विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

4.8 परिभाषिक शब्दाबली

Person	व्यक्ति	Mother institutions	दाता संस्थायें
Family	परिवार	Non-Government organisations	गैर सरकारी संगठन
Community	समुदाय	Environmental Manipulation	स्थिति पर्यावरण
Organisation	संगठन	Personal Situation	व्यक्ति परिस्थिति
Therapy	चिकित्सा	Provider	प्रदानकर्ता
Psycho-therapy	मनोचिकित्सा	Locator	स्थिति प्रदर्शक
Child care	बाल देखभाल	Interpretor	प्राख्याकार
Education	शिक्षा	Mediator	मध्यस्थ
Research	अनुसंधान	Modifier	परिवर्तक
Correctional services	सुधारात्मक सेवायें	Repressed	प्रतिदमित
Notified area	निगमित क्षेत्र	Transference	स्थानान्तरण

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, डॉ0 प्रयाग दीन, सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, वर्ष 1997, पेज 269–271, 402–406, 412.414.
2. कुमार, डॉ0 रुपेश, क्षेत्रकार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य विभाग में विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत मानवकीय एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित मेटेरियल, वर्ष 2004, पेज 79–83, 106–114, 169–170.
3. मदन, डॉ0 जी0 आर0, समाज कार्य, विवेक प्रकाशन दिल्ली, वर्ष 2006, पेज 308–315, 339–341.
4. मिश्र, डॉ0 प्रयाग दीन, सामाजिक सामूहिक कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, वर्ष 2005, पेज 85–88.

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. समाज कार्य अभ्यास में संगठन क्या है ?
2. चिकित्सा क्या हैं ?
3. बाल देखभाल से आप क्या समझते हैं ?
4. शिक्षा एवं अनुसंधान से क्या तात्पर्य है ?
5. सुधारात्मक सेवायें क्या होती है ?
6- निगमित क्षेत्र से क्या समझते हैं ?

MSW-14

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

मानव संसाधन प्रबंधन एवं औद्योगिक सम्बन्ध

Human Resource Management & Industrial Relation

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. : 05946-286001

टोल फ्री नं. : 18001804025

ई-मेल :info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष संयोजक

कुलपति निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी प्रोफेसर राज कुमार सिंह

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

इकाई लेखन

१. प्रोफेसर आर० एस० शुक्ल, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,

१. प्रोफ़ेसर आर० एस० शुक्ल, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी |

२. प्रफेसर एम० एम० वर्मा , महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी |

३. डॉ० विनोद पांडे ,तीर्थंकर वि० वि० ,मुरादाबाद ,यू० पी० |

४. डॉ0 नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल|

संपादन

डॉ0 नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, डॉ0 नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

Copy right **ISBN no. 978-93-84433-99-4**

"Paper used: Agro-based Environment Friendly"

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिये बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय हल्द्वानी,नैनीताल-263139 से प्राप्त की जा सकती है।

निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

MSW-15

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

श्रम कल्याण एवं विधान

Labour Welfare & legislation

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. : 05946-286001

टोल फ्री नं. : 18001804025

ई-मेल :info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष संयोजक

कुलपति निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी

प्रोफेसर राज कुमार सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

इकाई लेखन

१. प्रोफेसर राज कुमार सिंह प्रोफ़ेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ
२. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल
३. डॉ० राजेश कुशवाहा ,डॉ० भीम राव अम्बेडकर वि० वि० ,आगरा ,यू० पी०

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

Copy right **_ISBN no. 978-93-84433-59-8_**

"Paper used: Agro-based Environment Friendly"

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिये बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय हल्द्वानी,नैनीताल-263139 से प्राप्त की जा सकती है।

निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

MSW-16

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

चिकित्सकीय समाज कार्य

Medical Social Work

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. : 05946-286001

टोल फ्री नं. : 18001804025

ई-मेल :info@uou.ac.in, http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

संयोजक
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

प्रोफ़ेसर आर० पी० द्विवेदी
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी

प्रोफेसर राज कुमार सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय ,लखनऊ

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

इकाई लेखन

१. प्रोफ़ेसर वंदना सिन्हा ,महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी |

२. प्रोफ़ेसर शैला परवीन ,महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ ,वाराणसी |

३. डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल|

संपादन

डॉ० नीरजा सिंह, सहायक प्राध्यापक, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल

Copy right

"Paper used: Agro-based Environment Friendly"

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिये बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय हल्द्वानी,नैनीताल-263139 से प्राप्त की जा सकती है।

निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।